एमएईसी–101
(MAEC – 101)

व्यष्टि अर्थशास्त्र
(Micro Economics)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाई पास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी – 263139
फोन नं. 05946 – 261122, 261123
टॉल फ्री नं. 18001804025
फैक्स नं. 05946–264232, ई–मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम समिति

प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे,
निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 एम0 के0 धडोलिया,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा, राजस्थान

प्रो0 एस0 पी0 तिवारी,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
डॉ0 आर0 एम0 एल0 अवध विश्वविद्यालय,
फैजाबाद उ0 प्र0

प्रो0 मधुबाला,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
इंदिरा गॉधी मुक्त विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

प्रो0 आर0 सी0 मिश्र
निदेशक वाणिज्य एवं प्रबन्ध विद्याशाखा,
विशेष आमंत्रित सदस्य
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ0 अमितेन्द्र सिंह
अर्थशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एवं संपादन

डॉ0 अमितेन्द्र सिंह
अर्थशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. मंजुला उपाध्याय असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, ए.पी. सेन महाविद्यालय, लखनऊ, उ. प्र.	**1,2,3**
डॉ. सुरजीत सिंह असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, बी.एस.एम.पी.जी. महाविद्यालय, रूड़की, उत्तराखण्ड	**4,5,6,7**
डॉ. शील प्रिय त्रिपाठी एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग राजकीय पी.जी. महाविद्यालय, बौराई, गुन्नौर (भीमनगर), उ. प्र.	**8,9,10,11**
डॉ. अरविन्द प्रकाश श्रीवास्तव एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, फ़ीरोज़ गॉधी पी. जी. कॉलेज रायबरेली, उ.प्र.	**12,13**
डॉ. प्रीति आत्रेय असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, महिला महाविद्यालय पी.जी. कॉलेज, सतीकुण्ड, कनखल, हरिद्वार उत्तराखण्ड	**14,15,16**
डॉ. अमितेन्द्र सिंह अर्थशास्त्र विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**17,18,19**
डॉ. यू. पी सिंह असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, ई.सी.सी, इलाहाबाद, उ.प्र.	**20,21**
डॉ. पी. सी. तिवारी एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, हडिया पी.जी. कॉलेज, हडिया इलाहाबाद, उ.प्र.	**22,23,24,** **25,26,27**
डॉ. अनामिका चौधरी असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, वाई.डी.पी.जी. कॉलेज, लखीमपुर खीरी, उ.प्र.	**28,29,30,31**

संस्करणः 2017
आई.एस.बी.एन.: 101-978-93-84632-96-0
प्रतिलिप्याधिकार (कॉपीराइट): @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशकः कुल सचिव, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल – 263139
email: studies@uou.ac.in
मुद्रकः
इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

व्यष्टि अर्थशास्त्र
(Micro Economics)

एमएईसी – **101**
(MAEC – 101)

विषय–सूची

खण्ड– 1. परिचय **(Introduction)**	पृष्ठ संख्या
इकाई– 1. आर्थिक सिद्धान्त का स्वरूप (Nature of Economic Theory)	1–18
इकाई– 2. व्यष्टिपरक तथा समष्टिपरक अर्थशास्त्र (Micro and Macro Economics)	19–35
इकाई– 3. आर्थिक स्थैतिकी, प्रावैगिकी एवं सामान्य संतुलन विश्लेषण (Economic Statics, Dynamics and General Equilibrium Analysis)	36–57

खण्ड– 2. उपभोक्ता व्यवहार– I **(Consumer Behaviour-I)**	पृष्ठ संख्या
इकाई– 4. गणनात्मक तुष्टिगुण विश्लेषण (Cardinal Utility Aalysis)	58–79
इकाई– 5. माँग एवं पूर्ति नियम (Law of Demand and Supply)	80–97
इकाई– 6. माँग एवं पूर्ति की लोच (Elasticity of Demand and Supply)	98–122
इकाई– 7. उपभोक्ता बचत (Consumer Surplus)	123–137

खण्ड– 3. उपभोक्ता व्यवहार– II **(Consumer Behaviour-II)**	पृष्ठ संख्या
इकाई– 8. अनधिमान वक्र विश्लेषण (Indifference Curve Analysis)	138–159
इकाई– 9. आय प्रभाव, प्रतिस्थापन तथा कीमत प्रभाव (Income Effect, Substitution and Price Effect)	160–186
इकाई– 10. अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग (Applications of Indifference Curve Analysis)	187–211
इकाई– 11. उद्घाटित अधिमान विश्लेषण (Revealed Preference Theory)	212–233

खण्ड– 4. उत्पादन के सिद्धान्त और लागत एवं आगम वक्र **(Theory of Production and Cost and Revenue Curves)**	पृष्ठ संख्या
इकाई– 12. लागत वक्र विश्लेषण (Cost Curve Analysis)	234–269
इकाई– 13. आगम वक्र विश्लेषण	270–293

(Revenue Curve Analysis)
इकाई– 14. उत्पादन का सिद्धान्त : एक परिवर्तनशील साधन में उत्पादन 294–308
(Theory of Production: Production with a Variable Factor)
इकाई– 15. उत्पादन का सिद्धान्त : दो परिवर्तनशील साधन में उत्पादन 309–329
(Theory of Production: Production with two Variable Factors)
इकाई– 16. अनुकूलतम साधन संयोग 330–340
(Optimum Factor Combination)

खण्ड– 5. फर्म का सिद्धान्त : कीमत और उत्पादन निर्धारण **पृष्ठ संख्या**
(Theory of Firm: Determination of Price and Production)

इकाई– 17. बाजार संरचना एवं फर्म का संतुलन विश्लेषण 341–356
(Market Structure and Analysis of Firm Equilibrium)
इकाई– 18. पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत और उत्पादन निर्धारण 357–370
(Determination of Price and Production under Perfect Competition)
इकाई– 19. एकाधिकार में कीमत और उत्पादन निर्धारण 371–397
(Determination of Price and Production under Monopoly)
इकाई– 20. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता में कीमत और उत्पादन निर्धारण (Determination of Price and Production under Monopolistic or Imperfect Competition) 398–419
इकाई– 21. अल्पाधिकार में कीमत और उत्पादन निर्धारण 420–451
(Determination of Price and Production under Oligopoly)

खण्ड– 6. साधन कीमत निर्धारण सिद्धान्त **पृष्ठ संख्या**
(Theory of Factor Price Determination)

इकाई– 22. साधन कीमत निर्धारण पूर्ण प्रतियोगिता के अंर्तगत 452–466
(Factor Price Determination under Perfect Competition)
इकाई– 23. साधन कीमत निर्धारण अपूर्ण प्रतियोगिता के अंर्तगत 467–473
(Factor Price Determination under Imperfect Competition)
इकाई– 24. मजदूरी का निर्धारण 474–486
(Determination of Wage)
इकाई– 25. रिकार्डो का लगान सिद्धान्त और आर्थिक लगान 487–502
(Recardian Theory of Rent and Economic Rent)
इकाई– 26. ब्याज का सिद्धान्त 503–523
(Theory of Interest)
इकाई– 27. लाभ का सिद्धान्त 524–538
(Theory of Profit)

खण्ड– 7. कल्याणकारी अर्थशास्त्र (Welfare Economics) **पृष्ठ संख्या**

इकाई– 28. कल्याणकारी अर्थशास्त्र और पीगू की अवधारणा 539–553
(Welfare Economics and Pigourian concept)
इकाई– 29. परेटो का कल्याणकारी अर्थशास्त्र 554–572
(Paretian Welfare Economics)
इकाई– 30. नवीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र 573–587
(New Welfare Economics)
इकाई– 31. सामाजिक कल्याण फलन 588–600
(Social Welfare Function)

इकाई-1आर्थिक सिद्धान्त का स्वरूप

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अर्थशास्त्र की परिभाषा
 1.3.1 धन प्रधान परिभाषाएं
 1.3.2 कल्याण सम्बन्धी नियोक्लासिकल दृष्टिकोण
 1.3.3 दुर्लभता सम्बन्धी रॉबिन्स का दृष्टिकोण
 1.3.4 विकास केन्द्रित परिभाषा
 1.3.5 जे.के. मेहता की आवश्यकता विहीनता सम्बन्धी परिभाषा
1.4 अर्थशास्त्र का क्षेत्र एवं स्वभाव
 1.4.1 अर्थशास्त्र का क्षेत्र
 1.4.2 अर्थशास्त्र का स्वभाव - विज्ञान या कला
 1.4.3 वास्तविक विज्ञान अथवा आदर्श विज्ञान
1.5 आर्थिक सिद्धान्त की प्रकृति, उपयोग एवं सीमाएं
 1.5.1 आर्थिक सिद्धान्त की प्रकृति
 1.5.2 सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र का उपयोग
 1.5.3 सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र की सीमाएं
1.6 सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र की विधियां
 1.6.1 निगमन विधि
 1.6.2 अगमन विधि
1.7 आर्थिक सिद्धान्त में मान्यताओं की प्रकृति और महत्व
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्न
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

आर्थिक सिद्धान्त के स्वरूप को समझने से पूर्व यह जरूरी है कि अर्थशास्त्र की परिभाषा, विषयवस्तु और इसके क्षेत्र का अध्ययन किया जाय। इसकी परिभाषा के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में विवाद है। सुविधा के लिए इसे चार वर्गो में बांटा गया है धन सम्बन्धी, कल्याण सम्बन्धी, दुर्लभता सम्बन्धी और आर्थिक विकास सम्बन्धी साथ में जे.के. मेहता द्वारा प्रतिपादित आवश्यकता विहीनता सम्बन्धी परिभाषा की भी चर्चा इस इकाई में करेंगे। विभिन्न परिभाषाओं के अध्ययन से अर्थशास्त्र के क्षेत्र एवं उसके स्वभाव पर बहुत प्रकाश पड़ता है। अर्थशास्त्र का क्षेत्र परिस्थितियों तथा समस्याओं के अनुसार परिवर्तनशील तथा लोचपूर्ण है। अर्थशास्त्र में अध्ययन की जाने वाली मानवीय आर्थिक कल्याण से सम्बन्धित आर्थिक क्रियाओं को दो भाग में बांटा जा सकता है - वर्तमान साधनों के आवंटन की समस्या तथा उत्पादन के साधनों की वृद्धि की समस्या। एक अर्थशास्त्री का कार्य है इनके समाधान ढूंढना और यही अर्थशास्त्र की विषय सामग्री है। अर्थशास्त्र के स्वभाव के सम्बन्ध में हम जानने की कोशिश करते हैं कि अर्थशास्त्र विज्ञान है या कला? अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान है अथवा आदर्श विज्ञान? अन्त में हम अध्ययन करेंगे कि आर्थिक सिद्धान्त की प्रकृति क्या है उसके उपयोग और सीमाओं पर दृष्टिपात करेंगे, साथ ही सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र की विधियों निगमन एवं अगमन का भी अध्ययन करेंगे। यह तर्कशास्त्र की दो किस्में हैं जो सत्य को स्थापित करने में सहायता करती है। आर्थिक सिद्धान्त कुछ मान्यताओं पर आधारित है जिन्हें मुख्यतया तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है मनोवैज्ञानिक, संस्थानिक और संरचनात्मक मान्यताएं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति करने में सफल होंगेः-

1. अर्थशास्त्र से सम्बन्धित विभिन्न परिभाषाओं से अवगत होंगे।
2. अर्थशास्त्र के क्षेत्र एवं उसके स्वभाव से परिचित होंगे।
3. अर्थशास्त्री किन समस्याओं का समाधान ढूंढने का प्रयास करते हैं।
4. आर्थिक सिद्धान्त की प्रकृति, उसके उपयोग एवं सीमाओं का अध्ययन करेंगे।
5. आर्थिक सिद्धान्त की अगमन एवं निगमन विधियों को जानेंगे।
6. आर्थिक सिद्धान्त में मान्यताओं के महत्व को समझेंगे।

1.3 अर्थशास्त्र की परिभाषा

अर्थशास्त्र से सम्बन्धित अनेक परिभाषाएं हैं किन्तु इनमें से कोई पूर्णतः दोषमुक्त नहीं है। मुख्यतया हम इन्हें चार शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित करेंगे और जे.के. मेहता की आवश्यकता विहीनता परिभाषा को अन्त में देखेंगे।

1.3.1 धन प्रधान परिभाषाएं

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों एडम स्मिथ, जे.बे.से., सीनियर, जे.एस.मिल आदि द्वारा दी गई परिभाषा। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों विशेष रूप से एडम स्मिथ ने अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान कहा। उनकी पुस्तक ''**An Enquiry Into The Nature And Cause of Wealth & Nations**'' में अर्थशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्र की भौतिक सम्पत्ति में वृद्धि करना माना। ''से'' के अनुसार ''अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो धन का अध्ययन करता है।'' वाकर ने कहा कि ''अर्थशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जो धन से सम्बन्धित है''। एडम स्मिथ के उत्तराधिकारी अर्थशास्त्री जे.एस. मिल के अनुसार ''राजनैतिक अर्थशास्त्र का सम्बन्ध धन के स्वभाव, उनके उत्पादन और वितरण के नियम से है ...... अर्थशास्त्र मनुष्य से सम्बन्धित धन का विज्ञान है।

आलोचनायें-

1.धन का सम्बन्ध भौतिक वस्तुएं जिन्हें स्पर्श किया जा सके लिया गया जिसके कारण मनुष्य की वही क्रियायें जो कि इस प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन तथा उपभोग में लगी इसके अन्तर्गत आयी अन्य क्रियाएं इसकी विषय सामग्री नहीं बनीं।

2.धन पर आवश्यकता से अधिक बल जो इसे अत्यन्त संकीर्ण बनाता है। ये यह भूल गये कि धन साधन है साध्य नहीं, साध्य है मनुष्य और उसकी सन्तुष्टि।

3.एडम स्मिथ ने ''अर्थमानव'' की कल्पना की जो विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण से प्रेरित होता है किन्तु साधारण मनुष्य कई प्रकार की प्रेरणाओं जैसे दया, धर्म आदि से प्रभावित होता है। इसलिए ''अर्थमानव'' वास्तविक नहीं है।

4.यह एकांगी, एक पक्षीय और संकुचित शास्त्र के रूप में अर्थशास्त्र को ले जायेगी।

19वीं शताब्दी के अन्त में धन सम्बन्धी परिभाषा का परित्याग कर दिया गया।

1.3.2 कल्याण सम्बन्धी नियोक्लासिकल दृष्टिकोण

मार्शल ने धन की परिभाषा के दोषों को दूर करने के उद्देश्य से अर्थशास्त्र. की अपनी परिभाषा में मनुष्य पर विशेष बल दिया। धन साध्य न बनकर मानवीय कल्याण के साधन के रूप में सामने आया। उन्होंने अपनी पुस्तक ''प्रिन्सिपुल्स ऑफ इकानॉमिक्स'' में अर्थशास्त्र को इस प्रकार परिभाषित किया ''राजनीतिक अर्थशास्त्र अथवा अर्थशास्त्र मानव जाति के साधारण व्यापार का अध्ययन है। यह व्यक्तिगत एवं सामाजिक क्रियाओं के उस भाग का परीक्षण करता है जिसका विशेष सम्बन्ध जीवन में कल्याण अथवा सुख से सम्बद्ध भौतिक पदार्थों की प्राप्ति एवं उपभोग से है।'' यह परिभाषा बताती हैः-

1.मानवीय कल्याण पर बल

2.जीवन के साधारण व्यवसाय सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन है जो भौतिक साधनों की प्राप्ति तथा उनके उपयोग से सम्बन्धित है।

3.भौतिक कल्याण के अध्ययन से सम्बन्धित है अर्थात मानव कल्याण का वह भाग जो मुद्रा द्वारा नापा जा सके।

4.समाज में रहने वाले मनुष्यों की भौतिक कल्याण से सम्बन्धित क्रियाओं का अध्ययन

5.व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों कार्यों पर बल।

आलोचना

1. आर्थिक क्रियाओं का साधारण तथा असाधारण में बांटना अनुचित
2. अर्थशास्त्र केवल सामाजिक विज्ञान नहीं बल्कि मानव विज्ञान है। उदाहरण इसका सम्बन्ध जंगल में रहने वाले सन्यासी से भी उतना ही है जितना समाज में जीवन यापन करने वाले कृषक से।
3.मार्शल की परिभाषा वर्गकारिणी है विश्लेषणात्मक नहीं। उनके अनुसार अर्थशास्त्र में केवल भौतिक, आर्थिक तथा साधारण व्यवसाय का अध्ययन किया जाता है जो उचित नहीं है।
4. अर्थशास्त्र के अध्ययन को केवल भौतिक साधनों तक सीमित करना।
5.अर्थशास्त्र का भौतिक कल्याण से सम्बन्ध स्थापित करना उचित नहीं। रॉबिन्स के अनुसार कौन क्रिया कल्याणकारी है और कौन नहीं यह नीतिशास्त्र का विषय है अर्थशास्त्र का नहीं। बहुत सी ऐसी आर्थिक क्रियायें हैं जिनका उत्पादन तथा बिक्री मानव कल्याण में वृद्धि नहीं ला सकती जैसे- सिगरेट, तम्बाकू, शराब आदि।
6.भौतिक कल्याण का परिमाणात्मक माप सम्भव नहीं है।

इसी के अन्तर्गत पीगू की परिभाषा ''अर्थशास्त्र आर्थिक कल्याण का अध्ययन है। आर्थिक कल्याण से हमारा अभिप्राय सामाजिक कल्याण के उस भाग से है प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मुद्रा के मापदण्ड से सम्बन्धित किया जा सकता है।'' किन्तु इसके अन्तर्गत केवल उन्हीं क्रियाओं का अध्ययन करता है जो मुद्रा द्वारा नापी जा सके एवं यह अर्थशास्त्र को अनिश्चितता तथा संकीर्णता के जाल में लाकर फंसा देती है।

1.3.3 सीमितता या दुर्लभता सम्बन्धी रॉबिन्स का दृष्टिकोण

रॉबिन्स की 1932 में प्रकाशित प्रसिद्ध पुस्तक ''**An Essay on The Nature and Significance of Economic Science**'' से पहले अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र की परिभाषा तथा विषय सामग्री से सम्बन्धित कोई क्रमबद्ध तथा निश्चित विवेचन नहीं प्रस्तुत किया। रॉबिन्स के अनुसार ''अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो साध्यों तथा वैकल्पिक उपयोग वाले सीमित साधनों के सम्बन्ध के रूप में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है।''

विशेषताएं

1.साध्य का अभिप्राय आवश्यकताओं से है जो अनन्त है तथा एक की सन्तुष्टि के बाद दूसरी उपस्थिति हो जाती है। सभी साध्य एक महत्व के नहीं होते कम तीव्र आवश्यकताओं का त्याग करना पड़ता है।

2. साध्यों की पूर्ति के लिए साधन सीमित हैं।

3.साधनों के वैकल्पिक उपयोग भी सम्भव हैं।

4.यह चुनाव की क्रिया ही आर्थिक समस्या है और इस प्रकार की समस्याओं का अध्ययन ही अर्थशास्त्र का विषय है।

इनकी विचारधारा का समर्थन इंग्लैण्ड के प्रो0 विकस्टीड, आस्ट्रिया के स्ट्रिग्ल तथा अमेरिका के पाल ए सेमुएलसन प्रमुख हैं। रॉबिन्स का अर्थशास्त्र सभी मनुष्यों की क्रियाओं का अध्ययन करता है, केवल समाज में रहने वाले व्यक्तियों का ही अध्ययन नहीं करता।

आलोचना

1.उद्देश्यों के प्रति तटस्थता - कुछ अर्थशास्त्री कहते हैं कि अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक अध्ययन के लिए रॉबिन्स की दुर्लभता परिभाषा अत्यन्त संकुचित सिद्ध हुई है। रॉबिन्स अर्थशास्त्र एवं आचारशास्त्र के बीच एक ऊँची दीवार खड़ी करना चाहते हैं।

2. अर्थशास्त्र केवल विशुद्ध विज्ञान नहीं हैः- आलोचकों का कहना है कि रॉबिन्स का दृष्टिकोण अर्थशास्त्र को विशुद्ध विज्ञान बना देगा जिसके अन्तर्गत अर्थशास्त्र केवल आर्थिक नियमों का निर्माण मात्र करेगा व्यवहारिकता से इसका सम्बन्ध पूर्णतः नष्ट हो जायेगा।

3. आर्थिक समस्या केवल दुर्लभता के कारण ही नहीं अपितु प्रचुरता के कारण भी है।

4. रॉबिन्स की परिभाषा स्थैतिक दृष्टिकोण की है। इस परिभाषा के अनुसार दुर्लभ साधनों तथा साध्यों में किसी प्रकार का कोई भी परिवर्तन होने की सम्भावना नहीं है। गतिशील समाज में साधनों एवं साध्यों दोनों में परिवर्तन सम्भव है, कालान्तर में साध्यों के परिवर्तित होने की सम्भावना बनी रहती है। इसके साथ-साथ साधनों की भी वृद्धि तथा विकास होता है।

मार्शल तथा रॉबिन्स की परिभाषा में समानताएं

1. मार्शल ने अपनी परिभाषा में धन शब्द का प्रयोग किया है जबकि रॉबिन्स ने सीमित साधनों का। दोनों अलग-अलग होते हुए भी मूल रूप से एक हैं क्योंकि साधन की सीमितता धन का प्रधान लक्षण है।

2. दोनों मानव का अध्ययन करते हैं।

भिन्नताएं

1. मार्शल ने अर्थशास्त्र को सामाजिक विज्ञान के रूप में देखा है जबकि रॉबिन्स ने अर्थशास्त्र को मानवीय विज्ञान माना है। परिणामतः रॉबिन्स की परिभाषा का क्षेत्र मार्शल की अपेक्षा अधिक विस्तुत है।

2. मार्शल की परिभाषा वर्गीकरणात्मक है जबकि रॉबिन्स की परिभाषा विश्लेषणात्मक।

3. मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र विज्ञान तथा कला दोनों हैं जबकि रॉबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है। आदर्श विज्ञान नहीं और इसका एक निश्चित स्वरूप है।

4. रॉबिन्स की परिभाषा सैद्धान्तिक है जबकि मार्शल की अधिक व्यावहारिक क्योंकि इसका उद्देश्य ज्ञान का प्रयोग करना भी है।

1.3.4 विकास केन्द्रित परिभाषा

रॉबिन्स की परिभाषा विकास की समस्या को सम्मिलित नहीं करती तथा पूर्णतः स्थैतिक रवैया अपनाती है। इन दोषों को दूर करने के लिए सैम्युएलसन ने परिभाषा दी जो कालान्तर में 'साधनों' एवं 'साध्यों' में होने वाले गतिशील परिवर्तनों को सम्मिलित करती है, इसलिए इसे विकासोन्मुखी परिभाषा कहते हैं। उनके अनुसार ''अर्थशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि व्यक्ति और समाज अनेक प्रयोगों में लगाये जा सकने वाले उत्पादन के सीमित साधनों का चुनाव एक समयावधि में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में लगने एवं उनको समाज में विभिन्न व्यक्तियों और समूहों में उपभोग हेतु, वर्तमान तथा भविष्य में बांटने के लिए किस प्रकार करते हैं, ऐसा वे चाहे मुद्रा का प्रयोग करके करें अथवा इसके बिना करें।''

इस परिभाषा से विदित है कि

1.रॉबिन्स की तरह सैम्युएलसन भी असीमित साध्यों के प्रति सीमित साधन जिनका वैकल्पिक प्रयोग है, पर बल देती है।

2.रॉबिन्स की परिभाषा स्थैतिक है किन्तु सैम्युएलसन ने समय तत्व को लेकर अपनी परिभाषा को प्रावैगिक बना दिया है।

3.सैम्युएलसन की परिभाषा का क्षेत्र रॉबिन्स की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। यह ऐसी अर्थव्यवस्था पर भी लागू होती है जिसमें वस्तु विनिमय प्रणाली को भी शामिल किया जाता है।

4.सैम्युएलसन की परिभाषा चुनाव की समस्या का प्रावैगिक रूप में उल्लेख करती है यह वर्तमान से ही नहीं बल्कि भविष्य से भी सम्बन्धित होती है। आस्वादों, अभिरूचियों एवं फैशनों में परिवर्तन मानवीय आवश्यकताओं के स्वरूप को बदल देते हैं। अतः अर्थशास्त्र असीमित साध्यों के सन्दर्भ में सीमित साधनों के आवंटन तथा आय, उत्पादन, रोजगार एवं आर्थिक विकास के निर्धारकों का अध्ययन है ।

1.3.5 जे.के. मेहता की आवश्यकता विहीनता सम्बन्धी परिभाषा- जे.के. मेहता को ''भारतीय दार्शनिक सन्यासी अर्थशास्त्री'' कहा जाता है। इनका दृष्टिकोण पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों से सर्वथा भिन्न है जिसमें भारतीय संस्कृति, धर्म तथा नैतिकता का प्रतिनिधित्व हुआ है। वे रॉबिन्स से इस विषय में सहमत नजर आते हैं कि अर्थशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन है जिसका लक्ष्य 'अधिकतम सन्तुष्टि' की प्राप्ति है किन्तु इस अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दो रास्ते अपनाये जा सकते हैं। पहला अधिकतम सन्तुष्टि के लिए इच्छाओं में वृद्धि और उसे प्राप्त करने के लिए सन्तुष्टि के साधनों में वृद्धि लायी जाये। यह भौतिकवादी पक्ष है जो पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों द्वारा समर्थित है। दूसरा रास्ता भारतीय और आध्यात्मिक है जिसके अनुसार ''अधिकतम सन्तुष्टि की प्राप्ति इच्छाओं में कमी करके प्राप्त की जा सकती है क्योंकि जितनी इच्छाएं अधिक होंगी सन्तुष्टि के अभाव में उनसे असन्तुष्टि भी उतनी अधिक होगी। वास्तविक सुख की प्राप्ति के लिए इच्छाओं को न्यूनतम करना होगा अर्थात इच्छाओं से मुक्ति पाना ही आर्थिक समस्या है।''

अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में उनकी परिभाषा है ''अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो मानवीय व्यवहार की 'इच्छारहित अवस्था' या 'इच्छा विहीनता की स्थिति' तक पहुंचने के साधन के रूप में अध्ययन करता है।'' उनके अनुसार सुख वह अनुभूति है जिसकी प्राप्ति उस समय होती है जबकि कोई इच्छा न हो। जब तक इच्छा रहेगी मस्तिष्क सन्तुलन की स्थिति में नहीं होगा, वह सन्तुलन की प्राप्ति के लिए इस इच्छा की पूर्ति का प्रयत्न करेगा। किन्तु एक इच्छा की पूर्ति दूसरी इच्छा को अगर जन्म देगी तो जो सुख प्राप्त किया है उसका मूल्य कम हो जायेगा दूसरी इच्छा प्राप्ति के लिए।

इच्छाविहीनता की ही स्थिति में मस्तिष्क में द्वन्द नहीं रहेगा और यह अनुभव ही वास्तविक सुख है। अर्थशास्त्र का उद्देश्य इसी सुख को अधिकतम करना है। अधिकतम सुख और अधिकतम इच्छायें परस्पर विरोधी हैं अर्थात वास्तविक सुख इच्छाओं को न्यूनतम करने में है न कि अधिकतम करने में। मस्तिष्क को ऐसी स्थिति में रखें जहाँ बाहरी शक्तियों का प्रभाव न पड़े। इसके लिए मस्तिष्क को शिक्षित करने की आवश्यकता है मनुष्य को यह विश्वास होना चाहिए कि जीवन का उद्देश्य सुख की प्राप्ति है जो इच्छाओं से मुक्ति द्वारा सम्भव है। इसके लिए हमें अपने मस्तिष्क को वाह्य शक्तियों के प्रभाव से अलग रखना होगा अर्थात उसे नियन्त्रित करना होगा।

1.4 अर्थशास्त्र का क्षेत्र एवं स्वभाव

1.4.1 अर्थशास्त्र का क्षेत्र

वह विषयवस्तु जिसका अध्ययन हम अर्थशास्त्र में करते हैं उसे अर्थशास्त्र का क्षेत्र कहा जाता है। अर्थशास्त्र की विभिन्न परिभाषाओं के अध्ययन से हमें काफी कुछ उसके क्षेत्र एवं स्वभाव के बारे में पता चलता है। वाइनर के अनुसार ''वही अर्थशास्त्र की विषयवस्तु है एवं उसका क्षेत्र है, जिसका अध्यन एक अर्थशास्त्री करता है। अर्थशास्त्र का क्षेत्र परिस्थितियों तथा समस्याओं के अनुसार परिवर्तनशील है। माननीय आर्थिक कल्याण से सम्बन्धित आर्थिक क्रियाओं को दो भागों में बांटा जा सकता है - वर्तमान साधनों के आवंटन की समस्या तथा उत्पादन के साधनों की वृद्धि की समस्या। इस उद्देश्य से एक अर्थशास्त्री विभिन्न प्रश्नों के समाधान ढूंढता है। जैसे-

1. अर्थव्यवस्था में उपलब्ध सभी साधनों का क्या पूर्ण प्रयोग हो चुका है। यह देखा जाता है कि सीमित दुर्लभ साधनों का पूर्ण प्रयोग हो रहा है या नहीं।

2. साधनों के आवंटन की समस्या यानि उपलब्ध साधनों से किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाय क्योंकि साधन सीमित हैं?

3.वस्तुओं के उत्पादन की प्राविधि क्या हो अर्थात वस्तुओं का उत्पादन कैसे करें?

4. राष्ट्रीय उत्पादन का समाज के विभिन्न वर्गों के बीच राष्ट्रीय उत्पाद का वितरण कैसे हो यानि किसके लिए उत्पादन किया जाय?

5. साधनों के अनुकूलतम प्रयोग की समस्या। इसके लिए अर्थव्यवस्था को सदैव कुछ वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन का त्याग करके कुछ अन्य का उत्पादन बढ़ाना चाहिए।

6. अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो रही है या कमी? इसके अन्तर्गत आर्थिक विकास एवं संवृद्धि का अध्ययन किया जाता है। वृद्धि को तेज करने के लिए पूँजी निर्माण की दर को ऊँचा करना एवं नवप्रवर्तन और अधिक दक्ष तकनीकों के माध्यम से उत्पादन को बढ़ाने पर बल देना चाहिए।

1.4.2 अर्थशास्त्र का स्वभाव - विज्ञान या कला

इससे पहले कि हम यह विचार करें कि अर्थशास्त्र कला है या विज्ञान, वास्तविक विज्ञान या आदर्श विज्ञान हम यह जाने कि विज्ञान तथा कला का क्या अर्थ है?

ज्ञान

विज्ञान कला पक्ष

वास्तविक विज्ञान आदर्श विज्ञान

विज्ञान किसी विषय के ज्ञान का व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध अध्ययन है। पोइनकेअर ''जिस प्रकार एक मकान का निर्माण ईंटों द्वारा होता है उसी प्रकार विज्ञान तथ्यों द्वारा निर्मित है पर जिस प्रकार ईंटों का ढेर मकान नहीं है उसी प्रकार से मात्र तथ्यों को एकत्रित करना विज्ञान नहीं है। उद्देश्य, पर्यवेक्षण, प्रयोग तथा विश्लेषण के द्वारा सत्य की खोज करना विज्ञान है।''

अर्थशास्त्र विज्ञान है क्योंकि इसके अध्ययन में वैज्ञानिक विधियों का पालन किया जाता है। पर्यवेक्षण, तथ्यों का एकत्रीकरण, विश्लेषण, वर्गीकरण तथा उसके आधार पर नियम का निर्देशन अर्थशास्त्र में किया जाता है। अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की तरह इसमें भी नियम है किन्तु ये उतने सत्य नहीं होते जितने प्राकृतिक विज्ञानों के नियम होते हैं। अर्थशास्त्र के नियम कुछ मान्यताओं पर आधारित है अगर ये मान्यतायें अपरिवर्तित रहीं तो नियम लागू होगा। इसलिए अर्थशास्त्र को विज्ञान मानना ही ठीक होगा।

कला विज्ञान का व्यवहारिक पहलू है अर्थात कला विज्ञान का क्रियात्मक रूप है। कला एवं विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं। किसी विषय का यदि क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त करते हैं तो वह विज्ञान है परन्तु उसका क्रमबद्ध तथा उत्तम प्रयोग कला है। अर्थशास्त्र का अपना व्यावहारिक पहलू भी है इसलिए अर्थशास्त्र का कला पक्ष भी है। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने नियमों का निर्देशन करना ही अर्थशास्त्री का कार्य माना अतः इन्होंने अर्थशास्त्र को अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की ही श्रेणी में रखा। समाजवाद के समर्थकों ने सिद्धान्त पक्ष की उपेक्षा व्यवहार पक्ष पर विशेष बल दिया और विज्ञान के ऊपर कला की प्रभुसत्ता स्थापित की क्योंकि अर्थव्यवस्था में कई सुधार लाने थे।

नियोक्लासिकल अर्थशास्त्री मार्शल ने दोनों के बीच का रास्ता अपनाया। मार्शल इस विचार के थे कि अर्थशास्त्र को 'विज्ञान एवं कला' कहने से उत्तम होगा कि इसे विशुद्ध एवं व्यावहारिक विज्ञान कहें। रॉबिन्स अर्थशास्त्र को विज्ञान मानते थे पर आजकल अर्थशास्त्र का व्यावहारिक महत्व बढ़ता जा रहा है। अतः अर्थशास्त्र का कला पक्ष पुनः प्रभावपूर्ण हो गया है। हम कह सकते हैं कि अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जिसके व्यावहारिक पक्ष अथवा कला पक्ष की अवहेलना नहीं की जा सकती।

1.4.3 वास्तविक विज्ञान अथवा आदर्श विज्ञान

वास्तविक विज्ञान ज्ञान की वह शाखा है जो कारण तथा परिणाम में सम्बन्ध स्थापित करता है। यह ''क्या है'' का उत्तर खोजता है। वास्तविक विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य सत्य की खोज करना तथा उसका विश्लेषण करना है।

आदर्श विज्ञान ''क्या होना चाहिए'' ''क्या नहीं होना चाहिए'' का भी अध्ययन करता है। यह ज्ञान का विश्लेषण करता है और कुछ पूर्व निश्चित मानकों के आधार पर अपने सुझाव प्रस्तुत करता है। कीन्स के अनुसार, ''वास्तविक विज्ञान एक ऐसा क्रमबद्ध ज्ञान है जो क्या है से सम्बन्धित है आदर्श विज्ञान या नियंत्रित विज्ञान क्रमबद्ध ज्ञान का वह रूप है जो क्या होना चाहिए से सम्बन्धित है तथा यह यथार्थ के स्थान पर आदर्श से सम्बद्ध है।''

क्लासिकल अर्थशास्त्री - रिकार्डो, सीनियर, जे.बी. से अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान मानते हैं जबकि मार्शल तथा पीगू अर्थशास्त्र को वास्तविक तथा आदर्श विज्ञान दोनों के रूप में देखते हैं। हाब्सन, हाटे्रे, कैयर्नक्रास भी अर्थशास्त्र को आदर्श विज्ञान मानते हैं।

वास्तविक विज्ञान होने के पक्ष में तर्कः

1. अर्थशास्त्र एक विज्ञान है और विज्ञान अनिवार्यतः तर्कशास्त्र पर आधारित रहता है, यह निर्णय नहीं दे सकता क्या होना चाहिए और क्या नहीं। इसलिए यदि हम अर्थशास्त्र को विज्ञान मानते हैं तो इससे आदर्शवादी दृष्टिकोण निकाल दिया जाना चाहिए।

2. अर्थशास्त्र को आदर्श विज्ञान मानने पर उसकी विषयवस्तु अनिश्चित हो जायेगी।

3. वास्तविक विज्ञान तथा आदर्श विज्ञान दोनों सर्वथा अलग हैं क्योंकि एक का आधार यथार्थ है और दूसरे का आधार है आदर्श (काल्पनिक मान्यता)। इसलिए यदि दोनों को मिला दिया जायेगा तो भ्रम पैदा हो जायेगा।

अर्थशास्त्र के आदर्श विज्ञान होने के पक्ष में तर्क

1. रॉबिन्स यदि मानव व्यवहार का अध्ययन करता है तो उसे यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य तर्कपूर्ण होने के साथ-साथ भावुक भी हैं। इसलिए अर्थशास्त्र को दोनों ही मानना पड़ेगा - तर्क पर आधारित वास्तविक विज्ञान और भावुकता पर आधारित आदर्श विज्ञान।

2. जब हम किसी मानवीय आर्थिक क्रिया का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि अन्त में पहंुचने पर अन्तिम निर्णय व्यक्तिगत भावना पर निर्भर कर जाता है और इस अन्तिम निर्णय से पूर्व ही अर्थशास्त्र की सीमा समाप्त हो जाती है यदि हम अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान मानते हैं अर्थात् अन्तिम निर्णय का श्रेय नीतिशास्त्र को मिल जायेगा। इसलिए अर्थशास्त्र आदर्श विज्ञान भी है।

3. रॉबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की तरह साध्यों के सम्बन्ध में तटस्थ है किन्तु अनेक अर्थशास्त्री मानते हैं कि अर्थशास्त्र नीति शास्त्र का एक अभिन्न अंग है। पीगू ने अर्थशास्त्र को नीतिशास्त्र की सहायिका तथा व्यवहार का दास कहा।

4. वर्तमान में अनेक आर्थिक समस्याएं भयावह रूप हो चुकी है आय की असमानता, बेरोजगारी, भुखमरी, सामाजिक कल्याण को बढ़ाने का मुद्दा। इन सबका निवारण अर्थशास्त्र का आदर्शात्मक पहलू है।

5. विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक नियोजन अपनाया जाता है जो अर्थशास्त्र का आदर्शवादी पहलू है।

6. कल्याणवादी अर्थशास्त्र के विकास से भी इस धारणा को बल मिलता है कि अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान न होकर इसका आदर्शवादी पहलू भी महत्वपूर्ण है।

आदर्शवाद विज्ञान तथा वास्तविक विज्ञान अर्थशास्त्र के दो अलग-अलग भाग नहीं, दो पहलू हैं, वास्तविक विज्ञान अर्थशास्त्र का सैद्धान्तिक पहलू है जबकि आदर्श विज्ञान उसका व्यावहारिक पहलू।

1.5 आर्थिक सिद्धान्त की प्रकृति, उपयोग एवं सीमाएं

1.5.1 आर्थिक सिद्धान्त की प्रकृति- सैद्धान्तिक ज्ञान तथ्यों पर आधारित है, तथा सत्यापित परिकल्पना पर आधारित तथ्य सिद्धान्त बन जाते हैं। बोल्डिंग के अनुसार ‘‘तथ्यों के बिना सिद्धान्त व्यर्थ हो सकते हैं, परन्तु सिद्धान्तों के बिना तथ्य निरर्थक हैं।’’ सिद्धान्त कारण और परिणाम के बीच कारण विषयक सम्बन्ध को व्यक्त करता है तथा ‘‘क्यों’’ की व्याख्या करता है। इसमें परिभाषाओं तथा मान्यताओं का समूह शामिल होता है। फिर इन मान्यताओं का निहित अर्थ जानना जो कि सिद्धान्त की भविष्यवाणियाँ हैं जिनकी जाँच निरीक्षण और आंकड़ों की सांख्यिकी विश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा की जाती है। यदि सिद्धान्त जाँच में पूरा उतरता है तो इसके उपरान्त किसी कार्यवाही की आवश्यकता नहीं होती है। आर्थिक सिद्धान्त के प्रयोग से हम वास्तविक संसार में विषयों की व्याख्या को समझना और भविष्यवाणी करने की कोशिश करते हैं तथा इसलिए हमारा सिद्धान्त हमारे आसपास के अनुभव सिद्ध निरीक्षण से सम्बन्धित हैं और उसके द्वारा जाँचा जाना चाहिए। आर्थिक सिद्धान्त में सामान्यीकरण शामिल किये जाते हैं। यह आर्थिक विषयों के विभिन्न तत्वों के बीच सम्बन्धों की सामान्य प्रवृत्तियों या एकरूपताओं के कथन हैं। यह विशेष अनुभवों के आधार पर एक सामान्य सत्य की स्थापना करता है।

वैज्ञानिक सिद्धान्त के सोपानः

1. समस्या का चुनाव करना

2. आँकड़े इकट्ठे करना

3. आँकड़ों का वर्गीकरण

4. परिकल्पना का निर्माण

5. परिकल्पना का परीक्षण - तर्क एवं स्थापित सांख्यिकी तकनीकों से परिकल्पना का परीक्षण होना चाहिए, जिसकी पुष्टि की जाय। जो परिकल्पना सफल भविष्यवाणी कर सके उसे सिद्ध तो नहीं पर सत्यापित कहा जा सकता है। एक सफलतापूर्वक टेस्ट की गई परिकल्पना एक सिद्धान्त होता है।

6. सिद्धान्त का सत्यापन - यदि परिकल्पना सत्य निकलती है तो वह सत्यापित अथवा प्रमाणित कहलाती है। एक असत्य परिकल्पना हमेशा बेकार नहीं होती वह असंशयित तथ्यों या नए तथ्यों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है और सिद्धान्त को संशोधन की ओर प्रेरित करती है। परिकल्पना के सत्यापन के उपरान्त विचाराधीन समस्या के सम्भव हल या विचार तैयार किये जायें क्योंकि अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है। यह अन्तिम अवस्था व्यावहारिक अर्थशास्त्र कहलाती है और इसमें मूल्य निर्णय शामिल होते हैं।

1.5.2 सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र का उपयोग

1. यह आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए अर्थशास्त्रियों को औजार प्रदान करता है। यह सभी आर्थिक प्रणालियों पर लागू होते हैं चाहे वे पूँजीवादी, समाजवादी या मिश्रित हो। उनका प्रयोग विकसित तथा अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं पर भी किया जाता है।
2. आर्थिक तथ्यों की व्याख्या करना - प्रासंगिक तथ्यों को चुनना, उन्हें वर्गीकृत करना और किसी भी आर्थिक समस्या की प्रमाणिकता सिद्ध करने के लिए कारण विषयक सम्बन्ध स्थापित करना, यह सब आर्थिक सिद्धान्त के माध्यम से सम्भव है।
3. आर्थिक घटनाओं की भविष्यवाणी करना - आर्थिक सिद्धान्त को आधार बनाकर विभिन्न आर्थिक घटनाक्रमों की भविष्यवाणी की जा सकती है।
4. अर्थव्यवस्था के कार्य का निर्णय करना - यह अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के कार्य का निर्णय करने में सहायता प्रदान करता है।
5. आर्थिक नीतियों को निर्मित करने और समझने में सहायता करना - आर्थिक सिद्धान्तों का प्रयोग देश के लिए आर्थिक नीतियाँ बनाने में सहायक होता है। लिप्से के अनुसार ''यह अर्थशास्त्री का कार्य है कि वह न केवल एक प्रस्तावित नीति के परिणामों का विश्लेषण करें (दो या अधिक नीतियों की तुलना करें) परन्तु नीतियों का सुझाव भी दें। उद्देश्यों का कथन दिया होने पर, आर्थिक सिद्धान्त का प्रस्तावित नीतियों का आविष्कार और प्रचार करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है जो कि पहले विचारणीय नहीं है।''

1.5.3 सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र की सीमाएं1. सही आँकड़े उपलब्ध नहीं होते - कोई सिद्धान्त की सत्यता तभी साबित हो सकती है जब वह वास्तविक आर्थिक तथ्यों या आँकड़ों के आधार पर जाँचा जा सके। किन्तु सही आँकड़े एकत्र करना बहुत मुश्किल होता है और उसमें भी धाँधली कर मनगढ़न्त आँकड़े आर्थिक सिद्धान्त को भी अवास्तविक बना देते हैं।

2. सही भविष्यवाणी सम्भव नहीं - भौतिक विज्ञानों की अपेक्षा अर्थशास्त्र में सही भविष्यवाणियों की सम्भावना कम होती है क्योंकि भौतिक विज्ञान में वैज्ञानिक अपनी जाँचों को प्रयोगशाला में नियंत्रित अवस्थाओं में प्रयोगों द्वारा करता है। किन्तु अर्थशास्त्र में इस तरह का नियंत्रित वातावरण सम्भव नहीं है।

3. मानव व्यवहार सदैव विवेकपूर्ण नहीं - मनुष्य का व्यवहार किसी भी देश के सामाजिक एवं वैधानिक ढाँचे पर निर्भर करता है न कि आर्थिक नियमों पर। अलग-अलग लोगों का व्यवहार भिन्न होता है।

4. अवास्तविक मान्यताएं - जिन मान्यताओं पर आर्थिक सिद्धान्त आधारित होता है उसमें से कुछ अवास्तविक होती है।

5. आर्थिक नीतियों पर पूरी तरह से लागू नहीं - कई बार आर्थिक सिद्धान्त वास्तविक स्थिति से मेल नहीं खाते तब परिणाम गलत हो सकते हैं।

1.6 सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र की विधियां

सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र की दो विधियाँ हैं। निगमन विधि एवं आगमन विधि

1.6.1 निगमन विधि

इस विधि का प्रयोग 19वीं शताब्दी में क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने किया। यह आर्थिक अध्ययन की सबसे पुरानी विधि है। इसमें सामान्य सत्य या सर्वमान्य स्वयंसिद्ध या आधारभूत तथ्यों को आधार मानकर विशिष्ट सत्य या निष्कर्ष निकाले जाते हैं। अतः अध्ययन का क्रम सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है। क्योंकि इस प्रणाली में केवल अनुमान ही लगाये जा सकते हैं इसलिए इसे अनुमान प्रणाली भी कहा जा सकता है। बोल्डिंग इस विधि को प्रबुद्ध प्रयोग रीति कहते हैं। मिल ने इसे निगम्य प्रणाली कहा है जबकि अन्य अर्थशास्त्री इसे अमूर्त एवं विश्लेषणात्मक कहते हैं।

वास्तविक संसार जटिलताओं और उलझनों से भरा है, अतः उसको उसी रूप में (वास्तविक रूप) में अध्ययन करना मुश्किल है। इसलिए हम शुरूआत सरल मान्यताओं से करते है, फिर धीरे-धीरे जटिल मान्यताओं को अध्ययन में शामिल करते हैं जिससे वास्तविकता तक पहुंच सके। यह दो प्रकार की होती है- गणितीय तथा अगणितीय। अगणितीय विधि का प्रयोग क्लासिकल एवं अन्य अर्थशास्त्रियों ने किया। गणितीय विधि का प्रयोग एजवर्थ ने 19वीं शताब्दी में किया। आजकल भी इसका बहुत प्रयोग हो रहा है।

इस विधि के सोपान हैं- (1) समस्या का चुनाव करना (2) मान्यताओं का निर्माण करना जिनके आधार पर समस्या का चुनाव किया जाना है। (3) तार्किक तर्क की प्रक्रिया द्वारा परिकल्पना का निर्माण करना जिससे निष्कर्ष निकाले जाते हैं। (4) परिकल्पना का सत्यापन करना।

निगमन विधि के गुण -

1. यह बौद्धिक प्रयोग विधि है जो वास्तविकता से अधिक निकट है।
2. यह सरल है क्योंकि विश्लेषणात्मक है। यह जटिल समस्या को उसके संघटक भागों में विभाजित कर उसे सरल बना देती है।
3. गणित के प्रयोग से अर्थशास्त्रीय विश्लेषण में यथार्थता तथा स्पष्टता आती है।
4. तथ्यों से निष्कर्ष निकालने के लिए विश्लेषण की यह शक्तिशाली विधि है।
5. इस विधि द्वारा प्राप्त निष्कर्ष सर्वव्यापक तथा अकाट्य होते हैं क्योंकि इसके निष्कर्षो का आधार मानवीय स्वभाव होता है।
6. निष्पक्ष निष्कर्ष होते हैं क्योंकि अनुसंधानकर्ता अपनी इच्छा के अनुसार निष्कर्ष को प्रभावित नहीं कर सकता।

केयर्नस के अनुसार ''यदि निगमन रीति का प्रयोग उचित सीमाओं के भीतर किया जाए तो यह विधि मानव बुद्धि द्वारा की जाने वाली खोज का सबसे प्रभावशाली साधन बन सकती है।''

निगमन प्रणाली के दोष:

1. क्योंकि हम कुछ मान्यताओं के आधार पर तर्क प्रस्तुत करते हैं जिनके परीक्षण का कोई मापदण्ड नहीं है। इसलिए यह अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है परिणामतः इसके द्वारा प्रतिपादित नियम वास्तविकता से दूर है।
2. इससे प्राप्त निष्कर्ष तर्क पर सही हो सकते हैं किन्तु व्यावहारिक जीवन में सही हो ऐसा जरूरी नहीं।
3. जिन मान्यताओं को स्थिर मानकर निगमन विधि से नियम बनाये जाते हैं, वे मान्यतायें स्थिर नहीं रहती बल्कि परिवर्तनशील है।

यह हो सकता है कि इस विधि का अनुसरण करने वाले ''बौद्धिक खिलौने'' बनाने में मस्त हो और बौद्धिक व्यायाम तथा गणितीय विश्लेषण में वास्तविक जगत को भूल ही जाएं।

1.6.2 आगमन विधि- इस विधि में तर्क के माध्यम से विशिष्ट सत्य के आधार पर सामान्य निष्कर्ष तक पहुंचा जा सकता है। तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर होता है। सबसे पहले व्यक्तिगत निरीक्षणों तथा प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट सत्यों का पता लगाया जाता है और उनके आधार पर सामान्य नियम का प्रतिपादन किया जाता है। इस विधि में सांख्यिकीय या इतिहास से सामाजिक तथ्यों को संकलित किया जाता है। घटनाओं का पर्यवेक्षण करके उनसे सम्बन्धित आंकड़े एकत्रित किये जाते हैं और उनके विश्लेषण द्वारा नियम प्रतिपादित किये जाते हैं। इसके दो रूप हैं- (क) प्रायोगिक रीति तथा (ख) सांख्यिकीय रीति प्रायोगिक आगमन रीति का प्रयोग भौतिक विज्ञानों में किया जाता है, जहाँ प्रयोगशालाएं होती हैं और प्रयोग की सुविधायें के साथ प्रयोगकर्ता किसी तथ्य का अपनी इच्छानुसार किसी निश्चित अवस्था में अध्ययन कर सकता है।

अर्थशास्त्र का सामाजिक विज्ञान होने के कारण इसमें मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। अर्थशास्त्री घटनाओं का उसी रूप में अध्ययन करता है, उन्हें बदल नहीं सकता। इसलिए अर्थशास्त्र में सांख्यिकीय रीति का विशेष महत्व है। सामाजिक विज्ञान में तथ्यों का अध्ययन बहुत जटिल है। इसलिए इसमें अनेक व्यक्तियों द्वारा किसी घटना से सम्बन्धित तथ्यों के सम्बन्ध में आँकड़े एकत्रित किये जाते हैं, उनका विश्लेषण किया जाता है और उनके आधार पर नियम प्रतिपादित किये जाते हैं।

अगमन विधि की शुरूआत निगमन विधि के दोषों की प्रतिक्रिया के रूप में जर्मनी के ऐतिहासिक स्कूल द्वारा हुआ। इसका प्रारम्भ रोशर की प्रसिद्ध पुस्तक 'राजनीति अर्थशास्त्र'' 1854 के प्रकाशन से हुआ। इसका समर्थन लिस्ट, नीज, तथा हिल्ड्ब्राण्ड ने किया

आगमन विधि के गुण

1. वास्तविकता के अधिक निकट तथा त्रुटियों की कम सम्भावना। इसके द्वारा प्रतिपादित नियम कल्पना पर नहीं बल्कि आँकड़ों पर आधारित होते हैं, इसलिए ये वास्तविकता के करीब होते हैं।

2. यह विधि प्रावैगिक हैं क्योंकि आर्थिक तथ्य स्थिर नहीं परिवर्तनशील हैं।

3. इस विधि में नियम किसी एक स्थान तथा समय के अन्तर्गत आँकड़ों को एकत्रित करके बनाये जाते हैं, इसलिए वे नियम उन परिस्थितियों में सही उतरते हैं।

4. आगमन विधि से प्राप्त निष्कर्षों की जाँच अनुसंधान, प्रयोग तथा ऐतिहासिक सत्यों के आधार पर की जा सकती है।

यह निगमन रीति की एक पूरक विधि है। इसकी सहायता से निगमन विधि द्वारा प्राप्त निष्कर्षों की जाँच की जा सकती है।

आगमन विधि के दोष

1. आगमन विधि आँकड़ों पर निर्भर करती है और आँकड़े जितने व्यापक होंगे निष्कर्ष उतने ही ठीक होंगे किन्तु अधिक व्यापक आँकड़ों को एकत्र करना अत्यन्त कठिन है।

2. बोल्डिंग के अनुसार ''सांख्यिकीय सूचना केवल हमें ऐसीप्रस्थापनाएं दे सकती हैं जिनकी सत्यता थोड़ी बहुत सम्भव हो, पर वह निश्चित कभी नहीं हो सकती।

3. इसमें समय भी बहुत लगता है और लागत भी बहुत पड़ती है। इसमें प्रशिक्षित एवं विशेषज्ञ अनुसंधानकर्ताओं तथा विश्लेषकों को आँकड़ों को संग्रह करने, वर्गीकरण, विश्लेषण तथा व्याख्या करने की विस्तृत एवं परिश्रमी प्रक्रियाएं करनी पड़ती हैं।

4. सांख्यिकीय तकनीकि एकदम मूर्त नहीं है क्योंकि इसमें जिन परिभाषाओं, स्रोतों तथा विधियों का प्रयोग होता है, वे एक ही समस्या के लिए अनुसंधानकर्ता तक भिन्न-भिन्न होती हैं।

5. ऐसी समस्यायें जो व्यक्तिनिष्ठ हैं जो परस्पर सम्बन्धित हैं जैसे समृद्धि, सुख या कल्याण की माप करना, इस सम्बन्ध में इस विधि से निष्कर्ष नहीं प्राप्त किये जा सकते हैं।

6. इस विधि द्वारा प्राप्त निष्कर्ष अन्वेषक द्वारा उसके मनमुताबिक प्रभावित किये जा सकते हैं। वह अपने मन के अनुसार ऐसे क्षेत्रों का चुना कर सकता है जिससे वही निष्कर्ष प्राप्त हो सके जिसे वह निकालना चाहता है।

1.7 आर्थिक सिद्धान्त में मान्यताओं की प्रकृति और महत्व

प्रकृति- आर्थिक सिद्धान्त कुछ मान्यताओं पर आधारित है जिन्हें तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः-

1. मनोवैज्ञानिक या व्यवहारवादी मान्यताएं- ये मान्यताएं व्यक्तिगत मानव व्यवहार के बारे में है। वे व्यक्तियों के उपभोक्ताओं और उत्पादकों के रूप में विवेकी व्यवहार से संबद्ध है। यद्यपि कुछ व्यक्ति अविवेकी और अनिश्चित ढंग से व्यवहार करते है, तो भी इकट्ठे लेने पर अधिकतर व्यक्ति सामूहिक विवेकिता प्रदर्शित करते हैं।

2. संस्थानिक मान्यताएं - आर्थिक सिद्धान्त में मान्यताएं सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। ये व्यष्टि आर्थिक सिद्धान्तों का आधार है।

3. संरचनात्क मान्यताएं - इन मान्यताओं का सम्बन्ध अर्थव्यवस्था की प्रकति और भौतिक बनावट एवं प्रौद्योगिकी की स्थिति से है। इनका विभिन्न प्रकार के उत्पादन फलनों और वृद्धि सिद्धान्तों में प्रयोग किया जाता है। जैसे अल्पकाल में आर्थिक सिद्धान्त दिये हुए संसाधनों और प्रौद्योगिकी की मान्यताओं पर आधारित हैं।

मान्यताओं का कार्य और महत्व

क्लासिकी और नवक्लासिकी अर्थशास्त्रियों का विश्वास था कि आर्थिक सिद्धान्तों के यथार्थिक होने के लिए वे उन्हें वास्तविक मान्यताओं पर आधारित होना जरूरी है।

फ्रीडमैन आर्थिक सिद्धान्त निर्माण में मान्यताओं को तीन भिन्न यद्यपि सम्बन्धित निश्चित कार्यों की ओर इंगित करता हैः-

(क) एक सिद्धान्त को प्रस्तुत करने का किफायती तरीका है।

(ख) एक परिकल्पना के परोक्ष टेस्ट में उसके निहित अर्थों द्वारा सुविधा प्रदान करना।

(ग) स्थितियों का विशेष रूप से उल्लेख करने का सुविधाजनक माध्यम है, जिससे सिद्धान्त का सत्यापित होना संभावित है।

फ्रीडमैन के अनुसार अयथार्थिक मान्यताएं एक आवश्यक बुराई है। सिद्धान्त निर्माण के लिए मान्यताओं का एक से अधिक सेट होता है जिसके चुनाव में उपर्युक्त बातों का ध्यान रखा जाता है। सैम्युएलसन के अनुसार जितनी अधिक अयथार्थिक मान्यताएं उतना श्रेष्ठ सिद्धान्त। फ्रीडमैन इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वे सभी जो मान्यताओं के ''यर्थाथवाद'' के महत्व को अत्यधिक बल देते हैं, उन्होंने भावी घटनाओं की भविष्यवाणी करने और उनको नियंत्रित करने के आर्थिक सिद्धान्त के वास्तविक उद्देश्य को भुला दिया है।

आलोचना- प्रो0 नेगल के अनुसार फ्रीडमैन आर्थिक सिद्धान्त की केवल भविष्यसूचक शक्ति पर बल देता है बल्कि इसका व्याख्यात्मक कार्य भी है। प्रो0 गोर्डन के अनुसार फ्रीडमैन मान्यताओं की परिचालन प्रमाणिकता की उपेक्षा करता है।

1.8 सारांश

इस इकाई में आपने अर्थशास्त्र की विभिन्न परिभाषाओं के माध्यम से उसके विषय क्षेत्र के बारे में जानकारी प्राप्त की। क्लासिकल अर्थशास्त्री धन पर, नियोक्लासिकल मानव कल्याण पर रॉबिन्स साधनों की दुर्लभता पर, आधुनिक अर्थशास्त्री विकास पर और जे.के. मेहता आवश्यकताविहीनता पर बल देते हुए अपनी परिभाषा देते हैं। आपने जानने की कोशिश को कि अर्थशास्त्र विज्ञान है या कला, जिससे आप इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यह एक विज्ञान है जिसके व्यावहारिक पक्ष अथवा कला पक्ष की अवहेलना नहीं की जा सकती। फिर हमने समझा कि अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान है अथवा आदर्श विज्ञान ''क्या है'' वास्तविक विज्ञान से सम्बन्धित है और आदर्श विज्ञान ''क्या होना चाहिए'' से हमने जाना वास्तविक विज्ञान अर्थशास्त्र का सैद्धान्तिक पहलू है जबकि आदर्श विज्ञान उसका व्यवहारिक पहलू है। फिर हमने सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र की प्रकृति, उपयोग और सीमाओं का अध्ययन किया। फिर आप सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र की निगमन एवं अगमन विधि से अवगत हुए। निगमन में अध्ययन का क्रम सामान्य से विशिष्ट की ओर और आगमन विधि में विशिष्ट से सामान्य की ओर जाता है। अन्त में हमने उन मान्यताओं की प्रकृति, महत्व एवं सीमाओं की चर्चा की जिन पर आर्थिक सिद्धान्त आधारित है।

1.9 शब्दावली

1. दुर्लभता - सीमित मात्रा में उपलब्ध होना।
2. साधनों के आवंटन - साधनों को विभिन्न क्षेत्रों में बांटना
3. आवश्यकताविहीनता - कोई इच्छा न रखना
4. परोक्ष -अप्रत्यक्ष
5. परिणामात्मक - मात्रा की माप
6. प्रचुरता - अधिक मात्रा में उपलब्ध होना
7. तटस्थ - समानभाव
8. मान्यताएं - कुछ बातें पहले से मान कर चलना

9. आदर्शात्मक - क्या होना चाहिए, नीतिगत

1.10 अभ्यास प्रश्न

1- रिक्त स्थान भरो

1. क्या होना चाहिए, इस तथ्य का अध्ययन .... के अन्तर्गत किया जाता है।
2. अर्थशास्त्र की साधनों की .... सम्बन्धी परिभाषा रॉबिन्स ने दी है।
3. एडम स्मिथ द्वारा रचित पुस्तक .... है।
4. आवश्यकताविहीन की परिभाषा .... ने दी है।
5. सामाजिक कल्याण को मुद्रा के मापदण्डों से सम्बन्धित करने वाले अर्थशास्त्री है ....।
6. आर्थिक मानव की कल्पना .... की परिभाषा से जुड़ी है।
7. सुप्रसिद्ध पुस्तक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के लेखक .... हैं।
8................ के अनुसार जितनी अधिक अयथार्थिक मान्यताएं उतना श्रेष्ठ सिद्धान्त।
9................. मान्यताएं उपभोक्ताओं एवं उत्पादनकर्ताओं के विवेकी व्यवहार से सम्बद्ध हैं।
10. आगमन विधि की शुरूआत निगमन विधि के दोषों की प्रतिक्रिया के रूप में जर्मनी के .... स्कूल द्वारा हुई।

2- सत्य/असत्य कथन बताइये-

1. मार्शल ने धन की अपेक्षा मनुष्य को अधिक महत्व दिया।
2. आगमन विधि में अध्ययन का क्रम सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है।
3. अर्थशास्त्र का वास्तविक पहलू क्या है, से सम्बन्धित है।
4. भारतीय दार्शनिक सन्यासी अर्थशास्त्री जे.के. मेहता है।
5. रॉबिन्स की परिभाषा प्रावैगिक है।

उत्तर

1- रिक्त स्थान भरो

1. आदर्शात्मक अर्थशास्त्र 2. दुलर्भता

3. An Enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations

4. जे.के. मेहता ने दी है। 5.पीगू 6. एडम स्मिथ 7. मार्शल 8. सैमुएलसन

9. मनोवैज्ञानिक 10. ऐतिहासिक

2- सत्य/असत्य कथन बताइये-

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आहूजा, एच0एल0 उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त (व्यष्टि परक आर्थिक विश्लेषण) एस चन्द पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

2. झिंगन एम.एस. (2006) व्यष्टि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., दिल्ली।
3. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (व्यष्टि अर्थशास्त्र) शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
4. सेठ एम.एल. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

1.12 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- Dewett K.K. Modern Economic Theory, Shyamlal Charitable Trust, S.Chand and Company Ltd., New Delhi.
- Koutsoyiannis A. Modern Microeconomics, Macmillan Press Ltd.
- Samuelson, P.A., Foundations of Economics Analysis, Harvard University Press.
- Shastri Rahul A., Micreconomic Theory, University Press.
- Singh S.K., Micro Economics, Sahitya Bhawan Publication, Agra.
- Stonier, A.W. and D.C. Hague, A Textbook of Economic Theory, ELBS and Longman.

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रॉबिन्स और मार्शल की परिभाषाओं का आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. ''अर्थशास्त्र कला और विज्ञान दोनों है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं।
3. अर्थशास्त्र की विषय सामग्री की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
4. अर्थशास्त्र के वास्तविक तथा आदर्शवादी दृष्टिकोणों की विवेचना कीजिए।
5. आर्थिक सिद्धान्त की प्रकृति और सीमाओं की विवेचना कीजिए।
6. निगमन और अगमन विधि में भेद कीजिए और दोनों के गुण एवं दोषों की व्याख्या कीजिए।

इकाई-2व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र तथा समष्टिपरक अर्थशास्त्र

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र तथा समष्टिपरक अर्थशास्त्र

2.3.1 व्यष्टि अर्थशास्त्र

2.3.1(a) आर्थिक व्यष्टिभाव के प्रकार

2.3.1(b) व्यष्टि अर्थशास्त्र का महत्व

2.3.1(c) व्यष्टिभावी विश्लेषण की सीमायें

2.3.2 समष्टि अर्थशास्त्र

2.3.2(a) समष्टि अर्थशास्त्र के प्रकार

2.3.2(b) समष्टि अर्थशास्त्र का महत्व

2.3.2(c) समष्टि अर्थशास्त्र की सीमाएं

2.3.3 व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र में सम्बन्ध

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्न

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 सहायक/उपयोगी सामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इसके पहले की इकाई में आर्थिक सिद्धान्त के स्वरूप की विस्तृत चर्चा की गई। अब हम इस खण्ड की द्वितीय इकाई में व्यष्टिपरक (सूक्ष्म) अर्थशास्त्र तथा समष्टिपरक (व्यापक) अर्थशास्त्र का अध्ययन करेंगे। आर्थिक सिद्धान्त की दो प्रमुख शाखाएं हैं व्यष्टि अर्थशास्त्र एवं समष्टि अर्थशास्त्र। दोनों में धन से सम्बन्धित मानवीय व्यवहारों का विश्लेषण किया जाता है। इन शब्दों का प्रयोग सन् 1920 के बाद सर्वप्रथम प्रो0 रेगनर फ्रिश द्वारा किया गया था। इसके बाद अन्य अर्थशास्त्रियों ने भी इसे अपनाया। हर एक अर्थव्यवस्था कई आर्थिक इकाइयों का समूह होती है। अतः अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित किसी भी समस्या को दो तरीकों से देखा जा सकता है - एक तो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के नजरिये से दूसरा अर्थव्यवस्था की अलग-अलग इकाइयों के नजरिये से। व्यष्टि अर्थशास्त्र में विभिन्न इकाईयों जैसे फर्म, उद्योग, व्यक्ति आदि की समस्याओं उदाहरणतया वस्तु के मूल्य निर्धारण की समस्या, फर्म में विवेकीकरण की समस्या, फर्म में मजदूरी निर्धारण की समस्या आदि का अध्ययन किया जाता है। जबकि समष्टि अर्थशास्त्र में सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था से सम्बन्धित समस्याएं जैसे कुल रोजगार की समस्या, कुल आय तथा बचत की समस्या। ''माइक्रो'' शब्द ग्रीक भाषा के माइक्रोस शब्द से बना है जिसका मतलब छोटा होता है और मैक्रो ग्रीक भाषा के मैक्रोस शब्द से बना है जिसका अर्थ है बड़ा। अतः माइक्रो छोटी इकाइयों से सम्बन्धित है और मैक्रा बड़े समूह से। सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रो0 मेहता का दृष्टिकोण उल्लेखनीय है। उनके अनुसार ''समष्टि अर्थशास्त्र सम्पूर्ण निकाय का अर्थशास्त्र है और व्यष्टि अर्थशास्त्र इस निकाय के संघटक अंग का अर्थशास्त्र है।'' यहाँ पर निकाय का तात्पर्य सिस्टम या व्यवस्था से है।

बोल्डिंग के अनुसार ''व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र विशेष फर्मों, परिवारों, वैयक्तिक कीमतों, मजदूरियों, आयों, वैयक्तिक उद्योगों तथा विशिष्ट वस्तुओं का अध्ययन है। जबकि समष्टि भावी अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र का वह भाग है जो कि अर्थव्यवस्था की व्यक्तिगत इकाइयों का अध्ययन न करके समूहों तथा औसतों से सम्बन्ध रखता है, इन समूहों को उपयोगी ढंग से परिभाषित करने का प्रयत्न करता है तथा उनके सम्बन्ध में विवेचन करता है।'' अब व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र और समाष्टि भावी अर्थशास्त्र का विस्तृत अध्ययन अलग-अलग करेंगे। पहले व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र के स्वभाव को समझेंगे फिर समष्टिभावी अर्थशास्त्र के स्वभाव को। इन दोनों के महत्व और इनकी सीमाओं को जानने के बाद हम इनके बीच सम्बन्ध की व्याख्या करेंगे।

2.2 उद्देश्य

1. इस इकाई में हम आर्थिक सिद्धान्त के अध्ययन के दो तरीकों को जानेंगे।

2. व्यष्टि अर्थशास्त्र के स्वभाव, महत्व एवं सीमाओं की समीक्षा करेंगे।

3. समष्टि अर्थशास्त्र के स्वभाव, महत्व एवं सीमाओं की समीक्षा करेंगे।

4. अन्त में हम व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र के सम्बन्ध का विश्लेषण करेंगे।

2.3 व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र तथा समष्टिपरक अर्थशास्त्र

आर्थिक सिद्धान्तों को मुख्यतया दो वर्गों में बांटकर उसका अध्ययन किया जाता है - व्यष्टिभाव (सूक्ष्म) अर्थशास्त्र एवं समष्टिभावी (व्यापक) अर्थशास्त्र। व्यष्टि अर्थशास्त्र में हम अर्थव्यवस्था की विभिन्न इकाईयों को सन्दर्भ के रूप में लेते हैं और समष्टि अर्थशास्त्र में हम सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था यानि कुल या औसत का अध्ययन करते हैं। पहले का सम्बन्ध व्यक्तिगत आर्थिक इकाइयों के अध्ययन से है, जबकि दूसरे का समस्त अर्थव्यवस्था के अध्ययन से।

2.3.1 व्यष्टि अर्थशास्त्र

व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र एक सम्पूर्ण आर्थिक निकाय के विभिन्न संघटक अंगों, व्यक्तिगत इकाइयों तथा व्यक्तियों के छोटे-छोटे समूहों के आर्थिक व्यवहारों का अध्ययन है। किसी भी आर्थिक निकाय का प्रत्येक संघटक अंग चाहे वह व्यक्तिगत इकाई के रूप में व्यक्तिगत उपभोक्ता हो या व्यक्तिगत उत्पादक तथा इन्हीं का छोटा-छोटा समूह हो सभी यह प्रयास करते हैं कि उन्हें अधिकतम सन्तुष्टि या अधिकतम कल्याण या अधिकतम लाभ या अधिकतम उत्पादन की स्थिति प्राप्त हो जाय। हम यह कह सकते हैं कि आर्थिक निकाय का प्रत्येक अंग संस्थिति की स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास करता है। वह विभिन्न इकाइयों का टुकड़ों के रूप में अध्ययन करता है, उनकी अलग-अलग संस्थिति की समस्या पर विचार करता है तथा उनके अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है। बोल्डिंग के अनुसार, ‘‘विशेष फर्मों, विशेष परिवारों, व्यक्तिगत कीमतों, मजदूरी, आय, व्यक्तिगत उद्यमों तथा विशेष वस्तुओं का अध्ययन शामिल है। इसके विभिन्न क्षेत्रों में से कुछ हैं फर्म या उद्योग के सन्तुलन उत्पादन का निर्धारण, एक विशिष्ट प्रकार के श्रम की मजदूरी दर तथा चावल, चाय या कार जैसी किसी विशिष्ट वस्तु की कीमत का निर्धारण।

व्यष्टि अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था का सूक्ष्मतम अध्ययन है। इसमें हम व्यक्तिगत परिवारों, व्यक्तिगत फर्मों एवं व्यक्तिगत उद्योगों के एक दूसरे के साथ परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन करते हैं। इसका सम्बन्ध किसी एक इकाई से होता है, सभी इकाइयों से नहीं। यदि हम यह जानने की कोशिश करें कि अमुक व्यक्ति अपनी सन्तुष्टि को कैसे अधिकतम करता है, अमुक फर्म अपने लाभ को अधिकतम कैसे करेगी अथवा अमुक परिवार अपने आय एवं व्यय में कैसे सन्तुलन स्थापित करेगा तो यह सभी विश्लेषण व्यष्टि अर्थशास्त्र का हिस्सा है।

सीमान्त विश्लेषण के माध्यम से आर्थिक व्यष्टि भावी समस्याओं की जाँच की जाती है। हम यह कह सकते हैं कि सीमान्त विश्लेषण आर्थिक व्यष्टिभाव का अनिवार्य उपकरण है। आर्थिक विचारों में कीन्सियन क्रान्ति के पहले तो इसको बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। यद्यपि कीन्स ने अनेक व्यष्टिभावी निष्कर्षों को चुनौती दी और इसी काल से समाष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण का महत्व बढ़ता ही गया किन्तु अब भी सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक दोनों क्षेत्रों में इसका अधिक महत्व है। व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र लर्नर के अनुसार ''अर्थव्यवस्था को उसी रूप में एक सूक्ष्मदर्शी के द्वारा देखता है, यह देखता है कि किस प्रकार आर्थिक शरीर के असंख्य कोशाणु (सेल) - उपभोक्ता के रूप में व्यक्ति या परिवार तथा उत्पादक के रूप में व्यक्ति तथा फर्म सम्पूर्ण आर्थिक संगठन के क्रियाशीलन में अपनी भूमिका अदा करते हैं। व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र में हम बहुत अधिक बरबादी की समाप्ति या उससे बचाव तथा अधिक से अधिक सम्भावित कुशल ढंग से उत्पादन के संगठित न होने के फलस्वरूप उत्पन्न अकुशलता से सम्बन्धित है। इस प्रकार की कुशलता का अर्थ यह हुआ कि साधनों के प्रयोग के पुनर्संगठन के द्वारा हम किसी एक दुर्लभ वस्तु की अधिक मात्रा बिना दूसरी दुर्लभ वस्तु की मात्रा छोड़े हुए प्राप्त कर सकते हैं अथवा किसी एक वस्तू को दूसरी किसी इच्छित वस्तु से प्रतिस्थापित कर सकते हैं। व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र पूर्ण कुशलता की स्थिति की दशाओं को स्पष्ट करता है तथा उन उपायों को बताता है जिससे उनकी प्राप्ति हो सके। ये दशायें जनसंख्या के जीवन निर्वाह के स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक सिद्ध हो सकती है।'' इससे हमें यह भी ज्ञात होता है कि बाजार यन्त्र किस प्रकार से काम करता है कि असंख्य मात्रा में उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के बावजूद साधनों का अनुकूलतम आवंटन हो जाता है। यह हमें बताता है कि कुल उत्पादन का किस प्रकार बंटवारा होता है? किसलिए कोई वस्तु ज्यादा मात्रा में और दूसरी वस्तु कम मात्रा में उत्पादित की जाती है? इससे हम जान पाते हैं कि एक स्वतंत्र व्यक्तिगत अर्थव्यवस्था किस प्रकार काम करती है। यह बतलाता है कि पूर्ण कुशलता की प्राप्ति की आवश्यक दशाएं क्या हैं तथा उन नीतियों का भी निर्देशन करता है जिससे यह जाना जा सके कि आदर्श स्थिति की प्राप्ति में क्यों कठिनाइयाँ आ रही हैं और किस प्रकार की नीतियों को बनाने की आवश्यकता है जिससे अनुकूलतम स्थिति को प्राप्त किया जा सके। इसमें हम आदर्शवादी पहलू को भी सम्मिलित करते हैं, जिसमें हम यह देखते हैं कि 'क्या होना चाहिए''।

प्रो लर्नर के अनुसार ''इस प्रकार वे न केवल वास्तविक आर्थिक स्थिति का वर्णन करने में हमें सहायता पहुंचाते हैं पर उन नीतियों का भी सुझाव देते हैं जिससे कि अत्यधिक सफलता तथा अधिकतम कुशलता से वांछित परिणाम की प्राप्ति हो सके तथा इस प्रकार नीतियों तथा घटनाओं के परिणाम के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जा सके। इस प्रकार अर्थशास्त्र के वर्णनात्मक, आदर्शवादी तथा भविष्यवाचक पहलू भी है।''

एक आर्थिक निकाय अनेक व्यष्टिभावी इकाइयों (जैसे व्यक्ति तथा परिवार के रूप में उपभोक्ताओं तथा फर्म एवं उद्योगों के रूप में उत्पादकों का समूह है। समष्टि या सम्पूर्ण निकाय का सफल अध्ययन बिना सूक्ष्म व्यष्टिभावी इकाइयों के अध्ययन के नहीं किया जा सकता है। इससे आप को यह तो समझ में आ गया होगा कि यदि आर्थिक नीतियों को बनाते समय हम केवल समष्टिभावी दृष्टिकोण लेकर चलेंगे और संघटक अंगों का अध्ययन नहीं करेंगे तो उन नीतियों के माध्यम से हम आदर्श स्थिति की प्राप्ति नहीं कर पायेंगे। व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण में हम उपभोक्ता के व्यवहार, उत्पादक द्वारा उत्पादन तथा मूल्य के रूप में मजदूरी तथा पूंजी के सम्बन्ध में ब्याज एवं साहसी को मिलने वाले लाभ के निर्धारण की समस्या पर विचार करते हैं, जिनका आर्थिक नीतियों के निर्धारण एवं क्रियान्वयन में बहुत अधिक महत्व है। आर्थिक व्यष्टिभाव के क्षेत्र में निम्नलिखित सिद्धान्त शामिल किये जाते हैं -

1. वस्तु-कीमत-निर्धारण सिद्धान्त - इसे दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-

(i) उपभोक्ता व्यवहार सिद्धान्त

(ii) उत्पादन एवं लागतों का सिद्धान्त

2. साधन कीमत निर्धारण सिद्धान्त - जिसे हम वितरण का सिद्धान्त भी कहते हैं। इसके चार भाग हैं-

(i) मजदूरी का सिद्धान्त

(ii) लगान का सिद्धान्त

(iii) ब्याज का सिद्धान्त

(iv) लाभ का सिद्धान्त

3. आर्थिक कल्याण का सिद्धान्त - इस प्रकार हम व्यष्टि अर्थशास्त्र में निम्नलिखित बातों का अध्ययन करते हैं-

(i) विशेष वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में संसाधनों का आवंटन किस प्रकार होता है।

(ii) इन वस्तुओं तथा सेवाओं का लोगों में कैसे वितरण किया जाता है, और

(iii) वे कितनी कुशलता से वितरित किये जाते हैं।

अतः संसाधनों का आवंटन ही यह निर्धारण करता है कि क्या उत्पादित किया जाए, कैसे उत्पादित किया जाए और कितना उत्पादन किया जाए। यह निर्णय वस्तुओं और सेवाओं की सापेक्षित कीमतों पर निर्भर होता है। कीमत निर्धारण का विश्लेषण और संसाधनों का आवंटन तीन परिस्थितियों में होता हैः-

(i) व्यक्तिगत उपभोक्ताओं और उत्पादकों का सन्तुलन

(ii) एक अकेली मार्केट का सन्तुलन

(iii) सब मार्केटों का एक साथ सन्तुलन

एक उपभोक्ता और उत्पादक जिस वस्तु को वह खरीदता और बेचता है उसकी कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता। एक उपभोक्ता को कोई वस्तुनिर्धारित कीमत पर खरीदना पड़ता है और वह उतनी मात्रा खरीदता है जिससे उसकी तुष्टिपूर्ण अधिकतम हो जाय। एक उत्पादक के लिए आगत और निर्गत की कीमतें दी हुई होती हैं और वह उतनी मात्रा का उत्पादन करता है जिससे उसका लाभ अधिकतम हो जाए। व्यक्तिगत मांग तथा पूर्ति वक्रों से कुल मांग तथा पूर्ति वक्र बनाए जाते हैं। कुल मांग और पूर्ति वक्रों की समानता कीमत तथा मार्केट में खरीदी और बेची गई मात्रा को निर्धारित करती है। यह नियम वस्तु और साधन दोनों मार्केट पर लागू होती है। पूर्ण प्रतियोगी मार्केट की कुछ मान्यताओं को शिथिल करके एकाधिकार, अल्पाधिकार तथा एकाधिकारात्मक मार्केटों तक इस विश्लेषण का विस्तार होता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र आंशिक सन्तुलन विश्लेषण से सम्बन्धित है जो कि एक व्यक्ति, एक फर्म, एक उद्योग या उद्योगों के समूह की सन्तुलन अवस्था का अध्ययन है, फिर भी यह अर्थव्यवस्था में उनके परस्पर सम्बन्धों और परस्पर निर्भरताओं का अध्ययन होता है जो ''सामान्य सन्तुलन विश्लेषण'' का हिस्सा है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तिगत उपभोक्ताओं, फर्मों और उद्योगों से सम्बन्धित वस्तु कीमतों, साधन कीमतों, उनकी मांगों व पूर्तियों एवं लागतों की परस्पर निर्भरताओं का अध्ययन है। अतः इसमें हम उपभोक्ताओं, उत्पादकों और साधन स्वामियों के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन है। सभी कीमतें एक दूसरे के सापेक्ष होती है और किसी एक कीमत में परिवर्तन से हलचल हो जाती है जो वस्तु और साधन मार्केटों दोनों पर प्रभाव डालती है। व्यष्टि अर्थशास्त्र में हम चर्चा करते हैं कि विभिन्न संसाधनों का व्यक्तिगत उपभोक्ताओं एवं उत्पादकों में कितनी कुशलता से वितरण किया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि संसाधनों के वितरण की कुशलता कल्याण अर्थशास्त्र से सम्बन्धित है। उपभोग और उत्पादन दक्षताओं का सम्बन्ध व्यक्तिगत कल्याण से होता है जबकि परिपूर्ण दक्षता सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित है। एक व्यक्तिगत उपभोक्ता का कल्याण अधिकतम होता है जब संसाधनों के किसी भी पुनर्वितरण से वह किसी अन्य व्यक्ति की स्थिति खराब किए बिना बेहतर हो जाए।

इसी तरह जब व्यक्तिगत उत्पादक उत्पादन में दक्षता तब प्राप्त करता है जब किसी एक वस्तु के उत्पादन में संसाधनों के किसी भी पुनर्वितरण से वह किसी अन्य वस्तु के उत्पादन को कम किए बिना इस वस्तु के उत्पादन को बढ़ाने में समर्थ होता है। परिपूर्ण दक्षता को सामाजिक कल्याण या पेरेटो इष्टतमता कहा जाता है जिसकी प्रमुख आवश्यकता है कि किसी भी व्यक्ति की स्थिति खराब किए बिना सारा समाज बेहतर अवस्था में हो। हम कह सकते हैं कि व्यष्टि अर्थशास्त्र कल्याणकारी सिद्धान्त का व्यक्तिगत और सामूहिक दृष्टिकोण से अध्ययन करता है।

2.3.1(a) आर्थिक व्यष्टिभाव के प्रकार

इसे हम तीन भागों में बाँट सकते हैं-

(i) व्यष्टि भावात्मक स्थैतिकी अथवा सूक्ष्म स्थैतिकी

(ii) तुलनात्मक सूक्ष्म स्थैतिकी

(iii) व्यष्टि भावात्मक प्रावैगिकी अथवा सूक्ष्म प्रावैगिकी

व्यष्टिभावात्मक स्थैतिकी अथवा सूक्ष्म स्थैतिकी - इस विधि में हम यह मान लेते हैं कि सन्तुलन की स्थिति एक निश्चित समय-बिन्दु से सम्बन्धित होती है और उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। जैसे कि बाजार में किसी वस्तु की कीमत एक निश्चित समय-बिन्दु पर उसकी माँग-पूर्ति से निर्धारित होती है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि सूक्ष्म स्थैतिकी उस प्रक्रिया पर जरा सा भी ध्यान नहीं डालती जिसकी वजह से माँग एवं पूर्ति में सन्तुलन स्थापित होता है।

तुलनात्मक सूक्ष्म स्थैतिकी - इसमें हम विभिन्न समय बिन्दुओं पर सूक्ष्म मात्राओं के परस्पर सम्बन्धों की सन्तुलन स्थितियों की तुलना करते हैं लेकिन तुलनात्मक सूक्ष्म स्थैतिकी पुराने सन्तुलन एवं नये सन्तुलन के बीच के संक्रमण काल पर कुछ भी प्रकाश नहीं डालती। हम यह कह सकते हैं कि यह प्रणाली एक सन्तुलन से दूसरे सन्तुलन पर छलांग लगाती है किन्तु हमें यह नहीं बतलाती है कि संक्रमण काल में क्या कुछ घटित हुआ। यदि हम मान लें कि मांग एवं पूर्ति के सन्तुलन के कारण किसी वस्तु की कीमत 10 रूपये है और यह गिरकर 4 रूपये हो जाये तो दूसरी सन्तुलन की स्थिति में है। तुलनात्मक सूक्ष्म स्थैतिकी के अन्तर्गत हम दोनों सन्तुलन कीमतों की तुलना तो करेंगे किन्तु यह विधि उस प्रक्रिया पर कुछ भी प्रकाश नहीं डालेगी जिसके माध्यम से नयी सन्तुलन कीमत का निर्धारण हुआ।

व्यष्टिभावात्मक प्रावैगिकी अथवा सूक्ष्म प्रावैगिकी - इस विधि में हम उस प्रक्रिया का विस्तृत अध्ययन करते हैं जिसके माध्यम से हम पुराने सन्तुलन से नवीन सन्तुलन की ओर अग्रसर होते हैं। यह पुराने और नये सन्तुलन के बीच के संक्रमण काल पर पूरा प्रकाश डालती है। उदाहरण- कीमत का निर्धारण मांग एवं पूर्ति के सन्तुलन से होता है। मान लें कि वस्तु की मांग बढ़ जाय इससे असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न होगी जब तक कि नया सन्तुलन किसी नये मांग बिन्दु पर स्थापित हो और नयी कीमत निर्धारित हो जाय। इस विधि के अन्तर्गत उन सभी असन्तुलनों का विस्तृत अध्ययन किया जाता है जो पुराने सन्तुलन में विघ्न पड़ने और नये सन्तुलन के स्थापित होने तक के संक्रमण काल में घटित होते हैं।

2.3.1(b) व्यष्टि अर्थशास्त्र का महत्व

व्याष्टि अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण विधि है जिसके सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों महत्व हैं।

i. **स्वतंत्र अर्थव्यवस्था की कार्य प्रणाली का ज्ञान** - व्यष्टि अर्थशास्त्र एक मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के कार्यकारण की समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। ऐसी अर्थव्यवस्था में आर्थिक प्रणाली का नियोजन और समन्वय करने के लिए कोई भी संस्था नहीं होती। उत्पादन कैसे किया जाय, किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाय, उत्पादन क्यों और किसके लिए किया जाय तथा उत्पादित वस्तुओं का वितरण तथा उपभोग कैसे किया जाय, यह सभी निर्णय स्वयं संचालित प्रक्रिया के आधार पर होते हैं।

ii. **आर्थिक नीतियों के लिए उपकरण प्रदान करना** - व्यष्टि अर्थशास्त्र का उपयोग आर्थिक नीति के निर्धारण में किया जाता है। इसमें व्यक्तिगत एवं विशिष्ट इकाइयों का विश्लेषण ही सरकार की आर्थिक नीतियाँ बनाने का आधार प्रदान करता है। उदाहरण- सार्वजनिक उद्यमों का संचालन कीमत लाभ नीति पर होता है। इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं की कीमतें अर्थव्यवस्था के निजी क्षेत्र में विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों को प्रभावित करती है। सार्वजनिक उद्यम अपने प्रतियोगी निजी उद्यम से अधिक कीमतें नहीं ले सकते हैं।

iii. कीमतों के सापेक्षित ढाँचे का ज्ञान मिलना।

iv. व्यावहारिक अर्थशास्त्र का ज्ञान।

v. संसाधनों की कुशल नियुक्ति में सहायक - व्यष्टि अर्थशास्त्र का सरकार द्वारा प्रयोग संसाधनों की कुशल नियुक्ति और स्थिरता के साथ विकास प्राप्ति के लिए होता है। यह दुर्लभ संसाधनों के कुशल मितव्ययी तरीके से इस्तेमाल बताता है।

vi. व्यवसाय कार्यपालक को सहायता - व्यष्टि अर्थशास्त्र व्यावसायिक को वर्तमान संसाधनों से अधिकतम उत्पादन करने में सहायता प्रदान करता है।

vii. कराधान की समस्याएँ समझने में सहायक - यह जानने में सहायता करता है कि कौन सा कर सामाजिक कल्याण में वृद्धि करता है या फिर उसमें कमी करता है। यह विक्रेताओं और उपभोक्ता में वस्तु कर के करापात के वितरण का भी अध्ययन करता है। इसमें सीमान्त ह्रास नियम तथा लोच के नियम का प्रयोग किया जाता है।

viii. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की समस्याएँ समझने में सहायक - एक दूसरे की वस्तुओं के प्रति मांग की सापेक्षिक लोचें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ को निर्धारित करती हैं।

ix. यह पूर्वकथन के आधार के तौर पर प्रयोग होता है।

x. वास्तविक आर्थिक तत्वों के लिए मॉडलों का निर्माण एवं प्रयोग करने में सहायक है। यह केवल वास्तविक आर्थिक स्थिति का ही वर्णन नहीं करते अपितु नीतियाँ भी सुझाते हैं जो कि बहुत सफलता एवं बहुत दक्षता के साथ ऐच्छित परिणामों को लायेंगी और ऐसी नीतियों एवं अन्य घटनाओं के परिणामों की भी भविष्यवाणी करेंगीं।

2.3.1(c) व्यष्टिभावी विश्लेषण की सीमायें

1. व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था की विभिन्न इकाइयों का व्यष्टि रूप में अलग-अलग अध्ययन है, इससे अर्थव्यवस्था का पूर्ण ज्ञान नहीं मिलता है। यह कोई जरूरी नहीं है कि जो निष्कर्ष व्यक्ति इकाईयों के विश्लेषण से निकाला जाय वह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में भी ठीक हो।

2. व्यष्टिभावी विश्लेषण अन्य बातों के समान रहने की मान्यता तथा पूर्ण रोजगार की कल्पना पर आधारित है पर ये बातें अवास्तविक हैं। परिवर्तनशील संसार में अन्य बातें समान रहने की मान्यता काल्पनिक हैं। इसी प्रकार पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं पायी जाती है।

3. कुछ ऐसी आर्थिक समस्यायें हैं जिनका अध्ययन व्यष्टिभावी विश्लेषण के द्वारा किया ही नहीं जा सकता है जिसे मौद्रिक नीति, वित्तीय नीति, राष्ट्रीय आय का निर्धारण, समग्र राष्ट्रीय आय के विभिन्न वर्गों के बीच वितरण की समस्या आदि।

4. अत्यधिक भाववाची - यह अत्यधिक भाववाची है और वास्तविक जगत का सही-सही विवरण प्रस्तुत करने में असमर्थ रहता है।

2.3.2 समष्टि अर्थशास्त्र (व्यापक अर्थशास्त्र)

समष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत विशाल समूहों या समस्त अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाली औसतों का अध्ययन है जैसे कि कुल आय, कुल रोजगार, कुल विनियोग, कुल बचत, कुल पूर्ति, कुल उपभोग, कुल मांग आदि। यह विभिन्न समूहों के आपसी सम्बन्धों, उनके निर्धारण और उनमें होने वाले उतार चढ़ावों की जाँच करता है। अर्थशास्त्र की इस शाखा में किसी एक इकाई का नहीं, किन्तु सभी इकाइयों के आर्थिक व्यवहार का अध्ययन होता है। अब तो आप समझ ही गये होंगे कि समष्टि अर्थशास्त्र में आर्थिक समूहों का अध्ययन होता है। इस प्रकार यह एक परिवार से नहीं अपितु सभी परिवारों से, एक फर्म से नहीं अपितु अर्थव्यवस्था की सभी फर्मों से, एक उद्योग से नहीं अपितु अर्थव्यवस्था की समूची औद्योगिक संरचना से सम्बन्धित है। सन् 1936 में प्रकाशित लार्ड कीन्स की पुस्तक **"General Theory of Employment, Interest and Money"** आर्थिक समष्टि का श्रेष्ठतम उदाहरण है। सन् 1960 के दशक में कीन्स के अनुयायियों ने मेक्रो-अर्थशास्त्र का विस्तृत विकास किया था। इसमें उन समूहों का अध्ययन किया जाता है जिनका सम्बन्ध समूची अर्थव्यवस्था एवं उसके बड़े-बड़े खण्डों से होता है। यह अर्थव्यवस्था के उपसमूहों का भी अध्ययन करता है।

अर्थशास्त्र की कुछ शाखाएं स्वाभाविक अर्थ में समष्टि भावात्मक ही हैं। जैसे मौद्रिक अर्थशास्त्र क्योंकि मौद्रिक समूहों में इतनी समरूपता पायी जाती है कि उनकी विवेचना हम एक साथ एक ही समय पर कर सकते हैं। अतः मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त और विनिमय समीकरण समष्टि विश्लेषण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

समष्टि अर्थशास्त्र को 'आय और रोजगार का सिद्धान्त' अथवा 'आय विश्लेषण' भी कहते हैं। इसका सम्बन्ध बेरोजगारी, आर्थिक उतार चढ़ाव, मुद्रा स्फीति, अवस्फीति, अस्थिरता, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा आर्थिक विकास की समस्याओं से है। यह रोजगार सृजित करने वाले कारकों एवं बेरोजगारी के कारणों का अध्ययन करता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भुगतान शेष एवं विदेशी सहायता की समस्याओं का अध्ययन भी समष्टि आर्थिक विश्लेषण का हिस्सा है। यह व्यापार चक्रों को प्रभावित करने वाले कारणों का भी अध्ययन करता है। जैसे निवेश का क्या असर कुल उत्पादन, कुल आय तथा कुल रोजगार पर पड़ेगा। इसके अन्तर्गत हम उन कारणों की भी पड़ताल करते हैं जो आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं और कौन से चर अर्थव्यवस्था को विकास के पथ पर ले जाते हैं।

समष्टि अर्थशास्त्र के क्षेत्र

1. आय, उत्पादन तथा रोजगार का सिद्धान्त - इसके दो अंग होते हैं- (a) उपभोग क्रिया का सिद्धान्त (b) निवेश क्रिया का सिद्धान्त। व्यापार चक्र का सिद्धान्त भी आय, उत्पादन एवं रोजगार सिद्धान्त का महत्वपूर्ण भाग है।

2. कीमतों का सिद्धान्त - इसमें स्फीति, अवस्फीति एवं प्रत्यव स्फीति के उपसिद्धान्त को लिया जाता है।

3. आर्थिक विकास का सिद्धान्त - यह विकसित तथा अल्पविकसित देशों में आय, उत्पादन तथा रोजगार की दीर्घकालीन वृद्धि से सम्बन्धित है।

4. वितरण का समष्टि भावात्मक सिद्धान्त - यह कुल राष्ट्रीय आय में मजदूरी, एवं लाभ के अंशों का अध्ययन करता है।

2.3.2(a) समष्टि अर्थशास्त्र के प्रकार- यह भी तीन प्रकार का होता है-

i. समष्टि भावात्मक स्थैतिकी

ii. तुलनात्मक व्यापक स्थैतिकी

iii. समष्टि भावात्मक प्रावैगिकी

समष्टि भावात्मक स्थैतिकी - यह सन्तुलन की अन्तिम स्थिति में व्यापक मात्राओं का विश्लेषण करने की एक महत्वपूर्ण विधि या तकनीक है। यह समूची अर्थव्यस्था का किसी निश्चित समय बिन्दु पर स्थिर चित्र प्रस्तुत करती है किन्तु इसमें इस प्रक्रिया एवं पथ का अध्ययन नहीं होता जिसके माध्यम से अर्थव्यवस्था सन्तुलन की स्थिति में पहॅुचती है।

तुलनात्मक व्यापक स्थैतिकी - कुल उपभोग, कुल निवेश एवं कुल आय किसी भी अर्थव्यवस्था में समय के चलते परिवर्तनशील होती है। अतः अर्थव्यवस्था में विभिन्न सन्तुलन स्तर आते हैं और इन्हीं विभिन्न सन्तुलनों की तुलना तुलनात्मक व्यापक स्थैतिकी में की जाती है। किन्तु यह उस समन्वय प्रक्रिया को नहीं समझाती जिससे एक सन्तुलन से दूसरे सन्तुलन को पहुंचते हैं। यह इस संक्रमण काल में घटित होने वाली घटनाओं की व्याख्या नहीं करती है।

समष्टि भावात्मक प्रावैगिकी - यह विधि जटिल है एवं इसमें उच्च गणित का प्रयोग किया जाता है। इसके अन्तर्गत व्यापक मात्राओं एवं आर्थिक समूहों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप समन्वय क्रियाओं का विस्तृत एवं गहन अध्ययन किया जाता है। यह विधि पुराने सन्तुलन एवं नये सन्तुलन के बीच के संक्रमण काल में घटित होने वाली सभी घटनाओं का पूरा ब्यौरा प्रस्तुत करती है।

2.3.2(b) समष्टि अर्थशास्त्र का महत्व 1.आर्थिक नीति के निर्माण एवं क्रियान्वयन में सहायक - आधुनिक सरकारों विशेषतः अल्पविकसित राष्ट्रों की सरकारों को अनगिनत राष्ट्रीय समस्याओं से अवगत होना पड़ता है जिनके समाधान के लिए सरकारें व्यक्तिगत इकाइयों से नहीं बल्कि समूहों एवं औसतों से व्यवहार करती हैं।

इसी वजह से समुचित सरकारी आर्थिक नीतियों के लिए सही एवं विश्वसनीय आँकड़ों का होना आवश्यक है जो समूहों एवं औसतों के माध्यम से ही एकत्र किये जाते हैं, जैसा आप जानते ही हैं समष्टि अर्थशास्त्र में ही सम्भव है। व्यक्तिगत व्यवहार के आधार पर कोई भी सरकार समस्याओं का हल नहीं कर सकती। इसी कारण जटिल आर्थिक समस्याओं को हल करने में समष्टि आर्थिक अध्ययन के उपयोग का विश्लेषण किया जाता है।

2.समूचे आर्थिक क्षेत्र के अध्ययन में सहायक - अर्थव्यवस्था के कार्यकारण को समझने के लिए समष्टि आर्थिक चरों का अध्ययन अनिवार्य है। अर्थशास्त्र में तथ्यों की भरमार है इसलिए किसी भी विज्ञान की तरह अर्थशास्त्र में भी सही एवं समुचित अध्ययन करने हेतु तथ्यों का समूहीकरण अथवा सामान्यीकरण तथा औसतीकरण करना अनिवार्य है।

3.समष्टि अर्थशास्त्र का महत्व बढ़ जाता है क्योंकि वह बेरोजगारी के कारणों, प्रभावों तथा उपचार का अध्ययन करता है। जैसा कि कीन्स ने बतलाया कि अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी का कारण प्रभावपूर्ण मांग की कमी होना है जिसे कुल निवेश, कुल उत्पादन, कुल आय और कुल उपभोग द्वारा बढ़ाया जा सकता है।

4.1930 की आर्थिक मंदी के उपरान्त यह आवश्यकता महसूस की गई कि राष्ट्रीय आय के आंकड़ों से आर्थिक क्रिया के स्तर का पूर्वानुमान किया जाय तथा अर्थव्यस्था में विभिन्न वर्गों में आय के वितरण को समझा जाय और यह समष्टि अर्थशास्त्र का ही क्षेत्र है।

5.समष्टि अर्थशास्त्र के आधार पर ही एक अर्थव्यवस्था के संसाधनों और क्षमताओं का मूल्यांकन किया जाता है। विभिन्न क्षेत्रों के लिए योजनाएं बनायी जाती हैं जिससे राष्ट्रीय आय, उत्पादन और रोजगार में वृद्धि हो परिणामतः अर्थव्यवस्था में विकास हो।

6.समष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत ही मौद्रिक समस्याओं को समझा जा सकता है एवं उनके निराकरण हेतु उपाय अपनाये जा सकते हैं। जैसे कि मुद्रास्फीति की अवस्था में मुद्रा की मात्रा को अर्थव्यवस्था में कम किया जाता है, विभिन्न मौद्रिक अस्त्रों को अपना कर जैसे बैंक दर, नकद कोष अनुपात, वैधानिक तरलता अनुपात बढ़ाकर एवं सरकारी प्रतिभूतियों को बेचकर।

7.आर्थिक व्यष्टिभाव के अध्ययन में भी समष्टि अर्थशास्त्र सहायक हैं। जैसे उपयोगिता ह्रास नियम (व्यष्टिभाव) का निर्माण जनसमूहों के अनुभवों को ध्यान में रखे बिना नहीं हो सकता था। समस्त अर्थव्यवस्था की औसत लागत स्थितियों के जाने बिना एक विशेष फर्म या उद्योग की लागतों में वृद्धि के कारणों का विश्लेषण नहीं हो सकता।

8.समष्टि अर्थशास्त्र की अध्ययन प्रणाली के माध्यम से व्यापार चक्र को अब बेहतर एवं अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है।

2.3.2(ब) समष्टि अर्थशास्त्र की सीमाएं **1.सामान्यीकरण का खतरा** - समष्टि आर्थिक विश्लेषण में यह समझा जाता है कि कुल आर्थिक व्यवहार व्यक्तिगत क्रियाओं का कुल जोड़ होता है किन्तु यह जरूरी नहीं है कि जो बात व्यक्तियों के लिए सही हो वह पूरी अर्थव्यवस्था के लिए भी सत्य हो। जैसे- यदि कोई एक व्यक्ति बैंक से अपना धन निकाल लेता है जो इसमें कोई बुराई नहीं है लेकिन यदि सभी व्यक्ति एकदम एक साथ रूपया निकालते हैं तो बैंक निश्चित रूप से ध्वस्त हो जायेगा। इस पद्धति का सबसे प्रमुख दोष यह है कि इसमें समूह का तो अध्ययन किया जाता है पर समूह के विभिन्न अवयवों का अध्ययन नहीं किया जाता।

2.समूहों को समरूप मानना - समष्टि आर्थिक प्रणाली का अध्ययन विभिन्न समूहों के आधार पर किया जाता है किन्तु यह इकाइयाँ भिन्न-भिन्न स्वभाव की हों तो उन्हें समूह के रूप में नहीं जोड़ा जा सकता है। समष्टि आर्थिक विश्लेषण में ऐसे समूहों को ही लेना होगा जो समरूप हो अथवा सजातीय हो, ऐसा होने पर ही सही निष्कर्ष निकाला जा सकता है। किन्तु हमेशा ऐसा हो यह आवश्यक नहीं है। यदि हमें अर्थव्यवस्था में सामूहिक उत्पादन तथा औसत मूल्य के आधार पर संस्थिति मूल्य ज्ञात करना हो तो हम कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं प्राप्त कर सकते क्योंकि मांग रेखा के स्थान पर मांग क्षेत्र तथा पूर्ति रेखा के स्थान पर पूर्ति क्षेत्र प्राप्त होंगे और दोनों के कटान बिन्दु पर कोई संस्थिति बिन्दु नहीं प्राप्त होगा बल्कि एक सन्तुलन क्षेत्र प्राप्त होगा। संस्थिति अनिश्चित होगी।

3.सामूहिक चरों का महत्वपूर्ण होना आवश्यक नहीं - यह आवश्यक नहीं है कि कोई सामूहिक प्रवृत्ति अर्थव्यवस्था के सभी खण्डों को समान रूप से प्रभावित करें। जैसे- एक देश की राष्ट्रीय आय सब व्यक्तिगत आयों का जोड़ है। किन्तु राष्ट्रीय आय में वृद्धि का मतलब यह नहीं है कि सभी की व्यक्तिगत आय बढ़ गई हो। हो सकता है कि समाज के कुछ धनी वर्ग के व्यक्तियों की आय में वृद्धि हुई हो जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई हो। अतः ऐसी वृद्धि समाज के लिए महत्व नहीं रखती।

4.मापने में कठिनाई - आर्थिक समूहों को मापने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सांख्यिकीय प्राविधियों में हुए सुधारों के बावजूद आर्थिक समूहों एवं औसतों का सही एवं विश्वसनीय माप सम्भव नहीं हो सका है।

इन सीमाओं के बावजूद भी समष्टि आर्थिक विश्लेषण आधुनिक समय में अनेक आर्थिक नीतियों को बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है। अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली की व्याख्या व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र के विश्लेषण में सम्भव नहीं है।

2.3.3 व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र में सम्बन्धव्यष्टिभावी तथा समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण की दो अलग-अलग विधियाँ हैं पर ये दोनों परस्पर सम्बन्धित है। ये दोनों एक दूसरे की विरोधी नहीं किन्तु एक दूसरे के पूरक हैं। अनेक समस्यायें ऐसी हैं जो समष्टिभावी अर्थशास्त्र के क्षेत्र में आती हैं पर उनके विश्लेषण में व्यष्टिभावी विश्लेषण का सहारा लिया जाता है। इसी तरह अनेक समस्याओं का अध्ययन व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र का विषय है किन्तु उसकी व्याख्या में समष्टिभावी विश्लेषण पर भी ध्यान देना पड़ता है। उदाहरण- यदि किसी फर्म में मजदूरों को दी जाने वाली मजदूरी का अध्ययन करना है (व्यष्टिभावी) तो हम पायेंगे कि एक फर्म में निर्धारित मजदूरी, उस उद्योग की अन्य फर्मों द्वारा निर्धारित मजदूरी द्वारा प्रभावित होगी और उस उद्योग द्वारा निर्धारित मजदूरी अर्थव्यवस्था के अन्य उद्योगों द्वारा निर्धारित मजदूरी द्वारा प्रभावित होगी। इस तरह आप समझ ही गये होंगे कि एक फर्म में दी जाने वाली मजदूरी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में मजदूरों की मांग पर निर्भर करेगी। अतः व्यष्टिभाव में समष्टिभाव की अनिवार्यता सिद्ध हो गई।

अर्थव्यवस्था का निर्माण उसमें काम करने वाले व्यक्तियों, फर्मों तथा उद्योगों से होता है। अतः यदि हम सम्पूर्ण समाज का अध्ययन करना चाहते हैं तो हमें उस समाज के विभिन्न अंगों का अध्ययन तथा विश्लेषण करना होगा। उदाहरण राष्ट्रीय आय का अनुमान करने के लिए हमें व्यक्तियों, फर्मों आदि के कार्यों का अध्ययन करना होगा।

इन विधियों में कुछ मौलिक अन्तर भी हैं इसलिए इन्हें प्रयोग में लाते समय कुछ सावधानी बरतनी चाहिए।

1. व्यष्टि शब्द ग्रीक शब्द '''**Micro**'' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है छोटा अतः यह व्यक्तियों और व्यक्तियों के छोटे गुरपों का अध्ययन है। समष्टि शब्द भी एक ग्रीक शब्द ''**Macros**'' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है बड़ा इसलिए यह समूहों से सम्बन्धित है जैसे राष्ट्रीय आय, सामान्य कीमत स्तर, राष्ट्रीय उत्पादन।

2. व्यष्टि अर्थशास्त्र का आधार कीमत तन्त्र है जो मांग और पूर्ति की शक्तियों की सहायता से कार्य करता है। समष्टि अर्थशास्त्र का आधार राष्ट्रीय आय, उत्पादन, रोजगार और सामान्य कीमत स्तर है जो कुल मांग और कुल पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है।

3. व्यष्टि अर्थशास्त्र में व्यक्ति और व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है, जबकि समष्टि अर्थशास्त्र में सम्पूर्ण समाज और उसके व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

4. व्यष्टि अर्थशास्त्र आंशिक सन्तुलन विश्लेषक पर आधारित है जो एक व्यक्ति, एक फर्म, एक उद्योग और एक साधन की सन्तुलन शर्तों की व्याख्या करने में सहायक होता है। दूसरी तरफ समष्टि अर्थशास्त्र सामान्य सन्तुलन विश्लेषण पर आधारित है जो आर्थिक प्रणाली के क्रियाकलापों को समझने के लिए अनेक आर्थिक चरों और उनके परस्पर सम्बन्धों और परस्पर निर्भरताओं का विस्तृत अध्ययन है।

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप ये समझ गये होंगे कि आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण दो तरीकों से हो सकता है पहला व्यष्टिभाव एवं दूसरा समष्टिभाव से। व्यष्टिभाव का सम्बन्ध व्यक्तिगत आर्थिक इकाइयों के अध्ययन से है, जबकि समष्टिभाव का समस्त अर्थव्यवस्था से हैं। आर्थिक विचारों में कीन्सियन क्रान्ति के पहले व्यष्टि अर्थशास्त्र को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था और अब भी सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों क्षेत्र में इसका महत्व बरकरार है। 1930 की महामन्दी के उपरान्त कीन्स ने समष्टि अर्थशास्त्र की नींव डाली जिसे उनके अनुयायियों ने और मजबूत और विस्तृत किया। व्यष्टिभाव एवं समष्टिभाव आर्थिक विश्लेषण एक दूसरे के विरोधी नहीं अपितु पूरक हैं। अनेके समस्याएं ऐसी हैं जो समष्टि भाव अर्थशास्त्र के क्षेत्र में आती हैं किन्तु उनके विश्लेषण में व्यष्टिभावी विश्लेषण का सहारा लिया जाता है। इसी तरह अनेक समस्याओं का अध्ययन व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र का विषय है किन्तु उनकी व्याख्या में समष्टिभावी विश्लेषण के अध्ययन की आवश्यकता है। साथ ही इन विधियों में कुछ मौलिक अन्तर भी है जो इकाई में बताये गये हैं। इसलिए इन्हें प्रयोग में लाते समय कुछ सावधानी बरतनी चाहिए।

2.5 शब्दावली

1.निकाय - व्यवस्था

2.स्थैतिकी - स्थिरता की वह स्थिति जहाँ कोई गति न हो।

3.प्रावैगिकी - परिवर्तन की प्रक्रिया का विश्लेषण

4.तुलनात्मक स्थैतिकी - विश्लेषण की विधि जिसमें विभिन्न सन्तुलन अवस्थाओं की तुलना की जाती है।

5.संस्थिति या सन्तुलन - समान तुलना की वह स्थिति जिसमें विरोधी शक्तियाँ या प्रवृत्तियाँ एक दूसरे को निष्प्रभाव कर देती है।

6.उपयोगिता - किसी वस्तु या सेवा की आवश्यकता पूर्ति की शक्ति को व्यक्त करता है।

7.सीमान्त उपयोगिता - वस्तु की एक इकाई के अतिरिक्त उपभोग से कुल उपयोगिता में जो वृद्धि होती है।

8.सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम - जैसे-जैसे वस्तु का लगातार अधिक उपयोग किया जाता है वैसे-वैसे उसकी बाद की इकाइयों के लिए तीव्रता घटती जाती है।

9.आंशिक सन्तुलन - यह एक व्यक्ति या फर्म या उद्योगों के एक समूह के सन्तुलन की स्थिति का अध्ययन करता है।

10.सामान्य सन्तुलन - यह आर्थिक परिवर्तियों, उनके परस्पर सम्बन्धों और निर्भरताओं का विस्तृत अध्ययन है जिससे आर्थिक व्यवस्था के पूर्ण रूप में कार्यप्रणाली को समझा जा सके।

2.6 अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरो

1. व्यष्टि शब्द का अर्थ है ....।

2. व्यष्टि अर्थशास्त्र एवं समष्टि अर्थशास्त्र का 1920 में सर्वप्रथम प्रयोग ....ने किया।

3.कराधान की समस्या समझने में .... अर्थशास्त्र सहायक है।

4.लगान का सिद्धान्त समझने में .... अर्थशास्त्र सहायक है।

5.**General Theory of Employment, Interest and Money** के लेखक ....हैं।

6. मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त और विनिमय समीकरण .... विश्लेषण के उत्कृष्ट उदाहरण है।

7. व्यष्टि अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था का .... अध्ययन है।

8.समष्टि अर्थशास्त्र का दोष है कि यह समूहों को .... मानता है।

9.कीन्स के अनुसार बेरोजगारी का प्रमुख कारण .... की कमी है।

10.......................... अत्यधिक भाववाची है।

(1) छोटा (2) प्रो0 रेगनर फ्रिश (3) समष्टि (4) व्यष्टि (5) कीन्स (6) समष्टि

(7) सूक्ष्मतम (8) समरूप (9) प्रभावपूर्ण मांग (10) व्यष्टि अर्थशास्त्र

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. झिंगन एम.एस. (2006) व्यष्टि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., दिल्ली।
2. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (व्यष्टि अर्थशास्त्र) शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद

3. सेठ एम.एल. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

2.8 सहायक/उपयोगी सामग्री

Dewett K.K. Modern Economic Theory, Shyamlal Charitable Trust, S.Chand and Company Ltd., New Delhi.

Koutsoyiannis A. Modern Microeconomics, Macmillan Press Ltd.

Samuelson, P.A., Foundations of Economics Analysis, Harvard University Press.

Shastri Rahul A., Micreconomic Theory, University Press.

Singh S.K., Micro Economics, Sahitya Bhawan Publication, Agra.

Stonier, A.W. and D.C. Hague, A Textbook of Economic Theory, ELBS and Longman.

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्यष्टि अर्थशास्त्र क्या है? इसके विषय क्षेत्र और महत्व की विवेचना कीजिए?
2. समष्टि अर्थशास्त्र क्या है? समष्टि आर्थिक विश्लेषण के महत्व तथा सीमाओं की व्याख्या कीजिए?
3. व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्र में सम्बन्ध बताइये?

इकाई-3आर्थिक स्थैतिकी, प्रावैगिकी तथा सामान्य सन्तुलन विश्लेषण

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 आर्थिक स्थैतिकी

- 3.3.1 तुलनात्मक स्थैतिकी
- 3.3.2 आर्थिक स्थैतिकी का महत्व
- 3.3.3 आर्थिक स्थैतिकी के दोष

3.4 आर्थिक प्रावैगिकी

- 3.4.1 प्रावैगिक अर्थशास्त्र की समस्याएं
- 3.4.2 प्रावैगिक विश्लेषण का महत्व
- 3.4.3 आर्थिक प्रावैगिकी की सीमाएं

3.5 सामान्य सन्तुलन

- 3.5.1 सन्तुलन के प्रकार
- 3.5.2 समान्य सन्तुलन के प्रकार
- 3.5.3 सामान्य सन्तुलन का महत्व
- 3.5.4 सामान्य सन्तुलन विश्लेषण की सीमाएं

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 अभ्यास प्रश्न

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.10 सहायक/उपयोगी सामग्री

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में आपने व्यष्टिपरक विश्लेषण एवं समष्टिपरक विश्लेषण के बारे में विस्तृत रूप में जानकारी प्राप्त की। इस इकाई में हम आर्थिक सिद्धान्त के अध्ययन विधि से सम्बन्धित ''स्थैतिकी'' एवं ''प्रावैगिकी'' धारणाओं की चर्चा करेंगे और इसके उपरान्त सामान्य सन्तुलन विश्लेषण की अवधारणा का अध्ययन करेंगे।

आधुनिक आर्थिक सिद्धान्तों के समझने के लिए स्थैतिकी एवं प्रावैगिकी का अन्तर बहुत ही महत्वपूर्ण है। दोनों शब्दों में स्पष्ट और वैज्ञानिक अन्तर सर्वप्रथम 1928 में रैगनर फ्रिश ने किया। आर्थिक स्थैतिकी (स्थैतिकी अर्थशास्त्र) तथा आर्थिक प्रावैगिकी (प्रावैगिक अर्थशास्त्र) का प्रयोग व्यष्टिपरक तथा समष्टि परक दोनों ही क्षेत्रों में किया जा सकता है। प्रो0 जे0आर0 हिक्स कहते हैं कि ''आर्थिक सिद्धान्तों के उन भागों को स्थैतिकी कहा जाता है जिनमें हम तिथि निर्धारण का ध्यान नहीं रखते हैं और प्रावैगिकी इन भागों को कहते हैं जिनमें प्रत्येक इकाई के सम्बन्ध में तिथि निर्धारण आवश्यक है।'' प्रावैगिक विश्लेषण ''परिवर्तन की दर'' या ''वृद्धि की दर'' से सम्बन्धित है। यदि किसी माडल के सभी चर एक समयावधि से ही सम्बन्धित हों और जिनके तिथिकरण की कोई समस्या न हो, तो इन चरों के बीच सम्बन्ध स्थैतिक होगा पर यदि माडल के चर विभिन्न समयाविधियों से सम्बन्धित हों और इनका तिथिकरण हो तो इनके बीच सम्बन्ध तथा विश्लेषण प्रावैगिक होगा।

अन्त में हम सामान्य सन्तुलन का अध्ययन करेंगे जो अर्थव्यवथा के समस्त भागों के परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त है। किसी अर्थव्यवस्था में सामान्य सन्तुलन उस समय होगा जब सब उपभोक्ता, सब फर्में, सब उद्योग और सब साधन सेवाएं एक साथ सन्तुलन में हों और वस्तु तथा साधन कीमतों के माध्यम से आपस में जुड़ी हो।

3.2 उद्देश्य

1.इस इकाई में आर्थिक सिद्धान्त के अध्ययन में दो विधियों - स्थैतिकी एवं प्रावैगिकी के बारे में जानेंगे।

2.स्थैतिक आर्थिक विश्लेषण के महत्व और उसकी सीमाओं को समझेंगे।

3.प्रावैगिक आर्थिक विश्लेषण की समस्याओं, महत्व और दोषों को जानेंगे।

4.अन्त में सामान्य सन्तुलन के लाभ और दोषों की भी चर्चा करेंगे।

3.3 आर्थिक स्थैतिकी

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रवैगिक विधि की तुलना में स्थैतिक विधि अधिक पुरानी है। मार्शल के अनुसार ''अर्थशास्त्री अन्वेषण करते समय उन विक्षोभात्मक तत्वों को पृथक कर देता है जो उसके लिए असुविधाजनक होते हैं। ऐसे तत्वों को वह **ceteries paribus** (अन्य वस्तुएँ यथावत रहें) वाक्यांश में जोड़ देते हैं।'' इस विधि में आर्थिक समस्या से सम्बन्धित सभी संगत तत्वों का विश्लेषण बिना समयान्तर एक ही समय पर किया जाता है। हम कह सकते हैं कि आर्थिक स्थैतिकी समय तत्व से स्वतन्त्र आर्थिक घटनाओं की विवेचना करती है। आर्थिक स्थैतिकी की विधि दो कारणों से बहुत महत्वपूर्ण है - (1) परम्परांगत अर्थशास्त्र का एक बहुत बड़ा भाग इसकी सहायता से निर्मित किया गया है। (2) आर्थिक स्थैतिकी को समझे बिना हम आर्थिक प्रावैगिकी की धारणा को ग्रहण नहीं कर सकते।

आर्थिक स्थैतिकी दो प्रासंगिक चल राशियों के स्थैतिक सम्बन्ध का अध्ययन करते हैं।

''**Econoimic statics referes to that type of analysis where we establish the functional relationship between two variables whose values relate to the same point of time or to the same period of time." Statics** शब्द ग्रीक भाषा के **statike** शब्द से बना है जिसका अर्थ है स्थिर करना। भौतिकी में इसका अर्थ है स्थिरता की वह स्थिति जहाँ किसी प्रकार की गति न हो। स्थैतिक अवस्था में न तो अतीत होता है और न ही भविष्य। इसी वजह से इसमें अनिश्चितता का तत्व बिल्कुल नहीं होता। कुज़नेट्स के मतानुसार ''यह मान लेने पर कि निरपेक्ष अथवा सापेक्ष तौर से शामिल आर्थिक मात्राओं में समरूपता और स्थिरता होती है, स्थैतिक अर्थशास्त्र सम्बन्धों और प्रक्रियाओं पर विचार करता है।'' आपको अब विदित हो गया होगा कि स्थैतिक विश्लेषण कुछ निश्चित चरों के बीच एक निश्चित समयावधि में अन्य निर्धारक चरों को स्थिर मानते हुए फलनात्मक सम्बन्ध में अध्ययन है। स्थिर स्थितियों का आशय ऐसी स्थितियों से है जहाँ मुख्य या आधारभूत बातों में कोई परिवर्तन नहीं होता। इसमें भूतकाल एवं वर्तमान के मध्य सम्बन्ध पर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं होती। जिसके परिणामस्वरूप परिवर्तन की अनुपस्थिति की वजह से वर्तमान से सम्बन्धित तथ्य तथा विश्लेषण किसी भी अन्य समय पर लागू किये जा सकेंगे।

अब तक के विश्लेषण से आप समझ चुके होंगे कि-

1. स्थैतिक विश्लेषण में चूंकि हम दिये निश्चित दरों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध का अध्ययन एक समय बिन्दु पर करते हैं इसलिए उसको निर्धारित करने वाले अन्य कारकों को हम स्थिर मान लेते हैं।

2. क्योंकि स्थैतिक विश्लेषण में हम आर्थिक निकाय का अध्ययन एक समय बिन्दु पर करते हैं, समायान्तर में नहीं, इसलिए अर्थव्यवस्था ने किस प्रकार एक संस्थित स्थिति को छोड़कर दूसरी संस्थिति को प्राप्त किया है, इसका अध्ययन हम स्थैतिक विश्लेषण में नहीं करते हैं।

अब हम स्थैतिक विश्लेषण की व्याख्या आर्थिक चरों के फलनात्मक सम्बन्ध के रूप में करेंगे। यदि हम फलनात्मक सम्बन्धों को उन चरों के मध्य स्थापित करें जिनमें मूल्यों का सम्बन्ध एक ही समयावधि से जुड़ा हो तो यह विश्लेषण स्थैतिक कहा जायेगा। जैसे मांग के नियम के अन्तर्गत ''अन्य बातें समान रहने पर किसी समय में वस्तु की मांग मात्रा में कीमत परिवर्तन की विपरीत दिशा में परिवर्तन होता है।'' यहाँ पर किसी वस्तु की एक समय विशेष मांग उस वस्तु की उसी समय की कीमत पर निर्भर करता है। इसे स्थैतिक सम्बन्ध कहा जायेगा।

गणितीय रूप में ऐसे निम्नलिखित रूप में लिखा जा सकता है-

$D_t = f(P_t)$ (i)

यहाँ D_t - एक विशेष समय पर एक वस्तु की मांग को प्रदर्शित करता है।

P_t = उसी समय विशेष पर उसी वस्तु की कीमत को व्यक्त करता है।

f = फलनात्मक सम्बन्ध बताता है।

व्यष्टि स्थैतिकी - पूर्ण प्रतियोगिता में किसी समय बिन्दु पर संस्थिति का निर्धारण उस समय बिन्दु पर मांग तथा पूर्ति के द्वारा होता है अर्थात किसी समय बिन्दु पर संस्थिति मूल्य जिसमें $P_t=D_t=S_t$ जिसमें P_t=t अवधि में मूल्य D_t=t अवधि में मांग S_t=t अवधि में पूर्ति

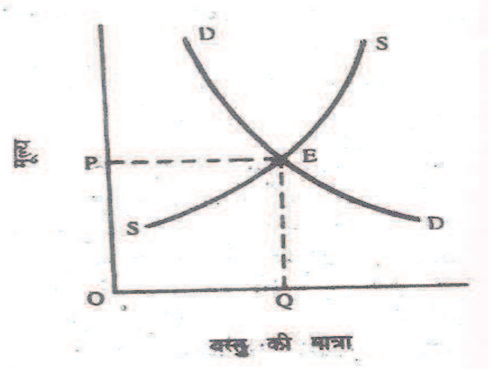

चित्र 3.1

रेखाचित्र 3.1 में (DD) माँग वक्र (SS) पूर्ति वक्र है जोE बिन्दु पर बराबर है। अतः संस्थिति मूल्य OP होगा। मूल्य निर्धारण को यह स्थैतिक विश्लेषण है क्योंकि इससे जुड़े, सभी चर-मांग, पूर्ति तथा मूल्य एक ही समय बिन्दु से सम्बन्धित हैं और यह मान लिया जाता है कि अन्य निर्धारक तत्व जैसे उपभोक्ता की आय, रूचि, फैशन तथा उत्पादन की दशायें अपरिवर्तित हैं।

समष्टि स्थैतिकी

समष्टि स्थैतिकी विश्लेषण अर्थव्यवस्था की स्थैतिक सन्तुलन अवस्था की व्याख्या करता है। प्रो0 कुरीहारा के अनुसार ''यदि उद्देश्य समस्त अर्थव्यस्था की स्थिर तस्वीर दिखाना हो तो समष्टि स्थैतिकी तरीका सही तकनीक है क्योंकि यह तकनीक सन्तुलन की अन्तिम अवस्था में निहित समायोजन की प्रक्रिया के निर्देश के बिना समष्टि चरों में सम्बन्धों की खोज का है।''

इस प्रकार के सन्तुलन की अन्तिम अवस्था को इस समीकरण से दिखाया जा सकता है

$Y = C+I$

यहाँ $Y =$ कुल आय

$C =$ कुल उपभोग व्यय

$I =$ कुल निवेश व्यय

इसमें बिना किसी समायोजन प्रक्रिया के एक कालरहित समानता समीकरण को दिखाया गया है।

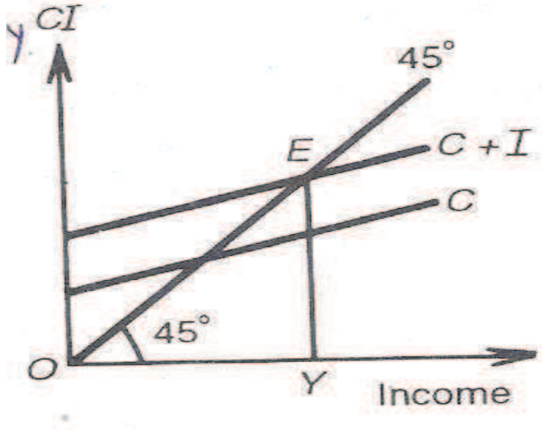

चित्र 3.2

कीन्स के स्थैतिक माडल के अनुसार राष्ट्रीय आय का स्तर उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहाँ कुल पूर्ति फलन कुल माँग फलन को काटता है। रेखाचित्र-3.2 में 45^0 रेखा कुल पूर्ति फलन बताती है और CI रेखा कुल माँग फलन को, 45^0 रेखा और CI वक्र प्रभावी माँग के बिन्दु E पर काटते हैं और आय का OY स्तर पर निर्धारित होता है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सेम्युलसन व्यक्त करते हैं कि - स्थैतिकी का अभिप्राय निर्धारित नियमों के ढाँचे से हैं, जो आर्थिक व्यवस्था के व्यवहार का निर्धारण करते हैं। वक्रों के जोड़े के परस्पर काटने से स्थापित सन्तुलन स्थैतिक होगा। यह समय रहित होता है और इसमें प्रक्रिया की अवधि के विषय में कुछ नहीं कहा गया है किन्तु यह किसी भी समयावधि में सत्य सिद्ध होगा।

3.3.1 तुलनात्मक स्थैतिकी

तुलनात्मक स्थैतिकी में प्रारम्भिक सन्तुलन अवस्था की तुलना अन्तिम सन्तुलन की अवस्था से की जाती है न कि उस समस्त पथ का विश्लेषण किया जाता है जो कोई व्यवस्था एक सन्तुलन स्थिति से चलकर दूसरी स्थिति को प्राप्त करती है। तुलनात्मक स्थैतिकी प्रावैगिकी विधि से भिन्न है। तुलनात्मक स्थैतिकी में भी हम समूची उद्विकासी प्रक्रिया का अध्ययन करते हैं, लेकिन यह अध्ययन एक साथ एक ही समय पर नहीं होता। इसमें हम उद्विकासी प्रक्रिया का अध्ययन विभिन्न सन्तुलन मालाओं के रूप में किया जाता है और सन्तुलन की नयी स्थिति की तुलना उसकी पुरानी स्थिति से करते हैं। यह विधि संक्रमण अवधि में होने वाली सभी घटनाओं की उपेक्षा करती है। इसका सम्बन्ध केवल सन्तुलन की अन्तिम स्थिति से होता है। संक्रमण अवधि में क्या कुछ होता है, इससे तुलनात्मक स्थैतिकी का तनिक भी सम्बन्ध नहीं है। डेविड रिकार्डों तुलनात्मक स्थैतिकी के महान समर्थक थे। वह केवल सन्तुलन की अन्तिम स्थिति की ही विवेचना करते थे। उनका विचार था कि नव-स्थापित सन्तुलन स्थिति संक्रमणकालीन घटनाओं से जरा भी प्रभावित नहीं होती। इसलिए ऐसी घटनाओं की उपेक्षा की जा सकती है। उदाहरण- मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त मुद्रा पूर्ति के परिवर्तनों के फलस्वरूप कीमत स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना करता है। इससे अन्य वस्तुओं के यथास्थिर रहने पर मुद्रापूर्ति में होने वाला प्रत्येक परिवर्तन कीमत स्तर में आनुपातिक परिवर्तन कर देता है। यदि मुद्रा पूर्ति को दुगुना कर दिया जाय तो अन्य वस्तुएं यथास्थिर रहने पर कीमत स्तर भी दुगुना हो जायेगा। संक्रमण काल में कीमत स्तर कैसे व्यवहार करता है इससे कुछ भी सरोकार नहीं होता। इस विधि की सहायता से हम प्रतियोगिता एवं एकाधिकारी सिद्धान्तों से अनेक

भविष्यवाणियाँ व्युत्पादित कर सकते हैं। अतीत काल में आर्थिक प्रणाली के औपचारिक विश्लेषण के लिए इसका व्यापक पैमाने पर प्रयोग किया जाता था। विश्लेषणकर्ता के लिए यह अध्ययन की प्रमुख प्रणाली है जो गणितशास्त्र से परिचित नहीं है।

मार्शल की कीमत निर्धारण प्रक्रिया तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण पर आधारित है, जहाँ दो सन्तुलन स्थितियों की तुलना की गई है। चित्र 3.3 के अनुसार (D) माँग वक्र (S) पूर्ति को E बिन्दु पर काटता है, तो X की OQ मात्रा OA कीमत पर खरीदी और बेची जाती है। माँग वक्र D का ऊपर की ओर D_1 पर सरकने से नया सन्तुलन E_1 बिन्दु पर स्थापित होता है, जहाँ OA_1 कीमत पर X की OQ_1 मात्रा खरीदी और बेची जाती है। इसके अन्तर्गत उस प्रक्रिया का अध्ययन नहीं किया जाता जिससे नीचे से ऊपर सन्तुलन स्थिति पर परिवर्तन हुआ है। हम सिर्फ यह कहते हैं कि ऊँची कीमत OA_1 पर बिन्दु E की तुलना में बिन्दु E_1 पर X की अधिक मात्रा मार्केट में बेची और खरीदी जाती है।

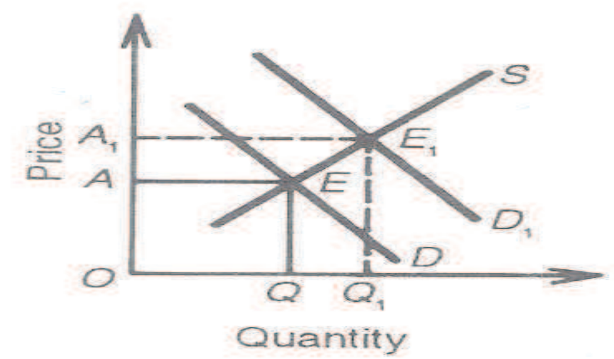

चित्र 3.3

3.3.2 आर्थिक स्थैतिकी का महत्व

1. आर्थिक स्थैतिकी आर्थिक समस्याओं के सरलीकरण का मुख्य माध्यम है। इस प्रक्रिया से अन्य वस्तुओं को यथास्थिर मानकर हम देश की जटिल आर्थिक प्रणाली का अध्ययन कर सकते हैं। यह जटिल से जटिल समस्याओं को भी सरल बना देती है। हम इसके अन्तर्गत अध्ययन करते हैं कि एक व्यक्ति अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए अपनी सीमित आय को

विभिन्न वस्तुओं में कैसे वितरित किया जाय, एक उत्पादक दिए हुए उत्पादक स्रोतों को इष्टतम ढंग से मिलाकर कैसे अधिकतम लाभ प्राप्त करता है, वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें कैसे निर्धारित होती है और राष्ट्रीय आय का वितरण कैसे होता है। इन जटिल समस्याओं को हल करने में स्थैतिकी विश्लेषण बहुत महत्वपूर्ण है।

2. स्थैतिक विश्लेषण अत्यन्त सरल है क्योंकि इसके लिए उच्च गणितीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती जबकि प्रावैगिक विश्लेषण में उच्च गणितीय ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है।

3.अर्थशास्त्र की बहुत विषय सामग्री स्थैतिकी के अन्तर्गत आती है। जैसे- स्वतंत्र व्यापार, मूल्य व उत्पादन निर्धारण के सिद्धान्त, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, जॉन रॉबिन्सन का Economics of Imperfect Competition चैम्बरलिन का Monopolistic Competition और हिक्स का Value and Capital.

4. कीन्स के सिद्धान्त - धनात्मक बचत के सिद्धान्त को छोड़कर कीन्स विश्लेषण के सभी चर स्थैतिक प्रकृति के हैं। जैसे अनैच्छिक बेरोजगारी, तरलता अधिमान, पूँजी की सीमान्त उत्पादकता और सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति।

5. परिवर्तन के नियमों को समझने के लिए हम स्थैतिकी के नियमों का अध्ययन करते हैं। परिवर्तनशील अर्थव्यवस्था का वैज्ञानिक अध्ययन अत्यन्त कठिन होता है अतः इसके लिए स्थैतिक विश्लेषण की सहायता लेनी पड़ती है।

3.3.3 आर्थिक स्थैतिकी के दोष

1. स्थैतिक स्थिति एक काल्पनिक स्थिति है। व्यावहारिक जीवन में परिवर्तन अथवा प्रवैगिकता की ही स्थिति देखने को मिलती है, गतिहीनता की नहीं। प्रो हिक्स ने इस प्रकार स्थैतिक विश्लेषण की आलोचना की है ‘‘स्थिर अवस्था कुछ भी नहीं, वास्तविकता से दूर भागना है।’’ एजवर्थ के अनुसार ‘‘गतिशील को स्थिर मान लेने के कारण अर्थशास्त्र में बहुत से काल्पनिक विचार भर गये हैं।’’

2. स्थैतिक आर्थिक विश्लेषण ऐसी मान्यताओं पर आधारित है जो अवास्तविक हैं। यह चरों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या करते समय अन्य निर्धारक तत्वों को स्थिर मान लेता है किन्तु यह उचित नहीं है क्योंकि निर्धारक तत्व परिवर्तनीय है, स्थिर नहीं।

3. रिचर्ड लिप्से ''स्थैतिक विश्लेषण का प्रयोग उस मार्ग के विषय में भविष्यवाणी करने के लिए नहीं किया जा सकता जबकि बाजार एक संस्थिति की अवस्था से दूसरी संस्थिति की अवस्था की ओर अग्रसर हो रहा हो, तथा इसके द्वारा यह भी नहीं बताया जा सकता है कि एक दी हुई संस्थिति की अवस्था को प्राप्त किया है या नहीं।''

4. प्रो0 हिक्स ने स्थैतिक विश्लेषण की आलोचना करते हुए कहा कि किसी वस्तु की मांग और पूर्ति उसके प्रत्याशित मूल्य से उतनी ही नियन्त्रित होती है जितना प्रचलित मूल्य से। t_1 अवधि (भविष्य) में किसी वस्तु की मांग या पूर्ति क्या होगी यह जव अवधि (वर्तमान) में प्रचलित मूल्य पर ही निर्भर नहीं करेगा बल्कि इस तथ्य पर भी निर्भर करेगा कि t_1 अवधि में क्या मूल्य होने वाला है किन्तु स्थैतिक विश्लेषण में इस समस्या के समाधान का प्रयास नहीं किया जाता, केवल टालने का प्रयास किया जाता है।

अब तो आप समझ ही गये होंगे कि स्थैतिकी की कुछ सीमाओं के बावजूद यह विश्लेषण महत्वपूर्ण है और इसका प्रयोग भी किया जाता है। प्रो0 मेहता के मतानुसार ''एक गतिशील अर्थव्यवस्था का, जिसमें प्रति क्षण परिवर्तन होते रहते हैं वैज्ञानिक अध्ययन अत्यन्त ही कठिन हैं। उनके अनुसार यदि प्रवैगिक अवस्थाओं को छोटी-छोटी स्थैतिक अवस्थाओं में तोड़कर अध्ययन किया जाय तो एक गतिशील अर्थव्यवस्था का अध्ययन अत्यन्त ही सरल हो जायेगा।''

3.4 आर्थिक प्रावैगिकी

प्रावैगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत उन सभी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है जो संस्थिति की धारणा से सम्बन्धित हैं तथा जिनमें आवश्यक रूप से समय तत्व सम्मिलित रहता है। ऐक्ले के अनुसार ''प्रावैगिकी का सम्बन्ध आवश्यक तौर से परिवर्तन और असन्तुलन की स्थितियों से है।''

यह परिवर्तन की प्रक्रिया का विश्लेषण है जो काल पर्यन्त चलता रहता है। समयके साथ अर्थव्यवस्था में दो तरह से परिवर्तन हो सकता हैः एक तो उसके ढाँचे में परिवर्तन किए बिना और दूसरे उसके ढाँचे को बदल कर। प्रो0 हिक्स ने अपनी पुस्तक Value and Capital में आर्थिक प्रावैगिकी को परिभाषित किया है ''अर्थव्यवस्था का वह भाग जिसमें हर मात्रा दिनांकित होनी चाहिए।'' आर्थिक प्रावैगिकी में भिन्न समय बिन्दुओं पर आर्थिक चरों के फलनात्मक सम्बन्धों की खोज शामिल रहती है। रैगनर फ्रिश आर्थिक प्रावैगिकी को केवल निरन्तर परिवर्तनों का ही नहीं बल्कि परिवर्तन की प्रक्रिया का भी अध्ययन मानता है। प्रावैगिकी सिद्धान्त की विशेषता है कि यह व्याख्या करता है कि एक स्थिति पिछली स्थिति से बाहर कैसे निकलती है।

बामोल के अनुसार ''आर्थिक प्रावैगिकी पहले और बाद की घटनाओं के सम्बन्ध में आर्थिक स्थिति का अध्ययन है।'' कुजनेटस के शब्दों में ''आर्थिक प्रावैगिकी उस आर्थिक सिद्धान्त को कहते हैं जो आर्थिक परिवर्तनों की स्थिति और उन परिवर्तनों के अर्थों की व्याख्या और दिए हुए परिवर्तन को लाने में कार्यशील साधनों की जाँच तथा उस परिवर्तन एवं परवर्ती गतियों के क्रमिक परिणामों का सामना करने का प्रयत्न करता है।''

3.4.1 प्रावैगिक अर्थशास्त्र की समस्याएं

1.जनांकिकी या जनसंख्या से सम्बन्धित समस्याओं का विश्लेषण प्रावैगिकी विश्लेषण के अन्तर्गत आयेगा क्योंकि इसमें हम कालान्तर माला के आधार पर विश्लेषण करते हैं।

2. व्यापार चक्रीय परिवर्तनों (जिसमें मकड़ी जाला प्रमेय सम्मिलित है) का अध्ययन भी प्रावैगिक विश्लेषण के माध्यम से किया जाता है क्योंकि व्यापार चक्रीय परिवर्तन एक समयावधि से सम्बन्धित है। इनके विश्लेषण के लिए हिक्स तथा सेमुएलसन ने प्रावैगिक व्यापार चक्रीय मॉडल, जो त्वरक तथा गुणक की अन्तर्क्रिया पर आधारित है, का प्रतिपादन किया है। व्यापार चक्रीय समस्याओं का वास्तविक विश्लेषण स्थैतिक विश्लेषण के द्वारा नहीं किया जा सकता है।

3. लाभ को साहसी के द्वारा जोखिम उठाने के कार्य के लिए मिलने वाला प्रतिफल माना जाता है जबकि स्थैतिकी में सभी बाते निश्चित होंगी जोखिम वाली नहीं अतः साहसी के कार्य की आवश्यकता ही नहीं होगी। जोखिम अनिश्चितता का परिणाम है जो एक प्रावैगिकी अर्थव्यवस्था की देन है।

4. मार्शल की आभास लगान की धारणा में भी समय तत्व कुछ सीमा तक सम्मिलित है।

5.यदि आय-निर्धारण में हम यह जानने की कोशिश करें कि आय की संवृद्धि दर क्या हो जिससे यह निरन्तर संस्थिति की स्थिति में बनी रहे तो विश्लेषण प्रावैगिक होगा।

6.ब्याज निर्धारण की समस्या का अध्ययन भी प्रावैगिक विश्लेषण के अन्तर्गत आयेगा क्योंकि इसमें समय-तत्व सम्मिलित रहता है।

7.आर्थिक संवृद्धि के विश्लेषण की समस्या, विनोयजन, आर्थिक नियोजन आदि से सम्बन्धित समस्यायें प्रावैगिक विश्लेषण के अन्तर्गत आयेंगी। स्थैतिक के आधार पर इसका अध्ययन किया ही नहीं जा सकता है।

3.4.2 प्रावैगिक विश्लेषण का महत्व आजकल आर्थिक सिद्धान्तों के विश्लेषण में प्रावैगिक विश्लेषण का प्रयोग बहुत अधिक बढ़ता जा रहा है और यदि हम अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन वास्तविक मान्यताओं पर करना चाहें तो इसका प्रयोग आवश्यक है। व्यावहारिक जीवन में स्थैतिक विश्लेषण की दशायें नहीं मिलती हैं। इस गतिशील संसार में प्रावैगिक विश्लेषण वास्तविकता के अधिक निकट है क्योंकि एक तो यह अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित नहीं है दूसरे यह अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों का ही अध्ययन करता है, किसी महत्वपूर्ण तथ्य को स्थिर मानकर नियम का प्रतिपादन नहीं करता।

प्रावैगिक विश्लेषण के महत्व के सम्बन्ध में प्रो0 रॉबिन्स इसके द्वारा किये जाने वाले चार कार्यों को स्वीकार करते हैं-

(क)यह अनेक आर्थिक सिद्धान्तों की क्रियाशीलता तथा सत्यता की जाँच करता है।

(ख)यह स्थैतिक अर्थशास्त्र की अवास्तविक मान्यताओं को अस्वीकार करके अधिक वास्तविक मान्यतायें हमारे सामने रखता है जिससे कि सिद्धान्त वास्तविकता के अधिक करीब आ सके।

(ग)यह उन क्षेत्रों का उल्लेख करता है जिनमें परिष्कृत रूप में स्थैतिक विश्लेषण का प्रयोग किया जा सके।

(घ)प्रावैगिक अर्थशास्त्र नये तत्वों पर प्रकाश डालता है और इसके माध्यम से अधिक सही भविष्यवाणी की जा सकती है।

आर्थिक प्रावैगिकी का अध्ययन अयर्थाथ मान्यताओं से हमारा पिण्ड छुड़ाता है और यह स्थैतिकी की अपेक्षा सत्यता से अधिक निकट होती है। आर्थिक प्रावैगिकी आर्थिक स्थैतिकी की तुलना में अधिक लोचदार होती है। इसकी लोच के ही कारण हम किसी विशिष्ट समस्या की सभी सम्भावनाओं की पूर्ण खोज कर सकते हैं। आर्थिक कल्याण, विकास एवं आर्थिक आयोजन की समस्याओं का विश्लेषण करने के लिए यह विधि विशेष रूप से उपयोगी साबित होती है, खास तौर से उन समस्याओं का जिनकी आधार सामग्री में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं।

व्यापार चक्रों में भी इसका महत्व है। चिरकालिक विकास, सट्टा और चक्रीय उतार-चढ़ावों का वास्तविक विश्लेषण प्रस्तुत करने के लिए आर्थिक प्रावैगिकी का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि इन सभी में काल तत्व सम्मिलित होता है। व्यापार चक्रों के व्यवहार की व्याख्या करने के लिए काल पश्चता और त्वरण जैसे नए सैद्धान्तिक प्रावैगिक विचारों का विकास हुआ। इसकी सहायता से ही बहिर्जात, अन्तर्जात और मिश्रित चक्रीय सिद्धान्तों में अन्तर कर सकना सम्भव हो सकता है।

समष्टि प्रावैगिकी समष्टि चरों के परिवर्तनों की दरों से सम्बन्धित है समष्टि प्रावैगिकी विश्लेषण पर अर्थमिति के राष्ट्रीय आय, व्यापार चक्र और आर्थिक विकास के मॉडल व्यापकता से निर्मित हो रहे हैं। इसके कारण अर्थशास्त्र अधिक वैज्ञानिक हो गया है। प्रोफेसर सैम्यूल्सन ने सही ही कहा है कि ''विभिन्न उपकल्पनाओं की उलझनों को दूर करने और नई सम्भावनाओं की छानबीन, दोनों के लिए अत्यन्त लचीली विचारधारा है।''

प्रावैगिकी विश्लेषण की व्यष्टि और समष्टि प्रावैगिक मॉडलों के रूप में व्याख्या की जा सकती है।

कॉबवैब मॉडल - व्यष्टि प्रावैगिकी

इसका प्रयोग लम्बी समय अवधि पर मांग, पूर्ति और कीमत की गतिशीलता की व्याख्या करने के लिए किया जाता है। कई नाशवान कृषि वस्तुओं की कीमतें और उत्पादन दीर्घकाल पर निर्धारित होते हैं और वह चक्रीय गतियां दर्शाते हैं। जब इनकी कीमतें ऊपर और नीचे की ओर गति करती हैं तब प्रति चक्रीय ढंग से इनकी उत्पादित मात्राएं भी गति करती हैं इसकी मकड़जाल के रूप में व्याख्या की जाती है क्योंकि उसके चित्र मकड़जाल जैसे दिखते हैं। वर्तमान अवधि में उत्पादन को, उत्पादक द्वारा पिछली अवधि में लिये गये उत्पादन निर्णय पर निर्धारित माना जाता है। जो उस कीमत की प्रतिक्रिया के हैं जिसकी उसे वर्तमान अवधि में चालू रखने की प्रत्याशा है, जब फसल बिक्री के लिए तैयार है। किन्तु वह आश्वान्वित होता है कि वर्तमान अवधि में जो कीमत तय होगी वह पिछली अवधि की कीमत के बराबर होगी।

The Model Cobwel Theorem में पूर्ति फलन $S_t=S(_{t-1})$ और मांग फलन $D_t=D(p_t)$

बाजार सन्तुलन के लिए $S_t = D_t$ किसी मार्केट में जब उत्पादक की वर्तमान पूर्ति पिछले वर्ष की कीमत की प्रतिक्रिया में होती है, तो सन्तुलन अनेक लगातार अवधियों पर समायोजन की श्रंखलाओं द्वारा स्थापित हो सकता है। प्याज के उत्पादक द्वारा मान लीजिए वह एक ही फसल पैदा करता है तो इस वर्ष वह कितने प्याज उत्पादित करेगा, वह यह मान कर चलता है कि प्याज की इस वर्ष की कीमत पिछले वर्ष की कीमत के बराबर होगी। प्याज की मांग वक्र D और पूति वक्र S है। पिछले वर्ष OP कीमत थी और उत्पादक इस वर्ष OQ सन्तुलन उत्पादन का निर्णय लेते हैं। किन्तु मान लें कि प्याज की फसल किसी कारणवश खराब हो गई तो उत्पादन OQ (सन्तुलन उत्पादन) से OQ_1 (वर्तमान उत्पादन) कम होता है। इससे वर्तमान में कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है। अगली अवधि में, ऊँची कीमत $OP_1 = Q_{1b}$ के प्रतिक्रिया में प्याज उत्पादक CQ_2 मात्रा उत्पादित करेंगे। किन्तु, यह मात्रा सन्तुलन मात्रा OQ जो मार्केट में चाहिए उससे अधिक है। कारणवश कीमत कम

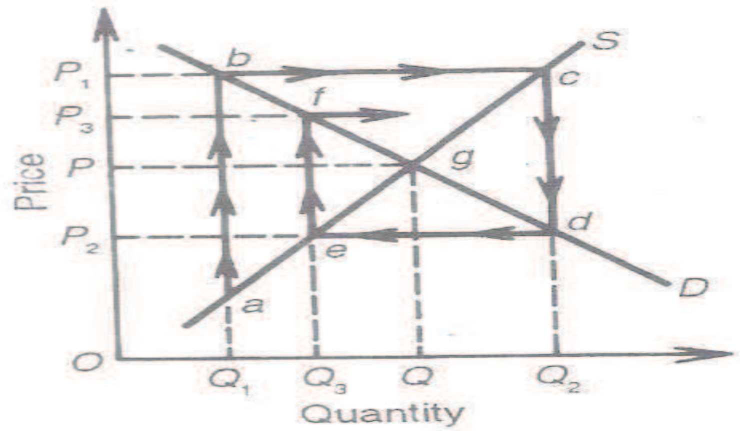

होकर $OP_2 = Q_{2d}$ हो जाएगी। इससे उत्पादक अपनी योजना बदलेंगे जिससे तीसरी अवधि में पूर्ति कम करके OQ_3 कर देंगे किन्तु यह मात्रा सन्तुलन मात्रा OQ से कम है। परिणामतः कीमत बढ़कर $OP_3 = Q_{3f}$ हो जायेगी, जो उत्पादकों को OQ मात्रा उत्पादित करने पर उत्साहित करेगी। अन्ततः, सन्तुलन ह बिन्दु पर स्थापित हो जायेगा जहाँ D और S वक्र एक दूसरे को काटते हैं। यह

समायोजनाएं श्रृंखलाओं a, b, c, d, e और f एक मकड़जाल ढाँचे को दर्शाती हैं जो मार्केट सन्तुलन बिन्दु g की ओर मिलती है, जब मात्रा और कीमत में अवधि से अवधि परिवर्तन शून्य हो जाते हैं। यह केन्द्राभिमुखी Cobweb है। चित्र 3.4

अस्थिर कॉबवैब भी हो सकता है जब कीमत और मात्रा परिवर्तन सन्तुलन स्थिति से दूर गति करते हैं। यह स्फोटक स्थिति होती है और सन्तुलन अस्थिर होता है। यह अपसारी अर्थात केन्द्र से दूर कॉबवैब है।

कीमतों और मात्राओं के निरन्तर घटाव बढ़ाव और स्थिर विस्तार वाला कॉबवैब भी हो सकता है। कीमतें और मात्राएं सन्तुलन बिन्दु के इर्दगिर्द स्थिर विस्तार से घटती बढ़ती हुई एक चक्र में गति करेंगी।

केन्द्र की ओर, केन्द्र से बाहर और स्थिर वक्रों की स्थितियों को जानने के लिए पहले मांग वक्र की ढलान और फिर पूर्ति वक्र की ढलान को देखना होता है। यदि पूर्ति वक्र से मांग वक्र की ढलान संख्यात्मक तौर से छोटी हो तो कीमत सन्तुलन (केन्द्र) की ओर गति करेगी। यदि पूर्ति वक्र से मांग वक्र की ढलान संख्यात्मक तौर से अधिक हो, तो कीमत सन्तुलन से बाहर की ओर गति करेगी। यदि पूर्ति वक्र और मांग वक्र की ढलान संख्यात्मक तौर से बराबर हो, तो कीमत अपने सन्तुलन मूल्य के इर्दगिर्द गति करे।

समष्टि प्रावैगिकी

प्रो0 कुरीहारा ''समष्टि प्रावैगिकी समष्टि चरों की निरन्तर गतियों या परिवतन की दरों का विवेचन करता है।'' समष्टि प्रावैगिक मॉडल को कुरीहारा ने केन्ज के निवेशक गुणक से वर्णित किया है, जहाँ उपभोग पिछली अवधि की आय का फलन है, अर्थात $C_t = f(Y_{t-1})$ और निवेश समय तथा स्थिर स्वायत्त निवेश ΔI का फलन है, अर्थात $I_t = f(\Delta I)$ चित्र 3.5 में C+I कुल मांग फलन है और 45^0 रेखा कुल पूर्ति फलन है। यदि हम अवधि जव में प्रारम्भ करें जहाँ वलव सन्तुलन आय स्तर होने पर निवेश ΔI द्वारा बढ़ाया जाता है, तो अवधि t में आय बढ़े हुए निवेश के बराबर बढ़ती है (t_0 से t)। बढ़ी हुई आय $C+I+\Delta I$ (नए कुल मांग फलन) द्वारा दिखायी गयी है परन्तु अवधि t में उपभोग पीछे रह जाता है और E_o पर आय के बराबर होता है। t+1 में अवधि में उपभोग बढ़ता है और नये निवेश के साथ यह आय को और ऊँचे $0Y_1$ तक बढ़ा देता है। आय वृद्धि की यह प्रक्रिया आगे बढ़ती रहती है जब तक कुल मांग फलन $C+I+\Delta I$ कुल पूर्ति फलन 45^0 रेखा को दजी अवधि में En पर नहीं काटता। नया संतुलन स्तर oy_n पर निर्धारित होगा। t_o से En तक का टेढ़ा मेढ़ा रास्ता समष्टि प्रावैगिक सन्तुलन मार्ग है।

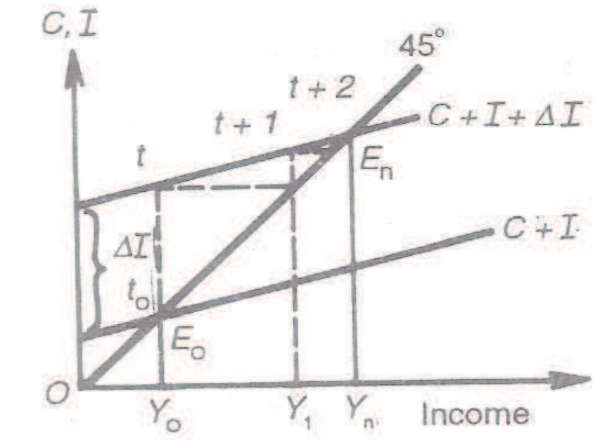

चित्र 3.5

3.4.3 आर्थिक प्रावैगिकी की सीमाएं

1. आर्थिक विश्लेषण की यह जटिल रीति है। समय तत्व को शामिल करने की वजह से इसमें समय पश्चता, नियतकालिता जैसे कठिन तत्वों का समावेश करना पड़ता है। इसके लिए उच्चतर गणितीय विधियों, सांख्यिकी तथा अर्थमिति का सहारा लेना पड़ता है जिन्हें समझना तो कठिन है ही साथ ही विश्लेषण और कठिन हो जाता है। जैसे-जैसे उच्चतर गणितीय विधियों का प्रयोग किया जाता है, विश्लेषण उतना ही सामान्य समझ से दूर हटता जाता है।

2. आर्थिक प्रावैगिकी की विधि अभी पूर्णतः विकसित नहीं हो पायी है। परिणामतः आर्थिक विश्लेषण में इसकी सभी सम्भावनाओं का उपयोग करना सम्भव नहीं है।

3. आर्थिक मॉडल निर्माण के प्रति झुकाव ने अर्थशास्त्र को एक साधारण विद्यार्थी के लिए जटिल और कठिन बना दिया है जिसके कारण इसकी व्यवहारिक उपयोगिता के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न हो गया है।

4. मानवीय आवश्यकताएं किसी ‘‘स्थिरता के नियम’’ को नहीं मानती इसलिए वर्तमान आवश्यकताओं से भविष्य का ढाँचा नहीं बनाया जा सकता। इस कारण सम्भवतः आर्थिक प्रावैगिकी के सिद्धान्त की खोज का आधार कोई ‘‘ऐसी रूढ़िबद्ध धारणा हो जिसे हमारा अनुभव सिद्ध ज्ञान पहले ही असत्य सिद्ध कर देता है।’’ इसके मॉडल में अनुभवजन्य तत्व का अभाव है।

3.5 सामान्य सन्तुलन

सन्तुलन या संस्थिति की धारणा आर्थिक विश्लेषण में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रो0 स्टिगलर ने इसी कारण अर्थशास्त्र को संस्थिति विश्लेषण का नाम दिया है। व्यष्टि तथा समष्टि दोनों ही आर्थिक विश्लेषणों में संस्थिति निर्धारण की समस्या का विश्लेषण किया जाता है।

संस्थिति का मतलब है सन्तुलन की अवस्था या विश्राम की अवस्था। अर्थशास्त्र में संस्थिति का अर्थ यह नहीं है कि संस्थिति की स्थिति में गति नहीं होनी चाहिए बल्कि गति की दर में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होना चाहिए। प्रो0 मेहता के अनुसार ''अर्थशास्त्र में संस्थिति गति परिवर्तन की अनुपस्थिति बतलाता है जबकि भौतिक विज्ञान में यह स्वयं गति की अनुपस्थिति को ही बतलाता है।

अंग्रेजी का Equilibrium लैटिन भाषा के दो शब्दों acquus जिसका अर्थ समान है और Libra जिसका अर्थ है सन्तुलन से मिलकर बना है। इस प्रकार Equilibrium का अर्थ समान सन्तुलन हुआ।

3.5.1 सन्तुलन के प्रकार

1. स्थैतिक सन्तुलन वह सन्तुलन है जो कि अपने आप को विचाराधीन समयावधि के बाद बनाए रखता है।

2. प्रावैगिक सन्तुलन वह सन्तुलन है जो कि एक निश्चित अवधि के बाद जब सन्तुलन की अवस्था भंग हो जाती है तो वह प्रावैगिक सन्तुलन कहलाता है।

3. स्थिर सन्तुलन - एक इकाई या अर्थव्यवस्था उस समय स्थिर संस्थिति में होती है जब किसी कारणवश संस्थिति भंग होने पर या असन्तुलन होने पर ऐसी शक्तियाँ स्वतः क्रियाशील हो जायें जिससे संस्थिति की प्रारम्भिक स्थिति की प्राप्ति हो जाय या उसमें उसे प्राप्त होने की प्रवृत्ति हो।

4. अस्थिर संस्थिति की स्थिति उस समय होगी जबकि किसी भी गड़बड़ी के कारण संस्थिति भंग होने पर ऐसी शक्तियाँ क्रियाशील होने लगे जिससे संस्थिति की मूल स्थिति निरन्तर दूर ही होती जाय, इस प्रकार एक बार असन्तुलन पैदा होने पर संस्थिति की मूल स्थिति पुनः न प्राप्त हो।

5. तटस्थ संस्थिति की स्थिति उस समय होगी जबकि एक बार संस्थिति की स्थिति भंग होने पर पुरानी संस्थिति की स्थिति तो न प्राप्त हो बल्कि उसी स्तर पर नयी संस्थिति को पहुंचकर स्थिर हो जाए। बिलियर्ड की मेज पर एक गेंद छेड़ दी जाए तो वह नई स्थिति में पहुंच कर टिक जाएगी।

स्थिर, अस्थिर और तटस्थ इन तीनों सन्तुलनों में से केवल स्थिर सन्तुलन ही अर्थशास्त्रियों के काम का है जो जटिल आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण में प्रयुक्त होता है। अस्थिर तथा तटस्थ सन्तुलन तो केवल सैद्धान्तिक रूचि के विषय हैं।

6. एकाकी संस्थिति - जिन चरों के बीच संस्थिति का अध्ययन किया जा रहा है यदि उनकी केवल एक ही ऐसी मात्रा हो जिस पर संस्थिति की स्थिति प्राप्त हो तो एकाकी संस्थिति कहेंगे। जबकि उत्पादन तथा वस्तु की मात्रा एक ही बिन्दु पर ऐसी हो कि संस्थिति की शर्तें पूरी हों।

7. बहुतत्वीय संस्थिति तब होगी जबकि संस्थिति की शर्तों की सन्तुष्टि अनेक बिन्दुओं पर विभिन्न मूल्य तथा उत्पादन की मात्राओं द्वारा हो। ऐसा तब होगा जब मांग चक्र का ढाल एक नहीं रहे बल्कि उसमें परिवर्तन होता रहे।

8. अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन संस्थिति मार्शल पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने कीमत निर्धारण में 'समय तत्व' को शामिल किया। जब समय इतना कम हो कि मांग में होने वाले परिवर्तन के अनुसार पूर्ति का समायोजन केवल चालू साधनों के द्वारा ही किया जा सके अर्थात् उत्पादन में लगे हुए स्थिर साधनों में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं लायी जा सके, न तो फर्म की संख्या में वृद्धि हो और न कमी तो इसे अल्पकाल कहेंगे। और इस अवधि में भी संस्थिति की स्थिति होगी क्योंकि मांग में होने वाले परिवर्तन के अनुसार पूर्ति को चालू साधनों द्वारा समायोजित किया जाता है। यह अल्पकालीन संस्थित की दशा है।

दीर्घकाल अवधि में समय इतना होगा कि मांग के अनुसार पूर्ति को समायोजित करने के लिए हर प्रकार के परिवर्तन किये जा सके और इस अवधि में पायी जाने वाली संस्थिति को दीर्घकालीन संस्थिति कहेंगे।

9. आंशिक सन्तुलन - आंशिक सन्तुलन व्यष्टि इकाइयों के व्यवहार का अध्ययन करता है अर्थात् - एक उपभोक्ता, एक उत्पादक इकाई अथवा एक उद्योग। जब सन्तुलन केवल एक ही चल मात्रा से सम्बन्धित होता है तो उसे आंशिक या विशिष्ट सन्तुलन कहते हैं। इस विधि का प्रारम्भिक रूप में प्रतिपादन मार्शल एवं कैम्ब्रिज सम्प्रदाय द्वारा किया गया था। यह विधि अधिक सरल, अधिक प्रभावी एवं अधिक सुबोध है। इसकी सीमा यह है किः- (1) सन्तुलन की स्थिति का विश्लेषण करते समय अन्य वस्तुओं को यथास्थिर मान लिया जाता है अर्थात् यह विधि स्थिरावस्था से सम्बन्धित है। (2) यह विधि अर्थव्यवस्था के किसी एक अंग पर ही प्रकाश डालती है, समूची अर्थव्यवस्था पर नहीं। 10. सामान्य सन्तुलन - जैसा कि आपने अभी तक सन्तुलन और उसके प्रकार को संक्षेप में जाना अब हम सामान्य सन्तुलन का विस्तार में अध्ययन करेंगे। सामान्य सन्तुलन में हम सम्पूर्ण आर्थिक निकाय के सन्तुलन का अध्ययन करते हैं अर्थात् जब अर्थव्यवस्था में प्रत्येक उपभोक्ता, उत्पादन की प्रत्येक इकाई, प्रत्येक उद्योग एक साथ सन्तुलन की अवस्था में हो। प्रत्येक उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति में हो तथा प्रत्येक उत्पादक इकाई अधिकतम लाभ की स्थिति में हो तो अर्थव्यवस्था की इस स्थिति को सामान्य सन्तुलन की अवस्था कहेंगे। स्टिगलर के अनुसार ''सामान्य सन्तुलन का सिद्धान्त अर्थव्यवस्था के समस्त भागों के परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त है।'' यह एक चल मात्रा से नहीं बल्कि असंख्य चल मात्राओं से सम्बन्धित है। इसमें समूची अर्थव्यवस्था का सामूहिक अध्ययन किया जाता है क्योंकि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कार्यरत सभी जीव एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। इस विधि का प्रारम्भिक रूप में प्रतिपादन वालरस एवं लॉजेन सम्प्रदाय ने किया।

यह उन सभी प्रभावों की खोज करती है जो किसी परिवर्तन के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था के सभी खण्डों में दृष्टिगोचर होते है। यह विशिष्ट सन्तुलन विश्लेषण की अपेक्षा आधिक व्यापक होता है। कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री सामान्य सन्तुलन विधि को विशिष्ट सन्तुलन विधि का विस्तार मात्र ही मानते हैं। लेफ्टविच के अनुसार ''समूची अर्थव्यवस्था उस समय सामान्य सन्तुलन की स्थिति में होगी जब अर्थव्यवस्था की सभी इकाइयाँ एक साथ अपना-अपना आंशिक सन्तुलन प्राप्त कर लें।''

3.5.2 समान्य सन्तुलन के प्रकार

1. स्थैतिक सन्तुलन - इसके अन्तर्गत आर्थिक प्रणाली के किसी भी अंग में कोई परिवर्तन नहीं होता। पश्चिम के पूँजीवादी देशों में इसका कोई स्थान नहीं है किन्तु अतीतकाल में अल्पविकसित एवं पिछड़े हुए देशों में आर्थिक स्थिरता के लक्षण देखने को मिले जो यह साबित करता है कि स्थैतिक सन्तुलन केवल औपचारिक धारणा नहीं वरन यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।

2. प्रावैगिक सन्तुलन - यह प्रगतिशील अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित होती है। एक आर्थिक प्रणाली उस समय प्रावैगिक सन्तुलनावस्था में होती है जब वस्तुओं एवं जनसंख्या सहित कुल स्टाक एक समान वार्षिक प्रतिशत दर से बदलता रहता है। समूचे स्टाक में सम्मिलित सभी वस्तुओं के उत्पादन एवं उपभोग की दर भी समान रूप में बदलती है। किन्तु वास्तविक समाज में पूर्णतः समान दर वाले परिवर्तन देखने में नहीं आते। इस अर्थ को मानने पर यह धारणा कृत्रिम एवं अवास्तविक बन जाती है।

किन्तु प्रो0 मेहता के अनुसार यदि कोई सन्तुलन निश्चित अवधि के बाद भंग हो जाय तो वह प्रावैगिक सन्तुलन कहलायेगा।

3. आशंसात्मक सन्तुलन - इसमें समाज के विभिन्न अंगों की आशंसाएँ न केवल पूर्ण ही होती है बल्कि उनमें परस्पर संगतता भी पायी जाती है। यह देखने में बहुत ही कम आता है क्योंकि जरूरी नहीं विभिन्न लोगों की आशंसाओं में परस्पर संगतता हो। अतः यह भी वास्तविक समाज में देखने को नहीं मिलता।

4. प्रमाणात्मक सन्तुलन - यह एक आर्थिक धारणा न होकर केवल एक नैतिक धारणा हैं यह एक आदर्श व्यवस्था की ओर इंगित करता है जैसे पूर्ण रोजगार की स्थिति जो कि वास्तविकता में नहीं पायी जाती। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रमाणात्मक सन्तुलन एवं वास्तविक सन्तुलन कभी एक दूसरे से मेल नहीं खाते।

सामान्य सन्तुलन विश्लेषण निम्न मान्यताओं पर आधारित हैं -

1. वस्तु मार्केट और साधन मार्केट दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता है।

2. उपभोक्ताओं की रूचियाँ और आदतें दी हुई हैं और स्थिर है।

3. उपभोक्ताओं की आय दी हुई और स्थिर है।

4. भिन्न व्यवसायों और स्थानों के बीच उत्पादन के साधन पूर्ण रूप से गतिशील हैं।

5. प्रतिफल का पैमाना स्थिर है।

6. सब फर्में समरूप लागत स्थितियों के अन्तर्गत चलती हैं।

7. एक उत्पादन के साधन की सब इकाइयाँ समरूप हैं।

8. उत्पादन की तकनीकों में कोई परिवर्तन नहीं होता।

9. श्रम और अन्य स्रोत पूर्ण रूप से रोजगार में लगे हुए हैं।

सामान्य सन्तुलन व्यवस्था का कार्यकरण

ऊपर दी हुई मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए अर्थव्यवस्था उस समय सन्तुलन की स्थिति में होती है जब हर वस्तु और सेवा की मांग उस पूर्ति के बराबर हो अर्थात जब वस्तु और सेवाओं को खरीदने वालों के निर्णय बेचने वालों के निर्णयों से पूरी तरह मेल खाते हों। उपभोक्ता बाजार की चालू कीमतों के सन्दर्भ में अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम बनाता है। हर वस्तु की सीमान्त उपयोगिता उसकी कीमत के बराबर होती है।

पूर्ति पक्ष के अन्तर्गत मार्केट का ढाँचा, प्रौद्योगिकी की स्थिति, फर्मों के लक्ष्य दिए हुए होने पर वस्तु की विक्रय कीमत उसके उत्पादन की लागतों पर निर्भर करती है जो उसके उत्पादन में लगाई गई विभिन्न साधन सेवाओं की मात्राओं और उनके लिए दी गई कीमतों पर निर्भर करती है। सामान्य सन्तुलन के लिए दो शर्तें पायी जाती हैं-

(1) सभी उपभोक्ता अपनी सन्तुष्टियों को अधिकतम करते हैं और सभी उत्पादक अपने लाभों को अधिकतम करते हैं।

(2) सभी मार्केटों में सभी वस्तुएं और साधन बिक जाते हैं अर्थात् वस्तु और साधन दोनों मार्केट में धनात्मक कीमत पर कुल मांगी गई मात्रा कुल पूर्ति मात्रा के बराबर होती है।

अर्थव्यवस्था सामान्य सन्तुलन में होती है, जब कीमतों का एक सेट पाया जाता है जिसमें उत्पादकों से उपभोक्ताओं को आय प्रवाह की मात्रा बराबर होती है, उपभोक्ताओं से उत्पादकों को मुद्रा व्यय प्रवाह की मात्रा के।

3.5.3 सामान्य सन्तुलन का महत्व

सामान्य सन्तुलन सहायता करता हैः-

1. अर्थव्यवस्था के सन्तुलन का चित्रण प्रस्तुत करता है।
2. आर्थिक व्यवस्था का कार्यकरण समझने में सहायक है।
3. कीमतों के कार्यकरण की व्याख्या करने में सहायक है।
4. यह आगत निर्गत के उस विश्लेषण को धारणात्मक आधार प्रदान करता है जिसका लियोन्टिफ ने विकास किया।
5. मार्केट की जटिल समस्याओं को समझने में मदद करता है।

3.5.4 सामान्य सन्तुलन विश्लेषण की सीमाएं

- यह अनेक अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। इस विश्लेषण का आधार पूर्ण प्रतियोगिता मिथ्या है।

- विश्लेषण जितना अधिक सामान्य होगा, उतने ही उसके निष्कर्ष आवश्यक तौर से कम निश्चित होंगे।

3.6 सारांश

आप इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आर्थिक अध्ययन विधि की स्थैतिक, प्रावैगिक, सन्तुलन और उसके प्रकार विशेषतः सामान्य सन्तुलन की अवधारणा समझ गये होंगे। आपने यह जाना कि अर्थशास्त्र की प्रगति एवं विकास के लिए स्थैतिकी एवं प्रावैगिकी दोनों अनिवार्य है। प्रावैगिकी विधि की तुलना में स्थैतिकी विधि अधिक पुरानी है और अधिक सरल है। स्थैतिकी में समय तत्व का अभाव होता है और प्रावैगिकी में समय तत्व को लिया जाता है। स्थैतिकी विश्लेषण विश्राम प्राप्त हो जाने वाली शक्तियों का अध्ययन है जबकि प्रावैगिकी आर्थिक सिद्धान्त परिवर्तनीय शक्तियों का अध्ययन है। इसके उपरान्त हमने विभिन्न प्रकार के सन्तुलन के विषय में जानकारी प्राप्त की और सामान्य सन्तुलन का अध्ययन किया। अर्थशास्त्र में सन्तुलन से आशय है कि गति की दर में किसी प्रकार का परिवर्तन न हो। सामान्य सन्तुलन का सिद्धान्त अर्थव्यवस्था के समस्त भागों के परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त है।

3.7 शब्दावली

1.मांग - एक दी हुई कीमत पर किसी वस्तु की मांग, उस वस्तु की वह मात्रा है जो उस कीमत पर एक निश्चित समय में क्रेताओं द्वारा खरीदी जाएगी।

2.पूर्ति - किसी वस्तु की पूर्ति वस्तु की उस मात्रा से है जिसे विक्रेता एक निश्चित समय में तथा एक निश्चित कीमत पर बाजार में बेचने को तैयार है।

3.स्वतंत्र व्यापार - व्यापार जिसमें कोई हस्तक्षेप या नियन्त्रण न लगाया जाय।

4.स्थिर अवस्था - उस अर्थव्यवस्था को कहते हैं जिसमें काल पर्यन्त सब चरों के मूल्य परिवर्तित नहीं होते।

3.8 अभ्यास प्रश्न

निम्न कथनों में सत्य/असत्य को स्पष्ट कीजिए-

1.प्रावैगिक विधि की तुलना में स्थैतिक विधि अधिक पुरानी है। (सत्य/असत्य)

2.अर्थशास्त्र में सन्तुलन का अभिप्राय गति की अनुपस्थिति नहीं बल्कि गति की दर में परिवर्तन की अनुपस्थिति होती है। (सत्य/असत्य)

3.सामान्य सन्तुलन विश्लेषण अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों की परस्पर निर्भरता से मुक्त रहता है। (सत्य/असत्य)

4.स्थैतिकी विश्लेषण में उच्च गणितीय ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। (सत्य/असत्य)

5.कीन्स के स्थैतिक मॉडल के अनुसार राष्ट्रीय आय का स्तर उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहाँ कुल पूर्ति फलन कुल मांग फलन को काटता है। (सत्य/असत्य)

6.स्थैतिकी एक समय रहित विचार है जबकि प्रावैगिकी का सम्बन्ध समय से होता है। (सत्य/असत्य)

रिक्त स्थान भरो-

1.............. पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने समय तत्व को कीमत निर्धारण में सम्मिलित किया।
2.यदि कोई सन्तुलन एक निश्चित समयावधि के बाद भंग हो जाय तो वह .... कहलायेगा।
3.आर्थिक स्थैतिकी आर्थिक समस्याओं के .... का मुख्य माध्यम है।
4.परम्परांगत अर्थशास्त्र का एक बहुत बड़ा भाग .... के माध्यम से निर्मित किया गया है।

उत्तरः सत्य/असत्य

(1)	सत्य	(2)	सत्य	(3)	असत्य	(4)	असत्य
(5)	सत्य	(6)	सत्य				

रिक्त स्थान भरो-

(1) मार्शल (2) प्रावैगिक सन्तुलन (3) सरलीकरण (4) आर्थिक स्थैतिकी

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.झिंगन एम.एस. (2006) व्यष्टि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., दिल्ली।

2.लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (व्यष्टि अर्थशास्त्र) शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद

3.सेठ एम.एल. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

3.10 सहायक/उपयोगी सामग्री

- Dewett K.K. Modern Economic Theory, Shyamlal Charitable Trust, S.Chand and Company Ltd., New Delhi.
- Koutsoyiannis A. Modern Microeconomics, Macmillan Press Ltd.
- Samuelson, P.A., Foundations of Economics Analysis, Harvard University Press.
- Shastri Rahul A., Micreconomic Theory, University Press.
- Singh S.K., Micro Economics, Sahitya Bhawan Publication, Agra.
- Stonier, A.W. and D.C. Hague, A Textbook of Economic Theory, ELBS and Longman.

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

आर्थिक स्थैतिकी की धारणा समझाइये। व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र में इसके उदाहरण को समझाइये?

आर्थिक प्रावैगिकी की धारणा क्या है और उसका महत्व एवं दोष बताइये? सन्तुलन क्या है और उसके कितने प्रकार हैं?

आंशिक और सामान्य सन्तुलन में भेद स्पष्ट कीजिए तथा सामान्य सन्तुलन की विस्तार से व्याख्या कीजिए?

स्थैतिक और प्रावैगिक सन्तुलन में भेद कीजिए?

इकाई-4 गणनात्मक तुष्टिगुण विश्लेषण

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 उपयोगिता का अर्थ
4.4 उपयोगिता का मापन
4.4.1 मार्शल का दृष्टिकोण अर्थात गणनावाचक दृष्टिकोण
4.4.2 हिक्स का दृष्टिकोण अर्थात् क्रमवाचक दृष्टिकोण
4.5 सीमान्त उपयोगिता एवं कुल उपयोगिता
4.6 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम अथवा गौसेन का प्रथम नियम
4.6.1 घटती सीमान्त उपयोगिता के कारण
4.6.2 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की मान्यतायें
4.6.3 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के अपवाद
4.6.4 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का महत्व
4.7 सम-सीमान्त उपयोगिता नियम या गौसेन का द्वितीय नियम
4.7.1 सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की मान्यतायें
4.7.2 उदाहरण तथा रेखचित्र द्वारा नियम का स्पष्टीकरण
4.7.3 आनुपातिकता का नियम
4.7.4 सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का महत्व
4.7.5 सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की आलोचनायें
4.7.6 निष्कर्ष
4.8 सारांश
4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना-

अर्थशास्त्र के सिद्वॉत से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि अर्थशास्त्र का अर्थ क्या है? तथा अर्थशास्त्र के विभिन्न प्रकारो का विश्लेषण किस प्रकार किया जाता है।

किसी वस्तु की इकाइयों का निरन्तर प्रयोग करने पर उपयोगिता घटने लगती है तथा यह किस सीमा तक घटेगी। इसका विश्लेषण गणनात्मक तुष्टिगुण विश्लेषण के संदर्भ में किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप उपयोगिता ह्रास नियम तथा सम-सीमान्त उपयोगिता के नियम का विश्लेषण कर सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि उपयोगिता का अर्थ क्या है।
- समझा सकेंगे कि उपयोगिता ह्रास नियम तथा सम-सीमान्त उपयोगिता के नियम क्या है।
- विशद् विश्लेषण कर सकेगें कि उपयोगिता ह्रास नियम तथा सम सीमान्त उपयोगिता का नियम अर्थशास्त्र के किन किन सिद्धांतो के प्रमुख आधार हैं।

4.3 उपयोगिता का अर्थ-

वस्तु की वह शक्ति, गुण या क्षमता जिससे किसी व्यक्ति की आवश्यकता-विशेष की पूर्ति की जा सकती है, उसको उपयोगिता कहा जाता है। अर्थशास्त्र में किसी वस्तु या सेवा की ‘आवश्यकता-पूर्ति की शक्ति’ को उपयोगिता कहते हैं।

उपयोगिता की उपर्युक्त परिभाषा को समझने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिएः-

4.3.1 उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक धारणा है जिसको केवल अनुभव किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, उपयोगिता उपभोक्ता के मस्तिष्क में रहती है। उपभोक्ता उसको केवल अन्तर्निरीक्षण द्वारा जान पाता है।

4.3.2 आवश्यकता-पूर्ति की शक्ति के दो अभिप्राय हैः-

(अ) किसी वस्तु की सन्तुष्टि प्रदान करने की क्षमता अर्थात् ‘अनुमानित सन्तुष्टि’।

(ब) वस्तु का प्रयोग कर लेने के बाद जो सन्तुष्टि प्राप्त होती है अर्थात् 'वास्तविक सन्तुष्टि'।

अनुमानित सन्तुष्टि, वास्तविक सन्तुष्टि से अधिक, कम या उसके बराबर हो सकती है। अतः प्रश्न यह उठता है कि इन दोनों में से किसको उपयोगिता की परिभाषा के अन्तर्गत रखा जाये।

आधुनिक अर्थशास्त्री, उपयोगिता का अर्थ अनुमानित सन्तुष्टि से लेते हैं। अनुमानित सन्तुष्टि इच्छा की तीव्रता पर निर्भर करती है। वस्तु के लिए इच्छा जितनी तीव्र होगी उतनी ही अधिक उससे सन्तुष्टि प्राप्त होगी। इसलिए अनुमानित सन्तुष्टि के स्थान पर इच्छा की तीव्रता अथवा इच्छा करना शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है।

4.3.3 उपयोगिता का विचार नैतिक दृष्टि से तटस्थ होता है। दूसरे शब्दों में- उपयोगिता का अर्थ लाभदायकता या नैतिक विचारों से सम्बन्धित नहीं होता है; और न ही इसका कानूनी अभिप्रायों से कोई सम्बन्ध होता है। उदाहरणार्थ, शराब जैसी हानिकारक वस्तु या विष जैसी घातक वस्तुएँ भी उपयोगिता रखती हैं, क्योंकि इनसे मनुष्य विशेष की आवश्यकता-विशेष की पूर्ति होती है। डाकुओं और चोरों के लिए बनाये गये औजारों में भी उपयोगिता होती है, क्योंकि वे औजार उनकी आवश्यकता की पूर्ति करते है। यद्यपि अर्थशास्त्र में इन औजारों के कानूनी अभिप्रायों से उपयोगिता का कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

4.3.4 उपयोगिता केवल वस्तु-विशेष से सम्बन्धित ही नहीं होती, बल्कि व्यक्तिगत तथा सापेक्षिक भी होती है। उपयोगिता वस्तु का आन्तरिक गुण है, परन्तु साथ ही साथ उपयोगिता व्यक्ति-विशेष की इच्छा की तीव्रता, उसकी रूचि, आदत, फैशन तथा परिस्थितियों पर भी निर्भर करती है। उदाहरणार्थ, एक प्यासे व्यक्ति के लिए पानी उपयोगी है, दूसरे व्यक्ति के लिए, जो प्यासा नही है, पानी उपयोगी नही है। उपयोगिता व्यक्ति-व्यक्ति के साथ परिवर्तित होती रहती है। इतना ही नहीं, परिस्थितियों के अनुसार, एक ही व्यक्ति के लिए उपयोगिता भिन्न्-भिन्न् समय पर बदलती रहती है। उदाहरणार्थ, कम्बल एक व्यक्ति के लिए सर्दी में उपयोगी है, परन्तु सभी में नहीं।

संकीर्ण अर्थ में, उपयोगिता का अर्थ किसी वस्तु या सेवा के प्रयोग से प्राप्त वास्तविक सन्तुष्टि से है। व्यापक अर्थ में, उपयोगिता का अर्थ किसी वस्तु या सेवा की अनुमानित सन्तुष्टि अथवा वस्तु के लिए इच्छा की तीव्रता अथवा प्रो0 फ्रेजर के शब्दों में, 'इच्छा करना' है। चाहे संकीर्ण अर्थ लें या व्यापक अर्थ, उपयोगिता एक मनावैज्ञानिक विचार है।

4.4 उपयोगिता का मापन

इस सन्दर्भ में दो मुख्य दृष्टिकोण हैः-

4.4.1 मार्शल का दृष्टिकोण अर्थात् गणनावाचक दृष्टिकोण:- मार्शल तथा कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार उपयोगिता को मोटे रूप से द्रव्यरूपी पैमाने द्वारा मापा जा सकता है। एक

व्यक्ति किसी वस्तु के लिए उतनी कीमत देना चाहेगा जितनी कि उससे उपयोगिता मिल ती है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति फाउण्टेन पैन के लिए 4 रू0 देने को तत्पर है, तो उसके लिए पैन की उपयोगिता 4 रू0 के बराबर है।

4.4.1.1 उपयोगिता के गणनावाचक दृष्टिकोण की आलोचनाएं - कुछ अर्थशास्त्री, जैसे- पेरेटो, ऐलन, हिक्स इत्यादि मार्शल के विचार, अर्थात् गणनावाचक उपयोगिता के विचार से सहमत नहीं है। उनका कहना है कि उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता है। इसके वे निम्न कारण बताते है-

उपयोगिता का अर्थ चाहे सन्तुष्टि से लिया जाये अथवा इच्छा की तीव्रता से दोनों ही मनावैज्ञानिक तथा व्यक्तिगत विचार है, जिन्हें किसी वस्तुगत पैमाने से नही मापा जा सकता है।

यद्यपि मार्शल उपयोगिता को नापने के लिए द्रव्यरूपी पैमाने का प्रयोग किया, परन्तु द्रव्यरूपी पैमाना स्थिर एवं निश्चित नहीं होता, वह बदलता रहता है।

उपयोगिता भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न होती है। इसका कारण है कि लोगों के उपयोगिता व्यक्ति-विशेष के लिए कम हो सकती है जबकि उसी वस्तु की उपोगिता दूसरे व्यक्ति के लिए अधिक हो सकती है। इतना ही नहीं, यदि एक ही व्यक्ति को लिया जाये तो भिन्न-भिन्न समयों पर एक ही वस्तु के सम्बन्ध में उस व्यक्ति की भिन्न-भिन्न व्यक्तियों अथवा एक ही व्यक्ति के सम्बन्ध में समय-समय पर बदलती रहती है; तथा ऐसी चीज जो समय-समय पर बदलती रहती है, कैसे मापा जा सकता है।

अतः उपयोगिता का परिमाणात्मक मापन नहीं किया जा सकता है।

4.4.2 हिक्स का दृष्टिकोण अर्थात् क्रमवाचक दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण के अनुसार, उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता। बल्कि विभिन्न वस्तुओं से मिल ने वाली उपयोगिताओं की केवल तुलना की जा सकती है।

हिक्स का दृष्टिकोण ‘उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन को अस्वीकार करता है। हिक्स ने उपयोगिता विश्लेषण के स्थान पर तटस्थता-वक्र विश्लेषण की नवीन रीति निकाली जिसमें उपयोगिता को मापने की आवश्यकता नहीं होती। इस रीति के अन्तर्गत तो उपयोगिताओं की केवल तुलना की जा सकती है।

यह दृष्टिकोण गणनावाचक मात्राओं के विचार को ही अस्वीकार करता है। इसके अनुसार उपयोगितओं को केवल क्रमवाचक संख्याएँ ही प्रदान की जा सकती हैं। उपयोगिताओं को एक क्रम में व्यवस्थित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, प्रथम, द्वितीय इत्यादि, परन्तु इनको संख्यात्मक मात्रा प्रदान नहीं किया जा सकता। एक कमीज की उपयोगिता सेव की तुलना में अधिक हो सकती है, परन्तु एक व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि कमीज की उपयोगिता कितनी अधिक होगी। क्रमवाचक दृष्टिकोण के लिए उपयोगिता की इकाई का कोई अर्थ नहीं होता। जब व्यक्ति वस्तुओं का

मूल्यांकन करते हैं, तो वे उनको मूल्य या महत्व के एक क्रम प्रदान में व्यवस्थित करते हैं, वे उनको गणनावाचक संख्याएँ प्रदान नहीं करते है।

चूँकि उपयोगिता को क्रमवाचक संख्याएँ प्रदान की जाती हैं, इसलिए इस दृष्टिकोण को क्रमवाचक उपयोगिता दृष्टिकोण कहते है।

4.4.2.1 उपयोगिता के क्रमवाचक दृष्टिकोण की आलोचना या कमियां

क्रमवाचक दृष्टिकोण की मुख्य कमियां निम्नलिखित है-

i. व्यवहार में किसी व्यक्ति के लिए एक साथ विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की उपयोगिताओं की तुलना करना बहुत कठिन है। उदाहरणार्थ, संतरा, कार, कमीज, टेलीविजन, साईकिल, टूथपेस्ट, कोट, पेन इत्यादि वस्तुओं से प्राप्त होने वाली उपयोगितओं की उचित तुलना एक साथ करना उपभोक्ता के लिए बहुत कठिन है अथवा सम्भव नहीं है। दूसरे शब्दों में, इन विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की, उनकी उपयोगितओं की जानकारी के आधार पर, पसन्दों के एक क्रम में रखना बहुत कठिन कार्य है।

ii. अनेक स्थितियों में केवल दो वस्तुओं से प्राप्त होने वाली उपयोगिताओं की तुलना करना भी सम्भव नहीं हो पाता है। उदाहरणार्थ, हम एक सेब की उपयोगिता की तुलना एक रेडियो की उपयोगिता से नहीं कर सकता है।

4.4.3 निष्कर्ष-

i. निःसन्देह, उपयोगिता का निश्चित तथा सही मापन सम्भव नहीं है, क्योंकि उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक विचार है। गणनावाचक दृष्टिकोण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि द्रव्यरूपी मापदण्ड से उपयोगिता के मापन का एक मोटा-मोटा कामचलाऊ अन्दाज लगाया जा सकता है; यद्यपि इसका निश्चित तथा सही मापन सम्भव नहीं है।

ii. क्रमवाचक दृष्टिकोण गणनावाचक दृष्टिकोण से, इस दृष्टि से श्रेष्ठ है कि यह उपयोगिता के मापन की आवश्यकता को समाप्त कर देता है; बिना परिमाणात्मक मापन के कवच उपयोगिताओं की तुलना करके काम चलाया जाता है। अनके आधुनिक अर्थशास्त्री क्रमवाचक दृष्टिकोण को मान्यता देते हैं और उनके अनुसार उपयोगिता एक गणनावाचक विचार नहीं, बल्कि क्रमवाचक विचार है परन्तु क्रमवाचक दृष्टिकोण की भी कमजोरियाँ है।

iii. यद्यपि गणनावाचक उपयोगिता पुराना दृष्टिकोण है, परन्तु आज भी आर्थिक साहित्य में गणनावाचक उपयोगिता तथा क्रमवाचक उपयोगिता दोनों का शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व है।

(4.5) सीमान्त उपयोगिता एवं कुल उपयोगिता

4.5.1 सीमान्त उपयोगिता का अर्थ-सीमान्त शब्द का अर्थ है- एक अतिरिक्त इकाई। किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के उपभोग से उपभोक्ता की कुल सन्तुष्टि मे होने वालीं वृद्धि को सीमान्त उपयोगिता कहते है। सीमान्त उपयोगिता कुल उपयोगिता में होने वालें परिवर्तन की दर को बताती है।

$MU_n = TU_n - TU_{(n-1)}$

जहाँ MU_n = nवीं इकाई की सीमान्त उपयोगिता

TU_n = n इकाई से प्राप्त कुल उपयोगिता

$TU_{(n-1)}$ = (n-1) इकाइयों से प्राप्त कुल उपयोगिता

उत्तरोत्तर इकाइयों के प्रयोग से वस्तुं की सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है। अगर वस्तुओं की प्रत्येक इकाई एक समान हो तो उपभोक्ता उस वस्तु का प्रयोग पूर्ण तृप्ति के बिन्दु तक करेगा जहाँ सीमान्त उपयोगिता शून्य के बराबर हो जाती है। इस विचार को एक उपभोक्ता विशेष की काल्पनिक सारणी द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है-

तालिका – 1 सीमान्त उपयोगिता

वस्तु X की इकाइयां	सीमान्त उपयोगिता (MU)
1	40
2	30 घटती किन्तु घनात्मक उपयोगिता
3	20
4	10
5	0 पूर्ण सन्तुष्टि
6	-10 घटती किन्तु ऋणात्मक उपयोगिता
7	-20

तालिका 1 के अनुसार उपभोक्ता विशेष जैसे-जैसे वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई का उपभोग करता जाता है तो प्रत्येक इकाई से प्राप्त होने वाली उपयोगिता घटती जाती है। जब उपभोक्ता निरन्तर कम में वस्तु X की 5वीं इकाई का उपभोग करता है तो उस इकाई से उसे कोई उपयोगिता प्राप्त नहीं होती क्योंकि उपभोक्ता वस्तु की 5वीं इकाई तक पूर्ण तृप्त हो जाता है। यही उसके उपभोग का अन्तिम बिन्दु है। यदि उपभोक्ता इस बिन्दु के बाद भी अपना उपभोग क्रम जारी रखता है तो उसे ऋणात्मक उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता मिलेगी। सारणी 1 को चित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

चित्र में MU रेखा सीमान्त उपयोगिताओं को प्रदर्शित करती है। रेखा को AB भाग बायें से दायें नीचे की ओर गिरता हुआ है किन्तु धनात्मक है। बिन्दु B पूर्ण तृप्ति प्रदर्शित करता है। MU रेखा पर AB भाग से नीचे का भाग टूटी रेखा द्वारा दिखाया गया है जो ऋणात्मक उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता का सूचक है।

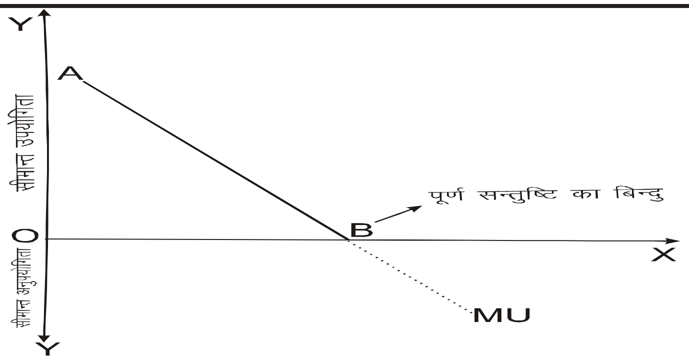

चित्र 1 - सीमान्त उपयोगिता वक्र

4.5.2 कुल उपयोगिता का अर्थ- कुल उपयोगिता का अर्थ है, कि किसी समय विशेष में उपभोग की समस्त इकाइयों से उपभोक्ता को कुल कितनी सन्तुष्टि प्राप्त हो रही है। सामान्य परिस्थितियों में उपभोग की मात्रा की प्रत्येक वृद्धि कुल उपयोगिता को बढ़ाती है तथा इसके विपरीत उपभोग की मात्रा की प्रत्येक कमी कुल उपयोगिता को घटाती है।

प्रो० मेयर्स के अनुसार-किसी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों के उपभोग से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता के योग को कुल उपयोगिता कहते है।

सीमान्त उपयोगिताओं का योग (n इकाई) = कुल उपयोगिता (n इकाई)

$$\sum MU = TU$$

सारणी – 2 कुल उपयोगिता

वस्तु X की इकाइयाँ	सीमान्त उपयोगिता (MU)	कुल उपयोगिता [TU(= $\sum MU$)]
1	40	40
2	30	40 + 30 = 70
3	20	70 +0 = 90
4	10	90 + 10 = 100
5	0	100 + 0 = 100
6	-10	100 - 10 = 90
7	-20	90 - 20 =70

सारणी 2 में 5वीं इकाई तक कुल उपयोगिता बढ़ रही है क्योंकि 5वीं इकाई तक सीमान्त उपयोगिता धनात्मक है। 5वीं इकाई पर कुल उपयोगिता अधिकतम है क्योंकि यह बिन्दु पूर्ण तृप्ति का बिन्दु है

6वीं इकाई पर कुल उपयोगिता घट जाती है क्योंकि 6वीं इकाई पर उपभोक्ता को अनुपयोगिता मिल रही है।

कुल उपयोगिता एवं सीमान्त उपयोगिता के परस्पर निश्चित सम्बन्ध को चित्र की सहायता से आसानी से समझा जा सकता है।

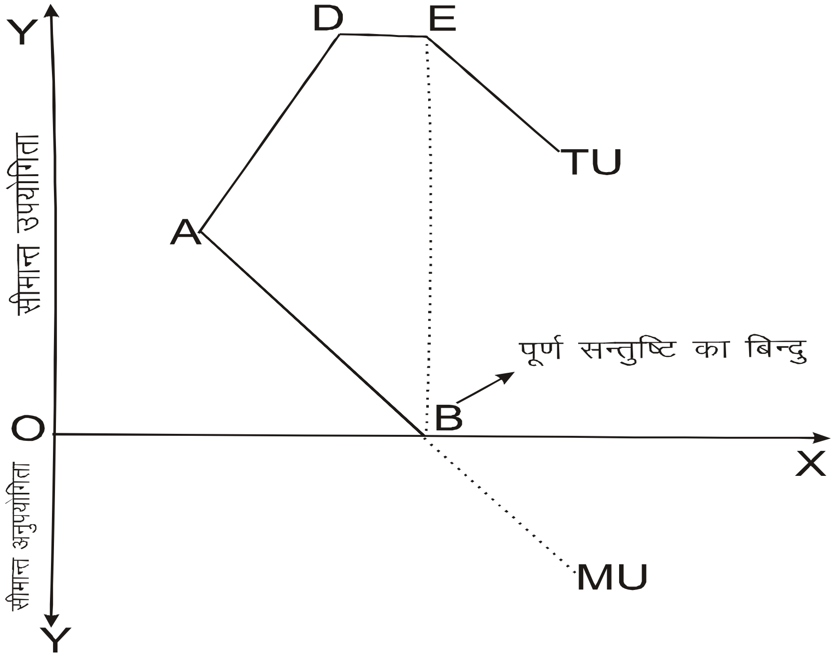

चित्र 2- सीमान्त एवं कुल उपयोगिता

चित्र में ADE वक्र कुल उपयोगिता तथा AB रेखा सीमान्त उपयोगिता रेखा है। दोनों वक्रों से हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते है।

जब तक सीमान्त उपयोगिता धनात्मक है (चाहे वह घट रही हो), तब तक कुल उपयोगिता बढ़ती है। A बिन्दु E से तक की स्थिति।

जब सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है तब कुल उपयोगिता अधिकतम होती है। देखे चित्र में EB रेखा। बिन्दु E उच्च्तम बिन्दु है तथा B बिन्दु पर उपभोक्ता शून्य उपयोगिता के कारण पूर्ण तृप्त है।

जब सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक होती है (बिन्दु B से नीचे की स्थिति) तब कुल उपयोगिता घटने लगती है (देखें बिन्दु E से नीचे की स्थिति)।

4.6 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम अथवा गौसेन का प्रथम नियम

इस नियम का प्रतिपादन सर्वप्रथम फेंच अर्थशास्त्री हरमैन हैनरिक गौसेन ने किया था। इसीलिए इस नियम को गौसेन का प्रथम नियम या तृप्ति का नियम भी कहते है। उन्हीं के विचार को मार्शल ने एक विकसित रूप से प्रस्तुत किया।

मार्शल के अनुसार- ''किसी व्यक्ति के पास किसी वस्तु के स्टॉक की मात्रा में वृद्धि होने से जो अतिरिक्त लाभ उसको प्राप्त होता है, अन्य बातों के समान रहने पर, वह वस्तु के स्टॉक की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि के साथ-साथ घटता जाता है।''

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इस बात को अनुभव किया कि किसी वस्तु के प्रयोग से यह हो सकता है कि प्रारम्भ में उपयोगिता बढ़े परन्तु एक सीमा के बाद वह अवश्य गिरने लगेगी। इसलिए आधुनिक अर्थशास्त्री इस नियम की परिभाषा में 'एक बिन्दु के बाद' या 'एक सीमा के बाद' शब्दों का प्रयोग करते है।

प्रो० बोल्डिंग - ''जब कोई उपभोक्ता, अन्य वस्तुओं के उपभोग को स्थिर रखते हुए, किसी वस्तु के उपभोग को बढ़ाता है तो परिवर्तनशील वस्तु की सीमान्त उपयोगिता, अन्त में, अवश्य घटती है।''

4.6.1 घटती हुई सीमान्त उपयोगिता के कारण-

(i) व्यक्ति की इच्छाएं अनन्त होती है किन्तु प्रत्येक इच्छा को तृप्त किया जा सकता है। जैसे-जैसे व्यक्ति एक वस्तु की इकाइयों का प्रयोग बढ़ता है, उसकी इच्छा की तीव्रता कम होती जाती है और उपभोक्ता पूर्ण सन्तुष्टि स्तर पर पहुँच जाता है जहाँ उसकी सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है।

(ii) विभिन्न वस्तुएँ अपूर्ण स्थानापन्न होती है। अतः वस्तओं को एक निश्चित अनुपात में ही प्रयोग किया जा सकता है।

उदाहरण द्वारा नियम की व्याख्या-निम्न सारणी में आरम्भिक इकाइयाँ सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता दोनों में वृद्धि कर रही है क्योंकि एक इकाई का उपभोग करने के बाद वस्तुतः उसकी तीव्रता को और बढ़ा देती है। दूसरी इकाई के बाद सीमान्त उपयोगिता घटना आरम्भ हो जाती है किन्तु धनात्मक है जिसके कारण कुल उपयोगिता बढ़ती है। जब सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है तो कुल उपयोगिता अधिकतम है।

सारणी – 3 ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता नियम

वस्तु X की इकाई	**सीमान्तउपयोगिता (MU)**	**कुल उपयोगिता (TU)**
1	30	30
2	40	30 + 40 = 70 बढ़ती दर
3	30	70 + 30 = 100
4	20	100 + 20 =120 घटती दर
5	10	120 + 10 = 130
6	0	130 +0 = 130 पूर्ण सन्तुष्टि बिन्दु
7	-10	130 - 10 = 120

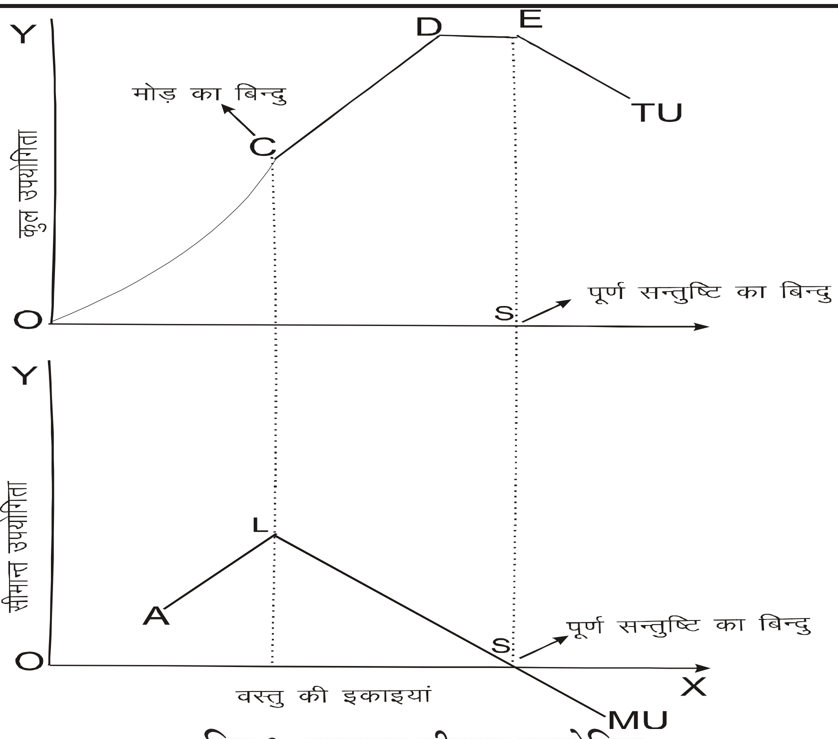

चित्र 3 - ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता

कुल सन्तुष्टि रेखा OCDE को हम तीन मुख्य भागों में बांट सकते है। O से C तक, C से D तक तथा E से नीचे का भाग। बिन्दु O से C तक का भाग तीव्र गति से ऊपर जा रहा है क्योंकि नीचे वाले चित्र में A बिन्दु से L तक सीमान्त उपयोगिता भी बढ़ रही है। बिन्दु C पर TU वक्र में एक मोड़ आता है जहाँ से TU बढ़ तो रही है किन्तु घटती दर से। इसलिए बिन्दु C को मोड़ का बिन्दु कहते है। बिन्दु Oसे C तक TU वक्र X अक्ष के प्रति उन्तोदर होता है किन्तु बिन्दु C के बाद तथा बिन्दु D तक TU वक्र X-अक्ष के प्रति अवनतोदर हो जाता है क्योंकि इसके मध्य TU वक्र, MU के घटने लेकिन धनात्मक होने के कारण, घटती हुई दर से बढ़ रहा है। तीसरा भाग E से नीचे का भाग, जिसमें सीमान्त उपयोगिता के ऋणात्मक होने के कारण कुल उपयोगिता वक्र TU से घटना आरम्भ कर दिया है।

4.6.2 नियम की मान्यताएँ अथवा अन्य बातें समान रहे वाक्यांश का अर्थ-

मार्शल तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने नियम की परिभाषा में अन्य बातें समान रहे वाक्यांश का प्रयोग किया है। इसका अर्थ है कि इस नियम की कुछ मान्यताएँ या सीमाएँ या शर्तें हैं जिनके अन्तर्गत ही यह नियम लागू होगा अन्यथा नहीं। नियम की मुख्य मान्यताएँ निम्नलिखित हैः-

(i) वस्तु का उपभोग उपयुक्त इकाइयों में किया जाना चाहिए।

(ii) वस्तु की सभी इकाइयाँ गुण तथा मात्रा में समान होनी चाहिए।

(iii) वस्तु की इकाइयों का उपभोग लगातार होना चाहिए।

(iv) वस्तु का मूल्य परिवर्तन नही होना चाहिए।

(v) वस्तु की स्थानापन्न वस्तुओं का मूल्य भी समान रहना चाहिए।

(vi) उपभोक्ता की मानसिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

(vii) उपभोक्ता की रूचि, आदत, फैशन, स्वभाव तथा आय समान रहनी चाहिए।

(viii) आवश्यकता एक ही होनी चाहिए।

4.6.3 नियम के अपवाद-इस नियम के कुछ अपवाद बतायें जाते हैं, परन्तु वे सही नहीं हैं। सभी अपवाद दिखावटी हैं, कोई भी अपवाद वास्तविक नहीं है। कथित या दिखावटी अपवाद निम्नलिखित हैः-

4.6.3.1 रूचियां- कभी-कभी यह कहा जाता है कि कुछ विशेष प्रकार की रूचियों में सीमान्त उपयोगिता घटने के स्थान पर बढ़ती है। दुर्लभ सिक्कों का संग्रह, अप्राप्य टिकट एवं पुरानी दुर्लभ मूर्ति कलाएँ आदि का संग्रह इस प्रकार की रूचियों के अंग है। किन्तु यह कहना पूर्णरूपेण सही नहीं है कि ऐसी दुर्लभ वस्तुओं की अतिरिक्त इकाई बढ़ती हुई सीमान्त उपयोगिता प्रदान करती है। क्योंकि दुर्लभ वस्तुएँ एकसमान नहीं होती। उपभोग की इकाइयों की समानता के कारण ऐसी वस्तुओं में यह नियम ही क्रियान्वित नहीं होता। यदि दुर्लभ वस्तुओं की अतिरिक्त इकाइयां एकसमान हों तो निश्चित रूप से प्रत्येक अतिरिक्त इकाई घटती हुई सीमान्त उपयोगिता देगी।

4.6.3.2 संगीत एवं कविता में- संगीत एवं कविता में उसी संगीत धुन को बार-बार सुनना अच्छा लगता है। घटती सीमान्त उपयोगिता नियम यहाँ लागू नहीं होता। किन्तु वास्तविकता यह है कि यदि उसी संगीत को लगातार सुना जाय तो कुछ समय बाद व्यक्ति उससे ऊब जाता है और उसे उपयोगिता के स्थान पर अनुपयोगिता मिल ती है। अतः इसे एक अपवाद नहीं कहा जा सकता।

4.6.3.3 मुद्रा संचय में- मुद्रा के सम्बन्ध में कहा जाता है कि प्रत्येक अतिरिक्त इकाई बढ़ती उपयोगिता देती है क्योंकि व्यक्ति और धनापार्जन करके और अमीर होना चाहता है। इस प्रकार कंजूस के लिए यह नियम लागू नहीं होता। किन्तु यह अपवाद भी सही नहीं है क्योंकि कंजूस व्यक्ति व्यय करता है तो सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा उसके लिए वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता अधिक तेजी से गिरती है। साथ ही साथ यह भी कहना अनुचित न होगा कि धनी व्यक्ति के लिए मुद्रा की एक अतिरिक्त इकाई की उपयोगिता निश्चित रूप से गरीब व्यक्ति की तुलना में कम होगी। अतः मुद्रा संचय वास्तविकता में इस नियम का अपवाद नहीं।

यदि मान्यताएँ पूर्ववत् हैं तो, आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, इस नियम का कोई वास्तविक अपवाद नहीं रह जाता है और नियम पूर्ण रूप से सर्वव्यापी हो जाता है।

4.6.4 नियम का महत्व-

1. यह नियम उपभोक्ता के व्यवहार की व्याख्या करता है। उपभोक्ता अपनी सीमित आय से कैसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करता है यह नियम इस पर प्रकाश डालता है।
2. यह सिद्धान्त मांग वक्र के रूप की व्याखा करता है। मांग वक्र के बायें से दायें गिरने के कारण को इस सिद्धान्त की सहायता से समझा जा सकता है।
3. यह सिद्धान्त उपभोक्ता की बचत को स्पष्ट करता है।
4. यह नियम वस्तु के प्रयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य के अन्तर को स्पष्ट करता है। यह नियम मूल्यों के विरोधाभास को स्पष्ट करता है। इन दोनों मूल्यों का अन्तर हीरे एवं पानी से स्पष्ट किया जा सकता है। इस अन्तर को स्पष्ट करने का आधार इन वस्तुओं की सीमान्त एवं कुल उपयोगिताएँ है। विनिमय मूल्य का सम्बन्ध सीमान्त उपयोगिता से है जबकि प्रयोग मूल्य का सम्बन्ध कुल उपयोगिता से है । पानी की कुल उपयोगिता बहुत ऊँची होती है क्योंकि इसका प्रयोग मूल्य बहुत अधिक है किन्तु इसका विनिमय मूल्य बहुत कम है क्योंकि इसकी सीमान्त उपयोगिता बहुत कम है और तेजी से गिरती होती है। जबकि दूसरी ओर हीरे की उपयोगिता पानी की कुल उपयोगिता से कम होती है किन्तु सीमान्त उपयोगिता हीरे के लिए अधिक होने के कारण उसका विनिमय-मूल्य बहुत ऊँचा है। हीरे की सीमान्त उपयोगिता घटती तो है किन्तु अत्यन्त धीमी गति से। इस प्रकार किसी वस्तु का विनिमय मूल्य अर्थात् कीमत उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिमा से नियन्त्रित होती है क्योंकि सीमान्त उपयोगिता का सम्बन्ध 'इच्छा की प्रबलता' से है जबकि कुल उपयोगिता का 'सन्तुष्टि की सीमा' से। अतः सीमान्त उपयोगिता अधिक होने के कारण उपभोक्ता अधिक कीमत देने को तत्पर रहता है। यही कारण है कि हीरे का विनिमय मूल्य अधिक सीमान्त उपयोगिता के कारण ऊँचा होता है और पानी, जिसकी सीमान्त उपयोगिता बहुत कम होती है, कम विनिमय मूल्य रखता है।
5. कर निर्धारण में- प्रगतिशील करों का भार धनी व्यक्तियों पर अधिक तथा गरीब व्यक्तियों पर कम पड़ता है। सीमान्त उपयोगिता नियम ही प्रगति शील कर प्रणाली का आधार है क्योंकि धनी व्यक्ति के लिए मुद्रा का सीमान्त उपयोगिता निर्धन व्यक्ति की तुलना में कम होती है।

4.7 सम-सीमान्त उपयोगिता का नियम या गौसेन का द्वितीय नियम

इस सिद्वांत को प्रतिस्थापन का नियम, उपयोगिता विश्लेषण में उपभोक्ता का सन्तुलन , गौसेन का द्वितीय नियम आदि नामों से जाना जाता है।

सम-सीमान्त उपोगिता नियम इस बात पर प्रकाश डालता है कि एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय को विभिन्न वस्तुओं पर किस प्रकार व्यय करे ताकि उसको अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो। जब उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है तो यह कहा जाता है कि उपभोक्ता सन्तुलन की स्थिति में है। अतः सम-सीमान्त उपयोगिता नियम उपभोक्ता के सन्तुलन को बताता है। गोसेन ने इस सिद्वांत को दिया था इसलिए इस सिद्वांत को गोसेन का दूसरा नियम भी कहते है।

प्रो० मार्शल ने इस नियम का कथन एक वस्तु के सम्बन्ध में दिया जिसको विभिन्न प्रयोगों में इस्तेमाल किया जा सकता है। वस्तु के स्थान पर हम द्रव्य का प्रयोग भी कर सकते है, क्योंकि द्रव्य एक ऐसी वस्तु है जिसको विभिन्न प्रयोगों में बांटा जा सकता है।

प्रो० मार्शल के शब्दों में-यदि किसी मनुष्य के पास ऐसी वस्तु है जिसे वह अनेक प्रयोगों में ला सकता है तो वह उसे अनेक प्रयोगों में इस प्रकार बांटेगा कि प्रत्येक प्रयोग में उसकी सीमान्त उपयोगिता बराबर हो जाये क्योंकि यदि एक प्रयोग में दूसरे की अपेक्षा उसे अधिक उपयोगिता मिल ती है तो वह दूसरे प्रयोग से वस्तु की मात्रा हटाकर और उसका प्रयोग पहले में करके लाभ ले सकता है।

4.7.1 सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की मान्यताएँ-

अर्थशास्त्र के अन्य नियमों की भांति यह नियम भी कुछ मान्यताओं पर आधारित है। मुख्य मान्यताएँ निम्नलिखित हैः-

1. मनुष्य को विवेकशील प्राणी मानकर चलते है।
2. उपभोक्ता की आय, रूचि इत्यादि एक निश्चित समयावधि में समान रहते हैं और उनमें कोई परिवर्तन नही होता।
3. द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान रहती है, अर्थात् द्रव्य के कम या अधिक होने से उसकी सीमान्त उपयोगिता में कोई अन्तर नहीं होता।
4. उपभोक्ता अपने द्रव्य को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में व्यय करता है।
5. उपयोगिता को द्रव्यरूपी पैमाने से माप जा सकता है।

4.7.2 उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा नियम का स्पष्टीकरण-

माना एक व्यक्ति के पास 6 रूपयें हैं वह दो वस्तुओं X तथा Y पर व्यय करना चाहता है और वह प्रत्येक वस्तु पर एक-एक रूपये करके व्यय करता है। सरलता के लिए मान लिया गया है कि दोनों वस्तुओं X तथा Y की कीमतें समान हैं (यद्यपि व्यवहार में ऐसा होना आवश्यक नहीं है।) वस्तुओं पर प्रत्येक 1 रूपयें के व्यय करने से प्राप्त उपयोगिताएँ निम्न तालिका से स्पष्ट हैः-

द्रव्य (रू.) की इकाइयाँ	वस्तु X से उपयोगिता	वस्तु Y से उपयोगिता
1	18 (1)	14 (3)
2	16 (2)	12 (5)
3	14 (4)	10
4	12 (6)	8
5	10	6
6	8	4

उपभोक्ता सर्वप्रथम 1 रूपये को उस वस्तु पर व्यय करेगा जिससे उसको अधिकतम उपयोगिता मिल ती है। तालिका से स्पष्ट है कि रूपये की पहली इकाई वह वस्तु X पर व्यय करेगा क्योंकि उसे 18 इकाइयों के बराबर उपयोगिता मिल ती है। दूसरे रूपये को भी वह वस्तु X पर व्यय करेगा। तीसरे को वह वस्तु X या वस्तु Y में से किसी पर व्यय कर सकता है, क्योंकि दोनों दिशाओं से समान उपयोगिता अर्थात् 14 के बराबर उपयोगिता मिल ती है। माना कि तीसरा रूपय वह वस्तु Y पर व्यय करता है, चौथा रूपया X पर, पांचवा रूपया Y पर, छठा रूपया X पर व्यय करता है। दोनों वस्तुओं पर द्रव्य की व्यय की जाने वाली इकाइयों को कोष्ठकों में दिखाया गया है। इस प्रकार उपभोक्ता 6 रूपय में 4 रूपये वस्तु X पर और 2 रूपये वस्तु Y पर व्यय करता है। द्रव्य को इस प्रकार व्यय करने से दोनों दिशाओं से द्रव्य की सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर हैं, अर्थात् 12 इकाइयों के बराबर हैं। अतः उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होगी। यह सिद्धान्त दो से अधिक वस्तुओं पर भी इसी प्रकार लागू होगा।

उपभोक्ता द्वारा X वस्तु पर 4 रूपये व्यय किये जाते है तथा Y वस्तु पर 2 रूपये व्यय किये जाते है तो दोनो वस्तुओं से प्राप्त कुल उपयोगिता = 18 + 16 + 14 + 12 +14 + 12 = 86

यदि उपभोक्ता X वस्तु पर 5 रूपये तथा Y वस्तु पर 1 रूपया व्यय करता है तो प्राप्त कुल उपयोगिता = 18 + 16 + 14 + 12 + 10 + 14 = 84

इस प्रकार दोनो वस्तुओं की अन्तिम इकाई से प्राप्त उपयोगिता यदि समान नही है तो उपभोक्ता को हानि होगी। इसको निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है।

चित्र में दो रेखायें खीची गयी है जोकि वस्तु Xतथा वस्तु Y पर द्रव्य को व्यय करने से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता को बताती है। चित्र से स्पष्ट है कि X पर 4 रूपये व्यय करने से द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता FE के बराबर तथा Y पर 2 रूपये व्यय करने से द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता BC के बराबर है, ये दोनों सीमान्त उपयोगिताएँ OK के बराबर हैं। दोनों दिशाओं से सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर होने से ही उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

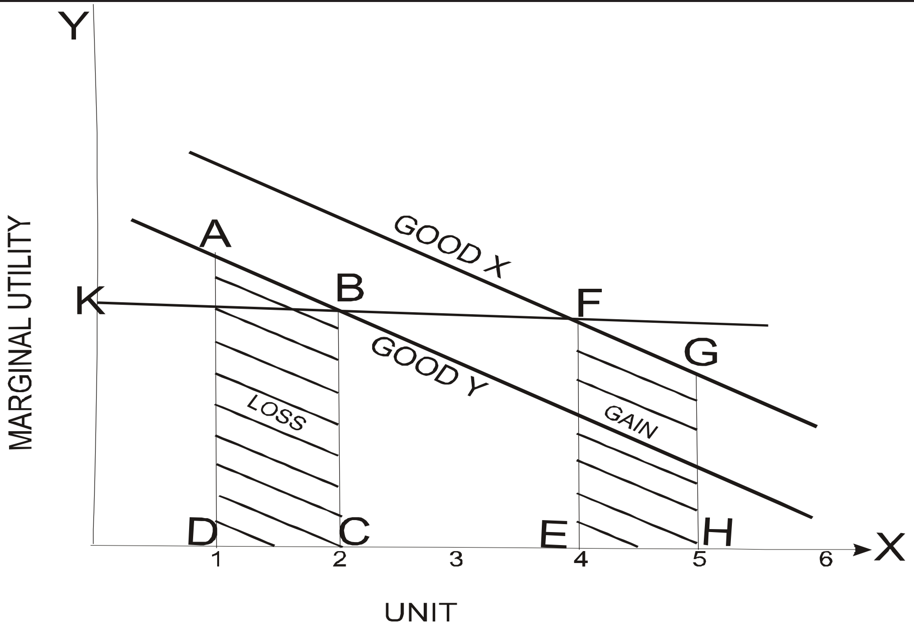

चित्र 4 - सम-सीमान्त उपयोगिता नियम

माना कि वह अपने व्यय करने के क्रम को बदल देता है। 4 रूपये के स्थान पर वह 5 रूपये वस्तु X पर और 2 रूपये के स्थान पर 1 रूपयें वस्तु Y पर व्यय करता है। ऐसा करने से उसे EFGH के बराबर कुल उपयोगिता में वृद्धि होती है और DABC के बराबर कुल उपयोगिता में हानि होता है। स्पष्ट है कि हानि लाभ की अपेक्षा अधिक है। अतः उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि तभी होगी जबकि द्रव्य की सीमान्त उपयोगिताएँ दोनों दिशाओं से बराबर हों।

4.7.3 आनुपातिकता का नियम- सम-सीमान्त उपयोगिता नियम को अनुपातिकता का नियम भी कहते है। अभी तक सरलता के लिए हम यह मानकर चले थे कि वस्तु X की कीमत (अर्थात् P_X) तथा वस्तु Y की कीमत (अर्थात् P_Y) समान है; परन्तु व्यवहार में वस्तुओं की कीमतें भिन्न होती हैः माना $P_X = 2$ रूपये तथा $P_Y = 4$ रूपये।

पहले हम केवल एक वस्तुX को लेते हैं, इस वस्तु के सन्दर्भ उपभोक्ता की अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति (अर्थात् उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति) पर विचार करते हैं। उपभोक्ता वस्तु X को उस सीमा तक खरीदेगा जहाँ पर कि वस्तु X सीमान्त उपयोगिता (MU_x) घटकर उसकी कीमत (P_Y)अर्थात् 2 रूपये के बराबर हो जाती है। सांकेतिक रूप में एक वस्तु के सन्दर्भ मं उपभोक्ता के सन्तुलन की दशा को, निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैः-

$\mathbf{MU_x = P_x}$

यदि MUx अधिक Px से, तो उपभोक्ता वस्तु X की अधिक मात्रा खरीदकर अपनी सन्तुष्टि में वृद्धि कर सकेगा। इसी प्रकार MUx कम है Px से, तो उपभोक्ता वस्तु X की खरीदी जाने वाली मात्रा में

कमी करके (तथा अपनी आय को कम व्यय करके) अपनी सन्तुष्टि में वृद्धि कर सकेगा। स्पष्ट है कि एक वस्तु X के सन्दर्भ में उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि तब मिलेगी जबकि,

$$MUx = Px$$

अथवा

$$\frac{MUx}{Px} = 1 \quad \text{...(i)}$$

अब हम दूसरी वस्तु Y को लेते है। अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने की दृष्टि से उपभोक्ता इस वस्तु Y को भी उस सीमा तक खरीदेगा जहाँ पर कि वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (MU_y) बराबर हो जाती है, उसकी कीमत (P_Y) के सांकेतिक रूप में,

$$MU_Y = P_Y$$

$$\frac{MUy}{Py} = 1 \text{..................................} \quad \text{(ii)}$$

विलेषण की सरलता के लिए यदि दो वस्तुओं X तथा Y को लिया जाये, तो उपभोक्ता के सन्तुलन की दो दशा को, समीकरण **(i)**तथा **(ii)**के आधार पर निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

$$\frac{MUx}{Px} = \frac{MUy}{Py}$$

अथवा

$$\frac{MUx}{MUy} = \frac{Px}{Py}$$

दो वस्तुओं से अधिक के सम्बन्ध में भी उपभोक्ता के सन्तुलन के लिए आनुपातिकता की दशा लागू होगी। माना कि एक व्यक्ति अपनी आय को विभिन्न वस्तुओं X, Y, Z व्यय करना चाहता है, तो अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने और सन्तुलन की स्थिति में रहने के लिए निम्न सम्बन्ध पूरा होना चाहिएः-

$$\frac{Marginal Utility of X}{Price of X} = \frac{M.U. of Y}{Price of Y} = \frac{M.U. of Z}{Price of Z} = etc.$$

चूँकि एक वस्तु उपयोगिता तथा कीमत का अनुपात दूसरी वस्तु की उपयोगिता तथा कीमत के अनुपात के बराबर होता है, इसलिए सम-सीमान्त उपयोगिता नियम को आनुपातिकता का नियम भी कहते है।

4.7.4 सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (अर्थात् प्रतिस्थापन का नियम) का महत्त्व

मार्शल के अनुसार- ''प्रतिस्थापन के सिद्धान्त का प्रयोग आर्थिक खोज के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में लागू होना है।'' इस नियम को अर्थशास्त्र का आधार कहा जाता है। इस नियम का विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग निम्न विवरण से स्पष्ट हैः-

4.7.4.1 उपभोग के क्षेत्र में प्रयोग - 'यह नियम बतात है कि अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए प्रत्येक उपभोक्ता अपनी सीमित आय (द्रव्य) को विभिन्न वस्तुओं (जैसे- X, Y, Z) पर इस प्रकार व्यय करेगा कि प्रत्येक वस्तु से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर हों , अर्थात् आनुपातिकता की दशा पूरी होनी चाहिए जोकि नीचे दी गयी हैः- $\frac{MUx}{Px} = \frac{MUy}{Py} = \frac{MUz}{Pz} = etc.$

4.7.4.2उत्पादन के क्षेत्र में प्रयोग - प्रत्येक उत्पादन का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। इसके लिए उत्पादन विभिन्न साधनों को इस मिलायेगा कि कम से कम लागत पर अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त हो। इस सम्बन्ध में उत्पादन को प्रतिस्थापन के सिद्धान्त की सहायता लेनी पड़ती है। अधिकतम उत्पत्ति कम से कम लागत पर प्राप्त करने के लिए उत्पादक एक महँगे तथा कम उत्पादक साधन के स्थान पर सस्ते तथा अधिक उत्पादक साधन का प्रतिस्थापन करेगा और उस सीमा तक प्रतिस्थापन करता जायेगा जब तक कि दोनों साधनों की सीमान्त उत्पादकताएँ बराबर न हो जायें। इस बात को प्रो0 बेन्हम ने निम्न प्रकार से व्यक्त कियाः-

यदि $\frac{M\arg inal\Pr oductofFactorA}{\Pr iceofFactorA} > \frac{Mariginal\Pr oductofFactorB}{\Pr iceofFactorB}$ तो उत्पादक साधन के B स्थान पर साधन A का प्रतिस्थापन करता जायेगा जब तक कि दोनों अनुपात बराबर न हो जायें। यह बात दो से अधिक साधनों के सम्बन्ध में भी लागू होगी, अर्थात्

$$\frac{M.P.ofFactorA}{\Pr iceofFactorA} = \frac{M.P.FactorB}{\Pr iceofFactorB} = \frac{M.P.ofFactorC}{\Pr iceofFactorC} = etc.$$

{इस प्रकार उत्पत्ति के एक साधन के विभिन्न प्रयोगों के सम्बन्ध में भी यह नियम लागू होता है। उदाहरणार्थ, भूमि को विभिन्न प्रयोगों (खेती करने, मकान निर्माण करने इत्यादि) में उत्पादक इस प्रकार बाँटेगा कि प्रत्येक दिशा से सीमान्त उत्पादकताएँ समान हों।}

4.7.4.3 विनिमय के क्षेत्र में प्रयोग - (अ) वास्तव में, विनिमय एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु के प्रतिस्थापन करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। एक वस्तु की न्यूनता होने के कारण उसकी कीमत ऊँची हो जाती है तो हम अधिक न्यून वस्तु के स्थान पर कम न्यून वस्तु का प्रतिस्थापन करने लगते हैं और इस प्रकार से न्यून वस्तु की कमी समाप्त हो जाती है तथा उसकी कीमत गिर जाती है। (ब) मूल्य निर्धारण में सीमान्त उपयोगिता मदद करती है। एक उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए मूल्य उसकी सीमान्त उपयोगिता के बराबर ही देना चाहेगा, सीमान्त उपयोगिता से अधिक मूल्य नहीं देगा। (स) इसी प्रकार वस्तु-विनिमय के सम्बन्ध में व्यक्तियों के बीच दो वस्तुओं का विनिमय तब तक होगा जब तक कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए दोनों वस्तुओं की सीमान्त उपोगिताएँ बराबर ने हो जायें, तभी वस्तु-विनिमय से दोनों पक्षों को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा।

4.7.4.4 वितरण के क्षेत्र में प्रयोग - वितरण की समस्या है कि संयुक्त उत्पादन में से विभिन्न उत्पत्ति के साधनों का हिस्सा कैसे निश्चित किया जाये? इसको हल् करने के लिए हम प्रतिस्थापन या सम-सीमान्त उत्पादकता के नियम की मदद लेते है। पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक उत्पत्ति के साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही मूल्य दिया जाता है।

4.7.4.5 राजस्व के क्षेत्र में प्रयोग - सरकार का उद्देश्य अपनी सीमित आय में अधिकतम सामाजिक कल्याण प्राप्त करना होता है। इसमें सम-सीमान्त उत्पादकता नियम मदद करता हैं। सरकार अपनी सीमित आय को विफिन्न मदों पर इस प्रकार व्यय करती है कि प्रत्येक दिशा से सीमान्त उत्पादकता बराबर हो।

4.7.5 नियम की आलोचनाए:-

बहुत-सी सीमाओं तथा कठिनाइयों के परिणामस्वरूप यह नियम व्यावहारिक जीवन में लागू नही हो पाता है। इसकी मुख्य आलोचनाएँ तथा सीमाएँ निम्न हैः-

1. प्रायः उपभोक्ता हिसाब की बारीकियां में नहीं जाते- इस नियम की मान्यता है कि अधिकतम सन्तुष्टि को प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता को विभिन्न वस्तुओं से मिल ने वाली उपयोगिताओं का हिसाब लगाकर ही उन पर द्रव्य व्यय करना चाहिए। परन्तु व्यवहार में अधिकांश व्यक्ति हिसाब की बारीकियां में नहीं पडते हैं, वे अपनी आय को आदत इत्यादि के बस में होकर व्यय करते हैं।
2. वस्तुओं की अविभाज्यता- प्रो० बोल्डिग ने इस सीमा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। नियम लागू होने के लिए एक मान्यता यह है कि प्रयोग की जाने वाली वस्तु को छोटी-छोटी इकाइयों में प्रयोग किया जाये। परन्तु बहुत-सी वस्तुओं, जैसे- रेडियों, पंखा, कार, मकान इत्यादि ऐसी हैं जिनको छोटी-छोटी इकाइयों में विभाजित नहीं किया जा सकता और इसलिए उन वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता की तुलना करना सम्भव नहीं और न ही इनकी तुलना अन्य वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं से की जा सकती है।
3. अनिश्चित बजट-अवधि- प्रो० बोल्डिग के अनुसार- हमारी बजट अवधि निश्चित नह है, जबकि यह नियम एक निश्चित बजट-अवधि में ही लागू होता है।
4. आदत, रीति-रिवाज तथा फैशन- व्यवहार में मनुष्य प्रायः आदत, रीति-रिवाज तथा फैशन से प्रभावित होता है। वह सोच-समझकर विभिन्न वस्ताुओं से मिल ने वाली उपयोगिताओं को ध्यान में रखकर व्यय नहीं करता। उदाहरणार्थ- एक व्यक्ति पुत्र होने पर रीति-रिवाज के कारण समाज में अपने मित्रों तथा रिश्तेदारों को पार्टी देता है, जबकि इससे उसको उपयोगिता कम मिल ती है। इसी प्रकार आदत बस मनुष्य सिगरेट , शराब इत्यादि पर अपनी आय का एक अच्छा भाग व्यय कर देता है। अतः आदत, रीति-रिवाज, फैशन इत्यादि इस नियम के लागू होने में बाधक होते है।

5. अज्ञानता, आलस्य तथा लापरवाही- बहुत से उपभोक्ता बाजार में प्रचलित विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों तथा अन्य बातों से अनभिज्ञ होते हैं और इसलिए व अपनी आय को व्यय करते समय विभिन्न वस्तुओं से मिल ने वाली उपयोगिताओं की ठीक प्रकार से तुलना न कर सकने के कारण अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त नहीं कर पातें है।
6. वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन- वस्तुओं की कीमतें प्रायः बाजार में बदलती रहती है जिसके परिणामस्वरूप उनकी उपयोगिताएँ भी बदलती रहती हैं और इसलिए विभिन्न वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं की तुलना करना कठिन हो जाता है। अतः वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन नियम के लागू होने में बाधक होता है।
7. पूरक वस्तुएँ- कुछ वस्तुएँ एक-दूसरे की पूरक होती हैं और वे एक साथ एक निश्चित अनुपात में प्रयोग की जाती है; जैसे- डबल रोटी तथा मक्खन, फाउण्टेन पैन तथा स्याही, दूध-चीनी-चाय इत्यादि। इन वस्तुओं को एक-दूसरे के स्थान पर प्रयोग नहीं किया जा सकता, स्पष्ट है कि इन वस्तुओं की उपयोगिता की तुलना नहीं की जा सकती, और इसलिए इन वस्तुओं के सम्बन्ध में यह नियम लागू नहीं होता।

नियम की कुछ मान्यताएँ भी गलत हैं- नियम की कई मान्यताएँ गलत हैं-

(i) उपोगिता को ठीक प्रकार मापा नहीं जा सकता, जबकि यह नियम यह मानकर चलता है कि उसे मापा जा सकता है।

(ii) यह नियम द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मानकर चलता है, जबकि यह गलत है क्योंकि द्रव्य के कम या अधिक होने से उसकी सीमान्त उपयोगिता में अन्तर पड़ता है।

(iii) मनुष्य सदैव विवेकशील नहीं होता।

4.7.6 निष्कर्ष- नियम की कुछ सीमाओं के होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति सचेत अथवा अचेत रूप से इस नियम का पालन करता है। यह नियम भी अर्थशास्त्र के अन्य नियमों की भाँति आर्थिक प्रवृत्ति का द्योतक है इसलिए प्रो० चैपमैन का कथन उचित हैः-

''यद्यपि हम प्रतिस्थापन या सम-सीमान्त उपयोगिता नियम के अनुसार अपनी आय को वितरित करने में ठीक उसी प्रकार विबस नहीं होते, जिस प्रकार कि एक पत्थर ऊपर की ओर फेंके जाने पर विबस होकर नीचे भूमि पर गिरता है, परन्तु फिर भी हम वास्तव में, मोटे रूप से ऐसा ही करते हैं, क्योंकि हममें तर्क-बुद्धि है।''

4.8 सारांश

इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके है कि सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम तथा सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का प्रमुख आधार सीमान्त उपयोगिता ही है। आप यह भी जान चुके

होगे कि सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम तथा सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का अर्थशास्त्र में क्या महत्व है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप उपयोगिता ह्रास नियम तथा सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की व्याख्या सहज रूप से कर सकेगें।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

बहुविकल्पीय प्रश्न-

1. कुल उपयोगिता अधिकतम होती है जबकि सीमान्त उपयोगिता:

   (अ) धनात्मक होती है (ब) ऋणात्मक होती है

   (स) शून्य होती है (द) इसमें से कोई नही

2. गौसन का दूसरा नियम कौन-सा है?

   (अ) माँग का नियम (ब) सम-सीमान्त उपयोगिता नियम

   (स) पूर्ति का नियम (द) सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम

3. पूर्ण तृप्ति के बिन्दु पर कुल उपयोगिता:

   (अ) न्यूनतम होती है (ब) अधिकतम होती है

   (स) शून्य होती है (द) अनन्त होती है

4. घटती हुयी सीमान्त उपयोगिता का विचार प्रस्तुत करने वाले पहले व्यक्ति थे:

   (अ) मार्शल (ब) गोसन

   (स) कैनन (द) वाYरस

5. निम्नलिखित तालिका में खाली स्थान पर सही संख्याएं क्या होंगी?

Unit	1	2	3	4	5
MU_x	10	13	-	2	-
TU_x	10	23	30	32	32

   (अ) 6 (ब) 7

   (स) 8 (द) 5

6. जब सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक होती है तो कुल उपयोगिता:

(अ) बढ़ती है (ब) स्थिर रहती है

(स) घटती है (द) शून्य होती है

7. हीरे का मूल्य अधिक होता है, क्योंकि इसकी:

(अ) सीमान्त उपयोगिता अधिक होती है

(ब) सीमान्त उपयोगिता कम होती है

(स) सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है

(द) कुल उपयोगिता अधिक होती है

8. उपभोक्ता सन्तुलन में होगा, जब:

(अ) $\frac{MUx}{MYy} > \frac{Py}{Py}$ (ब) $\frac{MUx}{MYy} < \frac{Px}{Py}$

(स) $\frac{MUx}{MYy} = \frac{Py}{Py}$ (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

उत्तर-(1) शून्य होती है (2) सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (3) अधिकतम होती है

(4) मार्शल (5) 7 (6) घटती है (7) सीमान्त उपयोगिता अधिक होती है (8) $\frac{MUx}{MYy} = \frac{Py}{Py}$

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सीमान्त उपयोगिता नियम की व्याखा किजिए?

2. कुल उपयोगिता तथा सीमान्त उपयोगिता में सम्बन्ध की स्पष्ट चर्चा कीजिए?

3. निम्नलिखित तालिका से वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तालिका निकालिए तथा तथा तालिकाओं से रेखाचित्र बनाकर पूर्ण सन्तुष्टि का बिन्दु दिखाइये:

Unit	1	2	3	4	5	6	7
TU_x	4	14	20	24	26	24	20

4. उपयोगिता ह्रास नियम के कौन-कौन से अपवाद है?

5. आनुपातिकता के नियम को समझाइए?

उत्तर: (1) 4.5.1. देखिए। (2) 4.5.2. देखिए। (3) 4.6.1. देखिए। (4) 4.6.3. देखिए। (5) 4.7.3. देखिए।

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. Koutsoyinuis. A. (1979) Modern Microeconomics (2nd Edition), Macmillian Press, London.
2. Ahuja, H.L. (2010) Priniciples of Micro Economics, S & Chand Publishing House.
3. Pererson, L. and Jain (2006) Managerial Economics, 4th edition, Pearson Education.
4. Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
5. Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.

4.11 निबंधात्मक प्रश्न-

1. सम-सीमान्त उपयोगिता नियम को समझाइये। तथा इसकी सीमाओं की व्याखा किजिए?
2. सम-सीमान्त उपयोगिता नियम को समझाइये तथा इसके महत्व की व्याखा कीजिए?
3. उपयोगिता ह्वास नियम को विस्तार से समझाइये।

इकाई-5 माँग एवं पूर्ति का नियम

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 माँग का अर्थ
5.4 माँग के नियम का अर्थ
5.5 मांग के नियम मान्यतायें
5.6 माँग रेखा बायें से दाये नीचे की ओर गिरती हुई क्यो होती हैं
5.7 माँग -नियम के अपवाद
5.8 माँग के प्रकार
5.9 माँग को प्रभावित करने वाले कारक
5.10 पूर्ति का नियम
5.11 पूर्ति के नियम मान्यतायें
5.12 पूर्ति के नियम के अपवादं
5.13 पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक
5.14 सारांश
5.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.17 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र के सिद्वांत से सम्बन्धित यह पाचवीं इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि उपयोगिता का अर्थ क्या है? तथा सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम तथा सम-सीमान्त उपयोगिता नियम को कैसे ज्ञात किया जाता है।

कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग तथा पूर्ति में होने वाले गुणात्मक परिवर्तन को माँग एवं पूर्ति के नियम में ज्ञात करेंगे। माँग एवं पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारको का विश्लेषण माँग एवं पूर्ति के नियम के संदर्भ में करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कीमत में परिवर्तन के कारण माँग तथा पूर्ति में होने वाले परिवर्तन को ही नही समझा सकेंगे बल्कि माँग एवं पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों का विशद् विश्लेषण भी कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि माँग तथा पूर्ति के नियम का अर्थ क्या है।
- समझा सकेंगे कि माँग एवं पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक कौन कौन से है।
- माँगतथा पूर्ति के महत्व को समझा सकेंगे तथा माँग के विभिन्न प्रकारों का विशद् विश्लेषण भी कर सकेगें।

5.3 माँगका अर्थ

अर्थशास्त्र में प्रत्येक इच्छा माँग नहीं होती। अर्थशास्त्र में माँग को निम्न तीन रूपों में परिभाषित किया गया है-

1. माँग एक प्रभावपूर्ण इच्छा है: प्रो० पैन्सन के अनुसार माँग एक प्रभावपूर्ण इच्छा है। एक इच्छा को प्रभावपूर्ण इच्छा केवल तभी माना जाता है जबकि उसमें निम्न तीन तत्व हों- (अ) किसी वस्तु की इच्छा होना, (ब) इच्छा को पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन (अर्थात् द्रव्य) का होना, (स) साधन अर्थात् द्रव्य को व्यय करने की तत्परता का होना। कोई इच्छा तब तक माँग नहीं बन सकती जब तक कि वह इन तीन शर्तो को पूरा न करती हो।
2. एक निश्चित कीमत: माँग सदैव एक निश्चित कीमत पर होती है, माँगशब्द का कोई अर्थ नहीं है, यदि यह न बताया जाये कि माँग किस कीमत पर है। वस्तु-विशेष की माँग विभिन्न कीमतों पर भिन्न-भिन्न होगी।

3. निश्चित समय या प्रति इकाई समय: माँग सदैव समय की प्रति इकाई (अर्थात् प्रतिदिन, प्रति सप्ताह, प्रति माह या प्रति वर्ष) के साथ व्यक्त की जाती है।
4. प्रो० बेनहम के अनुसार, ''एक निश्चित समय पर किसी वस्तु की माँग उस वस्तु की वह मात्रा है जो किसी समय विशेष पर उस कीमत पर खरीदी जाती है।''
5. माँग तथा आवश्यकता में अन्तर:- माँग तथा आवश्यकता एक-दूसरे से बहुत मिल ती-जुYती हैं, परन्तु फिर भी उनमें थोड़ा अन्तर है। आवश्यकता 'प्रभावपूर्ण इच्छा' को कहते हैं अर्थात् आवश्यकता में तीन बातें होनी चाहिएः-

   किसी वस्तु की अच्छा होना;

   (i) इच्छा को पूरा करने के लिए साधन (द्रव्य) का होना' तथा

   (ii) साधन को व्यय करने की तत्परता का होना। परन्तु माँग को 'प्रभावपूर्ण इच्छा' कहना पर्याप्त नहीं है क्योंकि माँग सदैव एक निश्चित मूल्य पर तथा

   (iii) एक निश्चित समय में होती है। इस प्रकार माँग के लिए निम्न पाँच बातों का होना जरूरी हैः- (1) इच्छा; (2) इच्छा को पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन; (3) साधनों को व्यय करने की तत्परता; (4) निश्चित कीमत; (5) निश्चित समयावधि।

5.4. माँग के नियम का अर्थ

माँग का नियम कीमत तथा माँगी गई मात्रा के सम्बन्ध को बताता है। अन्य बातों के समान रहते हुए, किसी सेवा या वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी माँग घटती है, तथा कीमत में कमी होने पर उसकी माँग बढ़ती है। अतः माँग का नियम तथा माँगी गयी मात्रा में विपरीत सम्बन्ध को बताता है।

प्रो० पी० ए० सेम्युलसन- माँग के नियम को नीचे को झुकती हुई माँग का नियम कहना पसन्द करते है तथा इस नियम को निम्न प्रकार से परिभाषित करते हैः-

जब किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि हो जाती है (अन्य सभी बातों के समान रहने पर), तो उस वस्तु की कम मात्रा माँगी जाती है। अर्थात लोग कम मूल्य पर अधिक वस्तु की अधिक मात्रा खरीदते है और अधिक मूल्य पर कम वस्तु की मात्रा खरीदते है।

चूँकि माँग का नियम कीमत तथा माँग में उल्टे सम्बन्ध को बताता है, इसलिए माँग के नियम को निम्न रेखाचित्र में माँग रेखा (DD) नीचे को गिरती हुई या नीचे को झुकती हुई दिखाया गया है।

चित्र से स्पष्ट है कि कीमत OP से बढकर OP_1 हो जाती है तो माँग OQ से घटकर OQ_1 हो जाती है। यदि कीमत OP से घटकर OP_2 हो जाती है तो माँग OQ से बढकर OQ_2 हो जाती है। इस प्रकार नीचे को गिरती हुई माँग रेखा कीमत तथा माँग मे उल्टे सम्बन्ध को बताती है।

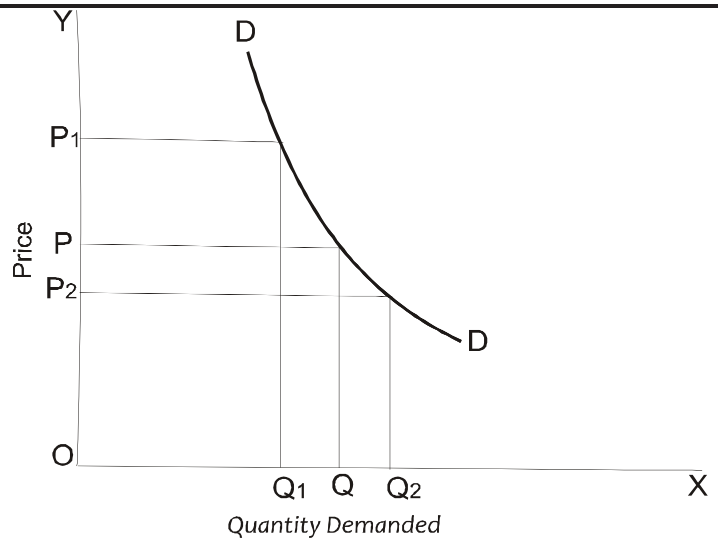

चित्र 1 - माँग वक्र

माँगका नियम एवं गुणात्मक कथन है: इसका अर्थ है कि कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप, यह केवल माँग में परिवर्तन की दिशा को बताता है अर्थात् केवल यह बताता है कि माँग कम होगी या ज्यादा, यह माँग में परिवर्तन के परिमाण को नहीं बताता अर्थात् यह नहीं बताता है कि माँग कितनी मात्रा में कम होगी या कितनी मात्रा में अधिक। संक्षेप में, माँग का नियम बताता है कि माँग कीमत की अपेक्षा विपरीत दिशा में परिवर्तित होती है, परन्तु यह आवश्यकता नहीं है कि माँग में परिवर्तन आनुपातिक हो।

5.5 माँग के नियम की मान्यताएँ

माँग के नियम के कथन में, 'अन्य बातें समान रहें' या 'माँग की दशाएँ समान रहें' महत्वपूर्ण वाक्यांश है; यह नियम की मान्यताओं या सीमाओं को बताता है। प्रो० मेयर्स के अनसुार, माँग के नियम लागू रहने के लिए निम्न दशाएँ या मान्यताएँ पूरी होनी चाहिएः-

(i) व्यक्यिों की आय समान रहनी चाहिए।

(ii) व्यक्तियों के स्वभाव, रूचि तथा पसन्दों में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

(iii) अन्य वस्तुओं की कीमतें समान रहनी चाहिए।

(iv) वस्तु ऐसी किसी नयी स्थानापन्न् वस्तु की खोज नहीं होनी चाहिए।

(v) वस्तु ऐसी नहीं है जिसको रखने या प्रयोग काने से लोगों की समाज में अधिक प्रतिष्ठा मिल ती हो। (क्योकि यदि प्रतिष्ठा प्रदान करने वाली वस्तु है तो धनवान व्यक्ति उसकी ऊँची कीमत होने पर भी अधिक खरीदेंगे।)

5.6 माँग रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई क्यों होती हैं?

माँग का नियम कीमत तथा माँगी गयी मात्रा के बीच उल्टे सम्बन्ध को बताता है। इसलिए जब माँग के नियम को माँग रेखा द्वारा व्यक्त करते हैं तो माँग रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती है। ऐसा क्यों होता है? अर्थात् कीमत तथा माँग में उल्टा सम्बन्ध क्यों होता है? इसकी व्याख्या निम्न कारणों के द्वारा स्पष्ट हो जाती हैः-

5.6.1 उपयोगिता ह्रास नियम- माँग का नियम उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित होता है। सामान्यता एक व्यक्ति किसी वस्तु के लिए कीमत उसकी सीमान्त उपयोगिता के अनुसार देता है। किसी वस्तु की अधिक इकाइयों का प्रयोग करते जाने से, उपयागिता ह्रास नियम के अनुसार, उसकी उपयोगिता घटती जाती है; अतः उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक इकाइयाँ तभी खरीदेगा जबकि उसकी कीमत कम हो। इस प्रकार उपयोगिता ह्रास नियम, माँग के नियम की व्याख्या करता है, अर्थात् बताता है कि कम कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा तथा ऊँची कीमत पर वस्तु की कम मात्रा क्यों खरीदी जाती है।

5.6.2 प्रतिस्थापन प्रभाव- अन्य वस्तुओं की कीमत अपरिवर्तित रहने पर जब किसी वस्तु की कीमत गिरती है तो यह वस्तु अन्य वस्तुओं की अपेक्षा सस्ती प्रतीत होने लगती है या अन्य वस्तुएँ इस वस्तु की अपेक्षा महँगी प्रतीत होने लगती हैं। अतः वस्तु की कीमत गिरने पर लोग इस वस्तु का अन्य वस्तुओं, जिनकी कीमतें अपरिवर्तित रहती हैं, के स्थान पर प्रतिस्थापन करने लगते हैं। इसे प्रतिस्थापन प्रभाव कहते हैं। इस प्रकार वस्तु की कीमत गिर जाने से प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण उसकी माँग बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ, यदि चाय की कीमत गिर जाती है और कॉफी की कीमत पहले जैसी ही रहती है तो कुछ व्यक्ति चाय का प्रतिस्थापन (अर्थात् प्रयोग) कॉफी के स्थान पर करेंगे। इस प्रकार चाय की माँग बढ़ जायेगी। इसी प्रकार, यदि किसी वस्तु की कीमत बढ़ जाती है और अन्य वस्तुओं की कीमतें अपरिवर्तित रहती हैं, तो लोग इस वस्तु के स्थान पर अन्य वस्तुओं का प्रयोग करने लगते हैं और इस वस्तु की माँग कम हो जाती है। अतः स्पष्ट है कि प्रतिस्थापन प्रभाव के परिणामस्वरूप वस्तु की कीमत गिरने पर उसकी माँग बढ़ती है और कीमत बढ़ने पर उसी माँग घटती है, अर्थात् माँग के नियम के लागू होने के कारण की व्याख्या हो जाती है। दूसरे शब्दों में, इस कारण माँग रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती है।

5.6.3 आय प्रभाव- किसी वस्तु की कीमत में कमी वास्तव में उपभोक्ता की आय में वृद्धि के समान है, क्योंकि अब उसे उतनी ही मात्रा खरीदने के लिए कम मुद्रा व्यय करनी पड़ती है। इसी प्रकार से आय में वृद्धि में से एक भाग वह वस्तु की और अधिक मात्रा खरीदने पर व्यय कर सकता है। उदाहरणार्थ, 1 किलो चाय की कीमत 10 रूपये से गिरकर 6 रूपये हो जाती है, तो उपभोक्ता को 2 किलो चाय खरीदने के लिए अब केवल 12 रूपये व्यय करने पड़ते हैं जबकि पहले वह उतनी ही

मात्रा खरीदने के लिए 20 रूपये व्यय करता था। अतः कीमत गिरने से वास्तव में उसकी चाय (20-12) = 8 रूपये से बढ़ जाती है। इस बढ़ी हुई आय में से वह कुछ रूपय और चाय खरीदने पर व्यय कर सकता है और इस प्रकार कीमत गिरने से चाय की माँग बढ़ जाती है। इसे आय प्रभाव माँगके नियम की व्याख्या करता है। दूसरे शब्दों में, 'आय प्रभाव' बताता है कि माँग रेखा बायें से दायें को नीचे की ओर क्यों गिरता है।

नोट- मार्शल का माँग का नियम केवल कीमत के गिरने के प्रतिस्थापन प्रभाव पर ही ध्यान देता है और आय प्रभाव को बिल्कुल भुला देता है।

5.6.4. कुछ नये व्यक्तियों के प्रवेश या कुछ के बाजार छोड़कर जाने के प्रभाव- जब किसी वस्तु की कीमत गिरती है तो कुछ और व्यक्ति जोकि पहले उसको नहीं खरीद सकते थे, खरीदने लगते हैं और इसलिए वस्तु की कुल माँग में वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत, यदि वस्तु की कीमत बढ़ती है तो कुछ व्यक्ति अब उसे नहीं खरीद पायेंगे और वस्तु के बाजार से बाहर हो जायेंगे, अतः वस्तु की माँग घट जायेगी।

5.7 माँग के नियम के अपवाद

माँग के नियम के कुछ अपवाद भी हैं। कुछ अवस्थाओं में माँग वक्र बाएँ से दाएँ ऊपर को ढालू होता है अर्थात् इसकी ढलान धनात्मक होती है। कुछ विशेष परिस्थितियों में उपभोक्ता वस्तु की कीमत बढ़ने पर अधिक मात्रा और कीमत घटने पर कम मात्रा खरीदते हैं। जैसा कि चित्र में वक्र दिखाया गया है। ऊपर की ओर ढालू माँग वक्र के अनेक कारण बताये जाते हैः

5.7.1 युद्ध- यदि युद्ध या आपातिक स्थिति के पूर्व-अनुमान के कारण वस्तु की की पूर्ति में कमी हो जाने की आशंका हो तो कीमत बढ़ने पर भी लोग स्टॉक करने के लिए वस्तु को अधिक खरीदने लगते है, जिससे माँग बढ़ती है।

5.7.2 मंदी- मंदी के दौरान कीमतें कम होने पर भी लोग वस्तुओं की कम मात्रा ही खरीदते हैं। ऐसा इसलिए कि उपभोक्तओं की क्रय-शक्ति कम होती है।

5.7.3 गिफिन विरोधाभास- मार्शल के अनुसार गिफिन विरोधाभास के कारण माँग वक्र की ढलान धनात्मक होती है। उदाहरणार्थ, बहुत घटिया वस्तु जैसे मक्का की कीमत कम होने से उपभोक्ता इसके स्थान पर बढ़िया वस्तु जैसे- गेहूँ का उपभोग अधिक कर देंगे, जिससे मक्का की कीमत कम होने पर उसकी माँग भी कम हो जायेगी। इस गिफिन विरोधाभास के कारण माँग वक्र ऊपर की ओर ढालू होता है।

अतः 'गिफिन वस्तुओं के सम्बन्ध में कीमत की कमी, माँग में कमी उत्पन्न करती है और इस प्रकार यहाँ पर माँग का नियम लागू नहीं होत है। ध्यान रहे कि सभी निम्न कोटि की वस्तुओं को गिफिन वस्तुएँ नही कहते हैं, केवल वे ही निम्न कोटि की वस्तुएँ जिन पर उपभोक्ता अपनी आय का एक अच्छा भाग व्यय करता है, गिफिन वस्तुएँ कहलाती हैं।

5.7.4 प्रदर्शन प्रभाव- यदि उपभोक्ता दिखावटी उपभोग या प्रदर्शन प्रभाव से प्रभावित है तो वे कीमतों के बढ़ने पर भी ऐसी वस्तुएँ खरीदना चाहेंगे जो उन्हें सम्मान प्रदान करने वाली हों। इसके विपरीत, ऐसी वस्तुओं की कीमतें कम होने पर उनकी माँग कम होती है। जैसे- हीरे, जवाहरात, फैशन की वस्तुएँ आदि।

5.7.5 अज्ञानता प्रभाव- उपभोक्ता अज्ञानता प्रभाव के कारण ऊँची कीमत पर भी ऐसी वस्तुएँ खरीद लेते है जो अपनी कीमत, भ्रान्तिजनक पैकिंग, लेबल आदि के कारण धोखे से कुछ और समझ ली जाती है। इसके विपरीत, कुछ वस्तुएँ सस्ती होने पर भी अधिक नहीं बिकतीं क्योंकि उनके पैकिंग, लेबल आदि आकर्षक नहीं होते।

5.7.6 सट्टा- मार्शल सट्टे को भी माँग के महत्वपूर्ण अपवादों में से एक मानता है। उसके अनुसार सटोरियों के दलों में होड़ के कारण माँग पर माँग का नियम लागू नहीं होता। एक ग्रुप जो किसी वस्तु की बहुत अधिक मात्रा मार्किट में फेंकना चाहता है, प्रायः उस वस्तु को खुल्लमखुल्ला खरदीना शुरू कर देता है। इस प्रकार जब वह ग्रुप वस्तु की कीमत बढ़ा देता है, तो चुपचाप और अपरिचित दिशाओं के माध्यम से बहुत अधिक मात्रा बेचने की व्यवस्था कर लेता है।

5.8 माँग के प्रकार-

किसी वस्तु या सेवा की माँगी जाने वाली मात्रा मुख्यतया तीन बातों पर निर्भर करती हैः- (अ) वस्तु या सेवा की कीमत, (ब) उपभोक्ताओं की आय तथा (स) सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतें। अतः इन तीनों बातों को ध्यान में रखते हुए कुछ अर्थशास्त्रियों ने माँग के तीन प्रकार बताये हैः-

5.8.1. मूल्य माँग - मूल्य माँग किसी वस्तु की उन मात्राओं को बताती है जोकि एक उपभोक्ता एक निश्चित समय में विभिन्न कल्पित मूल्यों पर खरीदने को तैयार है, यदि अन्य बातों के समान रहने का अर्थ है कि उपभोक्ता की आय, रूचि, सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों इत्यादि में कोई परिवर्तन नहीं होता। यह माँग रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती है। अर्थात् इसका ऋणात्मक ढाल है। इसका अर्थ है कि मूल्य तथा माँग में उल्टा सम्बन्ध है; यदि मूल्य बढ़ता है तो माँग घटती है तथा मूल्य घटने पर माँग बढ़ जाती है।

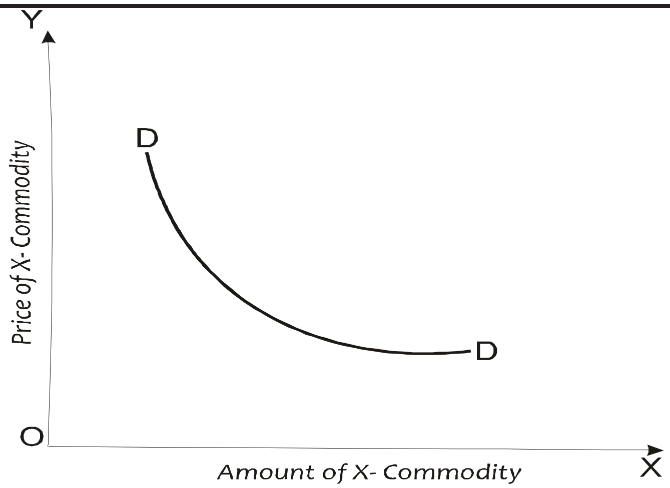

चित्र 2 - कीमत माँग वक्र

5.8.2. आय माँग- आय माँग किसी वस्तु या सेवा की उन मात्राओं को बताती है जोकि उपभोक्ता एक निश्चित समय में आय के विभिन्न स्तरों पर खरीदनें को तैयार है, यदि अन्य बातें समाने पर, आय के बढने माँग भी बढ जाती हैं तथा आय के घटने पर माँग भी घट जाती हैं। आय माँग रेखा को जर्मनी के एक पुराने अर्थशास्त्री ऐंजिल के नाम पर ऐंजिल रेखा भी कहते हैं। कुछ वस्तुएँ ऐसी होती है जिनकी माँग , आय में वृद्धि के साथ बढ़ती है। ऐसी वस्तुओं को आर्थिक दृष्टि से श्रेष्ठ वस्तुएँ कहते है, इस प्रकार की वस्तुएँ विलासिता तथा आराम की वस्तुएँ होती है।

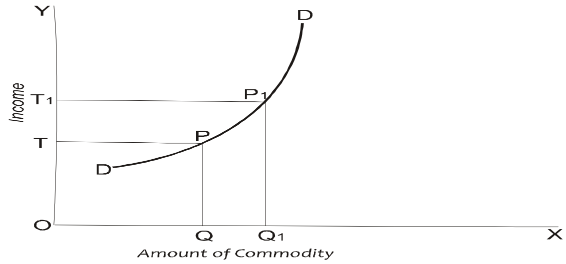

चित्र 3 - श्रेष्ठ वस्तुओं के लिए आय माँग वक्र

चित्र 3 में आय T से बढकर T_1 हो जाती है तो वस्तु की मात्रा की माँग भी बढकर Q से Q_1 हो जाती है।

कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनकी माँग आय वृद्धि के साथ घटती जाती है। ऐसी वस्तु (उदाहरणार्थ, विभिन्न प्रकार के अनाज, कपड़ा इत्यादि) को आर्थिक दृष्टि से निम्न कोटि की वस्तुएँ कहते है।

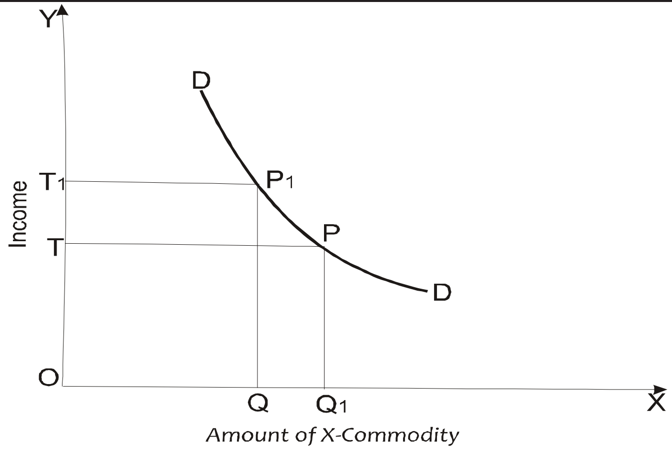

चित्र 4 - निम्न वस्तुओं के लिए आय माँग वक्र

चित्र 4 में आय T से बढकर T_1 हो जाती है तो वस्तु की मात्रा की माँग भी Q_1 से घटकर Q हो जाती है।

5.8.3 आड़ी माँग - घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित वस्तुएँ दो प्रकार की होती है- एक तो, प्रतिस्थापन वस्तुएँ (जैसे-चाय तथा कॉफी) जोकि एक-दूसरे के स्थान पर प्रयोग की जा सकती हैं। दूसरे, पूरक वस्तुएँ (जैसे-स्याही तथा पेन) जाकि एक-दूसरे के साथ पूरक के रूप में प्रयोग की जाती है।

प्रतिस्थापन वस्तुआ में यदि काफी का मूल्य बढ़ जाता है, तो अन्य बातों के समान रहने पर, चाय की माँग में वृद्धि हो जायेगी क्यांकि कॉफी महँगी हो जाने के कारण लोग चाय का प्रयोग अधिक करने लगेंगें। दूसरे शब्दों में, प्रतिस्थापन वस्तुओं के मूल्य तथा माँगी गयी मात्रा में सीधा सम्बन्ध होता है।

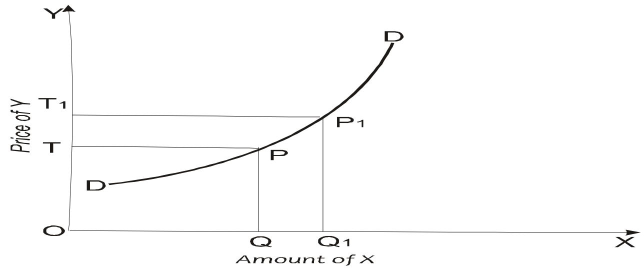

चित्र 5 - प्रतिस्थापन वस्तुओं के लिए माँग वक्र

यदि Y वस्तु की कीमत OT से बढकर OT_1 हो जाती है तो X वस्तु की माँग भी OQ से बढकर OQ_1 हो जाती है।

पूरक वस्तुओं में यदि पेन का मूल्य बढ़ जाता है तो पेन की माँगमें कमी होगी और परिणामस्वरूप स्याही की माँगमें कमी हो जायेगी। इसके विपरीत, यदि पेन का मूल्य घटता है तो पेन की माँग

बढ़ेगी और परिणामस्वरूप स्याही की माँग में वृद्धि होगी। दूसरे शब्दों में, पूरक वस्तुओं के मूल्य तथा माँगी गयी मात्रा में उल्टा सम्बन्ध होता है।

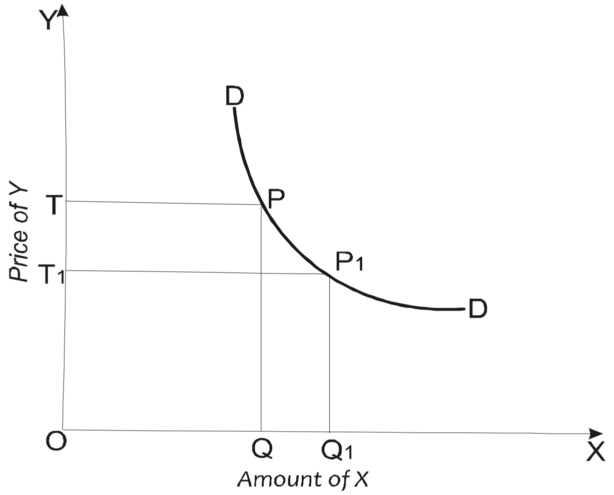

चित्र 6 - पूरक वस्तुओं के लिए माँगवक्र

चित्र में Y वस्तु की कीमत OT1 से बढकर OT हो जाती है तो X वस्तु की माँगभी OQ_1 से घटकर OQ हो जाती हैं।

5.8.4 संयुक्त माँग - जब दो या दो से अधिक वस्तुएँ किसी एक संयुक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक साथ मांगी जाती हैं तो ऐसी माँग को संयुक्त माँग कहा जाता है। उदाहरणार्थ, मोटर तथा पैट्रोल की माँग, पेन तथा स्याही की माँग, डबल रोटी तथा मक्खन की माँग ।

5.8.5 व्युत्पन्न् माँग - जब एक वस्तु की माँग इसलिए की जाती है कि उसकी सहायता से किसी दूसरी वस्तु का उत्पादन किया जाता है अर्थात् वह दूसरी वस्तु के उत्पादन में उत्पादन साधन की भाँति कार्य करती है, तो ऐसी माँग को 'व्युत्पन्न माँग' कहते हैं। उदाहरणार्थ, श्रम की माँग 'व्युत्पन्न माँग' है क्योंकि श्रम की माँग इसलिए की जाती है कि इसकी सहायता से अन्य वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। इसी प्रकार ईंट तथा चूने की माँग 'व्युत्पन्न माँग' है क्योंकि इनकी माँग मकान बनाने के लिए होती है।

5.8.6 सामूहिक माँग - सामूहिक माँगऐसी वस्तु की माँग है जिसका प्रयोग अनेक प्रयोगों में किया जाता है, ऐसी वस्तु की माँग विभिन्न प्रयोगों की यौगिक माँग है, कोयला या बिजली की माँग सामूहिक माँग है क्योंकि इनका प्रयोग विभिन्न प्रकार के प्रयोगों में किया जाता है।

5.9 माँग को प्रभावित करने वाले तत्त्व

5.9.1 आय- एक व्यक्ति कितनी वस्तुओं तथा सवाओं का प्रयोग करता है यह बात उसकी आय पर निर्भर करती है। यदि उसकी आय अधिक है तो उसकी क्रय शक्ति अधिक होगी और उसके द्वारा वस्तु की माँग अधिक होगी, परन्तु आय कम होने पर माँग कम होगी।

आय में परिवर्तनों का माँग पर प्रभाव पड़ने के सम्बन्ध में निम्न तीन बातें ध्यान देने योग्य हैः- (अ) आय में परिवर्तन का प्रभाव विभिन्न प्रकार की वस्तुओ पर भिन्न-भिन्न होता है; उदाहरणार्थ, आवश्यक वस्तुओं पर आय में परिवर्तन का प्रभाव कम पड़ता है अपेक्षाकृत आरामदायक और विलासित की वस्तुओं के। (ब) यह आवश्यक नहीं है कि आय में परिवर्तन का प्रभाव माँग पर तुरन्त पड़े, पा्रयः कुछ समय बाद ही माँग पर प्रभाव पड़ता है। वर्तमान में माँग पर प्रभाव ने केवल वर्तमान आय में परिवर्तनों का, बल्कि भूतकाल में एकत्रित धन का भी प्रभाव पड़ता है। (स) आय में परिवर्तनों का माँग पर प्रभाव उपभोक्ताओं की बचत करने की प्रवृति पर निर्भर करता है। यदि लोगों की बचत करने की प्रवृति तीव्र है तो बढ़ी आय में से अधिक बचायेंगे और थोड़ा व्यय करेगें और इस प्रकार माँग में अधिक वृद्धि नहीं होगी। इसके विपरीत, यदि बचत करने की प्रवृत्ति कम है तो वे कम बचायेंगे और अधिक व्यय करेगे और इस प्रकार माँग में अधिक वृद्धि होगी।

5.9.2 धन का वितरण-यदि धन का असमान वितरण है और धन थोड़े से धनी व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित है तो विलासिता की वस्तुओं की अधिक माँग होगी। यदि धन का समान है तो विलासिता की वस्तुओं की माँग घटेगी तथा अनिवार्य और आरामदायक वस्तुओं की माँग बढ़ जायेगी। इसके विपरीत, यदि उनकी बचत करने की प्रवृत्ति कम है तो वे कम बचायेंगे और अधिक व्यय करेंगे और इस प्रकार माँग में अधिक वृद्धि होगी।

5.9.3 उपभोक्ताओं की पसन्द- उपभोक्ताओं की पसन्द उनकी रूचि, फैशन, आदत तथा प्रथाओं आदि पर निर्भर करती है; इन सब बातो का महत्वपूर्ण प्रभाव माँग पर पड़ता है। जिस वस्तु के प्रति उपभोक्ताओं की रूचि बढ़ेगी तो उसकी माँग भी बढ़ जायेगी। उदाहरणार्थ, यदि लोग चाय की अपक्षा कॉफी को अधिक पसन्द करने लगते हैं तो कॉफ की माँग बढ़ जायेगी और चाय की माँग कम हो जायेगी। इसी प्रकार फैशन में परिवर्तन होते रहने से पुराने डिजाइन के वस्त्र, आभूषण इत्यादि बाजार से हटते जाते हैं और नये प्रकार के वस्त्रों, आभूषणों की माँग बाजार में बढ़ती जाती है।

5.9.4 जलवायु तथा मौसम- जाड़ों के दिनों में ऊनी कपड़ों तथा पौष्टिक और सभी प्रदान करने वाली वस्तुओं की माँगबढ़ जाती है; जबकि सभी के मौसम में सूती कपड़े तथा शीतलता प्रदान करने वाली वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है। इस प्रकार जYवायु तथा मौसमों में परिवर्तन से माँग के स्वभाव पर प्रभाव पड़ता है।

5.9.5 व्यापार की दशा में परिवर्तन- (अ) पूँजीवादी देशों में व्यापार चक्रीय उतार-चढ़ाव होते हैं अर्थात् नियमित समय से व्यावसायिक तेजी तथा व्यावसायिक मन्दी आती रहती है। तेजी के समय में आर्थिक क्रियाओं, रोजगार तथा द्राव्यिक और वास्तविक आय में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप सभी वस्तुओं की माँगबढ़ती है। इसके विपरीत, मन्दी काल में सभी वस्तुओं की माँग घटती है। (ब) यदि आयात-निर्यात कर में कमी कर दी जाती है तथा व्यापार में कई प्रकार की बाधायें हटा दी जाती हैं तो अधिक व्यापारी वस्तु-विशेष के बाजार में प्रवेश करेंगे और इस प्रकार वस्तु की माँग बढ़ेगी।

5.9.6 जनसंख्या- यदि किसी देश में जनसंख में वृद्धि होती है तो इसका अर्थ है कि विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की माँग बढ़ेगी।

5.9.7 वस्तु की कीमत- यदि किसी वस्तु की कीमत घटती है तो उसकी माँग बढ़ेगी तथा कीमत बढ़ने पर माँग घटेगी।

5.9.8 भविष्य में मूल्य परिवर्तन की आशा- यदि भविष्य में कुछ वस्तुओं की कीमत में और अधिक वृद्धि होने की आशा होती है तो उनकी माँग बढ़ती है। इसके विपरीत, यदि भविष्य में कीमत गिरने की आशा है तो माँग में कमी होती है।

5.9.9 द्रव्य की मात्रा में परिवर्तन- यदि देश में मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है तो लोगों की क्रय-शक्ति बढ़ जाती है और वस्तुओं के मूल्य भी बढ़ जाते है। बहुत-सी वस्तुओं के मूल्य बढ़ने पर भी उनकी माँग उतनी ही बनी रहती है। ऐसी स्थिति को भी माँग में वृद्धि कहते है।

5.9.10 सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन- सम्बन्धित वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैः- स्थानापन्न वस्तुएँ तथा पूरक वस्तुएँ। यदि किसी वस्तु X की स्थानापन्न वस्तु की कीमत बढ़ जाती है तो वस्तु X की माँग बढ़ जायेगी और यदि स्थानापन्न वस्तु की कीमत घट जाती है तो वस्तु X की माँग घट जायेगी क्योंकि उपभोक्ता अब स्थानापन्न वस्तु का अधिक प्रयोग करेगें क्योंकि स्थानापन्न सस्ती हो गयी है अपेक्षाकृत X वस्तु के।

यदि वस्तु A की पूरक वस्तु की कीमत बढ़ जाती है तो पूरक वस्तु की माँग कम होगी और चूँकि A वस्तु की अपनी पूरक वस्तु के साथ प्रयोग होती है इसलिए A वस्तु की माँग भी घट जायेगी। इसी प्रकार, यदि वस्तु A की पूरक वस्तु की कीमत घट जाती है तो पूरक वस्तु की माँगबढ़ेगी और इसलिए वस्तु Aकी माँग बढ़ेगी।

प्रो० रिचार्ड लिप्से- माँग को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों में से चार तत्वों को मुक्ष्य मानते हैं और ये चार तत्व है- (1) वस्तु की कीमत, (2) अन्य वस्तुओं की कीमतें, (3) उपभोक्त्ता की आय तथा (4) उपभोक्त्ता की रूचि।

5.10 पूर्ति का नियम

अन्य बातों के यथावत रहते हुए, किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी पूर्ति में भी वृद्धि होती है तथा कीमत में कमी होने पर उसकी पूर्ति में भी कमी होती है। अतः पूर्ति का नियम कीमत तथा बेची जाने वाली वस्तु मे सीधे सम्बन्ध को बताता है।

माँग का नियम कीमत तथा माँग में उल्टे सम्बन्ध को बताता है जबकि पूर्ति का नियम कीमत तथा पूर्ति में सीधे सम्बन्ध को बताता है। पूर्ति का नियम, माँग के नियम की भाँति, एक गुणात्मक कथन है, न कि परिणात्मक कथन; अर्थात् यह पूर्ति में केवल परिवर्तन की दिशा को बताता है न कि पूर्ति में परिवर्तन के परिमाण को; यह नहीं बताता है कि पूर्ति कितनी मात्रा में कम अथवा अधिक होगी। संक्षेप में, पूर्ति का नियम बताता है कि पूर्ति और कीमत एक ही दिशा में परिवर्तित होते हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि पूर्ति का परिवर्तन आनुपातिक हो।

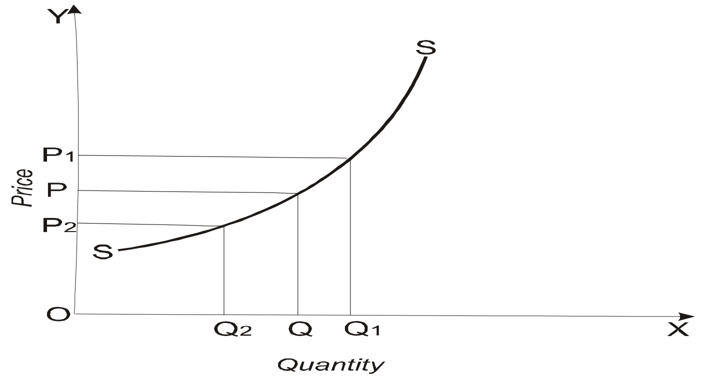

चित्र 7 - पूर्ति वक्र

चित्र से स्पष्ट है कि कीमत OP से बढकर OP_1 हो जाती है तो पूर्ति OQ से बढकर OQ_1 हो जाती है। इसी प्रकार यदि कीमत OPसे घटकर OP_2 हो जाती है तो पूर्ति OQ से घटकर OQ_2 हो जाती है। अतः स्पष्ट है कि पूर्ति के नियम के अर्न्तगत कीमत तथा बेची जाने वाली मात्रा में सीधा सम्बन्ध होता है। इसलिए जब पूर्ति नियम को पूर्ति रेखा द्वारा व्यक्त करते हैं तो पूर्ति रेखा बाये से दायें ऊपर की ओर चढ़ती हुई होती है। ऐसा क्यों होता है? अर्थात् कीमत बढ़ने पूर्ति क्यों बढ़ती है तथा कीमत घटने पर पूर्ति क्यों घटती है?इसके प्रमुख कारण निम्न हैं-

5.10.1 कीमत में वृद्धि होने से विक्रेताओं के लाभ में वृद्धि होती है और अधिक लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से वे अपनी वस्तु की पूर्ति बढ़ाते हैं। पूर्ति बढ़ाने की विधि में समय के अनुसार परिवर्तन होता जाता है-

1. यदि अति अल्पकालीन समय है तो विक्रेता या उत्पादक स्टॉक में से अधिक माल निकाल कर बेचने लगते हैं, परन्तु स्टॉक में रखे हुए माल से अधिक वे पूर्ति को नहीं बढ़ा पातें है। 2. यदि अल्पकाल है तो विक्रेता या उत्पादक वर्तमान उत्पत्ति के साधनों की मदद से पूर्ति बढ़ाते हैं, परन्तु समय इतना नहीं होता कि नये साधनों की मदद से पूर्ति बढ़ा सकें। 3. यदि दीर्घकालीन समय है तो वे वर्तमान उत्पत्ति के साधनों के अतिरिक्त नये उत्पत्ति के साधनों की सहयता से भी पूर्ति बढ़ा कर अधिक लाभ कमा सकते हैं।

5.10.2 कीमत में कमी होने से विक्रेताओं या उत्पादकों को कम लाभ प्राप्त होगा। अतः कम लाभ होने के कारण नुकसान से बचने के लिए वे पूर्ति को कम करेंगे। समय के अनुसार वे पूर्ति को निम्न प्रकार से कम कर सकते है-

1. यदि समय अति अल्पकालीन है और वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली नहीं है तो विक्रेता अपने स्टॉक से कम माल को बेचने के लिए निकालेंगे तथा बाजार सें भी वस्तु की कुछ मात्रा खींच कर स्टॉक में रखने का प्रयास करेगें। 2. यदि अल्पकालीन समय है तो कुछ उत्पादक उत्पादन को कम कर देंगे। 3. यदि दीर्घकालीन समय है तो कुछ उत्पादक उत्पादन बिल्कुल बन्द कर देंगे और किसी दूसर उद्योग में चले जायेंगे।

स्पष्ट है कि कीमत वृद्धि या कमी से लाभ में वृद्धि या कमी होती है और इसलिए विक्रेता पूर्ति में वृद्धि या कमी करते हैं।

5.11 पूर्ति के नियम की मान्यताएँ-

पूर्ति के नियम के कथन में ‘अन्य बातें’ यथावत रहें’ महत्त्वपूर्ण वाक्यांश है; यह नियम की मान्यताओं या सीमाओं को बताता है। पूर्ति के नियम के लागू होने के लिए निम्न मुख्य दशाएँ या मान्यताएँ पूरी होनी चाहिए-

i. क्रेताओं तथा विक्रेताओं की आयों में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
ii. क्रेताओं तथा विक्रेताओं की रूचि तथा पसन्द में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए
iii. उत्पत्ति के साधनों की कीमते स्थिर रहनी चाहिए।
iv. उत्पादकों या विक्रेताओं के तकनीकी ज्ञान मे कोई परिवर्तन नहीं होनो चाहिए।
v. कीमत में सूक्ष्म परिवर्तन के परिणामस्वरूप भी पूर्ति में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

5.12 पूर्ति के नियम के अपवाद अथवा पूर्ति वक्र उपर उठता हुआ क्यों होता है

पूर्ति के नियम के अपवाद निम्न है-

5.12.1 भविष्य में कीमत में अधिक कमी या वृद्धि की दशाओं में पूर्ति का नियम लागू नहीं होगा। माना किसी वस्तु की कीमत कम हो जाती है, परन्तु उत्पादकों का अनुमान है कि यह कमी निकट भविष्य में और अधिक कम हो सकती है तो वे कीमत कम होने पर भी वर्तमान में वस्तु की कम मात्रा नहीं बल्कि अधिक मात्रा बेचेगें। इसी प्रकार यदि वस्तु की कीमत में वर्तमान वृद्धि निकट भविष्य में और अधिक वृद्धि की सूचक है तो विक्रेता कीमत ऊँची होने पर भी वस्तु को अधिक मात्रा में नहीं बेचेंगे बल्कि उसको रोकेंगे और कम बेचेंगे ताकि भविष्य में अधिक लाभ प्राप्त कर सकें।

5.12.2 कुछ दशाओं में यह नियम कृषि-उत्पादित वस्तुओं पर लागू नहीं होता है। यदि कृषि की वस्तुओ की कीमतें बढ़ जाती है तो कभी-कभी उनकी वृद्धि नहीं की जा सकती है क्योंकि कृषि उत्पादन (विशेष तौर पर भारत जैसे अविकसित देश में) मुख्यतः प्रकृति पर निर्भर करता है, यदि वर्षा ठीक नहीं हुई, या टिड्डी दल फसलों को नुकसान कर गया तो कीमतों के ऊँचे होने पर भी पूर्ति नहीं बढ़ायी जा सकेगी।

5.12.3 कुछ कलात्मक वस्तुओं के सम्बन्ध में भी पूर्ति का नियम लागू नहीं होता। उदाहरणार्थ, यदि किसी विख्यात चित्रकार के चित्रों की कीमत बहुत बढ़ या घट जाती है तो चित्रों की पूर्ति को बढ़ाना या घटाना कठिन है।

5.12.4 इसी प्रकार नीलाम की वस्तुओं की पूर्ति सीमित होती है, इसलिए उसकी कीमतों में वृद्धि या कमी उसकी पूर्ति को प्रभावित नहीं कर पाती है। इस प्रकार पूर्ति का नियम लागू नहीं होता है।

5.12.5 अविकसित तथा पिछड़े देशों में श्रम की पूर्ति के सम्बन्ध में कभी-कभी यह नियम लागू नहीं होता। अविकसित देशों में श्रमिकों का जीवन स्तर बहुत नीचा होता है और उनकी आवश्यकताएँ बहुत कम होती हैं। यदि इन श्रमिकों की मजदूरियाँ बढ़ा दी जाती हैं तो वे कम घण्टे कार्य करके अपनी थोड़ी सी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते हैं। इस प्रकार मजदूरी बढ़ जाने पर काम से गैरहाजिरी भी बढ़ जाती है। दूसरे शब्दों, श्रमिकों के कार्य की कीमत बढ़ने पर श्रमिक अपने श्रम को अधिक बेचने के स्थान पर कम बेचते हैं।

5.13 पूर्ति का प्रभावित करने वाले कारक

वास्तविक जीवन में पूर्ति बहुत से परिवर्तनशील तत्त्वों से प्रभावित होती है। पूर्ति को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व अग्रलिखित हैः

5.13.1 वस्तु की कीमत- यदि अन्य बातें समान रहती हैं तो वस्तु की ऊँची कीमत पर अधिक पूर्ति होगी तथा नीची कीमत पर कम पूर्ति होगी।

5.13.2 अन्य वस्तुओं की कीमतें- यदि अन्य वस्तुओं की कीमत में वृद्धि हो जाती है जबकि वस्तु विशेष की कीमत उतनी ही रहती है तो ऐसी स्थिति में उत्पादकों को वस्तु विशेष के उत्पादन में कम आकर्षण रह जायेगा क्योंकि यह वस्तु अन्य वस्तुओं की अपेक्षा सस्ती रहती है। इस प्रकार वस्तु की पूर्ति कम हो जायेगी। इसके विपरीत यदि अन्य वस्तुओं की कीमतों में कमी हो जाती है तो उत्पादक इस वस्तु को बढ़ाने के लिए आकर्षित होंगे।

5.13.3 उत्पादन के साधनों की कीमतें- यदि उत्पादन के साधनों की कीमतें बढ़ जाती हैं तो वस्तु की उत्पादन लागत बढ़ेगी, परिणामस्वरूप उत्पादन कम किया जायेगा और पूर्ति में कमी होगी। इसके विपरीत यदि उत्पादन के साधनों की कीमतें कम होती हैं तो वस्तु की लागत कम होगी और उनकी पूर्ति बढ़ेगी।

5.13.4 तकनीकी ज्ञान- तकनीकी ज्ञान में विस्तार होने के परिणामस्वरूप किसी वस्तु के उत्पादन करने में कुशल रीति का प्रयोग होने लगता है, इससे लागत घटती है और वस्तु की पूर्ति बढ़ती है।

5.13.5 प्राकृतिक तत्त्व- कृषि द्वारा उत्पादित वस्तुओं की पूर्ति पर एक सीमा तक प्राकृतिक तत्त्वों का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। पर्याप्त वर्षा, सिंचाई की उचित सुविधाएँ, अच्छी खाद, अच्छे बीज, इत्यादि कृषि वस्तुओं की पूर्ति को बढ़ाते हैं। इसके विपरीत टिड्डी दल, अति वर्षा या सूखा, इत्यादि उनकी पूर्ति को कम करते हैं।

5.13.6 परिवहन व संवादवहन के साधन- परिवहन तथा संवादवहन की अच्छी और विकसित सुविधाओं के मौजूद होने से विदेशों से किसी भी वस्तु के आयातों में अधिक सुविधा के परिणामस्वरूप उसकी पूर्ति बढ़ेगी। इसके विपरीत यदि इन साधनों का प्रयोग किसी वस्तु के अधिक निर्यात के लिए किया जाता है तो उसकी पूर्ति देश में कम रह जायेंगी।

5.13.7 युद्ध तथा राजनीतिक बाधाएँ- युद्ध छिड़ जाने से या राजनैतिक उथल–पुथल होने से कुछ वस्तुओं की कमी देश विशेष में हो जाती है।

5.13.8 कर नीति- सरकार की कर नीति भी वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करती है। यदि सरकार किसी वस्तु पर अधिक कर लगाती है तो वह वस्तु महँगी पड़ेगी और उसकी पूर्ति कम होगी।

5.13.9 उत्पादकों में परस्पर मेल - किसी वस्तु के बड़े उत्पादक आपस में मिल कर अधिक लाभ के कमाने की दृष्टि से उस वस्तु की कुल पूर्ति कम कर सकते हैं।

5.14 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके है कि कीमत का माँग एवं पूर्ति के साथ क्या सम्बंध हैं। किसी वस्तु की कीमत का माँग के साथ विपरीत तथा पूर्ति के साथ सीधा सम्बंध होता हैं

इसीलिए माँग वक्र ऋणात्मक ढाल वाला तथा पूर्ति वक्र धनात्मक ढाल वाला होता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप माँग एवं पूर्ति के नियम की व्याख्या सहज रूप से कर सकेगें।

5.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न

1.माँग का सम्बन्ध:

(अ) पूर्ति (ब) लागत

(स) उत्पादन (द) कीमत

2.माँग का नियम बताता हैः

(अ) जब माँग बढ़ती है तो कीमत बढ़ती है।

(ब) जब आय बढ़ती है तो माँग बढ़ती है।

(अ) जब कीमत घटती है तो माँग बढ़ती है।

(द) जब माँगघटती है तो कीमत भी घटती है।

3.माँग रेखा का ढाल किस प्रकार का होता हैः

(अ) ऋणात्मक (ब) धनात्मक

(स) शून्य (द) उर्पसुक्त सभी

4.कीमत एवं पूर्ति के बीच धनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करने वाले वक्र का नाम है:

(अ) कीमत वक्र (ब) पूर्ति वक्र

(स) लागत वक्र (द) माँग वक्र

5.अन्य बातें समान रहने पर, धनात्मक ढाल वाली पूर्ति रेखा के साथ एक वस्तु की कीमत में वृद्धि के परिणामस्वरूप जो होगा उसे कहा जायेगा:

(अ) पूर्ति में वृद्धि (ब)पूर्ति की गई मात्रा में वृद्धि

(स) पूर्ति में कमी (द) पूर्ति की गई मात्रा में कमी

उत्तर-(1) कीमत (2) जब कीमत घटती है तो माँगबढ़ती है (3) ऋणात्मक (4) पूर्ति वक्र (5) पूर्ति की गई मात्रा में वृद्धि

लघु उत्तरीय प्रश्न

6. माँग के नियम तथा माँग की लोच में अन्तर स्पष्ट कीजिए ?
7. माँग के नियम की व्याखा कीजिए ?
8. पूर्ति के नियम की व्याखा कीजिए ?
9. गिफिन विरोधाभास क्या है ?
10. आय प्रभाव एवं प्रतिस्थापन प्रभाव क्या है ?

उत्तर: (1) 5.4. देखिए। (2) 5.4. देखिए। (3) 5.10. देखिए। (4) 5.7.3. देखिए। (5) 5.6.2. एवं 5.6.3. देखिए।

5.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. Koutsoyinuis. A. (1979) Modern Microeconomics (2^{nd} Edition), Macmillian Press, London.
2. Ahuja, H.L. (2010) Priniciples of Micro Economics, S & Chand Publishing House.
3. Pererson, L. and Jain (2006) Managerial Economics, 4^{th} edition, Pearson Education.
4. Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
5. Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.

5.17 निबंधात्मक प्रश्न-

1. माँग के नियम से क्या तात्पर्य है? इसको प्रभावित करने वाले तत्वों की विवेचना कीजिए?

2. पूर्ति के नियम को समझाइये। इसको प्रभावित करने वाले कारको का विश्लेषण कीजिए ?

3. माँग एवं पूर्ति के नियमों अपवादो की विवेचना कीजिए?

इकाई-6 माँग एवं पूर्ति की लोच

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 माँग की लोच का अर्थ
6.4 कीमत लोच की श्रेणियां
6.5 माँग की लोच मापने की विधियां
6.6 माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व
6.7 माँग की लोच का व्यावहारिक महत्त्व
6.8 माँग की आय लोच
6.9 माँग की आय लोच की श्रेणियां
6.10 माँग की आडी लोच
6.11 पूर्ति की लोच
6.12 पूर्ति की लोच की श्रेणियां
6.13 पूर्ति की लोच मापने की रीतियां
6.14 पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व
6.15 सारांश
6.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.18 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र के सिद्वांत से सम्बन्धित यह छठी इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि माँग एवं पूर्ति का नियम क्या है? तथा माँग एवं पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक कौन कौन से है।

कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग तथा पूर्ति में किस अनुपात में परिवर्तन होगा तथा किस दिशा में होगा। इसका विश्ले षण माँग एवं पूर्ति की लोच के संदर्भ में किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कीमत में परिवर्तन के कारण माँग तथा पूर्ति में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन को ही नही समझा सकेंगे बल्कि माँग एवं पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों का विशद् विश्लेषण भी कर सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि माँग तथा पूर्ति की लोच का अर्थ क्या है।
- समझा सकेंगे कि माँग एवं पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक कौन कौन से हैS।
- माँग तथा पूर्ति की लोच के महत्व को समझा सकेंगे तथा माँग तथा पूर्ति की लोच का विशद् विश्ले षण भी कर सकेगें।

6.3 माँग की लोच का अर्थ

माँग का नियम एक गुणात्मक है जबकि माँग की लोच एक मात्रात्मक कथन है। माँग का नियम किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग में होने वाले परिवर्तन की दिशा (वृद्धि या कमी) को तो बताता है परन्तु यह नही बताता है कि कीमत में परिवर्तन के कारण माँग में कितना परिवर्तन होगा। कीमत में परिवर्तन के कारण माँग में कितना परिवर्तन होगा, इस परिवर्तन को माँग की लोच द्वारा ज्ञात किया जाता है।

कीमत में थोड़े से परिवर्तन के कारण माँग की मात्रा में होने वाले परिवर्तन को माँग की लोच कहते है। इसका पूरा नाम माँग की कीमत लोच है।

सेम्युलसन के शब्दों में- 'माँग की लोच का विचार बाजार कीमतम (माना P) में परिवर्तन के उत्तर में माँग की मात्रा (माना Q) में परिवत्रन के अंश अर्थात् माँग में प्रतिक्रियात्मकता के अंश को बताता है।'

श्रीमति जोन रोबिन्सन ने माँग की लोच की गणितात्मक परिभाषा इस प्रकार दी हैः- ''माँग की लोच, कीमत में थोड़े से परिवर्तन के परिणामस्वरूप खरीदी गयी मात्रा के आनुपातिक परिवर्तन को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है।''

संक्षेप में, इसको निम्न सूत्र द्वारा बताया गया है-

$$e_p = \frac{\text{माँग में अनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में अनुपातिक परिवर्तन}}$$

जबकि, e_p माँग की लोच का चिन्ह है।

माँग की लोच के विचार को अच्छी प्रकार से समझने के लिए निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए

i. माँग की लोच का सम्बन्ध कीमत तथा माँग की मात्रा में सापेक्षिक परिवर्तनों अर्थात् आनुपातिक या प्रतिशत परविर्तनों ;चतवचवतजपवदंस वत चमतबमदजंहम बींदहमेद्ध से होता है।
ii. (अ) इसके अन्तर्गत हम माँग के उस परिवर्तन पर विचार करते हैं जो कीमत में थोड़े से परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता हो, तथा (ब) जो अल्प समय के लिए ही हो।
iii. माँग की लोच किसी दी हुई माँग रेखा की एक विशेषता है।

माँग की लोच ऋणात्मक होती है क्योंकि वस्तु की माँग और उसकी कीमत में विपरीत सम्बन्ध होता है।

$$\text{माँग की कीमत लोच} = (-) \frac{\text{माँग में अनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में अनुपातिक परिवर्तन}}$$

माँग की कीमत लोच के ऋणात्मक चिन्ह को लेकर भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नही है जब कभी चिन्ह नही लगा होता है तो इसका अर्थ है कि चिन्ह छिपा हुआ है। जब इसके व्यवहारिक रूप ;छनउमतपबंसद्ध को ज्ञात करते है तभी ऋणात्मक चिन्ह का प्रयोग करते है।

6.4 कीमत लोच की श्रेणियां

कीमत में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप सभी वस्तुओं की माँग पर एक-सा प्रभाव होता अर्थात् कुछ वस्तुओं की माँग की लोच कम होती है तथा कुछ की अधिक। माँग की लोच की पांच श्रेणियां हैः- (1) पूर्णयता लोचदार माँग, (2) अत्यधिक लोचदार माँग, (3) लोचदार माँग, (4) बेलोच माँग , तथा (5) पूर्णयता बेलोचदार माँग ।

6.4.1 पूर्णतया लोचदार माँग - जब वस्तु के मूल्य में परिवर्तन नहीं होने पर, या अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तन होने पर, माँग , में बहुत अधिक कमी या वृद्धि हो जाती है, तब वस्तु की माँग

पूर्णयता लोचदार कही जाती है। पूर्णतः लोचदार माँग की दशा में रेखा आधार रेखा (X axis) के समानान्तर होती है।

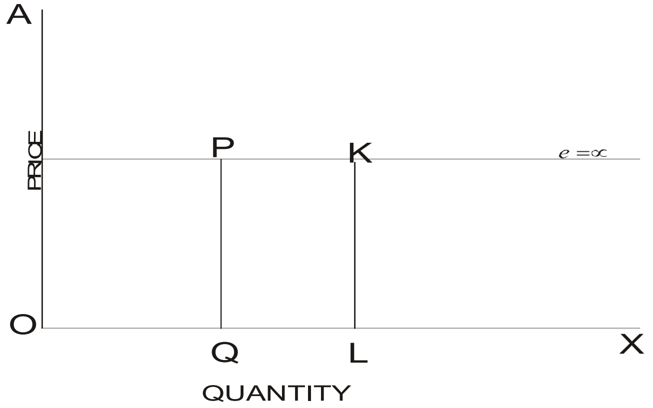

चित्र 1 -पूर्णतया लोचदार माँग

चित्र में मूल्य PQ है और माँगOQ है। परन्तु मूल्य में परिवर्तन हुए बिना ही माँग OQ से बढ़कर OL हो जाती है। स्पष्ट है कि कीमत के स्थिर रहने पर भी माँग में परिवर्तन हो गया है। इस प्रकार की माँग केवल काल्पनिक होती है। वास्तविक जीवन में पूर्णतः लोचदार माँग का उदाहरण नही मिल ता है। गणितीय भाषा में हम इसे $e = \infty$ द्वारा व्यक्त करते है।

6.4.2 अत्यधिक लोचदार माँग - जब किसी वस्तु की माँग में अनुपातिक परिवर्तन, कीमत के अनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता है तो ऐसी दशा को अत्यधिक लोचदार माँग कहते है। उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु के मूल्य में 20 प्रतिशत कमी होती है, परन्तु उसकी माँग में 40 प्रतिशत वृद्धि हो जाती है तो ऐसी वस्तु की माँग की लोच को 'इकाई से अधिक लोच' भी कहते हैं और गणित की भाषा में $e > 1$ द्वारा व्यक्त किया जाता है।

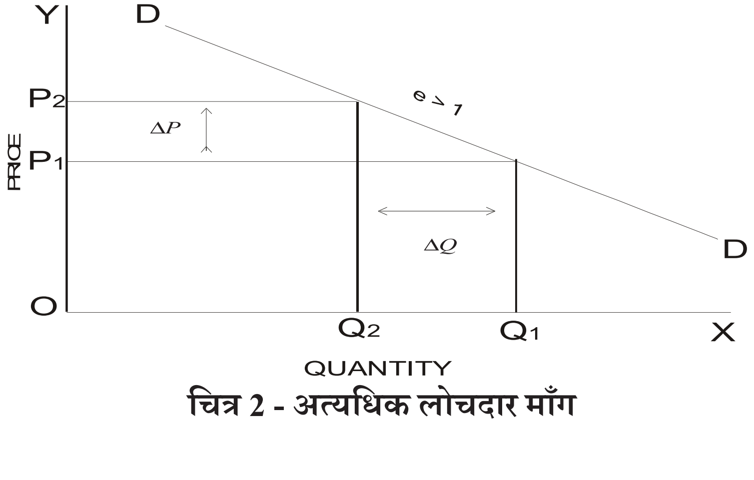

चित्र 2 - अत्यधिक लोचदार माँग

चित्र से स्पष्ट है कि माँग में होने वाला परिवर्तन ΔQ कीमत में होने वाले परिवर्तन ΔP की तुलना में अधिक है। इस प्रकार की लोच प्रायः विलासिता की वस्तुओं (जैसे- ए0सी0, कार फ्रिज इत्यादि) में

होती है।

6.4.3 लोचदार माँग - जब किसी वस्तु की माँग में परिवर्तन ठीक उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में उसकी कीमत में परिवर्तन हुआ है, तब ऐसी वस्तु की माँग को लोचदार माँग कहते है। उदाहरणार्थ, किसी वस्तु की कीमत में 20 प्रतिशत की वृद्धि होती है और उसकी माँग में ठीक 20 प्रतिशत कमी हो जाती है, तो यह लोचदार माँग कहलायेगी। इस प्रकार की लोच को 'इकाई के बराबर लोच' भी कहते है; गणित की भाषा में $e = 1$ द्वारा व्यक्त किया जाता है।

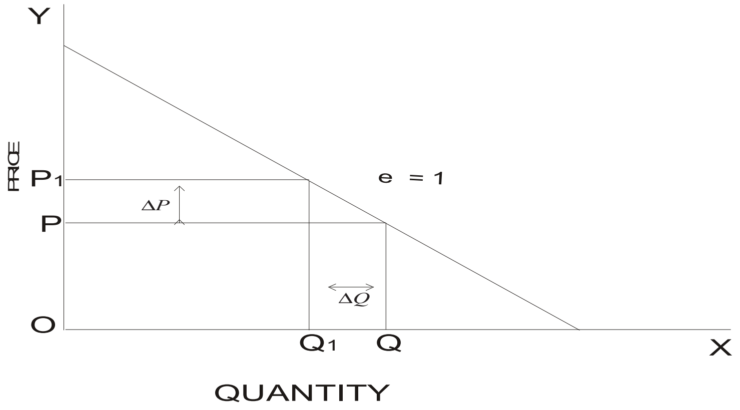

चित्र 3 - लोचदार माँग

चित्र से स्पष्ट है कि कीमत में होने वाले परिवर्तन ΔP माँग में होने वाला परिवर्तन ΔQ के बराबर है। इस प्रकार की लोच आरामदोयक वस्तुओं (जैसे- साइकिल , घड़ी बिजली का पंखा इत्यादि) में पायी जाती है।

6.4.4 बेलोचदार माँग - जब किसी वस्तु की माँग में अनुपातिक परिवर्तन उस वस्तु की कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से कम होता है तो ऐसी दशा को बेलोचदार माँग कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु की कीमत में 50 प्रतिशत की वृद्धि होती है परन्तु माँग में केवल 10 प्रतिशत कमी होती है, तो ऐसी माँग को बेलोच माँगकहा जाता है। इस प्रकार की लोच को 'इकाई से कम लोच' भी कहते है। गणित की भाषा में $e < 1$ द्वारा व्यक्त किया जाता है।

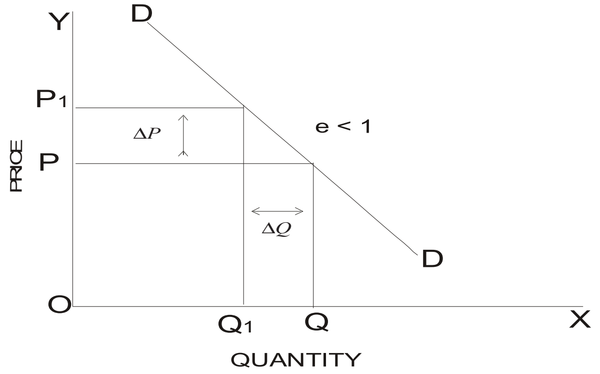

चित्र 4 - बेलोचदार माँग

चित्र से स्पष्ट है कि माँग में होने वाला परिवर्तन ΔQ कीमत में होने वाले परिवर्तन ΔP से कम है। ऐसी लोच प्रायः अनिवार्य वस्तुओं (जैसे- आनाज, नमक इत्यादि) में पायी जाती है।

6.4.5 पूर्णयता बेलोचदार माँग - जब किसी वस्तु के मूल्य में पर्याप्त परिवर्तन होने पर भी उसकी माँग में बिल्कुल परिवर्तन न हो तो ऐसी दशा को पूर्णयता बेलोचदार माँगकहते है। माँग में बिल्कुल परिवर्तन न होने के कारण ऐसी स्थिति को Xणित की भाषा में $e = 0$ द्वारा व्यक्त किया जाता है।

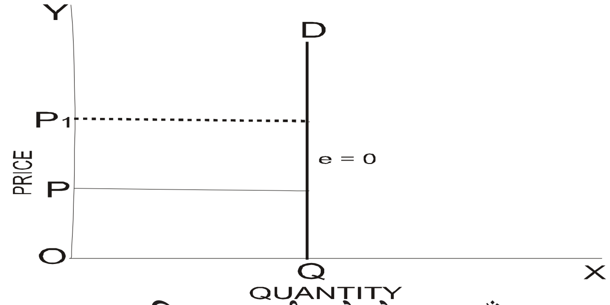

चित्र 5 - पूर्णतः बेलोचदार माँग

इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि पिूर्णयता बेलोचदार माँग केवल एक काल्पनिक स्थिति को बताती है, वास्तविक जीवन में इस प्रकार की माँग की लोच का कोई उदाहरण नहीं मिल ता है। इस प्रकार की दशा में माँग रेखा आधार रेखा (X-axis) पर लम्ब होती है।

6.5 माँग की लोच मापने की विधियां-

माँग की लोच मापने की मुख्य तीन रीतियां हैः-

6.5.1 कुल आगम या व्यय रीति:- मार्शल के द्वारा प्रतिपादित इस रीति के अन्तर्गत मूल्य में परिवर्तन होने से पहले और बाद में कुल आगम या कुल व्यय की तुलना करके यह ज्ञात किया जाता है कि माँग की लोच 'इकाई के बराबर' है अथवा 'इकाई से अधिक' या 'इकाई से कम' है।

(अ) माँग की लोच इकाई से अधिक (e > 1)-कुल व्यय मूल्य परिवर्तन से विपरीत दिशा में चलता है- जब किसी वस्तु के मूल्य में कमी होने पर कुल व्यय की मात्रा बढ़ती है या मूल्य में वृद्धि होने से कुल व्यय की मात्रा घटती है, तो ऐसी वस्तु की माँग की लोच 'इकाई से अधिक' कहते है।

वस्तु का मूल्य	माँगी गयी मात्रा	कुल व्यय	माँग की लोच
4 रूपये	100 इकाइयाँ	400 रूपये	इकाई से अधिक
2 रूपये	300 इकाइयाँ	600 रूपये	

(ब) माँग की लोच इकाई से कम (e = 1)-मूल्य में परिवर्तन होने पर कुल व्यय अप्रभावित रहता है- जब किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन (कमी या वृद्धि) होने पर भी कुल व्यय की मात्रा यथास्थिर रहती है तब माँग की लोच 'इकाई के बराबर' कही जाती है।

वस्तु का मूल्य	माँगी गयी मात्रा	कुल व्यय	माँग की लोच
4 रूपये	100 इकाइयाँ	400 रूपये	इकाई से अधिक
2 रूपये	200 इकाइयाँ	400 रूपये	

(स) माँग की लोच इकाई से कम (e < 1) -कुल व्यय उसी दिशा में चलता है जिस दिशा में मूल्य परिवर्तन- जब किसी वस्तु के मूल्य में कमी होने पर कुल व्यय की मात्रा में कमी होती है या मूल्य में वृद्धि होने पर कुल व्यय की मात्रा में भी वृद्धि होती है तो माँग की लोच 'इकाई से कम' कही जाती है।

वस्तु का मूल्य	माँगी गयी मात्रा	कुल व्यय	माँग की लोच
4 रूपये	100 इकाइयाँ	400 रूपये	इकाई से अधिक
2 रूपये	150 इकाइयाँ	300 रूपये	

उपर्युक्त तीनों लोचो को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

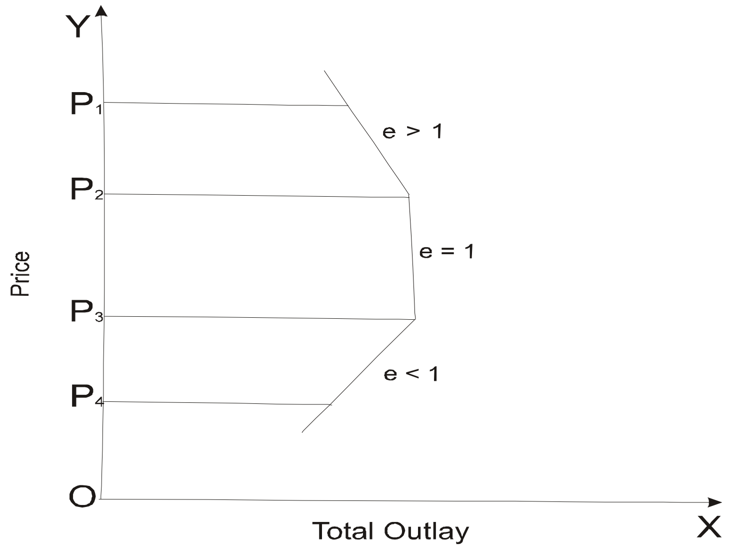

चित्र 6 - कुल व्यय रीति द्वारा माँग की लोच

उपर्युक्त चित्र में कीमत P1 से घटकर P2 हो जाती है तो कुल व्यय बढ़ जाता है। P2 से P3 तक कीमत घटने के बावजूद कुल व्यय स्थिर रहता है, जबकि P3 से P4 तक कीमत घटने पर कुल व्यय भी घट जाते है।

नोट- माँग की कीमत लोच की श्रेणियों की विभिन्न लोचो तथा कुल आगम की विभिन्न लोचों में अन्तर को छात्र समझने का प्रयास करेगें।

6.5.2 आनुपातिक रीति या प्रतिशत रीति अथवा चाप-लोच को ज्ञात करने की रीति- इस रीति के अन्तर्गत माँग में आनुपातिक परिवर्तन (या प्रतिशत परिवर्तन) की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन (या प्रतिशत परिवर्तन) से भाग देकर, माँग की लोच को निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात करते हैः-

$$e_p = \frac{\text{माँग में अनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में अनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\text{माँग में परिवर्तन / माँग की पूर्व की मात्रा} \times 100}{\text{कीमत में परिवर्तन / पूर्व कीमत} \times 100}$$

जबकि,

Δ (डेल्टा	=	सूक्ष्म परिवर्तन का चिन्ह
Δq	=	माँग में परिवर्तन
q	=	माँग की पूर्व मात्रा
Δp	=	कीमत में परिवर्तन
p	=	पूर्व कीमत

$$= \frac{\Delta q / q}{\Delta p / q}$$

$$= (-)\frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}$$

आधुनिक मत- इसके अन्तर्गत माँग और कीमत में आनुपातिक परिवर्तन पूर्व मात्राओं और पूर्व कीमत के आधार पर नही बल्कि मध्य बिन्दु के औसत द्वारा ज्ञात किया जाता है।

$$e_p = \frac{\text{माँग में अनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{माँग की मात्रा में परिवर्तन}}{\text{(पूर्व मात्रा + नयी मात्रा) /2}} \times 100}{\dfrac{\text{कीमत में मात्रा परिवर्तन}}{\text{(पूर्व कीमत + नयी कीमत)/2}} \times 100}$$

जबकि, q_1 ¾ माँग की पूर्व मात्रा

q_2 = माँग की नयी मात्रा

p_1 = पूर्व कीमत

p_2 = नयी कीमत

~ यह चिन्ह दो संख्याओं के बीच के अन्तर को बताता है।

$$= \frac{\dfrac{q_1 \sim q_2}{q_1 + q_2}}{\dfrac{p_1 \sim p_2}{p_1 + p_2}}$$

6.5.3बिन्दु रीति या रेखा गणित रीति-इस रीति द्वारा माँग रेखा के किसी बिन्दु पर भी माँग की लोच ज्ञात कर सकते हैं। चित्र में DD माँग रेखा के बिन्दु P पर लोच मालूम करने के लिए च् बिन्दु पर एक स्पर्श रेखा (tangent) RK खींची जाती है और उसे दोनों ओर बढ़ाया जाता है ताकि वह X -axis को K बिन्दु पर तथा Y- axis को R बिन्दु पर काटती है। माँग की लोच का सूत्र निम्न प्रकार है-

$$e_p = \frac{\text{नीचे का भाग (Lower sector)}}{\text{ऊपर का भाग (Upper sector)}}$$

$$= \frac{PK}{PR}$$

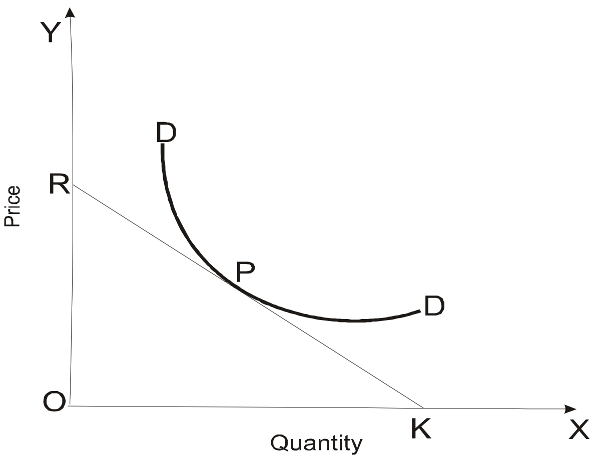

चित्र 7 - बिन्दु रीति द्वारा मांग की लोच

चित्र में बिन्दु P पर माँग की लोच इकाई के बराबर (e = 1) है क्योंकि इस बिन्दु पर Lower sector = Upper sector है

बिन्दु R पर माँग की लोच पूर्णयता लोचदार होगी, क्योंकि बिन्दु R पर ऊपर का भाग शून्य है। बिन्दु K पर माँग की लोच पूर्णयता बेलोच होगी क्योंकि नीचे का भाग इस बिन्दु पर शून्य है। रेखा PK के मध्य प्रत्येक बिन्दु पर माँग की लोच इकाई से कम (e < 1) होगी क्योंकि इस रेखा के किसी भी बिन्दु पर Lower sector < Upper sector है। रेखा RP के प्रत्येक बिन्दु पर माँग की लोच इकाई से अधिक (e > 1) होगी क्योंकि इस रेखा के प्रत्येक बिन्दु पर Lower sector > Upper sector है।

6.6 माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व

माँग की लोच को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्व निम्नलिखित हैः-

6.6.1 वस्तु का गुण-

a. आवश्यकता की वस्तुओं की माँग की लोच बेलोचदार होती है। उदाहरणार्थ, नमक, अनाज, दवाई इत्यादि। इन वस्तुओं की कीमत बढ़ने या घटने पर इनकी माँगअधिक घटती या बढ़ती नही हैं क्योंकि कीमत में परिवर्तन होने पर भी उपभोक्ता, आवश्यकतानुसार जितनी मात्रा की आवश्यकता है उतनी खरीदेगें ही।
b. प्रायः आरामदायक वस्ताओं की माँग की लोच लोचदार होती है। उदाहरण के लिए, दूध, घी, फल आदि ऐसी वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तन होने पर उसकी माँग पर प्रभाव, आवश्यक वस्तुओं की अपेक्षा तो अधिक पड़ता है, परन्तु वैसे प्रभाव साधारण ही पड़ता है।
c. विलासिता की वस्तुओं की माँग की लोच अधिक लोचदार होती है। ऐसी वस्तुओं के प्रयोग करने से हमारी कार्यक्षमता बढ़ती है। अतः इन वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तन होने पर इनकी माँग पर अनुपात से अधिक प्रभाव पड़ता है।

नोट- इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि यह आवश्यक नहीं है कि विलासिता की वस्तुओं की माँग सदैव अधिक लोचदार हो तथा आवश्यक वस्तुओं की माँग की लोच सदैव बेलोचदार हो क्योंकि आवश्यकताओं का यह वर्गीकरण सापेक्षिक है। कार जैसी विलासिता की वस्तु डॉक्टरों के लिए आवश्यक है और उनके लिए कार की माँग बेलोचदार होगी।

6.6.2 वस्तु के स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धि- यदि किसी वस्तु की अनेक स्थानापन्न वस्तुएँ है तो उसकी माँग की लोच अधिक होगी, क्योंकि वस्तु की कीमत में वृद्धि हो जाने पर इसके स्थान पर दूसरी स्थानापन्न वस्तु का प्रयोग किया जाने लगेगा । इसी प्रकार यदि वस्तु की कीमत में

कमी हो जाती है तो अन्य वस्तुओं के स्थान पर इसका प्रयोग होने लगेगा और इसकी माँग बढ़ जायेगी। (उदाहरणार्थ, चीनी तथा गुड़ स्थानापन्न वस्तुएं है; चीनी की कीमत में वृद्धि होने से चीनी की माँग कम हो जायेगी क्योंकि अब उपभोक्ता चीनी के स्थान पर गुड़ का प्रयोग करने लग जायेगें); यदि किसी वस्तु की स्थानापन्न वस्तुए नहीं है तो माँग बेलोचदार होगीं।

6.6.3 वस्तु के विभिन्न प्रयोग - ऐसी वस्तुएँ जिनको अनेक प्रयोगों में लाया जा सकता है; जैसे- बिजली, कोयला इत्यादि; उनकी माँग की लोच अधिक लोचदार होती है। यदि बिजली की दर बढ़ती है तो इसकी माँग घटेगी क्योंकि अब इसका प्रयोग कम महत्वपूर्ण प्रयोगों (जैसे- कमरा गरम करने, पानी गरम करने इत्यादि) से हटाकर केवल महत्वपूर्ण प्रयोगों (जैसे- रोशनी इत्यादि) में ही किया जायेगा।

6.6.4 मूल्य-स्तर- इस सम्बन्ध में मार्शल ने कहा है कि ''माँग की लोच ऊँची कीमतों के लिए अधिक होती है, मध्यम कीमतों के लिए पर्याप्त होती है तथा जैसे-जैसे कीमत घटती जाती है वैसे-वैसे लोच भी घटती जाती है और यदि कीमतें इतनी गिरें कि तृप्ति की सीमा आ जाये तो लोच धीरे-धीरे विलीन हो जाती है''

नोट- यहाँ पर यह ध्यान रखने योग्य है कि समाज के एक वर्ग अर्थात् धनी वर्ग के लिए कुछ वस्तुओं (जैसे- हीरे, कारें इत्यादि) की माँग की लोच, ऊँची कीमतो पर भी लोचदार नहीं होती, बल्कि बेलोचदार होती है। हीरों या कारों की माँग केवल धनी वर्ग द्वारा ही की जाती है क्योंकि इनकी कीमतें पहले से ही काफी ऊँची होती हैं तथा इन वस्तुओं की कीमतों में और वृद्धि या कमी हो जाती है तो इनकी माँग पर विशेष प्रभाव नहीं पडता है।

6.6.5 समाज में धन के वितरण का लोच पर प्रभाव- प्रो0 टाउसिग के अनुसार सामान्यतया समाज के धन के असमान वितरण होने से माँग की लोच बेलोच होती है तथा धन के समान वितरण के साथ लोचदार हो जाती है। असमान वितरण के परिणामस्वरूप समाज दो भागों में बट जाता है- थोड़े व्यक्तियों का धनी वर्ग तथा अधिकांश व्यक्तियों का निर्धन वर्ग। कीमतों में थोड़ी वृद्धि या कमी धनी वर्ग के लोगों की माँग को अधिक प्रभावित नहीं करती है। इसी प्रकार निर्धनों के लिए भी लोच सामानयता बेलोचदार ही रहती है क्योंकि वे केवल आवश्यकता की वस्तुएँ ही खरीद पाते है। परन्तु धन के समान वितरण से लगभग सभी व्यक्तियों की क्रय-शक्ति समान होती है और कीमतों में वृद्धि या कमी का सब लोगों पर प्रभाव पड़ता है, अतः माँग लोचदार हो जाती है।

6.6.6 उपभोक्ता की आय का व्यय किया जाने वाला भाग - जिन वस्तुओं पर आय का बहुत थोड़ा भाग व्यय किया जाता है उनकी माँग की लोच बेलोचदार होती है, इसके विपरीत जिन वस्तुओं पर उपभोक्ता अपनी आय का एक बड़ा भाग व्यय करता है उनकी माँग की लोच अधिक लोचदार होती हैं। उदाहरणार्थ- सुई, डोरा, बटन इत्यादि पर उपभोक्ता आय का बहुत थोड़ा-सा भाग

व्यय करता है अतः इनकी कीमतों में वृद्धि या कमी से माँग पर कोई प्रभाव नही पड़ता और इनकी माँग की लोच बेलोचदार होती है। इसके विपरीत कपड़ा, टीवी, साईकिल, बाईक इत्यादि पर आय का बड़ा भाग व्यय किया जाता है इसलिए इनकी माँग की लोच लोचदार होती है।

6.6.7 संयुक्त माँग - कुछ वस्तुएं ऐसी होती है जोकि दूसरी वस्तु के साथ माँगी जाती है; जैसे- डबल रोटी के साथ मक्खन, पेन के साथ स्याही, दियासलाई तथा सिगरेट। ऐसी वस्तुएं जो दूसरी वस्तुओं के साथ मांगी जाती है उनकी माँग की लोच प्रायः बेलोचदार होती है। उदाहरणार्थ- यदि सिगरेटकी माँगनहीं गिरती है और वह पहले जैसी ही बनी रहती है तो दियासलाई की कीमत बढ़ने पर भी दियासलाई की माँग नहीं घटेगी क्योंकि सिगरेटपीने वालों के लिए यह जरूरी है और इस प्रकार दियासलाई की माँग बेलोचदार हुई।

6.6.8 मनुष्य के स्वभाव तथा आदतों का प्रभाव- यदि किसी उपभोक्ता को किसी वस्तु की आदत पड़ गयी है (जैसे- विशेष ब्राण्ड की चाय या विशेष ब्राण्ड की सिगरेट पीने की), तो उस वस्तु की कीमत बढ़ने पर भी वह उसका प्रयोग कम नहीं करेगा तथा वस्तु की माँग बेलोचदार रहेगी। इस प्रकार सामाजिक रीति-रिवाज में प्रयोग आने वाली वस्तुओं की माँग की लोच बेलोचदार रहती है।

6.6.9 समय का प्रभाव- प्रो0 मार्शल ने इस बात पर बल दिया कि समय का माँग की लोच पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि या कमी होने पर उसकी माँग पर तत्काल ही प्रभाव नहीं पड़ता, उसमें कुछ समय लगता है। अतः साधारण रूप में यह कहा जा सकता है कि समय जितना कम होगा वस्तुओं की माँग की लोच कम लोचदार होगी और समय जितना अधिक होगा माँग की लोच अधिक लोचदार होगी क्योंकि उपभोक्ता दूसरी स्थानापन्न वस्तुओं को ज्ञात करके प्रयोग में लाने लगेगा ।

6.7 माँगकी लोच का व्यावहारिक महत्त्व

माँगकी लोच का केवल सैद्धान्तिक महत्त्व ही नहीं है, बल्कि वह बहुत-सी व्यावहारिक समस्यओं के सुलझाने में मदद करती है। केंज के अनुसार, ''मार्शल की सबसे बड़ी देन माँग की लोच का सिद्धान्त है तथा इसके अध्ययन के बिना मूल्य तथा वितरण के सिद्धान्तों की विवेचना सम्भव नही है।'' माँग की लोच का व्यावहारिक महत्व निम्न विवरण से स्पष्ट हैः-

6.7.1 मूल्य सिद्धान्त में

i. माँग की लोच का सिद्धान्त किसी फर्म की साम्य की दशाओं के निर्धारण में सहायक होता है, एक फर्म की साम्य दशा तब होती है जबकि सीमान्त आगम = सीमान्त लागत। परन्तु सीमान्त आगम माँग की लोच पर निर्भर करती है।

ii. एक एकाधिकारी उत्पादक अपनी वस्तु के मूल्य निर्धारण में माँग की लोच के विचार की सहायता लेता है। एकाधिकारी का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है अर्थात् वह 'मूल्य प्रति × बिक्री की गयी मात्रा' के गुणनफल को अधिकतम करता है। यदि उनके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग की लोच बेलोचदार है तो वह वस्तु की कीमत ऊँची निर्धारित करेगा और ऐसा करने में उसकी बिक्री की गयी मात्रा पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि उसकी वस्तु की माँग को लोच अधिक लोचदार है तो वस्तु का मूल्य नीचा रखकर अधिक बिक्री करेगा और लाभ को अधिकतम करेगा।

iii. एकाधिकारी मूल्य-विभेदीकरण में भी लोच के विचार की सहायता लेता है। मूल्य-विभेद का अर्थ है कि विभिन्न ग्राहकों अथवा विभिन्न वर्ग या विभिन्न बाजारों में एक वस्तु के भिन्न मूल्य प्राप्त करना। मूल्य-विभेद उन्हीं दो बाजारों या वर्गों के बीच सम्भव हो सकेगा जिनमें वस्तु की माँग की लोच समान नही है। जिस बाजार या वर्ग में माँग की लोच लोचदार है वहाँ एकाधिकारी कम मूल्य रखेगा और माँग की लोच बेलोचदार है वहाँ वस्तु की कीमत ऊँची रखेगा।

iv. इसी प्रकार राशिपातन करते समय भी एकाधिकारी विभिन्न बाजारों की माँग की लोच ध्यान में रखता है।

v. संयुक्त-पूर्ति से सम्बन्धित मूल्य निर्धारण में माँग की लोच का विचार सहायक होता है। जब दो या दो से अधिक वस्तुओं का उत्पादन साथ-साथ होता है (जैसे- गेहूँ तथा भूसा) तो उत्पादित वस्तुओं की लागतों को अलग -अलग मालूम करना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में उत्पादक माँग की लोच का सहारा लेता है, जिसकी माँग बेलोच होती है उसकी लागत अधिक मानी जाती है और उसका मूल्य ऊँचा रखा जाता है, जिस वस्तु की माँग लोचदार होती है उसकी लागत कम मानी जाती है और कम मजदूरी दी जायगी, यदि मजदूरी की माँग लोचदार है।

6.7.2 वितरण के सिद्धान्त में-

माँग की लोच का विचार विभिन्न उत्पत्ति के साधनों का पुरस्कार निर्धारित करने में भी सहायक होता है। उत्पादक उन उत्पत्ति के साधनों को अधिक पुरस्कार देता है जिनकी माँग उसके लिए बेलोचदार है तथा उन साधनों को कम पुरस्कार देता है जिनकी माँग उसके लिए लोचदार होती है। उदाहरणार्थ- किसी मालिक की श्रमिकों को अधिक मजदूरी देनी पड़ेगी यदि उनकी माँग बेलोचदार है और कम मजदूरी दी जायेगी, यदि मजदूरी की माँग लोचदार है।

6.7.3 सरकार के लिए महत्व

i. सरकार या वित्त मंत्री अधिक आय प्राप्त करने के लिए कर लगाता है परन्तु इस दृष्टि से कर लगाते समय वस्तुओं की माँग की लोच को ध्यान में रखना होता है। वित्त मन्त्री

बेलोचदार माँग वाली वस्तुओं पर अधिक कर लगाकर अधिक धन प्राप्त कर सकेगा क्योंकि कर के परिणामस्वरूप ऐसी वस्तुओं की कीमत बढ़ने पर इनकी माँग में कोई विशेष कमी नहीं आयेगी।

ii. कर लगाते समय सरकार को कर-भार का भी ध्यान रखना पड़ता है। सरकार का यह दृष्टिकोण होता है कि विभिन्न व्यक्तियों (उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं) पर कर का भार न्यायपूर्ण हो। सरकार को कर-भार को जानने के लिए माँग की लोच के विचार की मदद लेनी पड़ती है। यदि वस्तु की माँगकम लोचदार है तो उत्पादक कर के भार का अधिकांश भागउपभोक्ताओं पर हस्तान्तरित कर देंगे। इसके विपरीत, यदि वस्तु की माँगअधिक लोचदार है तो उत्पादक उसके मूल्य को अधिक बढ़ाकर कर-भार का अधिक भाग उपभोक्ताओं पर हस्तान्तरित नहीं कर पायेंगे क्योंकि अधिक ऊँचा मूल्य करने पर वस्तु की माँग बहुत कम हो जायेगी।

iii. माँग की लोच की धारणा सरकार को यह निश्चित करने में मदद कराती है कि वह कौन-से उद्योगों को सार्वजनिक सेवांएँ घाषित करके उनका स्वामित्व और प्रबन्ध अपने हाथ में ले। ऐसे उद्योग जिनकी वस्तुओं की माँगबेलोचदार होती है तथा साथ ही जिनका स्वामित्व व्यक्तिगत एकाधिकारियों के हाथ में होता है, उन्हें सरकार जनता के हित में सार्वजनिक सेवाएँ घोषित करके अपने हाथ में ले लेती है।

iv. माँगकी लोच का विचार सरकार को कुछ अन्य आर्थिक नीतियों में सहायता देता है। सरकार व्यापार-चक्र, मुद्रा-स्फीति तथा मुद्रा विस्फीति की दशाओं इत्यादि के नियन्त्रण में अन्य बातों के साथ माँग की दशाओं तथा माँग की लोच को भी ध्यान में रखती है।

v. किसी देश की सरकार को अपनी मुद्रा चलन की उचित विनिमय-दर निर्धारण में माँग की लोच के विचार से सहायता मिल ती है। यदि सरकार देश की विपरीत भुगतान की दशा को सुधारने के लिए मुद्रा-मूल्य का अवमूल्यन करना चाहती है तो उसे देश के आयातों तथा निर्यातों के माँग की लोच को ध्यान में रखना पड़ेगा। यदि उसके आयातों तथा निर्यातों दोनों की माँग बेलोचदार है तो सरकार को अवमूल्यन द्वारा विपरीत भुगतान की दशा को सुधारने में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।

6.7.4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त में महत्व

किन्हीं दो देशों के बीच 'व्यापार की शर्तों' के अध्ययन में माँग की लोच की धारणा सहायक होती है। 'व्यापार शर्तें' देश की सौदा करने की शक्ति पर निर्भर करती हैं जबकि सौदा करने की शक्ति वास्तव में आयातों तथा निर्यातों की माँग तथा पूर्ति की लोच पर निर्भर करती है। यदि देश के निर्यातों की माँग बेलोचदार है तो वे विदेशो में ऊँची कीमतों पर बिक सकेगे; यदि हमारे आयातों की माँग

हमारे लिये बेलोचदार है तो उन्हें हमें ऊँची कीमत पर भी खरीदना पड़ेगा। अतः स्पष्ट है कि इस प्रकार 'व्यापार की शर्तें' माँग की लोच पर निर्भर करती है।

6.7.5 सम्पन्नता के बीच गरीबी के विरोधाभास की व्याख्या

उदाहरणार्थ- कृषि उत्पादन में अधिक वृद्धि होती है और सम्पन्नता दिखायी देती है, परन्तु फिर भी इस सम्पन्नता के बीच किसान गरीब रह सकते हैं यदि उत्पादित वस्तु की माँग की लोच बेलोचदार है क्योंकि ऐसी स्थिति में मूल्य कम होने पर भी किसानों का अतिरिक्त उत्पादन नहीं बिक पायेगा और उन्हें लाभ के स्थान पर नुकसान होगा।

6.8 माँग की आय लोच

वस्तु की माँग केवल कीमत पर ही निर्भर नही करती है बल्कि यह आय पर भी निर्भर करती है। जैसे-जैसे उपभोक्ता की आय बढ़ती है तो प्रायः सभी वस्तुओं की माँग भी बढ़ने लगती है जो आय के घटने के साथ घटती भी है। अतः आय एवं माँग धनात्मक सम्बन्ध होता है।

कीमत तथा अन्य बातों के यथास्थिर रहने पर, आय में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन के कारण माँग में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन को माँग की आय लोच कहते है।

$$e_y = \frac{\text{माँग -मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{आय में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

जबकि, Δ (डेल्टा) = सूक्ष्म परिवर्तन

ΔQ = पूर्ति में परिवर्तन

Q = पूर्ति की पूर्व मात्रा

ΔY = आय में परिवर्तन

Y = पूर्व आय

$$e_y = \frac{\Delta Q / Q}{\Delta Y / Y} = \frac{\Delta Q}{\Delta Y} \times \frac{Y}{Q}$$

6.9 माँग की आय लोच की श्रेणियां-

सामान्यतः माँग की आय लोच धनात्मक होती है। अर्थात् आय में वृद्धि या कमी के साथ उपभोक्ता वस्तुओं की अधिक या कम मात्रा खरीदता है। दूसरे शब्दों में- आय में परिवर्तन तथा माँग में परिवर्तन एक ही दिशा में होते है। परन्तु कुछ दशाओं में माँग की आय लोच ऋणात्मक भी होती है। अर्थात् आय मे वृद्धि के साथ उपभोक्ता कुछ वस्तुओं की कम माँग करता है या उस पर कम खर्च करता है। यह स्थिति निम्न कोटि की वस्तुओं के सम्बन्ध में पायी जाती है।

6.9.1 माँग की शून्य लोच- जब आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग की मात्रा में या खरीद में कोई परवर्तिन नही होता तो माँगकी आय लोच शून्य कही जाती है।

6.9.2 ऋणात्मक माँग की आय लोच- निम्न कोटि की वस्तुओं (जैसे- डालडा घी, शुद्ध घी की अपेक्षा में) के सम्बन्ध में माँग की आय लोच ऋणात्मक होती है अर्थात् आय में वृद्धि के साथ शुद्ध घी पर अधिक व्यय के बजाय कम खर्च किया जाता है।

6.9.3 माँगकी आय लोच इकाई के बराबर- जब आय में वृद्धि के अनुपात में माँग में समान वृद्धि होती है तो माँग की आय लोच इकाई के बराबर होती है। उदाहरणार्थ, आय में 5 प्रतिशत वृद्धि से माँग में भी 5 प्रतिशत वृद्धि होती है।

6.9.4 माँग की आय लोच इकाई से अधिक- इसका यह अर्थ है कि आय में वृद्धि के साथ उपभोक्ता वस्तु-विशेष पर अपनी आय का व्यय अधिक अनुपात में करता है। प्रायः विलासिता की वस्तुओं के सम्बन्ध में माँग की आय लोच इकाई से अधिक पायी जाती है। उदाहरणार्थ, आय में 5 प्रतिशत वृद्धि होने पर माँग में 5 प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि होती है।

6.9.5 माँग की आय लोच इकाई से कम- इसका अर्थ है आय में वृद्धि के साथ उपभोक्ता वस्तु-विशेष पर अपनी आय का व्यय कम अनुपात में करता है। ऐसी माँग की आय लोच प्रायः आवश्यक वस्तुओं के सम्बन्ध में पायी जाती है। उदाहरणार्थ, आय में 5 प्रतिशत वृद्धि से माँग में 5 प्रतिशत से भी कम वृद्धि होती है।

6.10 माँग की आड़ी लोच-

माँगकी आड़ी लोच के विचार का नियमित रूप से विकास मूरद्वारा अपनी पुस्तक Synthetic Economics में किया गया है और इस विचार का अधिक विस्तृत रूप में कीमत के सिद्धान्त में प्रयोग राबर्ट टिफिन ने किया है।

दो वस्तुओं की माँग परस्पर इस प्रकार से सम्बन्धित हो सकती है कि एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग में परिवर्तन ला सकती है; जबकि दूसरी वस्तु की कीमत पूर्ववत् रहती है। वस्तुएँ तीन प्रकार की हो सकती हैः प्रतियोगी या स्थानापन्न वस्तुएँ, पूरक वस्तुएँ, तथा अनाश्रित वस्तुएँ। माँगकी आड़ी लोच द्वारा हम प्रथम दो प्रकार की सम्बन्धित वस्तुओं के बीच 'सम्बन्ध की मात्रा माप सकते हैं।

6.10.1 माँग की आड़ी लोच की परिभाषा-एक वस्तु की माँग में जो परिवर्तन दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के उत्तर में होता है उसे माँग की आड़ी लोच कहते हैं। माना कि दो वस्तुएँ X तथा Y हैं। माँग की कीमत लोच में हम X वस्तु की कीमत में परिवर्तन करते हैं और फिर देखते है कि उसी वस्तु की माँग की मात्रा में कितना परिवर्तन होता है। माँग की आड़ी लोच में हम Y की कीमत में परिवर्तन करते हैं फिर देखते है कि X की माँग में कितना परिवर्तन होता है। अधिक निश्चित रूप में, माँग की आड़ी लोच में X वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन को Y वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त किया जाता है।

$$\text{माँग की आड़ी लोच} = \frac{X \text{ वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{Y \text{ वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

e_c = माँग की आड़ी लोच

$\Delta X = X$ वस्तु की माँग में परिवर्तन (वस्तु Y की कीमत परिवर्तन के कारण)

$X = X$ वस्तु की प्रारम्भिक माँग (वस्तु Y की कीमत परिवर्तन से पूर्व)

$\Delta P_y =$ वस्तु Y का कीमत परिवर्तन

$P_y =$ वस्तु Y की प्रारम्भिक कीमत

$$e_c = \frac{\Delta X / X}{\Delta P_y / P_y} = \frac{\Delta X}{\Delta P_y} \times \frac{P_y}{X}$$

माँग की आड़ी लोच तीन प्रकार की वस्तुओं में उपस्थित हो सकती है।

(1) स्थानापन्न वस्तुओं में- दो पूर्ण स्थानापन्न वस्तुओं (चाय तथा कॉफी, कोका कोला तथा थम्पसअप) में माँग की आड़ी लोच अनन्त होती है। यदि एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से

दूसरी वस्तु की माँग उस कीमत की अनुपात से अधिक बढ़ जाती है तो माँग की आड़ी लोच इकाई से अधिक होती है। इस प्रकार की वस्तु की निकट स्थानापन्न होती है। इसी प्रकार यदि एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से दूसरी वस्तु की माँग उस कीमत के अनुपात से कम बढ़ती है तो माँग की आड़ी लोच इकाई से कम होगी। इस प्रकार की वस्तुएँ घटिया स्थानापन्न होती है।

(2) पूरक वस्तुओं में- पूरक वस्तुओं के अन्तर्गत स्कूटर तथा पैट्रोल , पेन तथा इंक, ब्रेड तथा बटर आदि वस्तुओं को शामिल करते है। इनमें से यदि एक वस्तु की कीमत बढ़ जाती है तो दूसरी वस्तु की माँग कम हो जायेगी, ऐसी दशा में माँग की लोच ऋणात्मक होती है।

(3) स्वतन्त्र वस्तुओं में- स्वतन्त्र वस्तुओं की माँग के सम्बन्ध में आड़ी लोच शून्य होती है।

6.11 पूर्ति की लोच -

पूर्ति की लोच कीमत में थोड़े से परिवर्तन के उत्तर में, पूर्ति की मात्रा में होने वाले परिवर्तन को बताती है।

पूर्ति की लोच, पूर्ति की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन को कीमत के अनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है।

$$e_s = \frac{\text{पूर्ति में अनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में अनुपातिक परिवर्तन}}$$

जबकि, e_s पूर्ति को लोच का चिन्ह है।

पूर्ति को लोच के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए- 1.इसके अन्तर्गत हम पूर्ति के उस परिवर्तन पर विचार कर सकते हैं जो कीमत में थोड़े से परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता हो, तथा 2. जो अल्प समय के लिए हो।

6.12 पूर्ति की लोच की श्रेणियां

कीमत में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप सभी वस्तुओं की पूर्ति पर एकसा प्रभाव नहीं होता, अर्थात् कुछ वस्तुओं की लोच कम होती है तथा कुछ वस्तुओं की अधिक। पूर्ति की लोच निम्न पांच श्रेणियाँ होती हैः

6.12.1 पूर्णयता लोचदार पूर्ति- जब मूल्य में परिवर्तन नहीं होने पर भी या अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तन होने पर पूर्ति में बहुत अधिक परिवर्तन (कमी या वृद्धि) हो जाती है तब वस्तु की पूर्ति पूर्णयता लोचदार कही जाती है। ऐसी लोच को अपरिमित लोच ($e_s = \infty$) कहते हैं। पूर्णयता लोचदार पूर्ति की दशा में पूर्ति रेखा आधार रेखा के समान्तर है। इस प्रकार की पूर्ति की लोच केवल काल्पनिक होती है, व्यावहारिक जीवन में इसका उदाहरण नही मिल ता है।

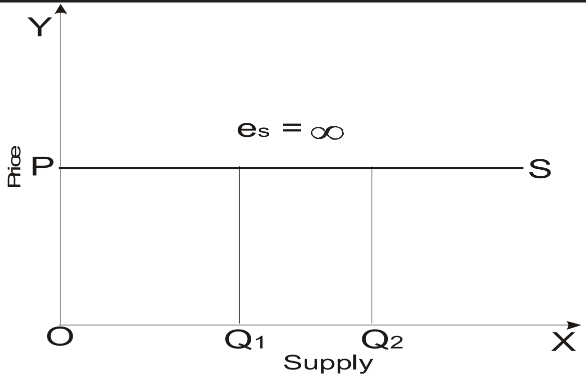

चित्र 8 - पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति

6.12.2 अत्यधिक लोचदार पूर्ति- जब किसी वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन, कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता है तो ऐसी दशा को अत्यधिक लोचदार पूर्ति (e_s >1) कहते है। चित्र से स्पष्ट है कि पूर्ति में परिवर्तन (QQ_1) कीमत में परिवर्तन (PP_1) से अधिक है।

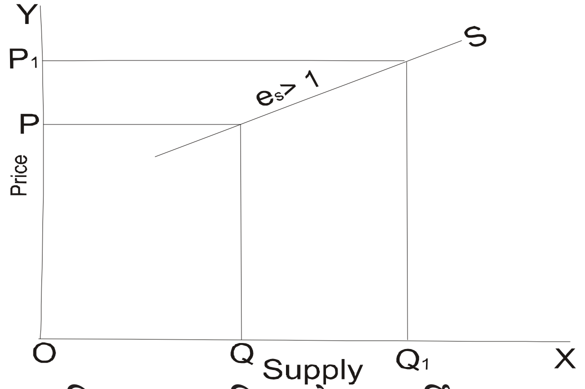

चित्र 9 - अत्यधिक लोचदार पूर्ति

6.12.3 इकाई लोचदार पूर्ति - जब किसी वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन ठीक उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में उसकी कीमत में परिवर्तन हुआ है, तब ऐसी वस्तु की पूर्ति को लोचदार पूर्ति (e_s =1)कहते है।

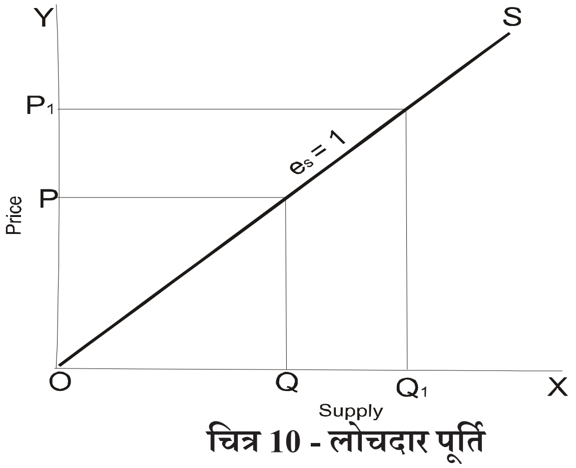

चित्र 10 - लोचदार पूर्ति

चित्र से स्पष्ट है कि पूर्ति में परिवर्तन (QQ_1) कीमत में परिवर्तन (PP_1) के बराबर है।

6.12.4 बेलोचदार पूर्ति- जब किसी वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन उस वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से कम होता है तो ऐसी दशा को 'बेलोच पूर्ति' या इकाई से कम लोच ($e_s <1$) कहते है। चित्र से स्पष्ट हो जाता है कि पूर्ति में परिवर्तन (QQ_1)कीमत में परिवर्तन (PP_1) से कम है।

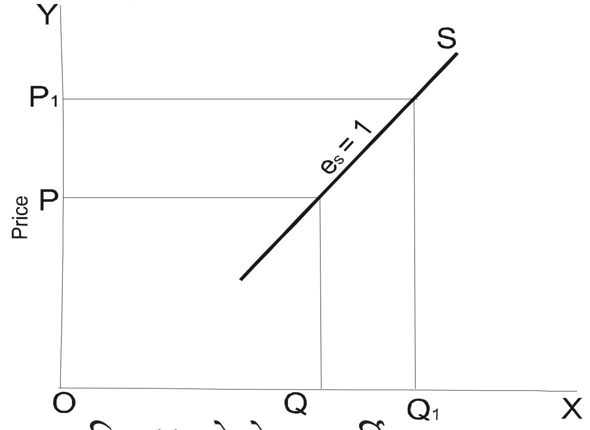

चित्र 11 - बेलोचदार पूर्ति

6.12.5 पूर्णयता बेलोचदार पूर्ति- जब किसी वस्तु के मूल्य में पर्याप्त परिवर्तन होने पर भी उसकी पूर्ति में बिल्कुल परिवर्तन न हो तो ऐसी दशा को पूर्णयता बेलाचदार पूर्ति कहते हैं। चूँकि पूर्ति में बिल्कुल परिवर्तन नहीं होता इसलिए ऐसी स्थिति को Xणित की भाषा मे $e_s = O$ में द्वारा व्यक्त किया जाता है। OP कीमत पर पूर्ति OQ है कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है, परन्तु पूर्ति में कोई परिवर्तन नही होता।

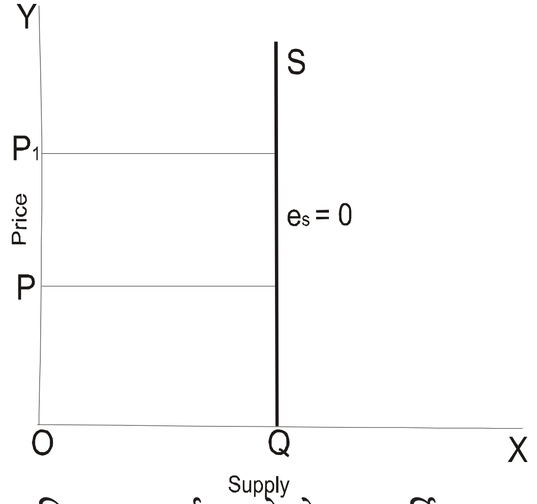

चित्र 12 - पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति

6.13 पूर्ति की लोच को मापने की रीतियां

पूर्ति की लोच को मापने की दो मुख्य रीतियां हैः

6.13.1 अनुपातिक रीति या प्रतिशत रीति- इस रीति के अन्तर्गत पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन (या प्रतिशत परिवर्तन) को कीमत में आनुपातिक परिवर्तन (या प्रतिशत परिवर्तन) से भाग दिया जाता है। पूर्ति की लोच निम्न सूत्र द्वारा निकाली जाती हैः

$$e_s = \frac{\text{पूर्ति में अनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में अनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{पूर्ति में परिवर्तन}}{\text{पूर्ति की पूर्व की मात्रा}}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{पूर्व कीमत}}}$$

$$= \frac{\frac{\Delta q}{q}}{\frac{\Delta p}{p}}$$

जबकि, Δ (डेल्टा) = सूक्ष्म परिवर्तन का चिन्ह

Δq = पूर्ति में परिवर्तन

q = पूर्ति की पूर्व मात्रा

Δp = कीमत में परिवर्तन

p = पूर्व कीमत

$$= \frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{\Delta p}$$

$$= \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}$$

आधुनिक मत- इस सूत्र से बिल्कुल ठीक व सही उत्तर निकाल ने के लिए कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इसमें संशोधन किया है। इसका संशोधित रूप निम्न प्रकार से दिया जाता हैः

$$e_s = \frac{\dfrac{\text{पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन}}{\dfrac{(\text{पूर्व मात्रा + नयी मात्रा})}{2}}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\dfrac{(\text{पूर्व कीमत+ नयी कीमत})}{2}}}$$

जबकि, q_1 = पूर्ति की पूर्व मात्रा

q_2 = पूर्ति की नयी मात्रा

p_1 = पूर्व की कीमत

p_2 = नयी कीमत

~ यह चिन्ह दो संख्याओं के बीच के अन्तर को बताता है।

$$= \frac{\dfrac{q_1 \sim q_2}{q_1 + q_2}}{\dfrac{p_1 \sim p_2}{p_1 + p_2}}$$

6.13.2 बिन्दु रीति या रेखाXणित रीति- इस रीति द्वारा हम पूर्ति रेखा के किसी बिन्दु पर पूर्ति की लोच मालूम कर सकते है। चित्र में SS पूर्ति रेखा के P बिन्दु पर पूर्ति की लोच मालूम करना है। पूर्ति रेखा SS को नीचे की ओर बढ़ाया जाता है ताकि वह X -axis को T बिन्दु पर मिल ती है और बिन्दु P से X-axis पर लम्ब पर लम्ब डाला जाता है जो X- axis को N बिन्दु पर मिल ता है। पूर्ति की लोच निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात की जाती है।

$e_s = \frac{TN}{ON}$ चूंकि यहाँ पर TN<ON, इसलिए $e_s<1$, चित्र में P बिन्दु पर पूर्ति की लोच $e_s = \frac{TN}{ON}$; चूंकि यहाँ TN>ON इसलिए $e_s>1$ चित्र नं0 12 में P बिन्दु पर पूर्ति की लोच $e_s = \frac{TN}{ON}$ यहाँ पर O तथा Tबिन्दु एक ही हैं इसलिए ON, अतः $e_s=1$

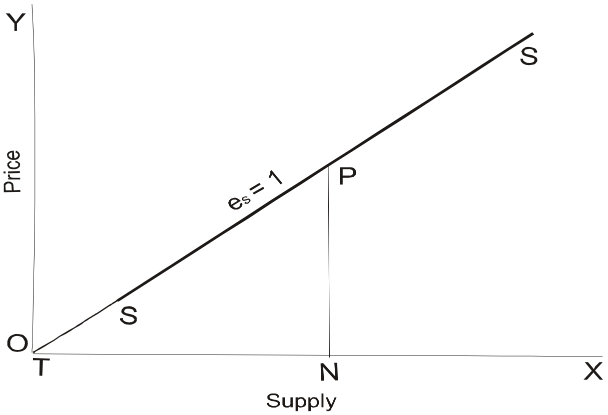

चित्र 13 - बिन्दु रीति द्वारा पूर्ति की लोच

6.14 पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले कारक

6.14.1 वस्तु की प्रकृति- यदि वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली है तो ऐसी वस्तु की पूर्ति बेलोच होती है क्योंकि कीमत में परिवर्तन होने पर इसकी पूर्ति को बढ़ाया या घटाया नही जा सकता है। इसके विपरीत यदि वस्तु टिकाऊ है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होगी क्योंकि कीमत में परिवर्तन होने पर इनकी मात्रा को परिवर्तित किया जा सकता है।

6.14.2 उत्पादन प्रणाली- यदि किसी वस्तु की उत्पादन प्रणाली सरल है तथा उसमें कम पूँजी की आवश्यकता पड़ती है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होती है क्योंकि पूर्ति को, कीमत में परिवर्तन होने पर, सुगमता से घटाया या बढ़ाया जा सकता है। इसके विपरीत यदि उत्पादन प्रणाली जटिY है तथा उसमें बहुत अधिक पूंजी का प्रयोग होता है तो ऐसी वस्ताओं की पूर्ति बेलोचदार होती है क्योंकि इनकी पूर्ति को बढ़ाना या घटाना आसान नहीं होता है।

6.14.3 उत्पादन लागत- किसी वस्तु की पूर्ति की लोच उत्पादन लागत से भी प्रभावित होती है। यदि वस्तु का उत्पादन उत्पत्ति ह्रास नियम (अर्थात् लागत वृद्धि नियम) के अन्तर्गत हो रहा है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति बेलोच होती है क्योंकि कीमत बढ़ने पर भी इनकी पूर्ति को बढ़ाना कठिन है, पूर्ति बढ़ने से लागत बढ़ती है। इसके विपरीत यदि वस्तु का उत्पादन लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत हो रहा है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होगी।

6.14.4 समय- समय पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाला एक मुख्य तत्व है। जितना Yम्बा समय होगा उतनी ही वस्तु की पूर्ति की लोच बेलोच होगी तथा जितना समय कम होगा उतनी ही वस्तु की पूर्ति की लोच बेलोच होगी। समय अधिक होने से वस्तु की पूर्ति को आवश्यकतानुसार घटाया-बढ़ाया जा सकता है, परन्तु समय कम होने से ऐसा करना कठिन होता है।

6.15 सारांश

इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके है कि माँग एवं पूर्ति की लोच में कीमत में आनुपातिक पविर्तन के कारण माँग एवं पूर्ति की मात्रा में किस अनुपात में परिवर्तन होता है तथा इनको मापने की विधियां कौन-2 सी है एवं इसकों प्रभावित करने वाले कारक कौन-कौन से है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप माँग एवं पूर्ति की लोच तथा इनको मापने की विधियों की व्याख्या सहज रूप से कर सकेगें।

6.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

बहुविकल्पीय प्रश्न-

1. कीमत एवं पूर्ति के बीच धनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करने वाले वक्र का नाम है:

(अ) कीमत वक्र (ब) पूर्ति वक्र

(स) लागत वक्र (द) माँग वक्र

2. माँग की लोच का विचार किसने दिया?

(अ) मार्शल (ब) कैनन

(स) पीगू (द) रिकार्डो

3. अनुपातिक लोचदार माँग को आप निम्नांकित में से किस तरह स्पष्ट करोगे?

(अ) माँग की कीमत लोच = शून्य (ब) माँग की अनन्त कीमत लोच

(स) माँग की कीमत लोच = 1 (द) बेलोचदार माँग

4. यदि माँग की लोच बेलोचदार हो तो वस्तु की कीमत में होने वाली वृद्धि के परिणामस्वरूप वस्तु के उपभोक्ताओं का कुल व्यय:

(अ) बढ़ेगा (ब) घटेगा

(स) अपरिवर्तित होगा (द) उपरोक्त में से कोई भी

5. जब किसी वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन, कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता है तो ऐसी दशा को कहते है:

(अ) पूर्ति की लोच इकाई के बराबर है (ब) पूर्ति की लोच शून्य है

(स) अत्यधिक लोचदार पूर्ति (द) पूर्णयता बेलोचदार पूर्ति

उत्तर-(1) पूर्ति वक्र (2) मार्शल (3) माँग की कीमत लोच = 1(4) अपरिवर्तित होगा

(5) अत्यधिक लोचदार पूर्ति

लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. माँग की लोच की प्रमुख श्रेणियां कौन-कौन सी है?
2. माँग की लोच को मापने की प्रमुख विधियां कौन-कौन सी है?
3. पूर्ति की प्रमुख श्रेणियां कौन-कौन सी है?
4. माँग एवं पूर्ति की लोच की ढाल किस प्रकार की होती है?
5. उत्तर: (1) 6.4. देखिए। (2) 6.5. देखिए। (3) 6.12. देखिए। (4) 6.4.एवं 6.12 देखिए।

6.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. Koutsoyinuis. A. (1979) Modern Microeconomics (2nd Edition), Macmillian Press, London.
2. Ahuja, H.L. (2010) Priniciples of Micro Economics, S & Chand Publishing House.
3. Pererson, L. and Jain (2006) Managerial Economics, 4th edition, Pearson Education.
4. Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
5. Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.

6.19 निबंधात्मक प्रश्न-

1. माँग की लोच का अर्थ बताइए ? इसको मापने की प्रमुख विधियों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. पूर्ति की लोच को प्रफावित करने वाले कारकों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. माँग की लोच के महत्व पर प्रकाश डालिए।

इकाई-7 उपभोक्ता की बचत

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 उपभोक्ता की बचत का अर्थ
7.4 उपभोक्ता की बचत का मान्यतायें
7.5 उपभोक्ता की बचत का महत्व
7.6 हिक्स द्वारा मार्शल की उपभोक्ता की बचत की धारणा में सुधार
7.7 उपभोक्ता की बचत में सुधार:हिक्स की चार धारणायें
7.8 उपभोक्ता की बचत के विचार की आलोचनायें
7.9 सारांश
7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.12 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र के सिद्वांत से सम्बन्धित यह सातवीं इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि माँग एवं पूर्ति की लोच का नियम क्या है? तथा माँग एवं पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले कारक कौन कौन से है।

उपभोक्ता की बचत कों किस प्रकार ज्ञात किया जाता है, मार्शल द्वारा दिये दृष्टिकोण को समझेगें तथा हिक्स द्वारा दिये गये विश्लेषण को भी समझने का प्रयास करेगें।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप उपभोक्ता की बचत को किस प्रकार ज्ञात किया जाता है समझ सकेंगे। उपभोक्ता की बचत को प्रभावित करने वाले कारकों तथा उपभोक्ता की बचत के महत्व का विशद् विश्ले षण भी कर सकेंगे।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि उपभोक्ता की बचत का अर्थ क्या है।
- समझा सकेंगे कि उपभोक्ता की बचत को प्रभावित करने वाले कारक कौन कौन से है।
- उपभोक्ता की बचत महत्व का विशद् विश्ले षण भी कर सकेगें।

7.3 उपभोक्ता की बचत का अर्थ

उपभोक्ता की बचत की धारणा माँग के सिद्धान्त पर आधारित है। मूल रूप से इस सिद्धान्त की कल्पना एक फ्रांसीसी अर्थशास्त्री टयूपिट ने 1844 में की थी। मार्शल ने 1895 में अपनी पुस्तक Principal of Economics में इस सिद्धान्त को पूर्णता प्रदान की। हिक्स और एलन ने 1930 में मार्शल के माँग सिद्धान्त के साथ-साथ उपभोक्ता की बचत की धारणा को भी अस्वीकार कर दिया। वर्तमान शताब्दी के चौथे दशक में हिक्स ने Review of Economic Studies में प्रकाशित एक लेख माला में उदासीनता-वक्र तकनीक की सहायता से इस सिद्धान्त को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया।

मार्शल के अनुसार- किसी वस्तु के प्रयोग से वंचित रहने की अपेक्षा उपभोक्ता जो कीमत देने को तत्पर होता हैं तथा जो कीमत वास्तव में देता है, उसका अन्तर ही अतिरिक्त संतुष्टि का आर्थिक माप है। इसको उपभोक्ता की बचत कहा जाता है।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण- माना कि उपभोक्ता केलों का उपभोग करना चाहता है। बाजार में केलों की कीमत 10 पैसे प्रति केला है। उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार जैसे-जैसे उपभोक्ता केलों का

उपभोग करता जायेगाद उसके लिए बाद में आने वाली इकाइयों की उपयोगिता, पहली इकाइयों की अपेक्षा, घटती जायेगी। दूसरे शब्दों में, शुरू की इकाइयों के लिए उपभोक्ता अधिक कीमत देने को तैयार होगा क्योंकि उनसे, बाद की इकाइयों की अपेक्षा, अधिक उपयोगिता मिल ती है। निम्न उदाहरण से समस्त स्थिति स्पष्ट होती है।

केलोंकी इकाइयाँ	**प्राप्त उपयोगिता अर्थात् कीमत जो उपभोक्ता देने को तैयार है (पैसों में)**	**बाजार में कीमत (पैसों में)**	**उपभोक्ता की बचत (पैसों में)**
1	80	10	80 - 10 ृ= 70
2	70	10	70 - 10 = 60
3	50	10	50 - 10 =40
4	30	10	30 - 10 = 20
5	10	10	10 - 10 = 00
	कुल = 240 पैसे की उपयोगिता	कुल कीमत = 10 × 5 = 50 पैसे	उपभोक्ता की कुल बचत = 190 पैसे

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि उपभोक्ता को केले की पहली इकाई से 80 पैसे के बराबर उपयोगिता मिल ती है जबकि बाजार में कीमत 10 पैसे है, अतः इस प्रथम इकाई पर 70 पैसे की बचत का अनुभव करता है। इसी प्रकार दूसरी इकाई पर 60, तीसरी पर 40, चौथी पर 20 पैसों के बराबर बचत का अनुभव करता है। पाँचवें केले (अर्थात् सीमान्त इकाई) पर उसको कोई बचत नहीं होती क्योंकि प्राप्त उपयोगिता तथा कीमत दानों बराबर हो जाती है। अतः 5 केलों का उपभोग करने से उपभोक्ता को (70+60+40+20=0) = 190 पैसों के बराबर कुल बचत प्राप्त होती है।

दूसरे शब्दों में- द्रव्य के माध्यम से उपभोक्ता की बचत की माप को इस प्रकार भी बता सकते हैः-

उपभोक्ता की बचत = {कुल उपयोगिता} - {वस्तु की कुल कीमत}

= {कुल उपयोगिता} - {वस्तु की प्रति इकाई कीमत} ×

(वस्तु की खरीदी जाने वाली इकाइयों की संख्या)}

= {240 पैसे} - {(10पैसे) 5 × इकाइयाँ}

= 240 पैसे - 50 पैसे

= 190 पैसे

मार्शल ने उपभोक्ता की बचत के विचार को केवल एक व्यक्ति के लिए नहीं बल्कि सम्पूर्ण बाजार के लिए भी बताया। उन्होंने यह माना कि बाजार में यद्यपि व्यक्तियों की आय, रूचि, फैशन अत्यादि में अन्तर है, परन्तु ये अन्तर तथा विभिन्नताएँ एक-दूसरे के प्रभाव को नष्ट कर देती हैं। इसलिए,

बाजार में सभी उपभोक्ताओं द्वारा प्राप्त उपभोक्ता की बचत = {मांग -मूल्य का योग }
- {वास्तविक विक्रय कीमत}

मांग -मूल्य वह मूल्य है जिस पर एक व्यक्ति वस्तु विशेष को खरीदने को तैयार है, अर्थात् यह प्राप्त होने वाली उपयोगिता को बताता है। अतः बाजार में विभिन्न उपभोक्ताओं के मांग -मूल्यों को जोड़ने से बाजार में प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता मालूम कर ली जाती है।

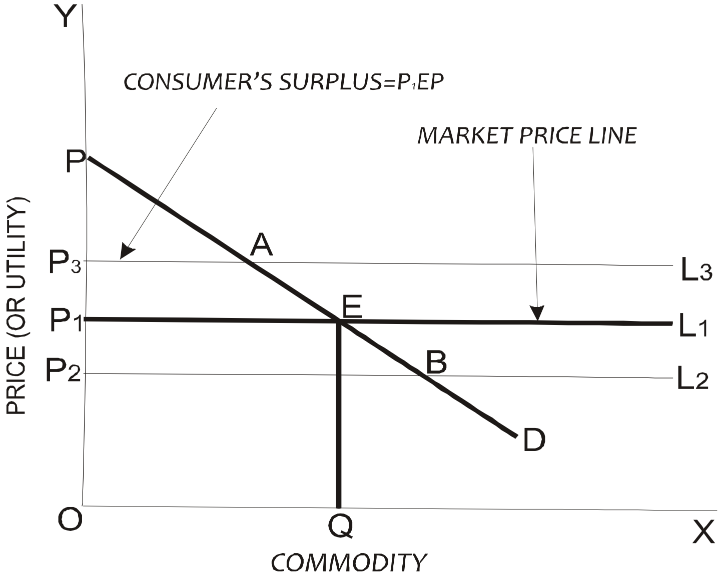

चित्र 1 - उपभोक्ता की बचत

रेखाचित्र में मांग रेखा बताती है कि एक उपभोक्ता वस्तु की विभिन्न मात्राओं को किन कीमतों पर खरीदने को तत्पर होगी। दूसरे शब्दों में, मांग रेखा उन कीमतों को बताती है जोकि उपभोक्ता वस्तु की विभिन्न मात्राओं के लिए देने को तत्पर है या यह कहिए कि मांग रेखा वस्तु की विभिन्न मात्राओं से मिल ने वाली उपयोगिता को बताती है। मांग रेखा के नीचे का क्षेत्रफल उपभोक्ता को प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता को बताता है। चित्र में PD मांग रेखा है तथा माना कि वस्तु की बाजार कीमत OP1 है। इस कीमत पर उपभोक्ता वस्तु की मात्रा OQ खरीदता है, तो OQ मात्रा से मिल ने वाली कुल उपयोगिता मांग रेखा के नीचे के क्षेत्रफल OPEQ के बराबर होगी। वस्तु बाजार में उपभोक्ता एक इकाई के लिए OP1 कीमत देता है; अर्थात् वह कुल कीमत OQ × OP1 या OP_1EQ के बराबर देता है। दूसरे शब्दों में वह OP_1EQ के बराबर उपयोगिता का त्याग करता है।

कुल उपयोगिता	= क्षेत्रफल OPEQ
कुल कीमत जो उपभोक्ता वास्तव में देता है	= क्षेत्रफल OP_1 EQ
उपभोक्ता की बचत	= कुल उपयोगिता - कुल कीमत
	= OPEQ – OP_1EQ
	= क्षेत्रफल P_1EP

दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता की बचत मांग रेखा तथा कीमत रेखा के बीच का क्षेत्रफल होता है। यदि कीमत गिरकर OP_2 हो जाती है तो उपभोक्ता की बचत बढ़कर P_2BP हो जाती है। यदि कीमत बढ़कर OP_3 हो जाती है तो उपभोक्ता की बचत घटकर P_3AP हो जाती हैं। अतः सामान्यतया कीमत में कमी उपभोक्ता की बचत में वृद्धि करती है, और इसके विपरीत, कीमत में वृद्धि उपभोक्ता की बचत में कमी करती है।

मार्शल ने बताया कि किसी देश में उपभोक्ता की बचत वहाँ की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। उन्नतशील देशों में परिवहन तथा संवादवाहन, समाचार-पत्र इत्यादि की अधिक तथा सस्ती सुविधाएँ होती हैं जिसके परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं को अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है। इसके विपरीत पिछड़े तथा अविकसित देशों में ये सब सुविधाएँ कम तथा महँगी होती हैं। परिणामस्वरूप, ऐसे देशों के निवासियों को उपभोक्ता की बचत कम प्राप्त होती है।

7.4 उपभोक्ता की बचत की मान्यताएँ

मार्शल का उपभोक्ता की बचत का विचार निम्न मान्यताओं पर आधारित हैः-

i. उपयोगिता मापनीय है तथा इसे मुद्रा रूपी पैमाने से मापा जा सकता है।
ii. मार्शल ने प्रत्येक वस्तु को एक स्वतन्त्र वस्तु माना है। दूसरे शब्दों में, वस्तु-विशेष की उपयोगिता उसकी स्वयं की पूर्ति पर निर्भर करती है और दूसरी वस्तुओं की पूर्ति से प्रभावित नहीं होती।
iii. खरीदने की समस्त क्रिया में मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता समान रहती है।
iv. मार्शल ने यह भी माना है कि विचाराधीन वस्तु के कोई स्थानापन्न नहीं हैं और यदि उसकी स्थानापन्न वस्तुएँ हैं तो उन सबको एक वस्तु ही मान लेना चाहिए।
v. मार्शल ने उपभोक्ता की बचत के विचार को सम्पूर्ण बाजार के सम्बन्ध में भी बताया। बाजार की उपभोक्ता की बचत को निकाल ने के लिए उन्होंने यह माना कि बाजार में

उपभोक्ताओं की आय, रूचि, फैशन इत्यादि में अन्तर तथा विभिन्नताएँ एक-दूसरे नष्ट कर देती हैं, इसलिए इन अन्तरों का कोई प्रभाव नहीं रह जाता।

7.5 उपभोक्ता की बचत का महत्व

उपभोक्ता की बचत के महत्त्व को हम दो भागों में अध्ययन कर सकते हैं

7.5.1 सैद्धान्तिक महत्त्व:- उपभोक्ता की बचत का विचार किसी वस्तु के उपयोग -मूल्य तथा विनिमय-मूल्य के अन्तर को स्पष्ट करता है। यह दैनिक जीवन का अनुभव है कि बहुत-सी वस्तुओं' जैसे- दियासYई, समाचार-पत्र पोस्टकार्ड इत्यादि की उपयोगिता (अर्थात् उपयोग -मूल्य) अधिक होती है परन्तु उनके लिए दी जाने वाली कीमत (अर्थात् विनिमय-मूल्य) बहुत कम होती है। ऐसी वस्तुओं के प्रयोग से उपभोक्ता को उपभोक्ता की बचत बहुत अधिक प्राप्त होती है। इस प्रकार यह विचार बताता है कि यह आवश्यक नहीं है कि किसी वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता उसके लिए दी जाने वाली कीमत के बराबर हो।

7.5.2 व्यावहारिक महत्त्व- निम्न हैः

7.5.2.1 दो देशों या एक ही देश में भिन्न-भिन्न समयों पर आर्थिक स्थितियों की तुलना में मदद- जो देश अधिक उन्नतशील है वहाँ पर विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ तथा सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में तथा सस्ती होंगी और इसलिए उपभोक्ता की बचत अधिक प्राप्त होगी। दूसरे शब्दों में, जिस देश में लोगों को अधिक उपभोक्ता की बचत होती है वह देश आर्थिक दृष्टि से अधिक उन्नतशील माना जायेगा। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत की सहायता से किसी समय दो देशों की आर्थिक स्थितियों की तुलना की जा सकती है। इसी प्रकार एक ही देश में विभिन्न समयों पर उसकी आर्थिक स्थितियों की तुलना इस विचार की मदद से की जा सकती है।

7.5.2.2 एकाधिकारी मूल्य निर्धारण में सहायक- यदि एकधिकारी की वस्तु ऐसी है जिससे उपभोक्ताओं को बहुत अधिक उपभोक्ता की बचत होती है तो एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य ऊँचा करके लाभ बढ़ा सकता है। परन्तु मूल्य ऊँचा करते समय वह इस बात का ध्यान रखता है कि मूल्य इतना ऊँचा न हो कि वह सारी उपभोक्ता की बचत को समाप्त कर दे नहीं तो उपभोक्ता में असन्तुष्टि फैलेगी और उसका अधिकार खतरे में पड़ सकता है। वह मूल्य ऊँचा करते समय कुछ उपभोक्ता की बचत अवश्य छोड़ देता है।

7.5.2.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ की माप में सहायता- प्रायः एक देश दूसरे देश से ऐसी वस्तुओं का आयात करता है जोकि अपने देश में कम हों तथा महँगी हों। ऐसी स्थिति में वे वस्तुएँ सस्ती मिल ने लगेंगी जिनका आयात किया जा रहा है, परिणामस्वरूप इन वस्तुओं के लिए पहले की अपेक्षा बाजार में कम कीमत देंगे और इस प्रकार उन्हें सन्तुष्टि का अतिरेक अनुभव होगा। दूसरे शब्दों में, उन्हें उपभोक्ता की बचत प्राप्त होने लगेगी । इस प्रकार उपभोक्ता की बचत का विचार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से उत्पन्न लाभ को मापता है।

7.5.2.4 राजस्व अथवा आर्थिक नीति में महत्त्व- किसी वस्तु पर कर लगाने से एक ओर तो उसकी कीमत बढ़ जाती है और इसलिए उससे प्राप्त उपभोक्ता की बचत घट जाती है; दूसरी ओर सरकार को कर के द्वारा अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। सरकार कर लगाने से जो अतिरिक्त आय प्राप्त करती है, उसकी उपयोगिता को वह उपभोक्ता की बचत में कमी की पृष्ठभूमि में देखती है। यदि कर ऐसा है कि जिससे उपभोक्ता की बचत में कमी अधिक होती है अपेक्षाकृत अतिरिक्त आय की उपयोगिता के, तो ऐसा कर बुरा कर होगा जिसे सरकार लगाना पसन्द नहीं करेगी। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत का विचार राजस्व के अन्तर्गत करारोपण के क्षेत्र में महत्त्व रखता है।

राजस्व के क्षेत्र में उपभोक्ता की बचत के महत्व को पूर्ण रूप से समझने के लिए इस बात पर भी ध्यान दिया जाता है कि वस्तु का उत्पादन कौन से उत्पत्ति के नियम के अन्तर्गत हो रहा है।

i. यदि वस्तु का उत्पादन 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत हो रहा है तो वस्तु पर कर लगाने से कीमत बढ़ेगी जिसके परिणामस्वरूप मांग घटेगी और उत्पादन कम किया जायेगा। उत्पादन कम होने से प्रति इकाई लागत बढ़ेगी जिसके कारण कीमत और बढ़ जायेगी; अतः ऐसी वस्तु पर कर लगाने वस्तु की कीमत कर की मात्रा से अधिक बढ़ेगी। इसका परिणाम यह होगा कि सरकार को प्राप्त अतिरिक्त आय की अपेक्षा उपभोक्ताओं को 'उपभोक्ता की बचत' की हानि अधिक होगी; इसलिए सरकार ऐसी वस्तुओं पर कर लगाना पसन्द नहीं करेगी।

ii. यदि वस्तु का उत्पादन 'लागत वृद्धि नियम' के अन्तर्गत हो रहा है तो वस्तु पर कर लगाने से कीमत बढ़ेगी, जिसके परिणामस्वरूप मांग घटेगी और उत्पादन कम किया जायेगा। उत्पादन कम होने से कीमत बढ़ेगी, जिसके परिणामस्वरूप मांग घटेगी जिसके कारण कीमत कम होगी; अतः ऐसी वस्तु पर कर लगाने से वस्तु की कीमत कर की मात्रा से कम बढ़ेगी। इसका परिणाम यह होगा कि सरकार को प्राप्त अतिरिक्त आय की अपेक्षा उपभोक्ताओं को उपभोक्ता की बचत की हानि कम होगी, इसलिए सरकार ऐसी वस्तुओं पर कर लगायेगी।

iii. यदि वस्तु का उत्पादन 'समान लागत नियम' के अन्तर्गत हो रहा है तो ऐसी वस्तु पर कर लगाना उचित नहीं है क्योंकि इससे सरकार को लाभ कम होगा अपेक्षाकृत उपभोक्तओं के नुकसान के।

इस प्रकार, जब सरकार किसी उद्योग को आर्थिक सहायता देती है तो उपभोक्ताओं की बचत को ध्यान में रखती है। यदि उद्योग ऐसा है जोकि लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत वस्तु का उत्पादन कर रहा है तो सरकार द्वारा आर्थिक सहायता देना उचित होगा। ऐसे उद्योग को आर्थिक सहायता देने से लागत कम होगी। इसलिए मूल्य कम होगा और वस्तु की मांग बढ़ेगी, मांग बढ़ने से वस्तु का उत्पादन बढ़ाया जायेगा, उत्पादन बढ़ने से प्रति इकाई लागत और कम होगी और मूल्य भी कम होगा इस प्रकार उपभोक्ताओं की बचत में बहुत वृद्धि होगी। स्पष्ट है कि लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत

कार्य करने वाले उद्योग को सरकारी आर्थिक सहायता देना हितकर है जबकि वृद्धि नियम के अन्तर्गत उद्योग को सरकार द्वारा आर्थिक सहायता देना उचित नहीं हैं।

स्पष्ट है कि उपभोक्ता की बचत का विचार बेकर नहीं है। इसका महत्त्व सैद्धान्तिक ही नहीं बल्कि व्यवहारिक भी है। यह मोटे रूप से व्यावहारिक कार्यों में मार्ग-प्रदर्शन करने की दृष्टि से लाभदायक है।

7.6 हिक्स द्वारा मार्शल की उपभोक्ता की बचत की धारणा का सुधार

मार्शल उपभोक्ता की बचत के विचार का प्रतिपादन करते समय कुछ ऐसी मान्यताओं को लेकर चले जो अवास्तविक थीं। हिक्स तथा अन्य आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने बताया कि मुख्य अवास्तविक मान्यताएँ निम्न हैं:-

(1) उपयोगिता को निश्चित रूप से मुद्रारूपीं पैमाने से मापा जा सकता है। परन्तु उपयोगिता तो एक मनोवैज्ञानिक वस्तु है जिसको परिमाणात्मक रूप से मापा नहीं जा सकता है।

(2) विनिमय की क्रिया में मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता समान रहती है। परन्तु यह मान्यता भी अवास्तविक है क्योंकि मुद्रा के व्यय होते जाने के साथ उसकी सीमान्त उपयोगिता बढ़ती जाती है, स्थिर नहीं रहती।

(3) एक वस्तु की मांग को दूसरी वस्तुओं से स्वतन्त्र माना, परन्तु स्थानापन्न तथा पूरक वस्तुओं का प्रभाव उस वस्तु की मांग पर पड़ता है।

अवास्तविक मान्यताओं को दूर करने के लिए हिक्स ने उपभोक्ता की बचत के विचार का पुनर्निर्माण तटस्थता-वक्र विश्लेषण द्वारा कियाः-

(1) तटस्थता-वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता की बचत की व्याख्या करने में उपयोगिता को परिमाणत्मक रूप से मापने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस प्रकार हिक्स ने मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपभोक्ता की बचत के विचार की एक मुख्य आलोचना को दूर करने का प्रयत्न किया।

(2) इस विश्लेषण विधि में उन्होंने मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर नहीं माना तथा स्थानापन्न और पूरक वस्तुओं के प्रभाव को ध्यान में रखा। इस प्रकार प्रो० हिक्स ने अन्य दो अवास्तविक मान्यतओं को भी दूर करने का प्रयत्न किया।

(3) हिक्स ने उपभोक्ता की बचत के विचार को एक दूसरे प्रकार से बताया जो इस प्रकार हैः-

जब किसी वस्तु की कीमत गिर जाती है तो इसके दो प्रभाव होते हैः-

i. उपभोक्ता वस्तु की कुछ अधिक मात्रा खरीद सकता है और उसको किसी अन्य वस्तु के स्थान पर प्रयोग कर सकता है जिसकी कीमत कम नहीं हुई है। इसे उन्होनें प्रतिस्थापन प्रभाव कहा।
ii. कीमत गिर जाने से वस्तु सस्ती हो जाती है, इसलिए वस्तु पर उपभोक्ता का व्यय पहले की अपेक्षा कम हो जाता है, अर्थात् उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है। इसे उन्होंने आय प्रभाव कहा।

इन दोनों बातों का प्रभाव यह होता है कि उपभोक्ता की स्थिति पहले की अपेक्षा अच्छी हो जाती है। अतः हिक्स ने बताया-उपभोक्ता की बचत को, किसी वस्तु की कीमत में कमी होने के परिणामस्वरूप द्राव्यिक आय में लाभ की भाँति समझना चाहिये।

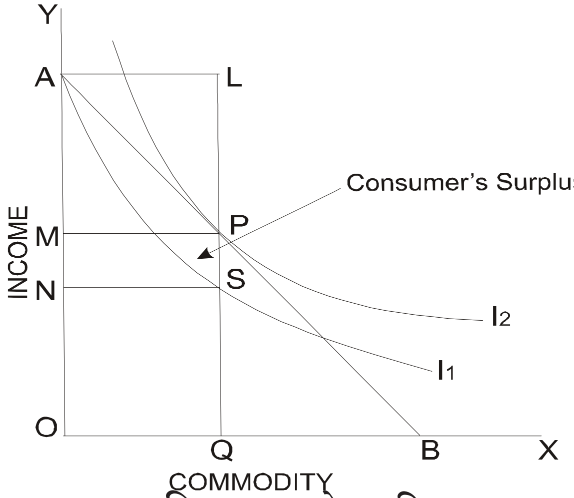

चित्र 2 - उपभोक्ता की बचत

तटस्थता वक्र रेखाओं द्वारा उपभोक्ता की बचत की व्याखा चित्र द्वारा की गयी है। माना कि उपभोक्ता की द्राव्यिक आय व्। है। X वस्तु को X- axis पर दिखाया गया है। AB कीमत रेखा है। P बिन्दु उपभोक्ता का सन्तुलन बिन्दु है जोकि X वस्तु की OQ मात्रा + OM द्रव्य के संयोग को बताता है अर्थात् उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा को खरीदने के लिए AM या LP द्रव्य देता है। S बिन्दु नीचे की तटस्थता वक्र रेखा I_1 पर है, इसका अर्थ है कि X वस्तु की उतनी ही मात्रा OQ को खरीदने के लिए उपभोक्ता LS या ANद्रव्य देने को तैयार है, परन्तु वह वास्तव में, LP या AM द्रव्य ही देता है, अतः LS − LP = PS या MN उपभोक्ता की बचत हुई।

7.7 उपभोक्ता बचत: हिक्स की चार धारणाएँ

प्रो० हिक्स ने अपने एक लेख The Four Consumer's Surpluses' में उपभोक्ता बचत विचारधारा का पुनर्निमाण किया है। इन उपभोक्ता बचतों में उन्होनें अपने पूर्व उपभोक्ता बचत विचार, जो मार्शल के विचार की भाँति ही था, को त्याग दिया और उपभोक्ता बचत विचार को विस्तृत एवं वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया। इस नये विकसित विचार में हिक्स ने कीमत परिवर्तन से उत्पन्न आय प्रभाव की स्थिति पर विशेष ध्यान दिया। इस बिन्दु के स्पष्टीकरण के लिए समतुल्य परिवर्तन तथा क्षतिपूरक परिवर्तन में अन्तर स्पष्ट करते है।

समतुल्य परिवर्तन से अभिप्राय उस मौद्रिक आय से है जो उपभोक्ता से ले ली जानी चाहिए अथवा उसे दी जानी चाहिए ताकि वह उसी वास्तविक आय स्तर को प्राप्त कर सके जो वास्तव में न घटित हुए कीमत परिवर्तन के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ होता।

क्षतिपूरक परिवर्तन से अभिप्राय उस मौद्रिक आय से है जो वास्तव में घटित होने वाले कीमत परिवर्तन के कारण उपभोक्ता की क्षतिपूर्ति करती है। यह (मौद्रिक आय) एक कर या अनुदान है जो कीमत परिवर्तन प्रभाव को पूर्णतः नष्ट कर देती है और उसको वास्तवकि आय के प्रारम्भिक स्तर पर ले आती है।

समतुल्य परिवर्तन तथा क्षतिपूरक परिवर्तन के अन्तर के आधार पर हिक्स ने चार उपभोक्ता बचत दी है:-

7.7.1 आय में मात्रा-क्षतिपूर्ति परिवर्तन।

7.7.2 आय में कीमत-क्षतिपूर्ति पविर्तन।

7.7.3 आय में कीमत-समतुल्य परिवर्तन।

7.7.4 आय में मात्रा-समतुल्य परिवर्तन।

7.7.1 आय में मात्रा क्षतिपूर्ति परिवर्तन- चित्र में प्रारम्भिक कीमत रेखा RS है इस पर उपभोक्ता IC1 उदासीनता वक्र के साथ बिन्दु F पर सन्तुलन में है। यदि X वस्तु की कीमत घट जाती है तब नयी कीमत रेखा RS_1 हो जाती है। इस कीमत रेखा RS_1 के बिन्दु K पर सन्तुलन प्राप्त करते हुए उपभोक्ता ऊँचे उदासीनता वक्र IC_2 पर पहुंच जाता है। बिन्दु K पर उपभोक्ता OQ मात्रा खरीदने के लिए मुद्रा की RN इकाइयाँ व्यय कर कर रहा है।

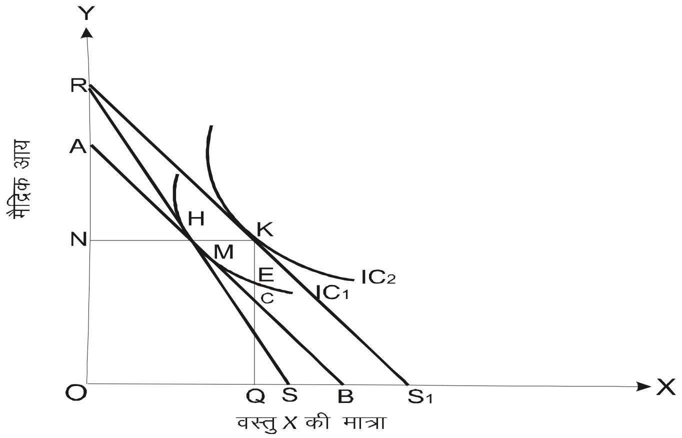

चित्र 3 - आय में मात्रा क्षतिपूर्ति एवं कीमत में क्षतिपूर्ति परिवर्तन

वस्तु X की कमी के कारण उत्पन्न उपभोक्ता की सन्तुष्टि में वृद्धि का हम मौद्रिक माप ज्ञात करने के लिए IC1 तथा IC_2 की तुलना करते है। उपभोक्ता की सन्तुष्टि में वृद्धि का माप KE है। यदि उपभोक्ता से KE के बराबर मौद्रिक आय कर के रूप में ले ली जाय तब उपभोक्ता पुनः पुराने उदासीनता वक्र

के बिन्दु E पर आ जायेगा जो उपभोक्ता के प्रारम्भिक सन्तुष्टि स्तर को बताता है। दूसरे शब्दों में, कीमत में कमी के कारण उपभोक्ता की सन्तुष्टि में वृद्धि की क्षतिपूर्ति मुद्रा की KE मात्रा करती है। इस प्रकार मुद्रा की मात्रा KE आय में क्षतिपूर्ति परिवर्तन को बताती है। बिन्दु C पर क्योंकि वस्तु की OQ मात्रा ही खरीदी जा रही है (जबकि कीमत कम हो गयी है) अतः मुद्रा की मात्रा KE को आय में मात्रा क्षतिपूर्ति परिवर्तन कहा जाता है।

7.7.2 आय में कीमत क्षतिपूर्ति परिवर्तन- मुद्रा की KE मात्रा उपभोक्ता से ले लेने पर भी उपभोक्ता ऊँचे सन्तुष्टि स्तर पर रहेगा क्योंकि बिन्दु E से, कीमत रेखा RS_1 के समानान्तर, गुजरती हुयी कीमत रेखा यदि खींची जाये तो निश्चित रूप से बिन्दु E एक ऊँचे उदासीनता वक्र (IC1 की तुलना में) पर स्थित होगा। यदि उपभोक्ता को वास्तविक रूप से उसके प्रारम्भिक सन्तुष्टि स्तर पर पहुँचाना है तो कीमत की कमी के बाद उससे KE मुद्रा मात्रा के स्थान पर KC मुद्रा मात्रा लेनी पड़ेगी। इस प्रकार KC मुद्रा मात्रा ले लेने पर कीमत रेखा AB होगी जो बिन्दु M पर प्रारम्भिक उदासीनता वक्र के लिए स्पर्श बिन्दु रेखा का काम करेगी। KC मुद्रा मात्रा कीमत कमी के कारण उपभोक्ता की सन्तुष्टि में वृद्धि का वास्तविक माप है जिसे आय में कीमत क्षतिपूर्ति परिवर्तन कहा जाता है।

7.7.3 आय में कीमत-समतुल्य परिवर्तन- आय में कीमत समतुल्य परिवर्तन ज्ञात करने के लिए कीमत की प्रस्तावित कमी की समतुल्य मात्रा के बराबर प्रारम्भिक कीमत पर आय में वृद्धि की गणना की जाती है। प्रारम्भिक कीमत रेखा RS वस्तु X की प्रस्तावित कीमत कमी के कारण RS_1 हो जाती है। कीमत की प्रस्तावित कमी का अभिप्राय है कि वास्तविकता में कीमत में कोई कमी नहीं होती तथा कीमत में कमी के स्थान पर उपभोक्ता की मौद्रिक आय में वृद्धि करके उपभोक्ता को ऊँचे उदासीनता वक्र IC_2 पर ले जाया जाता है। दूसरे शब्दों में, कीमत के प्रस्तावित परिवर्तन के बरबर आय में वृद्धि की जाती है। इसे ही आय का समतुल्य परिवर्तन कहा जाता है।

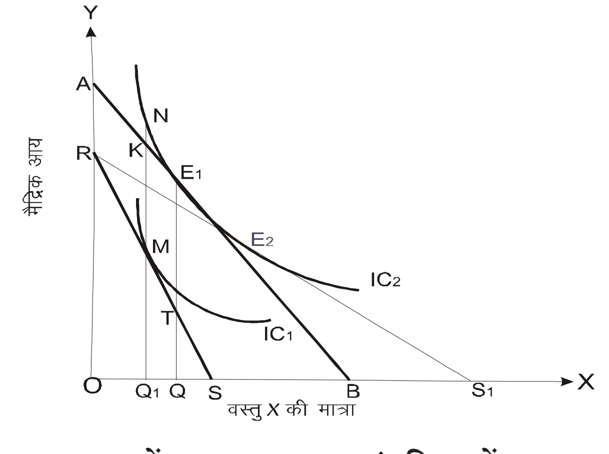

चित्र 4 - आय में मात्रा समतुल्य एवं कीमत में समतुल्य परिवर्तन

प्रारम्भिक कीमत रेखा RS तथा IC1 के साथ उपभोक्ता बिन्दु M पर सन्तुलन में है। यदि कीमत में कमी होती तब उपभोक्ता नयी कीमत रेखा RS_1 के साथ ऊँचे उदासीनता वक्र IC_2 के बिन्दु E_2 पर सन्तुलन में होता। कीमत में प्रस्तावित कमी के समतुल्य उपभोक्ता को MK मौद्रिक आय दी जा सकती है। मौद्रिक आय की MK वृद्धि उपभोक्ता को उसी ऊँचे उदासीनता वक्र IC_2 के बिन्दु E_1 पर सन्तुलन में ले आयेगी। इस बिन्दु E_1 पर उपभोक्ता वस्तु X की प्रारम्भिक मात्रा OQ_1 के स्थान पर OQ खरीदेगा। मौद्रिक आय की यह मात्रा MK ही आय में कीमत समतुल्य परिवर्तन है।

7.7.4 आय में मात्रा-समतुल्य परिवर्तन- मौद्रिक आय में वृद्धि के बाद भी यदि उपभोक्ता अपनी प्रारम्भिक उपभोग मात्रा OQ_1 खरीदना चाहता है तो वह IC_2 की तुलना में एक नीचे उदासीनता वक्र पर होगा क्योंकि बिन्दु K उदासीनता वक्र IC_2 से नीचे स्थित है। अतः वस्तु की प्रारम्भिक मात्रा OQ1 को खरीदने के लिए उपभोक्ता को कीमत में प्रस्तावित परिवर्तन के समतुल्य मौद्रिक आय MN दी जानी चाहिए। ऐसी दशा में उपभोक्ता की आय में वृद्धि का पूर्ण माप प्राप्त होगा। यही मौद्रिक आय MN आय में मात्रा-समतुल्य परिवर्तन है।

7.8 उपभोक्ता की बचत के विचार की आलोचनाएं

यूलिस गोबी, केनन, निकलसन, टॉसिग, हिक्स और सेम्यूल्सन आदि ने मार्शल के उपभोक्ता-बचत के माप की बड़ी कड़ी आलाचना की है। प्रोफेसर हिक्स का यह कथन उचित है कि ''मार्शल की Principles में किसी भी अन्य बात की अपेक्षा उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त ने सबसे अधिक समस्या और विवाद खड़ा किया है।'' यह ''समस्या और विवाद'' उन मान्यताओं के कारण खड़ा हुआ है जिन पर यह सिद्धान्त आधारित है। हम नीचे उन मान्यताओं पर आधारित आलोचनाओं पर विचार करते हैं।

7.8.1 उपयोगिता का मात्रात्मक माप नहीं किया जा सकता- उपभोक्ता-बचत का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि उपयोगिता का मात्रात्मक माप किया जा सकता है। जिस क्षण हम यह जान लेते हैं कि उपयोगिता मापी जा सकते वाली मात्रा नहीं है, तभी उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त भ्रामक बन जाता है।यह सम्भव है कि भूख से मरता हुआ कोई करोड़पति एक रोटी के लिए 1,00,000/= को तैयार हो परन्तु जब उसे वह रोटी 1 रूपये में मिल सकती है तो यह विश्वास करना जरा मुश्किY है कि उसे 99,999/=अधिक सन्तुष्टि मिल ती है। उपयोगिता की मापात्मकता के बिना ही उदासीनता वक्र तकनीक की सहायता से उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त की व्याख्या करके हिक्स ने इस कठिनाई को पार किया है।

7.8.2 मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर नहीं रहती- जब एक उपभोक्ता अपनी दी हुई मौद्रिक आय को एक वस्तु को खरीदने में खर्च कर देता है, तो उसके पास बची हुई मुद्रा उसी मात्रा में कम हो जाती है जिस से उस मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता बढ़ जाती है। इस आलोचना का मार्शल ने यह उत्तर दिया था कि उपभोक्ता किसी एक विशेष वस्तु पर अपनी कुल मौद्रिक आय का बहुत थोड़ा

भाग खर्च करता है और इस प्रकार इससे उसके लिए मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जिसे हम स्थिर मान सकते है। परन्तु इस तर्क से समस्या हल् नहीं हो जाती है क्योंकि उपभोक्ता तो एक नही बल्कि कई वस्तुएँ खरीदता है जिससे उसके लिए मुद्रा उपयोगिता बढ़ जाती है और इस प्रकार उपभोक्ता की बचत का हिसाब गलत हो जाता है। उदासीनता वक्र तकनीक की भाषा में उपभोक्ता की बचत को माप कर हिक्स ने इस कठिनाई को भी हल् कर दिया है।

7.8.3 एक वस्तु दूसरी से स्वतन्त्र नहीं होती- मार्शल की यह भी मान्यता है कि किसी वस्तु की उपोगिता केवल उस वस्तु की पूर्ति पर निर्भर करती है। वह वस्तुओं की पूरकता की समस्या की उपेक्षा करता है और इस प्रकार एक वस्तु को दूसरी से स्वतन्त्र समझता है। यह मान्यता मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता की स्थिरता से प्राप्त होती है। ऐसी सब स्थितियों में उपभोक्ता की बचत को ठीक से मापना कठिन होगा।

7.8.4 स्थानापन्नों की अनुपस्थिति अवास्तविक है- सिद्धान्त उस वस्तु के स्थानापन्नों की अनुपस्थिति को मानकर चलता है जिससे उसे बचत प्राप्त होती है परन्तु यह धारणा सिद्धान्त को अवास्तविक बना देती है क्योंकि ऐसी वस्तु को ढूँढना संभव नही जिसका कोइ्र स्थानापन्न न हो।

7.8.5 आय संवेदनशील तायें एवं रूचियों सम्बन्धी भेदों की उपेक्षा नहीं की जा सकती- मार्शल की यह भी मान्यता है कि उपभोक्ता की बचत का हिसाब लगाते समय उपभोक्ताओं के धन संवेदनशील ताएं सम्बन्धी भेदों को छोड़ देना चाहिए। यदि सब उपभोक्ताओं की आय समान भी मान ली जाये तो भी उनकी रूचियाँ और संवेदनशील ताएँ भिन्न होगी। इस कठिनाई से बचने के लिए मार्शल का सुझाव है कि अधिक व्यक्तियों की औसत ले लेनी चाहिए ताकि उनकी संवेदनशील ताओं और धन में अन्तर समाप्त हो जाए। परन्तु इससे सिद्धान्त मनमाना और अवास्तविक बन जाता है।

7.8.6 उपभोक्ता वस्तु की वास्तविक कीमत से अधिक कीमत नही देता- उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए उस की वास्तविक कीमत से अधिक नहीं दे सकता। यदि उसे कोइ्र विशेष वस्तु उसकी वर्तमान कीमत पर नहीं मिल सकती, तो वह किसी और स्थानापन्न वस्तु को ले लेगा।

7.8.7 अन्तिम विश्लेषण में उपभोक्ता की बचत शून्य हो जाती है- यूलिस गोबी के अनुसार, यदि उपभोक्ता की बचत को संभावित कीमत और वास्तविक कीमत का अन्तर मान लिया जाए, तो अन्तिम विश्लेषण में यह अन्तर शून्य हो जाता है।

7.8.8 आवश्यक वस्तुओं से उपभोक्ता की बचत निश्चित एवं अनन्त होती है- सब आलोचक कम से कम इस बात पर सहमत है कि आवश्यक वस्तुओं से प्राप्त उपभोक्ता की बचत निश्चित और निर्णय योग्य नहीं होती है। इसलिए उनसे प्राप्त उपभोक्ता की बचत अनन्त और अनिश्चित होती है।

7.8.9 विलास एवं प्रतिष्ठा वस्तुओं से उपभोक्ता की बचत मापना सम्भव नहीं- प्रो० टॉसिX का तर्क है कि विलास एवं प्रतिष्ठा वस्तुओं के विषय में उपभोक्ता की बचत की माप सम्भव

नहीं। हीरे जैसी वस्तुओं की कीमत गिरने से उनके स्वामियों के लिये उनकी उपयोगिता कम हो जाती है जिससे उपभोक्ता की बचत कम हो जाती है।

7.8.10 यह सिद्धान्त उपकल्पित, अवास्तविक तथा मनगढ़न्त है- निकगसन का कथन है कि यह सिद्धान्त उपकल्पित, अवास्तविक और मनगढ़न्त है। निश्चय ही यह सिद्धान्त अवास्तविक धारणाओं के कारण ऐसा है।

7.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके है कि उपभोक्ता की बचत का अर्थ क्या हैं तथा इसे कैसे ज्ञात किया जाता हैं। उपभोक्ता की बचत को ज्ञात करने हेतु मार्शल ने गणनावाचक दृष्टिकोण को अपनाया जबकि हिक्स ने क्रमवाचक दृष्टिकोण को अपनाया है तथा बाद में हिक्स ने इस विचारधारा में नवीन संशोधन भी किये, जिसको आपने आत्मसात किया होगा। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप उपभोक्ता की बचत की व्याख्या सहज रूप से कर सकेगें।

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

बहुविकल्पीय प्रश्न-

1. पुस्तक ‘‘द प्रिन्सिपल ऑफ पॉलिटिकल इकोनोमी एण्ड टैक्सेशन’’ लिखी:

(अ) एडम स्मिथ (ब) रिकार्डो

(स) मार्शल (द) जे0एम0 कीन्स

2. उपभोक्ता के बचत का विचार आधारित है:

(अ) सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम (ब) सम-सीमान्त उपयोगिता नियम

(स) प्रतिस्थापन का नियम (द)उपरोक्त में से कोई नही

3.उपभोक्ता के बचत का विचार में संशोधन किसके द्वारा किया गयाः:

(अ) हिक्स (ब) रिकार्डो

(स) मार्शल (द) जे0एम0 कीन्स

4.पुस्तक Review of Economic Studies किसके द्वारा लिखी गयीः

(अ) एडम स्मिथ (ब) रिकार्डो

(स) मार्शल (द) हिक्स

6. उपभोक्ता के बचत का विचार सर्वप्रथम किसने दिया:

(अ) डयूपिट (ब) रिकार्डो

(स) मार्शल (द) हिक्स

उत्तर-(1) मार्शल (2) सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम (3) हिक्स (4) हिक्स(5) डयूपिट

लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. उपभोक्ता की बचत अर्थ क्या है ?
2. उपभोक्ता की बचत के संदर्भ में मार्शल एवं हिक्स के द्रष्टिकोण में अन्तर क्या है ?

3. उपभोक्ता की बचत की मान्यतायें कौन-कौन सी है ?

4. उपभोक्ता की बचत को किस प्रकार मापा जाता है ?

5. उपभोक्ता की बचत की दो प्रमुख आलोचनायें बताइयें।

उत्तर: (1) 7.3. देखिए। (2) 7.6. देखिए। (3) 7.4. देखिए। (4) 7.3. एवं 7.7. देखिए। (5) 7.8. देखिए।

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. Koutsoyinuis. A. (1979) Modern Microeconomics (2nd Edition), Macmillian Press, London.
2. Ahuja, H.L. (2010) Priniciples of Micro Economics, S & Chand Publishing House.
3. Pererson, L. and Jain (2006) Managerial Economics, 4th edition, Pearson Education.
4. Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
5. Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.

7.12 निबंधात्मक प्रश्न-

1. उपभोक्ता के बचत के नियम की स्पष्ट व्याख्या कीजिए। इसके कौन से अपवाद है ?

2. उपभोक्ता के बचत की परिभाषा दीजिए तथा नियम की व्याख्या उदाहरणों एवं रेखाचित्रों के माध्यम से कीजिए।

3. उपभोक्ता के बचत की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए ?

इकाई-8: अनधिमान वक्र विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 उपभोक्ता के संतुलन अध्ययन में प्रो0 मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण के दोष
8.4 नवीन तकनीकि-अनधिमान वक्र विश्लेषण
 8.4.1 विश्लेषण का उद्गम एवं विकास
 8.4.2 विश्लेषण की मान्यताएं
 8.4.3 अनधिमान वक्र-अर्थ, परिभाषाएं एवं स्वरूप
8.5 सीमान्त प्रतिस्थापन दर: महत्वपूर्ण उपकरण
8.6 अनधिमान वक्रों की विशेषताएं
8.7 उपभोक्ता का सन्तुलन
8.8 तटस्थता वक्र विश्लेषण का आलोचनात्मक मूल्यांकन
 8.8.1 तटस्थता वक्र-विश्लेषण के गुण तथा उसकी श्रेष्ठता
 8.8.2 तटस्थता वक्र-विश्लेषण के दोष
 8.8.3 तटस्थता वक्र विश्लेषण के निष्कर्ष
8.9 सारांश
8.10 शब्दावली
8.11 अभ्यास प्रश्न
8.12 संदर्भ ग्रन्थ-सूची
8.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.14 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

अनधिमान वक्र विश्लेषण के अध्ययन में आपका स्वागत है। आप स्वयं एक उपभोक्ता है। क्या आप जानना नहीं चाहेंगे कि किसी वस्तु के उपयोग से उपयोगिता मिल ती है कि नहीं? अगर मिल ती है तो कितनी? यहां ''कितनी'' का संख्यात्मक मापन अगर संभव नहीं तो उसका विकल्प क्या है? इस रूप में यह अर्थशास्त्र सिद्धान्त का रूचिकर एवं सरस विषय है। इस विश्लेषण के द्वारा उपभोक्ता सन्तुलन को कैसे प्राप्त करेगा? अनधिमान वक्र कैसे किस तरह बनेगा और इसका स्वरूप क्या होगा इस इकाई के द्वारा आप जानने में सक्षम हो जायेंगे। अर्थशास्त्र में रेखाचित्रों का महत्व अत्यधिक है। इस इकाई में रेखाचित्रों का प्रयोग विषय को और सहज एवं सरल बना देता है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न विषय बिन्दुओं को समझने में मदद करना। यथा -

- अनधिमान वक्र विश्लेषण, उद्गम विकास,
- अनधिमान वक्र का अर्थ, मान्यताएं एवं परिभाषा,
- अनधिमान वक्र का स्वरूप कैसे होता है ?
- सीमान्त प्रतिस्थापन दर अनधिमान वक्र का महत्वपूर्ण उपकरण है,
- अनधिमान वक्र की क्या विशेषताएं है?
- अनधिमान वक्र की सहायता से उपभोक्ता का सन्तुलन जानना।

8.3 उपभोक्ता के संतुलन अध्ययन में प्रो0 मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण के दोष

उपभोक्ता के संतुलन के लिए प्रो0 मार्शल द्वारा प्रस्तुत किया गया विश्लेषण उपयोगिता के 'संख्यात्मक दृष्टिकोण' ;बंतकपदंस ।चचतवंबीद्ध पर आधारित है जिसके अनुसार उपभोग की जाने वाली वस्तु की विभिन्न इकाइयों से मिल ने वाली उपयोगिता की ठीक-ठीक माप करना संभव है। मार्शल के विचार के अनुसार उपयोगिता का मुद्रा रूपी मापदण्ड से मापा जा सकता है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री उपयोगिता के संख्यात्मक दृष्टिकोण को अयथार्थवादी मानते हैं। इस अर्थशास्त्रियों के अनुसार उपयोगिता की ठीक-ठीक माप करना संभव नहीं है क्योंकि -

- उपयोगिता की व्यक्ति सापेक्ष संकल्पना है और परिवर्तनशील है। अतः न केवल एक ही वस्तु से विभिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न उपयोगिता प्राप्त होती है, वरन् एक ही वस्तु से

एक ही व्यक्ति को समय-समय और स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न उपयोगिता प्राप्त होती है। इसलिए उपयोगिता की संख्यात्मक माप संभव ही नहीं है।

- उपयोगिता को मापने के लिए कोई निश्चित पैमाना ही उपलब्ध नहीं है। सामान्यतः इस उद्देश्य के लिए मुद्रारूपी पैमाने का प्रयोग किया जाता है। परन्तु ऐसा करना उचित नहीं है क्योंकि सामान्यतः कीमत स्तर में हाने वाले प्रत्येक परिवर्तन के साथ मुद्रा के मूल्य में भी परिवर्तन हो जाता है और ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता नियम किसी वस्तु की भॉति मुद्रा पर भी लागू होता है जिसके कारण उसकी सीमान्त उपयोगिता भी स्थिर नहीं रहती है। अतः जो स्वयं निश्चित एवं स्थिर नहीं है, उसे किसी वस्तु (या विचार) को मापने के लिए पैमाने के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है।
  अब आप स्वयं ही बतायें कि क्या आपके मनोमस्तिष्क में कोई तराजू या पैमाना है जो वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को माप सकती है कि अमुक वस्तु से अमुक उपयोगिता मिली है?
- उपयोगिता एक अमूर्त संकल्पना है। वास्तव में यह किसी वस्तु का वह गुण, क्षमता व शक्ति है, जिससे किसी मानवीय आवश्यकता की पूर्ति होती है। अतः इसकी माप किसी वस्तुनिष्ठ पैमाने द्वारा करना संभव नहीं है।
- आप स्वयं का एक उपभोक्ता भी है। आप समझ गये होंगे कि उपयोगिता एक व्यक्तिनिष्ठ धारणा है। किसी वस्तु से प्राप्त उपयोगिता का अनुभव किया जा सकता है लेकिन क्या उसे आप संख्यात्मक रूप में व्यक्त कर सकते है? उपयोगिता का संख्यात्मक माप संभव नहीं है।

इस प्रकार उपयोगिता की माप में उत्पन्न होने वाले दोषों के कारण उसे अन्य राशियों की तरह ठीक-ठीक मापा नहीं जा सकता। वास्तव में आप स्वयं किसी उपभोक्ता से यह पूछें कि आपको सेब की दूसरी इकाई के उपभोग में पहली इकाई की तुलना में कितने रूपये की उपयोगिता कम या अधिक मिली अर्थहीन प्रश्न पूछना लगेगा । मार्शल के सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण में प्रयुक्त ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता नियम, सम-सीमान्त उपयोगिता नियम और आनुपातिकता के नियम में जिनका उदाहरण देते हैं वे सभी उपयोगिता के संख्यावाचक दृष्टिकोण के स्पष्ट उदाहरण हैं। अतः उपभोक्ता के संतुलन की व्याख्या हेतु मार्शल द्वारा प्रयुक्त सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण दोषपूर्ण तथा निरर्थक हो जाता है। इस कारण से आधुनिक अर्थशास्त्री उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन हेतु विकल्प स्वरूप अनधिमान वक्र विश्लेषण तकनीकि का प्रयोग करते हैं।

8.4 नवीन तकनीकि: अनधिमान वक्र विश्लेषण

अनधिमान वक्र विश्लेषण उपयोगिता के क्रम वाचक दृष्टिकोण पर आधारित है जिसमें यह तथ्य निहित है कि उपयोगिता मापनीय नहीं अपितु तुYनीय है। इसके अन्तर्गत उपभोक्ता को एक स्थिति में

प्राप्त होने वाली उपयोगिता की तुलना दूसरी स्थिति में प्राप्त होने वाली उपयोगिता से की जाती है। इस विश्लेषण का आधार क्रम सूचक संख्याएं हैं जिसमें उपभोक्ता अपने अधिमान के अनुसार वस्तुओं के संयोगों को प्राप्त उपयोगिता के आधार पर क्रमबद्ध करता है और प्रत्येक क्रम सन्तुष्टि या उपयोगिता के एक निश्चित स्तर का सूचक होता है। इस प्रकार संतुष्टि के विभिन्न स्तरों को प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ आदि क्रम सूचक संख्याओं में रखा जाता है। इसी आधार पर उपभोक्ता यह बता सकता है कि उसे वस्तुओं के संयोग A की तुलना में संयोग B अधिक पसन्द है या कम, या वह दोनों से समान सन्तुष्टि प्राप्त कर रहा है और इसलिए उनके बीच तटस्थ है। इसी तटस्थता स्वभाव के कारण अनधिमान वक्र को तटस्थता वक्र भी कहते हैं। उपभोक्ता यह बता सकता है कि B से उसे A की तुलना में अधिक या कम उपयोगिता मिल ती है लेकिन कितनी यह मात्रा व्यक्त नहीं कर सकता। क्या आप सन्तुष्टि की मात्रा व्यक्त कर सकते है? निश्चित ही नहीं क्योंकि ऐसा कोई पैमाना ही आपके मस्तिष्क में आपके नहीं हैं।

8.4.1 विश्लेषण का उदग्म एवं विकास

अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में क्या आप इस तथ्य से परिचित हैं कि इधर हाल के वर्षों में उपभोक्ता की मांग का अनधिमान वक्र विश्लेषण अर्थशास्त्रियों में लोकप्रिय होता जा रहा है। इसका प्रतिपादन सर्वप्रथम सन् 1881 में ब्रिटिश अर्थशास्त्री प्रो0 एफ0वाई0 एजवर्थ द्वारा किया गया था। बाद में इस विचार को अमेरिकी अर्थशास्त्री प्रो0 इरविंX फिशर ने ग्रहण कर सन् 1892 में मूर्त रूप प्रदान किया। आगे चल कर प्रो0 विYफ्रेडोपेरिया ने इस विचार का अधिकाधिक विकास किया। इसके बाद रूसी अर्थशास्त्री प्रो0 स्लट्स्की ने सन् 1915 में अनधिमान वक्र की तकनीकि परिष्कृत किया। सन् 1934 में प्रो0 जे0आर0 हिक्स एवं प्रो0 आर0जी0डी0 एलन A Reconstruction of the theory of value शीर्षक लेख में अनधिमान वक्र विश्लेषण को वैज्ञानिक रूप दिया। बाद में प्रो0 हिक्स ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ Value and Capital में इसकी विस्तृत विवेचना की। तब तक इस विश्लेषण का विभिन्न क्षेत्रों में पर्याप्त विकास हो चुका था। अनधिमान वक्र को तटस्थता वक्र या उदासीनता वक्र भी कहते हैं।

8.4.2 विश्लेषण की मान्यताएं

जे0आर0 हिक्स और आर0जी0डी0 एलन द्वारा प्रतिपादित अनधिमान वक्र विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है-

1. विवेकपूर्ण व्यवहार - अनधिमान वक्र विश्लेषण में यह मान्यता की गयी है कि उपभोक्ता विवेक पूर्ण ढंग से व्यवहार करता है। इसका अभिप्राय यह है कि वह वस्तुओं के विभिन्न संयोगों में से उस संयोग को चुनता है जो उसके सीमित साधनों से अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करते हों।

2. वरीयताक्रम - इस विश्लेषण की एक मान्यता यह है कि उपभोक्ता वस्तुओं के उपलब्ध संयोगों को अपनी वरीयता के अनुसार क्रम प्रदान कर सकता है। वस्तुओं के दो संयोगों के मध्य उपभोक्ता या तो तटस्थ रहेगा या किसी एक संयोग पर दूसरे की वरीयता देगा।

3.दुर्बल क्रमबद्धता - अनधिमान वक्र विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता की क्रमबद्धता दुर्बल होती हैं। इसका अर्थ यह है कि उपभोक्ता स्पष्ट कर सकता है कि किन संयोगों से अधिक तो किन संयोगों से क्रम सन्तुष्टि मिलेगी या किन उपलब्ध संयोगों में से किसी एक को चुन नहीं सकता।

4. वरीयता क्रम कीमत से स्वतंत्र- इसमें यह मान्यता है कि विभिन्न वस्तु संयोगों के प्रति अपना अनधिमान अथवा अनधिमान निर्धारित करते समय उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों पर विचार नहीं करता है और इसलिए वह कीमतों से प्रभावित नहीं होता है।

5. संगत व्यवहार - यह मान्यता की गयी है कि उपभोक्ता का व्यवहार संगत होता है। इसका अर्थ है कि यदि एक उपभोक्ता वस्तुओं के संयोग A और संयोग B के बीच तटस्थ या उदासीन रहता है तो वह संयोग A और C के मध्य भी तटस्थ रहेगा।

6. सकर्मकता की मान्यता - इसके अनुसार उपभोक्ता वस्तुओं के एक समूह में संयोगों का जो वरीयता क्रम निर्धारित करता है वही वरीयता क्रम उन संयोगों को अलग -अलग प्रस्तुत करने पर भी निर्धारित करता है।

7. ह्वासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर -. यह विश्लेषण ह्वास मान सीमान्त प्रतिस्थापन दर की मान्यता पर भी आधारित है। इसका अभिप्राय यह है कि जैसे-जैसे उपभोक्ता के पास एक वस्तु की मात्रा बढ़ती जाती है वैसे-वैसे वह उस वस्तुक की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए दूसरी वस्तु की घटती मात्राओं का त्याग करने को तैयार होता है।

8. वस्तुओं की समरूप और विभाज्य इकाइयां - इस विश्लेषण में यह मान्यता निहित है कि प्रत्येक वस्तु की सभी इकाइयां समरूप और पूर्ण रूप से विभाज्य होती हैं। इसके कारण वस्तु की प्रत्येक इकाई से मिल ने वाली सन्तुष्टि समान होती है।

8.4.3 अनधिमान वक्र - अर्थ, परिभाषाएं एवं स्वरूप

यहॉ अब हम आपको हिक्स और एलन के प्रमुख अवधारणा अनधिमान का अर्थ समझायेंगे। अनधिमान वक्र वह वक्र है जिस पर स्थित प्रत्येक बिन्दु दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे उपभोक्ता को समान संतुष्टि मिल ती है। इस वक्र पर अंकित प्रत्येक संयोग उपभोक्ता की दृष्टि में न तो एक दूसरे से अच्छे होते है न ही खराब। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता

है कि समान अनुराग प्रदर्शित करने वाले वक्र अनधिमान वक्र कहलाते हैं। चूँकि इस वक्र पर प्रदर्शित दो वस्तुओं के सभी संयोग समान संतुष्टि (या उपयोगिता) प्रदान करने वाले होते हैं अतः इन वक्रों को ''सम-संतुष्टि वक्र', भी कहा जाता है। पुनः चूँकि विभिन्न संयोगों से समान संतुष्टि मिल ती है अतः उपभोक्ता का किसी संयोग के प्रति विशेष लगाव नहीं होता है वह विभिन्न संयोगों के प्रति तटस्थ या उदासीन रहता है। अतः इन संयोगों को प्रदर्शित करने वाले वक्रों को का 'तटस्थता वक्र' या 'उदासीनता वक्र' भी कहा जाता है।

आइए, अनधिमान वक्र की प्रमुख परिभाषाओं पर दृष्टि डालते हैं।

1.**जे0के0 ईस्थम** के अनुसार ''यह मात्राओं के उन जोड़ों को प्रदर्शित करने वाले बिन्दुओं का मार्ग हाता है जिनमें व्यक्ति उदासीन होता है, इसी कारण इसे उदासीनता वक्र कहते हैं।''

2. **वाटसन** के अनुसार ''अनधिमान अनुसूची दो वस्तुओं के संयोगों की अनुसूची है जिसको इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि उपभोक्ता इन संयोगों के प्रति तटस्थ रहता है और किसी एक को अन्य की तुलना में प्राथमिकता नहीं देता।''

अनधिमान वक्रों की सम्यक् जानकारी में लिए अनधिमान तालिका की जानकारी आवश्यक है। प्रो0 मेयर्स के अनुसार ''अनधिमान तालिका वह तालिका है जो दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे किसी व्यक्ति को समान संतोष प्राप्त होता है।'' निम्नलिखित तटस्थता सूची या

अनधिमान तालिका में समान संतुष्टि प्रदर्शित करनेवाले X और Y वस्तु के विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित किया गया है। विश्लेषण की सुविधा के लिए हम यहां केवल दो ही वस्तुएं लेंगे।

यह सूची दो वस्तुओं X तथा Y के उन विभिन्न संयोगों को बताती है जिसमें उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है। प्रारम्भ में हम संयोग A को लेते हैं जबकि उपभोग के पास X की 1 तथा Y की 15 मात्रा है। अब यदि उपभोक्ता से पूछा जाय कि X की मात्र एक-एक इकाई बढ़ायी जाय तो आप Y की कितनी मात्रा छोड़ेगे जिससे संतुष्टि का स्तर वही रहे जो (1x+15y) से प्राप्त होता था तो हमें निम्नांकित संयोग प्राप्त हो सकते हैं। (2x+8y), (3x+5y), (4x+3y), (5x+2y), तथा इसी प्रकार स्पष्ट है कि जैसे-जैसे उपभोक्ता के पास X की मात्रा बढ़ती जाती है वह X की एक अतिरिक्त मात्रा की प्राप्ति के लिए Y की कम ही मात्रा छोड़ता है पहले X की 1 इकाई के लिए 7Y छोड़ता है, X की दूसरी इकाई के लिए 3, तीसरी के लिए 2 तथा चौथी के लिए 1Y ही छोड़ता है

तटस्थता सूची या अनधिमान तालिका

संयोग	(X)	(Y)	X को प्राप्त करने के लिए Y की छोड़ी गयी मात्रा या Y के लिए X की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर

			(MRSxy)
A	1	15	-
B	2	8	1x=7y
C	3	5	1x=3y
D	4	3	1x=2y
E	5	2	1x=1y

क्योंकि एक ओर जैसे-जैसे X की मात्रा बढ़ती जाती है उसकी सीमान्त उपयोगिता क्रमशः कम होती जाती है, दूसरी ओर जैसे-जैसे Y की मात्रा कम होती जाती है उससे मिल ने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः बढ़ती जाती है। चूँकि ये सभी संयोग समान सन्तुष्टि व्यक्त करते हैं इसलिए उपभोक्ता इनक बीच चुनाव करने में तटस्थ हो जाता है। ऊपर दी गयी सारिणी में दिये गये विभिन्न संयोगों को रेखाचित्र सं0 8.1 में वक्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

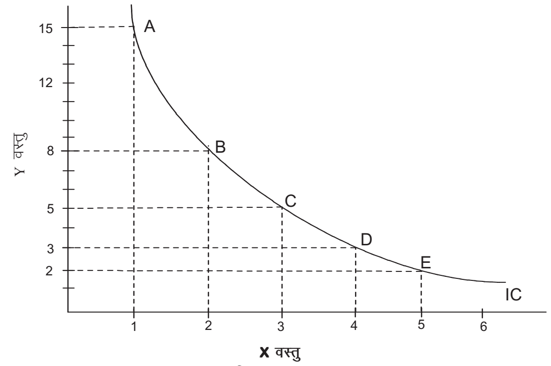

चित्र सं0 8.1

रेखाचित्र 8.1 में अनाधिमान तालिका के आंकड़ों को प्रदर्शित किया गया है। उन संयोगों को अंकित करने पर A,B,C,D तथा E उन संयोगों को प्रदर्शित करते है जो उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। रेखाचित्र में प्रदर्शित IC वक्र L स्पष्ट है। । बिन्दु पर उपभोक्ता को जो सन्तुष्टि 1ग़15Y से प्राप्ति होती है वही सन्तुष्टि B बिन्दु 2x+8y से तथा........ E पर 5x+2y प्राप्त होती है।

जिस प्रकार X तथा Y वस्तुओं के समान संतुष्टि देने वाले विभिन्न संयोगों के आधार पर तटस्थता सारिणी का निर्माण किया गया उसी प्रकार X तथा Y दोनों की और अधिक मात्रा से समान सन्तुष्टि देने वाले संयोगों के आधार पर तटस्थता सारिणियों तथा अनधिमान वक्रों के साथ **अनधिमान वक्र मानचित्र** का निर्माण किया जा सकता है।

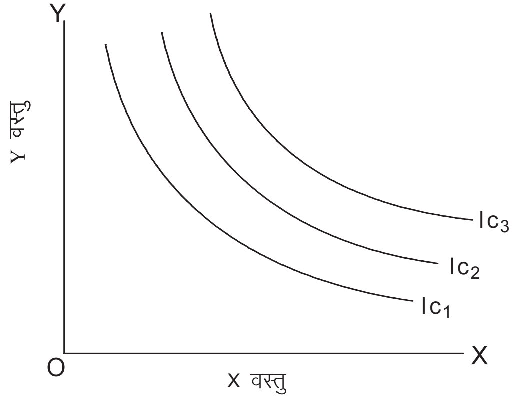

चित्र सं0 8.2

जैसा रेखाचित्र 8.2 में प्रदर्शित है। प्रत्येक अनधिमान वक्र पर तो सन्तुष्टि का स्तर एक होगा पर रेखाचित्र में प्रदर्शित IC1 की अपेक्षा IC_2 तथा IC_2 की अपेक्षा IC_3 सन्तुष्टि के ऊँचे स्तर के प्रतीक हैं। चित्र में प्रदर्शित IC सामान्य या IC1 IC_2 IC_3 IC इस मान्यता पर खींची गयी है कि X तथा Y दूसरे के आंशिक रूप से स्थानापन्न हैं, पर पूर्ण स्थानापन्न नहीं हैं। इस प्रकार अनधिमान वक्र मानचित पर खींचे गये समोच्च रेखा ;बवदजवनत सपदमेद्ध का समान हैं जो समुद्र की सतह की ऊँचाई को प्रदर्शित करते हैं। ऊँचाई व्यक्त करने के स्थान पर प्रत्येक अनधिमान वक्र सन्तुष्टि का स्तर प्रदर्शित करता है।

8.5 सीमान्त प्रतिस्थापन दर: महत्वपूर्ण उपकरण

प्रतिस्थापन की सीमान्त दर, तटस्थता वक्र विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसका तटस्थता वक्र विश्लेषण में वही महत्व है जो उपयोगिता विश्लेषण में सीमान्त उपयोगिता का है। अतः इसकी व्याख्या के अभाव में तटस्थता वक्र विश्लेषण का अध्ययन अधूरा है।

सीमान्त प्रतिस्थापन से अभिप्राय उस दर से होता है जिस पर कोई उपभोक्ता एक वस्तु को निश्चित मात्रा के बदले दूसरी वस्तु को लेने अथवा परित्याग करने के लिए तैयार हो जाता है। Y के लिए X की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर से आशय Y की उस मात्रा से है जिसे छोड़ने के लिए उपभोक्ता तैयार है जिससे कि वह X की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त कर सके तथा सन्तुष्टि के उसी स्तर पर बना रहे।

प्रतिस्थापन की सीमान्त द्रर को स्पष्ट करते हुए प्रो0 हिक्स कहते हैं कि मान लीजिए हम X वस्तु की दी हुई मात्रा से वृद्धि प्रारंभ करते हैं और Y की मात्रा में इस प्रकार से कमी करते जाते हैं कि उपभोक्ता अपनी पूर्ववत् स्थिति में बना रहता है तब Y की मात्रा जो कि X की एक अतिरिक्त इकाई की प्राप्ति के लिए घटायी या छोड़ी जाती है वही Y के लिए X के प्रतिस्थापन की सीमान्त दर होगी। अनधिमान तालिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है। हम 1X तथा 15 Y से प्रारम्भ करते हैं। 1X की

मात्रा में 1X की वृद्धि के बाद Y में कमी 7Y के बराबर है, X की मात्रा में जब हम एक और वृद्धि करते है तो 3Y छोड़ना पड़ता है। यही 1X=7Y= 1X=3Y . . . Y के लिए X की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर है जो तालिका में प्रदर्शित है।

X वस्तु की अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता Y वस्तु की कितनी इकाई छोड़ेगा जिससे वह सन्तुष्टि के उसी स्तर पर बना रहे इस बात पर निर्भर करेगा कि X की वृद्धि से उपभोक्ता का कितनी उपयोगिता प्राप्त होती है। तथा Y की कितनी मात्रा छोड़ी जाय जिससे Y की कमी से जो उपयोगिता में हानि हो वह X के कारण हुयी उपयोगिता की प्राप्ति के ठीक-ठीक बराबर हो। सन्तुष्टि का स्तर तभी वही बना रहेगा जबकि X के कारण उपयोगिता की वृद्धि = Y के कारण उपयोगिता में कमी। मान लीजिए उपभोक्ता Y के स्थान पर X प्रतिस्थपित करता हैं तब इस क्रिया में X में वृद्धि के कारण उसकी उपयोगिता में वृद्धि होगी जो इस प्रकार व्यक्त की जा सकती है-

$$\Delta x \times M \cup x$$

दूसरी ओर जब Y को छोड़ेगा तो Y की कमी के कारण उसकी उपयोगिता में कमी होगीं, जिसे इस रूप व्यक्त किया जा सकता है –

$$\Delta y \times M \cup y$$

चूंकि इस प्रक्रिया में सन्तुष्टि का स्तर सदैव एक ही बना रहता है इसलिए $\Delta X \times M \cup x = -\Delta Y \times M \cup y$ या $-\frac{\Delta y}{\Delta x} = \frac{M \cup x}{M \cup y} =$ प्रतिस्थापन की सीमान्त दर MRS को स्पष्ट करने के लिए आप निम्न चित्र का सहारा ले सकते हैं। रेखा चित्र में तटस्थता वक्र)IC (X तथा Y के उन संयोगों को प्रदर्शित करता है जिससे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त हो। मान लीजिए आप IC के A बिन्दु पर है जो $0X_1$ तथा $0Y_5$ का संयोग प्रदर्शित करता है। अब मान लीजिए आप X की एक इकाई बढ़ाते है अर्थात् X_1X_2 बढ़ाते है और आप बिन्दु B पर है। सन्तुष्टि का स्तर पूर्ववत् है पर B बिन्दु संयोग $0Y_3$ तथा $0X_2$ का है, अर्थात् X_1X_2 की वृद्धि के लिए आपने Y_5Y_3 छोड़ा जिससे सन्तुष्टि का स्तर पूर्ववत् बना रहा। यह Y_5Y_3 तथा X_2X_1 का अनुपात या $\frac{y_5y_3}{x_2x_1}$ ही प्रतिस्थापन की सीमान्त दर है। चूंकि Y_5Y_3, Y में परिवर्तन या Δy तथा X_2X_1, X में परिवर्तन प्रदर्शित करता है, इसलिए $\frac{y_5y_3}{x_2x_1}$ के स्थान पर $\frac{\Delta y}{\Delta x}$ लिख सकते है। यही Y के लिए X की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर है। यदि Y तथा X में होने वाले परिवर्तन अत्यन्त ही कम हो तो IC पर A तथा बिन्दु अत्यन्त ही नजदीक होंगे।

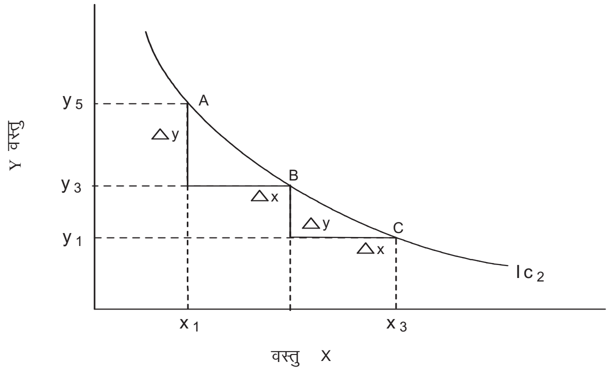

चित्र सं0 8.3

ऐसी स्थिति में $\frac{\Delta y}{\Delta x}$ जो प्रतिस्थापन की सीमान्त दर है,IC के किसी बिन्दु पर IC का ढाल प्रदर्शित करेगा। इस प्रकार प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRSxy) = $\frac{\Delta y}{\Delta x}$ $\frac{MUx}{MUy}$ = अनधिमान वक्र का ढाल। इसमें - $\frac{\Delta y}{\Delta x}$ किसी बिन्दु पर अनधिमान वक्र के ढाल का ऋणात्मक मान है, और यही Y के लिए X की MRSxy है। चूंकि MRSxy अनधिमान वक्र की किसी बिन्दु पर ढाल प्रदर्शित करता है इसलिए IC के किसी बिन्दु पर स्पर्श रेखा खींच कर उस बिन्दु पर ढाल या MRSxy ज्ञात किया जा सकता है। जैसा कि रेखा चित्र 8.4 में प्रदर्शित है।

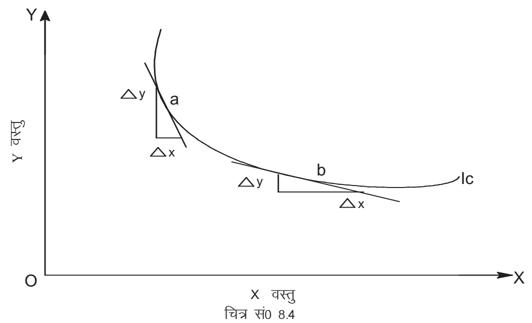

चित्र सं0 8.4

घटती प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का सिद्धान्त - रेखाचित्रों में आपने देखा कि X की मात्रा की वृद्धि के लिए Y की छोड़ी गयी ये मात्रा उत्तरोंत्तर कमी, घटती प्रतिस्थापन की सीमान्त दर व्यक्त करता है। घटती हुई प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का सिद्धान्त क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम के सिद्धान्त पर आधारित है। अनधिमान तालिका से स्पष्ट है कि जहॉ X की पहली इकाई के लिए Y की छोड़ी गयी मात्रा 7 है वही दूसरी X के लिए Y की छोड़ी गयी मात्रा 3 है जो घटती हुई 2 तथा 1 हो गयी है। इसको रेखाचित्र से अधिक समझ सकते हैं।

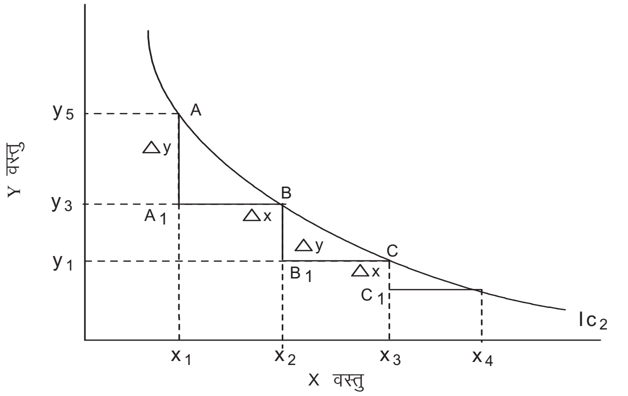

चित्र सं0 8.5

चित्र से स्पष्ट है कि शुरू की स्थिति में A बिन्दु है जहॉ उपभोक्ता के पास $0X_1$ तथा $0Y_5$ का संयोग है। अब यदि X में X_1X_2 की या X_2X_3 की वृद्धि हो तो Y की छोड़ी गयी मात्रा यथा AA_1, BB_1, CC_1 में उत्तरोत्तर कमी ही होती गयी है।

आप क्या बता सकते है कि घटती हुई MRS का क्या कारण है? क्योंकि उपभोक्ता X की बराबर मात्रा की प्राप्ति के लिए उत्तरोत्तर Y की कम मात्रा छोड़ना चाहता है ?

इसके प्रमुख कारण निम्नवत् हैं -

1. यदि उपभोक्ता को उसी अनधिमान वक्र पर बने रहना है तो यह आवश्यक है कि जब एक वस्तु की मात्रा में वृद्धि की जाय तो दूसरी वस्तु की मात्रा में कमी लाया जाय।
2. क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार जैसे-जैसे X की मात्रा बढ़ती जाती है प्राप्त सीमान्त उपयोगिता क्रमशः घटती जाती है पर दूसरी ओर जैसे-जैसे Y के स्टॉक में कमी हो जाती है Y की उपयोगिता बढ़ने पर Y की कम मात्रा ही छोड़नी पड़ेगी।
3. घटती हुई प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का एक प्रमुख कारण यह है कि वस्तुएँ परस्पर पूर्ण प्रतिस्थानापन्न नहीं होती हैं।

8.6 अनधिमान वक्रों की विशेषतायें

अनधिमान वक्र की कुछ महत्वपूर्ण विशेषतायें ऐसी होती हैं जिनका अध्ययन इन वक्रों की प्रकृति समझने के लिए आवश्यक होता है। इनकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. अनधिमान वक्र ऊपर से नीचे, बायी से दाहिनी ओर गिरते हुए होते हैं अर्थात् इनका ढाल ऋणात्मक होता है। इसका सरल कारण यह है कि एक संयोग से दूसरे संयोग पर जाने से उपभोक्ता की सन्तुष्टि तभी समान रह सकती है जब वह एक वस्तु के उपयोग में वृद्धि करने के साथ-साथ दूसरी वस्तु के उपभोग में कमी करें।

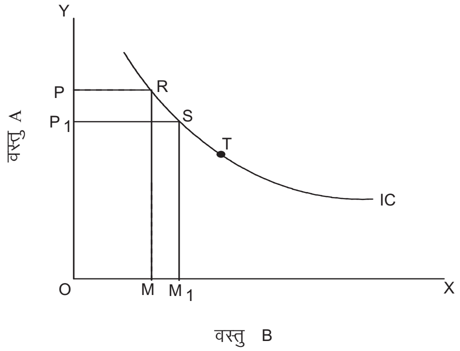

चित्र सं0 8.6

दिए हुए चित्र सं0 8.6 में यह प्रदर्शित किया गया है कि उपभोक्ता जब संयोग R से S पर जाता है तब वह X अक्ष पर प्रदर्शित वस्तु B के उपभोग को OM से बढ़ाकर OM_1 करता है तो साथ ही वह वस्तु A के उपभोग को OP से घटकार OP_1 कर देता है। इसी प्रकार संयोग S से T पर जाने पर वस्तु B के उपभोग में वृद्धि होती है औरA के उपभोग में कमी होती है। एक वस्तु की अधिक मात्रा दूसरी वस्तु की कुछ मात्रा का त्याग किये बिना नहीं प्राप्त हो सकती है। इसीलिए अनधिमान वक्र बायी से दाहिनी ओर नीचे गिरते हुए होते हैं।

यदि अनधिमान वक्रों का स्वरूप इससे भिन्न हुआ तो वक्र द्वारा प्रदर्शित सभी संयोगों से समान सन्तुष्टि की संकल्पना सत्य नहीं होगी। उदाहरण के लिए यदि अनधिमान वक्र का स्वरूप X अक्ष के समान्तर है तो इसका अर्थ है कि एक वस्तु का उपभोग स्थिर है और दूसरी वस्तु के उपभोग में वृद्धि हो रही है। रेखाचित्र 8.7 के अनुसार जब उपभोक्ता IC के बिन्दु R से S पर जाता है तो एक समान सन्तुष्टि के स्थान पर एक वस्तु से स्थिर तो दूसरे से अधिक सन्तुष्टि मिल ती है। ऐसी स्थिति में आप कह सकते हैं कि यह वक्र संकल्पना के प्रतिकूल है फलतः अनधिमान वक्र X अक्ष के समान्तर नहीं हो सकते।

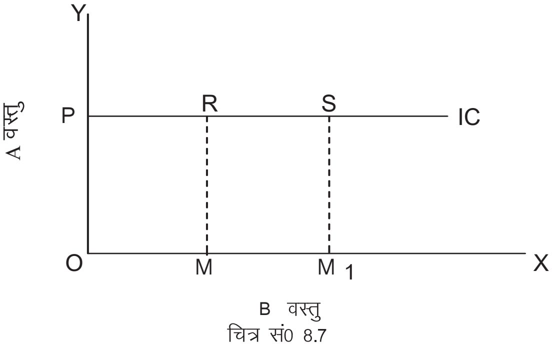

चित्र सं0 8.7

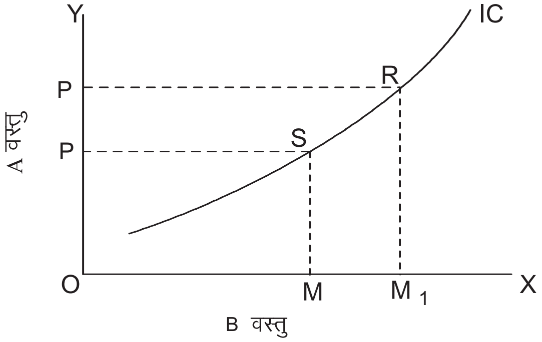

चित्र सं0 8.8

इसी प्रकार अनधिमान वक्र Y अक्ष के समान्तर भी नहीं हो सकते। इसी आधार पर अनधिमान वक्रों का स्वरूप ऊपर उठता हुआ नहीं हो सकता। ऐसा होने पर उपभोक्ता दोनों वस्तुओं की बढ़ती हुई मात्रा का उपभोग करेगा। फलतः समान सन्तुष्टि नहीं प्राप्त होगी। इसे चित्र 8.8 में स्पष्ट किया गया है। बिन्दु S से बिन्दु R पर जाने पर अपेक्षाकृत अधिक संतुष्टि मिलेगी जो संकल्पना के विरूद्ध है। अतः अनधिमान वक्र बायी से दायीं ओर ऊपर की ओर उठता हुआ नहीं हो सकता।

2. किसी अनधिमान वक्र के ऊपर दाहिनी ओर स्थित अनधिमान वक्र अपेक्षाकृत अधिक सन्तुष्टि प्रदर्शित करते हैं इसे रेखाचित्र 8.9 में प्रदर्शित किया गया है।

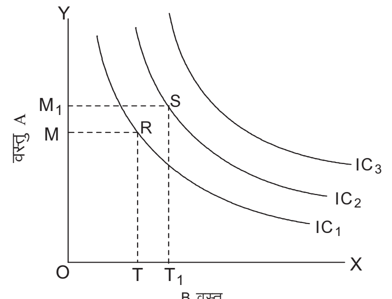

चित्र सं0 8.9

रेखाचित्र 8.9 में तीन अनधिमान वक्र IC1, IC_2, IC_3 प्रदर्शित किये गये हैं। बिन्दु R अनधिमान वक्र IC1 पर और बिन्दु S अनधिमान वक्र IC_2 पर स्थित है। चित्र से स्पष्ट है कि बिन्दु S पर R की तुलना में अधिक संतुष्टि मिल रही है। इसी प्रकार IC_3 के प्रत्येक बिन्दु पर सन्तुष्टि IC_1 एवं IC_2 की तुलना में अधिक प्राप्त होगी। अतः हम जैसे जैसे दाहिने बढ़ते जायेंगे वैसे-वैसे प्रत्येक अनधिमान वक्र सन्तुष्टि के ऊँचे स्तर को प्रदर्शित करेगा।

3. दो अनधिमान वक्र कभी एक दूसरे को काटते नहीं हैं। हम जानते है कि प्रत्येक अनधिमान वक्र सन्तुष्टि के भिन्न स्तर को प्रदर्शित करता है। इसलिए यदि दो अनधिमान वक्र एक दूसरे को किसी भी बिन्दु पर काटेगें तो दोनों वक्रों पर समान सन्तुष्टि की स्थिति को सिद्ध किया जा सकता है। परन्तु ऐसा नहीं हो सकता। इसलिए दो IC एक दूसरे को काट नहीं सकते। इसे निम्न चित्र सं0 8.10 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

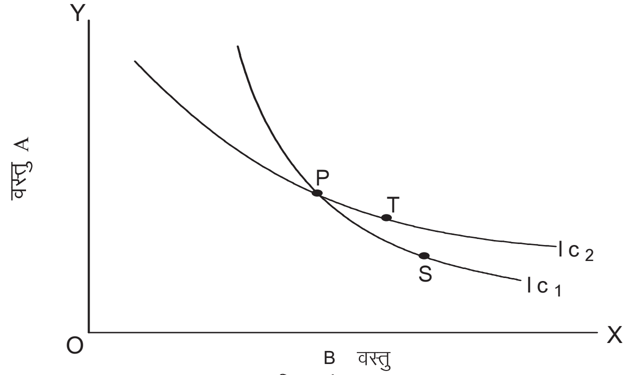

चित्र सं0 8.10

रेखाचित्र में दो अनधिमान वक्र IC_1 तथा IC_2 एक दूसरे को P बिन्दु पर काटते हैं। IC_1 पर P तथा S दोनों स्थित हैं जो समान सन्तुष्टि को व्यक्त करते है। इसी प्रकार IC_2 पर P तथा T पर सन्तुष्टि का स्तर समान होगा। इसलिए S और T का सन्तुष्टि स्तर समान होगा। परन्तु ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि S और T के दोनों संयोग सन्तुष्टि के भिन्न स्तर को बताते है। T पर सन्तुष्टि का स्तर S से अधिक होगा। अतः दो अनधिमान एक दूसरे को कभी काट नहीं सकते।

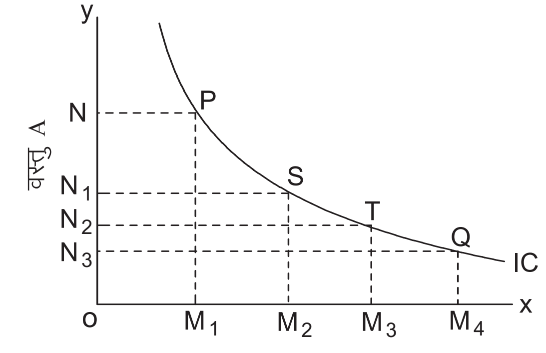

चित्र सं0 8.11

4. अनधिमान वक्र एक मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होते हैं। इसका तात्पर्य है कि मूल बिन्दु की ओर से देखें तो यह वक्र उभरा हुआ प्रतीत होगा। अनधिमान वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होने का कारण प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर है।

प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर के अनुसार उपभोक्ता के पास जैसे-जैसे किसी वस्तु की इकाइयां बढ़ती है वैसे-वैसे वह दूसरी वस्तु की घटती हुई मात्रा का त्याग करता है। प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर को पूर्व में अनधिमान तालिका एवं प्रतिस्थापन की सीमान्त दर: महत्वपूर्ण उपकरण में स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह चित्र सं0 8.11 में भी प्रदर्शित है। चित्र में अनधिमान वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर के साथ-साथ घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन की दर को भी प्रदर्शित करता है।

8.7 उपभोक्ता का सन्तुलन

उपभोक्ता के अनधिमान मानचित्र और कीमत रेखा की सहायता से उपभोक्ता के संतुलन का बिन्दु ज्ञात किया जा सकता है। उपभोक्ता अपनी दी हुई आय का व्यय करके उस बिन्दु पर संतुलन में होगा जिस पर उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होगी। दी हुई आय के व्यय से उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि उस बिन्दु पर मिलेगी जहाँ कीमत रेखा उसके अनधिमान मानचित्र में सर्वोच्च संभव अनधिमान वक्र पर स्पर्श करेगी। यह स्पर्श बिन्दु ही उपभोक्ता के संतुलन का बिन्दु होगा।

उपभोक्ता के संतुलन की इस स्थिति को नीचे दिये रेखाचित्र 8.12 में दिखाया गया है। रेखाचित्र में Y अक्ष पर वस्तु A और X अक्ष पर वस्तु B प्रदर्शित की गयी है। ST कीमत रेखा है तथा विभिन्न अधिमान स्तरों को सूचित करने वाले IC_1, IC_2, IC_3 तथा IC_4 अनाधिमान वक्र हैं। उपभोक्ता अपनी दी हुई आय और चालू कीमत स्तरों पर ST कीमत रेखा पर दिखाये गये किसी भी एक संयोग को खरीद सकता है।

यह यह जानते हैं कि किसी अनधिमान वक्र के दाहिनी ओर स्थित अनधिमान वक्र क्रमशः अधिक संतुष्टि के सूचक होते हैं। अनधिमान वक्र जितना ऊँचा होगा, उतने ही ऊँचे सन्तुष्टि स्तर का द्योतक होगा। अतः अधिक सन्तुष्टि प्राप्त करने के निमित्त उपभोक्ता ऊँचे से ऊँचे अनधिमान वक्र पर पहुॅचने का प्रयास करेगा। परन्तु सीमित आय और बाजार में वस्तुओं की प्रचलित कीमत रेखा उसकी क्रय सामर्थ्य को सीमित करती हैं। रेखाचित्र 8.12 में ST कीमत रेखा उपभोक्ता के क्रय सामर्थ्य की द्योतक है। इस रेखाचित्र में अनधिमान वक्र IC_4 सर्वाधिक सन्तुष्टि का द्योतक है परन्तु उपभोक्ता अपने सीमित क्रय सामर्थ्य के कारण अनधिमान वक्र IC_4 तक पहुॅचने में असमर्थ होगा। अतः उपभोक्ता अपनी सीमित आय और दी हुई कीमतों द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर ही अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने का प्रयास करेगा।

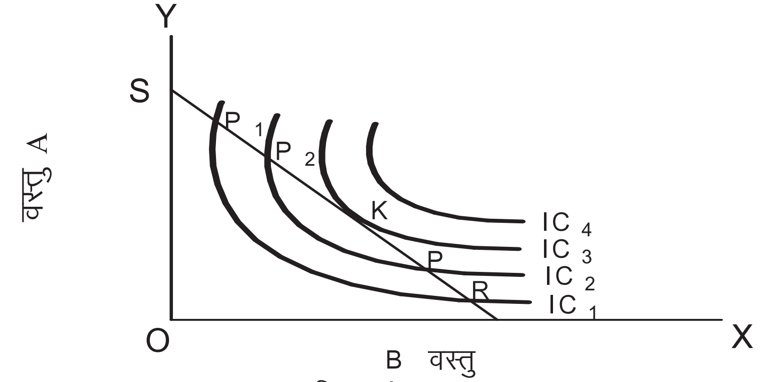

चित्र सं0 8.12

रेखाचित्र 8.12 में ST कीमत रेखा पर दिखाये गये R संयोग को खरीदने पर उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC_1 और P संयोग को खरीदने पर अनधिमान वक्र IC_2 पर होगा। इस प्रकार, संयोग P संयोग R की तुलना में श्रेयस्कर होगा। पुनः यदि उपभोक्ता K संयोग खरीदता है तो वह अनधिमान वक्र

IC_3 पर होगा जो ऊँचे अनधिमान वक्र पर स्थापित होने के कारण R और P की तुलना में अधिक सन्तुष्टि का सूचक है। दी हुई आय और चालू कीमतों की स्थिति में संयोग K उपभोक्ता को ST कीमत रेखा पर दिखाये गये अन्य सभी संयोगों की तुलना में अधिक सन्तुष्टि देने वाला है क्योंकि उपभोक्ता का संयोग K से कीमत रेखा पर दाहिनी ओर या बाई ओर विचलन सन्तुष्टि के अपेक्षपाकृत निम्न स्तर का सूचक है। स्पष्टतः उपभोक्ता कीमत रेखा ST पर संयोग K से भिन्न P_2 या P_1 या कोई अन्य संयोग नहीं चुनेगा। यदि कीमत रेखा पर K संयोग के अतिरिक्त किसी अन्य संयोग को चुन भी लेता है तो भी उसकी प्रवृत्ति K संयोग की ओर लौटने की होगी, क्योकि उसका व्यवहार विवेकपूर्ण है और वह अपनी दी हुई आय से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करता है। अनधिमान वक्र IC_4 कीमत रेखा के बाहर दाहिनी ओर स्थित है। अतः अनधिमान वक्र IC_4 पर दिखाया गया कोई भी संयोग उपभोक्ता की क्रय शक्ति के सामर्थ्य के बाहर है, अतः उनको खरीदने में वह असमर्थ है। इस प्रकार दी हुई आय और वर्तमान कीमत स्तर के आधार पर उपभोक्ता K संयोग खरीदेगा। K बिन्दु पर अनधिमान वक्र IC_3 कीमत रेखा ST को स्पर्श करता है। अन्य संयोगों पर अनधिमान वक्र कीमत रेखा को स्पर्श नहीं करता, अपितु काटता है (यथा बिन्दु R,P.P_2 P_1पर)। K संयोग उसे अधिकतम संतुष्टि प्रदान करने वाला है। अब जब तक उपभोक्ता की आय व वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन नहीं होगा, उपभोक्ता A औरB वस्तु के संयोग K से प्रदर्शित मात्रायें ही खरीदता रहेगा, उसमें परिवर्तन नहीं करेगा और परिवर्तन का अभाव ही संतुलन है।

अनधिमान वक्र प्रतिस्थापन की ह्रासमान सीमान्त दर को प्रदर्शित करता है। दूसरी ओर कीमत रेखा का ढाल दोनों वस्तुओं के कीमत अनुपात को प्रदर्शित करता है। अतः यह भी कहा जा सकता है कि उपभोक्ता उस बिन्दु पर संतुलन में होगा जहाँ दोनों वस्तुओं की ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर, उसके कीमत के बराबर होती है। उपर्युक्त रेखाचित्र में K बिन्दु पर, जहॉ अनधिमान वक्र IC_3 कीमत रेखा को स्पर्श करता है, वह शर्त पूरी होती है। K बिन्दु पर अनधिमान वक्र IC_3 के ढाल से प्रदर्शित ह्रासमान प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ST कीमत रेखा के ढाल द्वारा प्रदर्शित A और Bवस्तुओं के कीमत अनुपात के बराबर है।

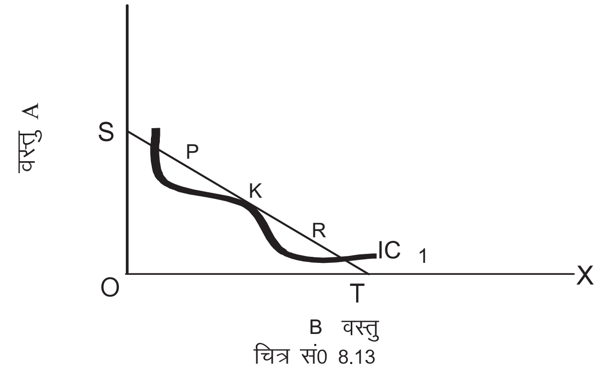

चित्र सं0 8.13

इस विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सन्तुलन के लिए अनधिमान वक्र का कीमत रेखा से स्पर्श होना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु यह भी आवश्यक है कि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ह्रासमान हो अथवा अनधिमान वक्र मूल बिन्दू के प्रति उन्नतोदर हो। रेखाचित्र 8.13 में K बिन्दु पर अनधिमान वक्र कीमत रेखा को स्पर्श करता है। लेकिन कीमत रेखा ST पर K बिन्दु से दाहिनी ओर बिन्दु R या बायीं ओर बिन्दु P पर विचलन अपेक्षाकृत अधिक संतुष्टि का द्योतक होगा। क्योंकि बिन्दु R और P अनधिमान वक्र IC_2 के आगे की ओर स्थित है जो अपेक्षाकृत ऊँचे अनधिमान वक्र पर पड़ेगे। अतः यहाँ स्पर्श बिन्दु अधिकतम सन्तुष्टि का सूचक नहीं है। अतः यह सन्तुलन की अवस्था नहीं होगी। यहॉ स्पर्श बिन्दु K पर अनधिमान वक्र मूल बिन्दु O के प्रति उन्नतोदर नहीं, अपितु नतोदर है या यहॉ अनधिमान वक्र में प्रतिस्थापन के सीमान्त दर वृद्धिमान है।

अतः सन्तुलन के लिए दोहरी शर्तो का पूरा होना आवश्यक है। प्रथम अनधिमान वक्र कीमत रेखा को स्पर्श करे और द्वितीय, प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ह्रासमान हो या अनधिमान वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर है।

8.8 तटस्थता वक्र विश्लेषण का आलोचनात्मक मूल्यांकन

हम आय प्रभाव, कीमत प्रभाव एवं प्रतिस्थापन प्रभाव के समझने के बाद ही तटस्थता वक्र विश्लेषण का समुचित मूल्यांकन करने में सक्षम होंगे। हिक्स के तटस्थता वक्र विश्लेषण ने मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण के दोषों को दूर किया तथा पुराने निष्कर्षों का पुनर्निमाण करते हुए उन्हें अधिक निश्चित तथा वैज्ञानिक रूप दिया। यदि आपसे यह प्रश्न पूछा जाय कि क्या तटस्थता-विश्लेषण उपयोगिता-विश्लेषण के ऊपर सुधार है अथवा उससे श्रेष्ठ है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए यह आवश्यक है कि हम तटस्थता विश्लेषण के गुण तथा दोष दोनों का अध्ययन करें और तत्पश्चात एक निष्कर्ष पर पहुचें।

8.8.1 तटस्थता वक्र-विश्लेषण के गुण तथा उसकी श्रेष्ठता

1. मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन पर आधारित है, जबकि तटस्थता विश्लेषण के अन्तर्गत उपयोगिता जैसे मनोवैज्ञानिक विचार को मापने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह विश्लेषण तो केवल यह बताता है कि एक उपभोक्ता दो वस्तुओं के एक संयोग को, दूसरे संयोग की अपेक्षा कम, बराबर या अधिक पसन्द करता है, परन्तु उपभोक्ता यह नहीं कह सकता कि वह एक संयोग को दूसरे की अपेक्षा परिमाणात्मक रूप से कितना पसन्द करता है।

2. प्रो0 हिक्स ने दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक नया नाम दिया जिसे कि वे प्रतिस्थापन की सीमान्त-दर कहते हैं। यह विचार उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन से स्वतंत्र

है। यह विचार मार्शल के अस्पष्ट विचार को अधिक निश्चित रूप में रखता है और इसलिए प्रो0 हिक्स अपने विचार को अधिक श्रेष्ठ बताते हैं।

3. मार्शल की उपयोगिता-विश्लेषण उपभोक्ता के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मानकर चलती है, जबकि तटस्थता विश्लेषण ऐसी मान्यता पर आधारित नहीं है। दूसरे शब्दों में, तटस्थता विश्लेषण कम मान्यताओं पर आधारित है और उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ हैं।

4. तटस्थता विश्लेषण किसी वस्तु की कीमत में कमी होने से उस वस्तु की माँग पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या करने में 'आय प्रभाव' (जिसका अध्ययन मार्शल ने नहीं किया था) तथा 'प्रतिस्थापन-प्रभाव' दोनों को ध्यान में रखता है। अतः यह उपयोगिता-विश्लेषण से श्रेष्ठ है। वास्तव में, आर्थिक सिद्धान्त के विश्लेषण में 'प्रतिस्थापन' को प्रमुख स्थान देने का श्रेय हिक्स को है।

5. तटस्थता-विश्लेषण सम्बन्धित वस्तुओं अर्थात् प्रतिस्पर्द्धात्मक तथा पूरक वस्तुओं का भी अध्ययन करता है, जबकि मार्शल ने ऐसा नहीं किया। अतः यह अधिक वास्तविक तथा श्रेष्ठ है। मार्शल ने केवल एक वस्तु का ही अध्ययन किया, जैसे कि एक वस्तु की उपयोगिता केवल उस वस्तु की पूर्ति पर ही निर्भर करती हो, वास्तव में, वस्तु विशेष की उपयोगिता अन्य सम्बन्धित वस्तुओं की पूर्ति पर भी निर्भर करती है।

6. तटस्थता विश्लेषण का प्रयोग उत्पादन के क्षेत्र में भी किया जाता है। अतः प्रो0 हिक्स ने तटस्थता विश्लेषण के रूप में सभी क्षेत्रों के लिए एक एकीकृत सिद्धान्त प्रस्तुत किया। यह सिद्धान्त की श्रेष्ठता को बताता है।

8.8.2 तटस्थता वक्र-विश्लेषण के दोष

1. प्रो0 हिक्स के अनुसार एक उपभोक्ता दो वस्तुओं पर अपनी आय को व्यय करते समय एक वस्तु में थोड़ी वृद्धियों की सापेक्षिक तुलना दूसरी वस्तु में थोड़ी वृद्धियों से करता है। परन्तु प्रो0 नाइट तथा अन्य आलोचकों का कहना है कि व्यवहार में उपभोक्ता तो परिमाणात्मक उपयोगिता तथा कुल सन्तुष्टि की वृद्धि के शब्दों में सोचता है, इसलिए माँग -सिद्धान्त को इन बातों पर आधारित न करके हिक्स ने गलती की।

2. आलोचकों द्वारा बताया गया है कि तटस्थता विश्लेषण भी उपयोगिता विश्लेषण की भाँति बहुत-सी अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है, जैसे:

i. उपभोक्ता पूर्ण विवेकशील से होता है तथा सोच-समझ कर व्यय करता है। परन्तु व्यवहार में उपभोक्ता व्यय करते समय प्रायः आदतों, रीति रिवाजो, परिस्थितियों द्वारा भी प्रभावित होता है न कि केवल विवेकशील ता से।

ii. उपभोक्ता को अपने तटस्थता मानचित्र की पूर्ण जानकारी होती है। परन्तु ऐसा मानना भी गलत है। उपभोक्ता एक या दो संयोगों के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी रख सकता है परन्तु उसके लिए बहुत-से संयोगों के बीच चुनाव करना बहुत कठिन तथा अव्यावहारिक है। प्रो0 बोल्डिंग ने ठीक ही कहा है कि ''हम कुछ निश्चित स्थितियों में चुनाव कर सकते हैं परन्तु हमारे लिए स्थितियों को बहुत अधिक संख्या के बीच चुनाव करना सम्भव नहीं है।'

iii. अन्य मान्यताएं हैः वस्तु का प्रमापित होना, पूर्ण प्रतियोगिता का पाया जाना, बाजार में उपभोक्ता के चुनाव पर संस्थात्मक नियंत्रण का न होना। परन्तु ये सब मान्यतायें अवास्तविक हैं।

3. तटस्थता विश्लेषण के बारे में एक मुख्य आलोचना यह की जाती है कि कोई आधारभूत नवीनता लिये हुए नहीं है, पुराने विचारों को केवल नये शब्दों में व्यक्त कर दिया गया है, पुरानी शराब नयी बोतलों में भर दी गयी है। उदाहरणार्थ, 'परिमाणवाचक प्रणाली' के एक, दो, तीन, इत्यादि के स्थान पर 'क्रमवाचक प्रणाली' के पहला, दूसरा, तीसरा, इत्यादि का प्रयोग , 'उपयोगिता' के स्थान पर 'अनधिमान क्रम' 'सीमान्त उपयोगिता' के स्थान पर 'प्रतिस्थापन की सीमान्त दर तथा 'क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम' के स्थान पर 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर' का प्रयोग किया गया है। उपयोगिता विश्लेषण रीति में उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति $\frac{M.U. of\ X}{Price\ of\ X} = \frac{M.U. of\ Y}{Price\ of\ Y} = \frac{M.U. of\ Z}{Price\ of\ Z}$ इत्यादि, समीकरण द्वारा बतायी जाती है, जबकि तटस्थता विश्लेषण के अनुसार, उपभोक्ता के सन्तुलन के लिए, दो वस्तुओं की प्रतिस्थापन दर = वस्तुओं का कीमत अनुपात का यह समीकरण दिया जाता है। अतः कहा जाता है कि तटस्थता विश्लेषण रीति पुरानी रीति को केवल नये शब्दों में व्यक्त कर देती है।

परन्तु प्रो0 हिक्स इस विचार से सहमत नहीं है। सीमान्त उपयोगिता के बिना परिमाणात्मक मापन के ही प्रो0 हिक्स दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक निश्चित अर्थ प्रदान करते हैं और इसे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कहते है, जबकि दोनों वस्तुओं की मात्राएँ दी हुई होती हैं।

4. जब व्यय दो से अधिक वस्तुओं पर किया जाता है तो तटस्थता रेखायें अपनी सरलता को खो देती हैं। तीन वस्तुओं के लिए हमें तीन माप चाहिए, तीन वस्तुओं से अधिक होने पर रेखागणित हो जाती है तथा हमें बीजगणित का सहारा लेना पड़ता है।

5. वास्तव में, तटस्थता वक्र विश्लेषण रीति बहुत जटिल होती है। इसका प्रयोग केवल वे ही अर्थशास्त्री कर सकते हैं जिनका गणित का ज्ञान तथा अध्ययन बहुत अधिक हो।

6. शुम्पीटर तथा अन्य आलोचकों का कहना है कि तटस्थता विश्लेषण रीति का प्रयोग व्यावहारिक अनुसंधान ;मउचपतपबंस तमेमंतबीद्ध में नहीं किया जा सकता है। यद्यपि काल्पनिक तटस्थता वक्र रेखायें खीचीं जा सकती हैं परन्तु वास्तविक तटस्थता रेखाओ को खींचना सम्भव नहीं है।

8.8.3 तटस्थता वक्र विश्लेषण के निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि तटस्थता विश्लेषण रीति, उपयोगिता विश्लेषण रीति से एकदम नयी या सर्वथा भिन्न नहीं हैं। यदि उपयोगिता विश्लेषण के अनेक दोष हैं तो तटस्थता विश्लेषण भी दोषों से मुक्त नहीं है। परन्तु फिर भी यह कहना ठीक ही होगा कि कई दृष्टियों से तटस्थता विश्लेषण, उपयोगिता विश्लेषण पर सुधार है तथा उससे श्रेष्ठ है। इसका प्रयोग अर्थशास्त्र के सिद्धान्त में बहुत ख्याति प्राप्त कर चुका है।

8.9 सारांश

अर्थशास्त्र में उपभोक्ता का व्यवहार अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। उपभोक्ता के संतुलन को जानने के लिए मार्शल के उपयोगिता के मापन सम्बन्धी विचारों की आलोचना के बाद एक नयी तकनीकी 'अनधिमान वक्र विश्लेषण' वर्तमान समय में अति विशिष्ट विश्लेषण माना जाता है। क्योंकि इस विश्लेषण में मापन सम्बन्धी समस्या की कठिनाई को दूर कर दिया जाता है। इस वक्र पर उपभोक्ता को दो वस्तुओं के उपभोग करने में समान संतुष्टि मिल ती है। वह किसी भी संयोग को चुन सकता है। यदि एक का उपभोग बढ़ाना चाहता है तो दूसरे का उपभोग उसे कम करना पड़ेगा। इस रूप में बायें से दायें, नीचे की ओर गिरती हुई वक्र जो मूल बिन्दु के ओर उन्नतोदर है अनधिमान वक्र विश्लेषण का रूप ग्रहण कर लेता है। विश्लेषण में घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कार्य करता है। उपभोक्ता का संतुलन जानने के लिए बजट रेखा या कीमत रेखा महत्वपूर्ण है। जहां कीमत रेखा, अनधिमान वक्र को स्पर्श करती है वही उपभाक्ता का संतुलन बिन्दु निर्धारित होगा। संतुलन बिन्दु ही सुनिश्चित करता है कि दो वस्तुओं में से उपभोक्ता X वस्तु की कितनी मात्रा और Y वस्तु की कितनी मात्रा का वास्तव में उपभोग करता है। उपयोगिता विश्लेषण के अनेक दोष हैं तो तटस्थता विश्लेषण भी दोषों से मुक्त नहीं है। परन्तु फिर भी यह कहना ठीक ही होगा कि कई दृष्टियों से तटस्थता विश्लेषण, उपयोगिता विश्लेषण पर सुधार है तथा उससे श्रेष्ठ है। इसका प्रयोग अर्थशास्त्र के सिद्धान्त में बहुत ख्याति प्राप्त कर चुका है।

8.10 शब्दावली

उपयोगिता - किसी वस्तु अथवा सेवा की आवश्यकता संतुष्टि की शक्ति।

तटस्थता वक्र - दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करने वाला वह वक्र जिसके सभी बिन्दुओं पर समान संतुष्टि प्राप्त होता है।

उपभोक्ता संतुलन - वह बिन्दु जहां उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो रही हो।

उपयोगिता का संख्यात्मक दृष्टिकोण - . उपभोग की जाने वाली वस्तु की विभिन्न इकाइयों से मिल ने वाली उपयोगिता की संख्यात्मक माप करना संभव है का विचार।

उपयोगिता की क्रमवाचक दृष्टिकोण - उपयोग की जाने वाली वस्तु की विभिन्न इकाइयों से मिल ने वाली उपयोगिता को मात्र क्रम दे सकते है का विचार।

सीमान्त प्रतिस्थापन दर - वह दर जिस पर कोई उपभोक्ता एक वस्तु की निश्चित मात्रा के बदले दूसरी वस्तु को लेने अथवा परित्याग करने के लिए तैयार हो जाता है।

कीमत रेखा या बजट रेखा - उपभोक्ता का क्रय सामर्थ की द्योतक रेखा जो दो वस्तुओं के कीमत अनुपात को प्रदर्शित करता है।

8.11 अभ्यास प्रश्न

लघु प्रश्न

1. अनधिमान वक्र क्या होते हैं ?
2. उपभोक्ता के सन्तुलन बिन्दु से आप क्या समझते है ?
3. तटस्थता मानचित्र क्या है?
4. सीमान्त प्रतिस्थापन दर क्या है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1मार्शल समर्थक थे

क. गणनावाचक उपयोगिता दृष्टिकोण के ख. क्रमवाचक उपयोगिता दृष्टिकोण के

ग. क और ख दोनों के घ. उपर्युक्त में से किसी के नहीं

2.उपयोगिता विश्लेषण के प्रतिपादक थे-

क. मार्शल ख. हिक्स

ग. परेटो घ. एलन

3 उपभोक्ता की तटस्थता वक्र का ढाल होता है-

क. धनात्मक ख. ऋणात्मक

ग. समानान्तर घ. लम्बवत्

4 उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक विचार है इसलिए इसकी -

क. गणना वाचक माप की जा सकती है।

ख. गणना वाचक माप नहीं की जा सकती है।

ग. क्रम वाचक माप नहीं की जा सकती है।

घ. तुलनात्मक माप के साथ साथ गणना वाचक माप की जा सकती है।

5- जब दो वस्तुयें पूर्ण प्रतिस्थानापन्न होती है तो तटस्थता वक्र -

क. मूल बिन्दु के उन्नतोदर होता है
ख. मूल बिन्दु के नतोदर होता है
ग. एक सरल रेखा के रूप में होता है
घ. नीचे से ऊपर धनात्मक ढाल लिये होता है
उत्तर 1. क 2. क 3. ख 4. ख 5. ग

8.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

- Demiel R. Fusfeld - Economics : Principles of Political Economy 3rd Ed. - 1998.
- C.E. Ferguson and Gould - Micro Economic theory 5th Ed. 1988 Ruffin Roy and Gregory.
- एम0एल0 सेठ - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आग रा।
- एच0एल0 आहूजा - उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- एस0पी0 दुबे, वी0सी0 सिन्हा - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, 1988 नेशनल पब्लिशिंल हाउस, नई दिल्ली।

8.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. झिंगन, उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त।
2. जे0पी0 मिश्र, व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण, मिश्रा टेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी।
3. एस0एन0 लाल , व्यष्टि अर्थशास्त्र शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
4. डॉ0 बद्री विशाल त्रिपाठी - डॉ0 अमिताभ तिवारी - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, किताब महल्, इलाहाबाद।

8.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्र0.1. अनधिमान वक्र क्या होते हैं ? इनकी सहायता से यह स्पष्ट कीजिए कि उपभोक्ता सन्तुलन अवस्था को कैसे प्राप्त होता है ?

प्र0.2. तटस्थता वक्र विश्लेषण को सचित्र समझाइये। तटस्थता वक्रों के स्वरूप एवं विशेषताओं की व्याख्या करें।

प्र0.3. सीमान्त प्रतिस्थापन दर से क्या आशय है? अनधिमान वक्र विश्लेषण में यह एक महत्वपूर्ण उपकरण है, समझाइये।

इकाई-9: आय प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव एवं कीमत प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 आय प्रभाव: आय उपभोग वक्र
9.4 कीमत प्रभाव: कीमत उपभोग वक्र
9.5 प्रतिस्थापन प्रभाव
9.5.1 हिक्स का प्रतिस्थापन प्रभाव
9.5.2 स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव
9.5.3 कीमत में कमी का स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव
6.5.4 कीमत में वृद्धि का स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव
9.6 कीमत प्रभाव, आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव का योग है
9.6.1 कीमत प्रभाव को विभाजित करना-हिक्स की आय में क्षतिपूरक परिवर्तन की प्रविधि
9.6.2 कीमत प्रभाव को विभाजित करना-हिक्स की आय में तुल्य मूल्य परिवर्तन की प्रविधि
9.6.3 कीमत प्रभाव को विभाजित करना-स्लट्स्की की रीति
9.7 गिफेन पदार्थ ; स्थानापन्न एवं पूरक वस्तुएं
9.8 तटस्थता वक्रों से माँग वक्र की व्युत्पत्ति
9.9 सांराश
9.10 शब्दावली
9.11 अभ्यास प्रश्न
9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.14 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

तटस्थता वक्र विश्लेषण की महत्वपूर्ण विशेषता है कि यह उपभोक्ता सन्तुलन के परिवर्तन करने वाले तत्वों का भी अध्ययन करता है। प्रो0 अल्फ्रेड मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण का मुख्य दोष यह था कि उन्होंने परिवर्तन कारी तत्वों पर ध्यान नहीं दिया था जो बाद में तटस्थता वक्र विश्लेषण की मुख्य विशेषता बन गयी। तटस्थता वक्र विश्लेषण में जो महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी तत्व हैं-आय, कीमत एवं प्रतिस्थापन वस्तुएं उनका विस्तृत अध्ययन यहां किया गया है। तटस्थता वक्र और कीमत रेखा द्वारा स्थापित किसी भी संतुलन में होने वाले परिवर्तन को उपेक्षित करने से उपभोक्ता व्यवहार का सिद्धान्त अपूर्ण रह जाता है। इसलिए इस इकाई में उपभोक्ता के संतुलन को परिवर्तनकारी तत्वों के प्रभावों का सचित्र अध्ययन आप करेंगे। साथ ही वस्तुओं के स्वभाव-गुण-प्रकार का भी जो प्रभाव पड़ता है उसका भी अध्ययन करेंगें। आप स्वयं एक उपभोक्ता हैं ऐसी स्थिति में आपकी आय में परिवर्तन, या वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन एवं प्रतिस्थापन करने या होने वाली वस्तुओं के प्रभावों का अध्ययन आपको रूचिकर, सहज एवं सरल लगेगा । अन्त में अनधिमान वक्रों की सहायता से माँग रेखा की व्युत्पति के विचारों से भी आप परिचित होंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य-आपको निम्न विषय बिन्दुओं को समझने में मदद करेगा। यथा -

- आय प्रभाव-आय में परिवर्तन दोनों रूपों में हो सकता है। आय में वृद्धि या आय में कमी। फलतः सन्तुलन प्रभावित होगा। ऐसी परिस्थिति में तटस्थता वक्र के साथ आय उपभोग रेखा का निर्माण कैसे होगा आप बताने में सक्षम होंगे।
- कीमत प्रभाव-कीमत भी सन्तुलन को प्रभावित करता है। वस्तु की कीमत बढ़ सकती है और घट सकती है। कीमत बढ़ने पर वस्तु उपभोक्ता वस्तु की माँग सामान्यता घटायेगा लेकिन विशेष परिस्थितियों में माँग बढ़ायेगा। इसी प्रकार कीमत घटने पर माँग की मात्रा में वृद्धि या विस्तार का वक्र किस रूप में होगी। आप समझाने में सक्षम होंगे।
- प्रतिस्थापन प्रभाव-एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु को प्रतिस्थापित किन परिस्थितियों में किया जाता है, उससे भी जानने में सक्षम होंगे। निकृष्ट वस्तु या गिफेन पदार्थों से क्या आशय है, स्थानापन्न या पूरक वस्तुएं क्या हैं? यह भी जानने में आप सफल होंगे। अभिमान वक्रों की मदद से माँग रेखा खींचने की एक नयी विधि से आप परिचित हो जायेंगे।

9.3 आय प्रभाव: आय उपभोग वक्र

वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहने पर उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तुओं की माँग में जो परिवर्तन होता है उसे आय-प्रभाव कहते हैं। उपभोक्ता की आय में परिवर्तन हो जाने पर उसके सन्तुलन बिन्दु में परिवर्तन हो जाता है। कीमतों के स्थिर रहने की अवस्था में आय में वृद्धि हो जाने

पर दोनों वस्तुओं के अपेक्षाकृत अधिक उपभोग कर सकने की क्षमता उपभोक्ता के लिए प्रकट होती है। फलतः उसका सन्तुष्टि स्तर बढ़ जाता है। इसके विपरीत आय में कमी होने पर व्यय की मात्रा कम हो जाने से सन्तुष्टि का स्तर भी घट जाता है।

इस प्रकार आप समझ सकते हैं कि आय प्रभाव उपभोक्ता की आय में परिवर्तन से उसकी माँग पर प्रभाव को व्यक्त करता है। जिसे-चित्र सं0 9.1 में प्रदर्शित किया गया है। वस्तुओं की कीमतें तथा आय दी हुई होने पर जोकि बजट रेखा P_1L_1 में प्रकट होती है तो उपभोक्ता अनधिमान IC_1 के Q1 बिन्दु पर संतुलन में है। वह X वस्तु की OM_1 और Y वस्तु की ON_1 मात्रा का उपभोग कर रहा है। अब आप कल्पना करें कि आय में वृद्धि होती है। अपनी आय में वृद्धि होने से वह दोनों वस्तुओं का अधिक उपभोग करेगा। फलतः बजट रेखा सरक कर P_2L_2 होगी। इस प्रकार बजट रेखा P_2L_2 उपभोक्ता IC_2 के बिन्दु Q_2 पर संतुलन में है। यहां OM_2 वस्तु Aका और ON_2 वस्तु B का उपभोग कर रहा है । आय में वृद्धि होने से वह ऊंचे सन्तुष्टि वक्र पर पहुॅच जाता है। इसी प्रकार आय में वृद्धि होने पर उपभोक्ता नयी बजट रेखा, ऊँचे अनधिमान वक्र एवं नये सन्तुलन बिन्दु को क्रमशः प्राप्त करता जाता है। फलतः उसकी सन्तुष्टि में वृद्धि होती जाती है।

अब यदि विभिन्न बिन्दुओं Q_1, Q_2, Q_3, Q_4 आदि को मिलायें जो कि विभिन्न आय के स्तरों पर उपभोक्ता के संतुलन को व्यक्त करते हैं तो हमें एक वक्र प्राप्त होता है जिसे **आय उपभोग वक्र** कहते हैं। इस प्रकार आय उपभोग वक्र उपभोक्ता के विभिन्न आय के स्तरों पर संतुलन-बिन्दुओं से बना हुआ होता है। अतः हम देखते हैं कि आय उपभोग वक्र वस्तुओं की माँग अथवा क्रय-मात्रा पर आय प्रभाव को प्रकट करता है।

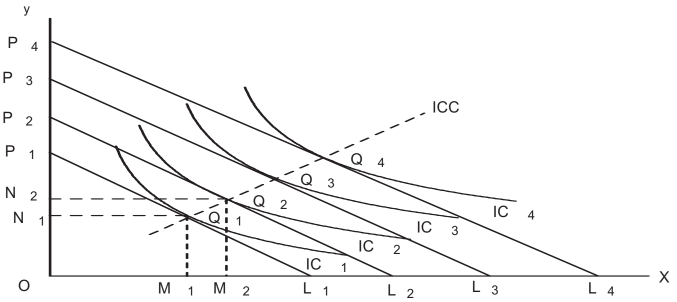

X वस्तु चित्र सं0 9.1

आय प्रभाव **धनात्मक** भी हो सकता है और ऋणात्मक भी। आय प्रभाव किसी वस्तु के लिए धनात्मक तब होता है जब उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने से उसके द्वारा वस्तु का उपभोग अथवा माँग बढ़ जाती है। आय प्रभाव का धनात्मक होना एक सामान्य बात है। जब रेखाचित्र के दोनों अक्षों पर व्यक्त की गई वस्तुओं के लिए आय प्रभाव धनात्मक होता है तो आय उपभोग वक्र ऊपर को चढ़ेगा। जैसा कि रेखाचित्र 9.1 में दिखाया गया है, केवल ऊपर को चढ़ता हुआ आय उपयोग वक्र ही दो वस्तुओं की माँग को बढ़ता हुआ प्रकट कर सकता है। किन्तु कुछ वस्तुओं के लिए आय

प्रभाव ऋणात्मक होता है। किसी वस्तु के लिए आय प्रभाव ऋणात्मक होता है जब उसकी आय में वृद्धि होने पर उसके द्वारा वस्तु की माँगअथवा उपभोग घट जाता है। **ऐसी वस्तुओं को जिनके लिए आय प्रभाव ऋणात्मक होता है, निम्न अथवा हीन पदार्थ कहते हैं।** इसका कारण यह है कि वे वस्तुएँ जिनका उपभोग उपभोक्ता की आय बढ़ने पर घट जाता है वे उपभोक्ता द्वारा हीन अथवा निकृष्ट समझी जाती हैं और इसलिए वह अपनी आय बढ़ने पर उनके स्थान पर उत्कृष्ट वस्तुओं का प्रयोग करने लगता है। जब आय बढ़ने पर उपभोक्ता उत्कृष्ट वस्तुओं का अधिक उपयोग करने लगता है तो हीन पदार्थों की माँग की मात्रा अथवा उपभोग घट जाता है। जब लोग निर्धन होते है तो वे उत्कृष्ट वस्तुओं की जो प्रायः अधिक महँगी होती हैं क्रय-शक्ति नहीं रखते। इसलिए जब वे धनी बनते है, अथवा उनकी आय में वृद्धि होती है जिससे वे अधिक महँगी वस्तुओं को खरीदने की क्रय-क्षमता रखते हैं तो वे हीन पदार्थों को त्याग कर बढ़िया और उच्च कोटि की

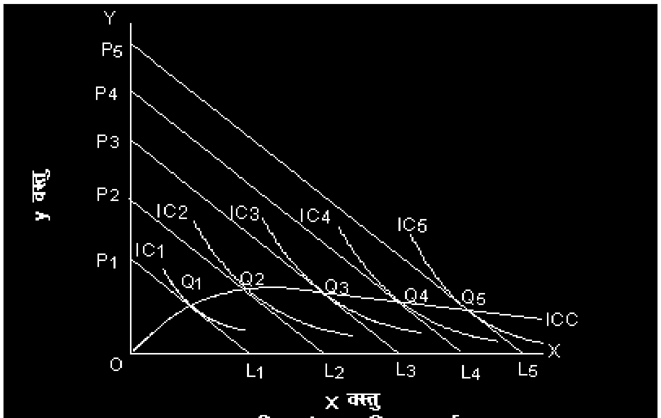

चित्र सं० 93 (निम्न पदार्थ y)

वस्तुओं का उपभोग करना आरम्भ कर देते हैं। उदाहरण के लिए भारत के अधिकांश लोग सस्ते खाद्यान्न जैसे कि मक्का, ज्वार, बाजरा को हीन वस्तुएं मानते हैं और जैसे उनकी आय बढ़ती हैं, वे उनके स्थान पर खाद्यान्नों की उत्तम कोटि जैसे कि गेहूँ और चावल का उपभोग करना आरम्भ कर देते हैं। इसी प्रकार अधिकांश भारतीय लोग वनस्पति घी को निकृष्ट और हीन वस्तु मानते हैं और आय बढ़ने पर उसके स्थान पर देसी घी का प्रयोग करना आरंभ कर देते हैं।

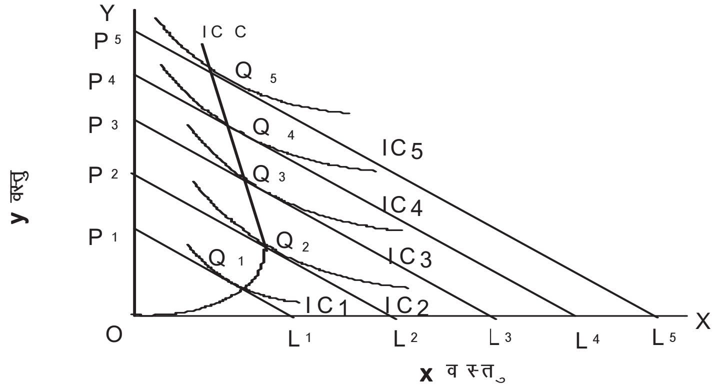

चित्र सं० 9.2 (निम्न पदार्थ x)

हीन वस्तुओं की दशा में अनधिमान मानचित्र इस प्रकार का होगा जिससे हमें ऐसा आय उपभोग वक्र प्राप्त होगा जो पीछे को

मुड़ता हुआ अर्थात् बायीं ओर ऊपर को चढ़ता हुआ होगा जैसा कि चित्र 9.2 में दिखाया गया है अथवा आय उपभोग वक्र दायीं ओर नीचे को गिरता हुआ होगा जैसा कि चित्र 9.3 में दिखाया गया हैं। इन दो रेखाचित्रों से स्पष्ट है कि आय प्रभाव केवलएक बिन्दु के पश्चात् ही ऋणात्मक होता है।

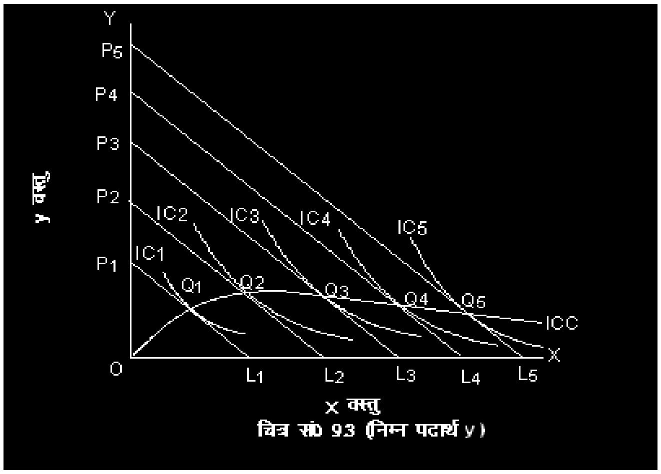

चित्र सं0 93 (निम्न पदार्थ y)

इससे पता चलता है कि केवल कुछ ऊँची आय के स्तर पर ही कुछ वस्तुएं हीन वस्तुएं हीन होती हैं और कुछ सीमा तक उनके उपभोग में परिवर्तन सामान्य वस्तुओं के समान ही होता है। रेखाचित्र 9.2 में आय उपभोग वक्र पीछे की ओर मुड़ता हुआ दिखाया गया है। यह आय उपभोग वक्र बिन्दु Q_2 के बाद वस्तु X के हीन वस्तु होने को दर्शाता है। इसमें वस्तु X के लिए आय प्रभाव ऋणात्मक है और परिणामस्वरूप आय बढ़ने पर इसकी माँग मात्रा घटती है।

रेखाचित्र 9.3 में आय उपभोग वक्र दायीं ओर को नीचे झुका हुआ है और बिन्दु Q_2 के पश्चात् अक्ष-X की ओर गिरता है जो कि वस्तु Y के हीन वस्तु होने को प्रकट करता है क्योंकि बिन्दु Q_2 के बाद आय प्रभाव वस्तु Y के लिए ऋणात्मक होता है जिससे आय में वृद्धि होने से इसकी माँग-मात्रा घटती है। स्पष्ट है कि आय उपभोग वक्र की कई विभिन्न आकृतियाँ हो सकती हैं। यदि आय प्रभाव दोनों के लिए धनात्मक हो तो आय वक्र दायीं ओर ऊपर को चढ़ता हुआ होगा जैसा कि रेखाचित्र 9.1 में दिखाया गया है। परन्तु ऊपर को चढ़ता हुआ आय उपभोग वक्र कई विभिन्न आकृतियों का हो सकता है जैसा कि रेखाचित्र 9.4 में दिखाया गया है जिसमें कि आय उपभोग वक्र जो कि एक दूसरे से ढाल में भिन्न-भिन्न है और सभी दायीं ओर ऊपर को चढ़ रहे हैं और इसलिए ये दोनों वस्तुओं के लिए आय प्रभाव का धनात्मक होना प्रकट करते हैं।यदि आय प्रभाव वस्त X के लिए ऋणात्मक है तो आय उपभोग वक्र रेखाचित्र 9.5 में ICC की तरह बायीं ओर पीछे को मुड़ रहा होगा। यदि वस्तु Y के लिए आय प्रयोग ऋणात्मक है और इसलिए वस्तु Y हीन वस्तु है तो ऐसी दशा में आय उपभोग वक्र दायीं ओर नीचे को गिरता हुआ होगा अर्थात् यह अक्ष-X की ओर झुका होगा जैसा कि रेखा चित्र 9.5 में ICC द्वारा दिखाया गया है।

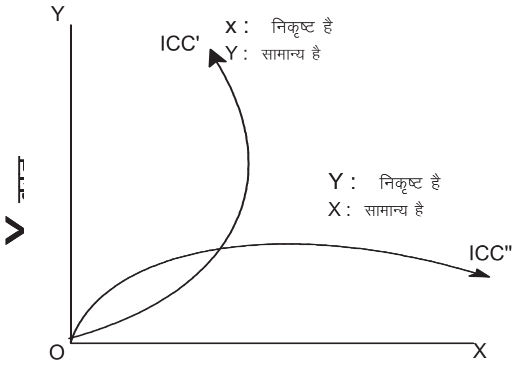

X वस्तु

यहाँ पर विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि ये अनधिमान वक्र नहीं है जो कि किसी वस्त के हीन वस्तु होने की व्याख्या करते हैं अर्थात् अनधिमान वक्र इस बात की व्याख्या नहीं करते कि किसी वस्तु के लिए आय प्रभाव ऋणात्मक क्यों है। अनधिमान वक्र तो केवल हीन पदार्थों को दर्शाते हैं उसकी व्याख्या नहीं करते।

9.4 कीमत प्रभाव: कीमत उपभोग वक्र

अब हम उपभोक्ता की आय, उसकी रूचियाँ और अन्य वस्तुओं की कीमतें समान रहने पर एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उपभोक्ता द्वारा माँग मात्रा में परिवर्तन की व्याख्या करेंगे। कीमत प्रभाव उपभोक्ता की किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उस प्रभाव को मापता है जो कि उस वस्तु की क्रय-मात्रा पर पड़ता है। कीमत प्रभाव में प्रभाव में उपभोक्ता की आय में कोई क्षतिपूरक परिवर्तन नहीं किया जाता। जब किसी वस्तु की कीमत में कमी या वृद्धि होती है तो उपभोक्ता की सन्तुष्टि में भी परिवर्तन होगा। दूसरों शब्दों में वस्तु की कीमत के घटने पर उसका संतुलन एक उच्चतर अनधिमान वक्र पर होगा और यदि वस्तु की कीमत बढ़ती है तो इसके कारण नीचे के अनधिमान वक्र पर आ जाएगा। कीमत प्रभाव को रेखाचित्र 9.6 में दिखाया गया है।

वस्तु X और Y की दी हुई कीमतों और उपभोक्ता दी हुई मुद्रा आय को बजट रेखा PL_4 व्यक्त करती है और उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु Q पर संतुलन में है। बिन्दु Q पर संतुलन की अवस्था में वह वस्तु X की OM_1 मात्रा खरीद रहा है और वस्तु Y की ON_1 मात्रा। कल्पना कीजिए कि वस्तु X की कीमत घट जाती है जबकि वस्तु Y की कीमत और उसकी मुद्रा-आय समान रहती है। कीमत में इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप बजट रेखा परिवर्तित होकर PL_2 हो जाएगी। अब उपभोक्ता ऊँचे अनधिमान वक्र IC_2 के बिन्दु R पर संतुलन में है और वस्तु X की

OM_2 मात्रा और Y की ON_2 मात्रा क्रय कर रहा है। इसलिए वह वस्तु X की कीमत के घटने के फलस्वरूप पहले से अधिक संतुष्ट हो गया है।

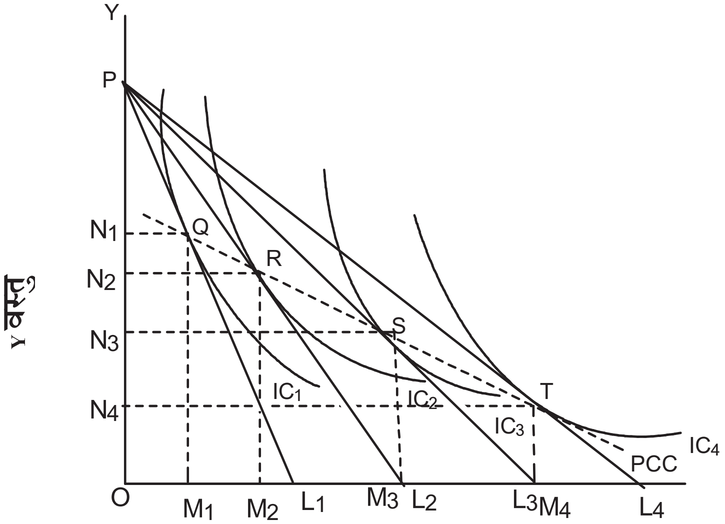

x वस्तु रेखाचित्र 9.6 नीचे की ओर झुकता हुआ

कल्पना कीजिए कि वस्तु X की कीमत और घट जाती है जिससे कि बजट अथवा कीमत रेखा परिवर्तित होकर PL_3 हो जाती है। कीमत रेखा PL_3 से उपभोक्ता वक्र IC_3 के बिन्दु S पर संतुलन में है जहाँ वह वस्तु X की कीमत घट जाती है जिससे कि बजट रेखा PL_4 बन जाती है तो उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC_4 के बिन्दु T पर संतुलन की अवस्था को प्राप्त करता है और उस पर वस्तु X की OM_4 मात्रा और वस्तु Y की ON_4 मात्रा को ले रहा है।

जब विभिन्न बिन्दुओं Q, R, S और T को परस्पर मिलाया जाता है तो हमें एक वक्र प्राप्त होता है। जिसे **कीमत उपभोग वक्र** कहते हैं। कीमत उपभोग वक्र कीमत प्रभाव को ही प्रकट करता है। यह इस बात को प्रकट करता है कि उपभोक्ता की रूचियाँ और मुद्रा-आय स्थिर रहने पर वस्तु X की कीमत में परिवर्तन से उपभोक्ता द्वारा वस्तु X की क्रय-मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ता है। रेखाचित्र 9.6 में कीमत उपभोग वक्र नीचे को झुका है। नीचे को झुके हुए उपभोग वक्र का अर्थ है कि जब वस्तु X की कीमत घटती है तो उपभोक्ता उसकी अधिक मात्रा क्रय करता है और वस्तु Y की कम मात्रा। यह बात रेखा चित्र से स्पष्ट है। किन्तु नीचे को झुका हुआ कीमत उपभोग वक्र केवल एक सम्भावना है। कीमत उपभोग वक्र के अन्य भी कई रूप हो सकते हैं। रेखा चित्र 9.7 में ऊपर को चढ़ता हुआ कीमत उपभोग वक्र दिखाया गया है। ऊपर को चढ़ते हुए कीमत उपभोग वक्र का अर्थ यह है कि जब वस्तु X की कीमत घटती है तो दोनों वस्तुओं X और Y की माँग मात्रा बढ़ती है।

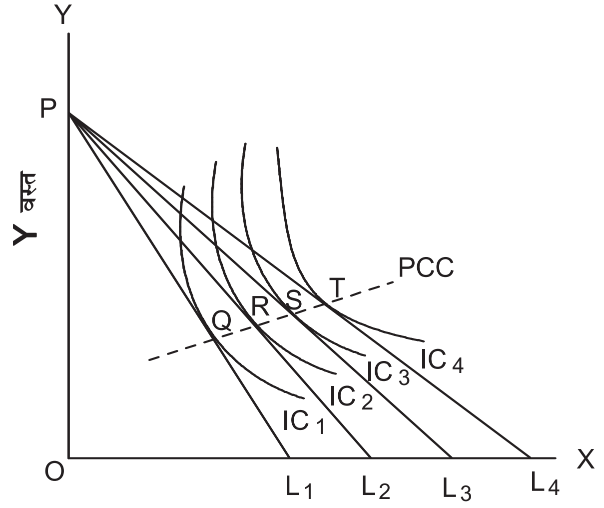

X वस्तु चित्र सं0 9.7 ऊपर की ओर बढ़ता हुआ PCC

कीमत उपभोग वक्र पीछे को भी मुड़ता हुआ हो सकता है जैसा कि रेखा चित्र 9.8 में प्रदर्शित किया गया है। वस्तु X के लिए पीछे को मुड़ता हुआ कीमत उपभोग वक्र इस बात इस बात को इंगित करता है कि जब वस्तु X की कीमत घटती है तो इसकी कम मात्रा माँगी अथवा खरीदी जाती है और जब उसकी कीमत बढ़ती है तो उसकी अधिक मात्रा खरीदी जायेगी। ऐसी **गिफन पदार्थो** की दशा में होता है जो कि माँग के सामान्य नियम के अपवाद हैं।

किसी वस्तु के लिए कीमत उपभोग वक्र क्षितिज समानान्तर सीधी रेखा भी हो सकता है। कीमत उपभोग वक्र के क्षितिज के समानान्तर सरल रेखा का यह अर्थ है कि जब वस्तु X की कीमत घटती है तो इसकी खरीदी गई मात्रा बढ़ती है लेकिन वस्तु Y की खरीदी गई मात्रा स्थिर और समान रहती है। क्षितिज के सामानान्तर कीमत उपभोग रेखा को रेखा चित्र 9.9 दिखाया गया है।

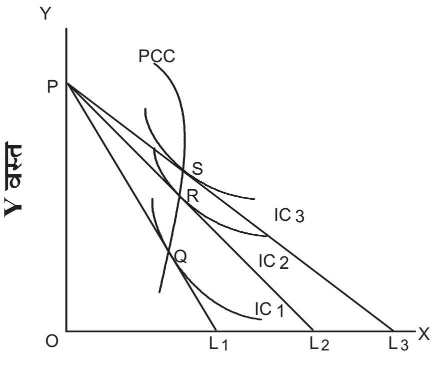

X वस्तु चित्र सं0 9.8 पीछे की ओर मुड़ता हुआ pcc

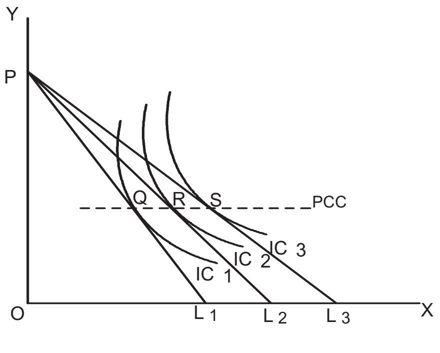

x वस्तु चित्र सं0 9.9 क्षितिज के सामान्तर pcc

परन्तु वास्तविक जगत में यह बहुत ही कम पाया जाता है कि कीमत उपभोग वक्र अपनी समस्त Yम्बाई में नीचे को गिरता हुआ हो अथवा ऊपर को चढ़ता हआ हो अथवा पीछे को मुड़ता हुआ हो अथवा क्षितिज के समानान्तर रेखा हो। सामान्यतया कीमत उपभोग वक्र विभिन्न कीमतों पर भिन्न-भिन्न ढाल का होता है। ऊँचे कीमत स्तरों पर यह प्रायः नीचे को झुका हुआ होता है और कुछ

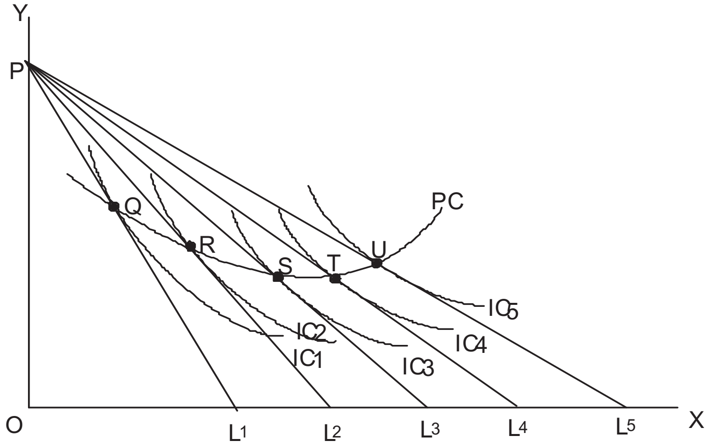

X वस्तु चित्र9.10 भिन्न कीमतों पर भिन्न स्लोप की PCC

कीमतों पर इसकी आकृति क्षितिज के समानान्तर हो सकती है, किन्तु अन्ततः यह ऊपर को चढ़ता हुआ होता है। हॉ, कुछ कीमत स्तरों यह पीछे को मुड़ता हुआ भी हो सकता है। एक कीमत उपभोग वक्र जिसकी ढाल विभिन्न कीमत स्तरों पर भिन्न-भिन्न है, को रेखा चित्र 9.10 में दिखाया गया है।

9.5 प्रतिस्थापन प्रभाव

आइये अब प्रतिस्थापन प्रभाव को जाने। किसी वस्तु के उपभोग परिवर्तन लोने के लिए एक अन्य महत्वपूर्ण कारक प्रतिस्थापन प्रभाव है। जबकि आय प्रभाव किसी उपभोक्ता की आय बढ़ने पर उसके द्वारा वस्तु की माँग अथवा क्रय-मात्रा पर प्रभाव को प्रकट करता है, प्रतिस्थापन प्रभाव वस्तुओं की केवल **सापेक्ष कीमतों** में परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तु की माँग अथवा उसकी उपभोग मात्रा पर प्रभाव को प्रकट करता है। जबकि उपभोक्ता की वास्तविक आय ;तमंस पदबवउमद्ध स्थिर रहे। जब वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता हैं तो उपभोक्ता की वास्तविक आय अथवा क्रय-शक्ति बदल जाती है। उपभोक्ता की वास्तविक आय को स्थिर रखने के लिए ताकि केवल सापेक्ष मूल्य में परिवर्तन का प्रभाव ज्ञात हो सके, हम कीमत में परितर्वन के साथ आय में भी परिवर्तन करते हैं जिससे उपभोक्ता की वास्तविक आय समान ही रहे। उदाहरण के लिए, जब वस्तु X की कीमत घटती है तो उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाएगी। प्रतिस्थापन प्रभाव को ज्ञात करने के लिए अर्थात् वस्तु की सापेक्ष कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तु X की माँग-मात्रा में

परिवर्तन को ज्ञात करने के लिए हम उपभोक्ता से इतनी मुद्रा आय लें लेते हैं जितनी की कीमत के घटने के कारण उसकी वास्तविक आय में वृद्धि होती है।

प्रतिस्थापन प्रभाव के विषय में दो प्रकार की धारणाएँ वस्तुत की गयी हैं। प्रथम धारणा जे0आर0 हिक्स ;श्रण्त्ण् भ्पबोद्ध द्वारा प्रतिपादित की गयी है इसे हिक्स का प्रतिस्थापन प्रभाव की संज्ञा दी जाती है। प्रतिस्थापन प्रभाव की दूसरी धारणा ई0स्लट्स्की द्वारा विकसित की गयी है और इसीलिए इसे स्लट्स्की की प्रतिस्थापन प्रभाव ई0स्लट्स्की कहा जाता है। प्रतिस्थापन प्रभाव को इन दो धारणाओं में अन्तर इस बात पर निर्भर करता हैं कि वस्तु की कीमत में परिवर्तन से उत्पन्न उपभोक्ता की वास्तविक आय में परिवर्तन को उसकी मौद्रिक आय में कमी या वृद्धि करके नष्ट कर दिया जाय जिससे उपभोक्ता की वास्तविक आय पूर्ववत् बनी रहे और इस प्रकार हम वस्तु की केवल सापेक्ष कीमत में परितर्वन का वस्तु की माँग पर प्रभाव जान सकें। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि हिक्स की धारणा में वास्तविक आय से अभिप्राय उपभोक्ता के सन्तुष्टि स्तर से है जबकि स्लट्स्की की धारणा में वास्तविक आय का अर्थ उपभोक्ता की क्रय-शक्ति है।

9.5.1 हिक्स का प्रतिस्थापन प्रभाव

हिक्स के प्रतिस्थापन प्रभाव में वस्तु की केवल सापेक्ष कीमत में परिवर्तन का उपभोक्ता का द्वारा वस्तु की माँग पर प्रभाव जानने के लिए उसकी मौद्रिक आय में उतनी मात्रा में परिवर्तन किया जाता है जिससे उसकी सन्तुष्टि पूर्वस्तर पर स्थिर रहे। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता के पास मुद्रा-आय इतनी घटा दी जाती है जिससे कि वह उस अनधिमान वक्र पर ही रहे जिस पर कि वह कीमत घटने से पहले था। इस प्रकार प्रतिस्थापन प्रभाव समान अनधिमान वक्र पर क्रियाशील होता है। मुद्रा आय की उस मात्रा जिसके घटाने पर उपभोक्ता समान सन्तुष्टि के स्तर पर रखा जाता है, को आय में क्षतिपूरक परिवर्तन कहते हैं। आय में क्षतिपूरक परिवर्तन उपभोक्ता की आय में वह परिवर्तन है, जोकि किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उपभोक्ता की सन्तुष्टि में हुयी वृद्धि को नष्ट कर देता है।

प्रतिस्थापन प्रभाव को चित्र सं0 9.11 में दर्शाया गया है। दो वस्तुओं की दी हुई कीमतों तथा उपभोक्ता की दी हुई आय को बजट रेखा PL व्यक्त करती है। उपभोक्ता अनधिमान वक्र के बिन्दु Q पर सन्तुलन में है और वह वस्तु X की OM मात्रा खरीद रहा है। अब कल्पना कीजिए कि वस्तु X की कीमत घट जाती है (जबकि वस्तु Y की कीमत स्थिर रहती हैं) जिससे बजट रेखा अब परिवर्तित होकर हो जाती है। वस्तु X की कीमत घटने से उपभोक्ता की वास्तविक आय अथवा क्रयशक्ति बढ़ जाएगी। प्रतिस्थापन प्रभाव को ज्ञात करने के लिए उपभोक्ता की वास्तविक आय में हुयी वृद्धि को समाप्त करने के लिए उसकी मुद्रा-आय में इतनी कमी की जाए जिससे कि वह अपने पहले अनधिमान वक्र जिस पर कि वह कीमत के कम होने से पूर्व था, पर ही रहने को बाध्य हो जाय। जब उपभोक्ता से उसकी वास्तविक आय में वृद्धि को समाप्त करने के लिए कुछ आय अथवा मुद्रा ले ली जाती है तो बजट रेखा जो कि PL' हो गई थी, अब नीचे सरक कर AB हो जाएगी जोकि PL' के

समानान्तर है। चित्र सं0 9.11 में बजट रेखा ।AB को बजट रेखा PL' के समानान्तर इतनी दूरी पर खींचा गया है जिससे यह अनधिमान वक्र IC के किसी बिन्दु को स्पर्श करे अर्थात् उपभोक्ता की आय में, वस्तु X की मात्रा में के समान अथवा वस्तु Y की मात्रा में PA के समान कमी की गई है जिससे कि वह पहले अनधिमान वक्र IC के बिन्दु T पर सन्तुलन में हैं। अतः $L'B$ अथवा PA उस आय की मात्रा को व्यक्त करता है जो कि वस्तु X की कीमत के घटने से वास्तविक आय में वृद्धि को समाप्त कर देती है अतः LB अथवा PA आय में क्षतिपूरक परिवर्तन है। स्पष्ट है कि बजट रेखा AB वस्तु X और Y की परिवर्तित सापेक्ष कीमतों को व्यक्त करती है क्योंकि यह बजट रेखा PL' के समानान्तर है जिसको कि हमने वस्तु X की कीमत घट जानें के पश्चात् प्राप्त किया था। अतः बजट रेखा AB बजट रेखा PL की तुलना में X की घटी हुई सापेक्ष कीमत को को व्यक्त करती है। अतः उपभोक्ता वस्तु X और वस्तु Y की कम मात्राओं में परिवर्तन करेगा और इस परिवर्तन में वह वस्तु X को वस्तु Y के स्थान पर प्रयोग करेगा अर्थात् चूंकि वस्तु X अपेक्षाकृत सस्ती हो गयी है और वस्तु Y पहले की तुलना में अपेक्षाकृत महंगी, वह वस्तु X को अधिक मात्रा में खरीदेगा और वस्तु Y को कम मात्रा में। चित्र में यह देखा जाएगा कि बजट रेखा AB वस्तु X और Y की परिवर्तित सापेक्ष कीमतों को प्रकट करती है लेकिन वह बजट रेखा की तुलना में कम मुद्रा आय को व्यक्त करती है क्योंकि AB प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता की आय क्षतिपूरक परिवर्तन के समान घटा दी गई है।

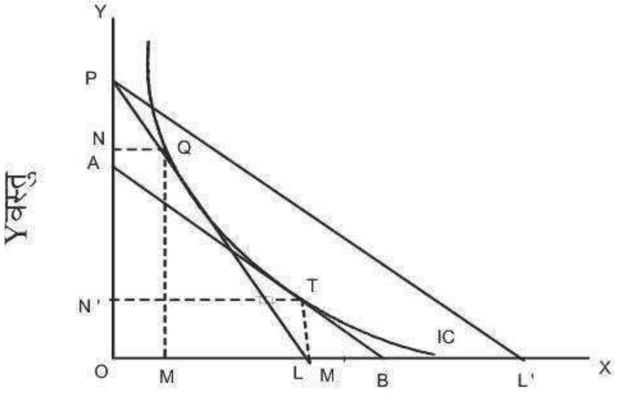

चित्र सं0 9.11 हिक्स का प्रतिस्थापन प्रभाव PCC

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि बजट रेखा ABसे उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC के बिन्दु T पर सन्तुलन में है और उस स्थिति में वह वस्तु X की OM मात्रा और वस्तु Y की ON मात्रा क्रय कर रहा है। इस प्रकार वस्तु X की अधिक मात्रा खरीदने के लिए वह समान अनधिमान वक्र IC के बिन्दु Q से चलकर बिन्दु T पर आ जाता है। वस्तु X की खरीद में MM की वृद्धि और वस्तु Y की खरीद में NN की कमी वस्तु X और Y की केवल सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन के कारण हुई है क्योंकि कीमत

के घटने से वास्तविक आय में वृद्धि को आय में क्षतिपूरक कमी द्वारा समाप्त कर दिया गया है। इसलिए बिन्दु Q से बिन्दु T तक उपभोक्ता की गति प्रतिस्थापन प्रभाव को प्रकट करती है। वस्तु X पर प्रतिस्थापन प्रभाव उसकी खरीदी गई मात्रा MM के समान वृद्धि है और वस्तु Y पर प्रतिस्थापन प्रभाव उसकी मात्रा में NN के समान कमी है। अतः स्पष्ट है कि प्रतिस्थापन प्रभाव के परिणामस्वरूप उपभोक्ता समान अनधिमान बिन्दु वक्र पर ही रहता है, किन्तु वह अनधिमान वक्र के एक भिन्न बिन्दु पर सन्तुलन में होता है। अनधिमान वक्र जितना ही कम उत्तल होगा, प्रतिस्थापन प्रभाव उतना ही अधिक होगा। जैसा कि विदित है, निकट की प्रतिस्थापक वस्तुओं के बीच अनधिमान वक्र कम उत्तल होते हैं, इसलिए निकट की प्रतिस्थापन वस्तुओं की दशा में प्रतिस्थापन प्रभाव अधिक होता है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि किसी वस्तु की अपेक्षाकृत कीमत कम होने पर प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण उसकी माँग -मात्रा बढ़ती है जबकि उपभोक्ता का सन्तुष्टि स्तर पूर्ववत रहता है। अतएव प्रतिस्थापन प्रभाव सदा ऋणात्मक होता है द । ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव से हमारा अभिप्राय यह है कि वस्तु की अपेक्षाकृत कीमत तथा उसकी माँग की मात्रा परस्पर विपरीत दिशाओं में बदलती हैं अर्थात् किसी वस्तु की सापेक्ष कीमत घटने पर उसकी माँग की मात्रा सदा बढ़ती है। वस्तु की कीमत व उसकी माँग की मात्रा में यह विलोम सम्बन्ध, जबकि उपभोक्ता की सन्तुष्टि स्थिर रहती है अनधिमान वक्र के मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होने के कारण है। यह ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव प्रसिद्ध माँग के नियम का आधार है जिसके अनुसार वस्तु और उसकी माँग की मात्रा में विलोम सम्बन्ध होता है।

9.5.2 स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव

स्लट्स्की ने प्रतिस्थापन प्रभाव की कुछ भिन्न धारणा प्रस्तुत की है। उसकी धारणा में जब वस्तु की कीमत बदलती है और फलस्वरूप उपभोक्ता की क्रय-शक्ति में परिवर्तन होता है तो उपभोक्ता की आय को भी क्रय शक्ति में परिवर्तन के समान बदला जाता है । उसकी क्रय-शक्ति में परिवर्तन की मात्रा वस्तु की कीमत में परिवर्तन तथा उसके द्वारा पूर्व कीमत पर वस्तु की क्रय-मात्रा के गुणा के बराबर होती है। दूसरे शब्दों में स्लट्स्की की पद्धति में उपभोक्ता की आय में परिवर्तन इतनी मात्रा में किया जाता है जिससे उपभोक्ता, यदि वह चाहे तो वस्तुओं का वह संयोग क्रय कर सकता है जो वह पूर्व कीमत पर क्रय कर रहा था। (In Slustky's approach income is reduced or increased, as the case may be , by the amount which leaves the consumer to be able to purchase the same combination of goods, if he so desires, which he was having at the old price)। अर्थात् उपभोक्ता की आय में परिवर्तन पूर्व-कीमत पर वस्तु X की क्रय की जा रही मात्रा की लागत तथा नई कीमत पर उसी मात्रा की लागत में अन्तर में समान किया जाता हैं। आय को तब लागत-अन्तर से बदना कहा जाता है। इस प्रकार स्लट्स्की के प्रतिस्थापन

प्रभाव में, आय में परिवर्तन लागत-अन्तर के बराबर किया जाता है न कि क्षतिपूरक परिवर्तन के समान।

लागत-अन्तर - महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि लागत-अन्तर को किस प्रकार मापा जा सकता है जिसके समान उपभोक्ता की मौद्रिक आय परिवर्तन करके वस्तु की सापेक्ष कीमत में परिवर्तन का स्लट्स्की का प्रस्थिापन प्रभाव जाना जा सके। किसी वस्तु X की कीमत में परिवर्तन को Px द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। यदि एक उपभोक्ता कीमत में परिवर्तन होने से पूर्व वस्तु X की Q_X मात्रा खरीद रहा है तो कीमत में ΔP_x के सामान घटने पर $Q_x.\Delta P_x$ के बराबर लागत-अन्तर उत्पन्न हो जायगा अर्थात् अब उपभोक्ता वस्तु की पूर्व मात्रा Q_X खरीदने के लिए $Q_x.\Delta P_x$ के बराबर उस पर कम व्यय करेगा। कल्पना कीजिए कि एक निश्चित आय से उपभोक्ता वस्तु X की Q_X मात्रा तथा वस्तु Y की Qy मात्रा क्रय कर रहा है। मान लीजिए कि अब उपभोक्ता की आय तथा वस्तु Y की कीमत स्थिर रहने पर वस्तु X की कीमत Px_1 से घट कर Px_2 को जाती है तो इससे निम्न लागत-अन्तर उत्पन्न होगा-

$$P_{x1}Q_x - P_{x2}Q_x = \Delta P_x.Q_x$$

आइये एक गणितीय उदाहरण से इसे समझें। यदि एक उपभोक्ता वस्तु X की 15 इकाइयाँ खरीद रहा जबकि उसकी कीमत 10 रूपये प्रति इकाई है। अब यदि वस्तु X की कीमट घट कर 8 रूपये प्रति इकाई हो जाती है जबकि दूसरी वस्तु Y की मात्रा तथा उसकी कीमत पूर्ववत् रहते हैं तो लागत-अन्तर निम्न प्रकार से ज्ञात होगा-

$$P_{x1}Q_x - P_{x2}Q_x = \Delta P_x.Q_x$$

$$10\times15 - 8\times15 = 2\times15 = 30$$

इस गणितीय उदाहरण से स्पष्ट है कि वस्तु X की कीमत 10 रूपये से घट कर 8 रूपये प्रति इकाई हो जाने पर 30 रूपये के समान उपभोक्ता की आय कम कर देने पर वह यदि चाहे तो दो वस्तुओं X और Y का पूर्व संयोग (अर्थात् वस्तु X की O_x मात्रा तथा वस्तु Y की O_y मात्रा) खरीद सकता है। उपभोक्ता की मुद्रा आय में यदि इस लागत-अन्तर के समान कमी कर दी जाय तो बजट रेखा वस्तुओं के पूर्व संयोग से गुजरेगी।

9.5.3 कीमत में कमी का स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव

स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभाव को चित्र सं0 9.12 में प्रदर्शित किया गया है। एक दी हुई निश्चित मुद्रा आय तथा दो वस्तुओं X और Y की दी हुई कीमतों (जोकि बजट रेखा PL द्वारा व्यक्त की गई हैं) से उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु Q पर संतुलन में है तथा इस स्थिति में वस्तु X की OM मात्रा ओर वस्तु Y की ON मात्रा खरीद रहा है। अब कल्पना कीजिए कि वस्तु X की कीमत घट जाती है जबकि वस्तु Y की कीमत पूर्ववत् ही रहती है। वस्तु X की कीमत घटने के कारण बजट रेखा PL हो जाएगी और उपभोक्ता की वास्तविक आय अथवा क्रयशक्ति बढ़ जाएगी। स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव ज्ञात करने के लिए उपभोक्ता की मुद्रा आय को लागत-अंतर के

बराबर अथवा इतनी मात्रा से घटाया जाए जिससे कि वह दो वस्तुओं के अपने पूर्व संयोग Q को, यदि वह चाहे, तो खरीद सके।

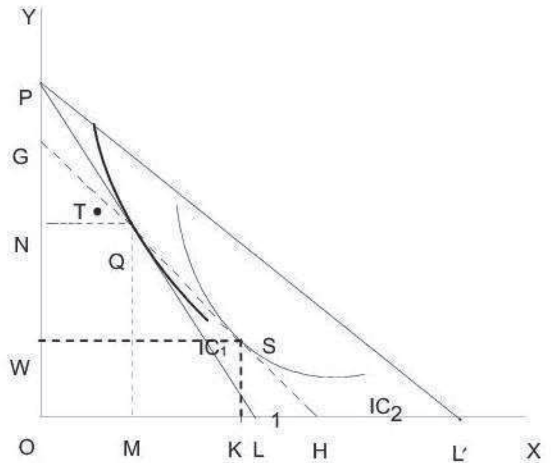

X वस्तु चित्र सं0 9.12 X की कीमत घटने पर प्रतिस्थापन प्रभाव

ऐसा करने के लिये एक नई कीमत रेखा GH जोकि PL' के समानान्तर है खींची गई है जोकि बिन्दु Q से गुजरती है अर्थात् Y के रूप में PG के समान तथा वस्तु X के रूप में $L'H$ के समान आय को उपभोक्ता से ले लिया गया है और फलस्वरूप वह वस्तुओं के संयोग Q को यदि वह चाहे तो क्रय कर सकता है क्योंकि बिन्दु Q बजट रेखा GH पर भी स्थित है। वास्तव में वह वस्तुओं के पहले संयोग Q को नहीं खरीदेगा क्योंकि वस्तु X अब पहले से अधिक सस्ती हो गई है और Y पहले से अधिक महंगी। वस्तु X और Y की इन सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन उपभोक्ता को वस्तु X और Y की क्रय-मात्राओं को बदलने के लिए प्रेरित करता है जिससे वह वस्तु X को Y के स्थान पर प्रयोग करता है। परन्तु स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभाव में उपभोक्ता की गति एक समान अनधिमान वक्र IC_1 पर ही नहीं होती क्योंकि बजट रेखा GH जिस पर कि उपभोक्ता को अब दी हुई कीमत और आय परिस्थितियों में सन्तुलन में होना है, अनधिमान वक्र IC_1 को कहीं पर स्पर्श नहीं करती। बजट रेखा अनधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु S को स्पर्श करती है। उपभोक्ता की बिन्दु Q से बिन्दु S की गति स्लट्स्की प्रभाव को व्यक्त करती है जिसके अनुसार उपभोक्ता एक समान अनधिमान वक्र पर न चल कर एक अनधिमान वक्र से दूसरे अनधिमान वक्र को जाता है। उल्लेखनीय बात यह है कि स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभाव के फलस्वरूप बिन्दु Q से बिन्दु S तक की गति केवल सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन के कारण हुई है क्योंकि कीमत में कमी के कारण क्रयशक्ति में वृद्धि को उपभोक्ता की आय लागत-अन्तर के सामन घटा कर रद्द कर दिया गया है। बिन्दु S पर उपभोक्ता वस्तु X की OK मात्रा और वस्तु Y की OW मात्रा का क्रय कर रहा है अर्थात् प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण उसने वस्तु X की MK मात्रा को वस्तु Y की NW मात्रा के

स्थान पर प्रयोग किया है। अतएव स्लट्स्की प्रतिस्थापन के प्रभाव में उपभोक्ता वस्तु X की MK मात्रा अधिक और वस्तु Yकी NW मात्रा कम खरीदता है।

9.5.4 कीमत में वृद्धि की दशा में स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव

हमने ऊपर वस्तु X में कमी होने पर स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभाव की व्याख्या की है। इसको वस्तु X की कीमत में वृद्धि की दशा में भी समझना लाभप्रद होगा। इसको हमने चित्र सं0 9.13 में प्रदर्शित किया है। प्रारम्भ में उपभोक्ता दी हुई कीमतों तथा मुद्रा-आय से अनधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु Q पर सन्तुलन में है। यदि अब वस्तु X की कीमत बढ़ जाती है, जबकि वस्तु Y की स्थिर रहती है तो बजट रेखा बदल कर PL'' हो जाएगी। वस्तु X की कीमत बढ़ जाने के फलस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय अथवा क्रयशक्ति धट जाएगी। इसके अतिरिक्त, इस कीमत परिवर्तन से वस्तु X पूर्व से अपेक्षाकृत महँगी और वस्तु Y की अपेक्षाकृत सस्ती हो जाएगी। इस वर्तमान दशा में स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव मालूम करने के लिए उपभोक्ता की मुद्रा-आय को X की कीमत में वृद्धि के कारण उत्पन्न लागत-अन्तर के समान बढ़ाया जाना होगा। दूसरे शब्दों में, उसकी मुद्रा आय इतनी बढ़ाई जाए जिससे वह यदि चाहे तो वस्तुओं के संयोग Q (जोकि वह Y की कीमत बढ़ने से पहले खरीद रहा था) को क्रय कर सके।

इसके लिए, एक बजट रेखा GH जोकि बिन्दु Q से गुजरती हैं खींची गई है। रेखाचित्र 9.13 से स्पष्ट है कि इस स्थिति में वस्तु Y के रूप में PG अथवा वस्तु X के रूप में $L''H$ वस्तु X की कीमत में वृद्धि के कारण उत्पन्न लागत-अन्तर को व्यक्त करता है। बजट रेखा से वह यदि चाहे तो अपने पहले संयोग Q को खरीद सकता है जोकि वह कीमत-वृद्धि से पूर्व क्रय कर रहा था। लेकिन वास्तव में वह नई स्थिति में संयोग Q क्रय नहीं करेगा क्योंकि बजट रेखा GH पर X वस्तु PLबजट रेखा की अपेक्षा अधिक महँगी है।

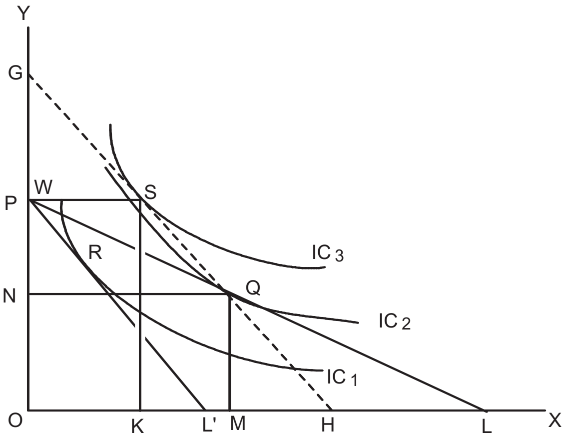

X वस्तु चित्र सं0 9.13 X की कीमत बढ़ने पर प्रतिस्थापन प्रभाव

इसलिए उपभोक्ता वस्तु X के स्थान पर वस्तु Y का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग करेगा। रेखाचित्र में देखा जाएगा कि बजट रेखा GH से उपभोक्ता ऊँचे अनधिमान वक्र IC_2 के बिन्दु S पर संतुलन में है जिस पर वह वस्तु X की OK मात्रा तथा वस्तु Y की OW मात्रा खरीद रहा है। वस्तु Xकी मात्रा MK का वस्तु Y की मात्रा NW द्वारा प्रतिस्थापन हुआ है। उपभोक्ता का बिन्दु Q से चलकर बिन्दु S को जाना स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभाव का परिणाम हैं क्योंकि वस्तु X की कीमत में वृद्धि के कारण क्रयशक्ति में कमी उपभोक्ता को अतिरिक्त मुद्रा (जोकि वस्तु Y के रूप में PG तथा वस्तु X के रूप में $L''H$ के समान है) देकर रद्द कर दी गई है। वस्तु X की कीमत बढ़ने पर स्लट्स्की का प्रतिस्थापना प्रभाव वस्तु X के क्रय में MK के बराबर गिरावट होना है तथा वस्तु Y के क्रय में NW के समान वृद्धि होना है।

9.6 कीमत प्रभाव आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव का योग है।

यह ऊपर बताया गया है कि अन्य बातें समान रहने पर जब वस्तु X की कीमत घटती है तो उपभोक्ता का संतुलन बदल कर ऊँचे अनधिमान वक्र पर हो जाता है। इसके अतिरिक्त हम यह भी देख आए हैं कि वह वस्तु X की कीमत घटने पर उसकी अधिक मात्रा को क्रय करता है यदि यह गिफिन वस्तु नहीं है। वास्तव में कीमत प्रभाव आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव का योग होता है। रेखाचित्र 9.14 में उपभोक्ता आरम्भ में अनधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु Q पर संतुलन में है। और वस्तु X की कीमत के घट जाने और बजट रेखा के PL_1 से बदल PL_2 कर हो जाने के फलस्वरूप, वह अनधिमान वक्र IC_2 के बिन्दु R पर संतुलन में हो जाता है। बिन्दु Q से बिन्दु R तक गति कीमत प्रभाव को प्रकट करती है। अब यह बताना बहुत महत्वपूर्ण और ज्ञानवर्द्धक है कि कीमत प्रभाव दो विभिन्न शक्तियों अर्थात् प्रतिस्थापन प्रभाव और आय प्रभाव का परिणाम है। दूसरे शब्दों में, कीमत प्रभाव को दो विभिन्न भागों-प्रतिस्थापन प्रभाव और आय प्रभाव-में विभाजित किया जा सकता है।

कीमत प्रभाव को आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव में विभाजित करने की मुख्यतः दो पद्धतियाँ हैं। प्रथम हिक्स द्वारा प्रस्तुत पद्धिति जिसमें आय में क्षतिपूर्वक परिवर्तन तथा आय में समान परिवर्तन द्वारा कीमत प्रभाव को उसके दो घटक-आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव में विभक्त किया जाता है। द्वितीय, स्लट्स्की द्वारा लागत- अन्तर की विधि द्वारा कीमत में परिवर्तन के प्रभाव को उसके दो भागों में विभाजित किया जाता है।

हिक्स तथा स्लट्स्की वस्तु की कीमत में परिवर्तन के प्रभाव को इसके दो भागों में किस प्रकार विभजित करते हैं की व्याख्या नीचे प्रस्तुत हैं-

9.6.1 कीमत प्रभाव को विभाजित करना- हिक्स की आय में क्षतिपूरक परिवर्तन की प्रविधि

आय में क्षतिपूरक परिवर्तन की प्रविधि में इस वस्तु की कीमत के घटने अथवा बढ़ने पर उपभोक्ता की आय में उतना परिवर्तन किया जाता है जिससे उपभोक्ता कीमत में परिवर्तन से पूर्व सन्तुष्टि के स्तर

पर पहुँच जाय अर्थात् वह पहले के अनधिमान वक्र पर आ जाय। उदाहरणतः जब वस्तु की कीमत में कमी होती है और फलस्वरूप वह ऊँचे अनधिमान वक्र पर पहुंच जाता है तो उसकी सन्तुष्टि में वृद्धि होती है । वस्तु की कीमत में कमी के कारण उसकी सन्तुष्टि में हुई वृद्धि को नष्ट करने के लिए हमें उपभोक्ता से उतनी आय ले लेनी चाहिए जिससे वह पूर्व अनधिमान वक्र पर पहुँच जाय। आय में यह आवश्यक परिवर्तन (उदाहरण के लिए उस पर **lump sum tax** लगाकर) जिससे वस्तु की कीमत में कमी के कारण उसकी संतुष्टि अथवा कल्याण में वृद्धि, नष्ट हो जाय को आय में क्षतिपूरक परिवर्तन कहते हैं (The required reduction in income, say through levying a lump sum tax, to cancel out the gain in satisfaction or welfare occurred by reduction in price is called compensating variation in income)।

आय में क्षतिपूरक परिवर्तन द्वारा किस प्रकार वस्तु की कीमत में परिवर्तन के वस्तु की माँग पर प्रभाव को आय प्रभाव तथा प्रतिस्थाप न प्रभाव में विभाजित किया जाता है को रेखाचित्र 9.14 में दर्शाया गया है। जब वस्तु X की कीमत घटती है और परिणामस्वरूप बजट रेखा बदल कर PL_1 से PL_2 हो जाती है तो उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है अर्थात् वह अपनी दी हुई मुद्रा आय से वस्तुओं की अधिक मात्रा खरीद सकता है। वास्तविक आय में इस वृद्धि के फलस्वरूप वह दोनों वस्तुओं की अधिक मात्रा क्रय कर सकेगा। यदि उसकी मुद्रा आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन द्वारा कमी की जाए जिससे कि वह पहले अनधिमान वक्र IC_1 पर आ जाए तो फिर भी यह पहले से वस्तु X की अधिक मात्रा क्रय करेगा क्योंकि यह पहले से अधिक सस्ती हो गई है।

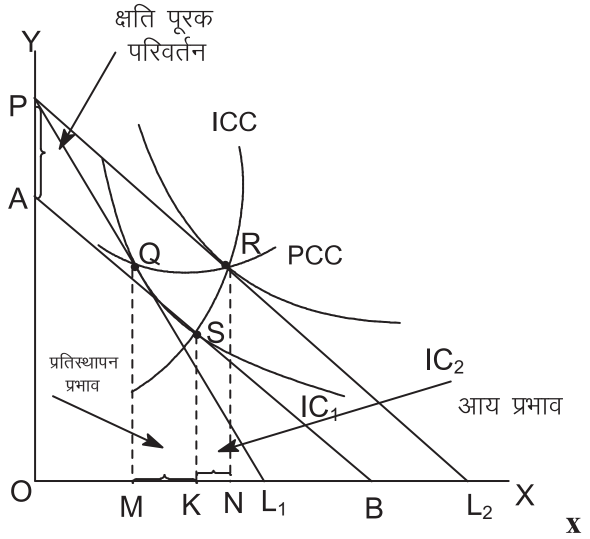

वस्तु चित्र सं0 9.14

चित्र सं 9.14 में वस्तु X की कीमत घटने पर बजट रेखा बदल कर PL_2 हो जाती है। अब कीमत रेखा AB को बजट रेखा PL_2 के समानान्तर इतनी दूरी पर खींचा गया है जिससे वह अनधिमान वक्र IC_1 को स्पर्श करती है। चूँकि बजट रेखा AB की ढाल बजट रेखा PL_2 की ढाल के बराबर है,

इसलिए यह परिवर्तन यह परिर्वतन नयी सापेक्ष कीमतों को व्यक्त करता है जिसमें पहले की तुलना में वस्तु X अधिक सस्ती है। चूंकि अब वस्तु X पूर्व की तुलना में अधिक सस्ती है, यह उपभोक्ता के लिए लाभकारी होगा कि वह Y के स्थान पर वस्तु X का प्रतिस्थापन करे। रेखाचित्र में जब उपभोक्ता की मुद्रा आय क्षतिपूरक परिवर्तन द्वारा घटा दी जाती है। तो उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC_1 पर नीचे को आता है अर्थात वह वस्तु X को वस्तु Y के स्थान पर प्रयोग करता है। बजट रेखा AB से वह अनधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु S पर संतुलन में है और वस्तु X की MK मात्रा अधिक क्रय करता है। उपभोक्ता की बिन्दु Q से S तक उसी अनधिमान वक्र IC_1 पर गति प्रतिस्थापन प्रभाव को व्यक्त करती है क्योंकि ऐसा केवल सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन के फलस्वरूप हुआ है जबकि उसकी वास्तविक आय (अर्थात् संतुष्टि) स्थिर ही रही है।

यदि उस मुद्रा-आय की मात्रा को जो उपभोक्ता से ली गयी थी उसे पुनः दे दी जाए तो उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु S पर से चल कर ऊँचे अनधिमान वक्र IC_2 के बिन्दु R पर पहुँच जाएगा। उपभोक्ता का नीचे के अनधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु S पर से ऊँचे अनधिमान वक्र के बिन्दु R पर जाना आय प्रभाव के कारण ही हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कीमत प्रभाव के कारण ही उपभोक्ता द्वारा बिन्दु Q से बिन्दु S तक जाने को दो चरणों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम, प्रतिस्थापन प्रभाव के फलस्वरूप बिन्दु Q से बिन्दु S तक जाना, और द्वितीय आय प्रभाव के फलस्वरूप उसका बिन्दु S से बिन्दु R तक जाना। अतः स्पष्ट है की कीमत प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव और आय प्रभाव का योग है।

वस्तु X की क्रय-मात्रा पर विभिन्न प्रभाव इस प्रकार हैं-

कीमत प्रभाव = MN

प्रतिस्थापन प्रभाव = MK

आय प्रभाव = KN

रेखाचित्र में, MN=MK+KN

अथवा,

कीमत प्रभाव =प्रतिस्थापन प्रभाव + आय प्रभाव।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि कीमत प्रभाव आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव का योग ळें

9.6.2 हिक्स द्वारा कीमत प्रभाव को विभाजित करना: आय में तुल्यमूल्य परिवर्तन की विधि

हिक्स ने कीमत प्रभाव को इसके दो भागो-आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव-में विभाजित करने की एक अन्य विधि भी प्रस्तुत की जिसे आय में तुल्यमुल्य परिवर्तन करने की विधि कहा जाता है। एक वस्तु की कीमत में कमी उपभोक्ता की संतुष्टि को बढ़ा देती है जिससे वह उच्च स्तर के अनधिमान वक्र पर पहुंच जाता है। किन्तु कीमत में कमी के कारण उपभोक्ता की संतुष्टि में हुई वृद्धि के बराबर ही वृद्धि कीमतों को स्थिर रखकर उसकी आय बढ़ाकर भी प्राप्त की जा सकती है।

उपभोक्ता की आय में यह वृद्धि (जबकि वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहें) जिससे वह उस उच्चस्तर के अनधिमान वक्र पर पहुँच सके जिस पर वह वस्तु की कीमत में कमी हो जाने से पहुँचा था को आय में तुल्यमूल्य परिवर्तन कहा जाता है।

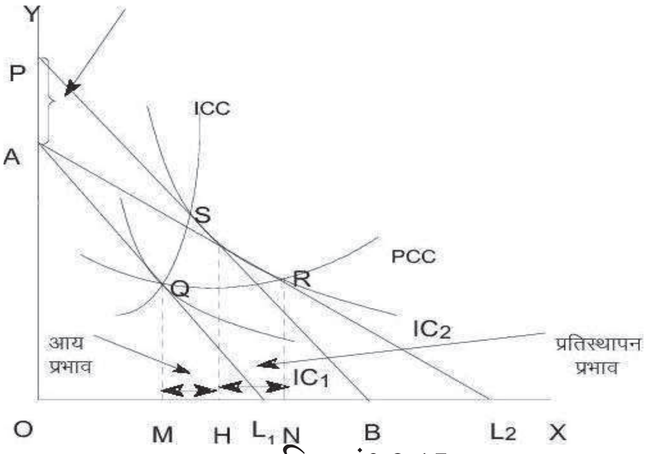

x वस्तु चित्र सं0 9.15

इस रीति में कीमत प्रभाव में प्रतिस्थापन प्रभाव को बाद के IC पर दिखाया जाता है। कीमत प्रभाव को इस दूसरी रीति से दो भागों में विभाजित करने को चित्र संख्या 9.15 में प्रदर्शित है। जब वस्तु X की कीमत घटती है तो उपभोक्ता दोनों वस्तुओं की अधिक मात्रा क्रय कर सकता हे। इसका अर्थ है वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर आय प्रभाव पड़ता है। कीमत घटने से क्रय शक्ति में अपनी वृद्धि को दो वस्तुओं पर व्यय उसके आय उपभोग वक्र की प्रकृति पर निर्भर करता है। उपभोक्ता उच्चतर अधिमान वक्र पर पहॅुच जाता है। रेखाचित्र 9.15 से स्पष्ट है कि बजट रेखा PL1 से उपभोक्ता IC1 के बिन्दु फ पर संतुलन में है। X वस्तु की कीमत घटने पर जबकि Y की कीमत स्थिर रहती हैं नयी बजट रेखा PL_2 हो जाती है। अब उपभोक्ता IC2 के R बिन्दु पर संतुलन में है। कीमत गिरने पर उपभोग की आय में वृद्धि X वस्तु की L_1 B अथवा X की मात्रा P_1 के बराबर हैं। अतएव X की मात्रा में L_1 B अथवा Y की मात्रा में PA आय में तुल्यमूल्य परिवर्तन है। यहाँ उपभोक्ता बिन्दु S पर संतुलन में नहीं होगा क्योंकि वस्तु अधिक सस्ती हो गयी है अतः X वस्तु की अधिक प्रयोग करेगा। उपभोक्ता S से चल कर R पर पहुंच जायेगा। S से R की गति दो वस्तुओं के सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन के कारण हुई है इसलिए यह प्रतिस्थापन प्रभाव को व्यक्त करता है।

चित्र में विभिन्न प्रभावों की मात्रा इस प्रकार हैः-

कीमत प्रभाव =MN

आय प्रभाव =MH

प्रतिस्थापन प्रभाव =HN

चित्र में MN = MHHN

अथवा

कीमत प्रभाव=आय प्रभाव+प्रतिस्थापन प्रभाव

9.6.3 कीमत प्रभाव का आय तथा प्रतिस्थापन प्रभावों में विभाजन: स्लट्स्की की रीति

स्लट्स्की ने प्रतिस्थापन और आय प्रभावों के सम्बन्ध में हिक्स से कुछ भिन्न प्रकार की धारणा प्रस्तुत की। कीमत प्रभाव को विभाजित करने की स्लटस्की की रीति चित्र सं0 9.16 में प्रदर्शित की गई है। एक दी हुई कीमत और आय सम्बन्धी स्थिति जिसको बजट रेखा PL_1 व्यक्त करती है उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु Q पर संतुलन में है। अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर वस्तु X की कीमत में कुछ कमी होने के कारण, बजट रेखा परिवर्तित होकर PL_2 हो जाती है और अब उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC_3 के बिन्दु R पर संतुलन की स्थिति प्राप्त करेगा। बिन्दु Q से बिन्दु R को उपभोक्ता की गति कीमत प्रभाव को व्यक्त करती है। अब प्रतिस्थापन प्रभाव को ज्ञात करने के लिए उसकी मुद्रा आय में इतनी मात्रा से कमी की जानी चाहिए जिससे यदि वह चाहे तो वस्तुओं का पूर्व संयोग खरीद सके। इसके लिए एक बजट रेखा AB जोकि PL_2 के समांतर है खींची गई है जोकि Q बिन्दु से गुजरती है।

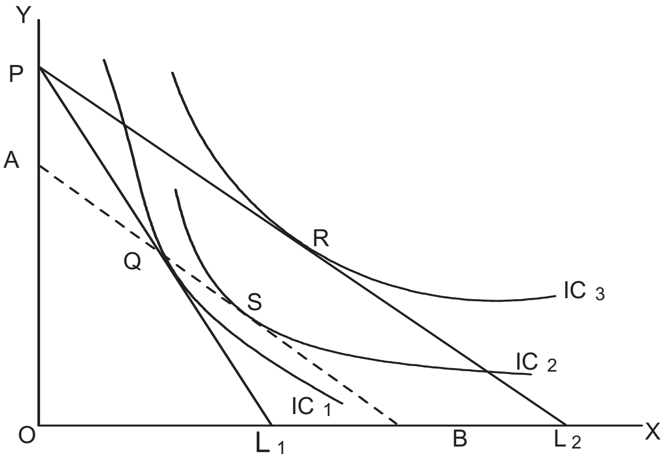

x वस्तु चित्र सं0 9.16

उपभोक्ता चाहे तो संयोग Q को क्रय कर सकता है लेकिन ऐसा वह नहीं करेगा क्योंकि X वस्तु अब सस्ती हो गयी है। वह Y के स्थान पर X का प्रतिस्थापन करेगा। चित्र से स्पष्ट है कि बजट रेखा AB के बिन्दु S पर संतुलन में है। बिन्दु Q से बिन्दु S तक की गति स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभाव

को व्यक्त करती है। यदि उससे ली गई मुद्रा वापस कर दी जाय तो उपभोक्ता बिन्दु S से बिन्दु R पर चला जायेगा। S से R तक की गति से दो चरणों में बांटा जा सकता है। प्रथम, प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण Q से S तक तथा द्वितीय, आय प्रभाव के कारण S से R तक जिसमें उपभोक्ता ऊँचे अनधिमान वक्र पर पहुंच जाता है।

9.7 गिफेन पदार्थ

कुछ निम्न पदार्थ ऐसे भी हो सकते हैं जिनकी दशा में ऋणात्मक आय प्रभाव बहुत बलवान हो। ऐसी अवस्था में वस्तु की माँगी गयी मात्रा कीमत के गिरने पर घटेगी और कीमत के बढ़ने पर बढ़ेगी अर्थात् ऐसी वस्तु की दशा में कीमत और माँग में सीधा सम्बन्ध होगा। यदि वस्तु निम्न पदार्थ है तो आय प्रभाव अधिक शक्तिशाली होने के अतिरिक्त ऋणात्मक भी होगा और संभव है कि वह प्रतिस्थापन प्रभाव से अधिक हो जिसके फलस्वरूप वस्तु की कीमतें घटने पर उपभोक्ता उसकी कम मात्रा खरीदेगा। **ऐसी निम्न वस्तुएं जिनकी दशा में उपभोक्ता उनकी कीमत गिरने पर उनके उपभोग को घटा देता है ओर उनकी कीमते बढ़ने पर उपभोग को बढ़ा देता है को गिफेन पदार्थ कहा जाता है।**

ऐसी वस्तुओं को गिफेन पदार्थ इसलिए कहा जाता है क्योंकिउन्नीसवी शताब्दी के ब्रिटेन के सांख्यिकीविद् Sir Robert Giffen ने यह दावा किया कि जब सस्ते प्रकार के खाद्य पदार्थ जैसे कि ब्रेड की कीमत बढ़ गई तो लोगों ने उसका उपभोग घटाने के बजाय बढ़ा दिया। ब्रेड की कीमत में वृद्धि ने निर्धन जनता की क्रय शक्ति में इतनी कमी कर दी कि वे मीट व अन्य महंगे खाद्य पदार्थों का उपभोग घटाने पर विवश हो गये। ब्रेड पहले से अधिक मंहगी हो जाने पर भी दूसरों की तुलना में अपेक्षाकृत सस्ती थी इसलिए लोगों ने इसका उपभोग घटाने के बजाय बढ़ा दिया। इसी प्रकार जब निम्नकोटि की ब्रेड की कीमत गिरती है तो लोग पहले की अपेक्षा कम मात्रा खरीदेंगे।

निकृष्ट कोटि की वस्तुओं से अभिप्राय हमारा उन वस्तुओं से है जिनके सम्बन्ध में मूल्य जन्य आय प्रभाव धनात्मक हो। **निकृष्ट कोटि की वस्तुएं दो प्रकार** की होंगी-**कम निकृष्ट तथा अति निकृष्ट या गिफेन वस्तु। कम निकृष्ट कोटि की वे वस्तुएं है जिनके सम्बन्ध में आय प्रभाव तो धनात्मक रहता है पर मूल्य प्रभाव ऋणात्मक बना रहता है** जबकि **गिफेन वस्तुएं एक विशिष्ट प्रकार की निकृष्ट वस्तुएं है जिनके सम्बन्ध में आय प्रभाव के प्रबल रूप से धनात्मक होने के कारण मूल्य प्रभाव भी धनात्मक हो जाता है**। एक गिफेन पदार्थ होने के लिए निम्न तीन शर्तों का होना आवश्यक है-

1. **वस्तु निकृष्ट हो जिसका ऋणात्मक प्रभाव शाक्तिशाली हो।**
2. **उस वस्तु का प्रतिस्थापन प्रभाव कम हो, तथा**
3. **उस वस्तु पर आय का एक अधिक हिस्सा व्यय किया जाता हो।**

गिफेन पदार्थ सैद्धान्तिक दृष्टि से तो संभव है लेकिन वास्तविक संसार में इसके पाये जाने की संभावना बहुत ही कम है क्योंकि संसार में लोगों का उपभोग विविध प्रकार का होता है। मार्शल ने गिफेन पदार्थ या गिफेन विरोधाभास को अपने माँग के नियम का अपवाद माना और अपने व्यख्या में इसे शामिल नहीं किये। इसलिए अनधिमान विश्लेषण की इससे श्रेष्ठता सिद्ध होती है कि उपभोक्ता के व्यवहार की व्यापक व्याख्या इसमें की गयी है।

अर्थशास्त्र में माँग के तीन प्रमुख प्रकारों का उल्लेख होता है-कीमत माँग, आय माँग एवं तिरछी माँग । अनधिमान वक्र कीमत माँग: कीमत एवं माँग में परस्पर सम्बन्ध को दिखाती है। समान्य रूप से यह सम्बन्ध धनात्मक होता है लेकिन अपवाद स्वरूप धनात्मक होने पर ये वस्तुएँ गिफेन वस्तुएँ कहलाती हैं। आय माँग: उपभोक्ता की आय व माँगी गई मात्रा में सम्बन्ध को व्यक्त करती हैं। यहाँ भी सामान्यतः सम्बन्ध धनात्मक होता है परन्तु निकृष्ट वस्तुओं के सम्बन्ध में ऋणात्मक सम्बन्ध हो जाता है। किसी वस्तु के मूल्य मे परिवर्तन का दूसरी वस्तु की माँग पर जो प्रभाव पड़ता है उसका अध्ययन तिरछी माँग के अन्तर्गत किया जाता है। वस्तुएं एक दूसरे से दो प्रकार से सम्बन्धित हो सकती है (1) स्थानापन्न या प्रतियोगी वस्तुएं एवं (2) पूरक वस्तुएं।

स्थानापन्न वस्तुएं- स्थानापन्न वस्तुएं उन्हें कहते हैं जिन्हें एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त किया जा सकता है।श् इनमें पहली वस्तु की कीमत बढ़ने पर दूसरी वस्तु की माँगबढ़ जाती है। इसके विपरीत दूसरी वस्तु की कीमत गिरने से पहली वस्तु की माँग गिर जाती है। स्थानापन्न अथवा प्रतियोगी वस्तुओं का उदाहरण जैसे दो विभिन्न कम्पनियों के फलों के रस के पैकेट, चाय एवं काफी इत्यादि हैं।

पूरक वस्तु- पूरक वस्तुएं वे वस्तुए होती हैं जिनकी कीमत एवं माँग में ऋणात्मक सम्बन्ध होता है।श् एक वस्तु की कीमत बढ़ने पर दूसरी वस्तु की माँग घट जाती है। जैसे स्कूटर, कार एवं पेट्रोल , पेन एवं स्याही। इस प्रकार पूरक वस्तुओं की माँग संयुक्त माँग होती है एवं केवलएक वस्तु खरीदने पर उसका उपभोग नहीं हो पाता है। यदि एक वस्तु के मूल्य में परिवर्तन का दूसरी वस्तु की माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है तो उन्हें ‘स्वतंत्र वस्तुएं’ कहा जाता है।

9.8 तटस्थता वक्र से माँग वक्र की व्युत्पत्ति

तटस्थता वक्र मानचित्र की सहायता से माँग वक्र ज्ञात किया जा सकता हैं। माँग वक्र कीमत एवं माँगी गई मात्रा को व्यक्त करता हैं। तटस्थता मानचित्र से माँग वक्र ज्ञात करने के लिए हम एक वस्तु X की कीमत में काल्पनिक परिवर्तन लाते है एवं अन्य वस्तुओं की कीमते यथावत् रहती हैं। X वस्तु की कीमत में परिवर्तन से उपभोक्ता का संतुलन स्तर बदलता रहता है। इन विभिन्न संतुलन बिन्दुओं को मिलाकर हम मूल्य उपभोग वक्र ज्ञात कर सकते है। PCC तथा माँग -वक्र दोनों ही माँग एवं कीमत के सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं। इस समानता के बावजूद माँग-वक्र एवं PCC में

अंतर है। PCC का निर्माण दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं X तथा Y के आधार पर होता है। जबकि माँग वक्र में केवल एक वस्तु होती है एवं दूसरे अक्ष पर कीमत को प्रदशित किया जाता है। PCC में वस्तु की कीमतों को सीधे प्रदर्शित नहीं किया जाता। परन्तु माँग वक्र में वस्तु की कीमत एव माँगी गई मात्रा को स्पष्ट रूप में दर्शाया जाता है। PCC के आधार पर कीमत परिवर्तन के आय एवं स्थानापन्न प्रभावों को अलग -अलग व्यक्त किया जा सकता है। जबकि माँग वक्र में उन्हें अलग प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। PCC उपभोक्ता की मौद्रिक आय की मात्रा को भी प्रदर्शित कर देता है। जबकि माँग वक्र से यह सूचना प्राप्त नहीं होती। तटस्थता मानचित्र, X तथा Y वस्तु की कीमतें एवं उपभोक्ता की मौद्रिक आय ज्ञात होने पर हम माँग वक्र ज्ञात कर सकते हैं। इसे चित्र 9.17 से प्रदर्शित किया गया है।

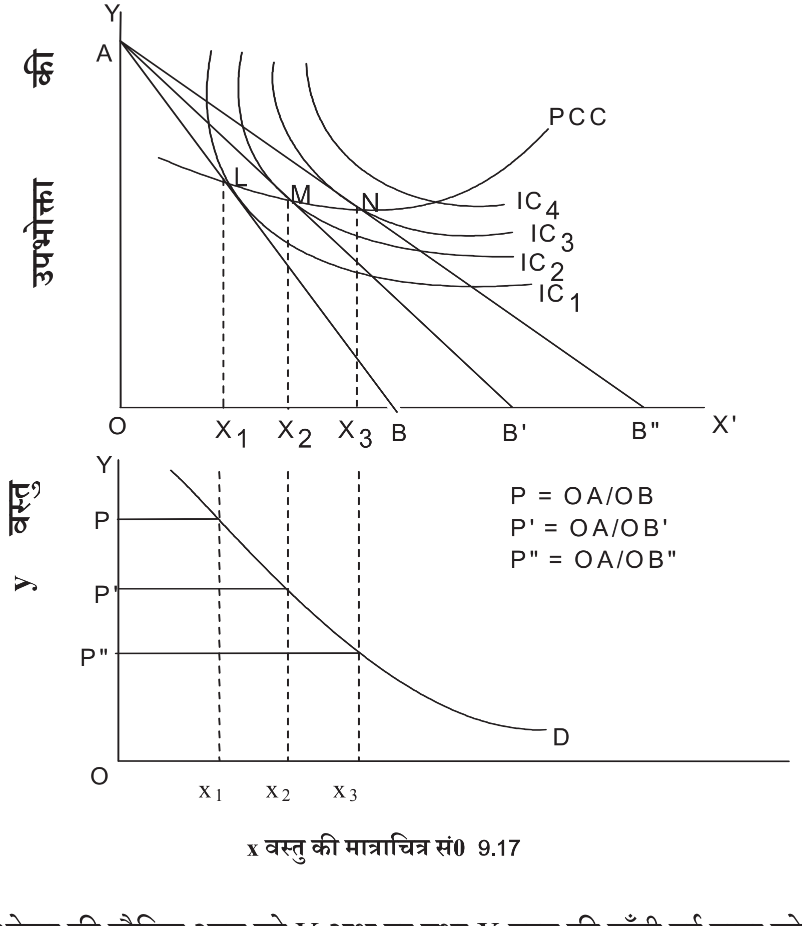

x वस्तु की मात्राचित्र सं0 9.17

उपभोक्ता की मौद्रिक आय को Y अक्ष पर तथा X वस्तु की माँगी गई मात्रा को X अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। AB प्रारम्भिक "बजट-रेखा'' है। Xवस्तु की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप बजट रेखा AB से आगे खिसddर AB" तथाAB" हो जाती है। उपभोक्ता के संतुलन बिन्दु क्रमशः L,M, एवं N है। जिन पर वह क्रमशः X_1, X_2 एवं X_3 मात्राएं खरीदता है। वस्तु की कीमत ज्ञात करने के

लिए उपभोक्ता की कुल मौद्रिक आय OA में कुल संभावित क्रय की मात्रा OB का भाग देना पड़ेगा। कीमत च्त्रव्ध्व्ठ होगी। इसी प्रकार विभिन्न संतुलन बिन्दुओं पर ग् वस्तु की कीमतों का अनुमान लगाया जा सकता है। जैसे OP´ = OA/OB´(OP"=OA/OB")इत्यादि। माँगी गई मात्रा एवं माँग के इन बिन्दुओ को नीचे चित्र के दूसरे भाग में प्रदर्शित करके परम्परागत माँग वक्र ज्ञात किया गया है। अनधिमान वक्र रेखाओं की सहायता से माँग वक्र ज्ञात करने की अन्य वैकल्पिक विधियॉ भी है। अनधिमान वक्र विधि की भी कुछ सीमाएं है। तटस्थता वक्र विधि की आलोचना करते हुये प्रो0 डी0एच0 राबर्टसन लिखते हैं यह विधि हमें मांग-सिद्धान्त के बारे में कोई नई जानकारी नहीं देती।

9.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई सं0 9 में उपभोक्ता सन्तुलन के परिर्वतनकारी तत्वों- यथा आय प्रभाव, कीमत प्रभाव एवं प्रतिस्थापन प्रभाव का अध्ययन किया गया है। उपभोक्ता की आय में परिवर्तन एवं बाजार में वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन होने से उपभोक्ता के व्यवहार में पड़ने वाले प्रभावों का सचित्र विश्लेषण कर अध्ययन किया गया है। यह परिवर्तन दोनों रूपों में देखा गया यथा आय में वृद्धि या आय में कमी एवं कीमत में वृद्धि या कीमत में कमी। आय में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता वस्तुओं का उपभोग की मात्रा में वृद्धि कर सकता है। उसका संतुलन बिन्दु इसलिए परिवर्तित हो जायेगा क्योंकि वह ऊँचे अनधिमान वक्र पर पहुंच जाता है। आय में कमी होने पर स्थिति इसके विपरीत होगी। आय में परिवर्तन होने पर उपभोग की मात्रा पर पड़ने वाला प्रभाव वस्तुओं के गुण स्वभाव-प्रकृति के कारण भी पड़ता है। इसीलिए आय उपभोग वक्र जिधर अनुराग होगा उसी वस्तु की ओर झुकेगा। वस्तु निकृष्ट है या सामान्य यह महत्वपूर्ण हो जाता है। कीमत प्रभावों के अध्ययन में एक वस्तु पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करते समय उपभोक्ता की आय, रूचियां एवं अन्य वस्तुओं की कीमतों को स्थिर मानकर अध्ययन करना पड़ता है। यदि वस्तु सस्ती होगी तो उपभोक्ता की क्रय शक्ति बढ़ेगी व उपभोग बढ़ेगा। फलतः कीमत उपभोग वक्र अनुराग के अनुसार झुकता जाएगा। अध्ययन में कीमतों में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता दूसरे वस्तु का कैसे प्रतिस्थापन कर उपभोग करता है यह भी सचित्र प्रदर्शित किया गया है।

प्रतिस्थापन प्रभाव के अध्ययन में हिक्स एवं स्लट्स्की के विचारों को भी सम्मिलित किया गया है। अध्ययन में कीमत प्रभाव, आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव का योग है अतः इसका वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। कीमत प्रभाव को विभाजित कर सचित्र व्याख्या अध्ययन में सम्मिलित है। जिसमें हिक्स की दोनों विधियों क्षतिपूरक परिवर्तन की विधि एवं आय में तुल्यमूल्य परिर्वतन की विधि के साथ-साथ स्लट्स्की की रीति से भी कीमत प्रभाव को विभाजित किया गया है। वस्तुओं के स्वभाव के अंतर्गत गिफेन पदार्थ का निकृष्ट वस्तुओं के साथ-साथ पूरक व स्थानापन्न वस्तुओं को भी अध्ययन में शामिल किया गया है। अंत में, अनधिमान वक्रों द्वारा माँग वक्रों की

व्युत्पत्ति के विचारों को साथ में प्रस्तुत किया गया है। जो मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण से अंततः अनधिमान वक्र विश्लेषण को श्रेष्ठ प्रतिपादित करता है।

9.10 शब्दावली

1. आय प्रभाव- वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहने पर उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तुओं की माँग में पड़ने वाले परिवर्तन को कहते है।

2. आय उपभोग वक्र- यह उपभोक्ता के संतुलन बिन्दुओं का रास्ता ;स्वबनेद्ध है। यह वस्तुओं की उपभोग की मात्राओं पर आय प्रभाव को रेखा (ICC) के रूप में व्यक्त करती है।

3. कीमत प्रभाव - कीमत प्रभाव उपभोक्ता की किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उस समस्त प्रभाव को मापता है जोकि उस वस्तु की क्रय मात्रा पर पड़ता है।

4. कीमत उपभोग वक्र - कीमत उपभोग रेखा कीमत प्रभाव के रास्ते ;स्वबनेद्ध को बताती है। यह वस्तुओं की उपभोग की मात्राओं पर कीमत प्रभाव के PCC रेखा के रूप में व्यक्त करती है।

5. प्रतिस्थापन प्रभाव - प्रतिस्थापन प्रभाव वस्तुओं की केवल सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तु की माँग अथवा उपभोग मात्रा पर प्रभाव को प्रकट करता है जबकि उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर रहे।

6. आय में क्षतिपूरक परिवर्तन - आय में आवश्यक परिवर्तन जिससे वस्तु की कीमत में कमी के कारण उसकी संतुष्टि अथवा कल्याण में वृद्धि नष्ट हो जाए को आय में क्षति पूरक परिवर्तन कहते है।

7. आय में तुल्यमूल्य परिवर्तन - उपभोक्ता की आय में वह वृद्धि जिससे वह उस उच्च स्तर के अनधिमान वक्र पर पहुंच सके जिस पर वह वस्तु की कीमत मे कमी हो जाने से पहुँचा था को आय में तुल्यमूल्य परिवर्तन कहा जाता है।

8. गिफेन पदार्थ - ऐसी निकृष्ट वस्तुएं जिनकी दशा में उपभोक्ता उनकी कीमत गिरने पर उनके उपभोग को घटा देता है और उनकी कीमतें बढ़ने पर उपभोग को बढ़ा देता है।

9.11 अभ्यास प्रश्न

लघु प्रश्न

1. आय प्रभाव से क्या आशय है ?
2. आय उपभोग वक्र क्या एक सीधी रेखा के रूप में ही रहेगा ?
3. कीमत प्रभाव से आपका क्या आशय है ?

4. गिफेन पदार्थों का विचार किसने प्रतिपादित किया ?
5. गिफेन पैराडाक्स क्या है?
6. स्थानापन्न एवं पूरक वस्तुओं का उदाहरण दे।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1 आय में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता के सन्तुलन पर पड़ने वाले प्रभाव को कहते हैं-.

क. आय प्रभाव ख. कीमत प्रभाव

ग. प्रतिस्थापन प्रभाव घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं

2 आय में क्षतिपूरक परिवर्तन प्रविधि सम्बन्धित है -

क. मार्शल ख. हिक्स

ग. ख एवं घ दोनों से घ. स्लटस्की

3 आय उपभोग वक्र पीछे Y अक्ष की ओर मुड़ने का अर्थ है-

क. Y वस्तु निकृष्ट है ख. Y वस्तु उत्कृष्ट है

ग. X वस्तु निकृष्ट है घ. ख और ग दोनों सही हैं

उत्तर 1. क 2. ख 3. ख

9.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- Demiel R. Fusfeld - Economics : Principles of Political Economy 3rd Ed. - 1998.
- C.E. Ferguson and Gould - Micro Economic theory 5th Ed. 1988 Ruffin Roy and Gregory.
- Koutsoyinuis. A. (1979) Modern Microeconomics, Macmillian Press, London.
- Colander, D.C (2008) Economics, McGraw Hill Publication.
- Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-economics Theory, Himalaya Publishing House.
- एम0एल0 सेठ अर्थशास्त्र के सिद्धान्त -, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
- एच0एल0 आहूजा उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त -, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- एस0पी0 दुबे, वी0सी0 सिन्हा अर्थशास्त्र के सिद्धान्त -, 1988 नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

9.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- झिंगन, उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त।
- जे0पी0 मिश्र, व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण, मिश्रा टेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी।
- एस0एन0 लाल , व्यष्टि अर्थशास्त्र शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- डॉ0 बद्री विशाल त्रिपाठी - डॉ0 अमिताभ तिवारी - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, किताब महल्, इलाहाबाद।

9.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्र01 कीमत प्रभाव, आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव का योग होता है, व्याख्या करें।

प्र02 कीमत प्रभावों को विभाजित करने के लिए कौन-कौन सी प्रविधियां हैं- व्याख्या करें।

प्र03 हिक्स एवं स्लटूस्की के प्रतिस्थापन प्रभावों का वर्णन करें।

प्र04 कीमत उपभोग वक्र क्या होता है? क्या इसके द्वारा माँग वक्र का व्युत्पादन किया जा सकता है?

इकाई 10: अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग
10.3.1 उपभोक्ता का संतुलन एवं अनधिमान वक्र
10.3.2 आय प्र्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव एवं कीमत प्रभाव का अध्ययन
10.3.3 उपभोक्ता की बचत का मापन
10.3.4 उत्पादक का सन्तुलन
10.3.5 दो व्यक्तियों में विनिमय
10.3.6 राशनिंग में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग
10.3.7 कराधान सिद्धान्त में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग
10.3.8 उपभोक्ता उपादानों में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग
10.3.9 श्रम-पूर्ति एवं अनधिमान वक्र
10.3.10 सूचकांकों में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग
10.4 सारांश
10.5 शब्दावली
10.6 अभ्यास प्रश्न
10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.8 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

अनधिमान वक्र विश्लेषण वर्तमान समय में अर्थशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है। उपभोक्ता अपने व्यवहार के द्वारा आर्थिक जगत् का अत्यधिक प्रमाणित करता है। ऐसे विषय पर अनधिमान वक्र विश्लेषण की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। विभिन्न क्षेत्रों में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग तेजी से बढ़ा है। प्रस्तुत इकाई सं0 10 में विभिन्न क्षेत्रों में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग तेजी से बढ़ा है। प्रस्तुत इकाई सं0 10 में विभिन्न क्षेत्रों में अनधिमान वक्रों के अनुप्रयोग का अध्ययन आप करेंगे। उपभोक्ता का सन्तुलन ज्ञात करने क साथ-साथ मांग को प्रभावित करने वाले तत्वों आय प्रभाव, कीमत प्रभाव एवं प्रतिस्थापन प्रभाव के अध्ययन में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग का अध्ययन उल्लेखनीय होगा। उपभोक्ता की बचत में भी इसका प्रयोग प्रांसगिक हो गया है। हम किसी वस्तु के उपयोग से वंचित नहीं रहना चाहते हैं। फलः उस वस्तु के लिए जितना देने को तैयार है और जो वास्तव में देते हैं दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत है जिसे अनधिमान वक्रों की सहायता से अच्छे ढंग से समझा जा सकता है। उत्पादन में भी इसका अनुप्रयोग है। उत्पादन फलन के सन्दर्भ में अनधिमान वक्र का अनुप्रयोग करने पर वक्र उत्पादन वक्र कहलाता है। दो व्यक्तियों के मध्य विनिमय करने में भी अनधिमान वक्र का प्रयोग लाभकारी होगा यह भी अध्ययन आप करेगें। राशनिंग व्यवस्था में भी अनधिमान वक्र का अनुप्रयोग करने से उच्च सन्तुष्टि स्तर की प्राप्ति होती है, आप जानेंगे। प्रत्यक्ष कर प्रणाली या अप्रत्यक्ष कर प्रणाली में कौन सी व्यक्ति के लिए श्रेयष्कर है यह इस इकाई में देखेंगे। श्रम की मूर्ति, सब्सिडी एवं सूचनकांकों में भी इसका अनुप्रयोग बढ़ा है जो समाज के लिए कल्याणकारी हुआ है प्रस्तुत इकाई में आप अध्ययन करेंगें।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद:

- अनधिमान वक्र का अनुप्रयोग कर उपभोक्ता का सन्तुलन बिन्दु ज्ञात कर सकेंगें।
- आय प्रभाव, कीमत प्रभाव एवं प्रतिस्थापन प्रभाव में अनधिमान वक्र का अनुप्रयोग किस तरह होता है जान सकेंगे।
- अनधिमान वक्र के अनुप्रयोग से उपभोक्ता की बचत की मात्रा जानने में सक्षम हो जायेंगे।
- अनधिमान वक्र के अनुप्रयोग से उत्पादक की सन्तुलन स्थिति देखने में सक्षम हो जायेंगे।
- राशनिंग व्यवस्था एवं विनिमय प्रणाली में अनधिमान वक्र का अनुप्रयोग कैसे लाभकारी होता है बता सकेंगे।
- सरकार के द्वारा व्यक्ति पर लगाया गया कर श्रेयष्कर है अथवा नहीं बता सकेंगे।

- उपभोक्ता उपादानों में अनधिमान वक्र का अनुप्रयोग से जनहित की स्थिति समझाने में सफल हो सकेंगे।
- श्रम की पूर्ति एवं सूचकांकों में अनधिमान वक्र का अनुप्रयोग कितना सार्थक है समझा सकेंगे।

10.3 अनधिमान वक्रों के अनुप्रयोग

हमनें मांग के अनधिमान वक्र विश्लेषण का अध्ययन किया है, परन्तु अनधिमान वक्रों की तकनीक का प्रयोग केवल उपभोक्ता के व्यवहार एवं मांग विश्लेषण तक ही सीमित न रहकर अन्य अनेक आर्थिक विषयों की व्याख्या के लिए भी किया गया है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता की मांग के विश्लेषण के अतिरिक्त अनधिमान वक्र के अनेक प्रयोग हैं। अनधिमान वक्रों का प्रयोग उपभोक्ता की बचत की धारणा, 'प्रतिस्थापन' एवं 'पूरकता' की अवधारणाएं, एक व्यक्ति श्रम का पूर्ति वक्र, कल्याणवादी अर्थशास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों, विविध प्रकार के करों के भार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ, सरकार द्वारा प्रदत्त उपदान का कल्याण पर प्रभाव, सूचकांक की समस्या, दो व्यक्तियों के बीच वस्तुओं के विनिमय का परस्पर लाभ और इसी प्रकार की अनेक विषयों की व्याख्या के लिए किया गया है। यहाँ उनके कुछ अनुप्रयोगों की व्याख्या प्रस्तुत है जिसे आप समझ पायेंगे।

10.3.1 उपभोक्ता का सन्तुलन एवं अनधिमान वक्र

अनधिमान वक्रों की सहायता से उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन में उपभोक्ता के संतुलन बिन्दु को ज्ञात किया जा सकता है। उपभोक्ता के अनधिमान मानचित्र और कीमत रेखा की सहायता से उपभोक्ता का बिन्दु ज्ञात किया जा सकता है। उपभोक्ता अपनी दी हुई आय का व्यय करके उस बिन्दु पर संतुलन में होगा जिस बिन्दु पर उसे अधिकतम सन्तुष्टि मिलेगी। सन्तुष्टि वहां अधिकतम होगी जहाँ कीमत रेखा उसके अनधिमान मानचित्र में सर्वोच्च संभव अनधिमान वक्र पर स्पर्श करेगी। यह स्पर्श बिन्दु ही उपभोक्ता के सन्तुलन का बिन्दु होगा।

उपभोक्ता सन्तुलन को इकाई 8: अनधिमान वक्र विश्लेषण में विस्तृत रूप से बताया गया है जिसे आप समझ गये होंगे। अनधिमान वक्र विश्लेषण का सबसे महत्वपूर्ण भाग उपभोक्ता का सन्तुलन माना जाता है जिसके अध्ययन में अनधिमान वक्रों का प्रयोग होता है। इस प्रकार से आप समझ गये होंगे कि उपभोक्ता के संतुलन अध्ययन में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग महत्वपूर्ण है।

10.3.2 आय प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव एवं कीमत प्रभाव का अध्ययन

अनधिमान वक्रों का महत्वपूर्ण अनुप्रयोग मांग में परिवर्तन करने वाले कारकों के अध्ययन में देखा जाता है। मार्शल की मांग की उपयोगिता विश्लेषण की तुलना में अनधिमान वक्रों की तुलनात्मक

श्रेष्ठता इस रूप में देखी गयी है कि अनधिमान वक्र विश्लेषण में ही मांग में परिवर्तन करने वाले तत्त्वों यथा आय प्रभाव कीमत प्रभाव एवं प्रति स्थापन प्रभाव का अध्ययन करता है। आय में परिवर्तन होने से उपभोक्ता के उपभोग की मात्रा में परिवर्तन हो जाता है। यह परिवर्तन दोनों रूपों में हो सकता है। आय में वृद्धि भी हो सकती है तो आय में कमी भी हो सकती है। आय में परिवर्तन अगर आय में वृद्धि के रूप में होता है तो उपभोग की मात्रा में वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता ऊंचे अनधिमान वक्र पर जाने से ऊंचे सन्तुष्टि के स्तर पर पहुंच कर सन्तुलन को प्राप्त करता है। ऐसे कई सन्तुलन बिन्दुओं का स्वबने आय उपभोग वक्र (ICC) कहलाता है। आय में वृद्धि का प्रभाव कुछ वस्तुओं के मामले में अपवाद भी होता है जिसे Giffen-Paradox कहा जाता है। निकृष्ट वस्तुओं का मूल्य गिरने पर उपभोग नहीं बढ़ता है। उपभोक्ता की जो वस्तु उत्कृष्ट लगती है उसी की ओर ICC का झुकाव होता जाता है। आय में कमी होने पर ठीक विपरीत स्थिति होती है।

कीमत प्रभाव के सन्दर्भ में भी अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग महत्वपूर्ण है। उपभोक्ता के रूचियों, आदत एवं आय वस्तुओं की कीमतों में स्थिर मानते हुए यदि एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है तो उपभोग की मात्रा में परिवर्तन होता है। यहां भी कीमत में वृद्धि एवं कीमत में कमी दोनों रूपों में कीमत प्रभाव का अध्ययन होता है। इसमें भी उपभोक्ता के सन्तुलन का रास्ता होता है जिसे कीमत उपयोग वक्र (PCC) कहते हैं। किसी एक वस्तु के कीमत में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता उस वस्तु के स्थान पर दूसरे वस्तु को प्रतिस्थापित करने लगता है जिसे हम प्रतिस्थापन प्रभाव के रूप में अनधिमान वक्रों के अनुप्रयोग से अध्ययन करते हैं। प्रतिस्थापन प्रभावों के अध्ययन में हिक्स एवं स्लटृस्की दोनों अर्थशास्त्रियों के प्रविधियों का प्रयोग करते हैं। वास्तव में कीमत प्रभाव, आय प्रभाव एवं प्रतिस्थापन प्रभाव का योग होता है जिसको अनधिमान वक्रों की सहायता से विस्तृत व्याख्या को इकाई 09 में आप विधिवत समझ गये होंगे। कीमत रेखा के विभाजन में हिक्स की आय की क्षतिपूरक प्रविधि एवं आय की तुल्यमूल्य प्रविधि के साथ स्लटृस्की की रीति का भी अनुप्रयोग कर सकते हैं।

10.3.3 उपभोक्ता की बचत का मापन

उपभोक्ता की बचत की अवधारणा वास्तव में डा0 मार्शल की देन है। मार्शल के अनुसार, किसी वस्तु से वंचित रहने की अपेक्षा उपभोक्ता उस वस्तु के लिए जो कुछ कीमत देने को तैयार है और जो वास्तव में कीमत देता है इन दोनों राशियों के अन्तर को उपभोक्ता की बचत कहते हैं।

डॉ0 मार्शल के आलोचकों को कथन है कि उपभोक्ता-बचत की धारणा विशुद्धतः आत्मनिष्ठ अथवा विषयगत है। उपभोक्ता की बचत का व्यक्ति द्वारा अनुभव तो किया जा सकता है लेकिन इसे मापा नहीं जा सकता। मापनीयता का अभाव, वास्तव में, इस धारणा की गम्भीर त्रुटि है।

प्रो0 हिक्स ने तटस्थता-वक्र-प्रविधि से उपभोक्ता की बचत मापने का प्रयास किया है। रेखाकृति की सहायता से इसकी व्याख्या की जा सकती है।

रेखाचित्र 10.1 में OX के सहारे X वस्तु की मात्रा और OY के सहारे उपभोक्ता की मौद्रिक आय को मापा गया है।

अब मान लीजिए कि उपर्युक्त उपभोक्ता X वस्तु की कीमत से परिचित है। परिणामतः अब उसकी कीमत-रेखा भी होगी। इस कीमत-रेखा को रेखाचित्र 10.1 में AB द्वारा व्यक्त किया गया है। AB रेखा तटस्थता-वक्र IC_2 को Q' बिन्दु पर स्पर्श करती है। दूसरे शब्दों में, Q' बिन्दु पर उपभोक्ता सन्तुलनावस्था में है और उसके पास X वस्तु की तथा मुद्रा की *ON′* मात्राएँ होती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि X वस्तु की OM मात्रा खरीदने पर वह *AN′* मुद्रा व्यय कर देता है। X वस्तु की OM और मुद्रा की *ON′* मात्राओं वाला दूसरा संयोग X वस्तु की OM और मुद्रा की *ON* मात्राओं वाले पहले संयोग से अधिक श्रेष्ठ है। इसका कारण यह है कि X वस्तु की OM और मुद्रा की *ON′* मात्राओं वाला संयोग उभोक्ता को उच्चतर IC_2 वक्र पर ले जाता है। लेकिन वस्तु की मात्रा दोनों संयोगों में यथास्थिर अर्थात् OM ही रहती है। पहले X वस्तु की OM मात्रा खरीदने के लिए उपभोक्ता AN मुद्रा चुकाने को तैयार था। अब X वस्तु की उसी मात्रा के लिए वह AN′ मुद्रा चुकाता है। दोनों मुद्रा-राशियों का अन्तर (अर्थात् *AN-AN′ = N′ N*) इस रेखाकृति में उपभोक्ता की बचत को निरूपित करता है। इस प्रकार उदासीनता-वक्र की सहायता से उपभोक्ता की बचत को मापना सम्भव हो जाता है।

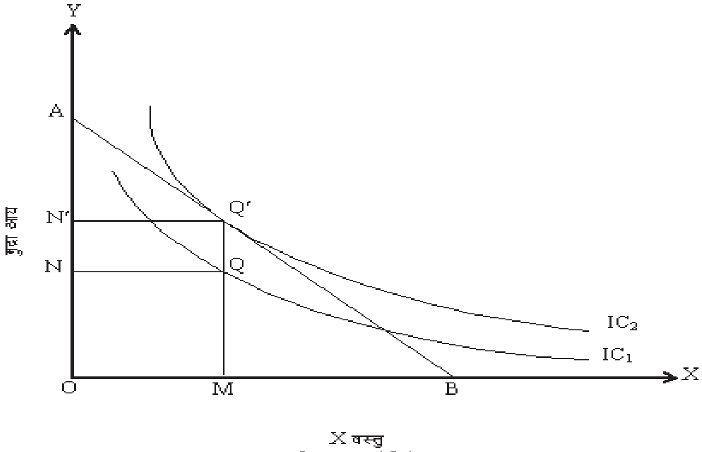

चित्र सं0 10.1

वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तनों अथवा उपभोक्ता की मौद्रिक आय में होने वाले परिवर्तनों का ‘उपभोक्ता की बचत’ की मात्रा पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे भी तटस्थता वक्र-विश्लेषण की सहायता से व्यक्त करना सम्भव हो गया है।

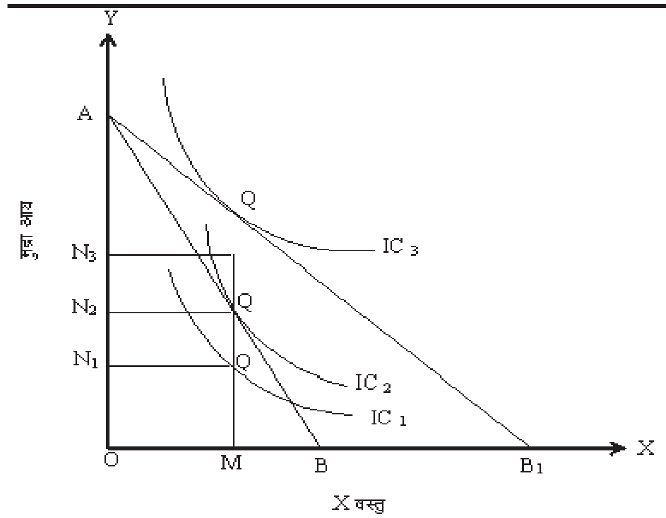

चित्र सं० 10.2

आइए, पहले हम वस्तु के कीमत-परिवर्तन (अर्थात् कीमत-गिरावट) के 'उपभोक्ता की बचत' पर पड़ने वाले प्रभाव का परीक्षण करें। इसकी रेखाचित्र 10.2 में प्रदर्शित किया गया है। इस रेखाचित्र में, प्रारम्भ में, उपभोक्ता Q_2 बिन्दु पर सन्तुलनावस्था में होता है। इस बिन्दु पर उसके पास X की OM और मुद्रा की ON_2 मात्राएँ होती हैं। वह AN_2 मुद्रा से X वस्तु की OM मात्रा खरीदता है और इस प्रकार N_2N_1 'उपभोक्ता की बचत' का आनन्द लेता है। तब X वस्तु की कीमत गिर जाती है। परिणामतः कीमत-रेखा AB से AB_1 को विवर्तित हो जाती है। नयी कीमत-रेखा AB_1, IC_3 उदासीनता-वक्र को Q_3 बिन्दु पर स्पर्श करती है। इस बिन्दु पर उपभोक्ता AN_3मुद्रा से X वस्तु की OM मात्रा खरीदता है। पहले उपभोक्ता AN_2 मुद्रा से X वस्तु की OM मात्रा खरीद रहा था। लेकिन X की कीमत में गिरावट के परिणामस्वरूप वह अब इस पर केवल AN_3 मुद्रा ही व्यय करता है। अतः उसकी 'उभोक्ता की बचत' में N_3N_2 की वृद्धि हुई है। इस प्रकार X वस्तु की कीमत में गिरावट परिणामस्वरूप उसकी उपभोक्ता की बचत बढ़ जाती है।

X वस्तु की कीमत में होने वाली वृद्धि का उपभोक्ता की बचत पर विपरीत प्रभाव पड़ता है अर्थात् उपभोक्ता की बचत घट जाती है। इसे रेखाकृति की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है। आइए, अब हम यह मान लें कि AB_1मूल कीमत-रेखा है और Q_3 बिन्दु पर उपभोक्ता सन्तुलनावस्था में है। तब X की कीमत बढ़ जाती है। परिणामतः नयी कीमत-रेखा बायीं ओर विवर्तित हो जाती है और AB रेखा का रूप धारण कर लेती है। अब IC_2 वक्र के Q_2 बिन्दु पर उपभोक्ता सन्तुलनावस्था को प्राप्त होता है कि और उसकी उपभोक्ता की बचत में N_3N_2 की कमी हो जाती है। पहले उपभोक्ता बचत N_3N_2 थी, लेकिन X की कीमत में वृद्धि के परिणामस्वरूप अब यह N_2N_1 हो गयी है। उपभोक्ता की बचत में होने वाली विशुद्ध क्षति N_3N_2 है।

आइए, अब X वस्तु की कीमत को यथास्थिर मानते हुए हम यह देखें कि उपभोक्ता की मौद्रिक आय में हुए परिवर्तन (अर्थात् वृद्धि) का ‘उपभोक्ता की बचत’ पर क्या प्रभाव पड़ता है ? इसे चित्र की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है।

रेखाचित्र 10.3 में AB मूल कीमत-रेखा है। यह उदासीनता-वक्र IC_2 को Q_1 बिन्दु पर स्पर्श करती है। अतः Q_1 बिन्दु ही उपभोक्ता के मूल सन्तुलन को व्यक्त करता है। इस बिन्दु पर N_1 N उपभोक्ता की बचत को व्यक्त करता है। इसका कारण यह है कि X वस्तु की OM मात्रा खरीदने के लिए उपभोक्ता AN मुद्रा चुकाने को तैयार था लेकिन, वास्तव में, वह इसके लिए केवल AN_1 मुद्रा ही चुकाता है। आइए, अब हम मान लें कि उपभोक्ता की मौद्रिक आय OA से बढ़कर OA′ हो जाती है (अर्थात् मौद्रिक आय में AA′ की वृद्धि होती है। इसके कारण एक नयी कीमत-रेखा A′B′ खींचनी पड़ेगी। यह रेखा मूल कीमत-रेखा AB के सामानान्तर होगी क्योंकि X वस्तु की कीमत में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। Q_1 बिन्दु वाला पुराना सन्तुलन अब विस्थापित हो जाता है और नया सन्तुलन Q_3 बिन्दु पर स्थापित हो जाता है। स्मरण रहे कि उपभोक्ता की मौद्रिक आय में हुई वृद्धि के परिणामस्वरूप विश्लेषण की दृष्टि से IC_1 तथा IC_2 उदासीनता-वक्र हमारे लिए असंगत हो जाते हैं। उदासीनता-वक्र IC इस मान्यता पर आधारित था कि उपभोक्ता की मौद्रिक आय व्। थी। चूँकि उपभोक्ता की मौद्रिक आय *OA* से बढ़कर *OA′* हो गयी है, अतः IC_1 उदासीनता-वक्र हमारे लिए अनावश्यक बन जाता है। IC_3 एक नया उदासीनता-वक्र खींचना पड़ेगा। अपनी बढ़ी हुई *OA′* मौद्रिक आय के कारण X वस्तु की OM मात्रा खरीदने हेतु उपभोक्ता अब $A'N_2$ मुद्रा चुकाने के लिए तैयार है लेकिन, वास्तव में, X वस्तु की OM मात्रा को खरीदने के लिएउपभोक्ता केवल $A'N_3$ मुद्रा

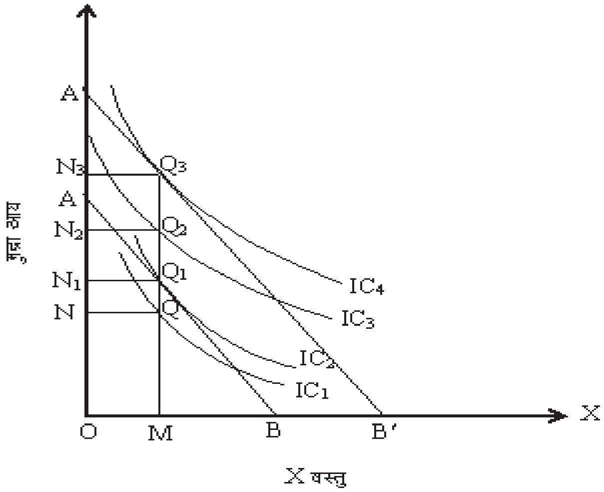

चित्र सं0 10.3

ही व्यय करता है। अतः उसकी ‘उपभोक्ता की बचत’ N_3N_2 के बराबर होती है (अर्थात् $A'N_2 - A'N_3 = N_3N_2$) नयी उपभोक्ता की बचत मूल उपभोक्ता की बचत मूल उपभोक्ता की बचत के बराबर

भी हो सकती है, उससे अधिक भी हो सकती है और उससे कम भी हो सकती है। वास्तव में, यह IC_1 तथा IC_3 वक्रों की ढालों पर निर्भर करता है। यदि IC_1 तथा IC_3 वक्रों की ढाल समान होती है तो नयी उपभोक्ता की बचत पुरानी उपभोक्ता की बचत के बराबर होगी।

अब तक हमने उपभोक्ता की बचत को उस सामान्य परम्परा के अनुसार व्यक्त किया है जिसकी स्थापना डॉ0 मार्शल ने की थी। दूसरे शब्दों मे, किसी वस्तु से वंचित रहने की अपेक्षा उपभोक्ता जो मुद्रा-राशि उस वस्तु के लिए देने को तैयार रहता है ओर जो मुद्रा-राशि, वास्तव में, उसके लिए चुकाता है, इन दोनों के अन्तर को ही उपभोक्ता की बचत कहा गया था।

हाल ही के कुछ वर्षो में प्रो0 हिक्स ने उपभोक्ता की बचत की एक नवीन व्याख्या की है। उनके अनुसार, उपभोक्ता की बचत वह मुद्रा-राशि है जो उपभोक्ता के आर्थिक स्तर में हुए किसी परिवर्तन के परिणामस्वरूप उसे उसको इस ढंग से चुका दी जानी चाहिए अथवा उससे इस ढंग से वापस ले ली जानी चाहिए कि वह अपने पहले वाले उदासीनता-वक्र पर ही बना रहे। उपभोक्ता के आर्थिक स्तर में दो प्रकार से परिवर्तन हो सकता है- (1) वस्तु की मात्रा में परिवर्तन होता है, (2) वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है।

वस्तु की मात्रा में परिवर्तन दो रूपों में हो सकता है- बाजार से × वस्तु अदृश्य हो जाना या उपलब्ध हो जाना। बाजार से × वस्तु के अदृश्य हो जाने से उसकी कुल सन्तुष्टि पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि उपभोक्ता अपनी पूर्ववत् सन्तुलन बिन्दु पर बना रहे इसके लिए क्षति पूर्ति हेतु मुद्राराशि दे दी जाती है। प्रो0 हिक्स ने इसे आय में हुआ मात्रा तुल्य परिवर्तन (Quantity compensating Variation in income) कहा है। बाजार में वस्तुएं अकस्मात् उपलब्ध होने लगती तो भी कुल सन्तुष्टि पर प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि यहां बढ़ी मुद्रा राशि वापस ले ली जाती है। प्रो0 हिक्स ने इसे आय में हुआ मात्रा समकारी परिवर्तन (Quantity compensating Variation in income) कहकर सम्बोधित किया है।

दूसरा इसका परिवर्तन कीमत में हुए परिवर्तन, कीमत में वृद्धि एवं कीमत में कमी से सम्बन्धित है। कीमत में वृद्धि के परिणमस्वरूप उपभोक्ता की बचत की क्षति की पूर्ति कर दी जाती है फलतः उपभोक्ता अपनी सन्तुष्टि के उसी स्तर पर बना रहता है।

हिक्स ने इसे आय में हुआ कीमत तुल्य परिवर्तन, (Price - equivalent income variation) कहा । विपरीत परिस्थितियों अर्थात् वस्तु की कीमत में कमी होने पर मौद्रिक आय वापस ले ली जाती है। फलतः उपभोक्ता की स्थिति में न तो सुधार होगा और न ही गिरावट। यथास्थिर स्थिति बनी रहेगी। हिक्स ने इसे ''आय में हुआ कीमत समकारी परिवर्तन'' (Price - equivalent income variation) कहा।

10.3.4 उत्पादक का संतुलन

आधुनिक अर्थशास्त्री उदासीनता-वक्र-प्रविधि से 'उत्पादक सन्तुलन ' का भी अध्ययन करते हैं। 'उत्पादक सन्तुलन ' से अभिप्राय उत्पादक की उस परिस्थिति से है जिसमें वह अधिकतम उत्पादन करता है अथवा अधिकतम लाभ कमाता है। बिलकुल वैसे ही जैसे 'उपभोक्ता सन्तुलन ' से अभिप्राय उपभोक्ता की उस स्थिति से होता है जिसमें अपने व्यय में से वह अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करता है। उदासीनता-वक्रों का प्रयोग उस बिन्दु को व्यक्त करने के लिए किया जा सकता है जिस पर उत्पादक सन्तुलनावस्था को प्राप्त होता है।

उत्पादक सन्तुलनावस्था को कैसे प्राप्त होता है ? - इसकी व्याख्या करने हेतु पहले हम उत्पादन-फलन की विवेचना करेंगे। उत्पादन-फलन , वास्तव में आदा एवं प्रदा के परस्पर सम्बन्ध को व्यक्त करता है। (The term 'production function' refers to the relationship between input and output) आदा के बिना प्रदा अथवा उत्पाद सम्भव नहीं होता है। प्रदा से अभिप्राय अन्तिम उत्पादन (पिदंस चतवकनबजपवद) से है। आदा से अभिप्राय कच्चे माल, श्रम, पूँजी इत्यादि उन विभिन्न साधनों से है जिनका प्रयोग उत्पादन में किया जाता है। आदा एवं प्रदा के पारस्परिक सम्बन्ध को निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है:

$$P = f\,(a, b, c, d, etc.)$$

यहाँ पर P से अभिप्राय वस्तु के उस अन्तिम उत्पादन से है जो एक निश्चित अवधि में किया जाता है। a, b, c, d इत्यादि चिन्ह उत्पादन-साधनों की उन विभिन्न मात्राओं को व्यक्त करते हैं जिनका वस्तु के उत्पादन में प्रयोग किया जाता है। उत्पादन-फलन हमें यह बताता है कि एक निश्चित आदा से कितनी प्रदा होती है। उदासीनता वक्रों की सहायता से हम उत्पादन फलन का निदर्शन कर सकते हैं। स्मरण रहें, उत्पादन-फलन के सन्दर्भ में जब हम उदासीनता-वक्रों का प्रयोग करते हैं, तब उन्हें उत्पादकता-वक्र कहा जाता है। आइए, अब हम एक ऐसे उत्पादक का उदाहरण लें जो श्रम एवं पूँजी के विभिन्न वैकल्पिक संयोगों से किसी वस्तु की एक निश्चित प्रदा प्राप्त करता है (मान लीजिए कि प्रदा अथवा उत्पादन की मात्रा 100 इकाइयाँ है)।

उत्पादक श्रम एवं पूंजी कुछ इकाइयां लगाकर 100 इकाई का उत्पादन कर रहा है। जब वह श्रम की इकाइयों में वृद्धि करता है तो अनिवार्य रूप से पूंजी की इकाइयों में कटौती करनी पड़ती है अन्यथा अपने कुल उत्पादन को यथास्थिर बनाये नहीं रख सकता। श्रम एवं पूंजी के विभिन्न संयोग उत्पादक को समान प्रदा अथवा उत्पादन प्रदान करते हैं, अतः वे एक ही उदासीनता-वक्र अथवा उत्पादकता-वक्र पर रेखांकित होंगे। चित्र 10.4 में खींचा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर रेखा या IC वक्र उत्पादकता-वक्र (productivity-curve) अथवा सम-उत्पाद वक्र (iso-product curve) कहते हैं। यह वक्र विचाराधीन वस्तु की 100 इकाइयों से सम्बन्धित हैं। इस वक्र पर स्थित श्रम एवं पूँजी का

कोई भी संयोग उत्पादकको 100 इकाइयों का उत्पादन प्रदान करता हैं यही कारण है कि श्रम एवं पूँजी का कोई भी संयोग उत्पादक को 100 इकाइयों का उत्पादन प्रदान करता है। यही कारण है कि श्रम एवं पूँजी के विभिन्न संयोगों के प्रति उत्पादक उदासीन बना हुआ है।

जिस प्रकार प्रत्येक उपभोक्ता की तटस्थता वक्र माला (a series of indifference curves) होती है (जिसे तटस्थता मानचित्र कहा जाता है), उसी प्रकार प्रत्येक उत्पादक की समोत्पाद-वक्र माला

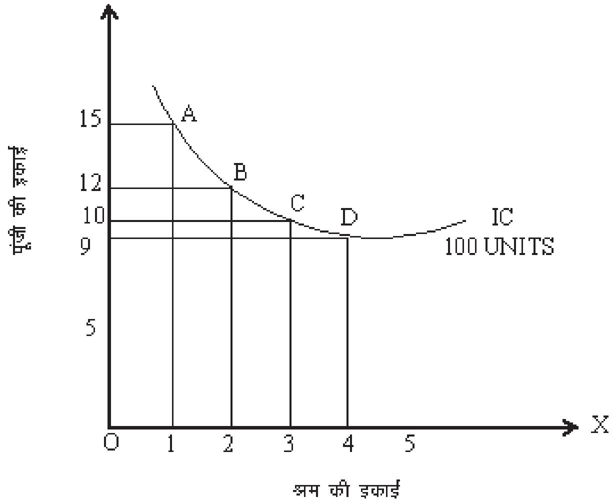

चित्र सं0 10.4

(a Series of iso- product Curves) होती है। इस माला के विभिन्न सम-उत्पाद-वक्र उत्पादन के विभिन्न स्तरों को व्यक्त करते हैं। प्रत्येक दायीं ओर स्थित सम-उत्पाद-वक्र, प्रत्येक बायीं ओर स्थित सम-उत्पाद-वक्र की तुलना में उत्पादक को अधिक उत्पादन प्रदान करता है। इसे चित्र 10.5 में प्रदर्शित किया गया है। इस रेखाकृति में सम-उत्पाद वक्र IC_4 उच्चतम वक्र है। यह वक्र उत्पादक को

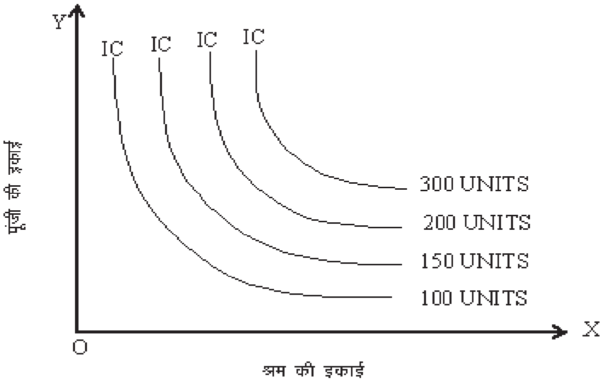

चित्र सं0 10.5

अधिकतम उत्पादन प्रदान करता है। यह स्वाभाविक ही है कि उत्पादक इस वक्र पर पहुँचने का प्रयास करेगा। लेकिन क्या वह इस वक्र पर पहुँच सकता है? यह उत्पादक के मौद्रिक साधनों एवं विभिन्न उत्पादन-साधनों को दी जाने वाली पारिश्रमिक दरों पर निर्भर करता है। सम-उत्पाद-वक्रों एवं साधन कीमत-रेखा की सहायता से हमारे लिए उस बिन्दु का स्थिति-निश्चयन करना सम्भव हो जाता है जिस पर उत्पादक सन्तुलनावस्था में होता है। इसे चित्र 10.6 में प्रदर्शित किया गया है। इस में IC_1, IC_2, IC_3, IC_4, IC_5 विभिन्न सम-उत्पाद-वक्र हैं।

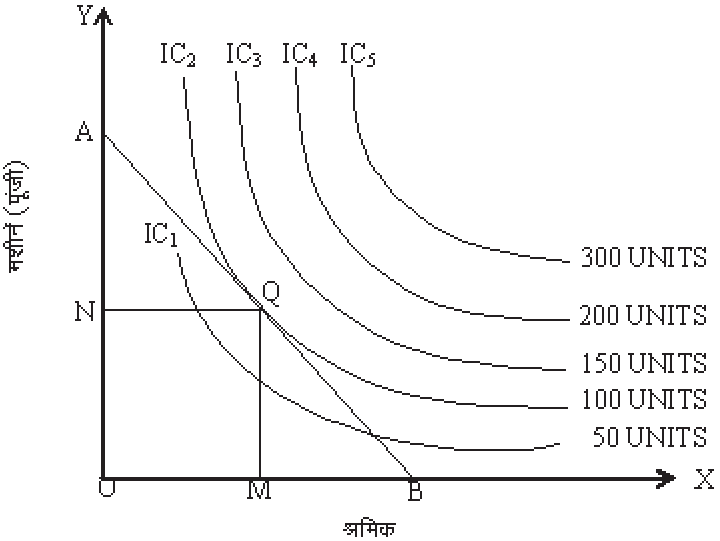

चित्र सं0 10.6

ये वक्र उत्पादन की क्रमशः 50, 100, 150, 200 तथा 300 इकाइयों को व्यक्त करते हैं। सम-उत्पाद-वक्र IC_2 साधन कीमत-रेखा को फ बिन्दु पर स्पर्श करता है। अतः उत्पादक इसी बिन्दु पर सन्तुलनावस्था को प्राप्त होता है। इस बिन्दु पर OM श्रमिकों एवं ON मशीनों की सहायता से उत्पादक 100 इकाइयों का उत्पादन करता है। जब *AB* उत्पादक की साधन कीमत-रेखा होती है तो वह IC_2 वक्र को छोड़कर अन्य किसी वक्र पर सन्तुलनावस्था को प्राप्त नहीं हो सकता।

10.3.5 दो व्यक्तियों में विनिमय

तटस्थता वक्र-प्रविधि का प्रयोग विनिमय विभाग में भी किया जाता है। दो व्यक्तियों के बीच दो वस्तुओं की विनिमय-दर का निर्धारण भी उदासीनता-वक्रों की सहायता से किया जा सकता है। इस दशा में प्रथम प्रयास सुविख्यात ब्रिटिश अर्थशास्त्री एफ0वाई0 इजवर्थ ने सन् 1881 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *Mathematical Psychics* में किया था। प्रो0 इजवर्थ के अनुसार, यदि दो व्यक्तियों की अधिमान-श्रेणियाँ एवं दो वस्तुओं की पूर्तियाँ दी हुई हों तो हम उन दोनों सीमाओं का निर्धारण कर सकते हैं जिनके बीच दोनों वस्तुओं की विनिमय-दर निश्चित होगी यद्यपि हमारे लिए

यह बताना सम्भव नहीं कि वास्तविक विनिमय-दर क्या होगी। हम तो केवल उन सीमाओं का ही उल्लेख कर सकते हैं जिसके बीच विनिमय-दर निश्चित होगी। इन दोनों सीमाओं के बीच विनिमय-दर की वास्तविक स्थिति दोनों व्यक्तियों की सौदा करने की सापेक्ष योग्यताओं से निर्धारित होगी इसे चित्र सं0 10.7 में प्रदर्शित किया गया है।

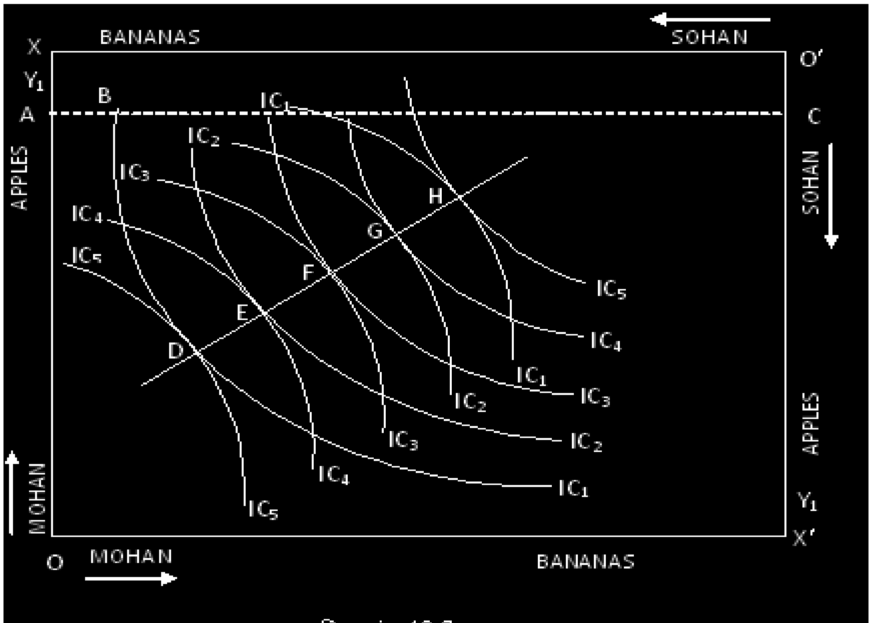

चित्र सं0 10.7

आइए, अब हम दो व्यक्तियों-मोहन तथा सोहन- का उदाहरण लें। उनके पास दो वस्तुएँ (सेब और केले) हैं। वे इन वस्तुओं का विनिमय करते हैं। इन दोनों व्यक्तियों की वस्तुओं के लिए अधिमान-श्रेणियाँ IC के रूप में इस रेखाकृति में सम्मिलित कर दी गयी हैं। दोनों वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को व्यक्त करने वाले मोहन के तटस्थता वक्र $IC_1, IC_2, IC_3, IC_4, IC_5$ हैं। इन दोनों वस्तुओं के लिए सोहन के IC उल्टे रख मोहन के IC वक्रों पर अन्यारोपित कर दिये गये हैं। मोहन एवं सोहन दोनों के पास सेबों और केलों की कुल मात्रा इस प्रकार है: OX केले OY सेब। विनिमय से पूर्व, आइए, हम मान लें कि मोहन के पास OA सेब और AB केले हैं। स्पष्टतः सोहन के पास सेबों और केलों की शेष मात्रा होगी। दूसरे शब्दों में, सोहन के पास $O'C$ सेब और BC केले होंगे। प्रारम्भ में मोहन के पास सेबों की अधिक लेकिन केलों की कम मात्रा होती है। अतः वह केलों के बदले सेबों का विनिमय करने के लिए तब तक तैयार रहेगा। जब तक कि केलों के लिए सेबों की सीमान्त स्थानापत्ति-दर दोनों वस्तुओं के बीच के कीमत-अनुपात के बराबर नहीं हो जाती। यह तो स्पष्ट ही है कि मोहन सोहन से वस्तु-विनिमय करने के लिए तब तक तैयार नहीं होगा जब तक कि ऐसा करने से उसे उस सौदे में से अतिरिक्त सन्तुष्टि प्राप्त नहीं होती। दूसरे शब्दों में, मोहन अपने सेबों का सोहन के केलों से तब तक विनिमय नहीं करेगा जब तक कि यह प्रक्रिया उसे उच्चतर IC पर पहुँचने में

सहायक नहीं होगी। इसी प्रकार, सोहन के पास केलों की अधिक लेकिन सेबों की कम मात्रा है। अतः वह सेबों के बदले केलों का विनिमय करने हेतु तब तक तैयार रहेगा जब तक कि दोनों वस्तुओं की स्थानापत्ति-दर उनके बीच के कीमत-अनुपात के बराबर नहीं हो जाती। सोहन भी मोहन के साथ यह वस्तु-विनिमय नहीं करेगा यदि यह प्रक्रिया उसे उच्चतर IC पर पहुँचाने में सहायक नहीं होती। लेकिन, जैसा कि उपर्युक्त रेखाकृति से स्पष्ट है, वस्तु-विनिमय करने से दोनों की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा अर्थात् दोनों ही उच्चतर IC पर पहुँच जायेंगे। मोहन, सोहन के केलों के बदले अपने सेब देगा। इसी प्रकार सोहन, मोहन के सेबों के बदले केले देगा। इस वस्तु-विनिमय से दोनों पक्षों को लाभ होगा।

आप समझ गये होंगे कि यह विनिमय तब तक जारी रहेगा जब तक दोनों पक्षों के लिए दोनों वस्तुओं की सीमान्त स्थानापत्ति-दर उन वस्तुओं के कीमत-अनुपात के बराबर नहीं हो जाती। चूँकि दोनों वस्तुओं के कीमत-अनुपात बाजार में समान हैं, अतः इससे यह अर्थ निकलता है कि केलों के लिए सेबों की कीमत स्थानापत्ति-दर मोहन तथा सोहन दोनों के लिए समान है। इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी हो जाती है कि दोनों पक्षों के उदासीनता-वक्र *D, E, F, G, H* जैसे विभिन्न बिन्दुओं पर एक-दूसरे को स्पर्श करते हैं। वास्तव में, दोनों व्यक्तियों के IC असंख्य बिन्दुओं पर एक-दूसरे को स्पर्श कर सकते हैं। लेकिन हमने केवल पाँच ऐसे बिन्दुओं को ही लिया है, जिन पर दोनों पक्षों के IC एक-दूसरे को स्पर्श करते हैं। यदि हम इन बिन्दुओं को एक-दूसरे से जोड़ दें तो हमें एक वक्र प्राप्त होगा जिसे संविदा-वक्र कहते हैं। यह वक्र दोनों व्यक्तियों के लिए सन्तुलन की सभी सम्भव स्थितियों का निरूपण करता है। इस वक्र पर स्थित प्रत्येक बिन्दु दोनों पक्षों के बीच अन्तिम संविदा की स्थिति को व्यक्त करता है। थ् बिन्दु, वास्तव में, दोनों पक्षों के बीच आदर्श विनिमय-दर को व्यक्त करता है। यह दर दोनों पक्षों को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करने में सहायक होती है। दोनों पक्ष इसके कारण उच्चतर IC को पहुँच जाते है।

लेकिन यह आवश्यक नहीं कि दोनों पक्षों के बीच विनिमय-दर F बिन्दु पर ही निर्धारित होगी। वास्तविक विनिमय-दर कहाँ निश्चित होगी, यह कहना हमारे लिए कठिन है। यह तो दोनों पक्षों की सौदा-शक्ति पर निर्भर करता है। यदि मोहन अधिक शक्तिशाली है तो विनिमय-दर H बिन्दु पर निर्धारित होगी। इसके विपरीत, यदि सोहन अधिक साधन सम्पन्न है तो अन्तिम विनिमय-दर दोनों पक्षों की सौदा-शक्ति से निर्धारित होगी। हम तो केवल उन व्यापक सीमाओं का ही उल्लेख कर सकते हैं जिनके बीच विनिमय-दर निर्धारित होगी। यह विनिमय-दर D तथा H के बीच किसी बिन्दु पर दोनों व्यक्तियों की सौदा-शक्ति से निश्चित होगी।

जो कुछ ऊपर कहा गया है, वह दो देशों के बीच दो वस्तुओं में होने वाले व्यापार पर पूर्णतः लागू होता है। तटस्थता वक्र-प्रविधि से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त की भी व्याख्या की जा सकती है।

10.3.6 राशनिंग में तटस्थता वक्रों का अनुप्रयोग

वैधानिक राशनिंग प्रणाली के अन्तर्गत व्यक्तिगत उपभोक्ताओं की समस्याओं का अध्ययन भी तटस्थता वक्र-प्रविधि द्वारा किया जा सकता है। आइए, हम दो उपभोक्ताओं का उदाहरण लें। एक तो दक्षिण भारतीय सुब्रह्मण्यम् और दूसरा उत्तर भारतीय प्रकाश है। दोनों ही वैधानिक राशनिंग के

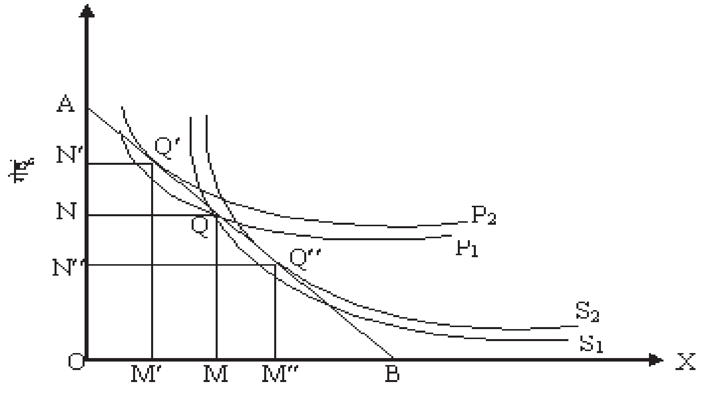

चित्र सं० 10.8

अन्तर्गत किसी बड़े औद्योगिक नगर में रह रहे हैं। दोनों को ही राशन के दुकान से गेहूँ तथा चावल का निश्चित मासिक राशन मिल ता है। दोनों की मौद्रिक आय निश्चित है जिसे वे इन वस्तुओं के क्रय पर व्यय कर देते हैं। यद्यपि दोनों को गेहूँ एवं चावल का निश्चित राशन मिल ता है, लेकिन उनके आस्वाद भिन्न-भिन्न हैं। दक्षिण भारतीय होने के नाते सुब्रह्मण्यम् गेहूँ की तुलना में चावल को अधिमान देता है। इसी प्रकार, प्रकाश उत्तर भारतीय होने के कारण चावल की तुलना में गेहूँ को अधिक पसन्द करता है। इन तथ्यों को रेखाचित्र 10.8 में यथावत् प्रस्तुत किया गया है। X. अक्ष के सहारे चावल और Y. अक्ष के सहारे गेहूँ को व्यक्त किया गया है। AB दोनों उपभोक्ताओं की आय-कीमत-रेखा है। P_1 तथा P_2 तटस्थता वक्र प्रकाश की अधिमान-श्रेणी को व्यक्त करते हैं जबकि S_1 तथा S_2 तटस्थता वक्र सुब्रह्मण्यम् के आस्वादों को प्रकट करते हैं। दोनों उपभोक्ताओं के आस्वादों में भिन्नता के कारण दोनों प्रकार के तटस्थता वक्रों के प्रावण्य में भी भिन्नता पायी जाती है (अर्थात् दोनों प्रकार के वक्रों की ढालें अलग -अलग हैं।) अब यह मान लीजिए कि सरकार इन दोनों व्यक्तियों को गेहूँ एवं चावल का निजी विनिमय करने का अधिकार नहीं देती। अतः प्रकाश एवं सुब्रह्मण्यम् दोनों ही Q बिन्दु पर सन्तुलनावस्था को प्राप्त होने के लिए बाध्य हो जायेंगे। दोनों ही चावल की OM तथा गेहूँ की ON मात्राएँ खरीदेंगे। अब यदि सरकार गेहूँ एवं चावल के निजी विनिमय पर प्रतिबन्ध नहीं लगाती तो प्रकाश एवं सुब्रह्मण्यम् की सन्तुलन स्थितियाँ भिन्न-भिन्न होंगी। जैसा कि रेखाचित्र में प्रदर्शित किया गया है, प्रकाश P_2 उच्चतर IC पर स्थित Q' बिन्दु पर सन्तुलनावस्था को प्राप्त होगा। इस बिन्दु पर उसके पास चावल की OM' तथा गेहूँ की ON' मात्राएँ

होगी। पहले उसके पास चावल की OM तथा गेहूँ की ON मात्राएँ थी। अतः अब वह NN' गेहूँ के बदले $M'M$ चावल दे देगा। इसी प्रकार, सुब्रह्मण्यम् अब उच्चतर IC S_2 पर स्थित Q'' बिन्दु पर सन्तुलनावस्था को प्राप्त होगा। इस बिन्दु पर उसके पास OM′ चावल तथा ON′ गेहूँ की मात्राएं होगी। पहले उसके पास चावल की OM तथा गेहूँ की ON मात्राएँ थी। अतः वह MM’’ चावल के बदले NN’’ गेहूँ दे देगा। गेहूँ एवं चावल का यह विनियम दोनों पक्षों के हित में होगा। इसकी पुष्टि रेखाचित्र द्वारा भी हो गयी है। जैसा कि रेखाचित्र से स्पष्ट है, दोनों वस्तुओं के विनिमय के उपरान्त दोनों व्यक्ति उच्चतर तटस्थता वक्रों पर पहुँच जातें है।

10.3.7 कराधान सिद्धान्त में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग

अनधिमान वक्रों का प्रयोग व्यक्तियों के कल्याण पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों के प्रभावों को ज्ञात करने के लिए भी किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यदि सरकार अपनी आय में वृद्धि करना चाहती है, तो व्यक्तियों के कल्याण के दृष्टिकोण से ऐसा प्रत्यक्ष कर लगाकर करना अच्छा होगा या अप्रत्यक्ष कर लगाकर। जैसा कि आगे प्रमाणित होगा अप्रत्यक्ष कर जैसे कि उत्पादन शुल्क आदि व्यक्ति पर अत्यधिक भार डालतें है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब सरकार दोनों प्रकार के करों से अपनी आय में समान मात्रा में वृद्धि करती है, तो अप्रत्यक्ष कर, प्रत्यक्ष करों (जैसे कि आय कर) कि तुलना में व्यक्ति के कल्याण को अधिक मात्रा में घटा देते हैं। चित्र पर विचार कीजिए जिसमें X.अक्ष पर X वस्तु एवं Yअक्ष पर मुद्रा की मात्रा को नापा गया है। उपभोक्ता की दी हुई आय और X वस्तु के दिये हुए मूल्य पर बजट रेखा PL1 है जो अनधिमान वक्र IC_3 को Q_3 बिन्दु पर स्पर्श करती है जहाँ उपभोक्ता संतुलन में हैं।

मान लीजिए, सरकार X वस्तु पर उत्पादन शुल्क (एक अप्रत्यक्ष कर) लगाती है। उत्पादन शुल्क लगने से X वस्तु की कीमत में वृद्धि होगी X वस्तु के मूल्य में वृद्धि के फलस्वरूप मूल्य रेखा नयी स्थिति PL_2 पर आ जाएगी जो अनधिमान वक्र IC_2 को Q_1 बिन्दु पर स्पर्श करती है। अतः इससे स्पष्ट है कि उत्पादन शुल्क लगाने के फलस्वरूप उपभोक्ता एक ऊँचे अनधिमान वक्र IC_3 से खिसकर एक निचले अनधिमान वक्र IC_1 पर आ गया है और इस तरह उसकी संस्तुष्टि अथवा कल्याण का स्तर पहले कि अपेक्षा कम हो गया है।

इसके अलावा इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि बिन्दु Q_1 पर (अर्थात उत्पादन शुल्क लगाने के बाद) उपभोक्ता वस्तु X की ON मात्रा खरीद रहा है तथा उसके लिए PM मुद्रा का भुगतान किया है। उत्पादन शुल्क लगने के पूर्व पुराने मूल्य पर वह X वस्तु की ON मात्रा केवल PT मुद्रा देकर ही प्राप्त कर सकता था। अतः इन दोनों का अन्तर अर्थात् TM (या KQ_1) उत्पादन शुल्क की मात्रा है, जो उपभोक्ता दे रहा है।

अब मान लीजिए कि उत्पादन शुल्क के स्थान पर सरकार व्यक्ति पर आय कर लगाती है जबकि उस समय उपभोक्ता IC_2 अनधिमान वक्र के Q_2 पर संतुलन में है। आयकर लगने के कारण बजट रखा नीचे की ओर खिसक जाएगी। परन्तु वह बजट रेखा PL_1 के समान्तर होगी। इसके अतिरिक्त यदि आयकर से सरकार उतनी ही आय प्राप्त करना चाहती है जितनी कि उत्पादन कर से प्राप्त होती थी, तो नयी बजट रेखा AB ऐसी दूरी पर खीची जानी चाहिए कि वह Q_1 बिन्दु से होकर गुजरे। इस तरह चित्र सं0 10.9 से आप स्पष्ट जान सकतें है कि आयकर लगने पर हमने नयी बजट रेखा AB खींची है जो बिन्दु Q1 से होकर जाती है। किन्तु AB बजट रेखा पर व्यक्ति IC_2 के Q_2 बिन्दु पर संतुलन में है जो कि IC_1 अनधिमान वक्र की अपेक्षा ऊँचा है। दूसरे शब्दों में, Q_3 बिंदु पर व्यक्ति के कल्याण का स्तर Q_1 अपेक्षा ऊँचा है। अतः आयकर ने उत्पादन शुल्क की अपेक्षा व्यक्ति के कल्याण को कम मात्रा में घटाया है। इससे यह सिद्ध होता है कि अप्रत्यक्ष कर (उत्पादन शुल्क) उपभोक्ता के ऊपर अतिरिक्त भार डालता है।

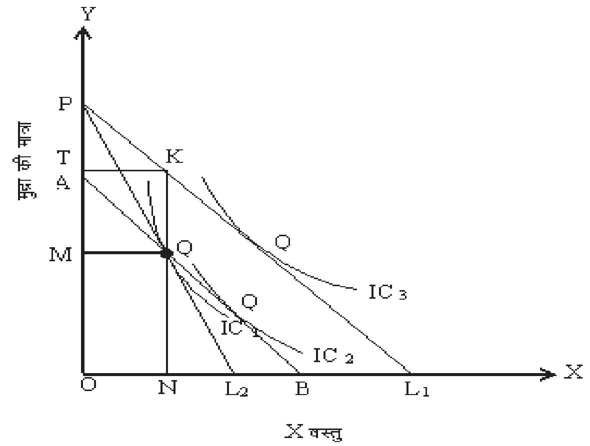

चित्र सं0 10.9

10.3.8 उपभोक्ता उपादानों में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग

अनधिमान वक्र का एक और महत्वपूर्ण प्रयोग उपभोक्ता को दिए जाने वाले उत्पादन के प्रभावों का विश्लेषण करने के लिए किया जाता है। आधुनिक युग में जनसाधारण के कल्याण को बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा व्यक्तियों को अनेक प्रकार के उपदान दिये जाते हैं। उदाहरण के लिए हम खाद्य-उपदान को लेंगे, जिसे निर्धन परिवारों की सहायता के लिए सरकार प्रदान करती है। मान लीजिए, खाद्य-उपदान कार्यक्रम के अन्तर्गत निर्धन परिवारों को बाजार मूल्य से आधे मूल्य पर खाद्य पदार्थ खरीदने का अधिकार दिया गया है और बाजार मूल्य के शेष आधे भाग का भुगतान सरकार द्वारा उपदान के रूप में किया जाता है। उपभोक्ता के कल्याण पर इस उपदान के प्रभाव तथा उपभोक्ता के लिए प्राप्त उपदान का मौद्रिक मूल्य चित्र संख्या 10.10 में दर्शाया गया है। रेखाचित्र में खाद्यान्न की मात्रा को X अक्ष पर मुद्रा को Y अक्ष पर लिया गया है।

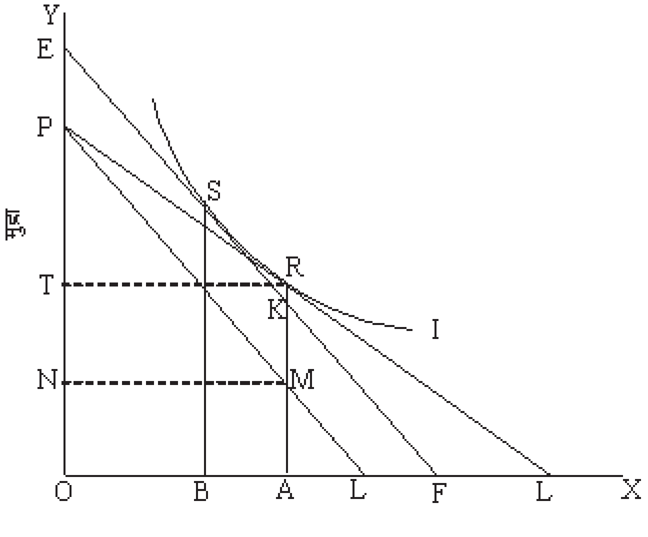

चित्र सं० 10.10

मान लीजिए कि उपभोक्ता के पास OP मौद्रिक आय है। इस मौद्रिक आय तथा खाद्यान्न के बाजार मूल्य के आधार पर बजट रेखा PL_1है। चूंकि हमने माना है कि सरकार द्वारा प्रदत्त उपदान खाद्य पदार्थ के बाजार मूल्य का आधा है, अतः उपभोक्ता केवल आधा मूल्य ही देता है। इसलिए उपदान मिल ने पर उपभोक्ता बजट रेखा PL_2 पर होगा जहाँ $OL_1=L_1L_2$ होगा। मूल्य रखा PL_2 पर उपभोक्ता IC अनधिमान वक्र के R बिन्दु पर संतुलन में है। इस बिन्दु पर वह खाद्य पदार्थ की OA मात्रा खरीद रहा है, और इसके लिए वह PT मुद्रा की मात्रा व्यय कर रहा है।

अब यदि उपभोक्ता को कोई उपदान न दिया जाय और फलस्वरूप वह बजट रेखा PL_1 पर रहे, तो OA खाद्य पदार्थ की मात्रा खरीदने के लिए उस PN मात्रा में मुद्रा खर्च करनी होगी। दूसरे शब्दों में, खाद्य पदार्थ की OA मात्रा का बाजार मूल्य PN है। चूंकि PT है। चूंकि PT मुद्रा का भुगतान व्यक्ति स्वयं करता है, अतः शेष भाग TN या RM बजट रेखा PL_1 तथा PL_2 के बीच खाद्य पदार्थ की मात्रा OA पर ऊर्ध्वाधर दूरी का भुगतान सरकार खाद्यान्न-उपदान के रूप में करती है।

अब महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि व्यक्ति के लिये खाद्यान्न उपदान**(RM)** - का मौद्रिक मूल्य क्या है? किसी प्रकार के खाद्य उपदान के अभाव में व्यक्ति के समक्ष बजट रेखा PL_1 होती है। खाद्य-उपदान के मौद्रिक मूल्य को जानने के लिए PL_1 मौद्रिक रेखा के समानान्तर एक रेखा EF इस तरह खींचिये कि यह उसी अनधिमान वक्र जिस पर उपदान की स्थिति में व्यक्ति संतुलन में था, को स्पर्श करे। चित्र में EF बजट रेखा अनधिमान वक्र IC को S बिन्दु पर स्पर्श करती है और इस स्थिति में व्यक्ति खाद्य पदार्थ की OB मात्रा खरीद रहा है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि व्यक्ति को च्म् मात्रा में नकद मुद्रा राहत के रूप में प्रदान कर दी जाये तो वह उसी अनधिमान वक्र IC पर (कल्याण

के उसी स्तर पर) पहुँचता है, जिस पर कि वह सरकार से प्राप्त उपदान के समय था। अतः PE उपभोक्ता को मिल ने वाले उपदान का मौद्रिक मूल्य है। चित्र 10.10 में यह देखा जा सकता है कि PE सरकार के द्वारा प्रदत्त उपदान की मात्रा RM से कम है। रेखाचित्र में PE = MK है। दोनों समानान्तर रेखाओं के बीच उर्ध्वाधर दूरी RM है तथा RM, MK की अपेक्षा अधिक है। अतः RM, PE की तुलना में भी अधिक होगा। इसका अर्थ यह होता है कि PE, RM से कम है। अतः यदि सरकार उपदान के रूप में RM मात्रा का भुगतान करने के बजाय PE के बराबर नगद मुद्रा की मात्रा अनुदान के रूप में व्यक्ति को दे दे तो व्यक्ति कल्याण के उसी स्तर पर पहुंचता है, जहाँ वह त्ड के बराबर उपदान मिल ने से पहुंचता है।

इस तरह व्यक्ति को उपदान के बराबर मिल ने वाली नकद मुद्रा सरकार की उपदान लागत से कम होगी। वास्तव में उभोक्ता को मिल ने वाला उपदान तथा उपभोक्ता का अनधिमान कुछ भी हो, यह स्थिति सदैव पाई जायेगी जब तक कि अनधिमान वक्र उत्तल एवं सरल होंगे।

अब यदि खाद्यान्नों पर कीमत उपदान   देने के बजाय खाद्यान्नों पर दिए गये उपदान के समान एक-मुश्त नकद अनुदान   दिया जाय तो उपभोक्ता की सन्तुष्टि अथवा कल्याण पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इसे रेखाचित्र 10.11 में प्रदर्शित किया गया है। हमने ऊपर के रेखाचित्र में देखा कि सरकार कीमत उपदान प्रदान करने पर RM के समान उपभोक्ता को उपदान देती है। अब यदि सरकार RM नकद मुद्रा अथवा आय के रूप में अनुदान दे तो इसका परिणाम जानने के लिए बजट रेखा को PL_1

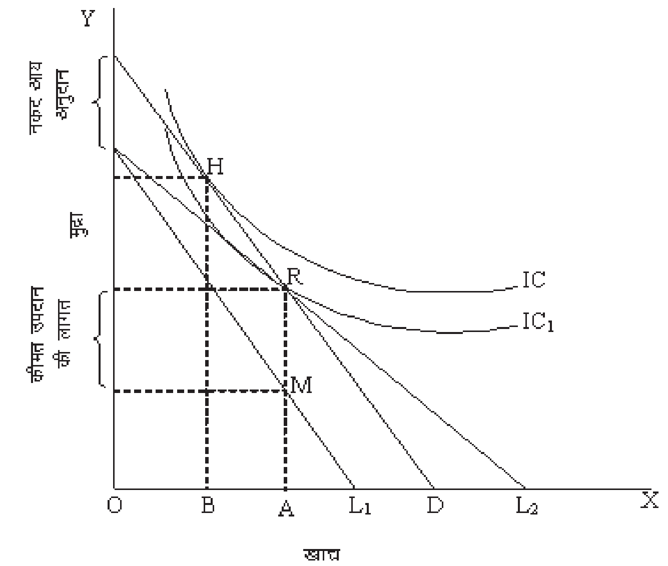

चित्र सं0 10.11

के समानान्तर इतनी दूरी पर ऊपर की ओर सरकाना पड़ेगा कि यह बिन्दु R से गुजरे क्योंकि केवल तभी ही नकद आय अनुदान कीमत उपदान की मात्रा RM के बराबर होगा। चित्र सं0 10.11 में बजट रेखा CD ऐसी ही रेखा है जो PL_1 के समान्तर खींची गयी है और बिन्दु R से गुजरती है। बजट रेखा CD पर उपभोक्ता बिन्दु H पर सन्तुलन में है जहाँ यह अनधिमान वक्र IC_2 को स्पर्श करती है। अनधिमान वक्र IC_2 अनधिमान वक्र IC_1 से ऊँचें स्तर पर है जो इस बात को दर्शाता है कि उसके बिन्दु H पर सन्तुलन की स्थिति उपभोक्ता को IC_1 की तुलना में अधिक सन्तुष्टि प्राप्त होगी अर्थात् कीमत उपदान की तुलना में नकद आय अनुदान देने पर उपभोक्ता के कल्याण में अधिक वृद्धि हुई है।

10.3.9 श्रमपूर्ति एवं अनधिमान वक्र

अधिनियम वक्र विश्लेषण का उपयोग एक व्यक्ति की आय तथा अवकाश के मध्य चुनाव की व्याख्या करने तथा यह प्रदर्शित करने के लिए किया जा सकता है कि यदि श्रमिकों से अधिक घण्टे काम लेना है तो उन्हें क्यों अपेक्षाकृत ऊँची अतिसमय मजदूरी दरों का भुगतान किया जाना चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि कुछ अवकाश के समय को काम में लगाकर आय अर्जित की जाती है अर्थात् कुछ अवकाश का परित्याग करके आय अर्जित की जाती है। एक व्यक्ति के अवकाश के इस परित्याग की मात्रा जितनी अधिक होती है अर्थात् वह जितना अधिक काम करता है वह उतनी ही अधिक आय अर्जित करता है।

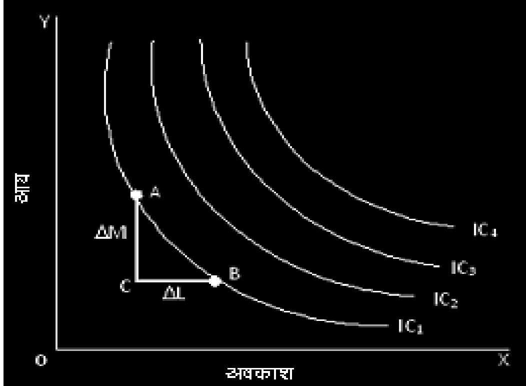

चित्र सं0 10.12

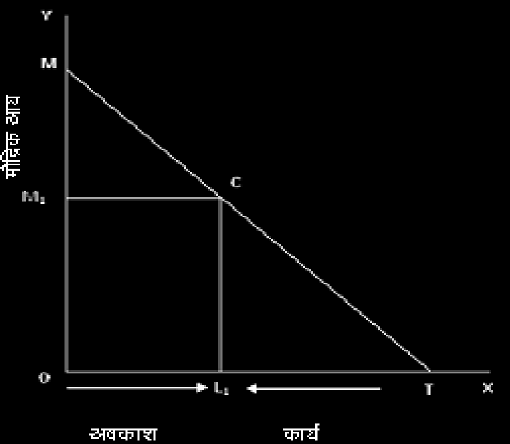

चित्र सं0 10.13

इसके अतिरिक्त आय का उपयोग अवकाश के अतिरिक्त उपभोग के लिए अन्य वस्तुओं को खरीदने में किया जाता है। अवकाश के समय का उपयोग आराम करने, सोने, खेलने, रेडियों पर संगीत सुनने तथा दूरदर्शन पर चल चित्र देखने इत्यादि में किया जा सकता है, ये सब एक व्यक्ति को

संतुष्टि प्रदान करतें हैं। इसलिए अवकाश को अर्थशास्त्र में एक सामान्य वस्तु के रूप में जाना जाता है जिसका उपभोग व्यक्ति को संतुष्टि प्रदान करता है। रेखाचित्र 10.12 में आय तथा अवकाश के बीच IC प्रदर्शित है। आय तथा अवकाश के बीच प्रतिस्थापन की सीमांत दर मापने वाला IC का ढाल आय तथा अवकाश के बीच व्यापार संविदा (**Trade-off**) प्रदर्शित करता है। इस व्यापार संविदा का अर्थ है कि एक घण्टे के अवकाश परित्याग के बदले व्यक्ति कितनी आय चाहता है। इसीलिए आय तथा अवकाश के IC का व्यापार संविदा वस्तु भी कहा जाता है।

आय अवकाश प्रतिबन्ध

आय अवकाश प्रतिबन्ध की धारणा के अनुसार आय तथा अवकाश के बीच IC मानचित्र के साथ एक व्यक्ति वास्तविक चुनाव कैसे करता है यह जानना आवश्यक है। व्यक्ति अपने 24 घण्टें में से कुछ समय का परित्याग करके आय अर्जित करता है। चित्र 10.13 में OM आय, व्ज् तथा प्रतिघण्टा मजदूरी दर के गुणनफल के बराबर है।

$OM = OT_w$

MT - बजट प्रतिवर्ष है। w मजदूरी है।

अतः $\dfrac{OM}{OT} = w$

निम्न रेखाचित्र 10.14 में आय अवकाश सन्तुलन दिखाया गया है

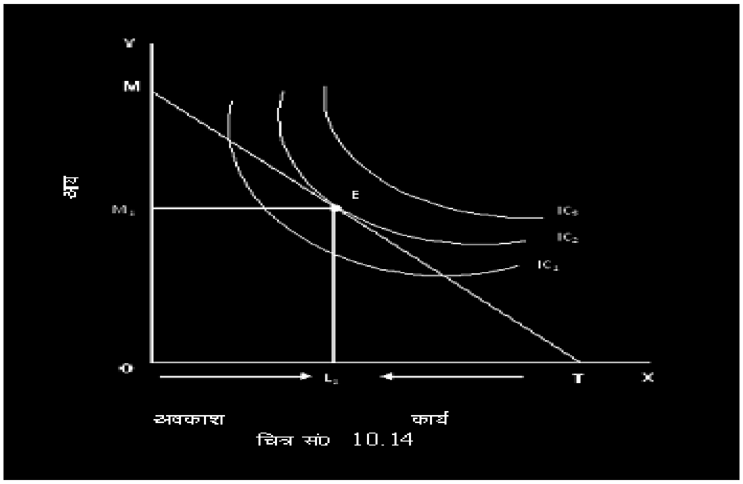

चित्र सं0 10.14

मजदूरी अर्पण तथा श्रम की पूर्ति

अवकाश-आय चुनाव का विश्लेषण कर लेने के पश्चात् श्रम के पूर्ति वक्र का व्युत्पादन रेखाकृति 10.15 में किया गया है। इस चित्र में भाग (a) से स्पष्ट है कि $Wo\left(Wo=\frac{OM_o}{OT}\right)$ मजदूरी दर पर मजदूरी रेखा या आय-अवकाश रेखा TM_0 है तथा एक व्यक्ति Q बिंदु पर साम्य की स्थिति में है जहाँ वह OL_0 अवकाश समय का चुनाव करता है तथा TL_0 घण्टे का काम करता है अर्थात् w_0 मजदूरी दर पर वह श्रम की TL_0 मात्रा की पूर्ति करता है। W_0 मजदूरी दर पर यह श्रम की पूर्ति रेखाचित्र 10.15 भाग (b) में प्रत्यक्ष रूप से दिखायी गयी है। अब यदि मजदूरी दर बढ़कर W_1 हो जाती है तो मजदूरी रेखा अथवा आय-अवकाश रेखा विवर्तित होकर TM_1 $\left(W_1=\frac{OM_1}{OT}\right)$ हो जाती है, एक व्यक्ति अपने अवकाश को OL_1 कम कर देता है और पहले अपेक्षा L_1L_0 अधिक अर्थात TL_1घण्टे काम करता है।

चित्र सं0 10.15 (a) देखें इस प्रकार उसी के अनुरूप रेखाचित्र 10.15 (b) में W_1.मजदूरी दर पर L_1 घंटो की पूर्ति दिखायी गयी हैं यदि मजदूरी दर बढ़कर $W_2\left(W_2=\frac{OM_2}{OT}\right)$ हो जाती है तो समय का चुनाव करता है तथा TL_2 घण्टे काम करता है। भाग (a) में QR तथा S बिंदुओं को

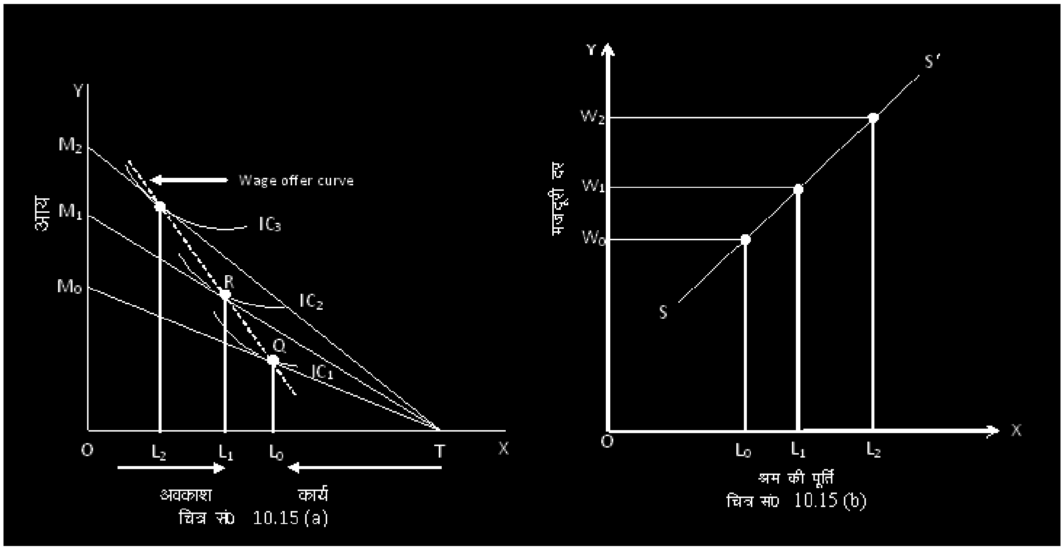

चित्र सं0 10.15 (a) चित्र सं0 10.15 (b)

मिलाने से हमें मजदूरी आय-अवकाश रेखा विवर्तित होकर TM_2 हो जाती है। ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति व्स्2 अवकाश अर्पण वक्र प्राप्त होता है जो कीमत उपभोग वक्र के समान है। भाग (b)में मजदूरी अर्पण वक्र द्वारा दी गई सूचना अर्थात् विभिन्न मजदूरी दरों पर एक व्यक्ति द्वारा श्रम की पूर्ति

(काम के घण्टों) को प्ररूप रूपस से दिखाया गया है क्योंकि इस भाग में श्रम की पूर्ति (काम के घण्टे) को X अक्ष तथा मजदूरी दर को Y अक्ष पर मापा गया है।

10.3.10 सूचकांको में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग

उदासीनता-वक्रों की सहायता से सूचनांक की समस्या की व्याख्या भी की जा सकती है। यह समस्या तब उत्पन्न होती है जब विभिन्न कीमत-स्तरों पर दो पृथक अवधियों में दो वस्तुओं से उपभोक्ता को प्राप्त हाने वाली सन्तुष्टियों की तुलना की जाती है। मान लीजिए कि सन् 1965 के कीमत-स्तर पर उपभोक्ता केलों एवं सेबों का एक संयोग खरीदता है। फिर सन् 1966 में प्रचलित कीमत-स्तर पर भी वह केलों एवं सेबों का अन्य संयोग खरीदता है। अब प्रश्न यह है कि सन् 1965 की तुलना में सन् 1966 में उपभोक्ता क्या बेहतर स्थिति में है? उसकी स्थिति में सुधार हुआ अथवा अवनति? क्या उसकी सन्तुष्टि में वृद्धि हुई अथवा कमी? उदासीनता-वक्रों की सहायता से हम इस प्रश्न का उत्तर दे सकतें हैं। लेकिन सूचनांक-समस्या की व्याख्या करते समय हम यह मान लेते है कि दूसरी अवधि (अर्थात् सन् 1966) में दोनों वस्तुओं के बीच उपभोक्ता की अधिमान-पसंदगी अपरिवर्तित रहती है।

दूसरे शब्दों में, दोनों अवधियों के लिए हम उन्ही उदासीनता-वक्रों का ही प्रयोग करते हैं। इसे रेखाचित्र 10.16 में प्रदर्शित किया गया है। इस चित्र में IC_1, IC_2, IC_3 उदासीनता-वक्र हैं। ये वक्र दोनों अवधियों में उपभोक्ता की अधिमान-श्रेणी को व्यक्त करते हैं।

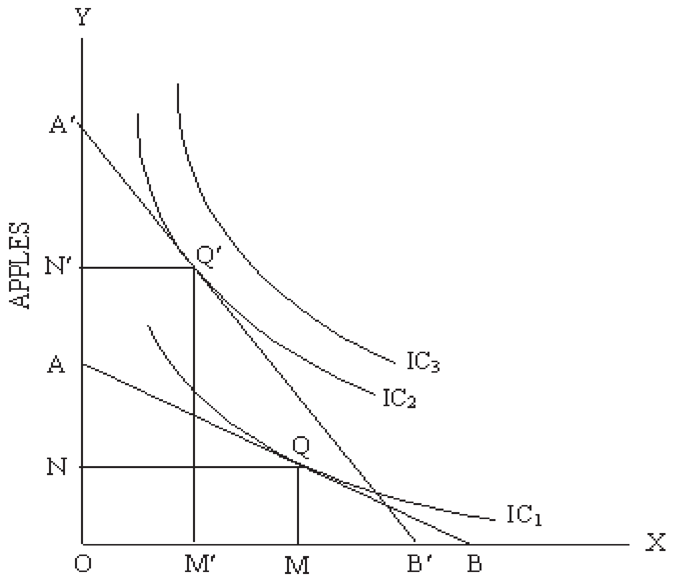

चित्र सं० 10.16

ABसन् 1965 की कीमत-रेखा को व्यक्त करती है। सन् 1965 में IC_1 वक्र पर स्थित Q बिन्दु पर उपभोक्ता सन्तुलनावस्था को प्राप्त होता है। इस बिन्दु पर उपभोक्ता केलों की OM तथा सेबों की ON मात्राएँ खरीदता है। सन् 1966 की कीमत-रेखा A'B' है। IC_2 वक्र पर स्थित Q' बिन्दु पर उपभोक्ता सन्तुलनावस्था को प्राप्त होता है। इस बिन्दु पर वह केलों की OM' तथा सेबों की ON' मात्राएँ खरीदता है। चूंकि उपभोक्ता अब उच्चतर उदासीनता वक्र पर पहुँच गया है, अतः स्पष्ट है कि सन् 1965 की अपेक्षा सन् 1966 में उपभोक्ता बेहतर आर्थिक स्थिति में है।

10.4 सारांश

अधिमान वक्रों का अनुप्रयोग जो अर्थशास्त्र में सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों पक्षों में देखा जा सकता है। इसका अनुप्रयोग उपभोक्ता के सन्तुलन को जानने में बेहतर ढंग से हो सकता है। बजट रेखा को अनधिमान वक्र जहाँ स्पर्श करे वह बिन्दु परिवर्तन न होने का बिन्दु होगा। यही बिन्दु उपभोक्ता का सन्तुलन होगा। इसके लिए कीमत या बजट रेखा एवं अधिमान मानचित्र का जानना आवश्यक है। IC का अनुप्रयोग आय प्रभावों, कीमत एवं प्रतिस्थापन प्रभावों के अध्ययन में भी महत्वपूर्ण है। आय एवं कीमत में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता के उपभोग व्यवहार में अन्तर आ जाता है। उपभोक्ता निकृष्ट के स्थान पर उत्कृष्ट वस्तु के उपभोग को वरीयता देता है। कीमत घटने, कीमत बढ़ने, आय बढ़ने एवं आय घटने पर एक वस्तु के स्थान पर दूसरे वस्तु को प्रतिस्थापित करना अधिमान वक्र आसानी से समझा देता है। मार्शल के उपभोक्ता की बचत के मापन की अवधारणा को प्रो0 हिक्स ने सहजता से समझा दिया। उत्पादन फलन की व्याख्या में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग उत्पादन वक्र अवधारणा में बदल जाता है। ऊँचा उत्पादन वक्र ऊँचे उत्पादन स्तर को व्यक्त करता है। विनिमय में IC का अनुप्रयोग करने से दोनों पक्षों को परस्पर लाभ होता है, यह सिद्ध हो गया है। राशनिंग प्रणाली में IC का अनुप्रयोग व्यक्तियों को अंततः लाभ प्रदान कर ऊँचे संतुष्टि स्तर पर पहुचाता है। अनधिमान वक्रों का प्रयोग व्यक्तियों के कल्याण पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों के प्रभावों को याद करने के लिये किया जाता है। उपभोक्ताओं पर उपदानों के प्रभाव का अध्ययन अनधिमान वक्रों के अनुप्रयोग से संभव है। कीमत उपदान बेहतर है या एक मुश्त अनुदान यह भी जानने में IC महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता है। श्रम की पूर्ति वक्र एवं मजदूरी अर्पण वक्र का निर्माण IC के द्वारा किया जा सकता है। आधुनिक युग में सूचकांको का प्रयोग दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। IC के प्रयोग द्वारा संतुष्टि का स्तर ज्ञात करने में मदद मिल ती है।

10.5 शब्दावली

उपभोक्ता की बचत - वस्तुओं के उपभोग से वंचित रहने की अपेक्षा वस्तु के लिए जितना देने को तैयार है एवं जितना वास्तव में देते हैं का अन्तर।

उत्पादक संतुलन - उत्पादक की वह परिस्थिति है जिसमें अधिकतम लाभ प्राप्त करता है।

उत्पादन फलन - उत्पादन फलन आदा एवं प्रदा ;वनज चनजद्ध के परस्पर सम्बन्ध को बताता हैं।
खाद्य उपदान - निर्धन लोगों को सरकार द्वारा खाद्य सामग्री उपदान पर देना।
व्यापार संविदा वक्र - एक घण्टे अवकाश परित्याग के बदले व्यक्ति द्वारा अर्जित धन। आय तथा अवकाश के तटस्थता वक्र को व्यापार संविदा वक्र कहा जाता है।
सूचकांक - दो स्थितियों को विश्लेषित करने हेतु संख्यात्मक अभिव्यक्ति।

10.6 अभ्यास प्रश्न

लघु प्रश्न

1. उपभोक्ता के बचत से क्या आशय है ?
2. सम उत्पादक वक्र क्या हैं?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1 अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग का क्षेत्र नहीं है-

क. उपभोक्ता की बचत का मापन ख. उत्पादक का सन्तुलन

ग. विनिमय में घ. उपभोक्ता की यात्रा में

2 सूचकांको में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग -

क. होता है ख. नहीं होता है

ग. गलत है घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं

3 उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त में अनधिमान वक्रों का प्रयोग किया था-

क. मार्शल ने ख. ड्यूपिट ने

ग. हिक्स ने घ. सैम्युएलसन ने

उत्तर 1. घ 2. क 3. X

10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Demiel R. Fusfeld - Economics: Principles of Political Economy 3rd Ed. - 1998.
- C.E. Ferguson and Gould - Micro Economic theory 5th Ed. 1988 Ruffin Roy and Gregory.

- Koutsoyinuis. A. (1979) Modern Microeconomics, Macmillian Press, London.
- Colander, D.C (2008) Economics, McGraw Hill Publication.
- Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-economics Theory, Himalaya Publishing House.
- एम0एल0 सेठ - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा।
- एच0एल0 आहूजा - उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0 नई दिल्ली।
- एस0पी0 दुबे वी0सी0 सिन्हा - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त 1988 नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
- झिंगन उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त।
- एस0एन0 लाल व्यष्टि अर्थशास्त्र शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद।
- डॉ0 बद्री विशाल त्रिपाठी - डॉ0 अमिताभ तिवारी - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त किताब महल् इलाहाबाद।
- जे0पी0 मिश्रए व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण मिश्रा टेडिंग कारपोरेशन वाराणसी।

10.8 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न-1 हिक्स की अनधिमान वक्र विश्लेषण की रीति से उपभोक्ता की बचत ज्ञात कीजिए।

प्रश्न-2 उत्पादक के संतुलन में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग समझाइयें।

प्रश्न-3 कराधान सिद्धान्त में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग सचित्र व्याख्या करें।

प्रश्न-4 मजदूरी अर्पण वक्र क्या है? अनधिमान वक्रों का श्रमपूर्ति में अनुप्रयोग किस तरह होता है?

इकाई-11 उद्‌घाटित अधिमान विश्लेषण

इकाई की रूप रेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण या सिद्धान्त
11.3.1 उपभोक्ता व्यवहार सिद्धान्त: मार्शल एवं हिक्स
11.3.2 मार्शल एवं हिक्स: समान वैचारिक बिन्दु
11.3.3 माँग विश्लेषण का व्यवहारवादी दृष्टिकोण: सैम्युएलसन
11.3.4 अधिमान परिकल्पना तथा सबल क्रमबद्धता
11.3.5 उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त की मान्यताएं
11.3.6 माँग का नियम तथा उद्घाटित अधिमान परिकल्पना
11.4 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण का मूल्यांकन
11.4.1 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण की श्रेष्ठता
11.4.2 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण के दोष/कमियां
11.4.3 विश्लेषण के निष्कर्ष
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 अभ्यास प्रश्न
11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.9 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में उद्घाटित अधिमान विश्लेषण का आप अध्ययन करेंगे। उपभोक्ता व्यवहार सिद्धान्तों में आप दो वैकल्पिक रूपों का अध्ययन पूर्व इकाइयों के माध्यम से कर चुके हैं। एक विचार प्रो0 अल्फ्रेड मार्शल का था जिसमें सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण के आधार पर माँग का नियम बनाया। उनकी उपयोगिता मापनीयता पर प्रश्नचिन्ह होने पर दूसरा विचार प्रो0 एलन एवं प्रो0 हिक्स का अनधिमान वक्र विश्लेषण आया। इसमें श्रेष्ठता होते हुए भी कुछ विशेष विश्वसनीय विकल्प नहीं पाया गया । दोनों में दोष एवं त्रुटियां पायी गयीं। उपभोक्ता व्यवहार विश्लेषण में दोनों विचारों के कारगर सिद्ध न होने पर तीसरा एक महत्वपूर्ण विकल्प सामने आया जिसे उद्घाटित अधिमान विश्लेषण के रूप में जाना जाता हैं।

इस विश्लेषण का प्रतिपादन अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो0 पाल ए0 सैम्युएलसन ने किया। मार्शल एवं हिक्स के विचारों का विकल्प देने का उनका यह विचार अर्थ जगत् में प्रशंसनीय रहा। इस विचार ने उपभोक्ता व्यवहार सिद्धान्त के विषयगत अथवा मनोवैज्ञानिक आधार को पूर्णतः समाप्त कर दिया। यह विचार उपभोक्ता के अवलोकित बाजार व्यवहार पर आधारित है। यह विश्लेषण माँग की व्यवहारवादी व्याख्या आपके समक्ष रखता है जिसे इस इकाई में आप समझेगें। सिद्धान्त अपने मान्यताओं को लेकर कितना श्रेष्ठ और खरा उतरता है इस विश्लेषण के मूल्यांकन के द्वारा आप जान सकेंगे।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर आप दूसरों को निम्न बिन्दुओं को समझाने में सक्षम हो सकेंगे। यथाः

- उपभोक्ता व्यवहार विश्लेषण हेतु नये विकल्प की आवश्कता क्यों उठी? क्या मार्शल एवं हिक्स के विश्लेषण अपने में पूर्ण नहीं रहे जानने में आप सक्षम हो सकेंगे।
- वो कौन से ऐसे बिन्दु हो सकते हैं जहां मार्शल एवं हिक्स का विश्लेषण में वैचारिक समानता विद्यमान है।
- उद्घाटित अधिमान विश्लेषण में अवलोकित बाजार व्यवहार किस रूप में देखा जाता है? इस विश्लेषण का व्यवहारवादी दृष्टिकोण कितना व्यापक है समझाने में आप सफल होंगे।
- विश्लेषण की महत्वपूर्ण मान्यताएं क्या हैं, सबल क्रमबद्धता से क्या आशय है बताने में सक्षम होगें।
- यह विश्लेषण कितना श्रेष्ठ है? इसमे भी कुछ दोष-कमियां हैं कि नहीं समझाने में आप सफल होंगे।

11.3 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण

उद्घाटित अधिमान विश्लेषण या सिद्धान्त का प्रतिपादन सुविख्यात अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो0 पाल ए0 सैम्युएलसन ने किया है। हाल ही के वर्षों में उन्होंने इस सिद्धान्त को वैकल्पिक माँग सिद्धान्त के रूप में लोकप्रिय एवं विश्वसनीय बनाने का अथक प्रयास किया है। मार्शल के माँग विश्लेषण एवं हिक्स के अनधिमान वक्र विश्लेषण का विकल्प देने का उनका यह विचार अर्थजगत् में प्रशंसनीय रहा।

11.3.1 उपभोक्ता व्यवहार सिद्धान्त: मार्शल एवं हिक्स

आप पूर्व इकाईयों में उपभोक्ता-व्यवहार सिद्धान्त के दो वैकल्पिक रूपों का अध्ययन कर चुके हैं। इस सिद्धान्त का प्रथम रूप डॉ0 मार्शल द्वारा प्रस्तुत किया गया था। उन्होंने सीमान्त उपयोगिता’-विशलेषण के आधार पर माँग के नियम का निर्माण किया था। उपभोक्ता व्यवहार सिद्धान्त के दूसरे रूप का उद्विकास प्रो0 आर.जी.डी. एलन के सहयोग से प्रो.जे.आर. हिक्स द्वारा किया गया था। प्रो. हिक्स ने उपभोक्ता-व्यवहार सिद्धान्त का पुनर्निर्माण तटस्थता -वक्र-विश्लेषण के आधार पर किया था। इस सिद्धान्त के दोनों वैकल्पिक रूपों में अनेक दोष एवं त्रुटियाँ पायी जाती थी। परिणामतः बाजार में उपभोक्ता के व्यवहार का विश्लेषण करने में ये दोनों वैकल्पिक रूप अधिक कारगर सिद्ध नहीं हुए हैं। उदाहरणार्थ, मार्शल द्वारा प्रस्तुत उपभोक्ता व्यवहार सिद्धान्त का रूप गणन संख्यात्मक उपयोगिता की मान्यता पर आधारित था। दूसरे शब्दों में, डॉ0 मार्शल यह मानकर चले थे कि किसी वस्तु से प्राप्त होने वाली सन्तुष्टि अथवा उपयोगिता संख्यात्मक रूप में मापनीय होती है। अब अर्थशास्त्र के क्षेत्र में प्रविष्ट होने वाला एक नवागत भी भलीभांति जानता है कि मार्शल की उक्त मान्यता अत्यन्त बेतुकी अथवा अयथार्थ है। इसके विपरीत, प्रो0 हिक्स द्वारा प्रस्तुत उपभोक्ता-व्यवहार सिद्धान्त का रूप अधिक वास्तविक है क्योंकि यह गणन -संख्यात्मक उपयोगिता पर आधारित नहीं है। हिक्स का यह सिद्धान्त तो क्रम-संख्यात्मक उपयोगिता की मान्यता पर निर्मित किया गया है। इसका अर्थ यह है कि उपयोगिता केवल तुलनीय ही होती है, मापनीय ;उमेंनतंइसमद्ध नहीं होती। हिक्स द्वारा प्रस्तुत उपभोक्ता-व्यवहार सिद्धान्त मार्शल द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त से तो अधिक श्रेष्ठ एवं अधिक यथार्थ है, लेकिन यह पूर्णतया सन्तोषजनक नहीं है। इसमें कुछ गम्भीर त्रुटियां पायी जाती है। उदाहरणर्थ, हिक्स के सिद्धान्त की गम्भीरता त्रुटि यह है कि यह इस मान्यता को लेकर चलता है कि उपभोक्ता अपने तटस्थता -मानचित्र से पूरी तरह परिचित है और वह दोनों वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के बीच अपने चयन को दृढ़तापूर्वक व्यक्त कर सकता है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता निश्चित रूप से यह बता सकता है कि उसे दोनो वस्तुओं का कौन-सा संयोग पसन्द है। हिक्स की यह मान्यता, वास्तव में, बहुत ही असंगत है। सच तो यह है कि उपभोक्ता को अपने तटस्थता मानचित्र के बारे में सही-सही जानकारी नहीं होती।

11.3.2 मार्शल एवं हिक्सः समान वैचारिक बिन्दु

यद्यपि मार्शल तथा हिक्स के सिद्धान्त एक-दूसरे से भिन्न थे लेकिन फिर भी एक विषय पर उन दोनों में एकता पायी जाती थी। उपभोक्ता के व्यवहार के विश्लेषण में दोनों ने मनोवैज्ञानिक अथवा अन्तदृष्टि-विषयक विधि का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ, मार्शल का उद्देश्य वस्तु के उपभोग से प्राप्त होने वाली उपभोक्ता की उपयोगिता अथवा सन्तुष्टि की विषयगत माप करना था। हिक्स के सिद्धान्त के अनुसार भी उपभोक्ता दोनों वस्तुओं के विभिन्न संयोगों का मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन करता है, और अन्ततः एक ऐसे संयोग का चयन करता है जिससे उसको अधिकतम सन्तुष्टि अथवा उपयोगिता प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता अनुकूलतम संयोग का ही चयन करता है। इस प्रकार दोनों ही प्रतियोगी सिद्धान्तों ने उपभोक्ता के व्यवहार की विषयगत अथवा मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है। मार्शल तथा हिक्स दोनों ने ही एक निश्चित आय-कीमत परिस्थिति में होने वाले कतिपय परिवर्तनों के प्रति उपभोक्ता की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं के आधार पर कुछ सामान्य नियमों का निर्माण किया है।

11.3.3 माँग विश्लेषण का व्यवहारवादी दृष्टिकोण: प्रो0 सैम्युएलसन

उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों में सर्वथा भिन्न है। उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त मार्शल के सिद्धान्त की भाँति गणन -संख्यात्मक उपयोगिता अथवा पर आधारित नही है। सत्य तो यह है कि उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त ने उपभोक्ता व्यवहार सिद्धान्त के विषयगत अथवा मनोवैज्ञानिक आधार को पूर्णतः समाप्त कर दिया है। वास्तव में, दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के प्रति उपभोक्ता के अधिमानों को जानने हेतु प्रो. सैम्युएलसन का उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त पूर्णतया उपभोक्ता के अवलोकित बाजार-व्यवहार पर ही निर्भर करता है। इस प्रकार यह सिद्धान्त उपभोक्ता माँग की एवं व्यवहारवादी व्याख्या हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। बाजार में आय-कीमत सम्बन्धी परिवर्तनों के प्रति उपभोक्ता की प्रतिक्रियाओं पर दृष्टि रखतें हुए यह सिद्धान्त उसके अधिमानों से सम्बन्धित अपने निष्कर्ष निकाल लेता है। प्रो. सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त द्वारा व्युत्पादित निष्कर्ष मार्शल तथा हिक्स द्वारा निकाल ने गये निष्कर्षो की तुलना में अधिक विश्वसनीय हैं। इसका कारण ज्ञात करना कठिन नहीं है। उद्घटित अधिमान सिद्धान्त द्वारा निकाले गये निष्कर्ष अवलोकित बाजार-व्यवहार पर आधारित है। जबकि मार्शल तथा हिक्स द्वारा निकाले गये निष्कर्ष उपभोक्ता के मनोवैज्ञानिक व्यवहार से सम्बन्धित अस्पष्ट सामान्य-अनुमानों का परिणाम होते है। (स्मरण रहे, उपभोक्ता का मनोवैज्ञानिक व्यवहार आय-कीमत परिस्थिति में होने वाली परिवर्तनों से सम्बन्धित होता है।) अतः उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त मार्शल तथा हिक्स के प्रतियोगी सिद्धान्तों पर एक प्रकार का सुधार है। कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा इस सिद्धान्त को ''व्यवहारवादी क्रम-संख्यात्मक सिद्धान्त'' की संज्ञा दी गयी है। यह सिद्धान्त व्यवहारवादी इस अर्थ में है कि मार्शल तथा हिक्स के सिद्धान्तों की भांति यह सिद्धान्त उपभोक्ता की मनोवैज्ञानिक

प्रतिक्रियाओं के बारे में अस्पष्ट सामान्यानुमान प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि यह सिद्धान्त तो उपभोक्ता के वास्तविक बाजार-व्यवहार का ही अध्ययन करता है। इसी प्रकार, यह सिद्धान्त क्रम संख्यात्मक इस अर्थ में है कि मार्शल के सिद्धान्त की भांति यह सिद्धान्त गणन -संख्यात्मक उपयोगिता की मान्यता पर आधारित नहीं है, बल्कि यह सिद्धान्त तो क्रम-संख्यात्मक उपयोगिता की मान्यता पर निर्मित किया गया है। आपकों स्मरण रहे, क्रम-संख्यात्मक उपयोगिता की मान्यता के अनुसार उपयोगिता का मात्रात्मक मापन तो नही हो सकता यद्यपि व्यवहार में इसकी तुलना अवश्य ही की जा सकती है। क्रम-संख्यात्मक उपयोगिता की धारणा (जिस पर उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त निर्मित किया गया है। मार्शल का गणन -संख्यात्मक धारणा पर स्वयं एक बहुत बड़ा सुधार है। सत्य तो यह है कि प्रो. सैम्युएलसन का ''व्यवहारवादी क्रम-संख्यात्मक'' सिद्धान्त मार्शल तथा हिक्स के सिद्धान्तों की अपेक्षा उपभोक्ता के व्यवहार के बारे में अधिक श्रेष्ठ, अधिक सुधरी हुई एवं अधिक वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

आइए, अब हम उस बाजार में उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन करें जिसमें दो में से केवल एक ही वस्तु की कीमत में परितर्वन होता है। (स्मरण रहे, यहाँ पर उपभोक्ता दोनों वस्तुओं पर अपनी धनराशि व्यय करने की योजना बना रहा है।) सम्भव है कि अपने वास्तविक बाजार-व्यवहार के माध्यम से उपभोक्ता यह तथ्य प्रकट करे कि उसकी अधिमान-श्रृंखला में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। दूसरे शब्दों में, यह सम्भव है कि उसका बाजार-व्यवहार माँग के नियम के अनुरूप न हो और वह एक वस्तु को उसकी कीमत-वृद्धि के बावजूद भी दूसरी वस्तु की तुलना में प्राथमिक देता रहे। उपभोक्ता की उक्त क्रिया का विश्लेषण करते समय हमें परम्परागत माँग के नियम को नहीं, बल्कि उसके (उपभोक्ता के) उद्घाटित अधिमान को ध्यान में रखना होगा।

जैसा कि आप समझ चुके हैं, तटस्थता -वक्र विश्लेषण में हमें उपभोक्ता से उतनी विषयगत जानकारी की आवश्यकता नहीं पड़ती है जितनी मार्शल के नव-क्लासिकल सिद्धान्त में पड़ती है। लेकिन फिर भी उपभोक्ता का तटस्थता -मानचित्र तैयार करने में हमें उससे कुछ न कुछ विषयगत जानकारी की आवश्यकता तो पड़ती ही है। उदाहरणार्थ, उपभोक्ता दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के प्रति अपना अधिमान व्यक्त करने की स्थिति में होना चाहिए। लेकिन उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त के अनुसार उपभोक्ता को अपने बारे में किसी प्रकार की विषयगत जानकारी देने की आवश्यकता नहीं होती। उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त तो बाजार-व्यवहार को निकट से देखकर ही उसके बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेता है।

11.3.4 अधिमान परिकल्पना तथा सबल क्रमबद्धता

प्रो0 सैम्युएलसन के उद्धाटित अधिमान सिद्धान्त की अधिमान परिकल्पना' उनके माँग सिद्धांत का आधार है। इस परिकल्पना के अनुसार एक उपभोक्ता जब विभिन्न वैकल्पिक संयोगों में से संयोग A को चयन करने का निश्चय करता है तो वह अन्य समस्त संयोगों, जिनका वह क्रय कर सकता था की तुलना में संयोग A के पक्ष में अपने अधिमान को उद्धाटित करता है। अन्य शब्दों में, जब उपभोक्ता संयोग 'A' का चयन करता है तो इसका अर्थ यह है कि अन्य सभी संयोगों को, जिनको वह खरीद सकता था, इस संयोग A की तुलना में हीन समझता है। एक अन्य प्रकार से इसको इस तरह भी कहा जा सकता है कि वह चयन किए गए संयोग A के पक्ष में, अन्य सभी उपलब्ध वैकल्पिक संयोगों को त्याग देता है। इस प्रकार प्रो0 सैम्युएलसन के शब्दों में चयन अधिमान को उद्धाटित करता है संयोग A के चयन से उसका इस संयोग के पक्ष में दृढ़ अथवा सबल अधिमान स्पष्ट झलकता है जिसके कारण वह अन्य सभी संयोगों को त्याग देता है। चयन अधिमान को उद्धाटित करता है' की परिकल्पना के आधार पर हम उपभोक्ता के अधिमानों के सम्बन्ध में निश्चित सूचना प्राप्त कर सकतें है। परन्तु इसके लिए हमको उसके बाजार में व्यवहार का अवलोकन करना होता है। विभिन्न कीमत आय स्थितियों में उपभोक्ताओं द्वारा उद्धाटित अधिमानों के आधार पर हम उसके अधिमान-क्रम के सम्बन्ध में निश्चित ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

अधिमान परिकल्पना की व्याख्या चित्र सं0 11.1 की सहायता से की जा सकती है। चित्र 11.1 में यदि वस्तुओं X तथा Y की कीमतों तथा उपभोक्ता की आय दी हुई हो तो बजट अथवा कीमत रेखा PL होगी। PL कीमत रेखा एक निश्चित कीमत-आय स्थिति को दिखाती है। PL द्वारा प्रदर्शित कीमत-आय स्थिति की दशा में उपभोक्ता PL रेखा पर या OPL त्रिभुज के भीतर के किसी भी संयोग को प्राप्त कर सकता है। अन्य शब्दों में, PL रेखा पर के विभित्र संयोग जैसे, A,B,C तथा इस रेखा के नीचे के अन्य संयोग जैसे D,E,F तथा G आदि उन विभिन्न संयोगों को व्यक्त करतें हैं जिनको उपभोक्ता प्राप्त कर सकता है और इनमें से ही किसी एक का चयन उसको करना होगा। दी हुई कीमत आय स्थिति में समस्त संयोगों में से उपभोक्ता यदि संयोग । का चयन करता है तो स्पष्ट है कि इस संयोग को प्राप्त करने के लिए वह अन्य सभी संयोगों जैसे B, C, D, E तथा F को त्याग देता है। जैसे कि चित्र से स्पष्ट है; जब उपभोक्ता संयोग । का चयन करता है तो वह वस्तु X की OM मात्रा और वस्तु Y की ON मात्रा का क्रय करता है।

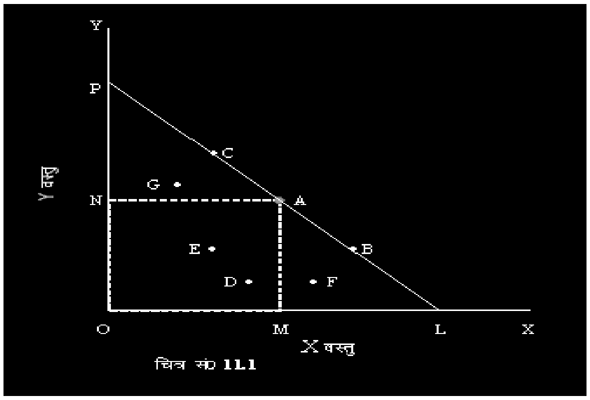

चित्र सं0 11.1

प्रो0 सैम्युएलसन का उद्घाटित अधिमान सिद्धांत किस प्रकार की अधिमान परिकल्पना पर निर्भर हैं, अधिक ध्यान देने योग्य है। सैम्युएलसन के दृढ़ अथवा उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त में सबल क्रमबद्धता की अधिमान परिकल्पना का प्रयोग किया गया है। सबल क्रमबद्धता का अभिप्राय यह है कि उपभोक्ता के अधिमान क्रम के विभिन्न संयोगों में निश्चित क्रम होता है और इसलिए जब एक उपभोक्ता किसी एक संयोग का चयन करता है तो अन्य प्राप्य संयोगों की तुलना में वह उसके लिए अपने अधिमान को स्पष्टतः उद्घाटित करता है। अतः सबल क्रमबद्धता स्थिति में यह मान लिया जाता है कि विभिन्न संयोगों के मध्य उपभोक्ता उदासीन नहीं हो सकता चित्र में जब प्राप्य विभिन्न संयोगों मे से उपभोक्ता संयोग A का चयन करता है, तो स्पष्ट है कि उसके मन में A के लिए अन्य सभी संयोगों की तुलना में निश्चित प्राथमिकता है। यहाँ सबल अथवा दृढ़ क्रमबद्धता की परिकल्पना के कारण इस सम्भावना को विचार में नहीं लिया जाता जिसमें कि उपभोक्ता अन्य संयोगों तथा चुने गए संयोग A में तटस्थ हो सकता है। प्रो0 जे0 आर0 हिक्स ने अपनी पुस्तक "Revision of Demand Theory" में सबल क्रमबद्धता की परिकल्पना को सन्तोषजनक नहीं माना और निर्बल क्रमबद्धता की परिकल्पना का प्रयोग किया है। निर्बल क्रमबद्धता के परिकल्पना (इस अतिरिक्त मान्यता के साथ कि उपभोक्ता वस्तु की कम मात्रा की तुलना में अधिक मात्रा को सदैव प्राथमिकता देगा) में उपभोक्ता चुने गए संयोग A को POL त्रिभुज के अन्य संयोगों की तुलना में अधिक पसन्द करता है और इसके अतिरिक्त यह संयोग PL रेखा पर स्थित अन्य संयोगों की तुलना में उपभोक्ता द्वारा अधिक पसन्द किया जा सकता है अथवा उनके प्रति वह उदासीन हो सकता है। ‘‘प्रबल तथा निर्बल क्रमबद्धता के परिणामों में मुख्य अन्तर यह है कि प्रबलक्रमबद्धता की स्थिति में चयन किए गए संयोग को त्रिभुज पर के तथा उसके भीतर के सभी संयोगो की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है जबकि क्षीण अथवा निर्बल क्रमबद्धता में इसको त्रिभुज के भीतर के सभी संयोगों की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है परन्तु रेखा पर स्थित अन्य संयोगों के प्रति उपभोक्ता उदासीन भी हो सकता है।

उद्घाटित अधिमान सिद्धांत जिस आधारभूत मान्यता पर आधारित है उसको संगति अभिधारणा कहा जाता है। वास्तव में संगति अभिधारणा’ प्रबल क्रमबद्धता की परिकल्पना में निहित है। इस संगति अभिधारणा का वर्णन इस प्रकार से किया जा सकता हैः ‘‘चयन व्यवहार के कोई भी दो पर्यवेक्षण इस प्रकार के नहीं होते जो उपभोक्ता के अधिमान के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी प्रमाण प्रस्तुत करें।’’ अन्य शब्दों में, संगति अभिधारणा यह बताती है कि यदि उपभोक्त B की तुलना में A का चयन किसी एक दशा मे करता हैं तो किसी भी अन्य स्थिति में वह A की तुलना में B का चयन नहीं करेगा। यदि वह एक स्थिति में A की तुलना में B का चयन करता है और दूसरी स्थिति में जबकि A तथा B दोनों वर्तमान हैं, B की तुलना में A का चयन करता है तो उसके व्यवहार में संगति नहीं होगी। इस प्रकार ‘संगति अभिधारणा’ में यह आवश्यक है कि एक बार उपभोक्ता B की तुलना में A के पक्ष में अपने अधिमान को उद्घाटित कर देता है तो कभी भी, जबकि A व B दोनों

वर्तमान हैं, वह A की तुलना में B का चयन नहीं करेगा। चूँकि यहाँ पर तुलना दो स्थितियों में है, इसलिए इमसें निहित संगति को हिक्स ने ''द्वि-पद संगति '' कहा है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त में संगति अभिधारणा तुष्टिगुण के अधिकतम करने की मान्यता, जिसका प्रयोग मार्शल के तुष्टिगुण सिद्धान्त तथा हिक्स-एलन के अनधिमान वक्र सिद्धान्त में किया गया है, से अधिक वास्तविक है। ''उपभोक्ता तुष्टिगुण अथवा संतुष्टि को अधिकतम करता है'', इस मान्यता को विवेकशील ता की मान्यता कहा जाता है। हाल ही में कुछ अर्थशस्त्रियों ने उपभोक्ता द्वारा तुष्टिगुण अधिकतम करने की मान्यता का खण्डन किया है। उनका कहना है कि वास्तविक जीवन में उपभोक्ता तुष्टिगुण को अधिकतम नहीं करते। उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त का एक लाभ यह है कि इसके द्वारा प्रयुक्त विवेकशील ता अथवा संगति की मान्यता को वास्तविक जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। इस सिद्धान्त में उपभोक्ता के विवकेशील होने का अभिप्राय केवल यह है कि वह संगत रूप से व्यवहार करे। चयन में संगति , तुष्टिगुण अधिकतम करने की मान्यता की तुलना में कम कठोर मान्यता है। यह एक मुख्य सुधार है जो सैम्युएलसन ने मार्शल के तुष्टिगुण तथा हिक्स-ऐलन के अनधिमान वक्रों के माँग के सिद्धान्तों पर किया है।

आपको इस पर ध्यान देना आवश्यक है कि सैम्युएलसन का उद्घाटित अधिमान एक सांख्यिकीय अवधारणा नहीं है। यदि यह सांख्यिकीय अवधारणा होती तो उपभोक्ता की स्थिति A के लिए प्राथमिकता केवल तभी मानी जाती जबकि उसको एक समान स्थितियों में कई बार चयन का अवसर प्रदान किया जाता। एक उपभोक्ता यदि विभिन्न संयोगों मे से एक संयोग A का चयन अन्य संयोगों की तुलना में, अधिक बार करता है तो तब ही उसका संयोग A के लिए अधिमान सांख्यिकीय रूप से उद्घाटित कहा जाएगा। परन्तु सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त में उपभोक्ता अपने अधिमान को चयन की केवल एक क्रिया ही से उद्घाटित कर देता है। यह स्पष्ट है कि उपभोक्ता द्वारा केवल एक क्रिया में किया गया चयन दो स्थितियों में उसकी तटस्थता को प्रकट नहीं कर सकता। जब तक कि किसी व्यक्ति को दी हुई परिस्थितियों में अनेक बार चयन करने का अवसर न दिया जाय, तब तक वह विभिन्न संयोगों में अपनी तटस्थता प्रकट नहीं कर सकता। अतः चूँकि सैम्युएलसन केवल चयन की एक ही क्रिया से उपभोक्ता के अधिमान को उद्घाटित होना मान लेता है इसलिये तटस्थतासम्भावना उसके सिद्धान्त में नहीं है। अतः तटस्थता के सम्बन्धों का त्याग सैम्युएलसन द्वारा अपनाई गई अध्ययनविधि का ही परिणाम है।

11.3.5 उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त की मान्यताएं

उद्घाटित अधिमान विश्लेषण या सिद्धान्त की मान्यताओं के विश्लेषणोंपरान्त यदि इन मान्यताओं को संक्षिप्तीकरण करें तो जो प्रमुख बिन्दु उभरेंगे वे निम्नवत् हैं-

1. उपभोक्ता एक ऐसे संयोग को खरीदता है जिसमें दो ही वस्तुएँ सम्मिलित होती हैं, दो से अधिक नहीं। तटस्थता वक्र-विश्लेषण की भॉति उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त भी केवल दो वस्तुओं से ही सम्बन्धित है। यही कारण है कि सिद्धान्त की उपर्युक्त व्याख्या में हमने A तथा B दो वस्तुओं को ही लिया है।

2. उपभोक्ता की आय तथा दोनों वस्तुओं की कीमतें समूची विश्लेषण अवधि में स्थित रहती हैं। यही कारण है कि रेखा चित्र 11.1 में हमने केवल एक ही कीमत-रेखा NM खींची है। यह मान्यता इसलिए आवश्यक है कि दो वस्तुओं के अन्य उपलब्ध संयोगों की तुलना में उपभोक्ता किसी एक संयोग के प्रति अपनी निश्चित अधिमान्यता व्यक्त कर सके। यह आवश्यक नहीं कि किसी एक विशिष्ट आय-कीमत परिस्थिति में चुनी गयी वस्तु किसी अन्य आय-कीमत परिस्थिति में भी उपभोक्ता द्वारा चुनी जाय। दूसरे शब्दों में यह मान लिया जाता है कि PL आय-कीमत रेखा समूची विश्लेषण-अवधि में स्थिर रहती है।

3. उपभोक्ता के अ स्वाद एवं अभिरूचियाँ दी हुई होती हैं और विश्लेषण-अवधि में अपरिवर्तित रहती हैं। विश्लेषण-अवधि में यदि उपभोक्ता के आस्वादों में कोई परिवर्तन हो जाता है तो इससे हमारे विश्लेषण में अनावश्यक जटिलताएँ उत्पन्न हो जायेंगी। सरलता के हित में यह सिद्धान्त उपभोक्ता के आस्वादों एवं उसकी आदतों को स्थिर ही मान लेता है।

4. यह मान लिया जाता है कि एक ही आय-कीमत परिस्थिति में उपभोक्ता दोनों वस्तुओं के छोटे संयोग की अपेक्षा बड़े संयोग को प्राथमिकता देता है। जैसा कि रेखा चित्र 11.1 में प्रदर्शित किया गया है उपभोक्ता दोनों वस्तुओ के अन्य किसी संयोग की अपेक्षा । संयोग को ही अधिमान्यता देता है। उदाहरणार्थ G,E,D, तथा F संयोग PL कीमत-रेखा के बायीं ओर स्थित हैं। A संयोग की तुलना में ये संयोग दोनों वस्तुओं की कम मात्राओं को प्रकट करते हैं।

5. यह आवश्यक है कि किसी एक दी हुई आय-कीमत परिस्थिति में उपभोक्ता दोनों वस्तुओं के एक ही संयोग का चयन करे। चित्र 11.1 में उपभोक्ता ने PL द्वारा व्यक्त आय-कीमत परिस्थितियों में केवल एक ही संयोग अर्थात A संयोग का चयन किया है। उपभोक्ता की मौद्रिक आय इतनी कम है कि उपलब्ध अनेक संयोगों में से बस वह केवल एक ही संयोग को खरीदने में समर्थ होता है।

6. उपभोक्ता को वस्तु की अधिक मात्रा खरीदने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है बशर्ते उसकी कीमत में पर्याप्त कटौती की जाय। उदाहरणार्थ यदि X वस्तु की कीमत में उल्लेखनीय कटौती की जाती है (जबकि Y वस्तु की कीमत में तनिक भी कमी नहीं होती) तो PL कीमत-रेखा दायीं ओर घूम जायेगी जिसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता X वस्तु की अधिक मात्रा खरीदेगा।

7. उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त के अनुसार उपभोक्ता द्वारा किया गया चयन उसके अधिमान को प्रकट करता है वास्तव में, यह इस विश्लेषण की मूल्भूत मान्यता है। यदि उपभोक्ता दो वस्तुओं के किसी विशेष संयोग का चयन करता है तो उसका यह चयन अन्य उपलब्ध संयोगों की तुलना में उस संयोग के प्रति उसके निश्चित अधिमान को व्यक्त करता है। उदाहरणार्थ, यदि उपभोक्ता X संयोग का चयन करता है तो इसका अभिप्राय यह हुआ है कि अन्य संयोगों की तुलना में वह उस X संयोग को अधिमान्यता देता है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता अन्य सभी संयोगों को X संयोग से घटिया समझता है, और इसी कारण उन्हें अस्वीकार कर देता है।

8. प्रो0 सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण मान्यता यह भी है कि सबल क्रमबद्धता अथवा अधिमान उपकल्पना के सबल रूप पर आधारित है। प्रो. हिक्स द्वारा प्रतिपादित तटस्थता -वक्र-विश्लेषण दुर्बल क्रमबद्धता के आधार पर निर्मित किया गया था। सन् 1956 में प्रकाशित अपनी पुस्तक A Revision of Demand Theory में प्रो. हिक्स ने निस्सन्देह तटस्थता -वक्र-विश्लेषण का परित्याग कर दिया था, लेकिन उन्होनें दुर्बल क्रमबद्धता की मान्यता को नहीं छोड़ा है।

9. प्रो. सैम्युएलसन का उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त एक अन्य मान्यता पर भी आधारित है। यह मान्यता अनुरूपता अथवा संगति तथा सकर्मकता की है। वास्तव में, अनुरूपता की मान्यता तो प्रो. सैम्युएलसन की अधिमान उपकल्पना के सबल रूप में निहित है। इसके अनुसार किसी व्यक्तिगत उपभोक्ता के अधिमानों से सम्बन्धित उसके चयन-व्यवहार के दो अवलोकनों के बीच टकराव नहीं हो सकता। अर्थशास्त्र की भाषा में इसे ''अनुरूपता मूल-कल्पना'' की संज्ञा दी गयी है।

11.3.6 माँग का नियम तथा उद्घाटित अधिमान परिकल्पना

उद्घाटित अधिमान परिकल्पना का प्रयोग माँग-नियम के निर्धारण के लिए भी किया गया है। प्रो0 सैम्युएलसन ने अपनी उद्घाटित अधिमान परिकल्पना की सहायता से मार्शल के माँग के नियम का व्युत्पादन किया है। जैसा कि सर्वविदित है, मार्शल का माँग नियम यह बताता है कि एक वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर, यदि आय व अन्य कीमतें स्थिर रहें, वस्तु की माँग मात्रा में कमी हो जाती है। अन्य शब्दों में, मार्शल के माँग के नियम के अनुसार किसी वस्तु की कीमत तथा माँग -मात्रा में विलोम सम्बन्ध होता है। सैम्युएलसन माँग और कीमत के इस सम्बन्ध को इस मान्यता के आधार पर प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है कि माँग की आय-लोच व धनात्मक है। धनात्मक आय लोच के द्वारा ही वह मार्शल द्वारा प्रतिपादित माँग व कीमत में सम्बन्ध को व्युत्पादित करता है। वह माँग के नियम का, जिसको उसने ''उपभोग सिद्धान्त का आधारभूत नियम'' कहा है, निम्न प्रकार वर्णना करता है।

''कोई भी वस्तु (साधारण हो या जटिल), जिसकी माँग मौद्रिक आय के बढ़ने पर सदा बढ़ती है, की माँग मात्रा में अवश्य संकुचन होना चाहिए जब केवल इसकी कीमत में वृद्धि हो।'' "Any good (simple or composite) that is known always to increase in demand when money income alone rises must definitely strink in demand when its price alone rises."

आधारभूत उपभोग -नियम के उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि सैम्युएलसन ने कीमत तथा माँग में विलोम सम्बन्ध नियम के लिए माँग की आय-लोच के धनात्मक होने को एक आवश्यक शर्त बना दिया है। आधारभूत नियम में ज्यामितिक प्रमाण को चित्र 11.2 में चित्रित किया गया है। मान लीजिए कि उपभोक्ता अपनी समस्त आय को दो वस्तुओं X तथा Y पर व्यय करता है। वस्तुओं की दी हुई कीमतों तथा आय से बजट रेखा AB बनायी गई है। AB रेखा उस कीमत-आय स्थिति को दर्शाती है जिसका सामना उपभोक्ता करता है। OAB त्रिभुज पर या उसके भीतर के समस्त संयोग उपभोक्ता को प्राप्य हैं और उनमें से किसी भी एक संयोग को वह चयन कर सकता है। मान लीजिए कि उपभोक्ता संयोग Q का चयन करता है। इसका अर्थ है कि उपभोक्ता OAB त्रिभुज पर के तथा उसके भीतर के विभिन्न संयोगों में से संयोग Q के लिए अधिमान को उद्घाटित करता है। अब मान लीजिए कि वस्तु X की कीमत बढ़ जाती है जबकि वस्तु Y की कीमत स्थिर रहती है। वस्तु X की कीमत के बढ़ने पर बजट अथवा कीमत रेखा AB से बदल कर AC हो जाती है। कीमत रेखा AC नई कीमत आय स्थिति को दर्शाती है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि वस्तु X की कीमत के बढ़ने का इसकी माँग पर क्या प्रभाव पड़ता है। हम यह मान लेते हैं कि माँग में परितर्वन आय में हो रहे परिवर्तनों की दिशा में होते हैं (अर्थात् माँग की आय-लोच धनात्मक है)। चित्र से स्पष्ट है कि कीमत-आय स्थिति AC में उपभोक्ता को संयोग Q प्राप्य नहीं है।

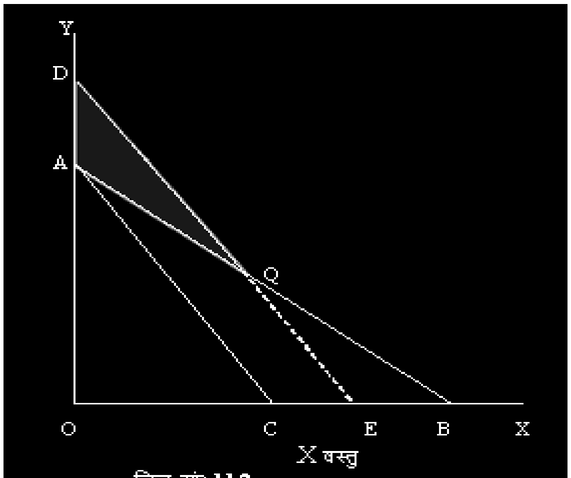

चित्र सं0 11.2

अब हम यह मान लेते हैं कि वस्तु X की बढ़ी हुई कीमत की क्षतिपूर्ति के लिए उपभोक्ता को अधिक रूपया देना होगा जिससे कि वह वस्तु X की बढ़ी हुई कीमत पर भी संयोग Q को प्राप्त कर सके।

वस्तु X की कीमत बढ़ने पर उपभोक्ता को पहले वाले संयोग क्रय को सम्भव बनाने के लिए जो अतिरिक्त रूपया देना होगा, उसको जे0आर0 हिक्स ने लागत अन्तर कहा है। चित्र में AC के समानान्तर रेखा DE इस प्रकार खींची गई है कि वह Q पर से गुजरे। DE रेखा वस्तु X की बढ़ी हुई कीमत तथा उपभोक्ता की बढ़ी हुई आय (लागत-अंतर के बराबर) को प्रदर्शित करती है। अब प्रश्न यह है कि कीमत आय स्थिति DE में उपभोक्ता कौन से संयोग का चयन करेगा। कीमत आय स्थिति DE में भी प्रारम्भिक संयोग Q उपभोक्ता को उपलब्ध है। यह स्पष्ट है कि वह DE रेखा पर फ से नीचे के किसी भी संयोग का चयन नहीं करेगा क्योंकि यदि वह DE रेखा पर Q के नीचे के किसी संयोग को चुनता है तो उसका चयन असंगत होगा। DE पर Q के नीचे के सभी संयोगों अर्थात् QE पर के सभी संयोगों को वह पहले भी क्रय कर सकता था परन्तु AB कीमत आय स्थिति में उसने इन सभी को Q के लिए त्याग कर दिया था। (QE के समस्त बिन्दु OABत्रिभुज में सम्मिलित थे)। चूँकि हम उपभोक्ता के व्यवहार में संगति की कल्पना कर चुके हैं इस लिए वह कीमत आय की DE स्थिति में फम् पर फ की तुलना में, किसी भी संयोग को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगा (जबकि उसको नई स्थिति में भी फ प्राप्य हैं)। इसलिए यह कहा जा सकता है कि DE कीमत-आय स्थिति में उपभोक्ता या तो पूर्व संयोग Q का ही चयन करेगा या DE रेखा के QD भाग पर अथवा उसके नीचे छायाकृत क्षेत्र के भीतर स्थित संयोग का चयन करेगा यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि QD पर स्थित संयोगों में फ की तुलना में पसंद करने में कोई असंगति नहीं होगी क्योंकि ये संयोग पहले वाली कीमत आय स्थिति AB में प्राप्य नहीं थे। फम् कीमत आय स्थिति में उपभोक्ता यदि पूर्व संयोग Q का चयन करता है तो वह X तथा Y की पहले के बराबर ही इकाईयाँ प्राप्त करेगा और यदि वह QD पर Q से ऊपर की ओर तथा छायाकृत क्षेत्र के भीतर के किसी संयोग को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तो वह पहले की तुलना में X की कम मात्रा खरीदता है तथा वस्तु Y की अधिक। अतः यद्यपि वस्तु X की कीमत में हुई वृद्धि की क्षतिपूर्ति के लिए उपभोक्ता को अतिरिक्त आय पर्याप्त मात्रा में प्रदान कर दी गई है, तो भी वह वस्तु X की कीमत में वृद्धि होने पर या तो उसकी पहले जितनी मात्रा खरीदता है या पहले से कम। अब उसको जो अतिरिक्त क्रयशक्ति प्रदान की गई थी यदि उससे वापस ले ली जाय, तो वह निश्चित रूप से, वस्तु X की कीमत बढ़ने पर उसकी कम मात्रा का क्रय करेगा। ऐसा तब होगा जबकि आय में कमी होने पर वस्तु X की माँग गिरती है (अर्थात्, यदि माँग की आय-लोच धनात्मक हैं) अन्य शब्दों में, जबकि वस्तु X की कीमत बढ़ जाय और उपभोक्ता को कोई अतिरिक्त आय प्राप्त न हो जिस कारण वह AC कीमत-आय स्थिति में ही क्रय करता है तो वह, Q स्थिति की तुलना में, वस्तु X की कम मात्रा का क्रय करेगा। अतः माँग की आय लोच को धनात्मक मान कर, कीमत-माँग में विलोम सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है। कीमत गिरने की स्थिति में भी कीमत व माँग में विलोम सम्बन्ध को चित्र सं. 11.3 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए कि AB रेखा प्रारम्भिक कीमत आय स्थिति को दर्शाती है तथा उपभोक्ता OAB त्रिभुज पर के तथा इसके भीतर के समस्त संयोगों में से Q का चयन

करता है। मान लीजिए कि वस्तु X की कीमत गिर जाती है और कीमत रेखा दायी ओर को विवर्तित होकर AC' बन जाती है।

अब हम उपभोक्ता की क्रयशक्ति को कुछ कम कर देते हैं जिससे वह वस्तु X की कम कीमत पर Q संयोग को क्रय कर सकता है। अतः चित्र में AC' के समानान्तर DE रेखा खीची गयी है जोकि Q पर से गुजरती है। DE कीमत रेखा वस्तु X की कम कीमत (जैसे कि AC' द्वारा व्यक्त है) तथा उपभोक्ता की गिरी हुई आय (लागत-अंतर के बराबर कमी) को दर्शाती है। यह स्पष्ट है कि DE कीमत आय

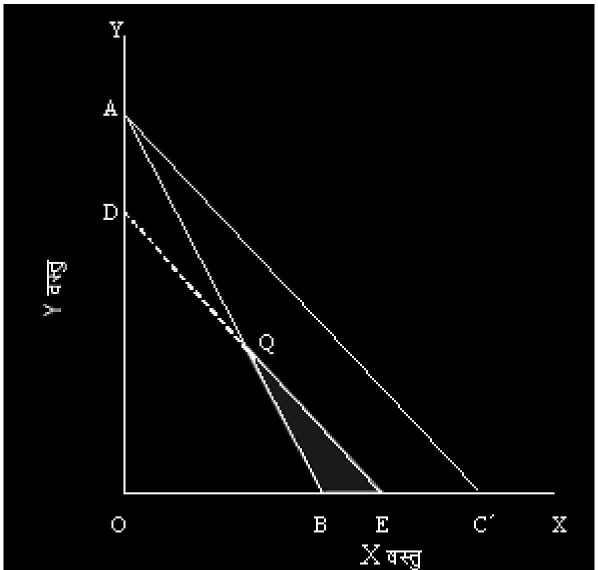

चित्र सं0 11.3

स्थिति में, उपभोक्ता Q बिन्दु से ऊपर की ओर QD पर के किसी भी संयोग का चयन नहीं करेगा क्योंकि ये सब संयोग उसको पूर्व कीमत-आय स्थिति AB में उपलब्ध थे और Q उसने इन सब को त्याग दिया था। अतः उपभोक्ता या तो Q का चयन करेगा या QE पर के अथवा छायाकृत क्षेत्र के भीतर के किसी संयोग का। कीमत-आय स्थिति DE में, यदि वह Q का चयन करता है तो वह X तथा Y वस्तुओं की उतनी ही मात्रा प्राप्त करेगा जितनी की वह कीमत आय की पूर्व स्थिति AB में कर रहा था। परन्तु यदि वह QE पर के किसी संयोग का चयन करता है तो वह वस्तु X का क्रय अधिक मात्रा में करता है तथा वस्तु Y का कम मात्रा में (पूर्व कीमत-आय स्थिति AB की तुलना में)। अतः उपभोक्ता की आय के कम कर देने पर भी उपभोक्ता, कम कीमत पर वस्तु X की या तो पहले जितनी ही मात्रा खरीदता है या पहले से अधिक। यदि, जो क्रय शक्ति उससे ले ली गयी थी, वह उसको वापिस कर दी जाती है तो वह AC’ कीमत आय स्थिति का सामना करेगा और, निश्चित रूप से, वस्तु X की कम कीमत पर इस वस्तु का क्रय अधिक मात्रा में करेगा। ऐसा तभी होगा जब

कि आय के बढ़ने पर उस वस्तु X के लिए माँग बढ़ जाती है (अर्थात् वस्तु X के लिए उसकी माँग की आय-लोच धनात्मक है)।

उपर्युक्त विश्लेषण से माँग सिद्धान्त का आधारभूत नियम सिद्ध हो जाता है जिसके अनुसार जिस वस्तु की माँग में परिवर्तन आय में परिवर्तन की दिशा में होते हैं, उस वस्तु की माँग कीमत बढ़ने पर संकुचित तथा कीमत गिरने पर विस्तृत होती है। यह बताना आवश्यक है कि सैम्युएलसन के सिद्धान्त में दो मान्यताएँ निहित है। सर्वप्रथम, उपभोक्ता सर्वदा उन संयोगों में चयन करता है जो कीमत रेखा पर स्थित होते है। दूसरे शब्दों में, वह त्रिभुज के भीतर के किसी भी संयोग को वास्तव में नहीं चुनता। यह इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता सदा, वस्तुओं की कम मात्रा की तुलना में, उनकी अधिक मात्रा को पसन्द करता है। सैम्युएलसन के सिद्धान्त में दूसरी निहित मान्यता यह है कि प्रत्येक कीमत-आय स्थिति में वह वस्तुओं के केवल एक संयोग के लिए ही अपना अधिमान उद्घाटित करता है। इन दो निहित मान्यताओं के आधार पर उपभोक्ताओं के चयन में संगति का व्यवहार तथा माँग की आय लोच के धनात्मक होने की दो स्पष्ट मान्यताओं के आधार पर सैम्युएलसन ने कीमत माँग में विलोम के नियम को सिद्ध किया है।

11.4 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण का मूल्यांकन

किसी भी सिद्धान्त के मूल्यांकन में उसके गुणों एंव त्रुटियों की विवेचना की जाती है। उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त भी इसका अपवाद नहीं है। कुछ अर्थशास्त्रियों का सुदृढ़ मत है कि यह सिद्धान्त मार्शल एवं हिक्स के पूर्वगामी माँग -सिद्धान्तों पर एक बहुत बड़ा सुधार है।

11.4.1 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण की श्रेष्ठता

उद्घाटित अधिमान विश्लेषण की श्रेष्ठता के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित है:

1. यह सिद्धान्त अधिक यथार्थ है - इस विश्लेषण के कतिपय समर्थकों का विचार है कि मार्शल तथा हिक्स द्वारा प्रतिपादित पूर्वगामी माँग -सिद्धान्तों की तुलना में यह सिद्धान्त अधिक यथार्थ है। जैसा कि हमें विदित है, मार्शल का विश्लेषण उपभोक्ता द्वारा अपने व्यय से प्राप्त उपयोगिता की गणन -संख्यात्मक माप पर आधारित है। मार्शल के अनुसार किसी वस्तु से प्राप्त उपयोगिता को ठीक उसी प्रकार मापा जा सकता है जिस तरह किसी व्यक्ति के शारीरिक तापक्रम को थर्मामीटर से मापा जा सकता है। अब अर्थशास्त्र का एक साधारण नवागत भी भलीभांति यह जानता है कि मार्शल की उपर्युक्त मान्यता पूर्णतया अयथार्थ ही नहीं, बल्कि वास्तविक अनुभव के भी विपरीत है। अर्थशास्त्री के पास कोई ऐसा उपकरण नहीं है जिसकी सहायता से वह उपभोक्ता द्वारा अपने व्यय से प्राप्त उपयोगिता की माप कर सके। अतः उपयोगिता की गणन -संख्यात्मक माप का विचार विशुद्धतया काल्पनिक, अव्यवहार्य एवं अवास्तविक है। इसके विपरीत, प्रो. हिक्स का विश्लेषण

उपयोगिता की क्रम संख्यात्मक माप पर निर्मित किया गया है। तटस्थता -वक्र-विश्लेषण के अनुसार उपभोक्ता निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि दो वस्तुओं के किसी विशिष्ट संयोग से उसे कितनी उपयोगिता अथवा संतुष्टि प्राप्त हुई है, क्योंकि उसे सही-सही मापने हेतु उसके पास कोई उपकरण नहीं हैं। उपभोक्ता तो केवल इतना ही कह सकता है कि दोनो वस्तुओं का A संयोग उसे उन्हीं दोनों वस्तुओं के B संयोग से अधिक अथवा कम उपयोगिता देता है। प्रो0 हिक्स की उपयोगिता की क्रम-संख्यात्मक माप की मान्यता पर एक बड़ा सुधार है। इसके बावजूद भी हिक्स की मान्यता पूर्णतया संतोषजनक नहीं है। इसके अन्तर्गत भी उपभोक्ता द्वारा यह जानने हेतु मनोवैज्ञानिक प्रयास किसा जाता है कि दोनों वस्तुओं का कौन-सा संयोग (A अथवा B उसे अधिक संतुष्टि प्रदान करता है। अतः मार्शल के विश्लेषण की भॉति हिक्स के विश्लेषण का स्वरूप भी मनोवैज्ञानिक है। उस सीमा तक यह कम यथार्थ है। लेकिन उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त का उपभोक्ता-व्यवहार के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से कोई संबंध नहीं है। यह सिद्धान्त तो बाजार में उपभोक्ता के वास्तविक अवलोकित व्यवहार पर पूर्णतः निर्भर करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार उपभोक्ता का व्यवहार समझने हेतु विश्लेषणकर्ता को उसकी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियो का अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं है। विश्लेषणकर्ता को निष्कर्ष निकाल ने हेतु उपभोक्ता के वास्तविक बाजार-व्यवहार का ही अध्ययन करना होगा। उपभोक्ता के वास्तविक अवलोकित बाजार-व्यवहार पर आधारित विश्लेषण उसकी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों पर निर्मित विश्लेषण की तुलना में कहीं अधिक अच्छा, कहीं अधिक यथार्थ एवं कहीं अधिक विश्वसनीय होता है। उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त द्वारा प्रदत्त निष्कर्ष एवं परिणाम मार्शल एवं हिक्स के माँग के सिद्धान्तों के निष्कर्षों की तुलना में अधिक यथार्थ एवं विश्वसनीय हैं। यही कारण है कि हाल ही के वर्षो में उद्घाटित अधिमान विश्लेषण ने मार्शल एवं हिक्स के प्रतियोगी विश्लेषणों को विस्थापित कर दिया है।

2. यह सिद्धान्त अधिक वैज्ञानिक है - उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त के समर्थकों का यह दावा भी है कि यह सिद्धान्त मार्शल तथा हिक्स के सिद्धान्तों की तुलना में अधिक वैज्ञानिक है। जैसा कि सुविदित है, मार्शल का विश्लेषण वस्तु की बाजार माँग -अनूसूची पर आधारित है। माँग अनुसूची मे दो स्तम्भ होते हैं। प्रथम स्तम्भ में विभिन्न कीमतें दी होती हैं, और दूसरे स्तम्भ में उन कीमतों पर वस्तु की माँग मात्राओं को प्रस्तुत किया जाता है। स्पष्ट है कि माँग-अनुसूची में प्रदर्शित सभी कीमतों बाजार में प्रचलित कीमतें नहीं होती। उन विभिन्न विभिन्नों कीमतों में से केवल एक ही ऐसी कीमत होती है जो, वास्तव में, प्रचलित कीमत होती है। उस प्रचलित कीमत के समक्ष दिखायी गयी वस्तु की माँग-मात्रा ही वास्तविक माँग -मात्रा होती है। उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन करते समय ''प्रचलित कीमत'' और उसके समक्ष दिखायी गयी ''माँग-मात्रा'' ही वास्तव में प्रासंगिक मात्राएं होती हैं। माँग-अनुसूची का शेष भाग तो विश्लेषणकर्ता के लिए अनावश्यक एवं असंगत होता है।

हिक्स के विश्लेषण में भी बिलकुल वही त्रुटि पायी जाती है जो मार्शल के सिद्धान्त में निहित है। हिक्स द्वारा प्रस्तुत तटस्थता-वक्र (अथवा मानचित्र) दोनो वस्तुओं । तथा ठ के उन अनेक संयोगों को व्यक्त करते हैं जो उपभोक्ता अपने सीमित साधनों से खरीद सकने में समर्थ हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि उपभोक्ता उन दो वस्तुओं के सभी संयोगों को नहीं खरीद सकता। उसे तो इन सभी सम्भव वैकल्पिक संयोगों में से बस केवल एक संयोग का ही चयन करना है। हिक्स के कथनानुसार आय-कीमत रेखा एवं तटस्थता-वक्र का स्पर्श-बिन्दु ही दोनों वस्तुओं के उस संयोग को व्यक्त करता है जो उपभोक्ता द्वारा खरीदा जायेगा। लेकिन यह सम्भव है कि स्पर्श-बिन्दु द्वारा व्यक्त दोनों वस्तुओं का यह संयोग बाजार में उपभोक्ता को उपलब्ध ही न हो। इस सीमा तक तटस्थता वक्र विश्लेषण द्वारा प्रदर्शन निष्कर्ष यथार्थता-रहित होते हैं। यही नहीं, तटस्थता-मानचित्र दोनों वस्तुओं के अनेक ऐसें संयोगों को भी उद्घाटित करता है जो आय की सीमितता के कारण उपभोक्ता की पहुँच से परे होते हैं। अतः ऐसे संयोग तो उपभोक्ता के लिए पूर्णतया असंगत होते हैं और उन्हें तटस्थता-मानचित्र में प्रदर्शित करने की आवश्यकता ही नहीं।लेकिन फिर भी ऐसे संयोगों को उपभोक्ता के मानचित्र में स्थान दिया जाता है। उद्घाटित अधिमान विश्लेषण की श्रेष्ठता इस बात में निहित है कि यह दोनों वस्तुओं के उन संयोगों को उल्लेख नहीं करता है जो उपभोक्ता द्वारा नहीं खरीदे जाते। यह विश्लेषण तो केवल उसी संयोग का उल्लेख करता है जो बाजार में उपलब्ध है और जिसे, वास्तव में, उपभोक्ता खरीदता है।

3. यह सिद्धान्त अधिक संगत है- उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त पूर्वगामी माँग-विश्लेषण के इस दृष्टिकोण से श्री श्रेष्ठ हैं क्योंकि वह यह मानकर चलता है कि उपभोक्ता का बाजार-व्यवहार अधिक संगत एवं अधिक युक्तिक होता है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत उपभोक्ता का चयन अन्तिम होता है, और वह इस चयन में तब तक कोई परिवर्तन नहीं करता जब तक कि बाजार-परिस्थिति में कोई मूल परिवर्तन नहीं हो जाता। आइए, हम मान लें कि उपभोक्ता A संयोग का चयन करता है जबकि B, C तथा D संयोग भी उपलब्ध हैं। यह यदि किसी अन्य परिस्थति में B, C तथा D विद्यमान हैं तो भी उपभोक्ता A संयोग को ही अधिमान्यता देना जारी रखेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि उपभोक्ता जब एक बार कोई चयन कर लेता है तब वह उसी चयन पर कायम रहता है जब कि बाजार-परिस्थिति में कोई मूल परिवर्तन नहीं हो जाता। इस प्रकार तटस्थता वक्र विश्लेषण की अपेक्षा उद्घाटित अधिमान विश्लेषण के अधीन उपभोक्ता का व्यवहार अधिक संगत होता है। उदाहरणार्थ, तटस्थता वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत उपभोक्ता वस्तु संयोग का कोई निश्चयात्मक चयन नहीं करता है। वह तो समान उपयोगिता देने वाले अनेक विभिन्न संयोगों के प्रति उदासीन ही रहता है। वह किसी एक तटस्थता वक्र पर स्थित किसी भी बिन्दु का चयन कर सकता है क्योंकि सभी बिन्दु उसे समान उपयोगिता प्रदान करते हैं। मान लीजिए कि A,B C तथा D सभी एक ही तटस्थता -वक्र पर स्थित हैं। उपभोक्ता इनमें से किसी भी संयोग का चयन कर सकता है क्योंकि ये सभी संयोग समान उपयोगिता देने वाले हैं। यदि उपभोक्ता ने किसी परिस्थिति में । संयोग का चयन किया है तो किन्ही अन्य

परिस्थितियों में वह B,C तथा D को भी चुन सकता है। इस प्रकार, तटस्थता वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत उपभोक्ता के व्यवहार में सामंजस्य का अभाव रहता है। यह दुर्बल क्रमबद्धता की मान्यता का परिणाम है जो इस विश्लेषण में निहित है।

4. कम मान्यताओं पर आधारित - सैम्युएलसन का यह सिद्धान्त अपेक्षाकृत कम मान्यताओं पर आधारित है।

11.4.2 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण के दोष/कमियाँ

प्रो0 सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान विश्लेषण पर्याप्त श्रेष्ठता के बावजूद इसमें कुछ दोष एवं त्रुटियाँ पायी जाती हैं। प्रथम, उद्घाटित अधिमान विश्लेषण ने उपभोक्ता के व्यवहार में तटस्थता की सम्भावना को पूर्णतः खारिज कर दिया है। इस विश्लेषण के अनुसार उपभोक्ता दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। उसे तो वस्तु-संयोग के बारे में एक ही अन्तिम निर्णय लेना है। दूसरे शब्दो में, उसे दो वस्तुओं के संयोग के बारे में एकल चयन ही करना है। इसका कारण यह था कि प्रो0 सैम्युएलसन ने इस विश्लेषण का निर्माण सबल क्रमबद्धता की मान्यता के आधार पर किया था। चूँकि उद्घाटित अधिमान विश्लेषण में तटस्थता की सम्भावना को खारिज कर दिया गया है, इसलिए कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस विश्लेषण की यह कहकर आलोचना की है कि यह न केवल अयथार्थ, बल्कि तथ्यों के भी विपरीत है। आलोचकों का तर्क यह है कि यदि उपभोक्ता के अधिमान का निर्णय उसके बाजार-व्यवहार के अनेक अवलोकनों ;वइेमतअंजपवदेद्ध को ध्यान में रखकर करना है तो फिर तटस्थता की सम्भावना को एकदम खारिज नहीं किया जा सकता। सम्भव है दोनों वस्तुओं के चयनित संयोग के आसपास ही तटस्थता के बिन्दु उत्पन्न हो जायें। इसका कारण स्पष्ट है। उपभोक्ता कोई यन्त्र मानव तो है नहीं कि वह एक ही वस्तु-संयोग का बार-बार चयन करता चला जाय। वह तो रक्त एवं अस्थियों का बना मानव है। उसे वास्तविक व्यवहार में निश्चय ही तटस्थता की सम्भावना उत्पन्न हो सकती है। यह बिल्कुल सम्भव है कि उपभोक्ता चयनित बिन्दु एवं पड़ोस में स्थित अन्य बिन्दुओं के बीच तटस्थता की भावना का प्रदर्शन करे।

दूसरे, कुछ आलोचकों ने माँग की आय की धनात्मक लोच की मान्यता को भी चुनौती दे डाली है। यह मान्यता, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान विश्लेषण का अभिन्न अंग है। प्रो0 सैम्युएलसन ने ''उपभोग सिद्धान्त के मूल्भूत नियम'' का पुनर्निर्माण इस स्पष्ट मान्यता के आधार पर किया था कि माँग की आय-लोच (अथवा आय-प्रभाव) धनात्मक होती है। इसी मान्यता को आधार बनाकर सैम्युएलसन ने कीमत एवं माँग के बीच विपरीत सम्बन्ध की स्थापना की है। उपर्युक्त मूल्भूत नियम के अनुसार कीमत एवं माँग के बीच विपरीत सम्बन्ध होता है। अधिकांश वस्तुओं के बारे में यह बात सही उतरती हैं। जब किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है, तो अन्य परिस्थितियां समान रहते हुए उसकी माँग में कमी हो जाती है। इसके विपरीत, जब उस वस्तु की कीमत में कमी होती है तो अन्य परिस्थितियां समान रहते हुए उसकी माँग में वृद्धि होती

जाती है। लेकिन यह बात सभी वस्तुओं पर कार्यशील नहीं होती। उदाहरणार्थ, यदि माँग की आय-लोच (आय-प्रभाव) ऋणात्मक है तो कीमत एवं माँगके बीच विपरीत सम्बन्ध नहीं होगा। ऐसी परिस्थिति में तो माँग एवं कीमत के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध होगा। कीमत में वृद्धि के परिणामस्वरूप माँग में वृद्धि हो जायेगी। इससे प्रो0 सैम्युएलसन के ''उपभोग सिद्धान्त के मूल्भूत नियम'' का आधार ही समाप्त हो जायेगा। यह नियम, जैसा की पहले कहा जा चुका है, कीमत एवं माँग के बीच के विपरीत सम्बन्ध पर निर्मित किया गया । इसका अभिप्राय यह हुआ कि सैम्युएलसन का उपर्युक्त नियम ''गिफिन वस्तु'' की व्याख्या करने में असमर्थ है।'' ''गिफिन वस्तु''' के मामले में ऋणात्मक आय-प्रभाव इतना अधिक शक्तिशाली होता है कि वह धनात्मक स्थानापत्ति-प्रभाव को नष्ट कर देता है। परिणाम यह होता है कि वस्तु की कीमत एवं उसकी माँग में प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। दुर्योग से उद्घाटित अधिमान विश्लेषण ''गिफिन वस्तु'' की व्याख्या करने में असमर्थ है। वास्तव में, यह इस विश्लेषण की गम्भीर त्रुटि मानी जाती है।

लेकिन हिक्स द्वारा प्रतिपादित विश्लेषण में यह त्रुटि नहीं पायी जाती है। प्रो0 हिक्स का विश्लेषण इतना व्यापक है कि ''गिफिन वस्तु'' का मामला उसमें स्वतः ही सम्मिलित हो जाता है। इस दृष्टिकोण से हिक्स का तटस्थता -वक्र-विश्लेषण सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त से अधिक श्रेष्ठ है।

तीसरे, उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त कीमत-परिवर्तन के आय-प्रभाव एवं स्थानापत्ति-प्रभाव के बीच के अन्तर को स्पष्ट करने में असमर्थ रहता है। यदि किसी वस्तु की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उस वस्तु की माँग-मात्रा में वृद्धि हो जाती है तो उद्घाटित अधिमान विश्लेषण हमें यह नहीं बतलाता कि माँग-मात्रा में हुई वृद्धि का कितना अंश आय-प्रभाव और कितना अंश स्थानापत्ति-प्रभाव के कारण है। यह विश्लेषण तो हमें कीमत में हुई कमी के परिणामस्वरूप माँग -मात्रा में होने वाली कुल वृद्धि की जानकारी ही देता है। इसके विपरीत, तटस्थता -वक्र-विश्लेषण हमें केवल   यह ही नहीं बताता कि वस्तु की माँग -मात्रा में कुल कितनी वृद्धि हुर्ह बल्कि स्पष्टतः यह भी बताता है कि उस कुल वृद्धि का कितना भाग आय-प्रभाव और कितना भाग स्थानापत्ति-प्रभाव के कारण है। इस दृष्टिकोण से तटस्थता -वक्र-विश्लेषण उद्धटित अधिमान विश्लेषण की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। आय-प्रभाव तथा स्थानापत्ति-प्रभाव के बीच अन्तर करने में असमर्थता उद्घाटित अधिमान विश्लेषण की गम्भीर त्रुटि मानी जाती है। वास्तव में, यह त्रुटि तो इस विश्लेषण में निहित ही है। उद्घाटित अधिमान विश्लेषण, जैसा पहले आप समझ चुके हैं, उपभोक्ता के अवलोकित व्यवहार पर आधारित है। उपभोक्ता द्वारा किया गया चयन उसके बाजार-व्यवहार से ही प्रकट हो जाता है। अतः उपभोक्ता के अधिमानों को जानने के लिए उसके बाजार-व्यवहार को सावधानीपूर्वक देखना चाहिए। लेकिन उसके बाजार-व्यवहार को मात्र देखने से ही यह पता नहीं चलेगा कि माँग में हुई वृद्धि का कितना भाग आय-प्रभाव और कितना भाग स्थानापत्ति-प्रभाव के कारण है। यह दोष तो उद्घाटित अधिमान

सिद्धान्त में निहित ही है। स्मरण रहे, यह त्रुटि तो परम्परागत उपयोगिता विश्लेषण में भी पायी जाती है। डॉ0 मार्शल भी स्थानापत्ति-प्रभाव को आय-प्रभाव से पृथक करने में असमर्थ रहे थे। अतः उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त उतना विश्लेषिक नहीं है जितना कि तटस्थता -वक्र विश्लेषण है।

चौथे, उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त केवल व्यक्तिगत माँग -वक्र से ही सम्बन्धित होता है। इस कारण विश्लेषिक उद्देश्यों के लिए इस सिद्धान्त की उपयोगिता कम हो गयी है। इस दृष्टिकोण से मार्शल का माँग का उपयोगिता सिद्धान्त अधिक श्रेष्ठ एवं अधिक व्यापक है। यह व्यक्तिगत माँग -वक्र की ही नहीं, बल्कि बाजार माँग -वक्र की भी व्याख्या करता है।

पाँचवें, उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त केवल उसी उपभोक्ता का ही अध्ययन करता है जिसका बाजार-व्यवहार विशुद्धतः प्रचलित बाजार परिस्थितियों से शासित होता है। इस सिद्धान्त से यह मान लिया गया है कि उपभोक्ता पर अन्य किसी तत्व का प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन, जैसा कि आप जानते हैं, बाजार में खरीददारी करते समय वास्तविक उपभोक्ता पर कई गैर-आर्थिक तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार, उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त के आदर्श उपभोक्ता एवं बाजार के वास्तविक उपभोक्ता में अन्तर पाया जाता है। चूँकि वास्तविक उपभोक्ता पर प्रचलित बाजार परिस्थितियों के अलावा अन्य कई गैर-आर्थिक तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है, अतः यह सम्भव है कि उसका अवलोकित व्यवहार ‘‘अनुरूपता-मान्यता’’ के विरूद्ध हो। दूसरे शब्दों में, इन्हीं गैर-आर्थिक तत्वों के कारण उपभोक्ता के अवलोकित व्यवहार में सामंजस्य का अभाव पाया जाता है।

11.4.3 विश्लेषण के निष्कर्ष

प्रो0 सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त की उपर्युक्त त्रुटियों एवं परिसीमाओं को ध्यान में रखते हुए यह कहना कठिन है कि यह सिद्धान्त तटस्थता -वक्र-विश्लेषण पर कोई सुधार है। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त का कल्याणकारी अर्थशास्त्र के लिए बहुत महत्व है।

11.5 सारांश

उद्घाटित अधिमान विश्लेषण के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो0 पाल ए0 सैम्युएलसन समस्त अर्थ जगत में इसलिए प्रशंसनीय रहे क्योंकि उपभोक्ता विश्लेषण का उन्होंने ऐसा सिद्धान्त दिया जो प्रो0 मार्शल एवं प्रो0 हिक्स के विश्लेषणों की तुलना में श्रेष्ठ एवं वास्तविक रहा। मार्शल का सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण ‘‘उपयोगिता मापनीय हैं’’ के विचारों पर आधारित रहा। उनके संख्यावाचक दृष्टिकोण को अर्थशास्त्रियों ने स्वीकार नहीं किया। उनके निष्कर्ष भले ही महत्वपूर्ण रहे लेकिन उसकी विधियां अमान्य रहीं। कालांतर में प्रो0 हिक्स ने उपभोक्ता व्यवहार सिद्धान्त का पुनर्निर्माण अधिमान वक्र विश्लेषण के आधार पर जब किया तो लोगों को लगा कि यही विकल्प है लेकिन इस मनोवैज्ञानिक विचार में भी अनेक त्रुटियां एवं दोष पाये गये। अर्थशास्त्रियों ने

नयी बोतल में पुरानी शराब तक की संज्ञा दे डाली। परिणामतः बाजार में उपभोक्ता के व्यवहार का विश्लेषण करने में दोनों विकल्प कारगर सिद्ध नहीं हुए। सैम्युएलसन ने अपने विश्लेषण में विषयगत अथवा मनोवैज्ञानिक आधार को पूर्णतः समाप्त कर इसे पूर्णतया उपभोक्ता के अवलोकित बाजार व्यवहार पर आधारित किया। उनका यह सिद्धांत माँग की व्यवहारवादी व्याख्या करता हैं। प्रो0 सैम्युएलसन के निष्कर्ष मार्शल एवं हिक्स के निष्कर्षों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है। यह पूर्व विश्लेषणों पर एक प्रकार का सुधार है। यह सिद्धान्त व्यवहारवादी इस रूप में है कि अस्पष्ट एवं अनुमान पर आधारित नहीं है बल्कि इसके निष्कर्ष वास्तविक बाजार व्यवहार से लिये गये हैं।

प्रो0 सैम्युएलसन का दृढ़ अथवा उद्घाटित अधिमान विश्लेषण में सबलक्रमबद्धता की अधिमान परिकल्पना का प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ है कि उपभोक्ता के अधिमान क्रम के विभिन्न संयोगों में निश्चित क्रम होता है और इसलिए जब एक उपभोक्ता किसी एक संयोग का चयन करता है तो अन्य प्राप्य संयोगों की तुलना में वह उसके लिए अपने अधिमान को स्पष्टतः उद्घाटित करता है। अतः सबल क्रमबद्धता की स्थिति में यह मान लिया जाता है कि विभिन्न संयोगों के मध्य उपभोक्ता तटस्थ नहीं हो सकता। चयन व्यवहार में कोई भी दो पर्यवेक्षण इस प्रकार के नहीं होते जो उपभोक्ता के अधिमान के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी प्रमाण प्रस्तुत करें। इस प्रकार इस विश्लेषण में संगति अभिधारणा का तार्किक विधि से प्रयोग हुआ है। इस प्रकार यह विश्लेषण अधिक यथार्थ , अधिक वैज्ञानिक एवं अधिक संगत युक्त है। इस सिद्धान्त की भी अपनी सीमायें एवं कमियां हैं, लेकिन इसमें सन्देह नही कि उद्घाटित अधिमान विश्लेषण के प्रतिपादन से कल्याणकारी अर्थशास्त्र में इसकी महत्ता एवं उपादेयता अत्यधिक बढ़ी है।

11.6 शब्दावली

क्रम संख्यात्मक उपयोगिता - जहॉ उपयोगिता का मात्रात्मक मापन नहीं वरन् व्यवहार में इसकी तुलना की जा सकती हो।

सबल क्रमबद्धता - उपभोक्ता के अधिमान क्रम के विभिन्न संयोगों में निश्चित क्रम होता है। जब उपभोक्ता किसी एक संयोग का चयन करता है तो अन्य प्राप्य संयोगों की तुलना में वह उसके लिए अपने अधिमान को स्पष्टतः उद्घाटित करता है।

अवलोकित बाजार व्यवहार - उपभोक्ता व्यवहार के जो निष्कर्ष बाजार में अवलोकित तथ्यों पर आधारित हों।

संगति अभिधारणा . जहां चयन व्यवहार में कोई भी दो पर्यवेक्षण इस प्रकार के नहीं होते जो उपभोक्ता के अधिमान के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी प्रमाण प्रस्तुत करें।

उपभोग सिद्धान्त का आधारभूत नियम ;- कोई भी वस्तु जिसकी माँग मौद्रिक आय के बढ़ने पर सदा बढ़ती है, की माँग -मात्रा में अवश्य संकुचन होना चाहिए जब केवल इसकी कीमत में वृद्धि हो।

चयन अधिमान का उद्घाटित होना - उपभोक्ता द्वारा एक चयन विशेष के पक्ष में दृढ़ अथवा सबल अधिमान उद्घाटितकर अन्य संयोगों का त्याग करना।

11.7 अभ्यास प्रश्न

लघु प्रश्न

उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त की मान्यताएं क्या हैं?

उद्घाटित अधिमान विश्लेषण किस प्रकार तटस्थता वक्र विश्लेषण से श्रेष्ठ है?

सबल क्रमबद्धता किसे कहते हैं?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. प्रकट अधिमान सिद्धान्त का आधार है -

क. निर्बल क्रमबद्धता ख. सबल क्रमबद्धता

ग. क और ख सत्य हैं घ. क और ख असत्य हैं

2. उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त आधारित है -

क. सख्यात्मक उपयोगिता पर ख. क्रमसूचक उपयोगिता पर

ग. अवलोकित बाजार व्यवहार पर घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. प्रकट अधिमान सिद्धान्त के प्रतिपादक थे-

क. राबर्टसन ख. सैम्युएलसन

ग. मार्शल घ. हिक्स

उत्तर 1. ख 2. X 3. ख

11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Demiel R. Fusfeld - Economics : Principles of Political Economy 3rd Ed. - 1998.

- C.E. Ferguson and Gould - Micro Economic theory 5th Ed. 1988 Ruffin Roy and Gregory.
- Koutsoyinuis. A. (1979) Modern Microeconomics, Macmillian Press, London.
- Colander, D.C (2008) Economics, McGraw Hill Publication.
- Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-economics Theory, Himalaya Publishing House.
- एम0एल0 सेठ अर्थशास्त्र के सिद्धान्त -, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
- एच0एल0 आहूजा उच्चतर आर्थिक सिद्धा -न्त, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- एस0पी0 दुबे, वी0सी0 सिन्हा अर्थशास्त्र के सिद्धान्त -, 1988 नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त।
- जे0पी0 मिश्र, व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण, मिश्रा टेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी।
- एस0एन0 लाल , व्यष्टि अर्थशास्त्र शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- डॉ0 बद्री विशाल त्रिपाठी डॉ -0 अमिताभ तिवारी अर्थशास्त्र के सिद्धान्त -, किताब महल्, इलाहाबाद।

11.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. उद्घाटित अधिमान विश्लेषण में निहित मूल विचार की रेखाचित्र सहित व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 2. उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

प्रश्न 3. क्या सैम्युएलसन का उद्घाटित अनधिमान विश्लेषण हिक्स के विश्लेषण के ऊपर सुधार है? विवेचना कीजिए।

इकाई-12 लागत वक्र विश्लेषण

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्दे

12.2 लागत की धारणाएं

12.2.1 मौद्रिक लागत

12.2.2 दृश्य लागतें

12.2.3 अदृश्य लागतें

12.2.4 सामान्य लाभ

12.3 वास्तविक लागत

12.4 अवसर लागत

12.5 अल्पकालीन लागतें

12.5.1 औसत स्थिर लागत

12.5.2 औसत परिवर्तनशील लागत

12.5.3 औसत कुल लागत

12.5.4 सीमान्त लागत

12.6 औसत लागत एवं सीमान्त लागत में सम्बन्ध

12.6.1 औसत लागत एवं सीमान्त लागत का गणितीय सम्बन्ध

12.6.2 सीमान्त लागत-वक्र का औसत परिवर्तनशील लागत से सम्बन्ध

12.7 लघु उत्तरीय प्रश्न

12.8 दीर्घकालीन लागत

12.8.1 दीर्घकालीन औसत लागत

12.8.2 दीर्घकालीन सीमान्त लागत

12.8.3 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की आकृति: बचतें एवं हानियां

12.8.4 पैमाने की बचतें

12.8.5 आन्तरिक बचतें

12.8.6 बाह्य बचतें

12.8.7 पैमाने की हानियां

12.9 लघु उत्तरीय प्रश्न
12.10 सारांश
12.11 शब्दावली
12.12 संदर्भ
12.13 लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर
12.14 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

इस खण्ड के पूर्व हम संतुलन विश्लेषण तथा उपभोक्ता के व्यवहार का विस्तृत अध्ययन कर चुके हैं। अर्थशास्त्र में उपभोग के सिद्धान्तों का जितना महत्व है उतना ही महत्व उत्पादन के सिद्धान्तों का है। वासतविकता में दोनों सिद्धान्त मूल्य निर्धारण में मांग और पूर्ति दोंनों पक्षों की सैद्धान्तिक व्याख्या करते है। जिस प्रकार मांग विश्लेषण में उपयोगिता का प्रमुख स्थान है उसी प्रकार उत्पादन विश्ले षण में लागत एवं आगम की धारणाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। लागत ज्ञात होने पर ही फर्म या उद्योग की संस्थिति निर्धारण करना सम्भव है। अर्थात् जिस प्रकार से उपभोक्ता के संस्थिति-निर्धारण में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उपयोगिता या संतुष्टि का महत्वपूर्ण योग दान है उसी प्रकार उत्पादक के संस्थिति के निर्धारण में लागत एवं आगम का महत्वपूर्ण योग दान है।

हर उत्पादक अपनी उत्पादन क्रिया से अधिकतम लाभ कमाना चाहता है। उसका लाभ उसके लागत व आगम के अन्तर पर निर्भर करता है। अतः उत्पादन के दृष्टिकोण से लागत व आगम दोनों पक्षों से महत्वपूर्ण स्थान है। इस इकाई में हम उत्पादन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की लागत धारणाओं का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

12.1 उद्देश्य

उत्पादक के दृष्टिकोण से लागत पक्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उत्पादन प्रारम्भ करने से पूर्व उत्पत्ति के साधनों को एकत्रित करना पड़ता है। उत्पत्ति के साधनों तथा स्वयं उत्पादक की उद्यमशीलता को एक निश्चित संयोग में मिलाये बिना उत्पादन नहीं किया जा सकता। प्रत्येक उत्पत्ति के साधन का अपना अलग मूल्य होता है तथा एक उत्पत्ति के साधन से दूसरे उत्पत्ति के साधन को एक सीमा तक प्रतिस्थापित भी किया जा सकता है। उत्पत्ति के साधनों में महँगे साधनों का प्रयोग निश्चित रूप से कुल उत्पादन लागत को बढ़ायेगा, साथ ही सस्ते उत्पत्ति के साधन से उत्पादित की जा रही वस्तु की उत्पादन लागत अपेक्षाकृत कम होगी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले समस्त में सहायक साधनों को दिया जाने वाला भुगतान ही उत्पादन लागत है।

- प्रस्तुत इकाई में यह अध्ययन करेंगें कि:-
- लागत की विभिन्न धारणएं कौन-कौन सी है।
- मौद्रिक लागतें क्या है ? तथा इनमें कौन-कौन से तत्व सम्मिलित होते है।
- वास्तविक लागत की अवधारणा क्या है।
- अवसर लागत की अवधारणा क्या है।

- स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतें क्या होती है।
- औसत लागत व सीमान्त लागतें क्या होती है।

12.2 लागत की धारणाएं

अर्थशास्त्र में लागत शब्द को कई अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। अर्थषास्त्रियों द्वारा लागत की विभिन्न प्रकार की धारणाएं प्रतिपादित की गई जिनमें प्रमुख अवधारणाएं निम्नलिखित है -

1. मौद्रिक लागत
2. वास्तविक लागत
3. अवसर लागत

12.2.1 मौद्रिक लागत

किसी फर्म द्वारा एक वस्तु के उत्पादन में किए गए कुल मुद्रा व्यय को मौद्रिक लागत कहते हैं। दूसरे शब्दों में, उत्पत्ति के समस्त साधनों के मूल्य को यदि मुद्रा में व्यक्त कर दिया जाए तो उत्पादक इन उत्पत्ति के साधन की सेवाओं को प्राप्त करने में जितना कुल व्यय करता है, मौद्रिक लागत कहलाती है।

मौद्रिक लागत में निम्नलिखित मदों को सम्मिलित किया जा सकता है -

1. कच्चे माल पर व्यय
2. श्रम की मजदूरी एवं वेतन पर व्यय
3. अविभाज्य बड़े उपकरण एवं मषीन पर व्यय
4. पूंजी पर दिए जाने वाला ब्याज
5. भूमि का किराया अर्थात् लगान
6. मषीनों की टूट-फूट एवं घिसावट पर व्यय
7. प्रबन्धन व्यय
8. विज्ञापन व्यय
9. यातायात व्यय
10. बीमा कम्पनियों को दी जाने वाली राशि
11. सामान्य लाभ
12. ईंधन व्यय

उपर्युक्त बतायी गई मौद्रिक लागतों   को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1. दृश्य लागते

2. अदृश्य लागते
3. सामान्य लाभ

12.2.2 दृश्य लागतें

दृश्य लागतें वे लागते हैं जो उत्पादक के द्वारा उत्पत्ति के अनेक साधनों को एकत्रित करने पर स्पष्ट रूप से व्यय की जाती है। इस प्रकार दृश्य लागतें उत्पादन का प्रत्यक्ष व्यय स्पष्ट करती है। दृश्य लागत में निम्नलिखित प्रकार के व्यय सम्मिलित होते हैं -

1. उत्पादन लागत - उत्पत्ति के साधनों का पारिश्रमिक, मजदूरी, लगान , ब्याज इत्यादि, उपकरणें पर व्यय, कच्चे माल पर व्यय
2. बिक्री लागत - विज्ञापन पर व्यय, पैंकिंग पर व्यय, यातायात पर व्यय इत्यादि
3. अन्य लागत - कर, बीमा, विद्युत, संचार, प्रीमियम इत्यादि पर व्यय

12.2.3 अदृश्य लागतें

अदृश्य लागतों में उत्पादक के वे व्यय सम्मिलित होते हैं जिनका उत्पादक को प्रत्यक्ष

रूप से भुगतान नहीं करना होता है। इसमें मुख्यतया वे साधन सम्मिलित होते हैं जो उत्पादन के स्वतः के होते हैं अर्थात् व्यक्तिगत होते हैं। अदृश्य लागतों के अन्तर्गत निम्नलिखित व्यय सम्मिलित किए जाते हैं -

1. स्वयं उत्पादक द्वारा प्रदान की गई सेवा का पारिश्रमिक
2. उत्पादन की अपनी स्वयं की पूंजी का ब्याज
3. उस बिल्डिंग का किराया जो स्वयं उस उत्पादक की है किन्तु उत्पादन क्रिया में प्रयोग की जा रही है।

12.2.4 सामान्य लाभ

सामान्य लाभ को अर्थशास्त्र में किसी उद्यमी को उत्पादन प्रक्रिया में बनाए रखने की लागत के रूप में देखा जाता है। लाभ दो प्रकार के होते हैं - अतिरिक्त लाभ तथा सामान्य लाभ। यदि वस्तु की बिक्री से इतना अधिक आगम प्राप्त हो कि उद्यमी की लागत, वेतन इत्यादि तो निकले ही साथ में कुछ अतिरिक्त राशि बच जाए तो उसे उद्यमी का अतिरिक्त लाभ कहेंगे। परन्तु यदि मात्र इतना आगम प्राप्त कि उसका वेतन व लागते निकल पाए तो उसे उद्यमी का सामान्य लाभ कहा जाएगा। जहाँ अतिरिक्त लाभ का लागतों से कोई सम्बन्ध नहीं वहीं सामान्य लाभ को लागतों के अंश के रूप में देखा जाता है। ऐसा माना जाता है कि सामान्य लाभ न मिल पाने की दशा में उद्यमी उत्पादन बंद कर देता है।

संक्षेप में,

कुल मौद्रिक लागत = कुल दृश्य + लागत + अदृश्य लागत + सामान्य लाभ

12.3 वास्तविक लागत

मार्षल के अनुसार एक वस्तु के उत्पादन में समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा जो प्रयत्न एवं त्याग किए जाते हैं वही उत्पादन की वास्तविक लागत है। इस प्रकार किसी उत्पादन क्रिया के अन्तर्गत निहित कष्ट व त्याग वास्तविक लागत का निर्माण करते हैं।''

वास्तविक लागत का अवधारणा भले ही देश तथा समाज की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इसका कोई महत्व नहीं है। कष्ट, त्याग आदि अनुभव तो किए जा सकते हैं किन्तु इन्हें मुद्रा के मापदण्ड द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, वास्तविक लागत का विचार मनोवैज्ञानिक एवं व्यक्तिगत हैं क्योंकि एक ही कार्य करने में विभिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न प्रकार के कष्ट के अनुभव होते हैं। कोई निश्चित मापदण्ड कष्ट आदि के मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

12.4 अवसर लागत

अस्ट्रियन अर्थषास्त्रियों ने 'वास्तविक लागत' के विचार में संषोधन किया क्योंकि उनका विचार था कि वास्तविक लागत के तथ्य में कष्ट, त्याग आदि मनोवैज्ञानिक तत्व भी शामिल हैं जिन्हें मुद्रा के मापदण्ड द्वारा नहीं मापा जा सकता। इसी कारण उन्होंने वास्तविक लागत के स्थान पर अवसर लागत का प्रयोग किया। अर्थशास्त्र का मौलिक सिद्धान्त यह है कि आर्थिक साधन आवश्यकताओं की तुलना में सीमित होते हैं। अतः किसी वस्तु के उत्पादन का अर्थ है - दूसरी वस्तु या वस्तुओं के उत्पादन से वंचित होना।

बेन्हम के शब्दों में, ''किसी वस्तु की अवसर लागत वह सर्वश्रेष्ठ विकल्प है जिसका उत्पादन उन्हीं उत्पत्ति साधनों द्वारा उसी लागत पर उस वस्तु के विकल्प के रूप में किया जा सकता है।''

अवसर लागत के उपर्युक्त विचार को एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। अपनी योग्यता तथा श्रम के आधार पर एक व्यक्ति को तीन नौकरियां मिल सकती है - डिग्री कालेज लेक्चर (वेतन रू0 3000 मासिक), बैंक ऑफीसर (वेतन रू0 2900 मासिक) तथा सेल्स ऑफीसर (वेतन रू0 2600 मासिक)। स्वाभाविक है कि अन्य बातों के समान रहते हुए वह व्यक्ति डिग्री कालेज के प्रवक्ता पद को ही चुनेगा। इस चुनाव के दो विकल्प हैं – 2,900 रू0 मासिक वेतन तथा 2ए600 रू0 मासिक वेतन के अन्य दो पद। परन्तु इन पदों में श्रेष्ठ 2,900 रू0 मासिक वाला पद

है तथा यही चुने गए पद की वैकल्पिक अथवा अवसर लागत कहलायेगी। वैकल्पिक अथवा अवसर लागत में वस्तु या सेवा के सर्वश्रेष्ठ विकल्प की लागत देखी जा सकती है।

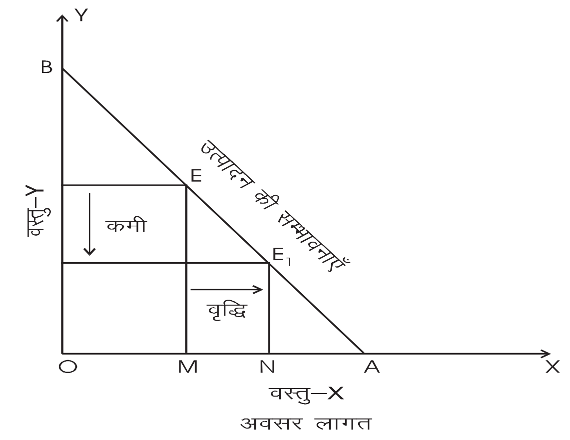

चित्र-1

अवसर लागत के तथ्य को हम चित्र संख्या 1 द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। AB रेखा दो वस्तुओं X और Y के मध्य की उत्पादन सम्भावना वक्र है। उत्पादक के पास साधनों की मात्रा निश्चित है जिनसे दो वस्तुओं X और Y का उत्पादन किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में यदि उत्पादक X वस्तु का उत्पादन बढ़ाना चाहता है तो उसे Y वस्तु के उत्पादन में कमी करनी पड़ती है। चित्र से स्पष्ट है कि X वस्तु की MN मात्रा में वृद्धि करने के लिए Y वस्तु की RS मात्रा का त्याग करना पड़ेगा, यही अवसर लागत है। X वस्तु की MN मात्रा की अवसर लागत Y वस्तु की RS मात्रा में कमी को माना जाएगा।

अवसर लागत का महत्व

1. लगान का आधुनिक सिद्धान्त अवसर लागत के तथ्य पर आधारित है। लगान का आधुनिक सिद्धान्त यह बताता है कि लगान अवसर लागत के ऊपर का अतिरेक है।
2. यह तथ्य उत्पत्ति के सीमित साधनों के वितरण में सहायक है। अवसर लागत के सिद्धान्त के अनुसार सीमित साधन जो अनेक वैकल्पिक प्रयोगों में आता है, को एक श्रेष्ठतम सम्भावित वैकल्पिक प्रयोग में प्रयुक्त करना चाहिए। अतः अवसर लागत का तथ्य साधनों के अनुकूलतम वितरण की क्रिया को सफल बनाना है।
3. अवसर लागत के विचार से यह विश्लेषण किया जा सकता है कि फर्म की लागत किस सीमा तक अपने उत्पादन के साथ परिवर्तित हो सकती है।

12.5 अल्पकालीन लागतें

अल्पकाल में उत्पादक वस्तु की पूर्ति को परिवर्तित मांग की दशाओं के अनुसार पूर्णतः समायोजित नहीं कर सकता क्योंकि अल्पकाल में उत्पादक के पास इतना समय नहीं होता कि वह उत्पत्ति के सभी साधनों में समयानुसार परिवर्तन कर सकें। अल्पकाल में उत्पत्ति के कुछ साधन स्थिर होते हैं तथा कुछ परिवर्तनशील । अल्पकाल में कुछ उत्पत्ति के साधनों को परिवर्तित नहीं किया जा सकता। भूमि, बिल्डिंग , मशीन संगठन एवं प्रबन्ध ऊँचा तकनीकी श्रम आदि की मात्रा परिवर्तित नहीं की जा सकती। स्थिर साधनों को जो भुगतान दिया जाता है उसे स्थिर लागत कहा जाता है। स्थिर लागत उत्पादन की मात्रा के साथ परिवर्तित नहीं होती।

स्थिर साधन के अतिरिक्त अल्पकाल में कुछ परिवर्तनशील साधन होते हैं जिनकी पूर्ति को आवष्यकतानुसार समायोजित किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत ईंधन, बिजली, कच्चा माल, श्रमिक आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं। अल्पकाल में परिवर्तनशील साधन उत्पादन की मात्रा के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं परिवर्तनशील लागत है। स्थिर लागतें उद्यमी को उत्पादन बन्द होने की दशा में भी वहन करनी पड़ती है जबकि अल्पकाल में उत्पादन बन्द कर देने पर परिवर्तनशील लागतों को पूर्णतः समाप्त किया जा सकता है। स्थिर लागतों को पूरक लागत तथा परिवर्तनशील लागतों को मुख्य लागत भी कहा जाता है।

अल्पकाल में,

कुल उत्पादन लागत = कुल स्थिर लागत + कुल परिवर्तनशील लागत

$$TC = TFC + TVC$$

चित्र 2 में कुल लागत वक्र को TFC तथा कुल परिवर्तनशील लागत को TVC वक्र के रूप में स्पष्ट किया गया है। TFC रेखा X-अक्ष के समानान्तर एक पड़ी रेखा के रूप में दिखायी गई है जिसका अभिप्राय है कि उत्पादन शून्य होने की दशा में भी उत्पादक को TFC के बराबर व्यय वहन करना पड़ेगा। इसके दूसरी ओर TVC वक्र मूल बिन्दु से ऊपर की ओर बढ़ता हुआ होता है जिसका अभिप्राय है कि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ कुल परिवर्तनशील लागतों में वृद्धि हो रही है। TVC का आरम्भिक बिन्दु O है जिसका अभिप्राय है कि शून्य उत्पादन होने की दशा में कुल परिवर्तनशील लागत शून्य हो जाती है। इस प्रकार कुल परिवर्तनशील लागत, उत्पादन की मात्रा का एक फलन होता है।

अर्थात् $TVC = f(Q)$

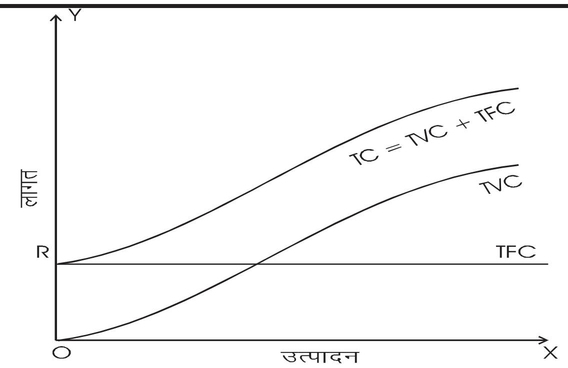

चित्र-2

दूसरे शब्दों में, उत्पादन की मात्रा की वृद्धि TVC को बढ़ायेगी तथा उत्पादन की मात्रा की कमी TVC को घटायेगी।

TFC एवं TVC वक्रों के योग को प्रदर्शित करता हुआ कुल लागत वक्र चित्र में TC द्वारा प्रदर्शित किया गया है जो कुल उत्पादन लागत को बताता है। भिन्न-भिन्न उत्पादन स्तरों पर कुल स्थिर लागत एवं परिवर्तनशील लागतों का योग इस वक्र के द्वारा प्रदर्शित किया गया। TC वक्र का प्रारम्भ बिन्दु Y.अक्ष का वह बिन्दु है जहाँ से TFC वक्र प्रारम्भ होता है। इसका अभिप्राय है कि उत्पादन शून्य होता है। इसका अभिप्राय है कि उत्पादन शून्य होने की दशा में कुल लागत, कुल स्थिर लागत के बराबर होगी क्योंकि शून्य उत्पादन स्तर पर परिवर्तनशील लागत लागत पूर्णतः समाप्त हो जाती है। चित्र 2 से यह भी स्पष्ट है कि TVC वक्र के बढ़ने की गति एवं TC वक्र के बढ़ने की गति एक समान है क्योंकि TC वक्र के अनुसार विभिन्न उत्पादन स्तरों पर परिवर्तित होती हुई TVC अपने परिवर्ततन के अनुपात में ही TC में परिवर्तन करती है। इसी प्रकार कहा जा सकता है कि कुल उत्पादन लागत भी उत्पादन का फलन है। अर्थात्

$$TC = f\,(Q)$$

स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि दोनों प्रकार की लागतों का अन्तर अल्पकाल में ही लागू होता है दीर्घकाल में नहीं क्योंकि दीर्घकाल में सभी साधन एवं लागतें परिवर्तनशील हो जाती है। दूसरे, स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों में अन्तर केवल मात्रा का है न कि किस्म का क्योंकि स्थिर लागतें एक समयावधि के संदर्भ में ही स्थिर होती है।

12.5.1 औसत स्थिर लागत

औसत स्थिर लागत कुल स्थिर लागत एवं उत्पादन की मात्रा का भाग फल होती है।

अर्थात्

$$AFC = \frac{TFC}{Q}$$

जहाँ AFC = औसत स्थिर लागत

TFC = कुल स्थिर लागत

Q = उत्पादन की मात्रा

अल्पकालीन औसत लागत वक्र अल्पकालीन कुल लागत वक्र की सहायता से ज्यामितीय रीति द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं।

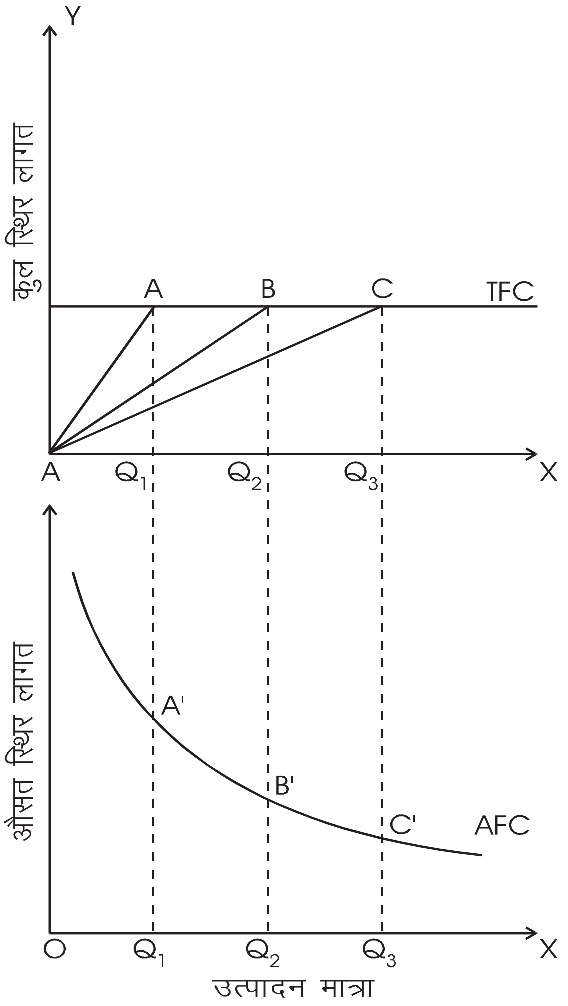

चित्र 3

चित्र 3 में TFC वक्र द्वारा AFCवक्र की व्यूत्पत्ति दिखाई गई है। Q_1 उत्पादन मात्रा पर औसत स्थिर लागत प्राप्त करने के लिए बिन्दु Q_1 से TFC रेखा पर एक लम्ब खींचा जाता है जो TFC को बिन्दु A पर काटता है। इसी प्रकार उत्पादन बिन्दुओं Q_2 एवं Q_3 से TFC पर डाले गए लम्ब क्रमश B और C बिन्दुओं पर TFC को काटते हैं। मूल बिन्दु से इन तीनों कटान बिन्दुओं को मिलाती हुई रेखा खींची जाती है जो चित्र में क्रमश OA, OB एवं OC है, तथा जो उत्पादन स्तरों पर AFC वक्र खींचा गया है। OA, OB एवं OC की ढालों वाली रेखाओं से Q_1, Q_2 एवं Q_3 उत्पादन स्तरों पर औसत स्थिर लागत क्रमश A', B', C' बिन्दु प्राप्त किए जाते हैं। चित्र में इन तीनों बिन्दुओं को मिलाती हुई AFC रेखा प्रदर्शित की गई है। औसत स्थिर लागत वक्र (AFC) से सम्बन्धित मुख्य बातें निम्नलिखित हैं -

- यह वक्र बाए से दायें नीचे गिरता हुआ होता है क्योंकि कुल स्थिर लागत अपरिवर्तनीय होती है और जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती है। AFC घटती जाती है।
- आरम्भिक अवस्था में AFC वक्र अधिक तेजी गिरता और उसके बाद कम तेजी से।
- AFC वक्र कभी अक्षों को स्पर्श नहीं करता जिसके कारण AFC का आकार आयताकार अतिपरवलय के समान होता है।
- AFC कभी भी शून्य नहीं हो सकता।

12.5.2 औसत परिवर्तनशील लागत

औसत परिवर्तनशील लागत, कुल परिवर्तनशील लागत एवं उत्पादन की मात्रा का भागफल होती है।

अर्थात्

$$AVC = \frac{TVC}{Q}$$

जहाँ AVC = औसत परिवर्तनशील लागत
TVC = कुल परिवर्तनशील लागत
Q = उत्पादन की मात्रा

औसत परिवर्तनशील लागत की प्रकृति उत्पादन में प्रयुक्त परिवर्तनशील साधनों के औसत उत्पादकता पर निर्भर करती है। परिवर्तनशील साधन की अल्पकाल में औसत उत्पादकता आरम्भ में बढ़ती है फिर स्थिर हो जाती है और उसके बाद घटती है। इस प्रकार औसत उत्पादकता वक्र की

आकृति उल्टे U के समान होती है। उत्पादकता एवं लागत में परस्पर विपरीत सम्बन्ध है, जब परिवर्तनशील साधन की औसत उत्पादकता बढ़ती है तब AVC घटती है। जब औसत उत्पादकता स्थिर रहती है तब औसत परिवर्तनशील लागत अपने न्यूनतम बिन्दु पर पहुँकर स्थिर हो जाती है तीसरी अवस्था में जहाँ औसत उत्पादकता घटना प्रारम्भ करती है तब औसत परिवर्तनशील लागत भी बढ़ना प्रारम्भ करती है।

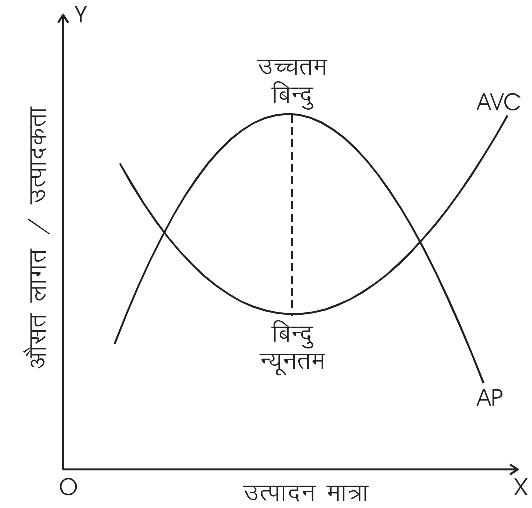

चित्र 4

चित्र 4 में औसत उत्पादकता वक्र एवं औसत परिवर्तनशील लागत के पारस्परिक सम्बन्ध को दिखाया गया है। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि AVCवक्र प्रा रम्भिक अवस्था में इसलिए घटता है क्योंकि प्रारम्भ साधन वृद्धि बढ़ते प्रतिफल देती है। उसके बाद स्थिर प्रतिफल प्राप्त होने की दशा में AVCवक्र अपने न्यूनतम बिन्दु पर पहुंच कर स्थिर हो जाता है। उसके बाद घटते प्रतिफल प्राप्त होने पर AVCवक्र बढ़ना प्रारम्भ करती है।

चित्र 4 में औसत उत्पादकता वक्र एवं औसत परिवर्तनशील लागत का पारस्परिक सम्बन्ध दिखाया गया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि AVC वक्र आरम्भिक अवस्था में इस लिए घटता है क्योंकि प्रारम्भ में साधन उत्पादन वृद्धि बढ़ते प्रतिफल देती है उसके बाद स्थिर प्रतिफल प्राप्त होने की दशा में AVC वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु पर पहुंचकर स्थिर हो जाता है। उसके बाद घटते प्रतिफल प्राप्त होने पर AVC वक्र बढ़ना प्रारम्भ करता है।

चित्र 5 में TCV वक्र की सहायता से AVC वक्र की व्युत्पत्ति दिखाई गई है। विभिन्न उत्पादन स्तरों क्रमश Q_1, Q_2 एवं Q_3 से TVC वक्र पर लम्ब डाल् कर क्रमश K,T,R बिन्दु प्राप्त किए गए हैं।

उत्पादन स्तरों Q_1, Q_2 एवं Q_3 पर क्रमश K,T एवं R बिन्दु प्राप्त किए गये हैं। इन तीनों बिन्दुओं K,T एवं R को मिलाने वाला वक्र ही AVCवक्र है।

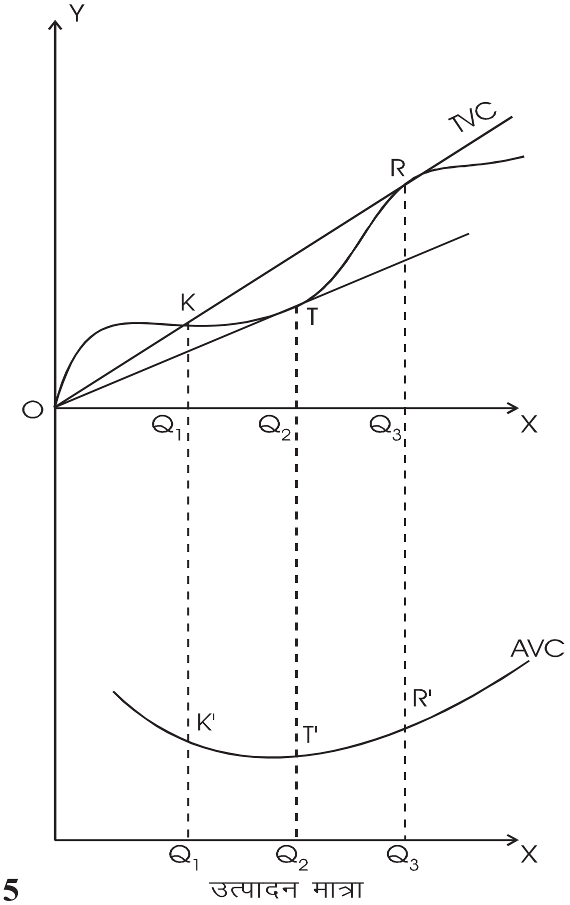

चित्र 5

12.5.3 औसत कुल लागत

औसत कुल लागत अथवा औसत लागत, कुल लागत एवं कुल उत्पादन मात्रा का भाग फल होती है। अर्थात्

$$\text{ATC अथवा AC} = \frac{TC}{Q}$$

जहाँ TC = कुल लागत

Q = उत्पादन की कुल मात्रा

अल्पकाल में,

$$TC = TFC + TVC$$

$$\text{तथा } ATC = \frac{TC}{Q}$$

$$\text{अतः } ATC = \frac{TFC + TVC}{Q}$$

$$= \frac{TFC}{Q} = \frac{TVC}{Q}$$

$$AC = AFC + AVC$$

इसी प्रकार अल्पकालीन औसत लागत औसत स्थिर लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत का योग होती है।

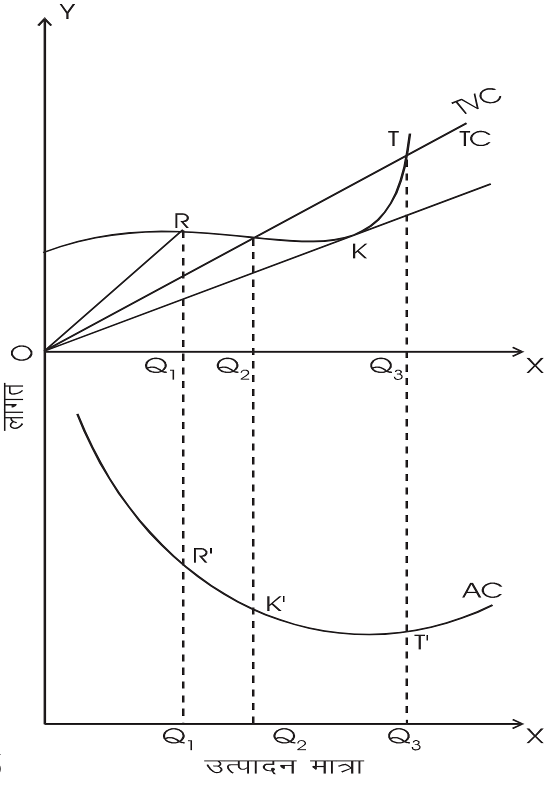

चित्र 6

चित्र 6 में कुल लागत वक्र की सहायता से औसत लागत वक्र की व्युत्पत्ति दिखायी गयी हैं। उत्पादन स्तर Q_1, Q_2, Q_3 से TC वक्र पर लम्ब खींचकर क्रमश R,K एवं T बिन्दु प्राप्त किए गये हैं जिनको मिलाता हूआ वक्र Oऔसत लागत वक्र AC कहलाता है।

12.5.4 सीमान्त लागत

एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने से कुल लागत में जितनी वृद्धि होती है उसे उस इकाई विशेष की सीमान्त लागत कहा जाता है।

$MC_n = TC_n – TC_{(n-1)}$

जहाँ MC_n = nवीं इकाइयों की सीमान्त लागत

TC_n = n इकाइयों की कुल लागत

TC_{n-1} = (n-1) इकाइयों की कुल लागत

हम जानते हैं कि

$TC_n = TVC_n + TFC$

तथा $TC_{n-1} = TVC_{n-1} + TFC$

उपर्युक्त दोनों समीकरणों में इकाइयों की संख्या TFC को प्रभावित नहीं करती क्योंकि TFC उत्पादन के आरम्भ से अन्त तक एक समान एवं अपरिवर्तित रहती है।

अतः $MC_n = TC_n – TC_{n-1}$

$= (TVC_n + TFC) – (TVC_{n-1} + TFC)$

$= (TVC_n + TFC – TVC_{n-1} – TFC)$

$MC_n = TVC_n + TVC_{n-1}$

इस प्रकार सीमान्त लागत परिवर्तनशील लागत पर निर्भर करती है, स्थिर लागत पर नहीं।

अल्पकाल में सीमान्त लागत कुल परिवर्तनशील लागत में वृद्धि के बराबर होती है।

$$MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q} = \frac{\Delta TVC}{\Delta Q}$$

जहाँ TC = कुल लागत में परिवर्तन

ΔTC = कुल परिवर्तनशील लागत में परिवर्तन

ΔQ = कुल उत्पादन में परिवर्तन

चित्र 7 में परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता एवं उत्पादन की सीमान्त लागत के मध्य सम्बन्ध स्पष्ट किया गया है। दोनों में व्युत्क्रम सम्बन्ध पाया जाता है। परिवर्तनशील अनुपात के

नियम से हम जानते हैं कि प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन के प्रयोग की मात्रा में वृद्धि करने पर उस परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता बढ़ती है जिसके कारण उस साधन की

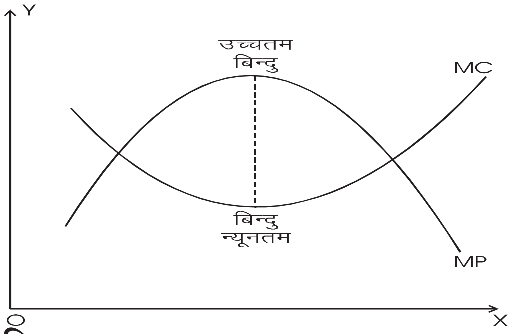

चित्र 7

सीमान्त लागत घटती है। परिवर्तनशील लागत के एक निश्चित मात्रा तक बढ़ जाने पर उस साधन की सीमान्त उत्पादकता अधिकतम होकर स्थिर हो जाती है। इसके कारण सीमान्त लागत न्यूनतम होकर स्थिर हो जाती है। उसके बाद भी परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि सीमान्त उत्पादकता को घटाती है। अर्थात् सीमान्त लागत बढ़ना आरम्भ कर देती है। इस प्रकार सीमान्त लागत वक्र की आकृति अंग्रेजी के अक्षर U के समान होती है।

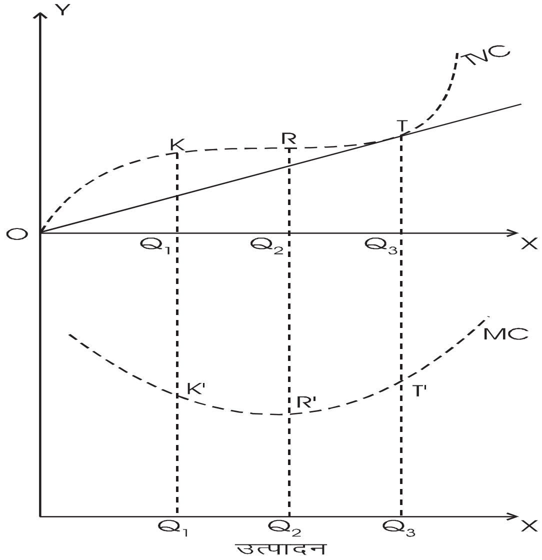

चित्र 8

चित्र 8 में कुल लागत वक्र एवं कुल परिवर्तनशील लागत वक्र द्वारा सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पत्ति समझायी गयी है। प्रत्येक उत्पादन स्तर पर TVC एवं TC रेखाओं का ढाल एक समान होता है। इस तथ्य के आधार पर सीमान्त लागत वक्र को TVC वक्र अथवा TC वक्र के ढाल द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। उत्पादन में वृद्धि होने पर TVC वक्र के ज् बिन्दु तक रेखा का ढाल कम

होता जाता है किन्तु उसके बाद रेखा का ढाल बढ़ता प्रारम्भ हो जाता है। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि सीमान्त लागत वक्र का ढाल Q_2 बिन्दु तक घटता है, बिन्दु Q_2 पर अपने न्यूनतम बिन्दु तक पहुँचता है एवं बिन्दु Q_2 के बाद TVC वक्र का ढाल बढ़ने के कारण MC वक्र का ढाल बढ़ना आरम्भ करता है यही कारण है कि MC वक्र भी U आकृति का होता है।

चित्र 9 में बिन्दु A तक AC वक्र MCवक्र से ऊपर स्थित है बिन्दु A के पष्चात् दोनों वक्र बढ़ रहे हैं किन्तु MC वक्र ACवक्र से ऊँचा है। एक महत्वपूर्ण तथ्य ध्यान रखने योग्य यह है कि औसत लागत के घटने की दशा में हम यह तो बता सकते हें कि सीमान्त लागत औसत लागत से कम है, किन्तु यह नहीं बता सकते कि औसत लागत की घटने की दशा में सीमान्त लागत वक्र घट रहा है, बढ़ रहा है अथवा स्थिर है, क्योंकि घटती औसत लागत दशा में सीमान्त लागत घट सकती है, स्थिर भी हो सकती है एवं बढ़ भी सकती है।

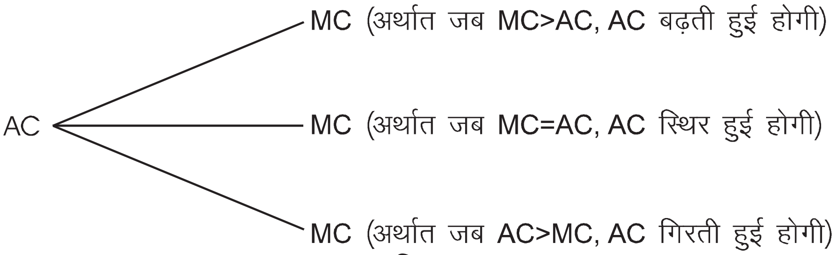

चित्र 9

चित्र 9 में ACवक्र के बिन्दु H तक सीमान्त लागत वक्र घटते हुए अपने न्यूनतम बिन्दु K पर पहुँच जाता है। ACवक्र के H बिन्दु के पष्चात् AC वक्र बिन्दु A तक घटता है किन्तु MC वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु ज्ञ पर पहुँचने के बाद बिन्दु K से A तक बढ़ता है। चित्र 9 में AC एवं MC वक्रों को प्रदर्शित किया गया है परिवर्तनशील अनुपात के नियम के क्रियान्वयन के कारण AC वक्र U आकृति का है। MC वक्र AC वक्र को न्यूनतम बिन्दु A पर काट रहा है। न्यूनतम बिन्दु A से X अक्ष पर खींचा गया लम्ब न्यूनतम है अर्थात् OQ उत्पादन स्तर पर न्यूनतम औसत लागत AQ प्राप्त होती है।

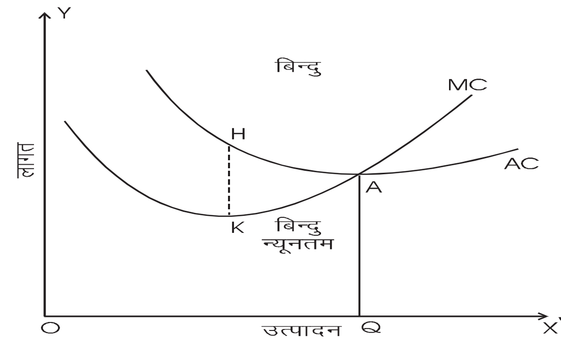

चित्र 9

AC एवं MC के सम्बन्ध को एक गणितीय उदाहरण की सहायता से भी समझा जा सकता है। कल्पना कीजिए, एक फर्म 10 इकाईयों का उत्पादन कर रही है और उनकी औसत लागत 5 रूपये है। यदि वह 11वीं इकाई का उत्पादन करती है जिसकी सीमान्त उत्पादन लागत -

1. यदि 5 रूपये ही हो, तब 11 इकाईयों की औसत लागत 5 रूपये रहेगी अर्थात् यदि MC स्थिर हो तो AC भी स्थिर रहेगी।
2. यदि 5 रूपये के स्थान पर 6 रूपये हो जाए तो ऐसी दशा में 11 इकाईयों की औसत लागत में वृद्धि हो जायेगी, जिसके कारण इस दशा में औसत लागत 5 रूपये से अधिक प्राप्त होगी अर्थात् MC बढ़ने पर ACबढ़ती है।
3. यदि 4 रूपये रह जाए तब 11 इकाईयों की औसत उत्पादकता 5 रूपये से कुछ कम हो जायेगी अर्थात् जब MC, AC से कम होती है तो AC धटती है।

12.6 औसत लागत एवं सीमान्त लागत में सम्बन्ध

मूल्य सिद्धान्त में AC तथा MC का सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ACऔर MC के सम्बन्ध में कुछ मुख्य बातें निम्नलिखित हैं -

1.दोनों की गणना उत्पादन की कुल लागत द्वारा की जाती है।

$$\text{औसत लागत} = \frac{\text{कुल लागत}}{\text{कुल उत्पादन}}$$

$$\text{सीमान्त लागत} = \frac{\text{कुल लागत में परिवर्तन}}{\text{कुल उत्पादन में परिवर्तन}}$$

2.आरम्भ में जब ACवक्र गिरता है तब MC वक्र एक सीमा तक गिरता है। किन्तु एक अवस्था के बाद MC वक्र बढ़ना आरम्भ हो जाता है जबकि ACवक्र गिरता रहता है। इस प्रकार MC सदैव घटती औसत लागत की दशा में औसत लागत से कम होती है।

3.जब ACन्यूनतम होता है तब MC वक्र ACवक्र को नीचे बिन्दु पर काटता है अर्थात् न्यूनतम औसत लागत सीमान्त लागत के बाराबर होती है।

4.जब ACबढ़ता है तो MC वक्र ACसे ऊपर होता है एवं साथ ही साथ ACवक्र से तीव्र गति से बढ़ता है।

5.घटती औसत लागत की दशा में सीमान्त लागत घट भी सकती है, स्थिर भी हो सकती है एवं बढ़ भी सकती है।

सारणी - 1

TC, TFC, TVC, AFC, AVC तथा MC की गणितीय उदाहरण से व्याख्या

वस्तु की उत्पादन इकाइयां Q	कुल स्थिर लागत TFC (i)	कुल परि. लागत (ii) TVC	कुल लागत TC (iii) =(i)+(ii)	औसत स्थिर लागत AFC = Col. (I)/q	औसत स्थिर लागत AVC = Col. (II)/q	औसत लागत AC = (iv)+(v)	सीमान्त लागत MC
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**
0	200	0	200	00	-	-	-
1	200	180	380	200	180	380	180
2	200	340	540	100	170	270	160
3	200	480	680	66.66	160	226.66	140
4	200	600	800	50.00	150	200.00	120
5	200	740	940	40.00	148	188.00	140
6	200	900	1100	33.33	150	183.33	160
7	200	1080	1280	28.60	154.128	182.88	180
8	200	1300	1500	25.00	162.50	187.50	220
9	200	1560	1760	22.22	173.33	195.55	260
10	200	1860	2040	20.00	186.00	206.00	300

स्पष्टीकरण

उपर्युक्त सारणी में यदि TFC तथा TVC के स्तम्भ दिए हुए हों तब सारणी के शेष स्तम्भ निम्नवत् प्राप्त किये जा सकते हैं -

स्तम्भ 3 -TFC और TVC को प्रत्येक उत्पादन स्तर पर जोड़कर TC प्राप्त की जा सकती है।

स्तम्भ 4 -स्तम्भ 1 की राशि को सम्बन्धित उत्पादन स्तर से भाग देकर प्रत्येक स्तर के लिए AFC प्राप्त की जा सकती है क्योंकि

$$AFC = \frac{TFC}{Q}$$

स्तम्भ 5 -स्तम्भ 2 की राशि को सम्बन्धित उत्पादन स्तर से भाग देकर प्रत्येक उत्पादन के लिए AVCप्राप्त की जा सकती है क्योंकि;

$$AVC \frac{TVC}{Q}$$

स्तम्भ 6 -प्रत्येक उत्पादन स्तर के लिए AVCऔर AVCको जोड़कर AC प्राप्त की जा सकती है क्योंकि AC =AFC+ AVCअर्थात् प्रत्येक उत्पादन स्तर के लिए स्तम्भ 4 और 5 का योग करना चाहिए।

स्तम्भ 7 -स्तम्भ 3 की सहायता से MC की गणना की जाती है। दो क्रमिक उत्पादन स्तरों की TC का अन्तर दूसरी इकाई की सीमान्त लागत को बताती है। जैसे शून्य उत्पादन स्तर पर,

$$TC = 200$$

तथा इकाई उत्पादन स्तर पर

$$TC = 380$$

अतः पहली इकाई की

$$MC = 380 – 200 = 180$$

12.6.1 औसत लागत एवं सीमान्त लागत का गणितीय सम्बन्ध -

माना q उत्पादन स्तर पर औसत लागत = C

अतः q उत्पादन स्तर पर कुल लागत

TC = q x C = उत्पादन मात्रा X औसत लागत

हम जानते हैं कि,

$$AFC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$$

,

आकलनके अनुसार $MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$

$$MC = \frac{\Delta (C.Q.)}{\Delta Q}$$

$$= Q\frac{\Delta c}{\Delta Q} + c\frac{\Delta Q}{\Delta Q}$$

$$= Q\frac{\Delta c}{\Delta Q} + c$$

हम जानते हैं कि $\Delta c/\Delta Q$, AC वक्र के ढाल को बताता है। अतः तीन दशाएँ हो सकती है।

1.जब $\Delta c/\Delta Q < 0$ अर्थात्, AC वक्र का ढाल ऋणात्मक हो, तब

$$MC = Q\frac{\Delta c}{dQ} + c$$

इस समीकरण में घटक $Q(\Delta c/\Delta Q)$ ऋणात्मक होगा जिसके कारण MC औसत लागत c से कम होगा। दूसरे कारण MC औसत लागत c से कम होगा। दूसरे शब्दों में, जब ACवक्र गिर रहा होगा तब सीमान्त लागत औसत लागत से कम होती है।

2.जब $\Delta c/\Delta Q = 0$ अर्थात ACवक्र का ढाल शून्य हो तब

$$MC = Q\frac{\Delta c}{\Delta Q} + c = 0 + c = c$$

दूसरे शब्दों में, ACके न्यूनतम होने की दशा में सीमान्त लागत औसत लागत के बराबर होती है।

3.जब $\Delta c/\Delta Q > 0$ अर्थात् AC वक्र ऊपर बढ़ रहा हो, तब

$$MC = Q\frac{\Delta c}{\Delta Q} + c$$

इस समीकरण में घटक $Q(\Delta c/\Delta Q)$ धनात्मक होगा जिसके कारण MC औसत लागत C से अधिक हो जायेगा। दूसरे शब्दों में, जब AC वक्र ऊपर की ओर बढ़ता है तब सीमान्त लागत औसत लागत से अधिक हो जाती है।

इस प्रकार गणितीय रीति से भी औसत लागत और सीमान्त लागत के सम्बन्ध को प्राप्त किया जा सकता है।

12.6.2 MC वक्र का AVCसे सम्बन्ध

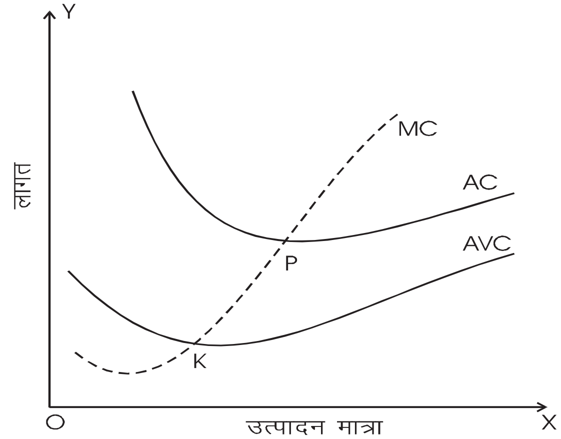

चित्र 11

चित्र 11 में इस सम्बन्ध को बताया गया है। हम AC वक्र तथा MC वक्र का सम्बन्ध पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं। MC वक्र का AVC के साथ भी वही सम्बन्ध होता है जो ACवक्र के साथ होता है।

दूसरे शब्दों में, MC वक्र AVCवक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु K पर काटता है। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि MC वक्र AVCवक्र के न्यूनतम बिन्दु K में से ACवक्र के न्यूनतम बिन्दु P से पहले गुजरता है। इसका कारण यह है कि AC वक्र, AVC वक्र तथा AFCवक्र दोनों का जोड़ होता है और जब AVCवक्र अपने न्यूनतम बिन्दु पर होता है उस समय भी AFC वक्र नीचे गिर रहा होता है। अतः ACवक्र का न्यूनतम बिन्दु AVCवक्र की तुलना में बाद में आता है। यही कारण है कि बिन्दु ज्ञ, बिन्दु च् के बायें स्थित है। इन बिन्दुओं के बाद MC वक्र तीब्रता से बढ़ता है तथा ACवक्र तथा AVC वक्र दोनों से ऊँचा हो जाता है।

अल्पकालीन लागत वक्र: औसत स्थिर लागत, औसत परिवर्तनशील , सीमान्त लागत एवं औसत कुल लागत वक्रों का एक साथ चित्र द्वारा निरूपण:-

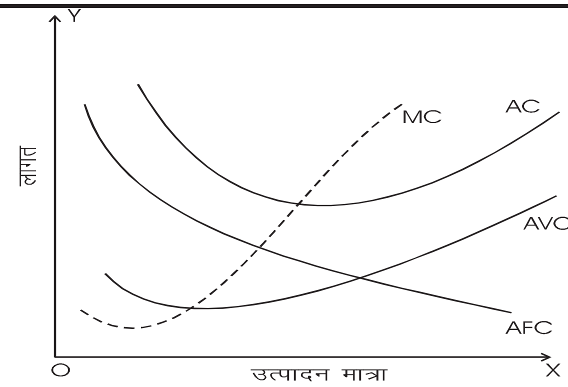

चित्र 12

सभी अल्पकालीन लागत वक्रों की व्याख्या के बाद अब हम इस स्थिति में हैं कि एक ही चित्र में इन सभी के सम्बन्धों को दर्षा सकें। यहाँ एक बात ध्यान देने की है कि जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे ACतथा AVCवक्र का अन्तर घटता जाता है जो घटती हुई AFCका सूचक है MC वक्र AVCतथा ACवक्रों के न्यूनतम बिन्दुओं से गुजरता है।

12.7 लघु उत्तरीय प्रश्न

1.किसी वस्तु की मौद्रिक लागत में निम्नलिखित मदें शामिल की जाती है -

A. दृश्य लागतें B. केवल अदृश्य लागतें

C. सामान्य लाभ D. उपर्युक्त सभी

2.निम्नलिखित में से किस लागत वक्र का आकार न् अक्षर की भांति होता है ?

a. औसत लागत
b. औसत परिवर्तनशील लागत
c. सीमान्त लागत
d. उपर्युक्त सभी

3.दृश्य एवं अदृश्य लागतें अंग हैं -

a. मौद्रिक लागत का
b. वास्तविक लागत का
c. अवसर लागत का
d. उपर्युक्त सभी

4.अल्पकाल में ,

a. सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं।
b. साधन स्थिर एवं परिवर्तनशील दोनों होते हैं।
c. सभी साधन स्थिर होते हैं।
d. उपर्युक्त सभी।

5.जब ACवक्र गिर रहा होता है तब सीमान्त लागत औसत लागत से -

a. कम होती है।
b. अधिक होती है।
c. बराबर होती है।
d. उपर्युक्त सभी दशाएँ सम्भव।

6.सीमान्त लागत को निम्नलिखित सूत्र से व्यक्त किया जा सकता है -

A. $MC = TC_{n-1} – TC_{n-1}$
B. $MCn = TC_{n} – TC_{n-1}$
C. $MC_{n} = TC/n$
D. $MC = TC – AC$

7.किसी वस्तु की एक निश्चित मात्रा का उत्पादन करने पर फर्म को जितना पड़ता है, उसे फर्म की

a. औसत लागत कहते हैं।
b. कुल लागत कहते हैं।
c. सीमान्त लागत कहते हैं।
d. अवसर लागत कहते हैं।

12.8 दीर्घकालीन लागत

दीर्घकालीन वह समयावधि है जिसेमं उत्पादक प्रत्येक उत्पत्ति के साधन को इच्छानुसार एवं आवष्यकतानुसार परिवर्तित कर सकता है। दीर्घकाल में उत्पत्ति का प्रत्येक साधन परिवर्तनशील होता है तथा कोई साधन स्थिर नहीं होता। दीर्घकाल में उत्पादन के प्लाण्ट का आकार भी परिवर्तनीय होता है। जैसा कि हम पहले अध्ययन कर चुके हैं कि अल्पकाल में प्लाण्ट का आकार स्थिर रहता है जिसे घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता। इसके विपरीत, दीर्घकाल में प्लाण्ट का आकार बदला जा सकता है अथवा उत्पादक एक प्लाण्ट को छोड़कर अपेक्षाकृत अधिक कुशल प्लाण्ट को अपना सकता है। प्रत्येक प्लाण्ट उत्पादन की एक निश्चित सीमा तक उपयोगी है। अतः एक फर्म उत्पादन के लिए उस प्लाण्ट का उस बिन्दु तक प्रयोग करेगी जहाँ तक उत्पाद में वृद्धि के साथ उत्पादन लागत में कमी होती जाय। दीर्घकाल में यदि कोई अन्य प्लाण्ट पहले से स्थापित प्लाण्ट की तुलना में किसी उत्पादन स्तर पर कम लागत को सम्भव बनाता है तब ऐसी दशा में उत्पादक कम लागत देने वाले प्लाण्ट पर स्थानान्तरित हो जायेगा।

12.8.1 दीर्घकालीन औसत लागत

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र, दीर्घकालीन कुल लागत वक्र की सहायता से उत्पन्न किया जाता है।

$$LAC = \frac{LTC}{Q}$$

जहाँ

LAC = दीर्घकालीन औसत लागत

LTC = दीर्घकालीन कुल लागत

Q = उत्पादन की मात्रा

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र उत्पादन की विभिन्न उत्पादन मात्राओं की न्यूनतम सम्भव औसत लागत को व्यक्त करता है।

प्रो0 लैफ्टविच के शब्दों में, ''दीर्घकाल एक वैकल्पिक अल्पकालीन स्थितियों का एक समूह है जिसमें से किसी भी स्थिति को फर्म अपना सकती है। एक दिए हुए समय में, हम वैकल्पिक उत्पादन स्तरों को विचार करते हुए, जो तत्कालीन यन्त्र की क्षमता के आधार पर प्राप्त किए जा सकते हैं। एक अल्पकालीन दृष्टिकोण अपना सकते हैं। फिर भी, एक दीर्घकालीन नियोजन की दृष्टि से फर्म की अल्पकालीन स्थिति को बदल ने के लिए सुविधाएं होगी। दीर्घकाल की तुलना चल चित्र के पूर्णकार्य श्रृंखला से की जा सकती है। यदि हम चल चित्र को रोक दे और केवल एक ही दृश्य की ओर देखें तो यह अल्पकाल की अवधारणा होगी। यदि दीर्घकाल में किसी वस्तु की मांग बढ़ जाये तब ऐसी दशा में उत्पादक बढ़ी मांग को पूरा करने के लिए अपने वर्तमान प्लाण्ट का विस्तार कर सकते हैं अथवा प्लाण्ट को ही बदल सकते हैं। प्रत्येक प्लाण्ट उत्पादन की एक निश्चित सीमा तक ही उपयोगी है। ऐसी दशा में फर्म किसी प्लाण्ट विशेष का उसी अवस्था तक प्रयोग करेगी जहाँ तक उत्पादन मात्रा मे वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन लागत में कमी होती जाए।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की व्याख्या सबसे सरल परिस्थिति में करने के लिए हम यह मान लेते हैं कि किसी उद्योग में प्लाण्ट केवल तीन भिन्न आकारों में उपलब्ध है। दूसरे शब्दों में, स्थिर पूंजी, जो प्लाण्ट के रूप में उपलब्ध होती है, केवल तीन आकारों - सूक्ष्म, मध्यम, तथा वृहत में उद्योग में विद्यमान है। चित्र 13 में इस स्थिति की व्याख्या दिखायी गई है। सबसे कम आकार वाले प्लाण्ट का अल्पकालीन औसत लागत वक्र SACमध्यम आकार वाले प्लाण्ट का SAC_2तथा दीर्घ आकार वाले प्लाण्ट का SAC_3दिखाया गया है।

दीर्घकाल में एक उद्यमी तीन वैकल्पिक विनियोगों में से किसी एक चुन सकता है। चित्र में तीनों विकल्पों को तीन अल्पकालीन लागत वक्रों द्वारा दिखाया गया है। उद्यमी तीनों प्लाण्टों में से किसका चुनाव करेगा यह उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि फर्म उत्पादन की OX_1 मात्रा उत्पादित करती है तब न्यूनतम आकार वाले प्लाण्ट का चुनाव किया जायेगा। यदि उत्पादन मात्रा OX_2 हो जाये तब उत्पादक पहले प्लाण्ट को छोड़कर मध्यम आकार वाले प्लाण्ट पर पहुँच जायेगा क्योंकि OX_2 उत्पादन यदि उद्यमी पहले प्लाण्ट पर ही करता है तो औसत लागत OC_1 आती है

जबकि उतनी ही मात्रा का उत्पादन उद्यमी दूसरे मध्यम आकार वाले प्लाण्ट के साथ OC_2 औसत लागत पर कर सकता है।

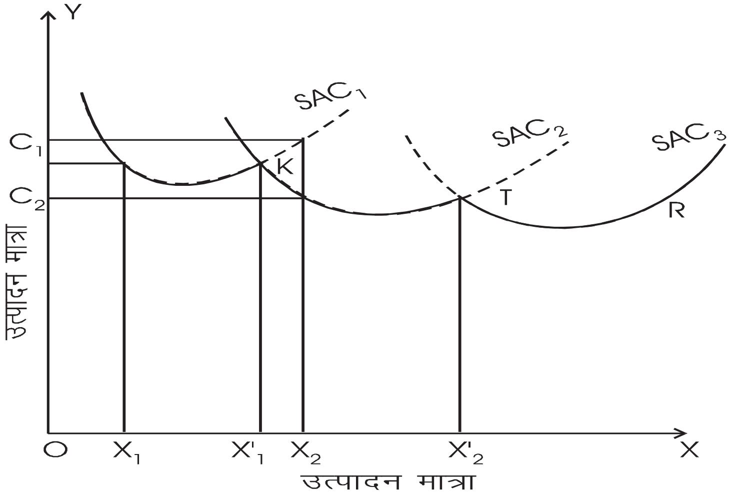

चित्र 13 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (तीन उपलब्ध प्लाण्टों की दशा में)

अतः उद्यमी के लिए ऊँचे लागत वाले प्लाण्ट से कम लागत वाले प्लाण्ट पर स्थानान्तरित होना हितकर रहेगा। उत्पादन स्तर OX_1 तक उद्यमी न्यूनतम आकार वाले प्लाण्ट के साथ उत्पादन करेगा, क्योंकि इस उत्पादन स्तर तक पहले प्लाण्ट से न्यूनतम लागत प्राप्त हो रही है। जब उत्पादन स्तर OX_1 हो जाता है तब न्यूनतम एवं मध्यम दोनों आकार वाले प्लाण्ट एक समान लागत KX_1 देते हैं। इस बिन्दु पर उद्यमी उदासीन रहेगा कि वह किसका चुनाव करें। किन्तु जैसे ही उत्पादन OX_1 से अधिक होगा न्यूनतम आकार वाला प्लाण्ट ऊँची लागत वाला प्लाण्ट बन जायेगा तथा उद्यमी कम लागत वाले प्लाण्ट SAC_2 पर स्थानान्तरित हो जायेगा। इसी प्रकार उद्यमी OX_2 मात्रा तक मध्यम आकार वाले प्लाण्ट का उपयोग करेगा किन्तु OX_2 से अधिक उत्पादन स्तर पर उद्यमी वृहत आकार वाले प्लाण्ट SAC_2पर स्थानारन्तरित कर दिया जायेगा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दीर्घकाल में फर्म को प्लाण्ट के आकार को बदल ने की स्वतन्त्रता होती है तथा दीर्घकाल में फर्म किसी उत्पादन स्तर को उत्पादित करने के लिए उस प्लाण्ट का प्रयोग करेगी जो न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादन कर सके। ऐसा दीर्घकालीन औसत लागत वक्र चित्र में च्ज्ञTR द्वारा दिखाया गया है। SAC_1, SAC_2 तथा SAC_3 के बिन्दुकित रेखाओं का दीर्घकालीन औसत लागत विश्ले षण में कोई महत्व नहीं है क्योंकि प्लाण्टों के इन भागों पर उत्पादन करने के बजाय उद्यमी प्लाण्ट के आकार को ही बदल देता है। ऐसी दशा में जिसमें उद्यमी को दीर्घकाल में तीन (अथवा बहुत कम) प्लाण्ट उपलब्ध होते हैं, दीर्घकालीन औसत लागत वक्र सीधा होकर उतार-चढ़ाव वाला होता है। देखें चित्र में PKTR वक्र । किन्तु वास्तव में उद्यमी का दीर्घकाल में चुनाव तीन प्लाण्टों तक ही

केन्द्रित नहीं होता बल्कि उसके समक्ष बड़ी संख्या में विभिन्न प्रकार आकार वाले प्लाण्ट उपस्थिति है तथा उसमें से किसी एक का चुनाव करता है। इसी स्थिति की व्याख्या चित्र 14 में की गई है।

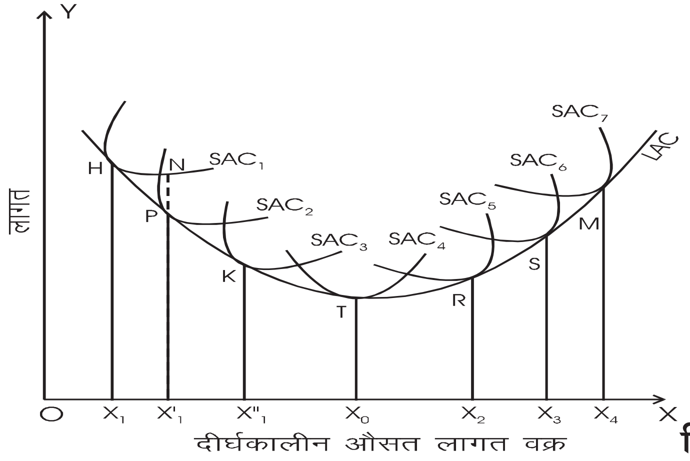

चित्र 14

चित्र में अनेक प्लाण्ट दिखाये गये हैं। उत्पादन की OX_1 मात्रा के उत्पादन के लिए फर्म SAC_1 के बिन्दु H का चुनाव करेगी क्योंकि इस प्लाण्ट से इसी मात्रा पर न्यूनतम लागत प्राप्त रही है। यह SAC_2 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को बिन्दु H पर स्पर्श करता है। उत्पादन की OX_1 मात्रा होने पर SAC1 लागत वाला प्लाण्ट NX_1 लागत देता है जबकि SAC_2 पर उत्पादन की समान मात्रा PX_1 की लागत प्राप्त की जा सकती है। अतः OX_1 उत्पादन मात्रा के लिए उत्पादक SAC_2 पर स्थानान्तरित हो जायेगा। ठीक उसी प्रकार OX_1, OX_0, OX_2, OX_3 तथा OX_4 उत्पादन करेगा। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र LAC इन विभिन्न प्लाण्टों को दर्शाने वाले अल्पकालीन औसत वक्रों को कहीं न कहीं एक बिन्दु पर स्पर्श अवश्य करेगा। इसलिए दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को आवरण भी कहा जाता है क्योंकि यह अनेक अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को घेरता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि LAC वक्र SAC को केवल स्पर्श करता है, SAC वक्र को किसी भी बिन्दु पर काटता नहीं है। इसका कारण यह है कि किसी भी उत्पादन मात्रा पर दीर्घकालीन औसत लागत, अल्पकालीन औसत लागत से अधिक नहीं हो सकता। दीर्घकाल में उत्पादक प्लाण्ट का समायोजन एवं चुनाव इस प्रकार करता है कि उत्पादन लागत को घटाया जा सके। दूसरे शब्दों में, ऐसी कोई भी दशा नहीं हो सकती जिसमें अल्पकालीन औसत लागत, दीर्घकालीन औसत लागत से कम हो अर्थात् सभी अल्पकालीन औसत लागत वक्र LAC से ऊपर होंगे। दीर्घकाल में उत्पादन करते समय उत्पादक वस्तुतः किसी अल्पकालीन प्लाण्ट पर ही क्रियाशील होता है। अतः प्रत्येक उत्पादन स्तर पर उससे सम्बन्धित अल्पकालीन औसत लागत वक्र किसी न किसी बिन्दु पर LAC को अवश्य स्पर्श करेगा।

LAC वक्र की दूसरी विशेषता दीर्घकालीन पैमाने के प्रतिफलों के कारण उपस्थिति होती है। पैमाने के प्रतिफलों की मान्यता की दशा में दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC वक्र) अंग्रेजी के अक्षर

U आकार का होता है। चित्र 14 में LAC को U आकार का दिखाया गया है। LAC अपने न्यूनतम बिन्दु ज् पर SAC_4 को उसके न्यूनतम पर स्पर्श करता है। यह स्थिर पैमाने के प्रतिफल की दशा है। यह स्थिति प्लाण्ट के अनुकूलतम आकार को बताती है। LAC वक्र बिन्दु H से T तक बायें से दायें नीचे गिर रहा है। इस गिरते हुए भाग पर LACसम्बन्धित SACवक्रों को उनके गिरते हुए भाग पर ही स्पर्श करता है। चित्र में जब तक उत्पादन की मात्रा OX_0 से कम है तब तक LAC अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को गिरते भागों के किसी बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है। दूसरे शब्दों में, जब उत्पादन मात्रा OX_0 से कम हो तब प्लाण्ट को न्यूनतम लागत से कम पर संचालित करना लाभप्रद होगा। इसके विपरीत, जब LAC बढ़ता है तब यह अल्पकालीन औसत वक्रों को बढ़ते भागों के किसी बिन्दु पर स्पर्श करेगा। दूसरे शब्दों में, यदि उत्पादन मात्रा OX0 से अधिक है तब प्लाण्ट को अनुकूलतम क्षमता से अधिक प्रयोग करना लाभप्रद होगा। देखें चित्र 14 में बिन्दु R, S तथा M की दशा। इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु पर स्पर्श नहीं करता, केवल अनुकूलतम प्लाण्ट पर वह SACके न्यूनतम बिन्दु पर उसे स्पर्श करता है। यही कारण है कि LAC वक्र U आकार का होता है।

12.8.2 दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र

दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पत्ति दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की सहायता से की जा सकती है जो सम्बन्ध अल्पकालीन सीमान्त लागत एवं अल्पकालीन औसत लागत के मध्य पाया जाता है ठीक वही सम्बन्ध दीर्घकालीन सीमान्त लागत एवं दीर्घकालीन औसत लागत के मध्य भी उपस्थित होता है। चित्र 15 में इस सम्बन्ध को दर्षाया गया है।

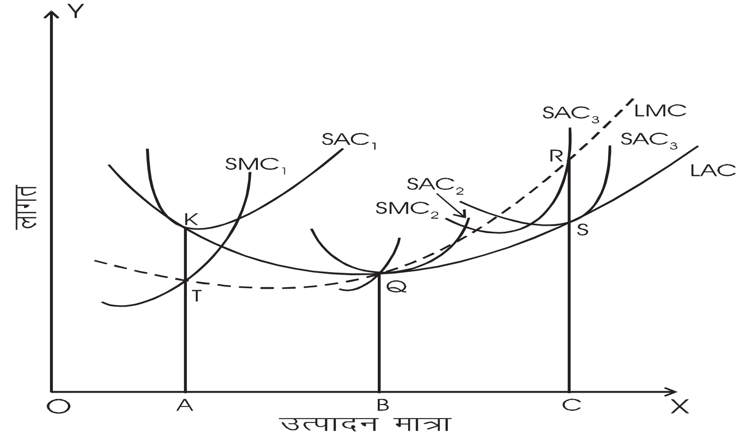

चित्र 15 - दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पत्ति

जहाँ कहीं भी SACवक्र LAC वक्र को स्पर्श करता है। वहाँ उससे सम्बन्धित क्रमश SMC तथा स्डब् परस्पर बराबर होते हैं। तब तक LAC वक्र नीचे गिर रहा होता है तब तक SMC तथा स्डब् की यह समानता SACतथा LAC वक्रों के स्पर्श बिन्दु से नीचे होती है। (देखें बिन्दु K तथा T)।

प्लाण्ट के अनुकूलतम आकार पर जहाँ LAC तथा SAC दोनों अपने न्यूनतम बिन्दुओं पर परस्पर स्पर्श करते हैं, वहाँ LMC तथा SMC परस्पर इस प्रकार बराबर होती है कि LMC = SMC = LAC= SAC(देखें बिन्दु Q)। प्लाण्ट इस न्यूनतम आकार बिन्दु के बाद SMC तथा SMV की समानता का बिन्दु SAC और LACके स्पर्श बिन्दु से ऊपर स्थित होता है। (देखें बिन्दु R तथा S) इस प्रकार LACतथा LMC में वही सम्बन्ध पाया जाता है जो SAC तथा SMC में अर्थात्

यदि LAC > LMC वक्र LACनीचे गिरेगा।
यदि LAC = LMC वक्र LAC स्थिर रहेगा।
यदि LMC > LAC वक्र LAC ऊपर की ओर बढ़ता हुआ होगा।

12.8.3 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की आकृति: बचतें एवं हानियां

अल्पकालीन औसत लागत वक्र तथा दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC Curve) दोनों की आकृति अंग्रेजी के अक्षर न् आकार की होती है। आकृति एक समान होते हुए भी उसका कारण दोनों वक्रों के लिए भिन्न-भिन्न होता है। SACकी आकृति न् आकृति का कारण परिवर्तनशील अनुपात का नियम है जबकि LACकी न् आकृति का कारण पैमाने के प्रतिफल होते हैं। दीर्घकाल में उत्पत्ति का कोई भी साधन स्थिर नहीं होता। उत्पादक दीर्घकाल में आवष्यकतानुसार उत्पादन के पैमाने को भी परिवतर्तित कर सकता है। पैमाने के बढ़ते एवं घटते प्रतिफल तथा उनके कारण उत्पन्न बचतें एवं हानियां दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को न् आकृति प्रदान करते हैं।

12.8.4 पैमाने की बचतें

दीर्घकाल में उत्पादक को उत्पादन आकार के विस्तृत होने के कारण, संगठन तथा उत्पादन तकनीक में सुधार होने के कारण विभिन्न प्रकार की बचतें प्राप्त होती है, जिन्हें दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

1. आन्तरिक बचतें
2. बाह्य बचतें।

12.8.5 आन्तरिक बचतें

आन्तरिक बचतें वह बचतें हैं जो किसी व्यक्तिगत फर्म के विस्तार के कारण उपस्थित होती हैं। जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा बढ़ती जाती है आन्तरिक बचतें फर्म के अन्दर ही उपस्थित होती है। आन्तरिक बचतें, इस प्रकार फर्म का आकार एक फलन है। उत्पादन के आकार में वृद्धि के कारण फर्म सभी उत्पत्ति के साधनों को विशिष्टीकरण नीति के अन्तर्गत अधिक कुशलता के साथ प्रयोग कर सकती है। श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण के प्रयोग से आन्तरिक बचतें उपस्थिति हैं जिससे दीर्घकालीन औसत लागत घट जाती है। प्रो0 कैल्डोर तथा श्रीमती जॉन राबिन्सन अर्थषास्त्रियों ने साधनों की अविभाज्यता को आन्तरिक बचतें उत्पन्न करने का कारण माना है। उनके अनुसार

उत्पत्ति के कुछ साधन अविभाज्य होते हैं तथा उन्हें छोटी इकाइयों में प्रयोग नहीं किया जा सकता। जैसे-जैसे उत्पादन मात्रा को बढ़ाया जाता है। वैसे-वैसे इन अविभाज्य साधनों को अनुकूलतम प्रयोग सम्भव हो पाता है जिसके कारण औसत लागत घटने लगती है। इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण के कारण बढ़ती हुई श्रम की सीमान्त उत्पादकता, उचित प्लाण्ट का प्रयोग होने के कारण उत्पन्न तकनीकी बचतें, अविभाज्य साधनों का पूर्ण उपयोग , बड़े पैमाने पर उत्पादन के कारण कम लागत पर उपलब्ध कच्चा माल आदि आन्तरिक बचतें उत्पन्न करते है। इन्हीं आन्तरिक बचतों के कारण LAC गिरने लगती है।

12.8.6 बाह्य बचतें

बाह्य बचतें वे बचतें हैं जो उद्योग के विस्तार के कारण उपस्थित होती हैं तथा जिनका लाभ एक या दो फर्मों तक केन्द्रित न होकर उद्योग की सभी फर्मों के लिए समान रूप से होता है। प्रो0 मार्षY ने बाह्य बचतों की विचारधारा प्रस्तुत की थी। उनके विचार में बाह्य बचतें उद्योग के आकार का फलन है। इस प्रकार बाह्य बचतें उद्योग की सभी फर्मों द्वारा चाहे वह किसी भी आकार की क्यों न हो - समान रूप से प्राप्त की जा सकती है। जैकब वाइनर बाह्य बचतों को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया है।

‘‘बाहरी बचतें वे बचते हैं जो विशेष प्रतिष्ठानों को सम्पूर्ण उद्योग की उत्पादन मात्रा के विस्तार के कारण प्राप्त होती है तथा जो उनके व्यक्तिगत उत्पादन मात्रा से स्वतन्त्र होती है।’’

दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि जब उत्पादन मात्रा में वृद्धि की जाती है तो बाह्य बचतों के कारण प्रत्येक फर्म का लागत वक्र नीचे स्थानान्तरित हो जाता है।

संक्षेप में, आन्तरिक बचतों को निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. श्रम विभाजन एंव विशिष्टीकरण की बचतें
2. तकनीकी बचतें
    - (i) प्लाण्ट का अनुकूलतम प्रयोग
    - (ii) अविभाज्य साधनों का पूर्ण उपयोग
    - (iii) उत्पादन प्रक्रिया में बचे पदार्थ का प्रयोग करके

सम्बद्ध प्रक्रियाएं आरम्भ करके - दो पृथक-पृथक प्रक्रियाओं को, जो भिन्न-भिन्न स्थानों पर विभिन्न उद्योगों द्वारा सम्पन्न की जाती थी, एक ही उद्योग के अन्तर्गत दो विभागों में करने से यातायात आदि के रूप में बचतें प्राप्त की जा सकती है।

3. प्रबन्धकीय बचतें

(i) कार्यकुशलता में वृद्धि हेतु प्रोत्साहन देकर

(ii) कार्यात्मक विशिष्टीकरण करके

4.विपणन की बचतें

5.वित्तीय बचतें

6.जोखिम सम्बन्धी बचतें - एक साथ कई वस्तुओं का उत्पादन करके हानि की सम्भावना को न्यूनतम करना।

बाहरी बचतों को निम्नलिखित रूप में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है।

1.कुशलश्रम का सस्ती दर पर उपलब्ध होना क्योंकि उत्पादकों के मध्य प्रतियोगिता कम हो जाती है तथा वे योग्य श्रमिकों को सस्ती दर पर प्राप्त करने में सफल हो जाते।

2.परिवहन तथा संचार के साधनों का सदुपयोगी विकास होने से यातायात लागत न्यूनतम हो जाती है।

3.वित्तीय संस्थाओं का विकास - सस्ती दर पर साख उपलब्ध ता।

4.एक क्षेत्र में अनेक उद्योगों का विकास कच्चे माल की सहज उपलब्ध ता।

5.उचित प्रशिक्षण द्वारा श्रमिक की कार्यकुशलता में वृद्धि।

6.अनुसन्धान एवं व्यावसायिक पत्रिकाओं से सूचना सम्बन्धी बचतों की प्राप्ति।

12.8.7 पैमाने की हानियां

एक सीमा के बाद जब उत्पादन मात्रा में वृद्धि की जाती है तो दीर्घकालीन औसत वक्र ऊपर की ओर बढ़ना आरम्भ कर देता है LAC की इस प्रवृत्ति का कारण यह है कि एक उत्पादन से हानियां उत्पन्न होने लगती है। यही कारण है कि कोई भी फर्म असीमित मात्र तक अपनी उत्पादन गति को कहीं बढ़ा सकता।

पैमाने की हानियां दो प्रकार की होती हैं:-

1. आन्तरिक हानियां

2.बाह्य हानियां

आन्तरिक हानियों के उपस्थिति होने का मुख्य कारण है कि जब उत्पादन का विस्तार होता है तो विस्तृत उत्पादन संगठन को नियन्त्रण में रखना कठिन हो जाता है। बड़े संगठन की विभिन्न इकाइयों में सामंजस्यता स्थापित करना प्रबन्ध तन्त्र के लिए असम्भव हो जाता हैं निरीक्षण कार्य अवरूद्ध हो जाता है, जिसके कारण उत्पादन लागत बढ़ने लगती है क्योंकि ऐसी दशा में साधनों का कुशलतम प्रयोग सम्भव नहीं हो पाता। इस प्रकार एक बिन्दु के बाद LAC वक्र ऊपर चढ़ने लगता है जो उत्पादन की अमितव्ययी दशा को सूचित करता है।

बाहरी हानियां मुख्यतः उद्योग के विस्तार के कारण विभिन्न साधनों की बढ़ती हुई मांग के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। जब उद्योग का विस्तार होता है तब कुछ उत्पत्ति के साधनों की मांग बढ़ जाने के कारण वे दुर्लभ हो जाते हैं जिसके कारण उनकी कीमतों में वृद्धि हो जाती है। साधनों की बढ़ती हुई कीमत समान रूप से उद्योगों की सभी फर्मों के लागत वक्रों को समान रूप से उठा देगी। साधनों की सीमितता उद्योग की फमों के मध्य स्पर्धा उत्पन्न करेगी क्योंकि प्रत्येक फर्म दुर्लभ

साधनों को अपने उत्पादन में आकर्षित करने के लिए उन साधनों को ऊँचा मूल्य देकर दूसरी फर्म से तोड़ने का प्रयास करेगी।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उत्पादन के एक सीमा के बाद विस्तार से आन्तरिक एवं बाह्य हानियां उत्पन्न होती है जिसके सम्मिलित प्रभाव से दीर्घकालीन औसत लागत बढ़ने लगती है।
उत्पादन के बचतों एवं हानियों के कारण LAC वक्र विभिन्न आकृतियाँ ले सकता है,जिनकी व्याख्या चित्र 16 में की गई है।
चित्र के भाग A में पैमाने की बचतें लगभग नगण्य है तथा पैमाने की हानियां मुख्यतः उपस्थित है जिसके कारण LACवक्र उत्पादन की बहुत कम मात्रा (चित्र में OX) के बाद ही बढ़ना आरम्भ कर दिया।

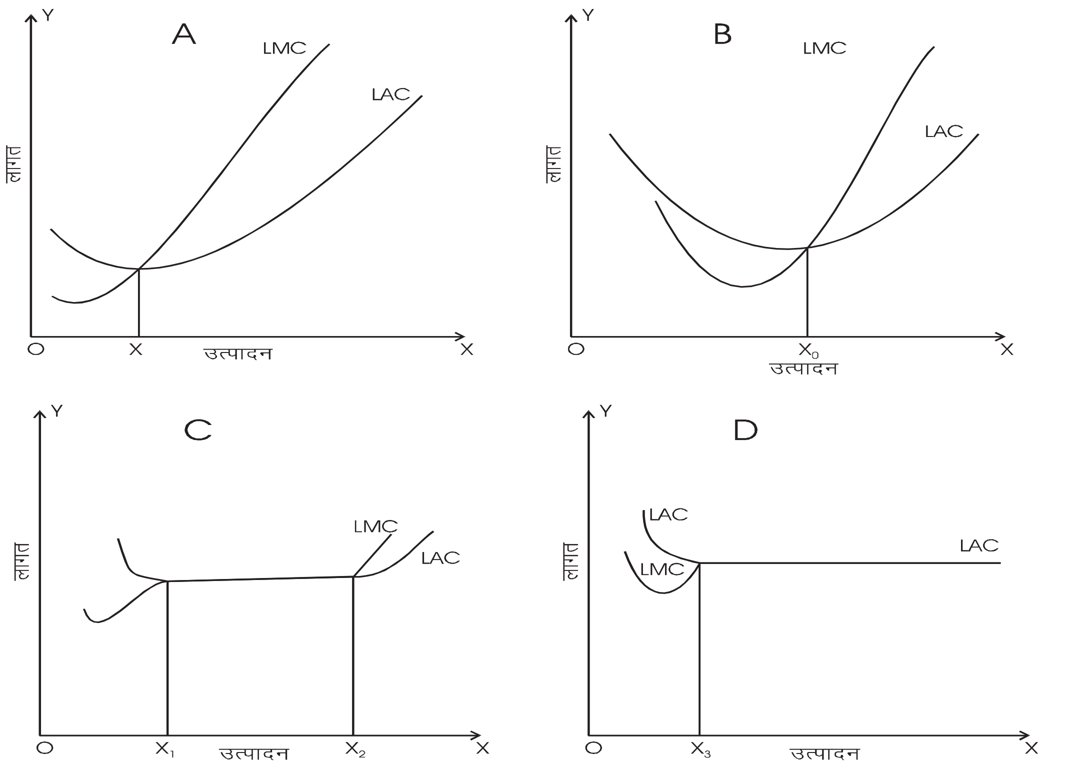

चित्र संख्या 16 में LACकी विभिन्न एकाइयां

चित्र के भाग B में पैमाने की बचतें उत्पादन की अधिक मात्रा तक (चित्र में OX_0) उपलब्ध होती है जिसके कारण LAC वक्र काफी समय तक नीचे गिरता हुआ प्राप्त होता है।

चित्र के भाग C में पैमाने के स्थिर प्रतिफल एक लम्बी उत्पादन मात्रा तक उपस्थित है जिसके कारण उत्पादन मात्रा तक उपस्थित है जिसके कारण उत्पादन की OX_2 तथा OX_1 मात्रा के मध्य LAC वक्र अक्ष-X के समानान्तर एक पड़ी रेखा के रूप में प्राप्त होता है।

चित्र के भाग D में उत्पादन की OX3 मात्रा के बाद उत्पादन की औसत लागत स्थिर है जिसके कारण LAC वक्र स्थिर है तथा इस वक्र में कोई भी बढ़ता हुआ भाग प्राप्त नहीं होता।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की आकृति के सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने योग्य यह है कि LACवक्र SACवक्र की तुलना में अधिक चपटा होता है। इसका कारण स्थिर पैमाने के प्रतिफल का उपस्थित होना है। जहाँ पैमाने की बचतें, हानियों के बराबर होती है। दूसरे शब्दों में, LAC वक्र उस भाग में अधिक चपटा होता है जहाँ उत्पादन की मितव्ययताएँ एक-दूसरे को संतुलित करती है।

12.9 लघु उत्तरीय प्रश्न

8. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की न् आकृति का कारण है -
   a. परिवर्तनशील अनुपात का नियम
   b. पैमाने के प्रतिफल
   c. उत्पत्ति ह्रास नियम
   d. उपर्युक्त सभी

9.दीर्घकालीन औसत लागत वक्र उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओं को उत्पन्न करने की प्रति इकाई -
   a. अधिकतम लागत को बताती है।
   b. न्यूनतम सम्भव लागत को बताती है।
   c. बढ़ती हुई लागत को बताती है।
   d. उपर्युक्त में से कोई नहीं।

10.दीर्घकालीन औसत लागत वक्र -
   a. फर्म का नियोजन वक्र कहा जाता है।
   b. U आकार का होता है।
   c. सभी अल्पकालीन औसत लागत वक्र को सदैव इसक न्यूनतम बिन्दु पर स्पर्श नहीं करेगा।
   d. उपर्युक्त सभी।

11.दीर्घकाल में औसत लागत तथा सीमान्त लागत का -
   a. वही सम्बन्ध है जो अल्पकाल में होता हैं।
   b. सम्बन्ध अल्पकाल से भिन्न होता है।
   c. सम्बन्ध बदलता रहता है।
   d. उपर्युक्त में से कोई नहीं।

12.कौन सा कथन सत्य है -

a. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र आवरण वक्र होता है।

b. अल्पकालीन औसत लागत वक्र आवरण वक्र होता है।

c. औसत परिवर्तनशील लागत वक्र आवरण वक्र होता है।

d. सीमान्त लागत (MC) वक्र आवरण वक्र होता है।

13.जब फर्म समान्य क्षमता से अधिक उत्पादन करती है तो उसका AVCवक्र -

a. नीचे दायी ओर गिरता है।

b. तेजी से ऊपर की ओर बढ़ता है।

c. धीरे से ऊपर बढ़ता है।

d. स्थिर रहता है।

14.निम्न में से किस वक्र को एनवYफ वक्र कहा जाता है -

A. SAC

B. LAC

C. SFC

D. AVC

12.10 सारांश

- उत्पादन लागत की प्रमुख अवधारणा तीन प्रकार की होती है, 1. मौद्रिक लागत, 2. वास्तविक लागत, 3. अवसर लागत
- दृश्य लागतें, अदृश्य लागतें तथा सामान्य लाभ मौद्रिक लागत के भाग हैं।
- वास्तविक लागतों से अभिप्राय उस मेहनत, प्रयास, त्याग व कष्ट से है जिससे किसी वस्तु का उत्पादन किया जाता है।
- किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करने में आने वाली अवसर लागत से तात्पर्य दूसरी वस्तु की उस उत्पादन मात्रा से है जिसके उत्पादन का परित्याग किया जा रहा है।
- कुल लागत के दो भाग स्थिर लागत व परिवर्तनशील लागत है।
- उत्पादन में वृद्धि के साथ कुल लागत में प्रति इकाई स्थिर लागत का अंश घटता व परिवर्तनशील लागत का अंश बढ़ता जाता है।
- सीमान्त लागत का अभिप्राय वस्तु की अन्तिम इकाई की उत्पादन लागत से है।

12.11 शब्दावली

उत्पादन लागत - किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले समस्त उत्पत्ति के साधनों को दिया जाने वाला भुगतान उत्पादन लागत कहलाता है।

मौद्रिक लागत - किसी फर्म द्वारा एक वस्तु के उत्पादन में किए गए कुल मुद्रा व्यय को मौद्रिक लागत कहते हैं।

दृश्य लागतें - वे लागते जिन्हें उत्पादक को उत्पत्ति के साधनों को एकत्र करने हेतु प्रत्यक्ष रूप से व्यय करना पड़ता है।

अदृश्य लागतें - अदृश्य अथवा सन्निहित लागतों में उत्पादक के वे व्यय शामिल रहते हैं जिनका उत्पादक को प्रत्यक्ष रूप में भुगतान नहीं करना पड़ता।

सामान्य लाभ - कम से कम वह लाभ जो फर्म अथवा उत्पादक को कार्य में लगाए रखने के लिए आवश्यक होता है।

वास्तविक लागत - किसी वस्तु की अवसर लागत वह सर्वश्रेष्ठ विकल्प है जिसका उत्पादन नहीं उत्पत्ति साधनों द्वारा उसी लागत पर उस वस्तु के साधनों के रूप में किया जा सकता है।

12.12 संदर्भ

- आहूजा, एच एल ''उच्चतर आर्थिक विश्ले षण'' एस चान्द एण्ड कम्पनी, रामनगर , नई दिल्ली, 2008
- सेठ, एम एल ''सूक्ष्म अर्थशास्त्र'' लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , अ कोर्स इन माइक्रो एकोनॉमिक्स थियरी, प्रिसंटन, यूनीवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन
- लॉयरड, पी आर जी एण्ड ए0डब्ल्यू0 बॉलटरस (1978), माइक्रों एकोनॉमिक थीयरी, मैग्रा हिल , नई दिल्ली
- स्टिंगलर जी (1996), थीयरी ऑफ प्राइस , प्रेनटिस हॉल ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली
- सेन ए (1999) माइक्रो एकोनॉमिक्स, थीयरी एण्ड अप्लीकेषन, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली
- कूटसियोनिस, ए मॉडर्न माइक्रो इकोनॉमिक्स, मैक मिल न प्रेस, लन्दन

12.13 लघु उत्तरी प्रश्नों के उत्तर

1. D
2. D
3 A

(4) B

(5) A

(6) A

(7) B

(8) B

(9) B

(10) D

(11) A

(12) A

(13) B

(14) B

12.14 दीर्घ उत्तरी प्रश्न

1.व्याख्या कीजिए कि अल्पकालीन में सीमान्त लागत कुल परिवर्तनशील लागत में होने वाले परिवर्तनों के ऊपर निर्भर करेगा।

2.स्थिर एवं परिर्तशील लागत पर टिप्पणी लिखिए।

3.औसत तथा सीमान्त लागत पर संक्षिप्त उत्तर दीजिए।

4.औसत लागत क्या है ? औसत एवं सीमान्त लागत के मध्य सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।

5.विभिन्न आय एवं लागत वक्रों को समझाइए।

6.''सीमान्त लागत वक्र औसत लागत वक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु पर काटता है'' विवेचना कीजिए।

7.वास्तविक लागत व अवसर लागत में अन्तर बताइए और आर्थिक विश्लेषण में अवसर लागत के महत्व का परीक्षण कीजिए।

इकाई-13 आगम वक्र विश्लेषण

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 आगम का अर्थ एवं प्रकार
13.2.1 कुल आगम
13.2.2 औसत आगम
13.2.3 सीमान्त आगम
13.3 औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों का परस्पर सम्बन्ध
13.4 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत एवं सीमान्त आगम-वक्र
13.5 अपूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार के अन्तर्गत फर्म के आगम वक्र
13.6 आगम वक्रों की कुछ विशेष परिस्थितियां
13.6.1 प्रथम परिस्थिति
13.6.2 द्वितीय परिस्थिति
13.6.3 तृतीय परिस्थिति
13.7 कीमत-विश्लेषण में आगम-वक्रों की भूमिका
13.8 लघु उत्तरीय प्रश्न
13.9 सारांश
13.10 शब्दावली
13.11 संदर्भ
13.12 लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर
13.13 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में हम उत्पादन में आने वाली विभिन्न प्रकार की लागतों जैसे मौद्रिक लागत, अवसर लागत तथा सीमान्त लागत का अध्ययन कर चुके हैं। साथ ही उत्पादन में आने वाली अल्पकालीन और दीर्घकालीन लागतों का भी अध्ययन किया गया । हम जानते हैं कि उत्पादक का लाभ उस पर आ रही उत्पादन लागत पर ही नहीं बल्कि वस्तु की बिक्री से प्राप्त होने वाले आगम पर भी निर्भर करता है। उत्पादक के लाभ उसके कुल लागत एवं कुल आगम के अन्तर पर निर्भर करतें है। इस अध्याय में हम उत्पादक के आगम पक्ष का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

13.1 उद्देश्य

आगम पक्ष उत्पादन के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि आगम पर ही लाभ निर्भर करता है तथा लाभ व आगम का स्तर ही यह निर्धारित करता है कि उत्पादक को वर्तमान परिस्थितियों में अपना उत्पादन जारी अथवा बंद रखना चाहिए। इस अध्याय में हम यह अध्ययन करेंगें कि:-

- आगम की विभिन्न धारणाएं कौन-कौन सी है।
- कुल आगम औसत आगम तथा सीमान्त आगम क्या होते है।
- औसत आगम व सीमान्त आगम में किस प्रकार का सम्बन्ध होता है।
- कीमत निर्धारण में आगम वक्र की क्या भूमिका होती है।
- पूर्ण प्रतियोगिता में औसत आगम तथा सीमान्त आगम वक्र किस प्रकार के होते है।
- अपूर्ण प्रतियोगिता में आगम वक्र कैसे होते है।
- एकाधिकार के अन्तर्गत आगम वक्र की क्या स्थिति होती है।

13.2 आगम का अर्थ एवं प्रकार

किसी वस्तु की निश्चित मात्रा में बिक्री करने से उत्पादक अथवा विक्रेता को जो कुल धनराशि प्राप्त होती है, उसे आगम कहते हैं। अर्थशास्त्र में आगम प्रायः निम्न तीन प्रकार के होते हैः

1. कुल आगम
2. औसत आगम
3. सीमान्त आगम

13.2.1 कुल आगम

किसी फर्म का कुल आगम वस्तु की एक इकाई की कीमत तथा कुल विक्रय की गई इकाइयों के गुणनफल द्वारा प्राप्त किया जाता है।

अर्थात कुल आगम = कुल बिक्री से प्राप्त राशि

= बिक्री इकाइयां X प्रति इकाई कीमत

13.2.2 औसत आगम

औसत आगम से अभिप्राय वस्तु की प्रति इकाई आगम से है। कुल आगम को वस्तु की बेची जाने वाली इकाईयों की संख्या से विभाजित करने पर औसत आगम सरलता से ज्ञात किया जा सकता है। औसत आगम = कुल आगम

कुल बेंची गई इकाइयां

$$AR = \frac{TR}{Q}$$

जहाँ

AR = औसत आगम

TR = कुल आगम

Q = कुल उत्पादन की बेची गयी इकाइयां

औसत आगम वस्तु के प्रति इकाई मूल्य को प्रदर्शित करता है।

13.2.3 सीमान्त आगम

बाजार में उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई के विक्रय से कुल आगम में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त आगम कहते हैं। दूसरे शब्दों में फर्म के किसी विशेष उत्पादन-स्तर पर सीमान्त आगम (MR) कुल आगम में जुड़ने वाली वह धनराशि है जो फर्म को वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई की बिक्री से प्राप्त होती है। फर्म की सीमान्त आगम कुल आगम में होने वाली वह वृद्धि है जो n इकाइयों के बजाय n_1 इकाइयों को बेचने से प्राप्त होती है। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि सीमान्त आगम कुल आगम में परिवर्तन की दर को दर्शाता है।

यदि $TR_{n+1} = (n+1)$ इकाइयों से प्राप्त आगम

तथा $RT_n = n$ इकाइयों से प्राप्त आगम

तब $MR_{n+1} = TR_{n+1} - TR_n$

दूसरे शब्दों में,

$$MR = \frac{\delta(TR)}{\delta Q} = \frac{\text{कुल आय में वृद्धि}}{\text{वस्तु की बिक्री मात्रा में वृद्धि}}$$

तीनों प्रकार के आगमों को एक सारणी द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

सारणी - 1

इकाइयों की संख्या	**कुल आगम (TR)**	**औसत आगम = वस्तु की कीमत (AR)**	**सीमान्त आगम (MR)**
1	20	20	20
2	38	19	18
3	54	18	16
4	68	17	14
5	80	16	12
7	98	14	10
8	104	13	8
9	108	12	6
10	110	11	4
11	110	10	0
12	108	9	-2

उपर्युक्त सारणी स्पष्ट है कि एक सीमा तक तो TR बढ़ता है परन्तु एक बिन्दु के पश्चात सीमान्त आगम (MR) के घटने के कारण कुल आगम (TR)में वृद्धि तो होती है किन्तु घटती दर से होने लगती है। सारणी से स्पष्ट है कि 11वीं इकाई पर सीमान्त आगम (MR) शून्य है। दूसरे शब्दों में TR अधिकतम है। 12वीं इकाई के लिए सीमान्त आगम (MR) ऋणात्मक हो जाता है। जिसके कारण कुल आगम (TR)घटने लगता है।

13.3 औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्रों का परस्पर सम्बन्ध

कीमत-सिद्धान्त का विश्लेषण करने हेतु कुल आगम-वक्र हमें कोई विशेष सहायता नहीं देता। अतः कुल आगम वक्र हमारे लिए महत्वपूर्ण नहीं है। फिलहाल हम इसका परित्याग कर देते हैं और

अपना समूचा ध्यान औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों पर ही केन्द्रित करते हैं। औसत एवं सीमान्त आगम-वक्रों के बीच सुव्यक्त एव सुनिश्चित सम्बन्ध होता है। जब औसत आगम वक्र

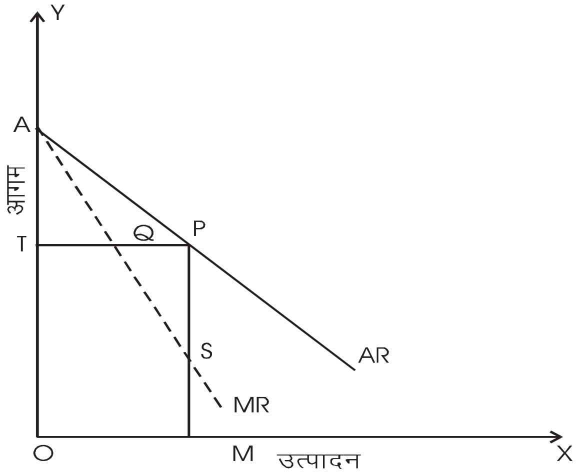

चित्र 1

गिरता है तब सीमान्त आगम औसत आगम से कम होता है और जब औसत आगम वक्र ऊपर उठता है तो सीमान्त आगम औसत आगम से अधिक होता है। सीमान्त आगम-वक्र ऊपर उठ सकता है नीचे गिर सकता है और क्षितिजीय हो सकता है लेकिन सामान्यतया यह वक्र नीचे ही गिरता है। जब औसत एवं सीमान्त आगम-वक्र दोनों सीधी रेखाएं होती है तो औसत आगम-वक्र से Y.अक्ष पर खींची गई लम्बात्मक रेखा को सीमान्त आगम-वक्र ठीक मध्य में काटता है। इसे चित्र 1 में प्रदर्शित किया गया है। इस रेखा कृति में हमने औसत आगम वक्र (AR) तथा उसके तत्सम्बन्धी आगम-वक्र (MR) को प्रदर्शित किया गया है। अब हमें ज्यामितीय विधि से यह सिद्ध करना है कि सीमान्त आगम-वक्र एवं AR वक्र Y.अक्ष के मध्य में से होकर गुजरता है। इसको सिद्ध करने हेतु आइए हम AR वक्र पर कोई बिन्दु P लेते हैं और Y.अक्ष एवं X.अक्ष पर क्रमश PT एवं PM रेखाएं खीचते हैं।

PT रेखा MR वक्र को Q बिन्दु पर काटती है। MP रेखा उसी MR वक्र को S बिन्दु पर काटती है। अब हमें सिद्ध करना है कि TQ=QP। जैसा कि रेखाकृति से स्पष्ट है, TPMO = ASMO। इसका कारण है कि TPMO एवं ASMO दोनों ही उस कुल आगम के बराबर है। जो OM मात्रा बेंचकर फर्म कमाती। TPMO आयत उस कुल आगम को व्यक्त करता है जो औसत आगम PM को OM मात्रा से गुणा करने पर प्राप्त होता है। ASMO क्षेत्रफल O तथा M के बीच विभिन्न मात्राओं के सीमान्त आग मों के जोड़ को व्यक्त करता है। दूसरे शब्दों में, ASMO, क्षेत्रफल OM मात्रा के कुल आगम को प्रकट करता है। इस प्रकार TPMO, क्षेत्रफल ASMO क्षेत्रफल + DQPS के बराबर है। लेकिन TPMO आयत TQSMO क्षेत्रफल + DQPS के बराबर है। इसका अभिप्राय यह हुआ

कि क्षेत्रफल की दृष्टि से ΔQPS, ΔATQ के बराबर है। $\angle ATQ = \angle QPS$ (क्योंकि ये दोनों ही लम्ब कोण है) इसी प्रकार $\angle AQT = \angle PQS$ (क्योंकि ये दोनों ही उर्ध्वाधरतः अभिमुखी हैं) अतः ΔATQ तथा ΔQPS सभी दृष्टियों से एक-दूसरे के समान है। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि TQ = QP। Y.अक्ष पर पड़ने वाली लम्बात्मक रेखा PT को MR सीमान्त आगम-वक्र Q बिन्दु पर द्विभाजित करता है। अतः MR वक्र औसत-आगम-वक्र एवं Y.अक्ष के मध्य में से होकर गुजरता है। इसका यह भी अभिप्राय है कि AT/TQ के सीधे वक्र की ढाल AT/TP के सीधा औसत वक्र की ढाल से दुगुनी है।

औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों का उक्त सम्बन्ध प्रायः सीधी रेखा वाले वक्रों पर ही सत्य उतरता है। यदि औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्र सीधी रेखाएं नहीं है बल्कि वास्तविक रूप में वक्र है, तब दोनों का उक्त सम्बन्ध सत्य नहीं होगा।

आइए अब हम एक ऐसा उदाहरण लें जिसमें औसत आगम-वक्र सीधी रेखा होने के बजाय ऊपर की ओर उत्तल है (देखिए रेखाकृति **2(A)**)। इस चित्र में AR ऊपर की ओर उत्तल है। यदि AR वक्र से Y.अक्ष पर हम कोई रेखा खींचते हैं तो सीमान्त आगम-वक्र इस रेखा को एक ऐसे बिन्दु से थोड़ी कम दूरी पर स्थिति है। जैसा कि रेखाकृति

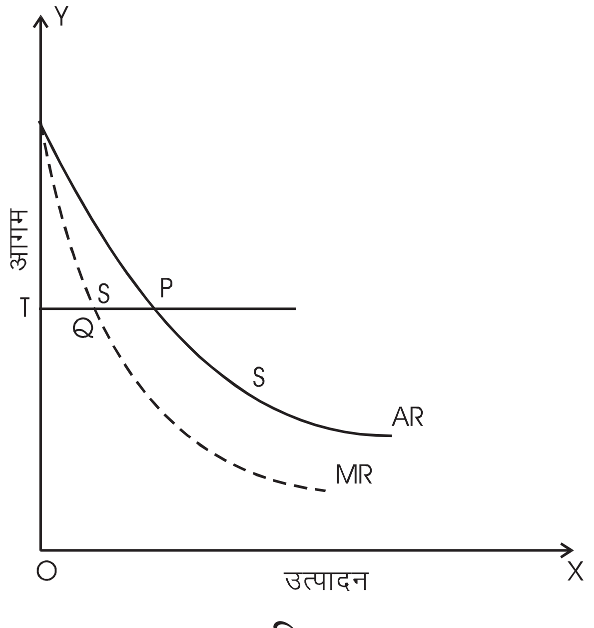

चित्र - 2(A)

2(A)में प्रदर्शित किया गया है, MR वक्र PT लम्बात्मक रेखा को Q बिन्दु पर काटता है, जबकि मध्य बिन्दु S है।

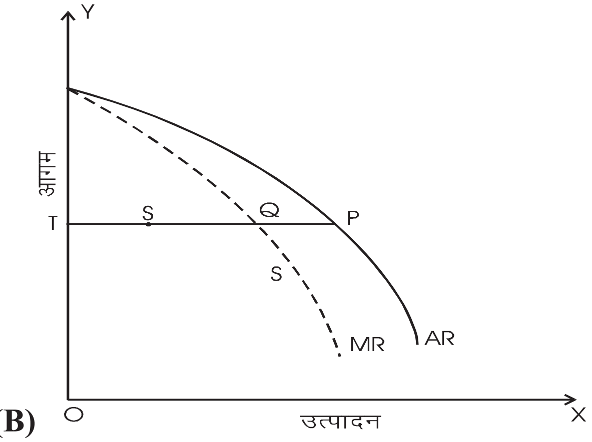

रेखाचित्र 2(B)

रेखाचित्र **2(B)**में AR वक्र नतोदर है। यदि AR वक्र से Y.अक्ष पर हम कोई रेखा खींचते हैं तो सीमान्त आगम-वक्र इस रेखा को एक ऐसे बिन्दु पर काटेगा जो AR वक्र एवं Y.अक्ष के मध्य-बिन्दु से थोड़ी अधिक दूरी पर स्थित है । जैसा कि चित्र **2(B)**में प्रदर्शित किया गया है, MR वक्र PT लम्बात्मक रेखा को Q बिन्दु पर काटता है, जबकि मध्य बिन्दु S है।

अब तक हमने Y.अक्ष पर पड़ने वाले लम्ब के सहारे औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों के पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन किया है। आइए अब हम X.अक्ष पर पड़ने वाले लम्ब के सहारे औसत आगम और सीमान्त आगम वक्रों के सम्बन्ध पर विचार करें। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अब हम वस्तु मात्रा के किसी विशेष स्तर पर दोनों वक्रों के सम्बन्ध की विवेचना करेंगे।

इस विवेचना से पूर्व यह बता देना उचित होगा कि फर्म का औसत आगम-वक्र (जिसे कभी-कभी बिक्री चक्र भी कहते हैं) ग्राहकों के दृष्टिकोण से फर्म की वस्तु का मांग -वक्र होता है क्योंकि यह वक्र फर्म की उन विभिन्न मात्राओं को व्यक्त करता है जिनकी मांग ग्राहकों द्वारा विभिन्न कीमतों पर की जाती है। सभी व्यावहारिक उद्देष्यों के लिए औसत आगम-वक्र को मांग वक्र के तुल्य ही समझा जाना चाहिए। X.अक्ष पर आधारित लम्ब के सहारे औसत आगम-वक्र के परस्पर सम्बन्ध की हमारी विवेचना तब तक पूर्ण नहीं समझी जा सकती जब तक कि हम इसमें फर्म की वस्तु की मांग की लोच को सम्मिलित नहीं करते। दूसरे शब्दों में, जिस बिन्दु पर हम औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों के परस्पर सम्बन्ध का अध्ययन करना चाहते हैं। औसत आगम-वक्र अथवा मांग वक्र पर स्थिति उस विशेष बिन्दु से सम्बन्धित उपज-स्तर पर हम औसत आगम-वक्रों के सम्बन्ध का अध्ययन नहीं कर सकते।

चित्र 3 में हमने यह बताने का प्रयास किया है कि औसत आगम-वक्र (AR) पर मांग की लोच को कैसे मापा जाता है। जिस विधि से मांग की लोच को मापा जाता है, उसे हम बिन्दु विधि कहते हैं।

इस चित्र में औसत आगम AR वक्र है। AR वक्र पर स्थित P बिन्दु पर हमें मांग की लोच को मापना है। इसके करना सरल है। स्पर्श रेखा पर स्थित P के निचले भाग (अर्थात् PT) को बिन्दु P के ऊपर वाले भाग (अर्थात् QP) से विभाजित करने पर संख्यात्मक मांग की लोच निकल आती है। दूसरे शब्दों में, AR वक्र पर स्थित P बिन्दु पर मांग की लोच को इस सूत्र से निकाला जा सकता है P = PT/QP ।

अतः औसत आगम-वक्र अथवा मांग वक्र पर संख्यात्मक मांग की लोच निकाल ने की विधि इस प्रकार है। वक्र पर स्थित P बिन्दु के सहारे QT स्पर्श रेखा खीचिए और फिर PT को QP से विभाजित करके संख्यात्मक मांग की लोच को निकाल लीजिए (P = PT/QP)। संख्यात्मक बिन्दु की मांग लोच ज्ञात कर लेने के पष्चात् X.अक्ष पर आधारित लम्ब के सहारे हम औसत आगम तथा सीमान्त आगम-वक्रों के सम्बन्ध का अध्ययन कर सकते हैं।

चित्र 4 में AR औसत आगम-वक्र हैं। P बिन्दु इसी वक्र पर आधारित है। इस बिन्दु पर संख्यात्मक बिन्दु मांग लोच PT/QP के बराबर है। दोनों त्रिकोणों अर्थात ΔNQP तथा ΔMPT के सभी कोण समान हैं। अतः PT/QT को PM/QN के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है। आइए, अब हम Q बिन्दु से एक ऐसी रेखा खींचे जो PN को R बिन्दु परद्विभाजित करती है और बाद में S बिन्दु पर PM को काटती है QL रेखा, वास्तव में, QT स्पर्श -रेखा की सीमान्त रेखा है क्योंकि यह PN लम्ब रेखा को Y.अक्ष तथा QT स्पर्श -रेखा के बीच मध्य-बिन्दु पर काटती है। अब हमारे पास दो छोटे त्रिकोण अर्थात् ΔQNR तथा ΔSRP हैं।

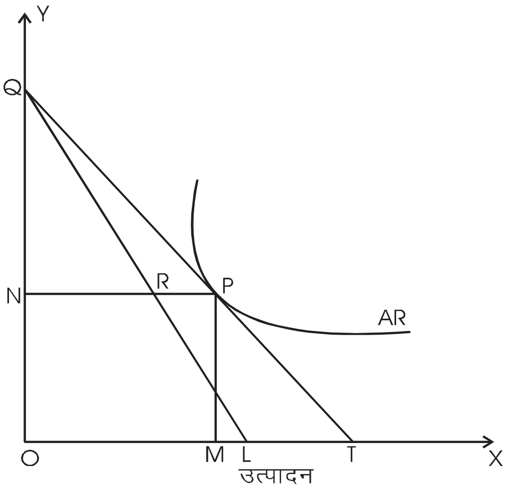

चित्र 4

इन दोनों त्रिकोणों में NR = PR

$\angle NRQ = \angle RPS$ (ये दोनों कोण उर्ध्वाधरतः अधिमुखी हैं)

$\angle QNR = \angle RPS$(क्योंकि ये दोनों ही लम्ब कोण हैं।)

अतः दोनों त्रिकोण अर्थात् ΔQNR एवं ΔSRP सभी दृष्टियों से एक-दूसरे के बराबर हैं। परिणामतः QN, PS के बराबर है। अतः बिन्दु P पर मांग लोच को PT/QP = PM/QN के रूप में व्यक्त करने के बजाय हम इसे PM/PS अथवा PM / (PM-SM)के रूप में प्रकट कर सकते हैं। लेकिन जैसा कि चित्र से स्पष्ट है कि, OM उपज पर PM औसत आगम है और SM सीमान्त आगम है। अतः औसत आगम वक्र पर मांग -लोच को मापने हेतु हम निम्न सूत्र को प्रस्तुत करते हैं।

$$e = \frac{\text{Average Revenue}}{\text{Average Revenue} - \text{Marginal Revenue}}$$

अथवा

$$e = \frac{AR}{AR - MR} \quad \text{or} \quad e = \frac{A}{A - M}$$

उक्त सूत्र में e = मांग की लोच, A = औसत आगत, M = सीमान्त आगम

वास्तव में, यह सूत्र हमारे लिए बहुत ही लाभदायक है। यदि औसत आगम एवं मांग की बिन्दु-लोच दिये हुए हैं तो इस सूत्र की सहायता से हम सीमान्त आगम को ज्ञात कर सकते हैं। इसी प्रकार, यदि सीमान्त आगम एवं मांग की बिन्दु लोच की बिन्दु लोच दिये हुए हैं तो हम औसत आगम निकाल सकते हैं। जैसे इस सूत्र की सहायता से हम सीमान्त आगम निम्न प्रकार निकाल सकते हैं -

$$e = \frac{AR}{AR - MR}$$

$$\therefore \quad eA = eM = A$$

$$\therefore \quad eM = A - eA$$

$$M = \frac{eA - A}{e}$$

$$M = A \frac{e - 1}{e}$$

इसी प्रकार, इस सूत्र की सहायता से हम औसत आगम निकाल सकते हैं।

$$e = \frac{A}{A - M}$$

$$eA - Me = A$$

$$eA - A = eM$$

$$\therefore A(e-1) = eM$$

$$A = \frac{eM}{e-1}$$

$$\therefore A = M \frac{E}{e-1}$$

अतः वस्तु मात्रा के किसी भी स्तर पर

$$\text{Marginal Revenue} = \text{Average Revenue X} \frac{e-1}{e}$$

और

$$\text{Average Revenue} = \text{Marginal Revenue X} \frac{e-1}{e}$$

यहाँ e औसत आगम-वक्र पर मांग की बिन्दु-लोच को व्यक्त करती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर अब हम औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों की बीच सुव्यक्त एवं सुनिश्चित सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। चित्र 5 में इसे प्रदर्शित किया गया है।

इस चित्र में P बिन्दु AR वक्र के मध्य में स्थित है इसलिए OM पर मांग की बिन्दु लोच 1 के बराबर है। परिणामतः OM मात्रा पर सीमान्त आगम शून्य होता है। हमारे उक्त सूत्र के अनुसार

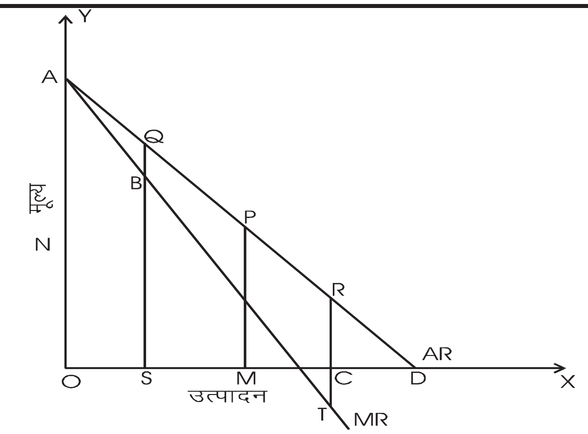

चित्र 5

सीमान्त

आगम=औसतआगम $= \frac{e-1}{1}$

= औसत आगम X 0 = 0

रेखाचित्र से यह स्पष्ट हो जाता है। OM मात्रा पर सीमान्त आगम शून्य है। अतः हम यह कह सकते हैं कि जब औसत आगम वक्र की लोच 1 के बराबर होती है,S तो सीमान्त आगम शून्य के बराबर होता है। आइए, अब AR वक्र पर हम Q बिन्दु को लें। यह भी मान लेते हैं कि फ बिन्दु पर मांग की लोच 2 बराबर है। तब हम उक्त सूत्र को यहाँ पर लागू करते हैं:

$$M = A \frac{e-1}{E}$$

$$\frac{M}{A} = \frac{2-1}{2} = \frac{1}{2}$$

दूसरे शब्दों में, उक्त चित्र में BS = ½ QS । यहाँ पर सीमान्त आगम, औसत आगम का ठीक आधा है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जब औसत आगम-वक्र की लोच 1 से अधिक होती है तो उपज के प्रत्येक स्तर पर सीमान्त आगम सदैव धनात्मक होता है । तथा P के मध्य किसी भी बिन्दु पर यही स्थिति होगी।

आइए अब AR वक्र पर हम एक अन्य बिन्दु R को लें । आइए हम यह भी मान लें कि R बिन्दु पर मांग की लोच 1/5 है। तब हम उक्त सूत्र को यहाँ पर लागू करते हैं।

$$M = A \frac{e-1}{e}$$

$$M = A \frac{1/5-1}{1/5}$$

$$= A \frac{-4/5}{1/5}$$

$$= -4A$$

दूसरे शब्दों में उक्त रेखाकृति में OC उपज पर CT, RC का 4 गुना है (स्मरण रहें, RC औसत आगम है) OC उपज पर सीमान्त आगम ऋणात्मक है और औसत आगम का 4 गुना है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जब औसत आगम-वक्र की लोच 1 से कम होती है तो उपज के प्रत्येक स्तर पर सीमान्त आगम सदैव ऋणात्मक होता है T तथा D के बीच किसी भी बिन्दु पर ही स्थिति होगी।

इस प्रकार यदि औसत आगम-वक्र की मांग की बिन्दु लोच हमें ज्ञात है तो उपर्युक्त सूत्र की सहायता से उपज के किसी स्तर पर हम औसत आगम से सीमान्त आगम निकाल सकते हैं।

सारांशतः, यदि मांग की बिन्दु-लोच इकाई अथवा 1 है तो तत्सम्बन्धी सीमान्त आगम शून्य होगा। यदि मांग की बिन्दु लोच इकाई से अधिक है तो तत्सम्बन्धी सीमान्त आगम धनात्मक होगा। यदि मांग की लोच इकाई से कम है तो तत्सम्बन्धी सीमान्त आ गम ऋणात्मक होगा। इसके अतिरिक्त, औसत आगम-वक्र की लोच जितनी अधिक होती है उतना ही सीमान्त आगम-वक्र औसत आगम-वक्र के समीप स्थित रहता है। इसके विपरीत, औसत आगम-वक्र की लोच जितनी कम होती है। उतना ही अधिक अन्तराल औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों के बीच रहता ह। यदि औसत-वक्र पर मांग की लोच पूर्ण अथवा अनन्त है तो सीमान्त आगम-वक्र औसत आगम-वक्र के साथ एकीभूत हो जायेगा।

13.4 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत एवं सीमान्त आगम-वक्र अथवा पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म-उद्योग सम्बन्ध

पूर्ण प्रतियोगिता की मूलभूत मान्यता यह है कि इसके अन्तर्गत फर्मों की संख्या अधिक होती है। प्रत्येक फर्म वस्तु की कुल पूर्ति के एक छोटे से अंश का ही उत्पादन करती है। परिणामतः कोई भी फर्म वस्तु के उत्पादन का विस्तार अथवा संकुचन करके बाजार-कीमत को प्रभावित नहीं कर

सकती। अतः पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत जहाँ तक विभिन्न फर्मों का सम्बन्ध है, उनके लिए तो वस्तु की कीमत पहले से ही निश्चित होती है। इस प्रकार की बाजार स्थिति में हम यह मानकर चलते हैं कि उस निश्चित कीमत पर तो प्रत्येक फर्म वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। अपनी बिक्री को बढ़ाने के लिए फर्म को कीमत में कटौती करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसका कारण यह है कि फर्म की कुल उपज उद्योग के समूचे उत्पादन का एक छोटा सा अंश ही होती है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी व्यक्तिगत फर्म की वस्तु की मांग पूर्णतः लोचदार होती है। पूर्ण प्रतियोगिता की दूसरी मान्यता यह है कि सभी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तु सभी दृष्टियों से समान होती है अथवा समरूप होती है। इसका परिणाम यह होता है कि क्रेतागण एक फर्म को छोड़कर दूसरी फर्म की वस्तु को प्राथमिकता नहीं दे सकते। वास्तव में, उन्हें इस प्रकार की प्राथमिकता देने की आवष्यकता ही नहीं पड़ती। अतः यदि कोई एक फर्म अपनी वस्तु की कीमत को बढ़ा देती है तो उसकी बिक्री घटकर शून्य के बराबर हो जायेगी।

इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत उद्योग द्वारा निर्धारित होती है और इस प्रकार उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत की प्रत्येक फर्म ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेती है। इस कीमत पर प्रत्येक फर्म वस्तु की जितनी मात्रा चाहे, बेच सकती है। कोई भी फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत से अधिक कीमत पर अपनी वस्तु नहीं बेच सकती। यदि वह ऐसा करती है तो उसकी बिक्री गिरकर शून्य के बराबर हो जायेगी। अतः पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार में प्रचलित केवल एक ही कीमत होती है।

किसी प्रतियोगी फर्म के लिए किसी वस्तु X से सम्बन्धित की एक काल्पनिक अनुसूची को लेकर हम पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों की व्याख्या करेंगे। (देखिए सारणी 2)।

सारणी 2

किसी फर्म की मांग एवं आगम-अनुसूची (रूपयों में)

कीमत प्रति इकाई	बेची गई मात्रा	कुल आगम **(TR)**	औसत आगम **(AR)**	सीमान्त आगम **(MR)**
120	1	120	120	120
120	2	240	120	120
120	3	360	120	120
120	4	480	120	120
120	5	600	120	120
120	6	720	120	120

जैसा कि आगम-अनुसूची से स्पष्ट है कि उद्योग द्वारा निर्धारित 120 रूपये प्रति इकाई की कीमत को फर्म ने स्वीकार कर लिया है। फर्म का मांग -वक्र पूर्णतया लोचदार है क्योंकि फर्म 120 रूपये प्रति कुन्तल की कीमत पर वस्तु की अधिक अथवा कम मात्रा बेच सकती है। उपर्युक्त अनुसूची को हमने रेखाचित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। ऐसा करते

समय हमने कुल आगम को छोड़ दिया है। इसमें अब हमारी अभिरूचि नहीं है।

रेखा चित्र में DD केवल मांग वक्र ही नहीं है, बल्कि यह फर्म का औसत आगम वक्र भी है। जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं। पूर्ण लोच के अन्तर्गत औसत आगम-वक्र सीमान्त आगम-वक्र के साथ एकीभूत हो जाता है।

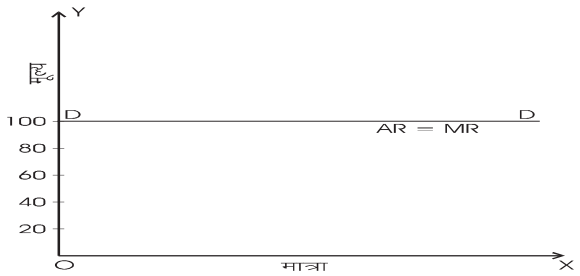

चित्र 6

13.5 अपूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार के अन्तर्गत फर्म के आगम वक्र

जैसा कि हम देखेंगे, एकाधिकार के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों की वह आकृति नहीं होती जो पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत होती है। एकाधिकार एवं अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्र दोनों ही बायीं से दायीं ओर नीचे झुकते हैं। जब ये दोनों वक्र नीचे गिरते हैं तब सीमान्त आगम-वक्र औसत आगम वक्र के नीचे होता है। ये दोनों वक्र नीचे क्यों गिरते हैं घ् इसका कारण यह है कि एकाधिकार तथा अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का मांग वक्र पूर्णतया लोचदार नहीं होती। ऐसी स्थिति में लोच कई तत्वों से निर्धारित होती है जैसे बाजार में विक्रेताओं की संख्या, परस्पर निर्भरता का अंश तथा वस्तु का स्वरूप। अब हम एक काल्पनिक मांग एवं आगम अनुसूची को लेकर एकाधिकार एवं अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी फर्म के आगम-वक्रों की व्याख्या करेंगे।

सारणी 3 में एक महत्वपूर्ण बात को नोट कीजिए। एकाधिकार तथा अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत में कटौती करके ही फर्म वस्तु की अतिरिक्त मात्रा बेच सकती है। वस्तु की कीमत में कटौती किए बिना फर्म अधिक मात्रा को बेचने की स्थिति में नहीं होती। स्मरण रहे कि वस्तु की सीमान्त इकाई की कीमत में केवल कटौती नहीं करती है बल्कि सभी पूर्वगामी अथवा सीमान्तोपरि

इकाइयों की कीमतों में कटौती करना अनिवार्य है। परिणामतः सीमान्त इकाई से जो आगम प्राप्त होता है। वह उसकी कीमत के बराबर नहीं होता, बल्कि उससे कम होता है। पूर्वगामी अथवा सीमान्तोपरि इकाइयों को कम कीमत पर बेचने से जो हानि होती है उसको सीमान्त इकाई की कीमत में से घटाने पर जो प्राप्ति होती है, वही सीमान्त इकाई का आगम होता है।

सारणी 3 फर्म की मांग एवं आगम अनुसूची (रूपये में)

प्रति इकाई कीमत	बेची गई इकाइयों की संख्या	कुल आगम **(TR)**	औसत आगम **(AR)**	सीमान्त आगम **(MR)**
15	1	15	15	15
14	2	289	14	13
13	3	39	13	11
12	4	48	12	9
11	5	55	11	7
10	6	50	10	5
9	7	63	9	3
8	8	63	8	1

उदाहरणार्थ, 4 इकाईयों को 12 रूपये प्रति इकाई की कीमत पर बेचा जाता है। इससे कुल आगम 48 रूपये होता है। लेकिन जब फर्म 5 इकाइयां बेचती हैं तो यह प्रति इकाई कीमत को घटाकर 11 रूपये कर देती है। कीमत में कटौती इसलिए करती है ताकि पहले से अधिक मात्रा को बाजार में बेचा जा सके। 5वीं अथवा सीमान्त इकाई की कीमत तो 11 रूपयो ही है, लेकिन इसको बेचने से फर्म को 11 रूपये प्राप्त नहीं होते । इस इकाई को बेचने से फर्म के प्रारम्भिक कुल आगम में केवल 7 रूपये की ही वृद्धि होती है क्योंकि 5 इकाईयों को बेचने से नया कुल आगम 55 रूपये बैठता है। इसका कारण यह है कि पांचवी इकाई को 1 रूपये कम पर बेचा जाता है और पहले वाली 4 इकाइयों को भी 11 रूपये प्रति इकाई के हिसाब से बेचा जाता है, यद्यपि उन्हें 12 रूपये प्रति इकाई की कीमत पर बेचा जा सकता था। इस फर्म ने सीमान्तोपरि इकाइयों पर 4 रूपये की हानि उठायी है। पांच इकाइयों को बेचने से नये कुल आगम में 11 रूपये की वृद्धि नहीं होती है। दूसरे शब्दों, नये कुल आगम एवं पुराने आगम में 11 रूपये का अन्तर नहीं होता है। नए सीमान्त आगम में 11 रूपये की वृद्धि न होकर केवल 7 रूपये की वृद्धि होती है। अतः स्पष्ट है कि एकाधिकार तथा अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु की अधिक मात्रा बेचने हेतु फर्म को प्रति इकाई कीमत घटानी पड़ती है। यही कारण है कि वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों पर औसत आगम घटता है तथा सीमान्त आगम और भी तेजी से घटता है।

उपर्युक्त अनुसूची को हम रेखाकृति के रूप में भी प्रकट कर सकते हैं। यहां पर हम कुल आगम-वक्र का परित्याग कर देते हैं।

रेखा चित्र में हमने एक एकाधिकार तथा अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी फर्म के औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्रों को प्रदर्शित किया है। DD वक्र (अथवा मांग वक्र) नीचे की ओर झुकता है। यह इस बात का प्रमाण है कि फर्म कीमत में कटौती करके ही वस्तु की अधिक मात्रा बेच सकती है। यही कारण है कि मांग -वक्र अथवा औसत आगम-वक्र बायी से दायी ओर नीचे गिरता चला जाता है। सीमान्त आगम-वक्र MR तो और भी अधिक तेजी से नीचे गिरता चला जाता है। उपर्युक्त अनुसूची को दखिए। जब औसत आगम में 1 रूपये की कमी होती है

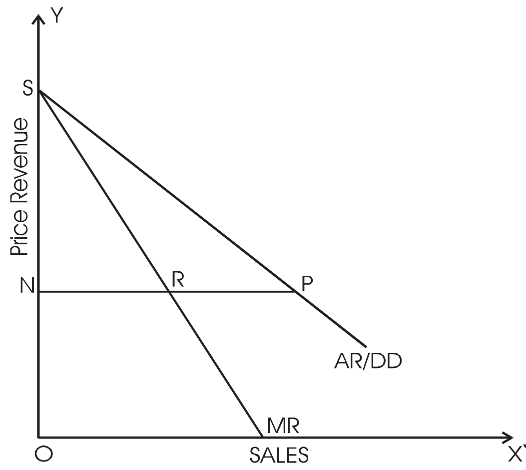

चित्र 7

तो सीमान्त आगम में 2 रूपये की कमी होती है। सीमान्त आगम औसत आगम की दुगुनी दर पर नीचे गिरता है। P बिन्दु से Y.अक्ष पर नीचे गिरता है। P बिन्दु Y.अक्ष पर खींची गई लम्बात्मक रेखा को R बिन्दु पर MR वक्र द्विभाजित करता है।

अब हमने एक ओर तो पूर्ण प्रतियोगिता और दूसरी ओर एकाधिकार (तथा अपूर्ण प्रतियोगिता) के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों की आकृतियों का परीक्षण कर लिया है। अब हम समूची स्थिति को इस प्रकार सामान्यीकृत रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। बाजार में फर्मों की संख्या जितनी अधिक होगी तथा विचाराधीन वस्तु के स्थानान्तरण जितने होंगे, उतना ही फर्म का औसत आगम-वक्र अधिक लोचदार होगा। इसके विपरीत, किसी वस्तु को बनने वाली फर्मों की संख्या जितनी कम होगी और उस वस्तु के निकटतम स्थानापन्नों की संख्या जितनी कम होगी उतना ही फर्म का औसत आगम-वक्र कम लोचदार होगा। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम वक्र X अक्ष के क्षितिजीय होता है विशुद्ध एकाधिकार के अन्तर्गत औसत आगम-वक्र प्रपाती होता है। वास्तविक जीवन में बाजार में न तो पूर्ण प्रतियोगिता होती है और न ही विशुद्ध एकाधिकार। वास्तविक बाजार में तो अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पाई जाती है। अतः औसत आगम-वक्र इन

दोनों आकृतियों के मध्य ही स्थिति होगा। ये दोनों आकृतियां कौन सी हैं ? पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वक्र की आकृति क्षितिजीय होती है। जबकि एकाधिकार के अधीन वक्र की आकृति प्रपाती होती है। दूसरे शब्दों में, वास्तविक बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम-वक्र न तो क्षितिजीय होता है और न ही प्रपाती बल्कि औसत आगम वक्र इन दोनों आकृतियों के बीच ही स्थिर रहता है। वैकल्पिक रूप में हम यह कह सकते हैं कि औसत आगम-वक्र जितना कम लोचदार होगा, बाजार में पायी जाने वाली प्रतियोगिता उतनी ही अधिक पूर्ण होगी।

यहाँ पर एक महत्वपूर्ण तथ्य ध्यान देने योग्य है। विभिन्न बाजार परिस्थितियों में फर्म के आगम-वक्रों से सम्बन्धित अपनी उक्त विवेचना में हमने निरन्तर एक महत्वपूर्ण तत्व अर्थात् समय की पूर्ण उपेक्षा की है। अपने विश्लेषण में हमने समय तत्व को कुछ भी स्थान नहीं दिया है। हमने फर्म के औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों का अध्ययन उस समयावधि में किया है। जिसमें मांग की दशाओं में तनिक भी परिवर्तन नहीं होता है। अब प्रश्न यह है कि हम इस मान्यता का परित्याग करके समय तत्व को अपने विश्ले षण में सम्मिलित कर लेते हैं तो इससे आगम-वक्रों के हमारे अध्ययन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? ऐसी स्थिति में आगम-वक्रों के बारे में कोई संतोषजनक निष्कर्ष निकाल ना कठिन प्रतीत होता है। यह मानने के लिए हमारे पास कोई विशेष कारण नहीं है कि समय बीतने पर मांग की दशाओं में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अतः हम यह मानकर चलेंगे कि अल्पकाल एवं दीर्घकाल में मांग की दशाओं में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इस प्रकार अल्पकाल एवं दीर्घकाल में आगम-वक्रों की आकृतियों में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

13.6 आगम-वक्रों की कुछ विशेष परिस्थितियां

अब हम आगम-वक्रों की कुछ विशेष परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे ये अग्रलिखित है।

13.6.1 प्रथम परिस्थिति

प्रथम परिस्थिति को रेखा चित्र 8 में निरूपित किया गया है। इसमें DD मांग -वक्र भी है और औसत आगम-वक्र भी। यह आयताकार अधीन्द्र मांग वक्र है। इस समूचे वक्र की लोच इकाई के बराबर है। दूसरे शब्दों में इस वक्र की सभी बिन्दुओं पर मांग की लोच 1 के

बराबर होती है। औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों के सम्बन्ध की चर्चा करते हुए हम पहले ही बता चुके हैं कि यदि औसत आगम-वक्र पर मांग की लोच 1 के बराबर होती है तो सीमान्त आगम शून्य होगा। चूंकि समूचे AR वक्र की लोच 1 के बराबर है, अतः सीमान्त आगम-वक्र शून्य के बराबर होगा। दूसरे शब्दों में, सीमान्त आगम वक्र का X.अक्ष में ही विलय हो जायेगा। इस रेखाकृति में X.अक्ष सीमान्त आगम-वक्र भी है।

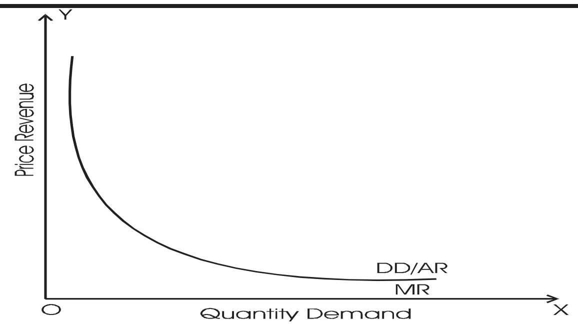

चित्र 8

13.6.2 द्वितीय परिस्थति

दूसरी परिस्थिति को रेखाचित्र 9 में निरूपित किया गया है। इसमें AC विकुंचित औसत आगम-वक्र है। इस वक्र में B बिन्दु पर विकुंचन विद्यमान है। यह औसत आगम-वक्र अल्पाधिकारात्मक फर्म का है। अल्पाधिकार के अन्तर्गत जब यह फर्म कीमत मे कटौती करती है तो अन्य प्रतियोगी फर्में भी इसका अनुकरण करती है। (अर्थात वे भी अपने माल की कीमतों में कटौती कर देती है।) लेकिन जब यह फर्म अपने माल की कीमत में वृद्धि कर देती है तब अन्य प्रतियोगी फर्में इसका अनुकरण नहीं करती। दूसरे शब्दों में, जब कभी भी यह फर्म अपनी वस्तु की कीमत को धटा देती है तब अन्य प्रतियोगी फर्में भी ऐसा ही करती हैं लेकिन जब यह फर्म अपनी वस्तु की कीमत को बढ़ा देती है, तब अन्य फर्में ऐसा नहीं करती। इससे इस फर्म का औसत आगम-वक्र विकुंचित हो जायेगा। स्मरण रहे कि विकुंचन वर्तमान कीमत स्तर पर ही घटित होगा।

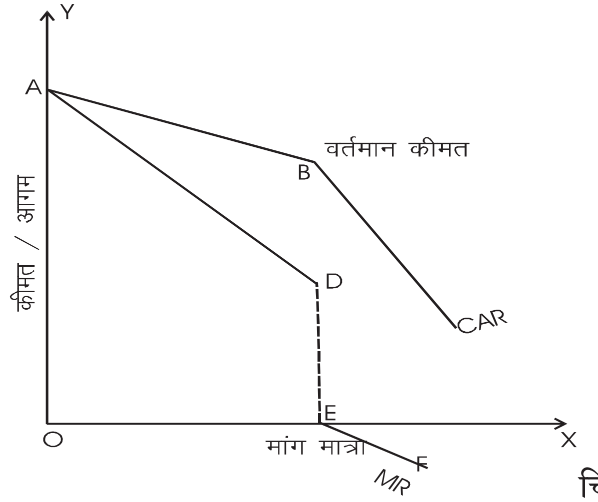

चित्र - 9

यह बात रेखा चित्र में स्पष्ट कर दी गई है। यदि यह फर्म वर्तमान स्तर से ऊपर अपनी वस्तु की कीमत को बढ़ाती है। अर्थात् यदि फर्म ठ बिन्दु से ऊपर को बढ़ाती है) तो बिक्री में तेजी से गिरावट आ जायेगी क्योंकि अन्य फार्मों ने अपनी वस्तुओं की कीमतें नहीं बढ़ाती हैं। यदि यह फर्म वर्तमान

स्तर अर्थात् B बिन्दु से नीचे कीमत को घटा देती है तो समूचे उद्योग की बढ़ी हुई बिक्री में इस फर्म को केवल इसका आनुपातिक अंश ही प्राप्त होगा। इसका कारण यह है कि अन्य प्रतियोगी फर्मों ने भी कीमत-कटौती नीति का अनुसरण किया है। जब औसत आगम वक्र में विकुंचन होता है तो, जैसा कि चित्र में प्रदर्शित किया गया है, सीमान्त आगम वक्र विच्छिन हो जाता है। यह विच्छिन्नता औसत आगम-वक्र में पाये

जाने वाले विकुंचन से नीचे घटित होती है। ।क् सीमान्त आगम-वक्र है। औसत आगम-वक्र का । तथा B के बीच वाला जो भाग है। (अर्थात् A से लेकर विकुंचन-बिन्दु AB तक), AD सीमान्त आगम-वक्र उसी का तदनुरूपी है। EF एक अन्य सीमान्त आगम-वक्र है। यह निम्न स्तर पर स्थित है और इसकी ढाल अधिक प्रपाती है। यह सीमान्त आगम-वक्र औसत आगम-वक्र के BC भाग का तदनुरूपी है। DE सीमान्त आगम-वक्र के विच्छिन्न भाग को निरूपित करता है लेकिन यह विच्छिन्न भाग अथवा अन्तराल निम्न स्तर के बजाय उच्च स्तर पर घटित होता है। इसका कारण यह है कि औसत आगम-वक्र का BC भाग ABभाग से अधिक लोचदार है। परिणामतः AB भाग का तदनुरूपी सीमान्त आगम वक्र उच्च स्तर पर प्रारम्भ होता है।

13.6.3 तृतीय परिस्थति

रेखाचित्र 10 में तीसरी स्थिति को व्यक्त करती है। AC विकुंचित औसत आगम-वक्र है। विकुंचन इस वक्र के B बिन्दु पर घटित होता है। विकुंचित औसत आगम - वक्र के AB भाग में लोच का कम अंश पाया जाता है जबकि विकुंचित बिन्दु B के नीचे BC भाग में मांग की लोच का अधिक अंश पाया जाता है। दूसरे शब्दों में, AB भाग में मांग की लोच कम है जबकि BC भाग में मांग की लोच अधिक है। स्मरण रहे कि विकुंचित औसत-आगम वक्र का प्रश्न केवल अल्पाधिकारात्मक फर्म के अन्तर्गत ही उत्पन्न होता है। जब अल्पाधिकारात्मक फर्म वर्तमान

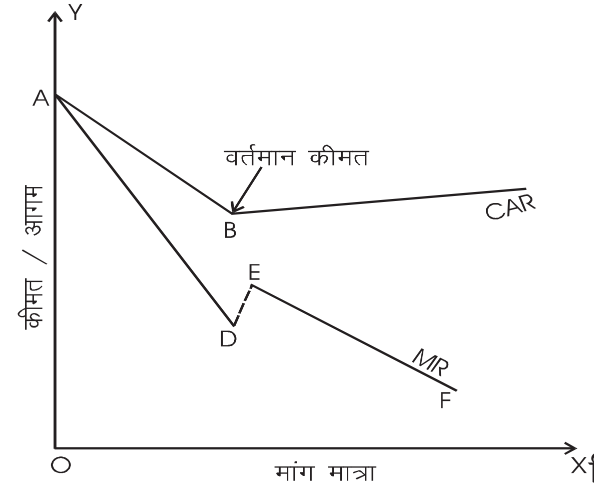

चित्र 10

कीमत में कटौती करती है तो प्रतियोगी फर्मों के बहुत से ग्राहक इसकी ओर आकर्षित होते हैं। लेकिन जब यही फर्म वर्तमान कीमत में वृद्धि करती है तो इससे प्रतियोगी फर्मों के ग्राहक उनसे टूटकर इस फर्म की ओर आकर्षित नहीं होते हैं। सीमान्त आगम-वक्र के AB भाग का तदनुरूपी है जबकि सीमान्त आगम-वक्र का ED भाग औसत आगम-वक्र के BC भाग का तदनुरूपी है। ED सीमान्त आगम-वक्र के BC भाग का तदनुरूपी है। ED सीमान्त आगम-वक्र के अन्तराल अथवा विच्छिन्न भाग को निरूपित करता है। लेकिन यह विच्छिन्न भाग अथवा अन्तराल निम्न स्तर के बजाय उच्च स्तर पर घटित होता है। इसका कारण यह है कि औसत आगम-वक्र का BC भाग ABभाग से अधिक लोचदार है। परिणामतः ABभाग का तदनुरूपी सीमान्त आगम-वक्र उच्च स्तर पर प्रारम्भ होता है।

13.7 कीमत-विश्लेषण में आगम-वक्रों की भूमिका

कीमत-सिद्धान्त में आगम-वक्र महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। इस अध्याय में हमने तीन प्रकार के आगम वक्रों का अध्ययन किया है। कीमत विश्लृषण में कुल आगम-वक्र का कोई विशेष महत्व नहीं है। अतः हमने अपने अध्ययन को औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्रों तक ही सीमित रखेंगे। कीमत विश्लेषण में ये दोनों वक्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। मांग पक्ष का औसत आगम पूर्ति-पक्ष की औसत लागत का प्रतिरूप है। उत्पादन किया जाय या नहीं इस प्रश्न का निर्णय करने हेतु फर्म औसत आगम की तुलना औसत लागत से करती है। यदि औसत आगम औसत लागत से अधिक है तो इसका अभिप्राय हुआ कि फर्म लाभ कमा रही है, अतः उसे उत्पादन जारी रखना चाहिए। इसके विपरीत, औसत लागत की तुलन में यदि औसत आगम कम है तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि फर्म हानि उठा रही है, अतः उसे उत्पादन बन्द कर देना चाहिए। इस प्रकार औसत आगम की तुलना औसत लागत से करके हमें यह ज्ञात हो जाता है कि फर्म लाभ कमा रही है अथवा घाटे में चल रही है। उत्पादन करने का निर्णय लेने के बाद फर्म को एक अन्य निर्णय भी करना पड़ता है। अर्थात् फर्म को यह तय करना पड़ता है कि वस्तु की कितनी मात्रा का उत्पादन किया जाए। स्पष्टतया फर्म वस्तु की उस मात्रा का उत्पादन करना चाहेगी जो अधिकतम लाभ कमाने में सहायक हो। इस महत्वपूर्ण प्रश्न का निर्णय करते समय सीमान्त आगम की धारणा से बहुमूल्य सहायता मिल ती है। मांग -पक्ष का सीमान्त आगम पूर्ति-पक्ष की सीमान्त लागत का प्रतिरूप है। यदि फर्म अधिकतम लाभ कमाना चाहती है तो उसे वस्तु की उस मात्रा का उत्पादन करना चाहिए जिस पर सीमान्त आगम, सीमान्त लागत के बराबर (MR = MC) हो। दूसरे शब्दों में अधिकतम लाभ कमाने के लिए सीमान्त आगम (MR) सीमान्त लागत (MC) से अधिक है तो इसका अभिप्राय यह है कि फर्म अधिकतम लाभ नहीं कमा रही है और उत्पादन वृद्धि से सीमान्त आगम को घटाकर यह अपने लाभ को और अधिक बढ़ा सकती है। इसके विपरीत, यदि सीमान्त आगम (MR) सीमान्त लागत (MC) से कम है तो इसका अभिप्राय यह है कि उत्पादित की गई अतिरिक्त इकाइयों पर हानि

उठा रही है और उत्पादन-कमी द्वारा सीमान्त आगम को बढ़ाकर वह अपनी हानि को कम कर सकती है अथवा लाभ को बढ़ा सकती है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि फर्म अधिकतम लाभ उत्पादन के केवल उसी स्तर पर कमा सकती है जहाँ सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत में समानता होती है।

13.8 लघु उत्तरीय प्रश्न

1.पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में कीमत रेखा का स्वरूप होता है।

A. AR = MR

B. AR > MR

C. AR < MR

D. TR X MR

2.अपूर्ण प्रतियोगिता में

A. AR > MR

B. AR > MR

C. AR ÷ MR

D. TR X MR

3.पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म

A. कीमत प्राप्तकर्ता एवं मात्रा नियोजक होती है।
B. मात्रा प्राप्तकर्ता एवं कीमत नियोजक होती है।
C. केवल कीमत नियोजक होती है।
D. केवल मात्रा प्राप्तकर्ता होती है।

4.अपूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त लागत तथा कीमत में कम अन्तर होता है क्योंकि, मांग वक्र -

A. अधिक लोचदार होता है।
B. कम लोचदार होता है।
C. बेलोचदार होता है।
D. अत्यधिक बेलोचदार होता है।

5.एकधिकारी फर्म का मांग वक्र तथा सीमान्त आप वक्र एक ही वक्र होता है -

A. सही
B. गलत
C. अनिश्चित

6.किस बाजार मे फर्म के उत्पादन की मांग पूर्ण लोचदार नहीं होती ?

A. पूर्ण प्रतियोगिता में
B. पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार में
C. एकाधिकार और अपूर्ण प्रतियोगिता में
D. पूर्ण प्रतियोगिता एवं अपूर्ण प्रतियोगिता में

7.विकुंचित मांग -वक्र का सम्बन्ध है -

A. पूर्ण प्रतियोगिता बाजार से
B. एकाधिकारी बाजार से
C. अल्पाधिकार बाजार से
D. उपर्युक्त सभी से

13.9 सारांश

इस अध्याय में हमने अध्ययन किया कि कीमत सिद्धान्त में आगम वक्र महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करते हैं। इस खण्ड में कुल आगम, औसत आगम तथा सीमान्त आगम-वक्रों का विस्तारपूर्वक विष्लेषणात्मक अध्ययन किया गया।

कीमत विश्ले षण में कुल आगम-वक्र का कोई विशेष महत्व नहीं होता है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार में प्रचालित केवल   एक ही कीमत होती है अर्थात् मांग की लोच पूर्णतया लोचदार होती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम-वक्र दोनों ही बायीं से दायीं ओर नीचे झुकते हुए होते हैं।

हमारे वास्तविक जीवन में बाजार में न तो पूर्ण प्रतियोगिता होती है और न ही विशुद्ध एकाधिकार। वास्तविक जीवन में तो अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति ही पाई जाती है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम-वक्र X.अक्ष के क्षितिजीय होता है। जबकि विशुद्ध एकाधिकर के अन्तर्गत औसत आगम-वक्र प्रपाती होता है।

13.10 शब्दावली

आगम -आगम जिसे समान्यतया आय कहा जाता है, का अर्थ किसी फर्म या उत्पादक की उन प्राप्तियों से होता है जो उसे अपनी वस्तु की बिक्री से प्राप्त होती है।

औसत आगम- प्रति इकाई बिक्री से प्राप्त आय

$$AR = \frac{TR}{Q} = \frac{\text{कुल आगम}}{\text{कुल उत्पादन}}$$

सीमान्त आगम - उत्पादन की अन्तिम इकाई की बिक्री से प्राप्त आय

$$MR = TR_n - TR_{n-1}.$$

पूर्ण प्रतियोगिता - पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति होती है जिसमें क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है, वस्तुएं समरूप होती है, क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार की पूर्ण जानकारी होती है। परिणाम स्वरूप किसी फर्म का कीमत पर कोई नियन्त्रण नही होता है।

एकाधिकार - एकाधिकार उस बाजार स्थिति को कहते हैं जिसमें किसी वस्तु का केवल एक ही उत्पादक होता है और उसका अपनी वस्तु की पूर्ति पर जिसका कोई निकट स्थानापन्न नहीं होता, पूर्ण नियंत्रण होता है।

अल्पाधिकार - अल्पाधिकार अपूर्ण प्रतियोगिता का ही एक रूप है। अल्पाधिकार बाजार की वह स्थिति होती है जिसमें विक्रेताओं की संख्या इतनी कम होती है कि प्रत्येक विक्रेता की पूर्ति का बाजार कीमत पर समुचित प्रभाव पड़ता है और प्रत्येक विक्रेता इस तथ्य से अवगत रहता है।

13.11 संदर्भ

- स्टोनियर एण्ड हेग, ‘‘अटेक्सट बुक ऑफ इकोनॉमिक्स ऑक्सफोड पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
- आहूजा, एच0एल0, ‘‘उत्तर आर्थिक विश्लेषण’’ एस चॉद एण्ड कम्पनी, रामनगर , नई दिल्ली, 2008
- स्टिगलर, जी (1996), थियरी ऑफ प्राइस, (4जी म्कपजपवद), प्रिन्सिटन हॉY ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली
- सेन, ए (1999), माइक्रोइकोनॉमिक्स, थियरी एण्ड अप्लीकेशन्स, ऑक्सफोड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली
- लॉयरड, पी0आर0जी0 एण्ड, ए, डब्ल्यू0 वालटरस (1978) माइक्रो इकोनॉमिक थियरी मैग्राहिल, नई दिल्ली

- क्रेप्स डेविड एम (1990), ''अ कोर्स इन माइक्रोइकोनॉमिक थियरी'', प्रिन्सटन यूनीवर्सिटी प्रेस, प्रिन्सटन

13.12 लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

1. A 2. A 3. A 4. A 5. B 6. C 7. C

13.13 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. फर्म की औसत तथा सीमान्त आगमों के बीच अन्तर बताइए। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उनका वस्तु के मूल्य से क्या सम्बन्ध है ?
2. आप कुल आगम, औसत आगम तथा सीमान्त आगम से क्या समझते हैं ? आगम विश्लेषण का महत्व स्पष्ट कीजिए ?
3. पूर्ण प्रतियोगिता और अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत रेखाओं के आकार की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। अपने उत्तर की पुष्टि उपयुक्त रेखाचित्रों के माध्यम से कीजिए।
4. ''किसी फर्म का सीमान्त आगम-वक्र उसके औसत आगम-वक्र से ऊँचा नहीं हो सकता है।'' व्याख्या कीजिए।

इकाई 14 उत्पादन का सिद्धान्त: एक परिवर्तनशील साधन में उत्पादन

इकाई संरचना

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 उत्पादन का सिद्धान्त: उत्पादन फलन
14.4 एक परिवर्तनशील साधन में उत्पादन: परिवर्तनशील अनुपात का नियम
14.5 सारांश
14.6 शब्दावली
14.7 अभ्यास प्रश्न
14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.9 सहायक पाठ्य सामग्री
14.10 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

'उत्पादन के सिद्धान्त और लागत एवं आगम वक्र' खण्ड की यह तीसरी इकाई है इससे पूर्व की इकाई में आप लागत तथा आगम वक्रों की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके है।

प्रस्तुत इकाई में एक परिवर्तनशील साधन का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जायेगा, साथ ही परिवर्तनशील अनुपात के नियम की तीनों अवस्थाओं का विश्लेषण तालिका व चित्र द्वारा किया जायेगा। नियम के महत्व पर भी प्रकाश डाला जायेगा।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान जायेंगे, कि एक परिवर्तनशील साधन उत्पादन को किस प्रकार प्रभावित करता है।

14.2 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन से आप:-

- उत्पादन फलन को समझ सकेंगे।
- परिवर्तनशील अनुपात के नियमों की तीनों अवस्थाओं से अवगत हो जायेगें।
- परिवर्तनशील अनुपात के नियम के लागू होने के कारण को समझ सकेंगे।
- परिवर्तनशील साधन लागतों को कैसे प्रभावित करते है यह भी जान जायेंगे।

14.3 उत्पादन का सिद्धान्त: उत्पादन फलन :-

उत्पादन का सिद्धान्त एक दी हुई तकनीक में निश्चित उत्पादन मात्रा के लिए विभिन्न साधनों के संयोग की समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। उत्पादन सिद्धान्त, उत्पादन मात्रा तथा लागत में परस्पर सम्बन्ध का आधार है। साथ ही यह फर्म, फर्म के साधनों तथा उसके मांग का भी विश्लेषण करता है। एक फर्म के साधनों तथा उसके उत्पादन के बीच तकनीकी सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहते है। उत्पादन फलन आगतो तथा निर्गतों की मात्राओं के फलनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करता है। यह एक दिये हुए समय के लिए 'उत्पादन की मात्रा' तथा 'उत्पत्ति' में भौतिक सम्बन्ध को बताता है।

प्रो0 वाटसन के अनुसार, किसी फर्म की भौतिक पड़तो तथा उपज की भौतिक मात्रा के बीच के सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहते है।

प्रो0 सैम्युलसन के अनुसार; उत्पादन फलन वह तकनीकी सम्बन्ध है जो यह बताता है कि आग तों के प्रत्येक समूह विशेष द्वारा कितना उत्पादन किया जा सकता है। यह सम्बन्ध किसी दिये हुए तकनीकी ज्ञान के स्तर के लिए ही व्यक्त किया जाता है।

प्रो0 स्टिगलर के अनुसार; 'उत्पादन फलन उत्पादकीय सेवाओं की आग त की दरों और वस्तु के उत्पादन की दर के बीच संबंध को दिया गया नाम है। यह अर्थशास्त्री के तकनीकी ज्ञान का सारांश है।'

प्रो0 लेफ्टवीच के अनुसार; उत्पादन-फलन शब्द उस भौतिक सम्बन्ध के लिए प्रयोग किया जाता है, जो एक फर्म के साधनों की इकाईयों (पड़तो) और प्रति इकाई समयानुसार प्राप्त वस्तुओं और सेवाओं (उत्पादों) के बीच पाया जाता है।

इस प्रकार उत्पादन फलन एक दी हुई तकनीकी में उत्पादन में प्रयोग की गई आगतों के विभिन्न संयोगों से प्राप्त उत्पादन की मात्रा को दर्शाता है। समीकरण के रूप में इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

$$Q = f\,(L, M, N, C, T)$$

जहां Q प्रति समय अवधि में एक वस्तु का उत्पादन है, L श्रम, M मैनेजमेंट या संगठन , N भूमि, C पूॅजी, T दी हुई तकनीकी और फलनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करता है।

उत्पादन फलन भौतिक आगतों और निर्गतों के तकनीकी सम्बन्धों को प्रकट करता है, यदि फर्म अपनी वस्तु की उत्पादन मात्रा बढ़ाना चाहती है तो वह सभी आवश्यक साधनों की मात्रा बढ़ा सकती है या वह शेष साधनों की मात्रा स्थिर रख कर उपलब्ध साधन की मात्रा बढ़ा सकती है। प्रथम का सम्बन्ध दीर्घकाल से और दूसरे का अल्पकाल से होता है। अल्पकाल में सभी उत्पादन साधनों की मात्रा में परिवर्तन सम्भव नहीं होता, इसलिए कुछ साधनों को स्थिर रखते हुए अन्य परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है, तो उसे एक परिवर्तनशील साधन वाला उत्पादन फलन कहा जाता है।

14.4 एक परिवर्तनशील साधन में उत्पादन: परिवर्तनशील अनुपात का नियम

परिवर्तनशील अनुपात के नियम का आर्थिक उत्पादन सिद्धान्त में बड़ा महत्व है। यह नियम अल्पकालीन उत्पादन फलन का विश्लेषण करता है जिसमें कुछ साधन स्थिर रहने पर एक या एक से अधिक साधनों में परिवर्तन किया जाता है। जिससे स्थिर व परिवर्तनशील साधन का अनुपात बदल जाता है। इसलिये इसे परिवर्तन अनुपात का नियम कहते है। परिवर्तशील अनुपात को ह्रासमान प्रतिफल का नियम या ह्रासमान सीमान्त भौतिक उत्पादकता का नियम भी कहा जाता है।

परन्तु यह सही नहीं हैं क्योंकि यह नियम तो परिवर्तनशील अनुपात के नियम की केवल द्वितीय अवस्था को व्यक्त करते है। एक परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल के धारणा अल्पकाल से सम्बन्धित है, क्योंकि पूँजी, मशीने, तथा भूमि स्थिर रहते है और उत्पादन वृद्धि हेतु श्रम व कच्चेमाल को ही बढ़ाया जा सकता है। अल्पकालीन उत्पादन फलन को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है।

$$Q = f\,(L.\ \overline{K})$$

यहां पर Q उत्पादन मात्रा को, L श्रम की मात्रा तथा K पूंजी की स्थिर मात्रा को दर्शाता है। जिससे पॅूजी की मात्रा स्थिर रखते हुए श्रम का अधिक प्रयोग करने से उत्पादन की मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव को देखा जाता है। परिवर्तनशील अनुपात के नियमों को विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है-

सैमूल्यसन के अनुसार:- स्थिर साधनों की तुलना में कुछ साधनों में वृद्धि करने से उत्पादन में वृद्धि होगी, परन्तु एक बिन्दु के बाद साधनों की समान वृद्धियों से प्राप्त अतिरिक्त उत्पादन उत्तरोत्तर कम होता जाएगा।

स्टिगलर के अनुसार -‘जब किसी साधनों के संयोग में एक साधन का अनुपात बढ़ाया जाता है, तो एक सीमा के पश्चात् पहले उस साधन का सीमान्त उत्पादन और फिर औसत उत्पादन घट जायेंगे।’

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्शल ने कृषि के सम्बन्ध में घटते प्रतिफल का विवेचन इस प्रकार किया - भूमि की खेती में पूँजी और श्रम की मात्रा बढ़ने से उत्पादन मात्रा में सामान्यतः आनुपातिक वृद्धि से कम वृद्धि होता है। बशर्ते कृषि तकनीक में कोई सुधार न हुआ हों।

प्रो0 बोल्डिंग के अनुसार - जब कुछ साधन की स्थिर मात्रा के साथ किसी अन्य साधन की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो परिवर्तनशील साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता अन्ततः अवश्य ही घट जाएगी।

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि जब अन्य साधनों को स्थिर रखते हुए एक साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो परिवर्तनशील साधन को सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन अन्ततः घट जायेगें।

परिवर्तनशील अनुपात के नियम की आवश्यक शर्तें या मान्यताएँ -

1. साधनों के संयोग के अनुपातों में परिवर्तन सम्भव है।
2. एक साधन परिवर्तनशील होता है, जबकि अन्य स्थिर रहते है।
3. उत्पादन के दौरान तकनीकी एक सामान अर्थात् अपरिवर्तित रहती है।

4. वस्तु को भौतिक मात्रा में मापा जा सकता है।

5. परिवर्तनशील साधन की सभी इकाईयाँ एक समान कार्यकुशल है।

6. परिवर्तनशील साधन को छोटी-छोटी इकाईयों में बाँटा जा सकता है।

परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीन अवस्थाएँ - जब कुछ साधनों को स्थिर रखते हुए एक साधन की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो उससे उत्पादन पर जो प्रभाव पड़ता है उसे तालिका (14.1) में प्रदर्शित किया गया है।अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रखते हुए जब श्रम की मात्रा बढ़ायी जाती है तो उसका कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्त उत्पादन पर जो प्रभाव पड़ता है उसके तालिका 14.1 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका (14.1) एक परिवर्तनशील साधन में कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्तउत्पादन

श्रम की इकइयाँ	कुल उत्पादन (TP)	औसत उत्पाद (AP)	सीमान्त उत्पाद (MP)	अवस्थाएँ
1	21	21	21	प्रथम अवस्था
2	50	25	29	
3	81	27	31	
4	108	27	27	द्वितीय अवस्था
5	125	25	17	
6	138	23	13	
7	138	19.7	0	तृतीय अवस्था
8	128	16	— 10	

तालिका (14.1) से स्पष्ट है कि श्रम की इकाई में वृद्धि करने से प्रारम्भ में TP, AP तथा MP तीनों बढ़ते है। क्योंकि इस अवस्था में AP लगातार बढ़ता है। इसीलिए इस अवस्था को बढ़ते औसत उत्पादन की अवस्था कहते है। इसके बाद AP गिरना शुरू हो जाते है जबकि MP पहले ही गिरने लगता है। ऐसी स्थिति में TP भी घटती दर से बढ़ता है। यह अवस्था घटते औसत उत्पादन की अवस्था कहलाती है। जबकि श्रम की और इकाईयों के प्रयोग से अन्त में TP भी गिरने लगता है जब कि MP ऋणात्मक हो जाता है। यह अवस्था घटते कुल उत्पादन की अवस्था कहलाती है।

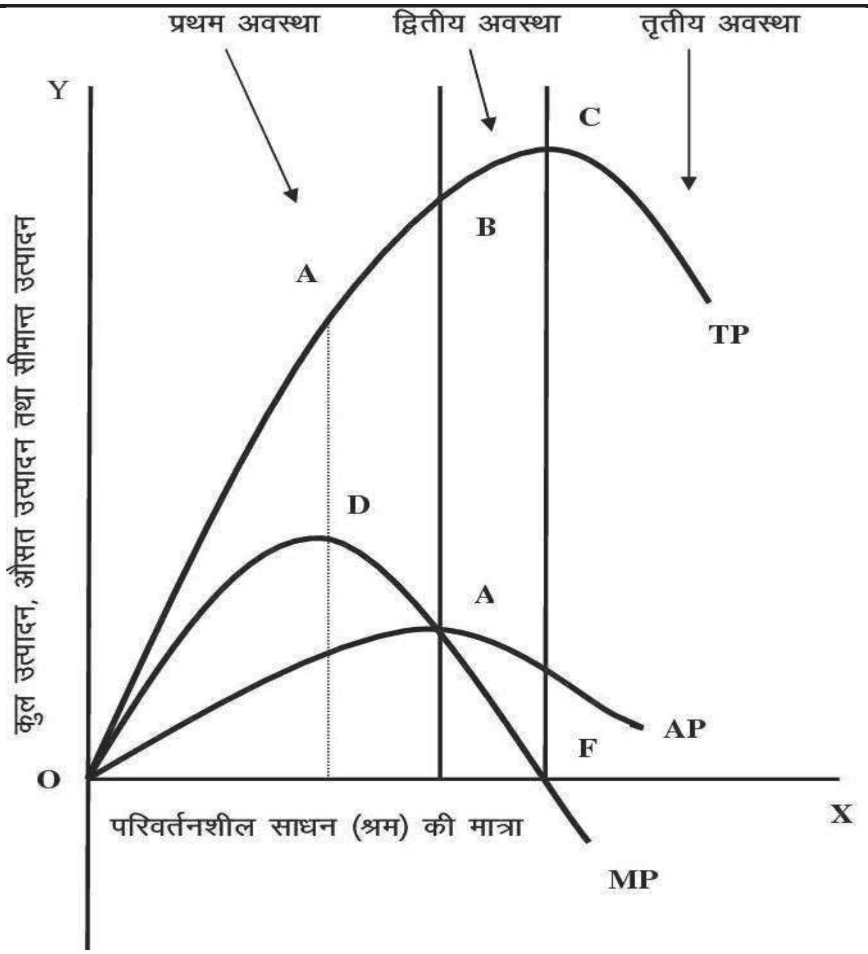

चित्र (14.1) परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीन अवस्थाएँ

इस कारण उत्पादन को तीन अवस्थाओं में बांटा जा सकता है। एक परिवर्तनशील साधन के उत्पादन फलन की तीन अवस्थाओं को चित्र (14.1) द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है। जिसमें X अक्ष पर परिवर्तनशील साधन (श्रम) की मात्रा तथा Y अक्ष पर कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्त उत्पादन को दर्शाया गया है। TP वक्र को देखने पर पता चलता है कि वह । बिन्दु तक तेजी से बढ़ता है। क्योंकि इस स्थिति में MP भी बढ़ता है। A बिन्दु मोड़ बिन्दु है क्योंकि यहाँ तक TP बढ़ती दर से बढ़ता है MP तथा AP भी बढ़ते है। इसके बाद MP घटरे लगताहै और E बिन्दु के बाद AP भी घटने लगता है। इसलिए 'B' बिन्दु के बाद TP घटती दर से बढ़ता है और TP C बिन्दु पर अधिकतम उत्पादन को प्रदर्शित करता है जबकि F बिन्दु पर MP शून्य हो जाता है और जब TP घटने लगता है तो MP ऋणात्क हो जाता है। वास्तव में TP, AP तथा MP का बढ़ना, घटना तथा MP का ऋणात्मक हो जाना ही परिवर्तनशील अनुपात के नियम की तीन अवस्थाएँ है।

1. प्रथम अवस्था (बढ़ते प्रतिफल की अवस्था):-प्रारम्भ में जब श्रम की इकाईयों को बढाया जाता है तो स्थिर साधनों का अच्छी प्रकार से प्रयोग होने लगताहै। क्योंकि परिवर्तनशील साधन की अपेक्षा स्थिर साधन की मात्रा अधिक होती है। जिससे परिवर्तन शील साधन की मात्रा बढ़ाने से स्थिर साधनों का गहन तथा पूर्व प्रयोग होता है। जैसे-जैसे परिवर्तनशील साधन की अतिरिक्त इकाईयाँ जोड़ी जाती है स्थिर साधन की कार्यक्षमता भी बढ़ती जाती है और MP बढ़ता है जिससे TP बढती दर से बढ़ता है अतः प्रारम्भ में TP, AP तथा MP तीनों बढ़ते है जैसे तालिका में श्रम की तीसरी इकाई के प्रयोग से TPए MP तथा MP में वृद्धि दर्शाई गयी है। TP O से F बिन्दु तक MP में वृद्धि के कारण तेजी से बढ़ता है। जबकि थ् बिन्दु के बाद MP में गिरावट के कारण यह दर कम हो जाती है। F बिन्दु को TP वक्र घटती दर से बढ़ाना शुरू हो जाता है। इसीलिए इसे मोड बिन्दु कहते है। इस बिन्दु के ठीक नीचे MP अधिकतम होता है। प्रथम अवस्था तब समाप्त होती है जब AP वक्र उच्चतम बिन्दु पर होता है ओर जहां पर MP = AP होता है। रेखाचित्र में इस स्थिति को E बिन्दु द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इस अवस्था को बढ़ते हुए औसत उत्पादन अवस्था या बढ़ते प्रतिफल का नियम कहा जाता है।

2. द्वितीय अवस्था (घटते प्रतिफल की अवस्था):-प्रथम अवस्था के बाद भी जब स्थिर साधन की तुलना में परिवर्तनशील साधन श्रम की मात्रा बढ़ाई जाती है तो स्थिर साधन की मात्रा तुलनात्मक रूप से कम होती जाती है और परिवर्तनशील साधन में जैसे-जैसे वृद्धि की जाती है। वैसे -वैसे ही स्थिर साधन अपेक्षाकृत न्यून होते जाते है। जिससे MP तथ AP घटने लगते है लेकिन धनात्मक रहते है। जिस कारण TP घटती दर से बढ़ता है तालिका में चौथी से छठी इकाई तक इसी स्थिति को दर्शाया गया है। चित्र में TP के ब् बिनु तथा MP के F बिन्दु तक यही स्थिति है। जब C बिन्दु पर TP अधिकतम तथा F बिन्दु पर MP शून्य हो जाता है। एक उत्पादक के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण अवस्था है क्योंकि इस अवस्था में रह कर ही उत्पादक को उत्पादन करना होता है। इस अवस्था को 'घटते प्रतिफल की अवस्था' या 'घटती सीमान्त व औसत उत्पादन की अवस्था' कहा जाता है। क्योंकि इसमें MP तथा APदोनों घटते है।

3. तृतीय अवस्था (ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था):-जब अन्य साधनों को स्थिर रखते हुए परिवर्तनशील साधन श्रम की मात्रा को बढाते जाते है तो एक ऐसी अवस्था आती है। जब TP घटने लगता है और MP ऋणात्मक हो जाता है। इस अवस्था में परिवर्तनशील साधन की इकाईयां स्थिर साधन की तुलना में अधिक हो जाती है जिससे वह एक-दूसरे के काम में बाधा डालने लगती है। जिसके फलस्वरूप TP बढ़ने के बजाये घटने लगता है। तालिका में सातवीं तथा आठवीं श्रम इकाई के प्रयोग से सही स्थिति उत्पन्न हो गई है। जिससे TP नीचे की और झुकता है और MP X अक्ष के नीचे जाकर ऋणात्मक हो गया है। इस अवस्था को 'ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था' कहा जाता

है। क्योंकि इसमें परिवर्तनशील साधन का सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है। इसलिए एक विवेकशील उत्पादक इस अवस्था में उत्पादन करना पसन्द नहीं करेगा।

एक उत्पादक किस अवस्था में उत्पादन कार्य करेगा ? कोई भी उत्पादक प्रथम अवस्था में उत्पादन नहीं करेगा क्योंकि इस स्थिति में परिवर्तनशील साधन श्रम का TP, AP तथा MP घनात्मक है, परन्तु स्थिर साधन का MP ऋणात्मक होता है। जिस कारण उत्पादक इस अवस्था को पसन्द नहीं करता। इसी प्रकार तृतीय अवस्था में परिवर्तनशील साधन श्रम का MP ऋणात्मक होने के कारण उत्पादक इसका भी चुनाव नहीं करेगा इस प्रकार उत्पादक प्रथम तथा तृतीय अवस्था को पसन्द नहीं करेगा।

वास्तव में एक विवेकशील उत्पादन द्वितीय अवस्था में उत्पादन करना पसन्द करेगा जिसमें MP धनात्मक है। जबकि MP और AP घट रहें है। क्योंकि इस अवस्था में स्थिर तथा परिवर्तनशील साधन MP धनात्मक है। वास्तव में उत्पादक द्वितीय अवस्था के किस बिन्दु पर उत्पादन करने का निर्णय लेगा यह साधन की कीमतों पर निर्भर करता है। अतः द्वितीय अवस्था विवेकशील उत्पादक के निर्णय के क्षेत्र में व्यक्त करती है।

परिवर्तनशील अनुपात का नियम एवं लागतें - परिवर्तनशील अनुपात के नियम की व्याख्या जब 'लागत' की दृष्टि से की जाती है तो हमें तीन अवस्थाएँ देखने को मिल ती है। घटती लागत की स्थिति, स्थिर लागत की स्थिति तथा बढ़ती लागत की स्थिति। प्रारम्भ में जब अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढ़ायी जाती है तो वस्तु का उत्पादन साधन वृद्धि की तुलना में अधिक होता है। जिससे MP बढ़ता है। यदि वस्तु कीमत स्थिर रहे तो सीमान्त लागत MC तथा औसत लागत AC दोनों घटने लगते है। यदि परिवर्तनशील साधन की और अधिक इकाईयों का प्रयोग किया जाता है तो MC एक बिन्दु पर न्यूनतम् होकर बढ़ने लगती है। इसके बाद ACभी न्यूनतम बिन्दु पर पहुँच कर MC के बराबर हो जाती है। जैसा कि चित्र (14.2) में L बिन्दु द्वारा प्रदर्शित किया गया है। L बिन्दु के बाद भी जब परिवर्तन शील साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है। MC तथा AC बढने लगते है। चित्र में L बिन्दु से पहले की स्थिति घटती लागत को L बिन्दु स्थिर लागत को और L बिन्दु के बाद की स्थिति बढ़ती लागत की अवस्था को प्रदर्शित करती है।

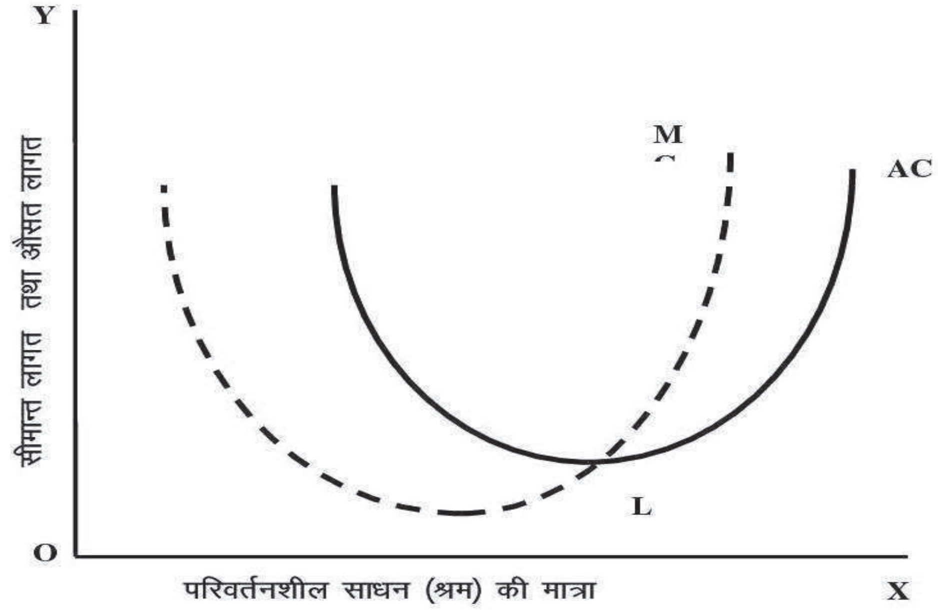

चित्र (14.2) परिवर्तनशील अनुपात का नियम एवं लागतें

परिवर्तनशील अनुपात के नियम के लागू होने के कारण:-परिवर्तनशील अनुपात के नियम के लागू होने के मुख्य कारण इस प्रकार है -

1. एक या एक से अधिक साधनों का स्थिर रहना - जब अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन श्रम की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो उत्पादन के साधनों के बीच का अनुकूलतम संयोग भंग होता है जिस कारण कुल उत्पादन AP तथा MP घटने लगता है और परिवर्तनशील साधन में अधिक वृद्धि करने पर उसका MP ऋणात्मक भी हो जाता है।

2. उत्पत्ति के साधनों का अपूर्ण स्थानापन्न होना - श्रीमती जॉन रोबिन्सन के अनुसार, एक साधन को दूसरे के स्थान पर केवल एक सीमा तक ही प्रतिस्थापित किया जा सकता है। अर्थात् उत्पादन के सभी साधन एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न नहीं होते। इसीलिए किसी एक साधन को दूसरे साधन के स्थान पर एक - सीमा तक ही प्रयोग किया जा सकता है। इसी कारण से एक अवस्था के बाद उत्पादन घटने लगता है।

3. साधनों की अविभाज्यता - प्रायः स्थिर साधन अविभाज्य होते है। जिनकी एक निश्चित मात्रा का प्रयोग किया जाता है। प्रथम अवस्था में जब परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढाई जाती है, तो अविभाज्य स्थिर साधन का पूर्ण उपयोग होता है जिसकारण उत्पादन तीव्र गति से बढ़ता है और

यह वृद्धि इन साधन के अधिकतम उपयोग तक जारी रहती है। इसके बाद उत्पादन घटने लगता है क्यों अविभाज्य साधन का अनुकूलतम् अधिकतम प्रयोग किया जा चुका होता है।

परिवर्तनशील अनुपात के नियम का महत्व:-परिवर्तनशील अनुपातों के नियम इस तथ्य की व्याख्या करते है कि सीमान्त भौतिक उत्पादन यदि प्रारम्भ में बढ़ भी रहा हो तो अन्ततः घटता है। मार्शल के समय यह समझा जाता था कि उत्पादन के बढ़ते प्रतिफल, स्थिर-प्रतिफल तथा घटते पूर्णतया भिन्न अथवा एक दूसरे से अलग -अलग नियम होते है। लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि बढ़ते स्थिर तथा घटते प्रतिफल अलग -अलग न होकर ''परिवर्तनशील अनुपातों के नियम'' की ही तीन अवस्थाएँ है। मार्शल का यह भी मानना था कि स्थिर एवं बढ़ते प्रतिफल विनिर्माण उद्योग में लागू होते है जबकि घटते प्रतिफल कृषि क्षेत्र में लागू होता है। लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्रियों विशेषकर श्रीमती जॉन रोबिन्सन के अनुसार परिवर्तनशील अनुपात के नियम सभी क्षेत्रों पर लागू होते है। एक उत्पादक की दृष्टि से द्वितीय अवस्था अर्थात घटते प्रतिफल की अवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसलिए इस नियम की व्यावहारिकता ने अर्थशास्त्र को विज्ञान के क्षेत्र में पहुँचा दिया है। विक्स्टीड के अनुसार घटते प्रतिफल का नियम उतना ही सार्वभौमिक है जितना कि जीवन का नियम। यह अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम है। जो अर्थशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों का आधार है।

माल्थरस का जनसंख्या सिद्धान्त घटते प्रतिफल के नियम पर आधारित है। जनसंख्या सिद्धान्त बताता है, कि जनसंख्या खाद्यानों की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ती है। क्योंकि घटते प्रतिफल के नियम की क्रियाशील ता के कारण खाद्यान धीमी गति से बढ़ते है।

रिकार्डो का लगान सिद्धान्त भी इसी नियम पर आधारित है। क्योंकि इस नियम की क्रियाशील ता के कारण ही भूमिपति घटिया भूमि का प्रयोग प्रारम्भ करता है। जिससे लागत बढ़ती है। गहन खेती में भी भूमि की निश्चित मात्रा पर अधिक श्रम व पूंजी की मात्राओं को लगाने से उत्पादन उसी अनुपात में नहीं बढ़ता क्योंकि घटते प्रतिफल प्राप्त होने लगते है।

इसी प्रकार वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त भी इसी नियम पर आधारित है। जिसके द्वारा उत्पादन के साधन का प्रतिफल निर्धारित किया जाता है।

घटते प्रतिफल के नियम अल्पविकसित देशों की समस्याओं को समझने में सहायक है। ऐसे देशों में मुख्य व्यवसाय कृषि है। लेकिन जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि में अधिकाधिक लोग काम करते है। जबकि भूमि की मात्रा स्थिर रहती है। जिसमें श्रम की सीमान्त उत्पादकता घट जाती है और यदि यह प्रक्रिया जारी रहे तो श्रम की MP शून्य या ऋणात्मक भी हो जाती है।

घटते प्रतिफल के नियम बहुत से अविष्कारों के लिए उत्तरदायी है। क्योंकि इस नियम को क्रियाशील ता को स्थगित करने के लिए ही उत्पादन की नयी-नयी विधियों की खोज की गई है और आज भी इस नियम की क्रियाशील ता को लम्बे समय तक रोकने के लिए नयी-नयी खोज की जा रही है।

इस प्रकार हम देखते है कि एक उत्पादक को उत्पादन प्रक्रिया के दौरान तीन महत्वपूर्ण अवस्था का सामना करना पड़ सकता है और एक कुशल उत्पादक का यह प्रयास रहता है कि वह द्वितीय अवस्था में रहते हुए उत्पादन कार्य सम्पन्न करें।

14.5 सारांश

उत्पादन के साधन और उत्पादन की मात्रा के बीच के तुलनात्मक सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहते है। यह एक दिये हुए समय के लिए उत्पादन की मात्रा तथा उत्पत्ति के साधनों में भौतिक सम्बन्ध में बताता है। जब उत्पादन में वृद्धि करनी हो तो उत्पादन के साधनों में वृद्धि करनी पड़ती है। जब एक परिवतर्नशील साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है। तो उसका उत्पादन पर जो प्रभाव पड़ता है उसे परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के नाम से जाना जाता है। अल्पकाल में जब अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है। तो प्रारम्भ में TP,AP और MP तीनों बढ़ते है। क्योंकि इस अवस्था में AP लगातार बढ़ता है। इसलिए इस प्रथम अवस्था का बढ़ते औसत उत्पादन या बढ़ते प्रतिफल की अवस्था कहा जाता है। इसके बाद, जब और उत्पादन किया जाता है तो AP गिरने लगता है। और TP भी घटती दर से बढ़ता है। MP पहले ही घटने लगता है। यह अवस्था घटते औसत उत्पादन या घटते प्रतिफल की अवस्था कहलाती है। अगर श्रम की और इकाईयों का प्रयोग किया जाता है तो TP भी गिरने लगता है और MP ऋणात्मक हो जाता है। यह अवस्था घटते कुल उत्पादन या ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था कहलाती है। एक उत्पादक द्वितीय अवस्था अर्थात घटते प्रतिफल की अवस्था में उत्पादन करना पसन्द करता है। परिवर्तनशील अनुपात के नियम की व्याख्या लागत की दृष्टि से भी की जाती है। प्रथम अवस्था में जब MP तथा AP बढ़ता है तो MC तथा AC गिरते है जब AC न्यूनतम होता है तो MC, AC के बराबर होता है तथा घटते MP तथा APके कारण MC तथा ACभी बढ़ने लगते है।

एक या एक से अधिक साधनों का स्थिर रहना, उत्पत्ति के साधनों का अपूर्ण स्थानापन्न होना तथा साधनों की अविभाज्यता के कारण परिवर्तनशील अनुपातों के नियम लागू होते है। यह अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम है जो माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त, रिकार्डो के लगान सिद्धान्त, वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त तथा अनेक अविष्कारों का आधार है।

14.6 शब्दावली

आगतों - उत्पादन के साधन

निर्गतो - उत्पादित वस्तु की मात्रा

पड़तों - उत्पादन के साधन

ह्रासमान प्रतिफल - गिरता हुआ उत्पादन

कुल उत्पाद (TP) - किसी परिवर्तनशील साधन के एक निश्चित इकाईयों के प्रयोग से जो उत्पादन प्राप्त होता है। उसे कुल उत्पादन कहते है।

सीमान्त उत्पाद (MP) - साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन होने वाली वृद्धि।

औसत उत्पाद (AP) - कुल उत्पादन में परिवर्तनशील साधन की कुछ इकाईयों से भाग देने से प्राप्त होता है।

साधन की अविभाज्यता - ऐसे साधन जिन्हें छोटी - छोटी इकाईयों (हिस्सों) में बाँटा नहीं जा सकता।

स्थानापन्न:- एक साधन के स्थान पर दूसरे साधन का प्रयोग जैसे हल् के स्थान पर टैक्टर का प्रयोग।

गहन खेती:- गहन या सघन खेती, खाद्यान्न उत्पादन की वह विधि है। जिसमें सीमित भूमि पर अधिकाधिक श्रम और पूँजी की इकाईयाँ लगाकर उत्पादन बढाया जाता है।

14.7 अभ्यास प्रश्न:-

सही उत्तर का चुनाव करो:-

1. उत्पादन फलन है -

(क) लागतों का (ख) उत्पत्ति के साधनों का

(ग) लाभ का (घ) कीमतों का

2. परिवर्तनशील अनुपातों का नियम कहलाता है -

(क) दीर्घकालीन उत्पादन करना (ख) अल्पकालीन उत्पादन फलन

(ग) पैमाने के प्रतिफल (घ) कोई नहीं।

3. जब औसत उत्पादन अधिकतम होता है तो -

(क) सीमान्त उत्पादन बढता है।

(ख) कुल उत्पादन गिरता है।

(ग) सीमान्त उत्पादन के बराबर होता है।

(घ) सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक होता है।

4. प्रो0 मार्शल के अनुसार उत्पादन ह्रास नियम लागू होता है -

(क) विनिर्माण उद्योग में (ख) कृषि में

(ग) कारखानों में (घ) सभी उद्योगों में

5. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की प्रथम अवस्था वहाँ समाप्त होती है जहाँ -

(क) MP अधिकतम् होता है (ख) TP अधिकतम् होता है

(ग) APअधिकतम् होता है (घ) उपर्युक्त सभी

6. ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था में -

(क) स्थिर साधन की MP ऋणात्मक होती है।

(ख) परिवर्तनशील साधन की MP ऋणात्मक होती है।

(ग) क और ख (घ) कोई नहीं।

7. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीसरी अवस्था में -

(क) APऋणात्मक होता है। (ख) MP ऋणात्मक होता है।

(ग) TP गिरता है। (घ) ख और ग

8. प्रथम अवस्था में मोड बिन्दु के बाद TP वक X अक्ष के प्रति -

(क) उन्नतोदर (उन्तत) (ख) अवनतोदर (अवतल)

(ग) क और ख (घ) कोई नहीं

9. परिवर्तनशील अनुपातों का नियम प्रदर्शित करता है:-

(क) बढ़ते प्रतिफल (ख) स्थिर प्रतिफल

(ग) घटते प्रतिफल (घ) उपर्युक्त सभी

उत्तर -(1)(ख) (2)(ख) (3)(ग) (4)(ख) (5)(ग) (6)(ख) (7)(घ) (8)(ख) (9)(घ)

14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ:-

आहूजा, एच0 एल0, (2003),उच्चतर आर्थिक सिद्धान्तः व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण ; एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।

झिंगन, एम0 एल0 (2007), व्याष्टि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, दिल्ली।

जैन, के0 पी0 (2005) माइक्रो अर्थशास्त्र, नवयुग साहित्य सदन, आगरा।

सिंह, एस0 पी0 (2001) माइक्रो अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।

सेठ, एम0 एल0 (2000-01) उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।

14.9 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Koutsoyinuis.A. (1979), *Modern Microeconomics*, (2nd Edition), Macmillian
- Press, London.
- Ahuja,H.L. ((2010),*Principles of Micro Economics* , S&Chand Publishing House .
- Peterson, L. and Jain (2006), *Managerial Economics*, 4th edition, Pearson Education.
- Colander, D, C (2008), *Economics*, McGraw Hill Education.

14.10 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. परिवर्तनशील अनुपात के नियम की विभिन्न अवस्थाएं कौन-कौन सी है ? एक रेखाचित्र की सहायता से समझाए। इन अवस्थाओं के लागू होने के कारण बताइए।

2. उत्पादन फलन क्या है ? जब एक साधन के अनुपात में वृद्धि की जाती है, तो एक बिन्दु के बाद साधन की उत्पादकता कम हो जाती है, इस कथन की विवेचना कीजियें।

3. उत्पत्ति ह्रास नियम परिवर्तनशील अनुपातों के नियम से किस प्रकार सम्बन्धित है ? व्याख्या और इसके महत्व पर प्रकाश डालियें।

इकाई 15 उत्पादन का सिद्धान्तः दो परिवर्तनशील साधन में उत्पादन

इकाई संरचना

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 उत्पादन का सिद्धान्त: दो परिवर्तनशील साधन में उत्पादन
15.4 पैमाने के प्रतिफल
15.5 कॉब-डगलस उत्पादन फलन
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 अभ्यास प्रश्न
15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
15.10 सहायक पाठ्य सामग्री
15.11 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र के उत्पादन के सिद्धान्त और लागत एवं आगम वक्र खण्ड की यह चौथी इकाई है। इससे पहले की इकाई में आप एक परिवर्तनशील साधन का उत्पादन पर जो वाले प्रभाव पड़ता है। उसकी जानकारी कर चुके है।

प्रस्तुत इकाई में दो परिवर्तनशील साधनों का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण सम-उत्पादन वक्रों की सहायता से किया जायेगा। साथ ही सम-उत्पादन वक्रों की विशेषताओं, तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर सहित कॉब डगलस उत्पादन फलन की जानकारी दी जायेगी।

इसके अध्ययन से आपको समोत्पादन वक्र, पैमाने के प्रतिफल तथा कॉब डगलस उत्पादन फलन की विस्तृत जानकारी हो जायेगी।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप:-

1. समोत्पाद वक्र तथा उसकी विशेषताओं से अवगत हो जायेंगे।

2. तकनीकी प्रतिस्थापना की सीमान्त दर को जान सकेगें।

3. पैमाने के प्रतिफल की तीन अवस्थाओं को समझ सकेगें।

4. कॉब - डगलस के उत्पादन फलन से अवगत हो जायेंगे।

15.3 उत्पादन का सिद्धान्त: दो परिवर्तनशील साधन में उत्पादन

उपादन में वृद्धि हेतु जब उत्पादन के दो साधन परिवर्तनशील होते है। इसके अध्ययन के लिए समोत्पादन वक्र तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार दो परिवर्तनशील साधनों वाले उत्पादन फलन के समोत्पादन वक्रों के एक परिवार द्वारा दिखाया जा सकता है। समोत्पादन वक्र मांग सिद्धान्त के उदासीन या अनधिमान वक्र की तरह ही है। सम-उत्पादन या समोत्पादन वक्र विश्लेषण का विकास करने तथा उसका उत्पादन के क्षेत्र में प्रयोग करने का श्रेय प्रो0 फ्रिश, स्नीडर, हिक्स, कार्लसनं तथा बोल्डिंग को दिया जाता है।

समोत्पादन वक्र का अर्थ -जिस प्रकार मांग सिद्धान्त का तटस्थता या उदासीन वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है, जिससे उपभोक्ता को एक समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है उसी प्रकार समोत्पादन वक्र उत्पत्ति के दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है, जिससे

उत्पादक को एक समान उत्पादन की प्राप्ति होती है। समान उत्पादन प्राप्ति के कारण उत्पादक संयोगों के चुनाव के प्रति उदासीन रहता है इसलिए समोत्पादन वक्रों को उत्पादन तटस्था वक्र कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे Iso-Product Curves तथा Equal Product Curves भी कहते है।

प्रो0 कोहन एवं सीयर्ट के अनुसार - एक सम उत्पाद वक्र वह वक्र होता है जिस पर उत्पादन की अधिकतम प्राप्त दर स्थिर होती है।

प्रो0 कीरस्टेड के अनुसार - 'सम - उत्पाद' वक्र दो साधनों के उन सभी सम्भावी संयोगों को व्यक्त करते है जिनसे एक-समान कुल उत्पादन प्राप्त होता है।

समोत्पादन वक्रों की धारणा को तालिका (15.1)द्वारा भली भति समझा जा सकता हैS। यह मान लिया गया है कि किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिए दो साधनों X साधन (श्रम) तथा Y साधन (पूॅजी) का प्रयोग होता है। जो वस्तु की 100 इकाईयों का उत्पादन करती है। प्रारम्भ में संयोग A, जो श्रम की 1 तथा पूॅजी की 17 इकाईयों से बना है संयोग Aके द्वारा वस्तु की 100 इकाईयाँ उत्पादित होती है। तालिक के संयोग B, C, D, E तथा F भी समान उत्पादन अर्थात् 100 इकाइयाँ उत्पादित करते है।

तालिका 15.1 समोत्पादन तालिका

संयोग	X साधन (श्रम)	Y साधन (पूॅजी)	कुल उत्पादन
A	**1**	**17**	**1 x + 17 y = 100**
B	**2**	**12**	**2 x + 12 y = 100**
C	**3**	**8**	**3 x + 8 y = 100**
D	**4**	**5**	**4 x + 5 y = 100**
E	**5**	**3**	**5 x + 3 y = 100**
F	**6**	**2**	**6 x + 2 y = 100**

यदि इन दोनों साधनों के सभी संयोगों को रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया जाता है तो जिस वक्र की रचना होती है। उसे सम-उत्पादन वक्र कहते है। चित्र (15.1) में एक सम-उत्पादन वक्र (IP) है। जो A, B, C, D, E तथा F संयोगों से मिल कर बना है। जो एक समान कुल उत्पादन को प्रदर्शित करते है।

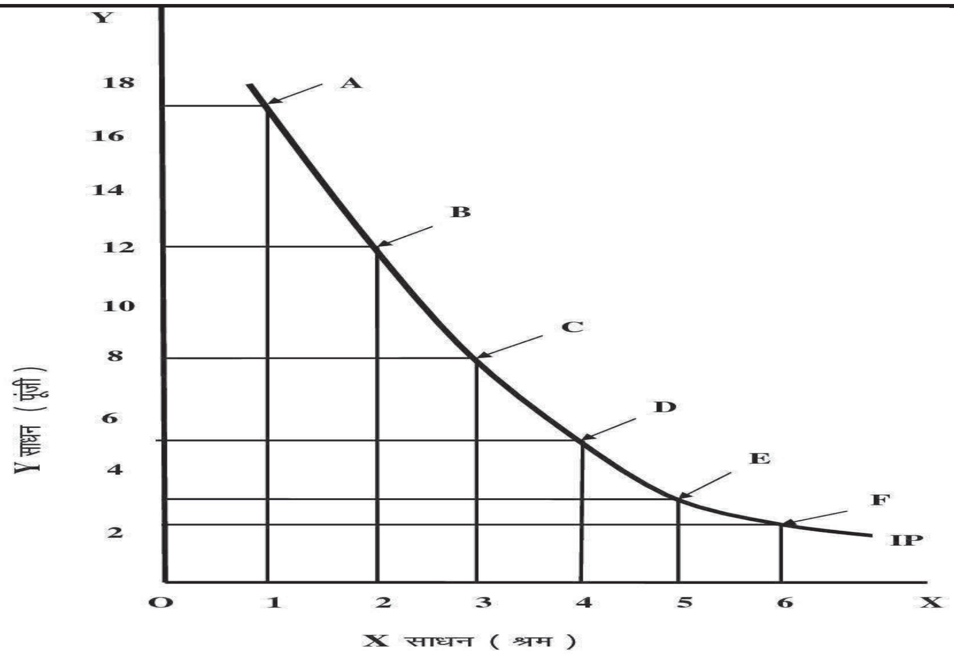

चित्र (15.1) सम-उत्पादन वक्र

जब एक चित्र में एक से अधिक समोत्पादन वक्रों को प्रदर्शित किया जाता है, तो उसे समोत्पादन मानचित्र कहते है। जो दो साधनों के अलग -अलग अनुपातों के संयोग से प्राप्त उत्पादन को प्रदर्शित करते है। यह मानचित्र इस बात को स्पष्ट करता है कि दांये ओर का समोत्पादन वक्र बांये ओर के वक्र की तुलना में उत्पादन के ऊँचे स्तर को बताता है। जैसे
चित्र(15.2) में प्रदर्शित किया गया है। जिसमें तीन समोत्पादन वक्र IP_1, IP_2, तथा IP_3 दर्शायें गये है जो क्रमशः 100, 150 तथा 200 इकाइयों के उत्पादन को दर्शाते है।

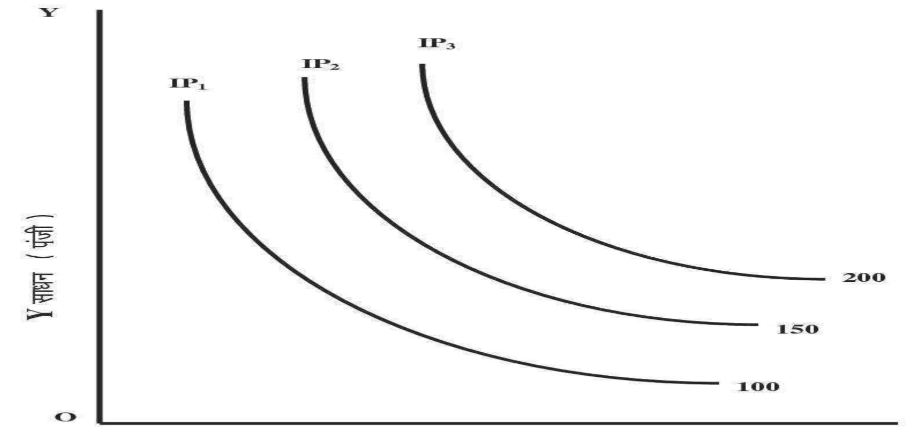

चित्र (15.2) समोत्पादन मानचित्र

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दरः-आधुनिक उत्पादन सिद्धान्त में तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की महत्वपूर्ण भूमिका है। तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का नियम (MRTS)

उत्पादन फलन पर आधारित है। जहाँ दो साधनों को परिवर्तीय अनुपातों में इस ढंग से प्रतिस्थापित किया जा सकता है कि उत्पादन की समान मात्रा का उत्पादन किया

जा सकें। दो साधनों Y (पूँजी) तथा X (श्रम) में तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ($MRTS_{XY}$) वह दर है जिस का उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन किये बिना वस्तु उत्पादन में Y साधन के स्थान पर X साधन को प्रतिस्थापित किया जा सकता है। जिससे उत्पादन की मात्र समान बनी रहती है। इसे तालिका (15.2) से समझा जा सकता है।

तालिका (15.2) तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर तालिका

संयोग	X साधन (श्रम)	Y साधन (पूँजी)	कुल उत्पादन	**MRTS xy**
A	**1**	**17**	**1 x + 17 y = 100**	**-**
B	**2**	**12**	**2 x + 12 y = 100**	**5:1**
C	**3**	**8**	**3 x + 8 y = 100**	**4:1**
D	**4**	**5**	**4 x + 5 y = 100**	**3:1**
E	**5**	**3**	**5 x + 3 y = 100**	**2:1**
F	**6**	**2**	**6 x + 2 y = 100**	**1:1**

उत्पादन का कोई भी संयोग क्यों न लिया जायें, उत्पादन की मात्रा 100 इकाईयाँ ही बनी रहेगी। ऐसे में तकनीकी प्रतिस्थापना की सीमान्त दर (MRTS) संयोग ठ के लिए 5:1 है। इसी प्रकार ब्ए क्ए म् तथा थ् के लिए 4:1, 3:1, 2:1 तथा 1:1 है।

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS)को निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है -

X के लिए Y की तकनीकी प्रतिस्थापना की सीमान्त दर =

$$\frac{\text{Y साधन की मात्रा में परिवर्तन (कमी)}}{\text{X साधन की मात्रा में परिवर्तन (वृद्धि)}}$$

अथवा

$$MRTS\ xy = \frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

जहांΔ = परिवर्तन की दर

जैसे - जैसे उत्पादक द्वारा साधन Y के स्थान पर साधन X का अधिक प्रयोग किया जाता। वैसे-वैसे Y साधन की इकाईयों की संख्या, जिसके स्थान पर X साधन की एक इकाई का प्रयोग हो सकता है, घटती जाती है। इसे ही घटती तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का नियम कहते है। तालिका (15.2) से स्पष्ट है। कि X साधन (श्रम) की प्रत्येक अगली इकाई के लिए Y साधन पूँजी की पहले की तुलना में उत्पादक कम मात्रा का त्याग करता है।

समोत्पादन वक्रों की मान्यताएं -

1. उत्पादन हेतु केवल दो साधनों श्रम तथा पूँजी का प्रयोग किया जाता है।

2. उत्पादन की तकनीक स्थिर तथा दी हुई है।

3. उत्पादन के साधनों को छोटी-छोटी इकाईयों में बांटा जा सकता है।

4. उत्पादन के साधनों का प्रयोग कुशलता से किया जाता है।

समोत्पादन वक्रों की विशेषतायें - समोत्पादन वक्र की मान्यताओं के आधार पर इसकी अनेक विशेषताएं एवं लक्षण है:-

1. समोत्पादन वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है - समोत्पाद वक्र दायीं ओरनीचे झुका अर्थात ऋणात्मक ढाल वाला होता है। क्योंकि यदि साधन X श्रम की मात्रा बढ़ाई जाती है तो उत्पादन मात्रा स्थिर रखने के लिए Y साधन पूँजी की मात्रा घटानी पड़ती है। जैसा कि चित्र (15.3) में स्पष्ट होता है कि 100 इकाई का उत्पादन करने के लिए जब X साधन में MM_1 मात्रा की वृद्धि की जाती है तो Y साधन में न NN_1 मात्रा की कमी करनी पड़ती है। जिससे Y साधन में की गई कमी को X साधन की मात्रा में वृद्धि करके पूरा किया जाता है, जिससे उत्पादन की मात्रा पहले के समान बनी रहें।

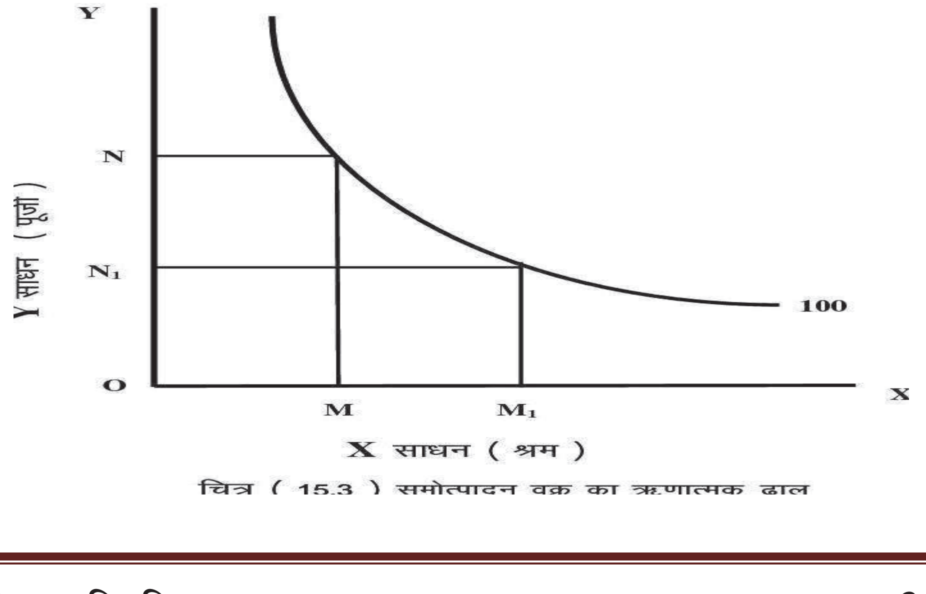

चित्र (15.3) समोत्पादन वक्र का ऋणात्मक ढाल

2. बायीं ओर की तुलना में दायीं ओर का समोत्पादन वक्र अधिक उत्पादन को प्रदर्शित करता है - कोई समोत्पादन वक्र मूल बिन्दु से जितना दूर होता है अर्थात् दायीं ओर हटता जाता है वह उतनी अधिक उत्पादन मात्रा को प्रदर्शित करता है। जैसा चित्र (15.4) में प्रदर्शित किया गया है कि IP_2 IP_1 की तुलना में ऊँचे उत्पादन स्तर को दर्शाता है, क्योंकि IP_1 पर स्थित । बिन्दु श्रम की OM मात्रा तथा पूँजी की ON मात्रा के प्रयोग से 100 इकाइयों के उत्पादन को दर्शाता है। जबकि दायीं ओर स्थित IP_2 का B बिन्दु श्रम की OM1 मात्रा तथ पूँजी की ON मात्रा से 200 इकाईयों के उत्पादन के दर्शाता है, अर्थात् $(ON + OM = 100) < (ON + OM_1 = 200)$ इसलिए सिद्ध हो जाता है कि बायीं ओर की तुलना में दायीं ओर का समोत्पादन वक्र अधिक उत्पादन को प्रदर्शित करता है।

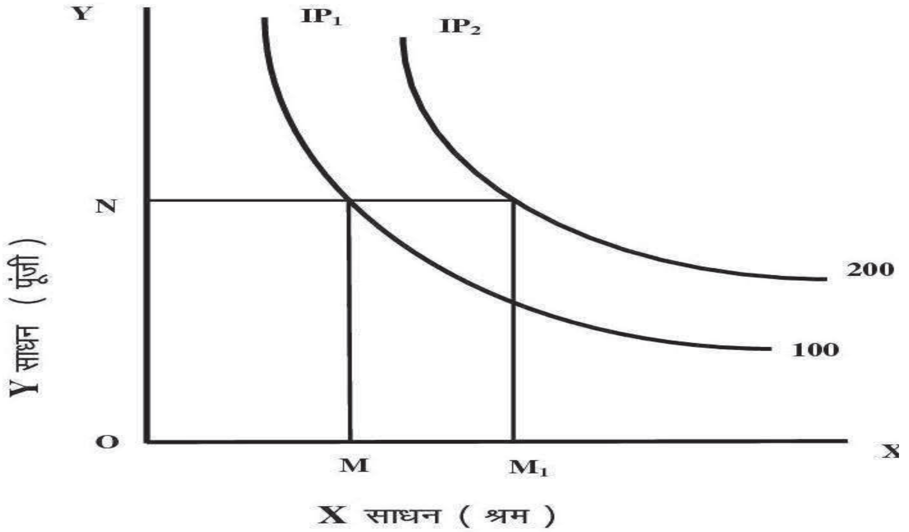

चित्र (15.4) दायीं ओर के समोत्पादन वक्र पर अधिक उत्पादन

3. समोत्पादन वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होता है - दोनों साधनों के बीच की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटने के कारण समोत्पादन वक्र उन्नतोदर होते है। जब पूँजी के स्थान पर श्रम की अधिकाधिक मात्रा का प्रयोग किया जात है तो श्रम के लिए पूँजी की तकनीकी सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती जाती है। जैसे चित्र (15.5) में दर्शाया गया है। 100 इकाईयो का उत्पादन करने के लिएA बिन्दु पर पूंजी की ON तथा श्रम की OM मात्रा का प्रयोग किया जाता है जब उत्पादकA से B, C तथा D बिन्दु की और जाता है तो वह श्रम की अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए पूँजी की उत्तरोत्तर कम इकाईयों का त्याग करता है। अर्थात् श्रम की प्रत्येक अगली इकाई के लिए 'पूँजी की घटती हई मात्रा' $(NN_1 > N_1 N_2 > N_2 N_3)$ से प्रतिस्थापित किया जाता है अर्थात् सीमान्त प्रतिस्थापन की दर घटती जाती है। जिस कारण IP मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होता है।

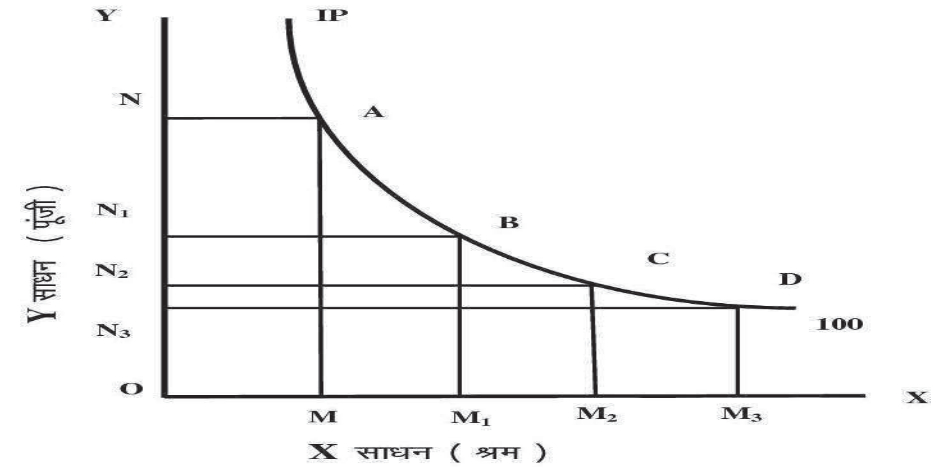

चित्र (15.5) समोत्पादन वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर

4.कोई दो समोत्पादन वक्र एक-दूसरों को काट नहीं सकते - यदि दो समोत्पादन वक्र एक दूसरे को काटते है, तो इसका अभिप्राय है कि साधनों का एक संयोग ऐसा है, जो दोनों समोत्पादन वक्रों पर स्थित है जैसा कि चित्र (15.6) में दिखाया गया है कि IP_1 और IP_2 दो समोत्पादन वक्र जो क्रमशः 100 और 150 इकाइयों के उत्पादन को दर्शाते है जिसमें बिन्दु A = 100 तथा बिन्दु B = 150 इकाइयों के उत्पादन को दर्शाता है। लेकिन C बिन्दु कैसे 100 तथा 150 इकाइयों के उत्पादन के दर्शा सकता है, क्योंकि C बिन्दु जो IP_1 तथा IP_2 पर स्थित है। इसलिए यह सम्भव नहीं है कि IP_1 तथा IP_2 जब अलग -अलग उत्पादन स्तर को दर्शाते है तो इन दोनों पर स्थित कोई एक बिन्दु अर्थात् C बिन्दु समान उत्पादन को दर्शाये। अतः सिद्ध होता है कि कोई दो समोत्पादन वक्र एक-दूसरे को काट नहीं सकते।

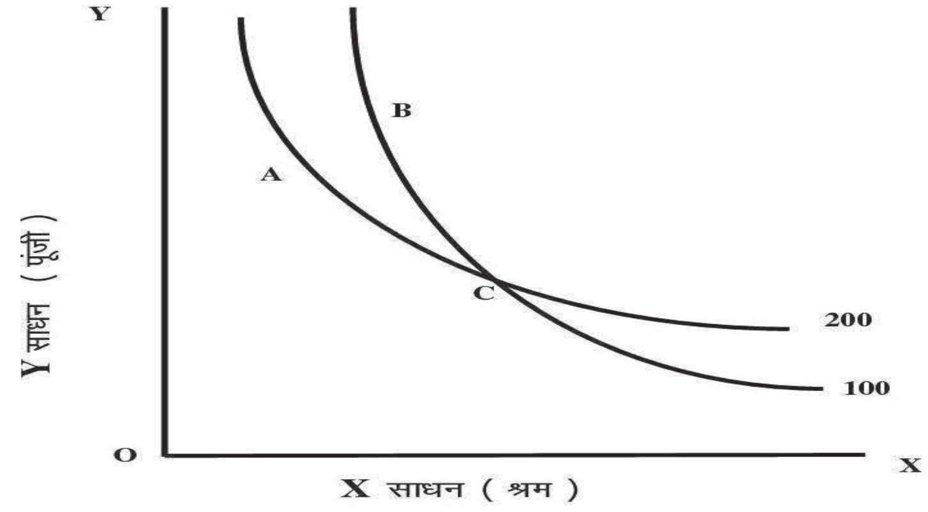

चित्र (15.6) समोत्पादन वक्र एक–दूसरों को काट नहीं सकते

5.कोई भी समोत्पादन वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श नहीं कर सकता- यदि एक समोत्पादन वक्र X दृ अक्ष को स्पर्श करता है, तो इसका अभिप्राय हुआ कि ‘X’ बिन्दु पर उत्पादित मात्रा केवल श्रम द्वारा उत्पादित की गई। इसी प्रकार Y अक्ष पर स्थित ‘Y’ बिन्दु पर उत्पादित मात्रा केवल पूँजी द्वारा उत्पादित की गई, जबकि व्यवहार में ऐसा होना सम्भव नहीं है। क्योंकि किसी भी वस्तु के उत्पादन हेतु एक से ज्यादा उत्पादन साधन की आवश्यकता होती है। अतः समोत्पादन वक अक्षों को स्पर्श नहीं कर सकतें। जैसा कि चित्र (15.7) में दिखाया गया है

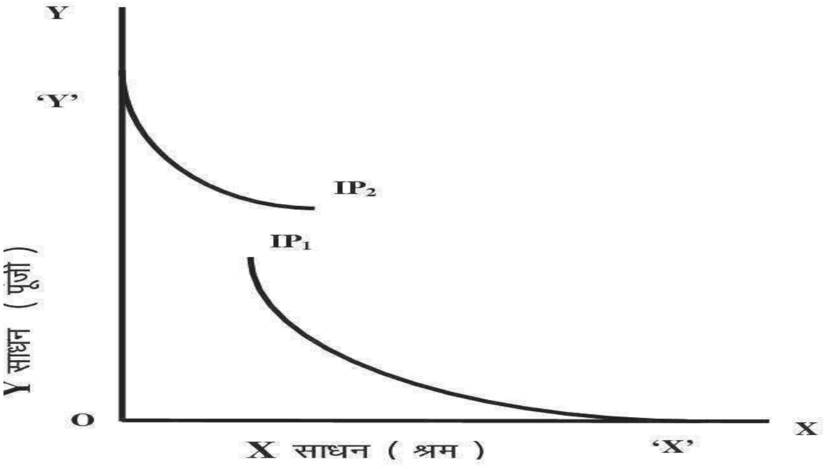

चित्र (15.7) समोत्पादन वक अक्ष को स्पर्श नहीं कर सकता

5. समोत्पादन वक्र रिज रेखाओं को अंकित करने में सहायक होते है - समोत्पादन वक्र द्वारा फर्म के लिए उपयुक्त उत्पादन क्षेत्र का सीमांकन किया जा सकता है, अर्थात् उन सीमाओं का निर्धारण किया जा सकता है जिसमें उत्पादन करना फर्म के लिए लाभदायक होगा।

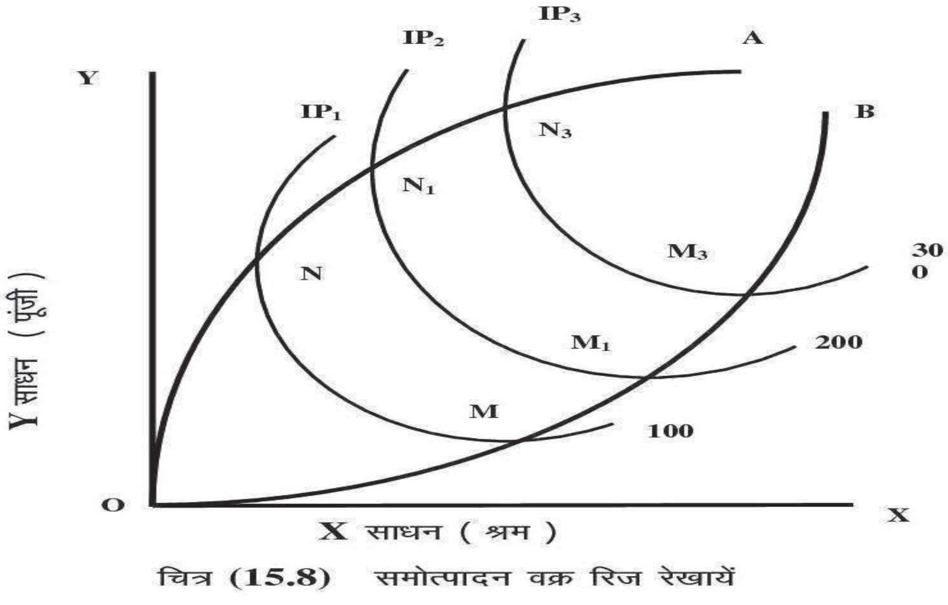

चित्र (15.8) समोत्पादन वक्र रिज रेखायें

जब उत्पादक आवश्यकता से अधिक श्रम या पूँजी या दोनों का प्रयोग करता है तो अन्त में कुल उत्पादन घट जाता है। जिससे समोत्पादन वक का आकार अण्डाकर हो जाता है। इस अण्डाकार वक्र का वह भाग जो मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होता है। वह कूट या रिज़ रेखाओं के बीच में स्थित होता है। वह उत्पादन का मितव्ययी क्षेत्र होता है। जैसा चित्र (15.8) में दर्शाया गया है। OA तथा OB रिज रेखाओं के भीतर का भाग समोत्पादन वक्र के उन्नतोदर हिस्सों के दर्शाता है और एक उत्पादक का उत्पादन क्षेत्र है, क्योंकि इस क्षेत्र में श्रम तथा पूँजी का सीमान्त उत्पादन धनात्मक है।

15.2 पैमाने के प्रतिफल

'पैमाने के अर्थशास्त्र' में केन्द्रीय समस्या 'पैमाने के प्रतिफल' है। पैमाने के प्रतिफल का विचार इस बात का अध्ययन करता है कि यदि सभी साधनों में अनुपातिक परिवर्तन कर दिया जाये तो उत्पादन में किस प्रकार से परिवर्तन होगा। इसमें साधनों की निरपेक्ष मात्राओं में ही परिवर्तन होता है परन्तु उनके आपसी अनुपात में परिवर्तन नहीं होता, इसे पैमाना रेखा द्वारा दर्शाया जाता है। जब एक विशिष्ट पैमाना रेखा पर साधनों की मात्राओं को परिवर्तित किया जाता है तो उत्पादन में जो परिवर्तन होगा। उसे पैमाने के प्रतिफल द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

पैमाने के प्रतिफल के नियमों की व्याख्या समोत्पादन वक्रों द्वारा की जा सकती है कि साधनों में आनुपातिक वृद्धि करने अर्थात पैमाना रेखा पर साधनों की वृद्धि करने पर उत्पादन में क्या परिवर्तन होगा। जब सभी साधनों को समान अनुपात में बढ़ाया जाता है, तो प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा या प्रतिफल की तीन अवस्था प्राप्त हो सकती है जिन्हें समोत्पादन वक्रों की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है -

1. पैमाने के बढ़ते प्रतिफल

2. पैमाने के स्थिर प्रतिफल

3. पैमाने के घटते प्रतिफल

पैमाने के प्रतिफलों को चित्र में एक विस्तार पथ पर उत्पादन के बहु स्तर क्रमिक समोत्पादन वक्रों के बीच अन्तर द्वारा दर्शाया जा सकता है। अर्थात् समोत्पादन वक्र जो उत्पादन के ऐसे स्तर दर्शाते है, जो उत्पादन के किसी आधार स्तर के गुणक है जैसे 100, 200 तथा 300।

1.पैमाने के बढ़ते प्रतिफल - जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में अधिक अनुपात से वृद्धि होती है तो उसे पैमाने के बढ़ते प्रतिफल कहते है। दूसरे शब्दों में पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन में एक समान वृद्धि प्राप्त करने के लिए साधनों की

मात्राओं में क्रमशः कम और कम वृद्धि की आवश्यकता पड़ती है। जैसे-सभी साधनों को 10% बढ़ाया जाये तो उत्पादन 20% बढ़ जाये तो इसे पैमाने के बढ़ते प्रतिफल की अवस्था कहा जाएगा।

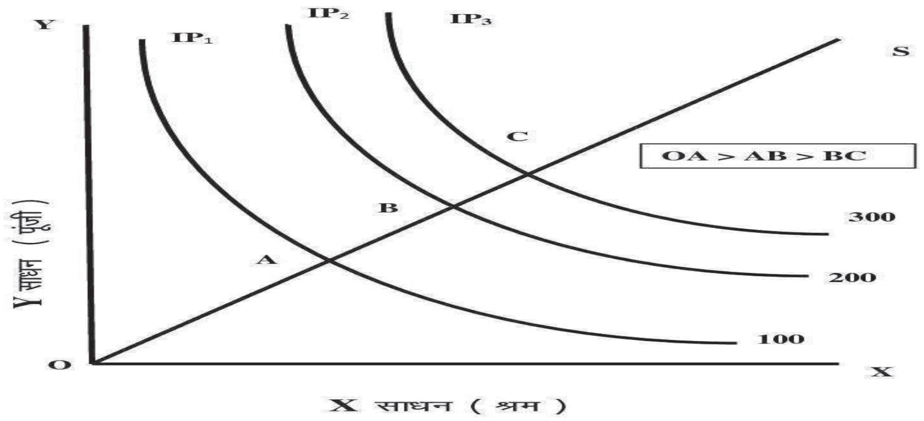

चित्र (15.9) पैमाने के बढ़ते प्रतिफल

चित्र (15.9) में IP_1 IP_2 तथा IP_3 समोत्पादन वक्र है जो क्रमशः 100, 200 तथा 300 उत्पादन की इकाईयों को दर्शाते है। OS रेखा पैमाने की रेखा है जो समोत्पादन वक्रों द्वारा OA, AB, BC भागों में विभाजित होती है। IP_1 IP_2 तथा IP_3 X साधन (श्रम) + Y साधन (पूँजी) की प्रयुक्त मात्राओं को बताता है। चित्र में स्पष्ट है कि प्रत्येक अXली 100 इकाईयों के लिए पहले की तुलना में कम साधन संयोग [X साधन (श्रम) + Y साधन (पूँजी)]की आवश्यकता पड़ती है। अर्थात् OA > AB > BC। जैसा चित्र (15.9) में स्पष्ट है कि समोत्पादन वक्र पैमाने की रेखा को टुकड़ों में बांट देते है और जैसे-जैसे हम मूल बिन्दु O से दूर हटते जाते है तो उत्पादन पैमाने के बढ़ते प्रतिफल के अन्तर्गत होता है। क्योंकि समान मात्रा का उत्पादन करने के लिए दोनों साधनों की मात्राओं में क्रमशः कम वृद्धि की आवश्यकता होती है।

2.पैमाने के स्थिर प्रतिफल - जब उत्पादन के सभी साधनों अर्थात पैमाने की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में ठीक उसी अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे ‘पैमाने के स्थिर प्रतिफल’ कहते है अर्थात् पैमाने के स्थिर प्रतिफल में उत्पादन में समान वृद्धि के लिए साधनों की मात्राओं में समान अर्थात् उसी अनुपात में वृद्धि करनी पड़ती है। जैसे सभी साधनों में 10% वृद्धि करने पर उत्पादन में भी 10% की वृद्धि हो जाती है तो इसे पैमाने के स्थिर प्रतिफल की अवस्था कहा जायेगा।

चित्र (15.10) में IP_1 IP_2 तथा IP_3 समोत्पादन वक्र है जो क्रमशः 100, 200 तथा 300 उत्पादन की इकाईयों को दर्शाते है। वूS रेखा पैमाने की रेखा है जो समोत्पादन वक्रों द्वारा OA, AB, BC भागों में विभाजित होती है IP_1 IP_2 तथा IP_3 X साधन (श्रम) +Y साधन (पूँजी) की प्रयुक्त मात्राओं को बताता है। चित्र में स्पष्ट है कि प्रत्येक अXली 100 इकाईयों के लिए पहले के समान साधन संयोग [X साधन (श्रम) + Y साधन (पूँजी)] की आवश्यकता पड़ती है। अर्थात् OA =AB =

BC जैसा चित्र(15.10) में स्पष्ट है कि समोत्पादन वक्र पैमाने की रेखा को टुकड़ों में बांट देते है और जैसे-जैसे हम मूल बिन्दु O से दूर हटते जाते है तो उत्पादन पैमाने के बढ़ते प्रतिफल के अन्तर्गत होता है। क्योंकि समान मात्रा का उत्पादन करने के लिए दोनों साधनों की मात्राओं में क्रमशः समान वृद्धि की आवश्यकता होती है।

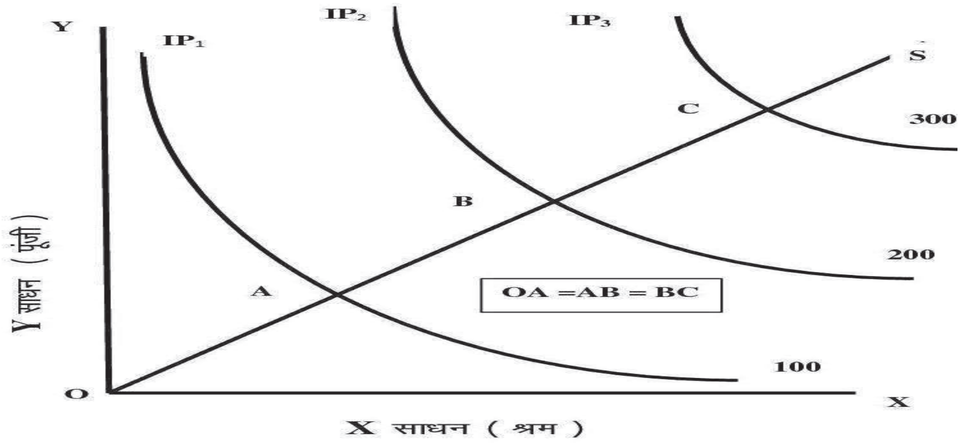

चित्र (15.10) पैमाने के स्थिर प्रतिफल

3.पैमाने के घटते प्रतिफल - जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने से उत्पादन में उससे कम अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे पैमाने के घटते प्रतिफल कहते है। अर्थात् पैमाने के घटते प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन में एक समान वृद्धि करने के लिए साधनों की मात्राओं में क्रमशः अधिक वृद्धि करनी पड़ती है। उदाहरणार्थ - सभी साधनों में 10% वृद्धि करने पर उत्पादन में मात्र 8% ही बढ़े तो इसे पैमाने के घटते प्रतिफल की अवस्था कहा जायेगा।

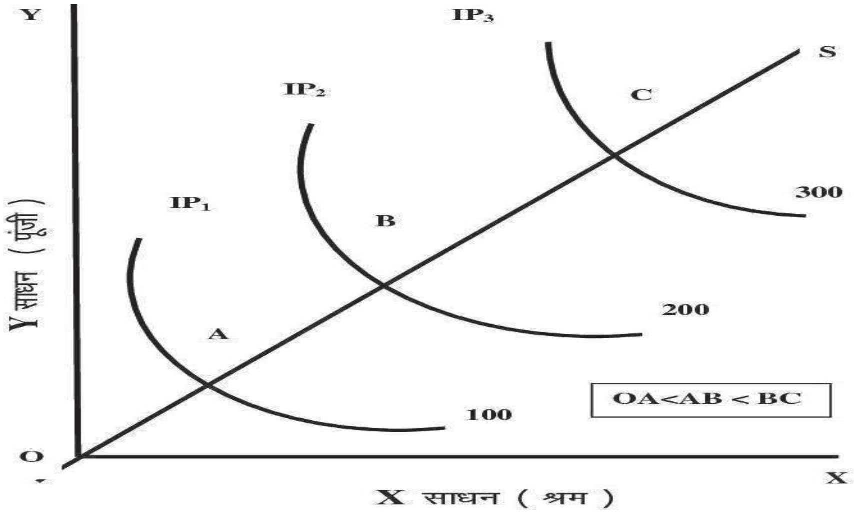

चित्र (15.11) पैमाने के घटते प्रतिफल

चित्र (15.11) में IP_1 IP_2 तथा IP_3 समोत्पादन वक्र है जो क्रमशः 100, 200 तथा 300 उत्पादन की इकाईयों को दर्शाते है। वूS रेखा पैमाने की रेखा है जो समोत्पादन वक्रों द्वारा OA, AB BC भागों में विभाजित होती है। IP_1 IP_2 तथा IP_3 X साधन (श्रम) + Y साधन (पूॅजी) की प्रयुक्त मात्राओं को बताता है। चित्र में स्पष्ट है कि प्रत्येक अXली 100 इकाईयों के लिए पहले की तुलना में अधिक साधन संयोग [X साधन (श्रम) + Y साधन (पूॅजी)] की आवश्यकता पड़ती है। अर्थात् OA < AB < BC जैसा चित्र (15.11) में स्पष्ट है कि समोत्पादन वक्र पैमाने की रेखा को टुकड़ों में बांट देते है और जैसे-जैसे हम मूल बिन्दु O से दूर हटते जाते है तो उत्पादन पैमाने के बढ़ते प्रतिफल के अन्तर्गत होता है। क्योंकि समान मात्रा का उत्पादन करने के लिए दोनों साधनों की मात्राओं में क्रमशः अधिक वृद्धि की आवश्यकता होती है।

पैमाने के प्रतिफल के लागू होने के कारण:- जब उत्पादन के सभी साधनों अर्थात् दो साधनों में वृद्धि की जाती है, तो उसे उत्पादक को पैमाने के बढते, स्थिर तथा घटते प्रतिफल प्राप्त होते है। निम्न कारणों से पैमाने के प्रतिफल की तीनों अवस्थायें लागू होती है:-

1. श्रम-विभाजन एवं विशिष्टिकरण - प्रो0 चैम्बरलिन के अनुसार पैमाने के प्रतिफल का लागू होने का मुख्य कारण श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण है। उत्पादन वृद्धि हेतु जब पैमाने अर्थात् साधनों की मात्रा बढ़ाई जाती है, तो श्रम विभाजन व विशिष्टीकरण सम्भव होता है। जिससे श्रमिकों को योग्तानुसार कार्य मिल ता है और बार-बार एक कार्य करने से उनकी उत्पादकता बढ़ जाती है।

2. आकार की कुशलता - प्रो0 बॉमोल के अनुसार पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल के लागू होने का मुख्य कारण आकार की कुशलता है क्योंकि आकार विस्तार से भी कुशलता बढ़ती है। उदाहरणार्थ किसी पाइप का घेरा अर्थात व्यास दुगना करने पर उससे पहले की तुलना में दुगने से अधिक तेल या पानी निकाला जा सकता है।

3. साधनों की अविभाज्यता - उत्पादन के साधन सामान्यतः अविभाज्य होते है अर्थात् उनका एक निम्नतम आकार होता है। जिससे उन्हें उससे अधिक छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित नहीं किया जा सकता है। जैसे मशीन, प्रबन्धक आदि। अतः प्रारम्भ में पैमाने में वृद्धि करने से ऐसे साधनों की उत्पादकता बढ़ने से पैमाने के बढ़ते प्रतिफल लागू होते है। लेकिन एक सीमा के बाद पैमाने के स्थिर और घटते प्रतिफल लागू होने लगते है।

4. उन्नत मशीनों के प्रयोग की सम्भावना - उत्पादन का पैमाने बढ़ाने पर उन्नत तकनीकी मशीनों का प्रयोग सम्भव होता है क्योंकि अधिक पूॅजी निवेश के कारण उन्नत तकनीक को अपनाना आसान हो जाता है। जिससे उत्पादन में वृद्धि होने लगती है। लेकिन एक सीमा के बाद मशीनों में ह्रास (घिसाई) प्रारम्भ हो जाता है जिससे पैमाने के घटते प्रतिफल लागू होने लगते है।

5. उत्पादन की मिव्ययिताएँ अथवा अमितव्ययिताएँ - जब उत्पादन के पैमाने को बढ़ाया जाता है तो उत्पादक को कुछ आन्तरिक तथ बाह्य बचतें प्राप्त होती है। जिससे प्रति इकाई लागत कम हो जाती है और पैमाने के बढ़ते प्रतिफल की अवस्था में उत्पादन होता हैं। जबकि एक सीमा के बाद भी उत्पादन जारी रखा जायें, तो उत्पादन की अमितव्ययिताओं के कारण पैमाने के घटते प्रतिफल लागू होने लगते है।

15.5 कॉब-डगलस उत्पादन फलन :-

अनेक अर्थशास्त्रियों ने उत्पादन की मात्रा तथा साधनों के भौतिक सम्बन्धों की व्याख्या के लिए सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग करके उत्पादन फलनों की रचना दी है। जिसमें कॉब-डगलस का उत्पादन फलन अधिक महत्वपूर्ण है। इस उत्पादन फलन का प्रतिपादन प्रो0 सी0 डब्ल्यू कॉब तथा पी0 एच0 डगलस द्वारा किया गया था, जिस कारण इसे कॉब-डगलस उत्पादन फलन कहते है। कॉब-डगलस उत्पादन फलन अमरीकी निर्माणकारी उद्योग के आनुभाविक अध्ययन पर आधारित है। यह रेखीय उत्पादन-फलन है, जो निर्माणकारी उद्योग के समस्त उत्पादन के लिए केवल दो साधनों (आग तों) श्रम तथा पूंजी को लेता है। कॉब-डगलस उत्पादन फलन को गणितीय रूप से इस प्रकार व्यक्त किया जाता है।

$$Q = AL^{\alpha} C^{\beta}$$

जहाँ पर

Q	=	विनिर्माण उद्योग की उत्पादन मात्रा
L	=	श्रम की प्रयोग की गई मात्रा
C	=	पूँजी की प्रयोग की गई मात्रा
A α तथा β	=	धनात्मक स्थिर तत्व है

जहाँ $\alpha > 0$ तथा $\beta > 0$ है अर्थात् $(\alpha + \beta = 1)$

समीकरण बताता है कि उत्पादन प्रत्यक्ष रूप से L और C पर निर्भर करता है और उत्पादन का वह भाग जिसकी व्याख्या श्रम व पूंजी के द्वारा नहीं की जा सकती उसे । द्वारा स्पष्ट किया जाता है। जिसे तकनीकी परिवर्तन कहा जाता है। जो उत्पादन फलन कॉब डगलस ने दिया है। उसमें श्रम का हिस्सा 3/4 और पूँजी का भाग 1/4 था। C-D उत्पादन फलन है, पैमाने के स्थिर प्रतिफल का प्रदर्शित करता है। क्योंकि स् और ब् के मूल्यों का जोड़ (3/4 +1/4) एक के बराबर है, अर्थात $(\alpha + \beta = 1)$कॉब डगलस उत्पादन फलन की विशेषताएँ - कॉब-डगलस उत्पादन फलन जोकि रेखीय समरूप उत्पादन फलन का एक रूप है कि अनेक महत्वपूर्ण विशेषताएँ है -

1. पैमाने के स्थिर प्रतिफल की व्याख्या - अर्थशास्त्री कॉब-डगलस उत्पादन फलन पर अधिक ध्यान इसलिए देने लगे है, कि इसके अनुसार पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते है। किस प्रकार कॉब-डगलस उत्पादन फलन के अनुसार पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते है इसे सिद्ध करने के लिए L और C की मात्राओं को N गुणा करते है। तब बढ़ा हुआ उत्पादन Q* होगा -

$$
\begin{aligned}
Q^* &= A\,(n\,L)^{\alpha}\,(n\,C)^{\beta} \\
&= n^{\alpha+\beta}\,(AL^{\alpha}C^{\beta}) \\
&= n^{\alpha+\beta}\,Q \qquad (Q = AL^{\alpha}C^{\beta}) \\
&= n\,Q \qquad (\alpha+\beta = 1)
\end{aligned}
$$

इस प्रकार उत्पादन Q से बढ़कर Q* हो गया है। जब Lतथा C को n से गुणा किया गया तो उत्पादन भी बढ़ कर n Q हो गया है।

2. साधनों का औसत और सीमांत उत्पाद - कॉब-डगलस उत्पादन फलन में साधनों का औसत और सीमांत उत्पाद इस बात पर निर्भर करता है कि वस्तु उत्पादन हेतु इन साधनों का किस अनुपात में प्रयोग किया जाता है श्रम के MP को कॉब-डगलस उत्पादन फलन में निम्न प्रकार व्युत्पन्न किया जा सकता ळें

$$
\begin{aligned}
MP_L = \frac{\partial Q}{\partial L} &= \alpha\,AL^{\alpha-1}\,C^{\beta} \\
&= \alpha\,(AL^{\alpha}\,C^{\beta})\,L^{-1} \qquad (Q = AL^{\alpha}\,C^{\beta}) \\
&= \alpha\,Q\,L^{-1} \\
&= \alpha\,\frac{Q}{L} \qquad \left(\frac{Q}{L} = AP_L\right) \\
&= \alpha\,(AP_L)
\end{aligned}
$$

जहाँ AP_L श्रम का औसत उत्पाद है। कॉब-डगलस उत्पादन फलन स्थिर मूल्यमान कर चलता है। $AP_L = f\,(C/L)$ इसका मतYब है कि जब तक C/L स्थिर रहता है, तो AP_L भी स्थिर रहता है। चाहे C और L की कितनी भी मात्रा का प्रयोग किया जायें। यही MP_L पर लागू होता है क्योंकि $MP_L = \alpha\,(AP_L) = f\,(C/L)$ है।

3. पूँजी और श्रम के बीच प्रतिस्थापन की सीमान्त दर-कॉब डगलस उत्पादन फलन से MRS_{LC} को व्युत्पन्न किया जा सकता है।

$$MRS_{LC} = \frac{\partial Q / \partial L}{\partial Q / \partial C}$$

$$= \frac{\alpha\,(Q/L)}{\beta\,(Q/C)}$$

$$= \frac{\alpha}{\beta} \cdot \frac{C}{L} .$$

4. साधन प्रतिस्थापन की लोच - कॉब डगलस उत्पादन फलन में दो साधनों के बीच तकनीकी प्रतिस्थापन की लोच इकाई अर्थात् एक के बराबर होती है।

तकनीकी प्रतिस्थापन की लोच (es) =

पूॅजी श्रम अनुपात (C/L) में आनुपातिक परिवर्तन

श्रम व पूंजी में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर में आनुपातिक परिवर्तन

अतः साधनों में तकनीकी प्रतिस्थापन की लोच मे es =

$$\frac{d\,(C/L)/\,(C/L)}{d\,(MRS_{LC})/\,(MRS_{LC})}$$

$$(MRS_{LC} = \alpha / \beta .\ C / L)$$

इसलिए MRS_{LS} के मूल्य को स्थानापन्न करने पर

$$es = \frac{d\,(C/L)\ \ (C/L)}{d\,(\alpha/\beta.\ C/L)/\,(\alpha/\ \beta.\ C/L)}$$

क्योंकि α / β एक स्थिर राशि है और इसलिए व्युत्पन्न (अवकYन) को प्रभावित नहीं करता है जिससे

$$es = \frac{d\,(C / L)\,(\alpha / \beta)}{(\alpha/\beta).\ d\,(C/L)} = 1$$

जब प्रतिस्थापन लोच इकाई है तो उत्पादन फलन पैमाने के स्थिर प्रतिफल का समरूप है।

5. कॉब-डगलस उत्पादन फलन तथा यूलर प्रमेय - कॉब डगलस उत्पादन फलन द्वारा गणित की प्रसिद्ध प्रमेय यूलर प्रमेय को सिद्ध किया जा सकता है। उत्पादन फलन $Q = f(C/L)$ एक कोटि का समरूप है। तो यूलर प्रमेय के अनुसार -

$$Q = L\,MP_L + C\,MP_C$$

$$(MP_L = \partial Q / \partial L) \qquad (MP_C = \partial Q / \partial C)$$

$$Q = (\partial Q / \partial L)L + (\partial Q / \partial C)C$$

जहाँ $\partial Q/\partial L$ श्रम का सीमान्त उत्पाद तथा $\partial Q/\partial C$ पूँजी का सीमान्त उत्पाद है। $\partial Q/\partial C$ C कुल उत्पाद में पूँजी का भाग है और $\partial Q/\partial L$ L श्रम का भाग है।

$$Q = f\,(C.L) = AC^{\alpha} L^{\beta}$$

$$\partial Q / \partial C = A\alpha\, C^{\alpha-1} L^{\beta}$$

$$\partial Q / \partial L = AC^{\alpha} \beta\, L^{\beta-1}$$

$$(\partial Q / \partial C) + (\partial Q / \partial L)\, L = C(A\,\alpha\, C^{\alpha-1} L^{\beta}) = L(A\, C^{\alpha} \beta\, L^{\beta-1})$$

$$= A\,\alpha\, C^{\alpha} L^{\beta} = A\, C^{\alpha} \beta\, L^{\beta}$$

$$= AC^{\alpha} L^{\beta} (\alpha + \beta)$$

$$= Q(\alpha+\beta) \qquad (Q = AC^{\alpha} L^{\beta})$$

इसलिए

$$(\partial Q / \partial L)L + (\partial Q / \partial C)C = (\alpha+\beta)\, Q$$

क्योंकि C-D उत्पादन फलन $\alpha+\beta=1$ है। सभी साधनों का प्रतिफल $(\alpha+\beta)\, Q = Q$ होने पर कुल उत्पादन, पूरी तरह से प्रयोग में आ जाता है।

कॉब डगलस उत्पादन फलन की आलोचना - यद्यपि कॉब-डगलस उत्पादन फलन का उत्पादन के क्षेत्र में एक अग्रणी स्थान है। तब भी कुछ विचारकों जैसे एच0 बी0 चैनरी, बी0 एस0 मिन्हास, के0 जे0 एरो तथा आर0 एम0 सोलो आदि द्वारा इसकी आलोचना की गयी है -

1. कॉब डगलस उत्पादन फलन उत्पादन के केवल दो साधन श्रम तथा पूंजी को लेकर चलता है। जबकि वास्तविक उत्पादन प्रक्रिया में अन्य साधनों का भी महत्वपूर्ण योग दान होता है। जिन का इस उत्पादन फलन में समावेश नहीं किया गया है।

2. यह उत्पादन फलन श्रम व पूॅजी की समस्त इकाईयों को समरूप व सजातीय मानता है जबकि वास्तव में श्रम की सभी इकाइयाँ समान रूप में कार्यकुशल नहीं होती है।

3. यह उत्पादन फलन 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' की स्थिति सम्बन्धी मान्यता पर आधारित है। जबकि पैमाने के स्थिर प्रतिफल वास्तविक नहीं है, जोकि व्यवहार में नहीं पायी जाती अल्पकाल में तो कुछ समय के लिए इस स्थित सम्भव भी है। लेकिन दीर्घकाल में यह स्थिति का बना रहना बहुत कठिन है।

4. यह उत्पादन फलन बाजार में पूर्ण-प्रतियोगिता की मान्यता को स्वीकार करता है, जबकि व्यवहार में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता ही ज्यादा पायी जाती है।

5. यह उत्पादन फलन में पूॅजी के माप की समस्या उत्पन्न होती है, क्योंकि यह केवल उत्पादन के लिए उपलब्ध पूॅजी की मात्रा को लेता हैं परन्तु उपलब्ध पूॅजी का पूर्ण उपयोग केवल पूर्ण रोजगार की अवधि में ही हो सकता ह, लेकिन अर्थव्यवस्था अल्प रोजगार की स्थिति में होती है।

6. कॉब डगलस उत्पादन फलन साधनों की प्रतिस्थापना की मान्यता पर आधारित है और साधनों की पूरकता को शामिल नहीं करता। जो अल्पकाल से सम्बन्धित हैं।यह फलन दीर्घकाल के लिए उपयुक्त है। परन्तु कॉब डगलस उत्पादन फलन स्वयं ही समय तत्व को नहीं लेता है। जो इस फलन की सबसे बड़ी कमी है।

कॉब डगलस उत्पादन फलन का प्रयोग अर्थशास्त्रियों द्वारा कुल उत्पादन में श्रम व पूंजी के सापेक्ष भागों को निर्धारित करने के लिए किया जाता है। यूलर प्रमेय को भी इससे प्रमाणित किया जा सकता है। अर्थशास्त्रियों ने इस फलन को दो से अधिक चरो या साधनों पर भी लागू करने का प्रयास किया है।

15.6 सारांश

उपादन में वृद्धि हेतु जब उत्पादन के दो साधन परिवर्तनशील होते है। इसके अध्ययन के लिए समोत्पादन वक्र तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। एक समोत्पादन वक्र उत्पत्ति के दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है, जिससे उत्पादक को एक समान उत्पादन की प्राप्ती प्राप्ति होती है। तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटने के कारण समोत्पादन वक्र उन्नतोदर होते है। समोत्पादन वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है, बायीं ओर की तुलना में दायीं ओर का समोत्पादन

वक्र अधिक उत्पादन को प्रदर्शित करता है ,समोत्पादन वक्र रिज रेखाओं को अंकित करने में सहायक होते है।पैमाने के प्रतिफल के नियमों की व्याख्या समोत्पादन वक्रों द्वारा की जा सकती है समोत्पादन वक्रों की सहायता से पैमाने के बढ़ते प्रतिफल, पैमाने के स्थिर प्रतिफल तथा पैमाने के घटते प्रतिफल को स्पष्ट किया जा सकता है।जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में अधिक अनुपात से वृद्धि होती है तो उसे पैमाने के बढ़ते प्रतिफल कहते है। जब उत्पादन के सभी साधनों अर्थात पैमाने की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में ठीक उसी अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' कहते है जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने से उत्पादन में उससे कम अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे पैमाने के घटते प्रतिफल कहते है।श्रम-विभाजन एवं विशिष्टिकरणआकार की कुशलता, साधनों की अविभाज्यता, उत्पादन की मिव्ययिताएँ अथवा अमितव्ययिताएँ, तथा उन्नत मशीनों के प्रयोग की सम्भावना के कारणों से पैमाने के प्रतिफल की तीनों अवस्थायें लागू होती है

कॉब-डगलस उत्पादन फलन अमरीकी निर्माणकारी उद्योग के आनुभाविक अध्ययन पर आधारित है। इस उत्पादन फलन का प्रतिपादन प्रो0 सी0 डब्ल्यू कॉब तथा पी0 एच0 डगलस द्वारा किया गया था, जिस कारण इसे कॉब-डगलस उत्पादन फलन कहते है।यह रेखीय उत्पादन-फलन है, जो निर्माणकारी उद्योग के समस्त उत्पादन के लिए केवल दो साधनों (आगतों) श्रम तथा पूंजी को लेता है।पूॅंजी और श्रम के बीच प्रतिस्थापन की सीमान्त दर,साधनों का औसत और सीमांत उत्पाद, पैमाने के स्थिर प्रतिफल की व्याख्या ,साधन प्रतिस्थापन की लोच तथाकॉब-डगलस उत्पादन फलन तथा यूलर प्रमेय को कॉब डगलस उत्पादन फलन द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।

यद्यपि कॉब-डगलस उत्पादन फलन का उत्पादन के क्षेत्र में एक अग्रणी स्थान है। तब भी कुछ विचारकों जैसे एच0 बी0 चैनरी, बी0 एस0 मिन्हास, के0 जे0 एरो तथा आर0 एम0 सोलो आदि द्वारा इसकी आलोचना की गयी है कॉब डगलस उत्पादन फलन का प्रयोग अर्थशास्त्रियों द्वारा कुल उत्पादन में श्रम व पूंजी के सापेक्ष भागों को निर्धारित करने के लिए किया जाता है। अर्थशास्त्रियों ने इस फलन को दो से अधिक चरो या साधनों पर भी लागू करने का प्रयास किया है।

15.7 शब्दावली:-

1. समोत्पादन - समान उत्पादन
2. प्रतिस्थापन- स्थानापन्नता अर्थात एक साधन के स्थान पर दूसरे के प्रतिस्थापित या प्रयोग करना।
3. अविभाज्यता - ऐसा साधन जिसे छोटे-छोटे भाग में न बांटा जान सके।
6. साधनों की पूरकता - ऐसे साधन जो एक दूसरे के पूरक हो अर्थात् एक के साथ दूसरा का प्रयोग आवश्यक हो जैसे कार के साथ पेट्रोल, मशीन के साथ बिजली।

7. श्रम विभाजन - जब श्रमिकों के बीच उनकी रूचि और योग्यता के अनुसार कार्य विभाजित किया जाता है।

15.8 अभ्यास प्रश्न:-

रिक्त स्थान भरों:-

1. समोत्पादन वक्र उत्पत्ति के दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है, जिससे उत्पादक को............. उत्पादन की प्राप्ती होती है।
2. जब एक चित्र में एक से अधिक समोत्पादन वक्रों को प्रदर्शित किया जाता है, तो उसे.........कहते है।
3. तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटने के कारण समोत्पादन वक्र .... होते है।
4. समोत्पादन वक्र का ढाल .... होता है।
5. बायीं ओर की तुलना में दायीं ओर का समोत्पादन वक्र....... को प्रदर्शित करता है।
6. कोई दो समोत्पादन वक्र एक-दूसरों को काट............. सकते।
7. कोई भी समोत्पादन वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श .... कर सकता।
8. पैमाने के प्रतिफल के नियमों की व्याख्या............. द्वारा की जा सकती है।
9. जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में अधिक अनुपात से वृद्धि होती है तो उसे.................. कहते है।
10. जब उत्पादन के सभी साधनों अर्थात पैमाने की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में ठीक उसी अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे .... कहते है।
11. जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने से उत्पादन में उससे कम अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे.................. कहते है।
12. प्रो0 चैम्बरलिन के अनुसार पैमाने के प्रतिफल का लागू होने का मुख्य कारण.................. है।
13. प्रो0.................. के अनुसार पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल के लागू होने का मुख्य कारण आकार की कुशलता है।
14. कॉब-डगलस का उत्पादन फलन प्रतिपादन .... द्वारा किया गया था।
15. कॉब-डगलस उत्पादन फलन अमरीकी ......उद्योग के आनुभाविक अध्ययन पर आधारित है।
16. यह .... उत्पादन-फलन है, जो निर्माणकारी उद्योग के समस्त उत्पादन के लिए केवल दो साधनों (आग तों).................. को लेता है।
17. कॉब-डगलस उत्पादन फलन को गणितीय रूप से .... इस प्रकार व्यक्त किया जाता है।
18. पैमाने के .... प्रतिफल की व्याख्या कॉब-डगलस उत्पादन फलन सेकी जा सकता है।

19. कॉब डगलस उत्पादन फलन द्वारा गणित की प्रसिद्ध प्रमेय .... को सिद्ध किया जा सकता है।

उत्तर - (1) एक समान (2) समोत्पादन मानचित्र (3) उन्नतोदर(ब्वदअमX) (4) ऋणात्मक (5) अधिक उत्पादन (6) नहीं (7) नहीं (8) समोत्पादन वक्रों (9) पैमाने के बढ़ते प्रतिफल (10) ‘पैमाने के स्थिर प्रतिफल’ (11) पैमाने के घटते प्रतिफल (12) श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण (13) प्रो0 बॉमोल् (14) प्रो0 सी0 डब्लयू कॉब तथा पी0 एच0 डगलस (15) निर्माणकारी (16) रेखीय, श्रम तथा पूंजी (17) $Q = AL^{\alpha} C^{\beta}$(18) स्थिर प्रतिफल (19) यूलर प्रमेय ।

15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ:-

1. आहूजा, एच0 एल0, (2003),उच्चतर आर्थिक सिद्धान्तः व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण ; एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
2. झिंगन, एम0 एल0 (2007), व्याष्टि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, दिल्ली।
3. जैन, के0 पी0 (2005) माइक्रो अर्थशास्त्र, नवयुग साहित्य सदन, आग रा।
4. सिंह, एस0 पी0 (2001) माइक्रो अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
5. सेठ, एम0 एल0 (2000-01) उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।

15.10 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Koutsoyinuis.A. (1979), *Modern Microeconomics*, (2nd Edition), Macmillian Press, London.
- Ahuja,H.L. ((2010),*Principles of Micro Economics* , S&Chand Publishing House .
- Peterson, L. and Jain (2006), *Managerial Economics*, 4th edition, Pearson Education.
- Colander, D, C (2008), *Economics*, McGraw Hill Education.

15.11 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. समोत्पादन वक्र से क्या अभिप्राय हैं ? इनकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. पैमाने के प्रतिफल की विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या करों। पैमाने के प्रतिफल के लागू होने के कारण बताइए।
3. कॉब-डगलस उत्पादन फलन की आलोचनात्मक व्याख्या करों।

इकाई 16 अनुकुलतम साधन संयोग

इकाई संरचना

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 अनुकुल तम् साधन संयोग
16.4 सारांश
16.5 शब्दावली
16.6 अभ्यास प्रश्न
16.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
16.8 सहायक पाठ्य सामग्री
19.9 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना:-

व्यष्टि अर्थशास्त्र के परिचय से सम्बन्धित खण्ड चार की यह पंाचवी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन से आप समोत्पादन वक्रो तथ पैमाने के प्रतिफल की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुकें है।

इस इकाई में समोत्पादन वक्र और समलागत रेखा द्वारा उत्पादक के अनुकुल तम साधन संयोग की चित्र द्वारा व्याख्या की जायेगी तथा विस्तार पथ सहित कीमत प्रभाव पर प्रकाश डाला जाएगा।

इसके अध्ययन के बाद, आप उत्पादक के संतुलन को समझ सकेंगे।

16.2 उद्देश्य -

इस इकाई के अध्ययन से आप:-

- उत्पादक के अनुकूलतम साधन संयोग को समझ जायेंगे।
- उत्पादक के विस्तार पथ से अवगत हो जायेंगे।
- साधन कीमत के प्रभाव को जान जायेंगे।

16.3 अनुकूलतम् साधन संयोग

एक उद्यमकर्त्ता को उत्पादन कार्य के लिए एक महत्वपूर्ण निर्णय करना होता हैS कि वह साधनों के किन संयोगों को चुनें, जिससे अधिकतम् लाभ या उत्पादन की प्राप्ति हो। अधिकतम् लाभ प्राप्त करने के लिए उत्पादक वस्तु की एक दी हुई विशेष मात्रा को न्यूनतम लागत पर उत्पादित करने का प्रयत्न करता है अर्थात् कुल व्यय की एक दी हुई राशि से वह वस्तु का अधिकतम् उत्पादन प्राप्त करने का प्रयास करेगा। वस्तु की एक निश्चित मात्रा का उत्पादन करने के लिए साधनों के विशेष संयोग का

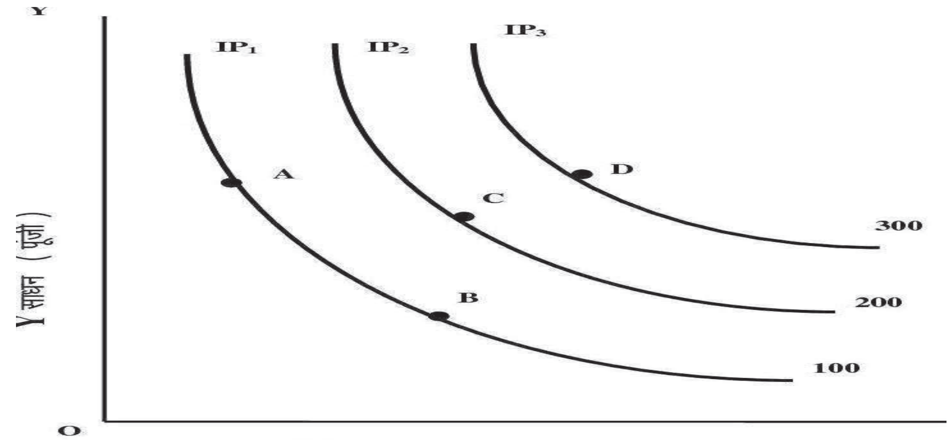

चित्र (16.1) समोत्पादन मानचित्र

चुनाव दो बातों पर निर्भर करता है - एक वस्तु के उत्पादन के लिए उपलब्ध तकनीकी सम्भावनाएँ अर्थात् समोत्पादन वक्रों का मानचित्र दूसरे किसी वस्तु विशेष में प्रयोग होने वाले विभिन्न साधनों की कीमत अर्थात् सम लागत रेखा या साधन लागत रेखा पर।

समोत्पादन मानचित्र:- जब उत्पादन के विभिन्न स्तरों के दर्शाने वाले विभिन्न समोत्पादन वक्रों को एक ही चित्र में दर्शाया जाता है तो उस चित्र को समोत्पादन मानचित्र कहते है। चित्र (16.1) में 3 समोत्पादन वक्रों को लेकर एक मानचित्र तैयार किया गया है।

समोत्पादन मानचित्र के सम्बन्ध में तीन बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है -

1. किसी एक समोत्पादन वक्र पर स्थित सभी बिन्दु समान उत्पादन प्रदान करते हैं। जैसे IP_1 पर A और B संयोग समान उत्पादन के प्रतीक है।

2. यदि दो बिन्दु दो अलग -अलग वक्रों पर स्थित हो तो उनसे मिल ने वाली उत्पादन मात्रा समान न होकर अलग -अलग होगी।

3. जो समोत्पादन वक्र मूल बिन्दु O से जितना दूर होता जाता है अर्थात् जैसे-जैसे समोत्पादन वक्र दायीं आौर खिसकता जाता है। उससे मिल ने वाली उत्पादन मात्रा बढ़ती जाती ह जैसे C बिन्दु A तथा B से अधिक, D बिन्दु C से अधिक उत्पादन को प्रदर्शित करता है।

समलागत रेखा -कोई उत्पादक साधनों का कौन-सा संयोग चुनेगा यह उत्पादक के पास साधनों पर व्यय करने के लिए पूँजी की मात्रा तथा साधनों की कीमत पर निर्भर होता है। एक सम-लागत रेखा साधनों के विभिन्न संयोगों को बताती है। जोकि एक फर्म या उत्पादक दिये हुए लागत व्यय द्वारा खरीद सकता है। ’सम-लागत रेखा’ को कई अन्य नामों से जाना जाता है। जैसे – ‘साधन कीमती रेखा’, ‘साधन लागत रेखा’, ‘व्यय रेखा’ फर्म की बजट नियंत्रण रेखा । माना एक उत्पादक के पास 500 रूपये है और साधन X (श्रम) की 100 रू0 प्रति इकाई तथा साधन-Y (पूँजी) की कीमत 50 रू0 प्रति इकाई है। ऐसी स्थिति में उत्पादक X साधन की 5 या Y साधन की 10 इकाईयां खरीद सकता है। जैसा तालिका (16.1) में दर्शाया गया है।

तालिका (16.1) समलागत तालिका

संयोग	X . साधन (श्रम)	Y.साधन (पूँजी)	कुल व्यय
A	**0**	**10**	**(0 x 100) + (10 x 50) = 500**
B	**1**	**8**	**(1 x 100) + (8 x 50) = 500**
C	**2**	**6**	**(2 x 100) + (6 x 50) = 500**
D	**3**	**4**	**(3 x 100) + (4 x 50) = 500**
E	**4**	**2**	**(4 x 100) + (2 x 50) = 500**
F	**5**	**0**	**(5 x 100) + (0 x 50) = 500**

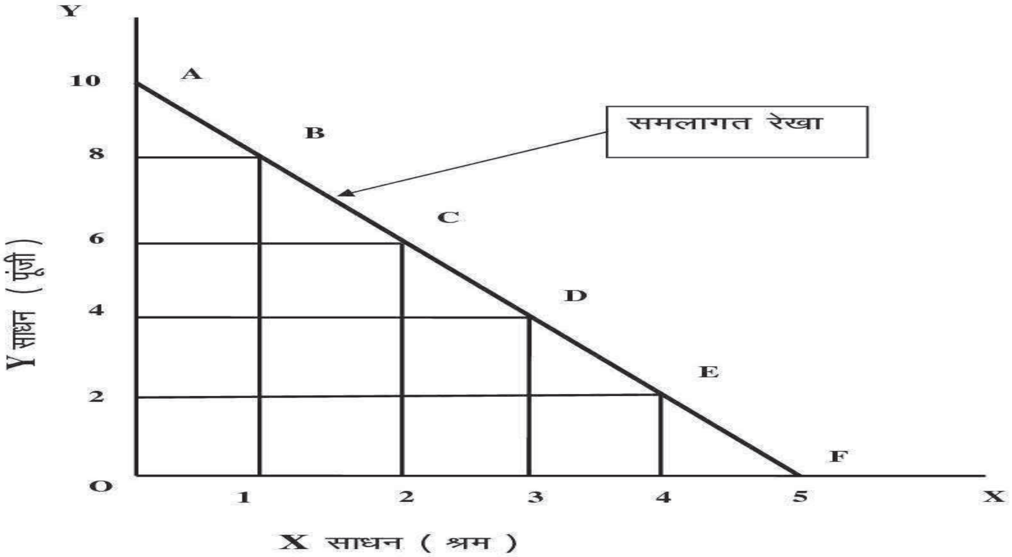

चित्र (16.2) समलागत रेखा

जब तालिका के संयोगों को रेखा चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जाता है तो जिस रेखा का निर्माण होता है उसे 'सम-लागत रेखा' कहते है। जैसा चित्र 16.2 में दर्शाया गया है।

$$\text{सम लागत रेखा का ढाल} = \frac{\text{X साधन की कीमत}}{\text{Y साधन की कीमत}}$$

उत्पादक सन्तुलन की मान्यताएँ:-

1. दो साधन, श्रम और पूंजी है।
2. पूँजी एवं श्रम की सब इकाइयाँ समरूप है।
3. दोनों साधनों की कीमते स्थिर है।
4. उत्पादक का लागत व्यय भी दिया हुआ है।
5. फर्म का उद्देश्य लाभ अधिकतम् करना है।
6. वस्तु की कीमत दी हुई है, और स्थिर है।
7. साधन बाजार में पूर्व प्रतियोगिता।

उत्पादक का संतुलन या साधनों का अनुकूलतम् संयोग प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य अधिकतम् लाभ प्राप्त करना होता है। जिसे समोत्पादक मानचित्र तथा सम लागत रेखा द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। एक उत्पादक के संतुलन को तीन मुख्य शर्ते होती है।

1. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र सम-लागत रेखा को स्पर्श करता है।

2. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र का ढ़ाल सम-लागत रेखा के ढाल के बराबर होता है।

3. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र उन्नतोदर आकार का होना चाहिए।

अपने लाभ को अधिकतम् करने के लिए उत्पादक को अनुकूलतम् साधन संयोग हेतु दो स्थिति का सामना करना पड़ सकता है। पहला, एक दिए हुए उत्पादन के लिए लागत को न्यूनतम करना और दूसरा, एक दी हुई लागत के लिए उत्पादन को अधिकतम् करना।

1.लागत को न्यूनतम करना जबकि उत्पादन की मात्रा दी हुई है -उत्पादक को 200 इकाइयाँ का उत्पादन करना है। जिसे चित्र (16.3) के IP अर्थात् समोत्पादन वक्र द्वारा दर्शाया गया है तथा तीन सम-लागत रेखा है जो विभिन्न लागत स्तर को प्रदर्शित करती है। चित्र (16.3) में E बिन्दु पर पूँजी

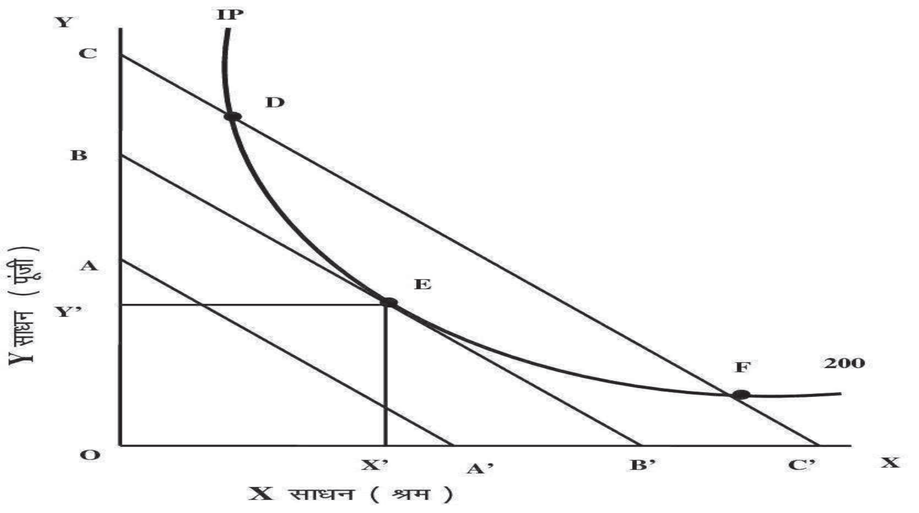

चित्र (16.3) लागत को न्यूनतम करना जबकि उत्पादन की मात्रा दी हुई है

की OY' तथा श्रम की OX' मात्रा का प्रयोग करके 200 इकाइयों का उत्पादन कर सकती है; क्योंकि E बिन्दु पर समोत्पादन वक्र सम लागत रेखा को स्पर्श करता है। जबकि D तथा F बिन्दु पर 200 इकाइयों के उत्पादन हेतु अधिक लगात लगानी होगी। इसी प्रकार A A' लागत रेखा द्वारा 200 इकाईयों का उत्पादन नहीं किया जा सकता है। इसलिए E बिन्दु ही उत्पादक का न्यूनतम लागत वाला संतुलन बिन्दु है। जो फर्म के लिए अनुकुल तम साधन संयोग भी है।

उत्पादक के सन्तुलन के लिए E बिन्दु वह है जहाँ समोत्पादन वक्र सम-लागत रेखा को स्पर्श करता है। यह एक महत्वपूर्ण शर्त है। परन्तु पर्याप्त शर्त नहीं। उत्पादक के सन्तुलन की दो और शर्ते है। जिसके अनुसार संतुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र का ढाल सम-लागत रेखा के ढाल के बराबर हो। सम लागत रेखा का ढाल साधन कीमत अनुपात (Px/PY) पर निर्भर करती है। जबकि समोत्पादन वक्र का ढाल तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ($MRTS_{xy}$) पर। अर्थात् संतुलन बिन्दु पर -

सम लागत रेखा का ढाल = तकनीकी प्रतिस्थापना की सीमान्त दर

$$\text{सम लागत रेखा का ढाल} = \frac{\text{X साधन (श्रम) की कीमत}}{\text{Y साधन (पूँजी) की कीमत}}$$

$$\text{X के लिए Y की तकनीकी प्रतिस्थापना की सीमान्त दर} = \frac{\text{Y साधन की मात्रा में परिवर्तन (कमी)}}{\text{X साधन की मात्रा में परिवर्तन (वृद्धि)}}$$

चित्र (16.3) में E बिन्दु ही ऐसा है जहाँ समोत्पादन वक्र का ढाल सम-लागत रेखा के ढाल के बराबर है।

उत्पादक के सन्तुलन की सबसे महत्वपूर्ण शर्त है कि सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र का ढाल उन्नतोदर होना चाहिए, अर्थात् सन्तुलन बिन्दु पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई होनी चाहिए।

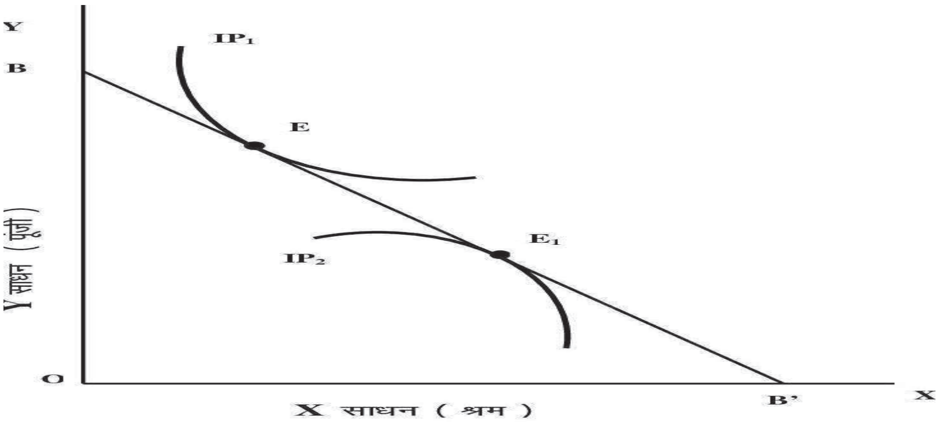

चित्र (16.4) उन्नतोदर तथा अवतल आकार समोत्पादन वक्र

जैसे चित्र (16.4) में दर्शाया गया है कि BB समलागत रेखा है; जिस पर दो सन्तुलन बिन्दु IP_1, IP_2 पर E तथा E_1 स्थित है। जिसमें से IP1 उन्नतोदर आकार का है तथा IP_2 अवतल आकार का है। जैसा कि हम जानते है कि मूल बिन्दु के दांयी ओर का समोत्पादन वक्र बायें ओर के समोत्पादन वक्र की तुलना में उत्पादन के ऊँचे स्तर को प्रदर्शित करता है। अतः स्पष्ट है कि IP_1 पर स्थित E बिन्दु ही उत्पादक का अनुकूलतम संयोग बिन्दु है। अर्थात् न्यूनतम लागत सन्तुलन का बिन्दु है।

2. उत्पादन को अधिकतम करना जबकि लागत व्यय दिया हुआ हो - उत्पादक के सन्तुलन को ज्ञात करने के लिए सम लागत रेखा तथा समोत्पादन मानचित्र का प्रयोग करेंगे चित्र (16.5) में IP_1, IP_2 तथा IP_3 तीन समोत्पादन वक्र है जो क्रमश 100, 200 तथा 300 इकाईयों के उत्पादन को प्रदर्शित करते है तथा A A' सम लागत रेखा है। चित्र (16.5) में E बिन्दु उत्पादक का सन्तुलन बिन्दु अर्थात् अधिकतम उत्पादन का बिन्दु है क्योंकि E बिन्दु पर समोत्पादन वक्र सम लागत रेखा

को स्पर्श करता है। सम लागत रेखा तथा IP_1 पर स्थित C व D बिन्दु उत्पादक का सन्तुलन बिन्दु नही है क्योंकि वह कम उत्पादन के प्रदर्शित करते है।

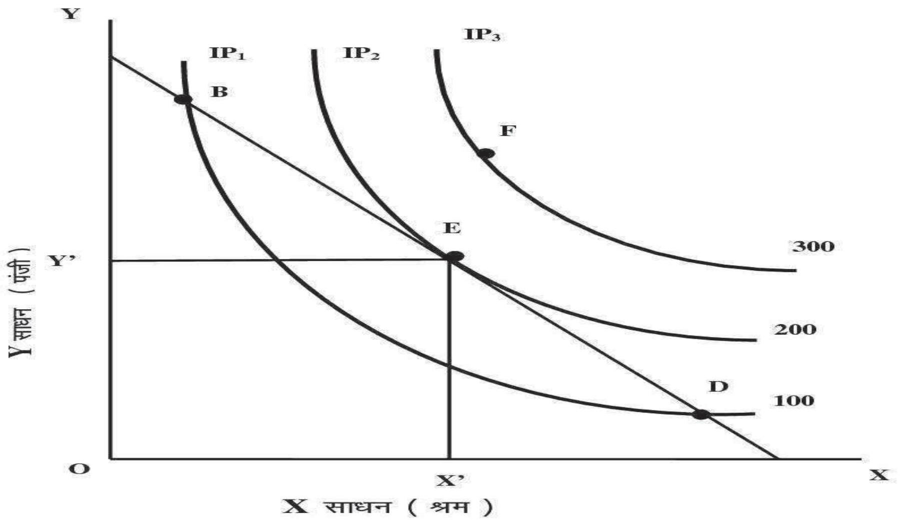

चित्र (16.5) उत्पादन को अधिकतम करना जबकि

जबकि AA' समलागत रेखा तथा IP_2 पर स्थित E बिन्दु अधिक उत्पादन को दर्शाता है। और F बिन्दु उत्पादक की निवेश सीमा के बाहर है। अतः E बिन्दु ही उत्पादक का सन्तुलन बिन्दु है क्योंकि इस बिन्दु पर समोत्पादन वक्र का ढाल है। कीमत रेखा के ढाल के बराबर है और समोत्पादन वक्र उन्नतोदर आकार है अर्थात E बिन्दु पर समोत्पादन वक्र की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई है।

विस्तार पथ:-दीर्घकाल में उत्पादक अपने उत्पादन का पैमाना बढ़ाता है और निवेश में वृद्धि करता है। इसके लिए उत्पादक लागतों को न्यूनतम तथा लाभों को अधिकतम करने के लिए अनुकुल तम विस्तार पथ का चुनाव करता है। विस्तार-पथ उत्पादक के सन्तुलन के विभिन्न बिन्दुओं का बिन्दुपथ है।

विस्तार पथ की मान्यताएँ:-

1. उत्पादन के दो साधन है श्रम और पूँजी।

2. दोनों साधन परिवर्तनशील है।

3. श्रम व पूँजी की सभी इकाइयाँ समरूप है।

4. दोनों साधनों की कीमत स्थिर है।

5. उत्पादक कुल व्यय को बढ़ा घटा सकता है।

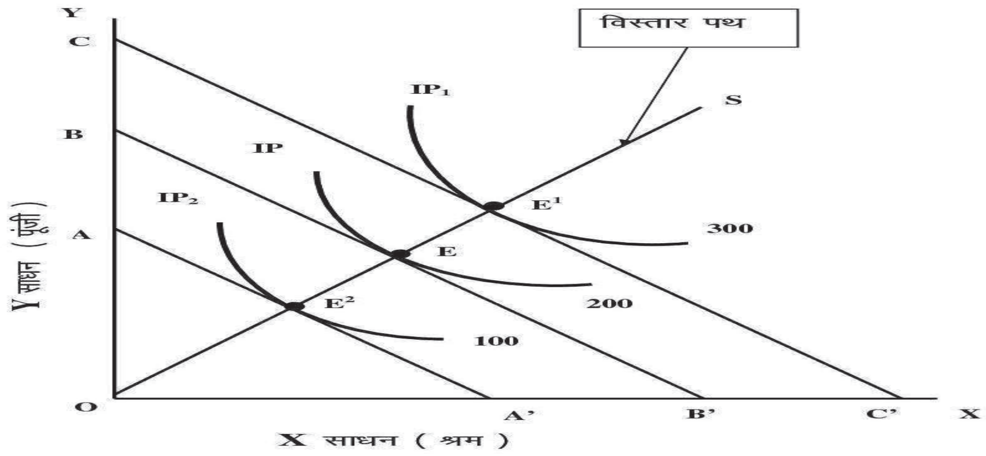

चित्र (16.6) में तीन सम लागत रेखा AA', BB', तथा CC' है। जो कुल व्यय के विभिन्न स्तरों को दर्शाते है तथा IP_1, IP_2 तथा IP_3 समोत्पादन वक्र क्रमशः 100, 200 तथा 300 इकाईयों के उत्पादन को प्रदर्शित करते है। जो E, E_1 तथा E_2 संतुलन बिन्दु का निर्धारण करते है। E, E_1 तथा E_2 बिन्दुओं को एक-दूसरे से मिलाने से जिस रेखा का निर्माण होता है उसे **'विस्तार पथ'** या **'पैमाना रेखा'** कहते है। इसे विस्तार पथ इसलिए कहते है क्योंकि उत्पाद अपने उत्पादन का विस्तार इसी के आधार पर करता है। विस्तार पथ का ढाल साधनों की सापेक्ष कीमतों तथा सम उत्पादन वक्रों की आकृति पर निर्भर करता है।

कीमत प्रभाव - साधन कीमत में परिवर्तन का प्रभाव - उत्पादक का निवेश स्थिर रहते हुए, जब किसी साधन की कीमत में परिवर्तन होता है, तो उसके फलस्वरूप उत्पादक के सन्तुलन पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे 'कीमत-प्रभाव' कहते है। कीमत-प्रभाव निम्न मान्यताओं पर आधारित है।

1. उत्पादन के दो साधन, श्रम और पॅूजी है।
2. श्रम और पॅूजी की सभी इकाइयां समरूप है।
3. पॅूजी की कीमत स्थिर रहती है।
4. श्रम की कीमत में परिवर्तन होता है।
5. उत्पादक का निवेश अर्थात् कुल व्यय स्थिर रहता है।
6. साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है।
7. उत्पादक केवल एक वस्तु का उत्पादन करता है।

साधन कीमत प्रभाव को चित्र (16.7) में दर्शाया गया है। AA' सम लागत रेखा है जिस पर IP समोत्पादन वक्र पर E बिन्दु सन्तुलन को दर्शाता है। Y साधन पॅूजी की कीमत स्थिर रहते हुए X

साधन श्रम की कीमत में कमी होती है। तो सम लागत रेखा AC हो जाती है और उत्पादक IP_1 के E_1 बिन्दु पर नये सन्तुलन पर उत्पादन करता है। इसी प्रकार यदि X साधन श्रम की कीमत में वृद्धि होती है तो समलागत रेखा बाय ओर खिसक कर ABहो जाती है, तथा IP_2 के E_2 बिन्दु पर उत्पादक का सन्तुलन निर्धारित होता है। इस प्रकार कीमत परिवर्तन के कारण उत्पादक कभी E, E_1 तथा E_2 बिन्दु पर सन्तुलन में रहते हुए उत्पादन करता है। जब E, E_1 तथा E_2 बिन्दु को मिल ने से जो रेखा बनती है, उसे कीमत साधन वक्र कहते है। कीमत साधन वक्र का ढाल X साधन या Y साधन की कीमत में होने वाले परिवर्तन पर निर्भर करता है।

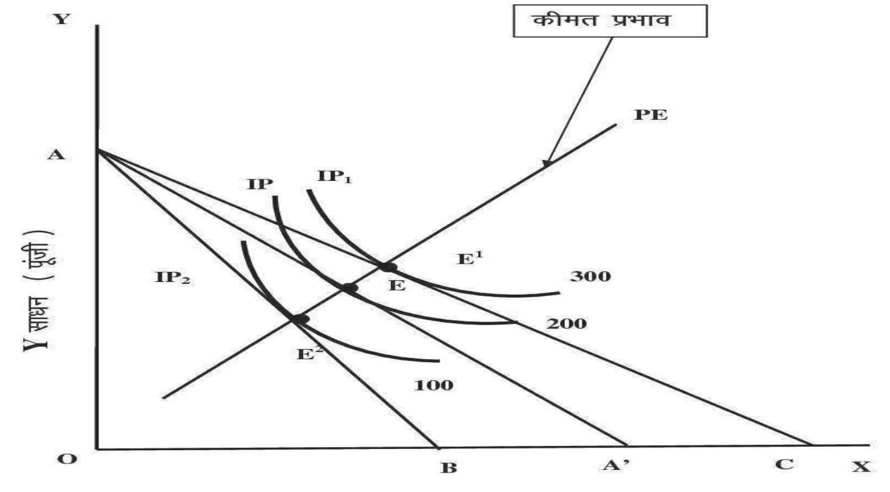

चित्र (16.7) कीमत प्रभाव

16.4 सारांश

एक उद्यमकर्त्ता को वस्तु की एक निश्चित मात्रा का उत्पादन करने के लिए साधनों के विशेष संयोग का चुनाव दो बातों पर निर्भर करता है - एक वस्तु के उत्पादन के लिए उपलब्ध तकनीकी सम्भावनाएँ अर्थात् समोत्पादन वक्रों का मानचित्र, दूसरे किसी वस्तु विशेष में प्रयोग होने वाले विभिन्न साधनों की कीमत अर्थात् सम लागत रेखा या साधन लागत रेखा पर। जब उत्पादन के विभिन्न स्तरों के दर्शाने वाले विभिन्न समोत्पादन वक्रों को एक ही चित्र में दर्शाया जाता है तो उस चित्र को समोत्पादन मानचित्र कहते है।एक सम-लागत रेखा साधनों के विभिन्न संयोगों को बताती है। जोकि एक फर्म या उत्पादक दिये हुए लागत व्यय द्वारा खरीद सकता है।एक उत्पादक के संतुलन को तीन मुख्य शर्ते होती है। सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र सम-लागत रेखा को स्पर्श करता है।सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र का ढ़ाल सम-लागत रेखा के ढाल के बराबर होता है।सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र उन्नतोदर आकार का होना चाहिए। अपने लाभ को अधिकतम् करने के लिए उत्पादक को अनुकूलतम् साधन संयोग हेतु दो स्थिति का सामना करना पड़ सकता है। पहला, एक दिए हुए उत्पादन के लिए लागत को न्यूनतम करना और दूसरा, एक दी हुई लागत के लिए

उत्पादन को अधिकतम् करना। दीर्घकाल में उत्पादक अपने उत्पादन का पैमाना बढ़ाता है और निवेश में वृद्धि करता है। इसके लिए उत्पादक लागतों को न्यूनतम तथा लाभों को अधिकतम करने के लिए अनुकुल तम विस्तार पथ का चुनाव करता है। विस्तार-पथ उत्पादक के सन्तुलन के विभिन्न बिन्दुओं का बिन्दुपथ है। उत्पादक का निवेश स्थिर रहते हुए, जब किसी साधन की कीमत में परिवर्तन होता है, तो उसके फलस्वरूप उत्पादक के सन्तुलन पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे 'कीमत-प्रभाव' कहते है।

16.5 शब्दावली:-

- साधन की अविभाज्यता - ऐसे साधन जिन्हें छोटी - छोटी इकाईयों (हिस्सों) में बाँटा नहीं जा सकता।
- सीमान्त उत्पाद (MP) - साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन होने वाली वृद्धि।
- औसत उत्पाद (AP) - कुल उत्पादन में परिवर्तनशील साधन की कुछ इकाईयों से भाग देने से प्राप्त होता है।
- प्रतिस्थापन -स्थानापन्नता अर्थात एक साधन के स्थान पर दूसरे के प्रतिस्थापित या प्रयोग करना।
- अविभाज्यता -ऐसा साधन जिसे छोटे-छोटे भाग में न बांटा जान सके।

16.6 अभ्यास प्रश्न:-

रिक्त स्थान भरों:-

1. जब एक चित्र में एक से अधिक समोत्पादन वक्रों को प्रदर्शित किया जाता है, तो उसे............. कहते है।
2. बायीं ओर की तुलना में दायीं ओर का समोत्पादन वक्र................... को प्रदर्शित करता है ।
3. किसी एक समोत्पादन वक्र पर स्थित सभी बिन्दु .... उत्पादन प्रदान करते हैं।
4. दो बिन्दु दो अलग-अलग वक्रों पर स्थित हो तो उनसे मिल ने वाली उत्पादन मात्रा .... होगी।
5. समोत्पादन वक्र मूल बिन्दु O से जितना दूर होता, उससे मिल ने वाली उत्पादन मात्रा .... जाती है ।
6. 'सम-लागत रेखा' को .... नामों से जाना जाता है।
7. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र .... को स्पर्श करता है।

8. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र का ढ़ाल सम-लागत रेखा के ढाल के .... होता है।
9. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र.................. आकार का होना चाहिए।
10. साधन की कीमत में परिवर्तन होता है, तो उसके फलस्वरूप उत्पादक के सन्तुलन पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे .... कहते है।

उत्तर - (1) समोत्पादन मानचित्र (2) अधिक उत्पादन (3) समान उत्पादन (4) अलग -अलग (5) बढ़ती (6) 'साधन कीमती रेखा', 'साधन लागत रेखा', 'व्यय रेखा'(7) सम-लागत रेखा (8) बराबर (9) उन्नतोदर (10) कीमत-प्रभाव।

16.7 सन्दर्भ ग्रन्थ:-

1. आहूजा, एच0 ए0, (2003),उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त: व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण ; एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
2. झिंगन, एम0 एल0 (2007), व्याष्टि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, दिल्ली।
3. जैन, के0 पी0 (2005) माइक्रो अर्थशास्त्र, नवयुग साहित्य सदन, आग रा।
4. सिंह, एस0 पी0 (2001) माइक्रो अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
5. सेठ, एम0 एल0 (2000-01) उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।

16.8 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Koutsoyinuis.A. (1979), *Modern Microeconomics*, (2nd Edition), Macmillian Press, London.
- Ahuja,H.L. ((2010),*Principles of Micro Economics* , S&Chand Publishing House
- Peterson, L. and Jain (2006), *Managerial Economics*, 4th edition, Pearson Education.
- Colander, D, C (2008), *Economics*, McGraw Hill Education.

16.9 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. समोत्पादन वक्र से उत्पादक के अनुकूलतम साधन संयोग को समझ जायेंगे।
2. उत्पादक के विस्तार पथ की व्याख्या करों।
3. साधन कीमत के प्रभाव को समझ जायेंगे।

इकाई-17 बाजार संरचना एवं फर्म का संतुलन विश्लेषण

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 बाजार का अर्थ एवं वर्गीकरण
17.3.1 क्षेत्र के आधार पर
17.3.2 कार्य के आधार पर
17.3.3 समय के आधार पर
17.3.4 प्रतियोगिता के आधार पर
17.3.5 बाजार के विस्तार को प्रभावित करने वाले तत्व
17.4 फर्म का सन्तुलन विश्लेषण
17.4.1 फर्म का सन्तुलन कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा
17.4.2 फर्म का सन्तुलन सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्रों द्वारा
17.5 सारांश
17.6 शब्दावली
17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
17.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र के बाजार संरचना एवं कीमत निर्धारण से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि उत्पादन फलन क्या है ? उपभोक्ता सन्तुलन कैसे होता है।

बाजार संरचना एवं फर्म की धारणाओं के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है कि बाजार संरचना क्या है इसके कितने प्रकार है। फर्म की धारणएं किस प्रकार से बाजार को प्रभावित करती है।इसके अतिरिक्त प्रस्तुत इकाई में फर्म के सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बाजार संरचना एवं फर्म की धारणाओं के महत्व को समझा सकेगें, तथा कीमत एवं उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में फर्म के विभिन्न दृष्टिकोण का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेगें।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- बता सकेंगे कि बाजार कितने प्रकार का होता है।
- समझा सकेंगे कि विभिन्न प्रतियोगिता बाजार में की मत निर्धारण कैसे होता है।
- फर्म की आगम और लागत धारणा में सन्तुलन की क्या शर्ते है।
- फर्म का संतुलन विश्लेषण को समझ सकेंगे।

17.3 बाजार का अर्थ एवं वर्गीकरण

बाजार शब्द का प्रयोग उस स्थान अथवा भवन से लिया जाता है जहाँ वस्तु, क्रेता तथा विक्रेता भौतिक रूप से उपस्थित होते है तथा क्रय-विक्रय करते है। आर्थिक दृष्टि से यह बाजार की एक आवश्यक एवं सम्पूर्ण विशषता नहीं है। वस्तुओं का क्रय-विक्रय अभिकर्त्ता द्वारा नमूना दिखाकर खरीदने का आदेश प्राप्त किया जाता है। वस्तु की खरीद टेलीफोन, पत्र, ई-मेल आदि द्वारा भी की जा सकती है। वस्तु का संचय एवं सुपुर्दगी एक स्थान पर हो सकती है पर उसका सौदा दूसरे स्थान पर हुआ हो। क्रेता तथा विक्रेता एक बडे क्षेत्र, प्रदेश या देश एवं सम्पूर्ण संसार में हो सकते है अतः अर्थशास्त्र में बाजार के लिए एक स्थान विशेष से होना आवश्यक नहीं है। आर्थिक दृष्टि से बाजार का अर्थ उस समस्त क्षेत्र से लेते है जिसमें क्रेता तथा विक्रेता फैले हों और उनमें प्रतिस्पर्द्धात्मक सम्पर्क हो । कूरनों के अनुसार "अर्थशास्त्री बाजार शब्द का अर्थ किसी स्थान विशेष से नहीं लेते

जहाँ पर कि वस्तुएँ खरीदी तथा बेची जाती है, बल्कि इसका अर्थ उस समस्त क्षेत्र से लेते है, जिसमें क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच इस प्रकार का स्वतन्त्र सम्पर्क होता है कि एक कस्तु की कीमत की प्रवृत्ति सुगमता से तथा शीघ्रता से समान होने की पायी जाती है।" स्टोनियर तथा हेX के अनुसार, "अर्थशास्त्री बाजार का अर्थ एक ऐसे संगठन से लेते है जिससे कि किसी वस्तु के क्रेता या विक्रेता एक दूसरे के निकट सम्पर्क में रहते है।"

के0 आर0 क्रॉस के अनुसार, "बाजार का अर्थ क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच किसी साधन या वस्तु के लेन देन का जालसूत्र है।"

प्रो0 जे0 के0 मेहता के अनुसार "बाजार एक स्थिति को बताता है जिसमें कि एक वस्तु की माँग ऐसे स्थान पर होती है जहाँ उसे विक्रय के लिए प्रस्तुत किया जाए।"

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर एक बाजार की निम्न विशेषताएं स्पष्ट होती है-

1. कोई एक भी वस्तु जिसका सौदा किया जाता है।

2.क्रेताओं तथा विक्रेताओं में निकट का सम्पर्क रहना चाहिए जो अनेक स्पर्द्धात्मक दशाओं को उत्पन्न करता है।

बाजार का वर्गीकरण : बाजार के वर्गीकरण के प्रमुख आधार निम्न है।

17.3.1 क्षेत्र के आधार पर

(1) स्थानीय बाजार:- जब किसी वस्तु की माँग स्थानीय होती है, तो उस वस्तु के बाजार को स्थानीय बाजार कहते है। जिसके क्रेता तथा विक्रेता एक छोटे से स्थान विशेष तक ही सीमित होते है। ये शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं साग-सब्जी, मछली ,दूध इत्यादि के बाजार और मूल्य की अपेक्षा भारी वस्तुओं ईटों इत्यादि के बाजार को स्थानीय बाजार कहते है।

(2) प्रादेशिक बाजार- जब किसी वस्तु की माँग एक प्रदेश या बड़े क्षेत्र तक होती है तो उस वस्तु के बाजार को प्रादेशिक बाजार कहते है। जैसे हिमाचल की टोपियों का बाजार, लाख चूड़ियों का बाजार प्रादेशिक बाजार है। क्योकि टोपियों की माँग हिमाचल प्रदेश तक और चूड़ियों की माँग राजस्थान प्रदेश तक ही सीमित है।

(3) राष्ट्रीय बाजार - जब किसी वस्तु की माँग पूरे देश में हो अर्थात उस वस्तु के क्रेता तथा विक्रेता पूरे देश में फैले हो तो उस वस्तु के बाजार को राष्ट्रीय बाजार कहते है, जैसे साड़ी,धोती एवं चूड़ियों का बाजार।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार - जब किसी वस्तु की माँग विश्वव्यापी हो अर्थात इनके क्रेता, विक्रेता पूरे संसार में फैले हो तो उस वस्तु के बाजार को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार कहते है, जैसे सोना, चाँदी का बाजार।

17.3.2 कार्य के आधार पर

1. सामान्य बाजार:- जब एक ही बाजार में विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ खरीदी एवं बेची जाती है तो उसे सामान्य बाजार कहते है जैसे शहरों में एक ही बाजार या स्टोर पर उपभोक्ता विभिन्न प्रकार की वस्तुऐं खरीद सकता है।

2. विशिष्ट बाजार:- जब केवल एक ही वस्तु का बाजार एक स्थान पर केन्द्रित होता है, तो उसे विशिष्ट बाजार कहते है जैसे कपड़े का बाजार बर्तनों का बाजार, किताबों का बाजार आदि।

बाजार का वर्गीकरण

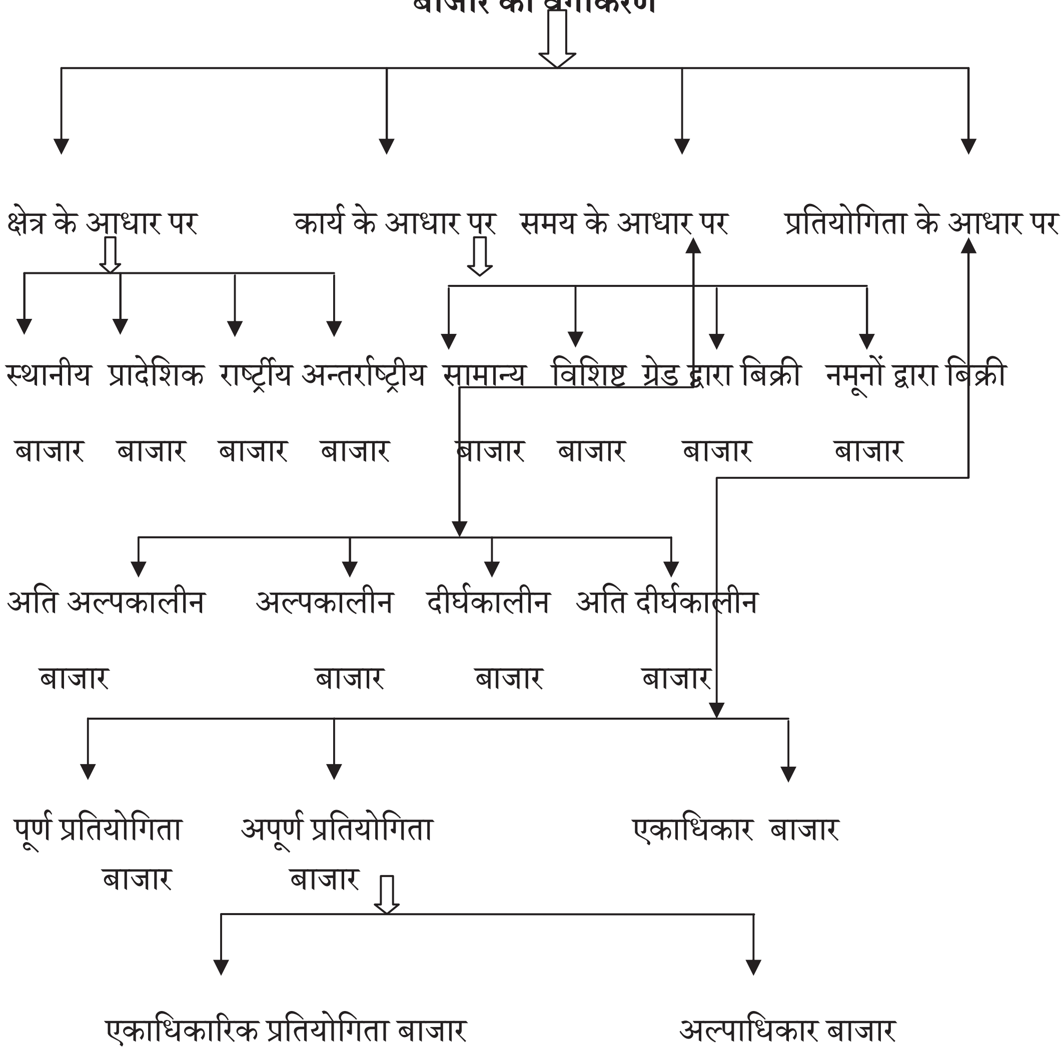

3. ग्रेड द्वारा ब्रिक्री बाजार:- कुछ वस्तुओं को ग्रेड या विभिन्न वर्गो में विभक्त कर क्रय करते है उसे ग्रेड द्वारा बिक्री बाजार कहते है जैसे विभिन्न देशों में गेहुँ एवं इस्पात का क्रय विक्रय ग्रेड के आधार पर करते है।

4. नमूनों द्वारा बिक्री बाजार:- जिन वस्तुओं का क्रय-विक्रय नमूनों के आधार पर होता है जैसे - ऊनी कपड़े एवं इमारती पत्थर ।

17.3.3 समय के आधार पर

1. अतिअल्पकालीन बाजार:- वह बाजार जिसमें वस्तु की पूर्ति उसके स्टाँक तक ही समिति होती है उसे घटाया बढ़ाया नहीं जा सकता। मूल्य निर्धारण में माँग का ही मुख्य प्रभाव पड़ता है उसे अति अल्पकालीन बाजार कहते है जैसे सब्जी, मछली, दूध आदि।

2. अल्पकालीन बाजार:- अल्पकालीन बाजार वह होता है जहाँ पूर्ति को वस्तु की उत्पादन क्षमता तक बढाया जा सकता है, इस कारण यहाँ भी मूल्य निर्धारण में माँग का ही मुख्य प्रभाव पड़ता है।

3. दीर्घकालीन बाजार:- वह बाजार होता है जिसमें बाजार में इतना समय रहता है कि उत्पादन क्षमता में माँग के साथ पूरा पूरा समायोजन किया जाता है, अर्थात नये यन्त्रों तथा प्लाटों में वृद्धि या वर्तमान यन्त्रों तथा प्लाटों में कमी की जा सकती है। मूल्य निर्धारण में पूर्ती का महत्वपूर्ण प्रभाव रहता है।

4. अति दीर्घकालीन बाजार:- वह बाजार होता है जिसमें जनसंख्या में वृद्धि, उपभोक्ताओं की रूचियों और फैशन में परिर्वतन होने से माँग में परिर्वतन हो सकता है, साथ ही नई खोज,उत्पादन की तकनीक तथा प्रविधि में परिवर्तन के फलस्वरूप लागत में बहुत कमी हो जो पूर्ति में परिर्वतन ला दे। इतना विस्तृत समय होता है जो किसी वस्तु की उत्पत्ति के साधनों को उत्पन्न करने वाले साधनों में भी परिर्वतन किया जा सकता है और माँग एवं पूर्ति में समायोजन प्रक्रिया चल ती रहती है।

17.3.4 प्रतियोगिता के आधार पर

बाजार का रूप वस्तु स्वभाव, क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या और उनके बीच निर्भरता पर निर्भर करती है, जिसे संक्षेप में प्रतियोगीता कहते है। जिसके निम्न रूप है-

1. पूर्ण प्रतियोगिता:- पूर्ण प्रतियोगिता बाजार वह है जहाँ स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले छोटे क्रेताओं तथा विक्रेताओं की अधिक संख्या होती है जो समरूप वस्तु का उत्पादन करते हो। वहाँ वस्तु का ही नहीं विक्रेताओ का भी प्रमापीकरण होता हों। सभी को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है। कोई गैर कीमत प्रतियोगिता नहीं होता। उत्पादन के साणन पूर्ण गति शील होते है फलस्वरूप एक कीमत (माँग की मुल्य लोच अनेक) पाई जाती है, और एक व्यक्तिगत विक्रेता या उत्पादक या फर्म के लिए उसकी वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार होती है।

श्रीमती जाँन राबिन्स के अनुसार ‘‘पूर्ण प्रतियोगिता तब प्रचलित होती है जबकि प्रत्येक उत्पादक के लिए माँग पूर्णतया लोचदार होती है। इसका अर्थ है- प्रथम, विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है

जिससे किसी एक विक्रेता का उत्पादन वस्तु के कुल उत्पादन का बहुत थोड़ा अंश होता है तथा द्वितीय,सभी क्रेता , प्रतियोगी विक्रेताओ के बीच चुनाव करने की दृष्टि से समान होते है जिससे बाजार पूर्ण हो जाता है।"

2. एकाधिकार:- एकाधिकार वह है जिसका वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण हो, प्रतियोगिता शून्य होती है। एक फर्म उद्योग पाया जाता है, वस्तु के कोई निकट या अच्छे स्थानापन्न नहीं होते या वस्तु की माँग की आड़ी लोच शून्य होती है। साथ ही नए उत्पादको के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रूकावट होती है।

प्रतियोगिता बाजार का वर्गीकरण

विशेषताएँ	पूर्ण प्रतियोगिता	एकाधिकार	अपूर्ण प्रतियोगीता (अ) एकाधिकार	अल्पाधिकार
1.फर्मो की संख्या	बहुत अधिक	एक	अधिक संख्या	कुछ अधिक परन्तु दो से कम नहीं
2. वस्तु का स्भाव	प्रमापित या समरूप	निकट के स्थानापन्न	विभेदीकृत	प्रमापित या विभेदित
3. फर्म के लिए माँग की कीमत लोच	अनन्त	बहुत कम	अधिक	कम
4. जानकारी की पूर्ण प्राप्यता	हाँ	नहीं	न्हीं	नहीं
5. कीमत पर नियन्त्रण की मात्रा	कुछ नहीं	पर्याप्त या पूर्ण	कुछ	कुछ
6. गैर कीमत प्रतियोगिता	कोई नहीं	मात्रा जनता से अच्छे सम्बन्ध दिखाने के लिए	विज्ञापन,टेडमार्क ब्राण्ड पर जोर	भेदित अल्पाधिकार में पर्याप्त
7. फर्मो के प्रवेश एवं निकासी की सुगमता	बाधारहित बिल्कुल सुगम	पूर्णतया बन्द	आसान	कठिन कुछ बाधाएँ

3. अपूर्ण प्रतियोगिता:- अपूर्ण प्रतियोगिता का आशय पूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार की किसी भी दशा का अभाव होना है। इस प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अनेक उपश्रेणियाँ होती है प्रथम महत्वपूर्ण उपश्रेणी एकाधिकारिक प्रतियोगिता है जिस पर प्रो0 ई0 एच0 चैम्बरलिन ने अधिक बल दिया है। एकाधिकार प्रतियोगिता वह जिसमें बड़ी संख्या में फर्मे विभेदीकृत पदार्थो का उत्पादन

करती है जो एक दूसरे के निकट के स्थानापन्न होते है। इनके परिणामस्वरूप एक फर्म का माँग वक्र अधिक लोचदार होता है। जो यह संकेत करता है कि इसमें फर्म कीमत पर कुछ नियन्त्रण रखती है। अपूर्ण प्रतियोगिता की दूसरी श्रेणी जिसे श्रीमती जोन राबिन्सन ने अल्पाधिकार कहा है इसकी प्रथम उपश्रेणी पदार्थ विभेदीकरण बिना अल्पाधिकार है जिसे शुद्ध अल्पाधिकार कहते है इसमें समरूप पदार्थ का उत्पादन करने वाली कुछ फर्मो के बीच प्रतियोगिता होती है। फर्मो की कमी सुनिश्चित करती है कि उनमें से प्रत्येक का पदार्थ कीमत पर कुछ नियन्त्रण होगा तथा प्रत्येक फर्म का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है जो यह इंगित करता है कि प्रत्येक फर्म कीमत पर कुछ नियन्त्रण रखती है। इसकी दूसरी उपश्रेणी पदार्थ विभेदीकरण सहित अल्पाधिकार है जो विभेदीकृत अल्पाधिकार कहलाता है। इसमें विभेदीकृत पदार्थ जो एक दूसरे के निकट स्थानापन्न होते है। उत्पादन करने वाली कुछ फर्मों के बीच प्रतियोगिता पायी जाती है। इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत फर्म के बीच का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। अतः फर्म अपने व्यक्तिगत पदार्थ की कीमत पर नियन्त्रण रखती है।

17.3.5 बाजार के विस्तार को प्रभावित करने वाले तत्व

किसी भी वस्तु का बाजार विस्तृत और संकुचित हो सकता है। वर्तमान समय में वस्तुओं के बाजार के विस्तार को प्रभावित करने वाले तत्वों को दो वर्गो में रखा गया है-

1. वस्तु की विशेषताएँ

वस्तु की विशेषताओं में प्रमुख रूप से वस्तु की व्यापक माँग, उसकी वहनीयता, टिकाऊपन, नमूना या ग्रेड बनाने की उपयुक्तता एवं पूर्ति की पर्याप्तता उसके बाजार के आकार को निर्धारित करते है। जिस वस्तु की माँग व्यापक होगी उसका बाजार विस्तृत होगा जैसे गेहूँ, सेना आदि। इसी तरह कम भार और अधिक मूल्य एवं टिकाऊ वस्तु सोना, चाँदी का बाजार विस्तृत होता है। गेहूँ जैसी वस्तुओं जिनका नमूना और ग्रेड बनाया जा सकता है। उनका बाजार विस्तृत होता है,जबकि सब्जी,दूध, और मछली इत्यादि में ये गुण नहीं होता, इसलिए इनका बाजार संकुचित होता है। वस्तु की पूर्ति की पर्याप्तता उसके बाजार के विस्तार को बढ़ती है जब वस्तु की पूर्ति पर्याप्त मात्रा में नहीं होती तो उपभोक्ता उसके स्थान पर अन्य वस्तु का प्रयोग करने लगता है और उसका बाजार संकुचित होता है।

2. देश का वातावरण तथा उसकी आन्तरिक दशाएँ

वस्तु के बाजार के विस्तार को देश का वातावरण तथा उसकी आन्तरिक दशाओं का विशेष प्रभाव पड़ता है। जैसे यातायात एवं संवादवाहन के साधन, श्रम विभाजन की मात्रा, दृढ़ मुद्रा तथा कुशल साख व्यवस्था, विक्रय की नयी तथा वैज्ञानिक रीतियाँ, सरकार की कर तथा व्यापार नीति और देश में शान्ति तथा सुरक्षा आदि।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरिए

(क) समय के आधार पर बाजार कितने प्रकार...................... का होता है।
(ख) प्रतियोगिता के आधार पर बाजार कितने प्रकार................................ का होता है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

क. निम्न में प्रतियोगिता के आधार पर बाजार नहीं है।
(अ) अल्पकालीन बाजार (ब) पूर्ण प्रतियोगिता
(स) अपूर्ण प्रतियोगिता (द) एकाधिकार

ख. लाख की चूड़ियों का बाजार उदाहरण है-
(अ) स्थानीय बाजार (ब) प्रादेशिक बाजार
(स) देशीय बाजार (द) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार

17.4 फर्म का सन्तुलन विश्लेषण

आगम धारण, लागत धारण एवं बाजार की जानकारी के बाद हम इस योग्य हैं कि इस बात का निर्णय कर सकें कि फर्म अथवा कोई उत्पादक कब सन्तुलन में होगा। किसी एक फर्म के सन्तुलन में हम यह जानते है कि वह फर्म अथवा उत्पादक वस्तु की कितनी मात्रा उत्पादित करेगा। वास्तव में सन्तुलन शब्द का आशय 'सन्तुलन की स्थिति अथवा अपरिवर्तन की स्थिति' से है। अतः जब कोई आर्थिक इकाई उपभोक्ता, उत्पादक कोई सन्तुलनावस्था को प्राप्त होते है, वह उस स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहता कि वह वस्तु का उत्पादन को घटाये या बढ़ाये। जैसा कि बोल्ड़िग कहते है कि, "एक उद्योग या फर्म उस समय सन्तुलन की स्थिति में कहा जाता जबकि उसके विस्तार या संकुचन की कोई प्रवृति नहीं होती है" इस तरह की स्थिति तब होगी जब वह फर्म अधिकतम लाभ अर्जित कर रही होगी। क्योंकि कोई भी विवेकशील उत्पादक यह जानता है कि उत्पादन मात्रा घटाने-बढाने से अपना लाभ बढ़ाया जा सकता है तो वह उत्पादन मात्रा में परिवर्तन करता है। परन्तु जिस उत्पादन मात्रा पर वह अधिकतम लाभ अर्जित कर रहा है यहाँ उत्पादन मात्रा घटाने-बढ़ाने से तो उसका कम ही होगा बढ नहीं सकता। इस सन्दर्भ में अधिकतम लाभ की उस स्थिति में फर्म की लागत, कीमत उत्पादन मात्रा आदि को देखना होगा जिस पर उस फर्म का सन्तुलन बिन्दु होगा।

इस विश्लेषण में हम यह मान लेते है कि फर्म केवल एक पदार्थ का उत्पादन करती है, जबकि वास्तविक जगत में फर्म एक अधिक पदार्थ का उत्पादन करती है यदि उसे लेते है तो भी हमारे विश्लेषण के मैलिक निष्कर्षो पर कोई प्रभाव नहीं पडेगा। यहाँ हम एक पदार्थ उत्पादित करने वाली फर्म के सन्तुलन का विश्लेषण केवल सामान्य रूप में ही करेंगें। फर्म के सन्तुलन की व्याख्या विभिन्न बाजार के रूपों अर्थात् पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार, एकाधिकारिक प्रतियोगिता और अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अगले इकाईयों में की जाएगी। इस इकाई में सन्तुलन की सामान्य शर्तो की व्याख्या करेंगे जो सभी प्रकार के बाजारों पर लागू होती है।

फर्म के सन्तुलन की व्याख्या के सन्दर्भ में दो दृष्टिकोण प्रचलित है, प्रथम, पुराना तथा वास्तविक व्यावसायिक जगत में लोकप्रिय कुल आगम और कुल लागत वक्र अवधारणा द्वितीय सीमान्तवादी अवधारणा के अन्तर्गत सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्र की सहायता द्वारा।

17.4.1 फर्म का सन्तुलन कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा

फर्म का सन्तुलन कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा फर्म का सन्तुलन उस बिन्दु पर होता है जहाँ वह अधिकतम लाभ अर्जित करती है। लाभ कुल आगम और कुल लागत का अन्तर होता है। अतः फर्म उस उत्पादन मात्रा पर सन्तुलन में होगी। जिस पर कि उसकी कुल आगम और कुल लागत में अन्तर अधिकतम होगा। कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा फर्म के सन्तुलन को रेखाचित्र 17.1 में स्पष्ट किया गया है।

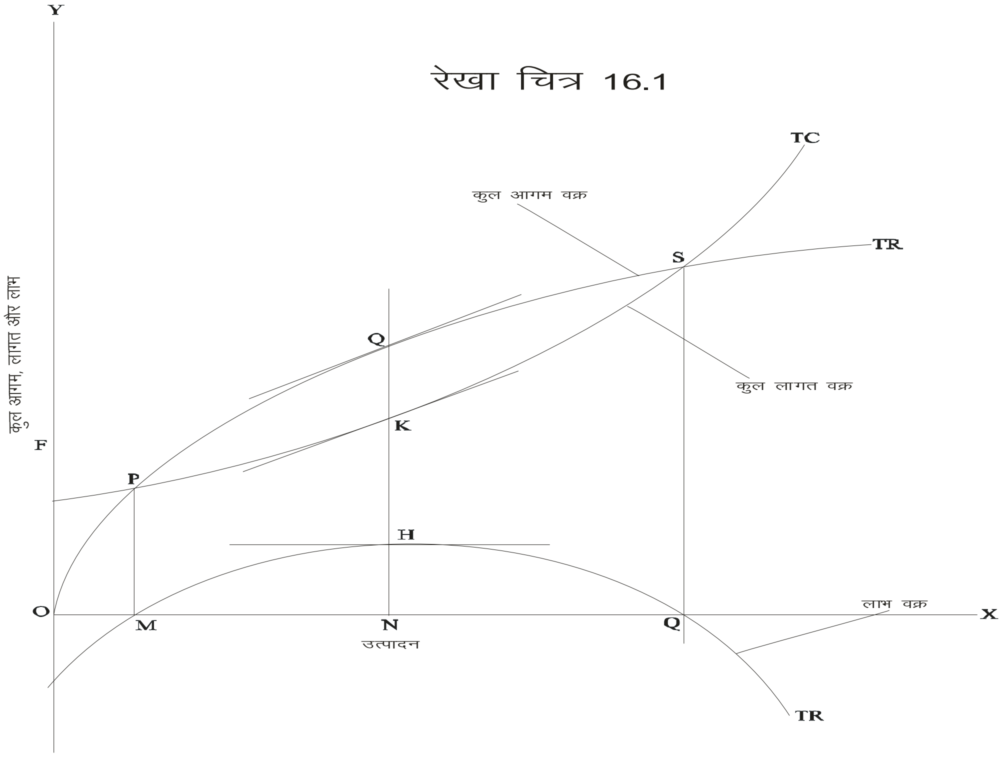

जहाँ TR कुल आगम वक्र तथा TC कुल लागत वक्र है। कुल आगम वक्र TR मूल बिन्दु o से प्रारम्भ होता है जिसका आशय है कि जब कुछ भी उत्पादन नहीं किया जाता तो आगम शून्य होता है। उत्पादन की मात्रा में जैसे-जैसे वृद्धि होती है, कुल आगम बढ़ता जाता है। इसी करण कुल आगम वक्र TR बाएँ से दाई ओर को ऊपर चढ़ता है। जबकि कुल लागत वक्र TC मूल बिन्दु से शुरू न होकर बिन्दु F से शुरू होता है, अर्थात जब फर्म कोई उत्पादन नहीं करती तो भी उसे OF के बराबर लागत उठानी पड़ती है। ऐसा अल्पकाल में होता है, जिसमें फर्म यदि उत्पादन करना बन्द भी कर दे तो भी उसे स्थिर लागत वहन करना पड़ता है।

फर्म OM से कम मात्रा उत्पादित करने पर हानि प्राप्त करती है, क्योंकि प्रारम्भ में कुल लागत कुल आगम से अधिक है। फर्म OM उत्पादन मात्रा पर कुल आगम कुल लागत के बराबर इसलिए न तो हानि हो रही है न ही लाभ इसलिए OL उत्पादन मात्रा के इस S बिन्दु को समस्थिति बिन्दु कहते है। अब फर्म OM से उत्पादन बढ़ता है,तो कुल आगम कुल लागत से बढ़ता जाता है और फर्म को लाभ प्राप्त होता है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि उत्पादन मात्रा ON पर कुल आगम वक्र TR और कुल लागत वक्र TC के बीच की दूरी अधिकतम है और इस मात्रा पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। इस कारण फर्म ON उत्पादन मात्रा पर सन्तुलन में होगी। कुल आगम और कुल लागत वक्रों के बीच अधिकतम दूरी की जानकारी दो प्रकार से होती है,प्रथम ON उत्पादन पर ही जहाँ कुल आगम और कुल लागत वक्रों पर खीची गई स्पर्श रेखाएं एक दूसरे के समान्तर है। इसी बीच उनके मध्य दूरी अधिकतम है, और वहाँ लाभ अधिकतम प्राप्त हो रहा है। दूसरा विधि कुल लाभ वक्र है जो कि उत्पादन की विभिन्न मात्राओं पर कुल आगम और कुल लागत में अन्तर को व्यक्त करता है। इस प्रकार जिस उत्पादन मात्रा पर कुल लाभ वक्र का उच्चतम बिन्दु होगा उस उत्पादन मात्रा पर लाभ अधिकतम होगा। रेखा चित्र से स्पष्ट है कि ON उत्पादन मात्रा पर कुल लाभ वक्र का उच्चतम बिन्दु H है, अर्थात ON उत्पादन मात्रा पर ही लाभ अधिकतम है। अतः ON से कम या अधिक उत्पादन मात्रा पर कुल लाभ NH से कम होगा। कुल लाभ वक्र OM उत्पादन मात्रा से कम पर X अक्ष के नीचे स्थित है जिसका अर्थ यह है कि फर्म OM उत्पादन मात्रा से कम उत्पादन मात्रा पर ऋणात्मक लाभ (हानि) प्राप्त हो रही है। बिन्दु ड के बाद लाभ प्राप्त होना शुरू होता है जो ON उत्पादन मात्रा पर अधिकतम होता जाता है इसके बाद भी फर्म यदि उत्पादन करती है तो लाभ वक्र नीचे को गिरने (लाभ घटने लगता है) लगता है। ON उत्पादन मात्रा पर ही कुल आगम और कुल लागत वक्र के बीच अधिकतम अन्तर है ऐसा उस बिन्दु पर खीची गई स्पर्श रेखाओं द्वारा भी स्पष्ट होता है। इस बिन्दु पर ही फर्म को अधिकतम लाभ छभ् की प्राप्ति होती है। इसके बाद फर्म उत्पादन नहीं करेगीं क्योकि कुल आगम और कुल लागत के बीच अन्तर घटने लगताहै, फलस्वरूप कुल लाभ भी कम हो जायेंगा। उत्पादन मात्रा OQ पर कुल लागत और कुल आगम वक्र एक दूसरे को पुनः काटते है अर्थात इस उत्पादन मात्रा OQ पर कुल आगम कुल लागत के बराबर है। अतः बिन्दु S पुनः एक समस्थिति बिन्दु (ब्रेक ईवेन प्वाइन्ट) है। यदि उत्पादन को OQ से

अधिक बढ़ाते है, तो फर्म की कुल आगम कुल लागत की अपेक्षा कम होगी और हानि उठानी पडेगी। जैसा कि कुल लाभ वक्र TP से भी पता चल रहा है कि OQ उत्पादन मात्रा के बाद वह X अक्ष के नीचे जा रहा है।

फर्म के संन्तुलन के सम्बन्ध में उपर्युक्त दृष्टिकोण का प्रयोग प्रायः व्यावसायिक व्यक्तियों द्वारा किया जाता है किन्तु इसमें कई कमियाँ है प्रथम कमी तो यह है कि कुल आगम और कुल लागत के बीच अधिकतम अन्तर ज्ञात करना बहुत कठिन है। बहुत से स्पर्श रेखाएँ खीचनी पड़ती है और तब कही दो समान्तर स्पर्श रेखाएं दोनों वक्रों पर ज्ञात होती है। जिनके अनुरूप कुल लाभ अधिकतम होते है। यदि कुल लाभ वक्र खीचा जाता है तो अधिकतम लाभ बिन्दु ज्ञात करना कम कठिन है कोई कुल लाभ वक्र का उच्चतम बिन्दु अधिकतम लाभ को व्यक्त करता है। दूसरी कमी प्रति इकाई कीमत की जानकारी नहीं होती। चूंकि रेखाचित्र में कीमत प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं जाती। अतः कीमत जानने के लिए अधिकतम लाभ बिन्दु पर कुल आगम को कुल उत्पादन से भाग देकर प्राप्त करते है। इसलिए आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त में फर्म के सन्तुलन की व्याख्या सीमान्त विश्लेषण से जिसमें सीमान्त आगम और सीमान्त लागत की धारणाओं का प्रयोग कर ज्ञात करते है।

17.4.2 फर्म का सन्तुलन सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्रों द्वारा

एक फर्म एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन करने पर जो लागत आती है उसें सीमान्त लागत कहते है, एवं इस अतिरिक्त इकाई के बिक्री से जो आय प्राप्त होती है उसे सीमान्त आगम कहते है। एक फर्म का लाभ तब तक बढ़ेगा जब तक उसे अतिरिक्त इकाई की बिक्री से लागत की तुलना में आगम अधिक प्राप्त होता है।

उत्पादन इकाई	सीमान्त लागत MC रू0	सीमान्त आगम MR रू0	प्रति इकाई लाभ	कुल लाभ	MR एवं MC की स्थिति
1	7	8	1	1	MR>MC
2	6	8	2	3	MR>MC
3	5	8	3	6	MR>MC
4	6	8	2	8	MR>MC
5	7	8	1	9	MR>MC
6	8	8	0	9	MR=MC
7	9	8	-1	8	MR<MC
8	10	8	-2	6	MR<MC

अर्थात फर्म का उत्पादन तब तब बढ़ेगा जब तक सीमान्त आगम सीमान्त आय से अधिक होगा। जैसाकि तालिका 16.1 से स्पष्ट है कि फर्म अपना उत्पादन तब तक बढ़ाती है जब तक सीमान्त आगम सीमान्त लागत के बराबर न हो जाए उस अवस्था में फर्म का कुल लाभ अधिकतम होगा जोकि तालिका में उत्पादन की 6 इकाइयों पर सीमान्त लागत रू0 8 और सीमान्त आगम भी रू0 8 रू है इस अवस्था में कुल लाभ 9रू0 अधिकतम है। यदि फर्म इससे अधिक उत्पादन करती है तो उसे हानि होगी क्योंकि सीमान्त आगम सीमान्त लागत से अधिक है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जब फर्म वस्तु की इतनी मात्रा उत्पादित कर रही होती है। जिस पर की सीमान्त आगम MR और सीमान्त लागत MC बराबर हो तो फर्म सन्तुलन की स्थिति में होगी।

फर्म के सन्तुलन को रेखाचित्र 16.2 के द्वारा और अच्छे से स्पष्ट किया जाता है। MR और MC फर्म के सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्र हैं, जो एक दूसरे को म् बिन्दु पर काटते है अर्थात ON उत्पादन मात्रा पर फर्म की सीमान्त आगम उसके सीमान्त लागत के बराबर है और फर्म को अधिकतम लाभ की प्राप्ति होती है। इसके कम उत्पादन करने पर फर्म की सीमान्त आगम उसके सीमान्त लागत से अधिक है अतः उत्पादन बढ़ाकर लाभ बढ़ाये जा सकते है जैसे OM उत्पादन पर

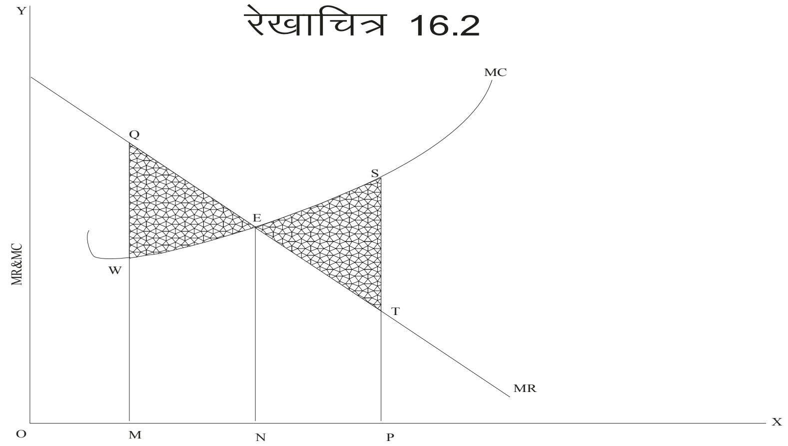

सीमान्त आगम MQ और सीमान्त लागत डॅ है जो कि उससे कम है इस कारण छवीं इकाई तक उत्पादन करना लाभकारी होगा। फर्म का उत्पादन यदि ON मात्रा से आगे बढ़ता है तो सीमान्त लागत सीमान्त आगम से अधिक हो जाता है जो फर्म के लाभ में कमी को दर्शाता है। इसलिए फर्म ON मात्रा उत्पादित करके अधिकतम सम्भव लाभ कमाएगी और संतुलन में होगी। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि फर्म अधिकतम लाभ और सन्तुलन को तब प्राप्त करके जब निम्न शर्त पूरी होती है-

सीमान्त आगम (MR) = सीमान्त लागत (MC)

यह फर्म के सन्तुलन की प्रथम शर्त है।

फर्म के सन्तुलन के लिए सीमान्त आगम MR का सीमान्त लागत से बराबर होना ही जरूरी नहीं है। बल्कि फर्म का सन्तुलन तब पूर्ण माना जाता है। जबकि सन्तुलन बिन्दु पर सीमान्त लागत MC वक्र सीमान्त आगम MR वक्र को नीचे से (अथवा बायें से दायें) काटे अर्थात सन्तुलन उत्पादन मात्रा के आगे सीमान्त लागत MC सीमान्त आगम MR से अधिक हो। इसी को फर्म के सन्तुलन की दूसरी शर्त कहते है।

रेखाचित्र 16.3

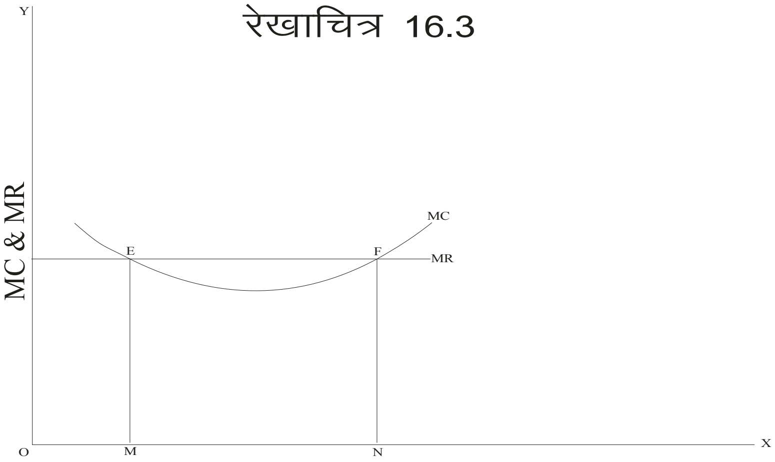

जिसको रेखाचित्र 16.2 एवं 16.3 में देखा जा सकता है। रेखाचित्र 16.3 में सीमान्त आगम वक्र क्षितिज के समानान्तर सरल रेखा है जैसा पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में होता है। और सीमान्त लागत MC वक्र शुरू में तो नीचे को गिरता हुआ ओर कुछ सीमा बाद यह ऊपर चढ़ता है जो सीमान्त आगम MR वक्र को दो बिन्दुओं E और Fपर काटता है जिस पर दोनों बराबर होते है। बिन्दु E पर सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को ऊपर से काटता है और OM उत्पादन होता हैं, परन्तु ON उत्पादन मात्रा तक सीमान्त लागत सीमान्त आगम से कम है इसलिए म् बिन्दु या OM उत्पादन पर सन्तुलन फर्म के लिए अलाभकारी है। बिन्दु F (ON उत्पादन) पर सीमान्त लागत MC वक्र सीमान्त आगम MR वक्र को नीचे काटता है और इस बिन्दु के बाद सीमान्त लागत सीमान्त आगम से अधिक है। अतः स्पष्ट है

कि फर्म का सन्तुलन F बिन्दु पर होगा और वह ON मात्रा उत्पादित करेगा। जहाँ फर्म सन्तुलन की दोनों शर्ते पूरी हो रही है-

(i) सीमान्त लागत (MC) = सीमान्त आगम (MR)

(ii)सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम को संतुलन बिन्दु पर नीचे से काटता है। अर्थात सीमान्त आगम वक्र की ढाल सीमान्त लागत की ढाल से कम है।

सन्तुलन की उपर्युक्त शर्ते पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार और अपूर्ण प्रतियोगिता सभी में पूरी होनी चाहिए। अर्थशास्त्र में इस विधि के प्रयोग द्वारा ही अधिकतर फर्म एवं उद्योगके सन्तुलन का विश्लेषण किया जाता है। सीमान्त वक्रों की सहायता से सन्तुलन ज्ञात करना एक तो सुगम है और इससे न केवल सन्तुलन मात्रा और लाभ ज्ञात हो जाते वरन् फर्म या उत्पादक प्रति इकाई मूल्य भी जान सकते है। साथ ही लाभ के सम्बन्ध में सही स्पष्टीकरण भी हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न 2 -

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

(अ) सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को नीचे से क्यों काटता है ?

(ब) एक फर्म का अधिकतम लाभ सीमान्त आगम के सीमान्त लागत के बराबर होने पर क्यों होता है ?

(स) कुल लाभ वक्र के उच्चतम बिन्दु पर फर्म का सन्तुलन क्यों होता है ?

2. बहुविकल्पीय प्रश्न

(अ) किसी फर्म सन्तुलन के लिए पहली आवश्यक शर्त क्या है?

1. AC = MR 2. MC = AC

3. MR = AR 4. MR = MC

(ब) किसी फर्म के सन्तुलन के लिए द्वितीय आवश्यक शर्त क्या है?

1. ACवक्र MR वक्र के नीचे से काटता है।

2. MC वक्र MR वक्र के नीचे से काटता है।

3. AR वक्र MR वक्र के नीचे से काटता है।

4. ACवक्र AR वक्र के नीचे से काटता है।

(स) सीमान्त लागत की धारणा का सम्बन्ध निम्न में से किसके साथ है ?

1. परिवर्ती लागत 2. कुल आगम

3. स्थिर लागत 4. आर्थिक लागत

17.5 सारांश

बाजार वस्तु, क्रेता, एवं विक्रेता के भौतिक रूप को इंगित करते है, जहाँ क्रय विक्रय करते है। यह बाजार की एक सामान्य विशेषता है पूर्ण नहीं। बाजार के स्वरूप का निर्धारण क्षेत्र के आधार पर, कार्य के आधार पर, समय के आधार पर, और प्रतियोगिता के आधार पर करते है। अर्थशास्त्र में प्रतियोगिता के आधार पर पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार और अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार का सामान्य विवेचन किया जाता है।

विभिन्न प्रतियोगी बाजार में फर्म का सन्तुलन कुल आगम एवं कुल लागत वक्र विधि एवं सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि के आधार पर किया जाता है। जिसमें सीमान्त विश्लेषण विधि अधिक यथार्थ एवं उपयोगी है।

17.6 शब्दावली

कुल लागत:- किसी वस्तु के उत्पादन में सम्मिलित होने वाली सभी मदों पर फर्म द्वारा किए गए व्यय के सम्मिलित योग को कुल लागत कहते है।
कुल आगम:- किसी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल इकाईयों के बिक्री से होने वाली कुल प्राप्ति को कुल आगम कहते है।
कुल लाभ:- कुल लागत से कुल आगम के अन्तर को कुल लाभ कहते है।
सीमान्त लागत:- वस्तु की अन्तिम अथवा सीमान्त इकाई का उत्पादन करने की लागत को सीमान्त लागत कहते है। जैसे सीमान्त लागत त्र उत्पादन की द इकाईयों की कुल लागत - उत्पादन की द्र1 इकाइयों की कुल लागत।
सीमान्त आगम:- फर्म के द्वारा उत्पादित अन्तिम या सीमान्त इकाई के बिक्री से प्राप्त आगम को सीमान्त आगम कहते है। दूसरे रूप में सीमान्त आगम कुल आगम में होने वाली वृद्धि है जो द इकाइयों के बजाय द्र1 इकाइयों को बेचने से प्राप्त होती है।

17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लघु उत्तरीय प्रश्न (अ)देखिए 17.4.2 (ब)देखिए 17.4.2 (स)देखिए 17.4.1
2. बहुविकल्पीय प्रश्न (अ)4ण् MR त्र MC (ब) 2. MC वक्र MR वक्र के नीचे से काटता है। (स)1. परिवर्ती लागत

17.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सेठी, टी. टी. (मक 2008) व्यष्टि अर्थशास्त्र लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा
2. झिंगन, एम.एल. (2007) ‘उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त वृन्दा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
3. आहूजा, एस.एल. (2006)उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त व्यष्टिपरक विश्लेषण’’,चन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली

17.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

1. Koutsoyinuis.A. (1979) Modern Microeconomics, (2nd Edition), Macmillian Press, London.
2. Ahuja,H.L. ((2010)Principles of MicroEconomics,S&Chan Publishing House.
3. Peterson, L. and Jain (2006)) Managerial Economics, 4th edition, Pearson Education.
4. Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
5. Mishra, S. K. and Puri, V. K., (2003), Modern Micro-EconomicsTheory, Himalaya Publishing House.

17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. “एक फर्म उस समय सन्तुलनावस्था में होती है जबकि वह अधिकतम मौद्रिक लाभ कमा रही हो। परन्तु किसी भी फर्म का मौद्रिक लाभ उसी समय होता है जब उसका सीमान्त आगम उसकी सीमान्त लागत के बराबर हो”। व्याख्या कीजिए ?
2. कुल आगम वक्र और कुल लागत वक्र की सहायता से फर्म के सन्तुलन की व्याख्या कीजिए ?
3. बाजार शब्द की परिभाषा दीजिए। आर्थिक बाजार के विभन्न दृष्टिकोणों को समझाइए एवं बाजार विस्तार के निर्धारण तत्वों को स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 18 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उत्पादन एवं कीमत निर्धारण

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 प्रतियोगिता बाजार का अर्थ एवं विशेषताएं
18.4 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में फर्म का सन्तुलन
    18.4.1 फर्म का अल्पकालीन सन्तुलन
    18.4.2 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अल्पकाल में हानि की स्थिति में उत्पादन की अन्तिम सीमा
    18.4.3 फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन
18.5 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उद्योग का सन्तुलन
    18.5.1 उद्योग का अल्पकालीन सन्तुलन
    18.5.2 उद्योग का दीर्घकालीन सन्तुलन
18.6 पूर्ण प्रतियोगिता के लाभ
18.7 सारांश
18.8 शब्दावली
18.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
18.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
18.12 निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र के पूर्ण प्रतियोगिता बाजार से सम्बन्धित यह 18वीं इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि बाजार संरचना क्या है? फर्म और उद्योग में उत्पादन एवं कीमत निर्धारण कैसे होता है।

इस इकाई में पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उत्पादन एवं कीमत निर्धारण को बड़े ही स्पष्ट रूप से बताया गया है कि पूर्ण प्रतियोगिता क्या है। पूर्ण प्रतियोगिता में पूर्ति वक्र एवं मॉX वक्र का निर्धारण किस प्रकार से होता है,और साथ ही प्रस्तुत इकाई में पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में फर्म एवं उद्योग का सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की विशेषताएं एवं अल्पकालीन एवं दीर्धकालीन में एक फर्म और उद्योग में सन्तुलन का विश्लेषण कर सकेगें।

18.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की विशेषताओ को जान सकेंगे।
- पूर्ण प्रतियोगिता एवं शुद्व प्रतियोगिता अन्तर बता सकेंगे।
- पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की विशेषताओं को जान सकेगें।
- अल्पकालीन एवं दीर्धकालीन में एक फर्म और उद्योग में सन्तुलन को जान सकेंगे।
- अल्पकालीन एवं दीर्धकालीन सन्तुलन में अन्तर कर सकेगें।

18.3 प्रतियोगिता बाजार का अर्थ एवं विशेषताएं

बाजार ढाँचे का निर्धारण वस्तु को उत्पादित करने वाले फर्मो की संख्या, वस्तु के समरूप या विभेदीकृत प्रारूप नई फर्मो के प्रवेश निकासी एवं प्रतिबन्ध और प्रचलित कीमत के विसाय में जानकारी के आधार पर करते है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में तब विद्यमान होते है जब निम्न विशेषताएँ पूरी होती है पदार्थ को उत्पादित करने तथा बेचने वाली क्रेताओं एवं विक्रेताओं की अधिक संख्या अत्याधिक होती है। इसमें एक विक्रेता की दशा उस उद्योग या बाजार में समुद्र में पानी की एक बूदँ के समान होती है। इसमें क्रेता एवं विक्रेता द्वारा इतना कम क्रय-विक्रय किया जाता है कोई भी बाजार में प्रचलित कीमत को प्रभावित करने की स्थिति तें नही होता है इस बाजार में वस्तु की बाजार कीमत सभी क्रेताओं और विक्रेताओं की संयुक्त क्रियाओं द्वारा निर्धारित होती है।

वह व्यक्तिगत रूप में अपनी उत्पादन मात्रा घटा-बढ़ा कर उस कीमत को प्रभावित नहीं कर सकते है। इस प्रकार क्रेता एवं विक्रेता दोनों प्रचलित बाजार कीमत पर अपनी मात्रा को समायोजित करते है।

समरूप वस्तु का उत्पादन:-प्रत्येक विक्रेता (फर्म) द्वारा उत्पादित पदार्थ समरूप होते है जिनमें कोई अन्तर नहीं होता और वे एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न होते है। वस्तुओं की प्रतिलोच अनन्त होती है। जैसे ही कोई विक्रेता सवतक की थोड़ी सी अधिक कीमत लेता है क्रेता उसे छोड़ जायेगें।

प्रचालित कीमत की पूर्ण जानकारी:-इस बाजार में क्रेता एवं विक्रेता को कीमत की पूर्ण जानकारी होती है, कोई इसें प्रभावित नहीं कर सकते अर्थात वस्तुओं तथ उत्पादन के साधनों की माँगों पूर्तियों तथा कीमतों के ऊपर किसी प्रकार के कृत्रित प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए।

फर्मो का स्वतन्त्र रूप से उद्योग में प्रवेश करना तथा उसको छोड़ना:-इसके अन्तर्गत उद्योग में फर्मो के प्रवेश पर काई प्रतिबन्ध नही रहता अल्पकाल में तो न कोई फर्म प्रवेश कर सकती है, न ही कोई पुरानी फर्म जा सकती है, परन्तु दीर्घकाल में यदि फर्म सामान्य लाभ से अधिक पा रही है तो नई फर्म आएगी तथा यदि कोई फर्म हानि पर है तो वह चली जाएगी। अन्तिम रूप से फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती है।

क्रेताओं एवं विक्रेताओं को पूर्ण जानकारी होती है:-इस बाजार में क्रेता एवं विक्रेता को बाजार की पूर्ण जानकारी होती है, अतः फर्मो को प्रचार एवं विज्ञापन पर व्यय करने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

उत्पादन साधनों की पूर्ण गति शीलता:-उत्पदान के साधन पूर्ण गति शील होते है, उन्हें जिस उपयोग या उद्योग में पर्याप्त पारिश्रामिक उपलब्ध नहीं होते वे ऐसे उपयोग अथवा उद्योग को छोड़ने में वे पूर्णतः स्वतन्त्र होते है। ऐसा बाजार में क्रेताओं एवं विक्रेताओं की संख्या अधिक होने के सन्दर्भ में भी आवश्यक है।

परिवहन लागतें नही होती:-यह बाजार इस मान्यता पर आधारित होता है, कि वे समरूप वस्तु का उत्पादन करती है, और दुसरे के बहुत निकट स्थित होती है, अतः परिवहन लागत का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता है। दीर्घकाल में सामान्य लाभ प्राप्त करती है। सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं रहता।

18.4 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का सन्तुलन

एक फर्म साम्य में तब होगी जब उसके उत्पादन में कोई परिर्वतन नहीं होता। फर्म अपने उत्पादन में तब तक कोई परिर्वतन नहीं करती जब तक उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है, जो उसे तब होगा जब सीमान्त आगम (MR) = सीमान्त लागत (MC) है। यह स्थिति प्रत्येक बाजार में होती है, इसलिए इस दशा को फर्म के साम्य की सामान्य दशा कहते है दूसरा पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के लिए

अपनी वस्तु की माँग रेखा अर्थात औसत आगम रेखा एक पड़ी रेखा होती है तथा औसत आगम (AR)= सीमान्त आगम (MR)के होता है, ऐसा पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मो के स्वतन्त्र प्रवेश एवं बर्हिXमन के

कारण होता है, जो दीर्घकाल में फर्मो को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त है कि गारन्टी देता है। जैसा कि रेखाचित्र से भी स्पष्ट है कि आरम्भ में एक वस्तु का माँग वक्र DD और पूर्ति वक्र SS जो E बिन्दु पर दूसरे को काटते है और OP कीमत निर्धारित होती है। जिस स्थिर कीमत पर औसत आगम (AR) वक्र, सीमान्त आगम (MR)वक्र के बराबर होगा। यदि माँग वक्र ऊपर बढ़कर D_1D_1 हो

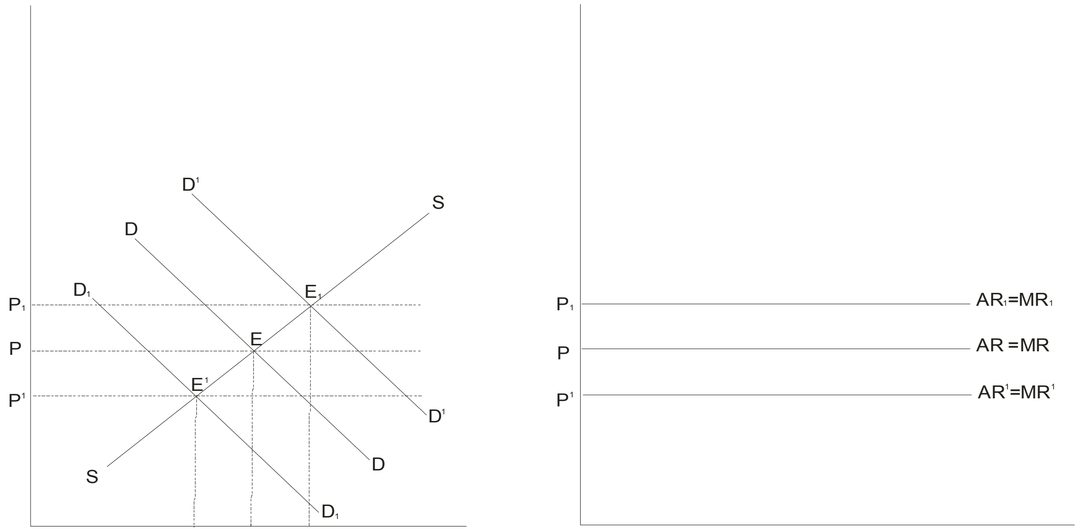

जाए तो की कीमत बढ़कर OP1 हो जाती है, जिसे स्थिर कीमत मानने पर नई औसत आगम तथा सीमान्त आगम (AR_1=MR_1) वक्र OP_1 पर स्थिर है। इसी तरह माँग घटने पर D_1D_1माँग वक्र पहुँच जाता है और कीमत OP1हो जाएगी। जिस पर सीमान्त आगम औसत आगम (MR_1= AR_1) के बराबर हो जाते है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता फर्म के लिए वस्तु की कीमत एक ही रहती है, और दी हुई कीमत पर फर्म वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। इस लिए फर्म के साम्य पर औसत आगम(AR)त्र सीमान्त आगम ;डत्द्धत्र सीमान्त लागत ;डब्द्ध होगा, और इसके अतिरिक्त लाभ के अधिकतम होने के लिए सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय वक्र को नीचे से काटे।

18.4.1 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अल्पकाल में फर्म का साम्य

अल्पकाल फर्म को इतना समय नहीं होता कि पूर्ति को घटा बड़ाकर माँग के अनुरूप किया जाए। अतः अल्पकाल में एक फर्म को असामान्य लाभ, सामान्य लाभ या हानि कुछ भी हो सकता है।

जैसाकि रेखाचित्र 2 में फर्म का सन्तुलन E बिन्दु पर दिखाया गया है जहाँ MR= MC है एवं MC वक्र MR वक्र को नीचे से काट रहा है। अल्पकालीन लागत वक्र की स्थिति में अन्तर के कारण फर्म

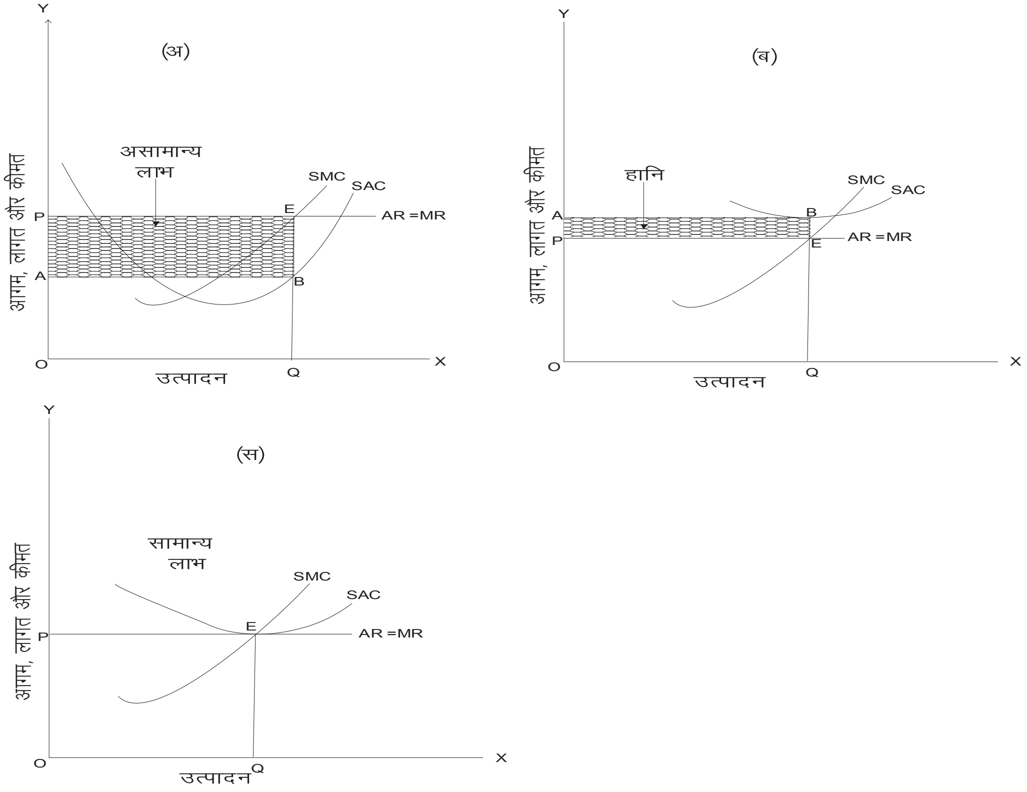

असामान्य लाभ, सामान्य लाभ अथवा हानि अर्जित करती है। जबकि तीनों ही स्थिति में प्रति इकाई कीमत OP ही है। रेखाचित्र (अ) में सन्तुलन बिन्दु E पर फर्म OQ मात्रा का उत्पादन कर रही है। सीमान्त आगम (MR) और औसत लागत (SAC)के बीच अन्तर BE है, जोकि प्रति इकाई लाभ को बताता है, कुल लाभ (असामान्य) ज्ञात करने के लिए BE को कुल उत्पादन OQ याAB से गुणा कर देते है, अर्थात कुल लाभ आयात AREP का क्षेत्रफल होगा, रेखाचित्र (ब) में सन्तुलन बिन्दु E पर OQ उत्पादन पर कीमत OP प्रति इकाई लागत BQ से कम है अतः फर्म को प्रति इकाई ठम् की हानि है, जबकि कुल हानि AREP के बराबर होगी। रेखाचित्र (स) में OQ उत्पादन स्तर पर औसत आगम और औसत लागत बराबर अतः बिन्दु E को शून्य लाभ बिन्दु या सामान्य लाभ बिन्दु कहते है।

18.4.2 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अल्पकाल में हानि की स्थिति में उत्पादन की अन्तिम सीमा

इस सन्दर्भ हम लोगों के स्थिर एवं परिर्वतनशील भाग को ध्यान में रखते है। अल्पकाल में फर्म हानि होने पर उत्पादन स्थगित या बन्द नहीं करते क्योंकि पूँजी, उपकरण सयंत्र आदि जैसे बधे एवं स्थिर साधनों को बदल नहीं सकते और इनके बराबर हानि उठाना पड़ेगा चाहे वे उत्पादन करें अथवा न करें। परन्तु अल्पकाल में यदि उत्पादन लागत में से केवल परिवर्तनशील प्राप्त हो रही है तो फर्म हानि की स्थिति में उत्पादन जारी रखेगी जबकि दीर्घकाल में उसकी कुल लागत (स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत) निकल आए तभी वह उत्पादन जारी रखती है। अतः यदि अल्पकाल में फर्म परिवर्तनशील लागतों को भी पूरा नहीं तो वह अनावश्यक हानि से बचने के

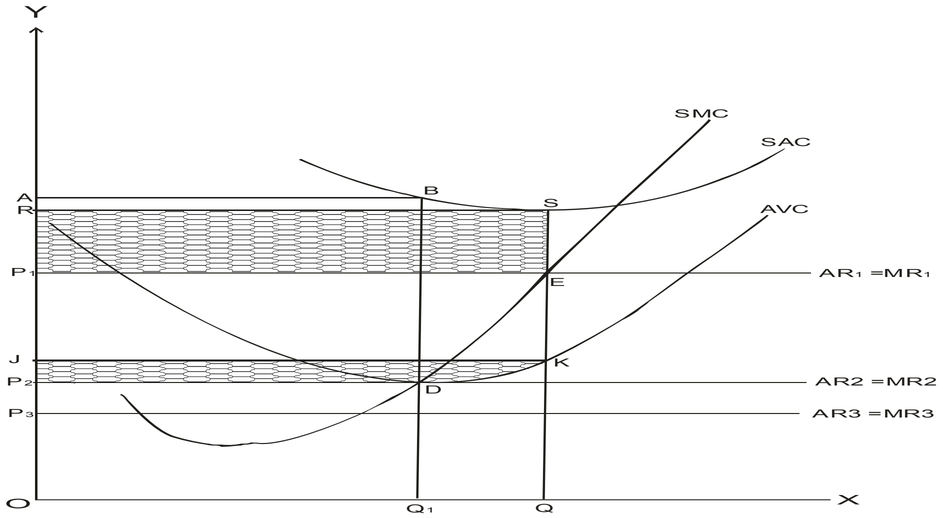

लिए उत्पादन बन्द कर देगी। जैसाकि रेखाचित्र द्वारा भीस्पष्ट है जिसमें अल्पकालीन औसत लागत (SAC) वक्र और सीमान्त लागत (SMC) वक्र तथा औसत परिवर्तनशील (AVC) वक्र द्वारा यहाँ दर्शाया गया है, जब बाजार में वस्तु की कीमत OP_1 है तो फर्म E बिन्दु पर सन्तुलन में है और OQ मात्रा उत्पादित कर रही है। यहां पर वस्तु की औसत लागत QS_1 औसत आय QE या OP_1 से अधिक होने के कारर्ण फर्म P1ESR के समान हानि हो रही है। परन्तु औसत परिवर्तनशील लागत फज्ञ है जो कीमत OP_1 या QE से कम अतः फर्म उत्पादन जारी रखेंगें। क्योकि यह फर्म की कुल हानि P1ESR है जो उत्पादन बन्द करने पर स्थिर लागत हानि JKSP से कम है इसमें से श्रज्ञम्च्1 हानि वह उत्पादन करने के कारण नहीं सहन करना पड़ रहा है। अब यदि बाजार में वस्तु की कीमत है OP2 तो फर्म का सन्तुलन D बिन्दु पर होगा और वहाँ कीमत OP_2 केवल परिवर्तनशील लागतों को पूरा कर रही है, अर्थात कुल हानि $DBAP_2$है जो स्थिर लागत के बराबर है। अतः फर्म उत्पादन करने एवं न करने के प्रति उदासीन होगी। परन्तु यदि बाजार कीमत इससे गिरकर OP_3

हो जाये तो फर्म उत्पादन तुरन्त बन्द कर देना चाहिए क्योंकि इस कीमत पर वह परिवर्तनशील लागत भी नहीं वसूल सकती है। अतः D बिन्दु को उत्पादन बन्द होने का बिन्दु (Short-down-point) कहते है तथा OP_2 कीमत उत्पादन बन्द होने की कीमत (Cease-Production price) को बताती है। OQ_1 अल्पकाल में न्यूनतम उत्पादन मात्रा (Minimum output in short period) को बताता है।

18.4.3 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन

दीर्घकाल में इतना समय होता है कि सभी साधनों की पुर्ति को घटा-बड़ा पूर्णतया माँग के अनुरूप किया जा सकता है, अतः दीर्घकाल में फर्म को न लाभ होगा न हानि, बल्कि केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। यदि फर्म को दीर्घकाल में लाभ प्राप्त होता है अर्थात औसत (AR) आगम अधिक है औसत लागत (AC) से, तो लाभ से आकर्षित होकर अन्य फर्म उद्योग में प्रवेश करेगीं और वस्तु की पूर्ति बढ़ेगी परिणामस्वरूप कीमत (AR) घटकर औसत लागत (AC) के बराबर हो जायेगी। यदि फर्म को हानि है तो ACअधिक है कीमत (AR) से फलस्वरूप कई फर्मे उद्योग छोड़ देगी और पूर्ति कम होने से कीमतबढ़कर (AR) ठीक औसत लागत (AC) के बराबर हो जायेगी। इससे यह निकलता है कि पूर्ण प्रतियोगिता के दीर्घकालीन संतुलन प्राप्त होने के लिए निम्न दो शर्ते अवश्य पूरी होनी चाहिए।

(1) कीमत (P=AR) = सीमान्त लागत (MC)

(2) कीमत (P=AR) = औसत लागत (AC)

सीमान्त लागत और औसत लागत के परस्पर सम्बन्ध से हम जानते है कि सीमान्त लागत केवल

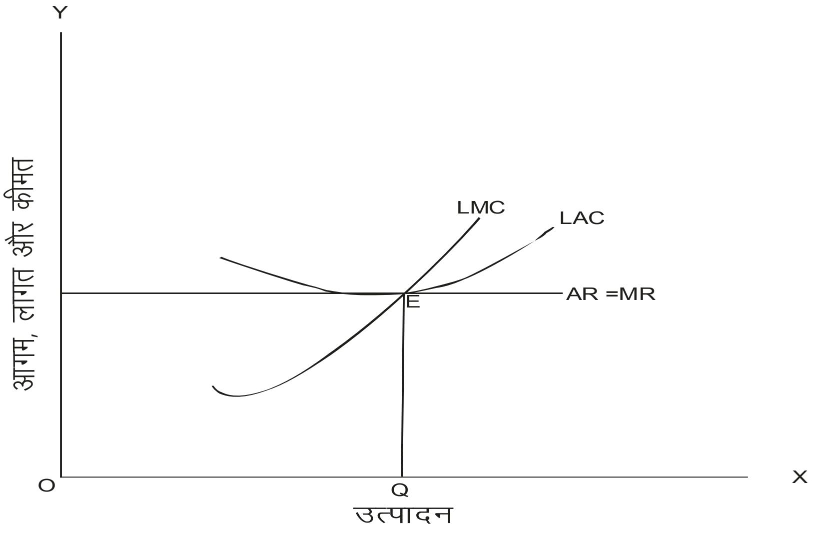

औसत लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु पर ही बराबर होती है। अतः इसे हम इस प्रकार व्यक्त करते है।

कीमत = सीमान्त लागत = निम्नतम औसत लागत रेखाचित्र में दीर्घकालीन साम्य को दिखाया गया है। LAC दीर्घकालीन औसत लागत रेखा है तथा स्डब् दीर्घकालीन सीमान्त लागत रेखा है। औसत आगम (AR) रेखा को LAC रेखा के न्यूनतम बिन्दु E पर स्पर्श करते है इसी E बिन्दु पर सीमान्त आगम (MR)रेखा को LMC रेखा भी स्पर्श करती है। अतःEबिन्दु पर फर्म के दीर्घकालीन साम्य की सभी शर्ते पूर्ण हो जाती है और फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु पर होता है। जिससे स्पष्ट है कि यह फर्म इष्टमत आकार की है, जहाँ संसाधनों का अधिकतम कुशल ढ़ग से प्रयोग हो रहा और उपभोग ता बस्तु की न्यूनतम कीमत दे रहा है।

18.5 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग का सन्तुलन

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग सन्तुलन की स्थिति में तब कहा जाता है जबकि उसके विस्तार या संकुचन की कोई प्रवृति नहीं होती। प्रचलित कीमत पर एक उद्योग सन्तुलन की स्थिति में तब होगा, जबकि उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति (S) उसकी कुल माँग (D) के बराबर होती है। सरा रूप में वस्तु की जिस मात्रा तथा कीमत पर उसका माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र एक दूसरे को काटेगें, उस उत्पादन मात्रा पर उद्योग का सन्तुलन होगा। उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम निष्कर्ष पर पहुँचते है कि किसी उद्योग के सन्तुलन के लिए निम्न शर्ते पूरी होनी चाहिए।

1. उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की पूर्ति की गई मात्रा तथा इसके लिए माँग की मात्रा समान हो।

2. माँग और पूर्ति द्वारा निर्धारित कीमत पर सभी फर्मे व्यक्तिगत सन्तुलन में हो और उनकी सीमान्त लागत, सीमान्य आगम के बराबर हो।

3. नई फर्मो के उद्योग में प्रवेश करने तथा वर्तमान फर्मो की उद्योग से बाहर जाने की प्रवृति न पाई जाती है और वर्तमान फर्मे केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर रही हों।

उद्योग के अल्पकालीन सन्तुलन के लिए पहली दोनों शर्ते तथा दीर्घकालीन सन्तुलन के लिए तीनों शर्तो का पूर होना आवश्यक है।

18.5.1 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग का अल्पकालीन सन्तुलन

अल्पकाल में फर्म न किसी उद्योग में प्रवेश कर सकती है और न ही कोई फर्मे उसे छोड़ सकती है। अतः उद्योग के संन्तुलन के लिए वर्तमान फर्मो द्वारा केवल सामान्य लाभ ही अर्जित

करने की शर्त की पूर्ति होना आवश्यक नहीं होती वहाँ लाभ तथा हानि का सह अस्तित्व हो सकता है। इसलिए कोई उद्योग अल्पकालीन सन्तुलन में तब होगा जब उसके द्वारा वस्तु की पूर्ति मात्रा उसकी माँग मात्रा के बराबर होती है, और उसमें उत्पादन कार्य कर रही सभी वर्तमान फर्मे व्यक्तिगत रूप से सन्तुलन में होती है। अतः उद्योग के अल्पकालीन सन्तुलन में उसकी सभी फर्मे सन्तुलन में होती है, वे सभी असामान्य लाभ या सभी हानि उठा सकती है रेखाचित्र के भाग के भाग (i) में उद्योग की माँग रेखा DD तथा पूर्ति रेखा SS एक दूसरे को E बिन्दु पर काटती है। बिन्दु E उद्योग के अल्पकालीन सन्तुलन को बताता है, क्योंकि यहाँ पर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की पूर्ति और

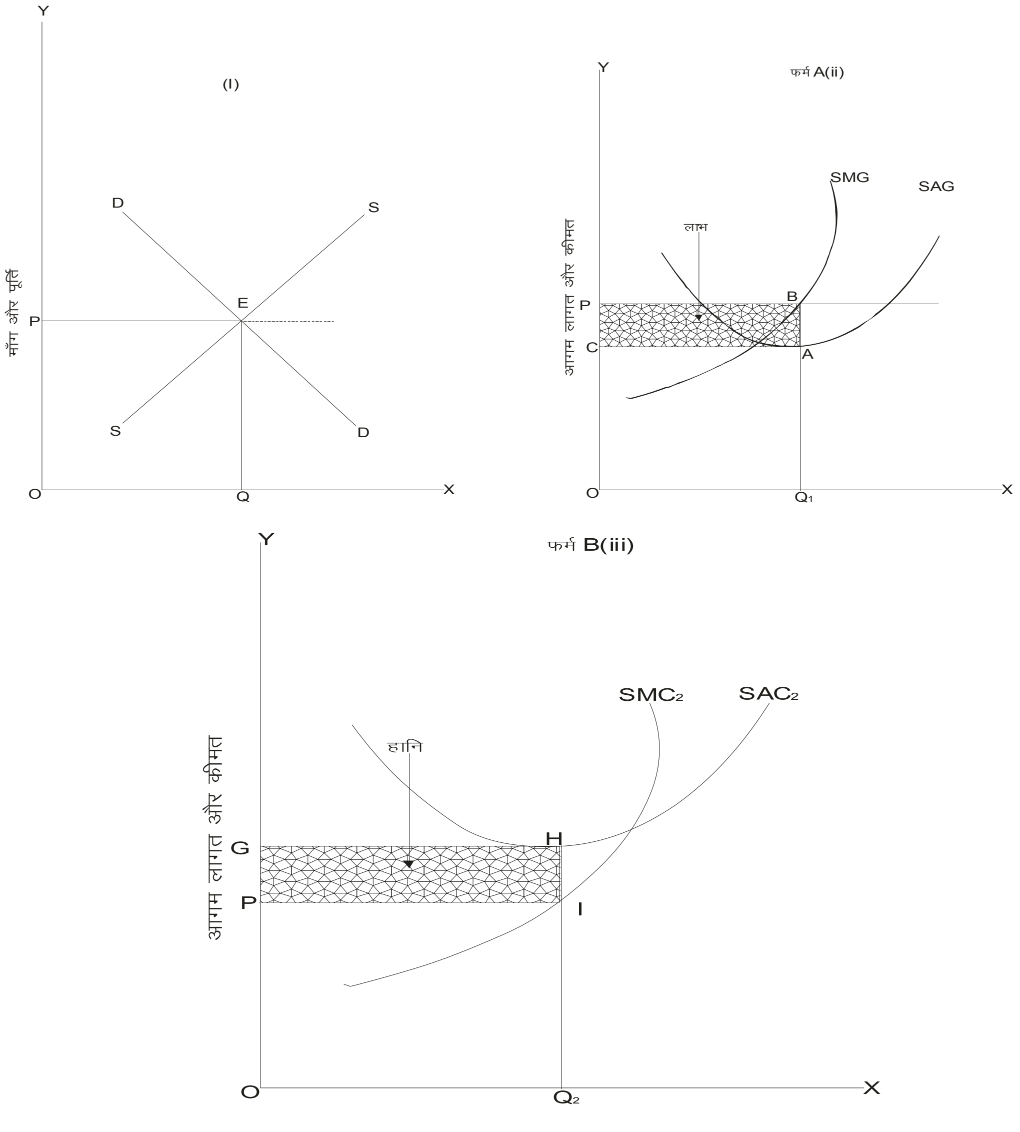

उसकी माँग बराबर है उद्योग द्वारा OQ उत्पादन एवं वस्तु की OP या QE कीमत इस सन्तुलन पर प्राप्त होता है। उद्योग के इस अल्पकालीन सन्तुलन में प्रत्येक फर्म OP कीमत को दिया हुआ मानकर

केवल उत्पादन मात्रा का समायोजन करती है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि प्रत्येक फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित अल्पकालीन सन्तुलन कीमत OP के आधार पर वस्तु की उत्पादन मात्रा का समायांजन करती है। रेखाचित्र के भाग (ii) में दी हुई कीमत पर फर्म A आर्थिक लाभ प्राप्त कर रही है। जो ठ बिन्दु पर सन्तुलन में है जहाँ अल्पकालीन सीमान्त लागत रेखा (SMC_1) और सीमान्त आगम MR रेखा एक दूसरे को काटते है। फर्म को ABPC के बराबर लाभ प्राप्त हो रहा है। रेखाचित्र के भाग (iii) में फर्म B को हानि हो रही है। फर्म E बिन्दु I पर अल्पकालीन सन्तुलन में होगी जहाँ पर दी हुई कीमत OP पर उसका अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र SMC_2 उसके सीमान्त आगम MR वक्र को काटते है और उसके कुल IHGP के बराबर हानि होती है। इसी प्रकार कुछ ऐसी भी फर्म हो सकती है जो केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर रही हों।

18.5.2 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग का दीर्घकालीन सन्तुलन

दीर्घकाल वह समयावधि है जिसमें इतना अधिक समय उपलब्ध होता है कि उद्योग अपने उत्पादन को माँग परिर्वतनों के प्रति पूर्णतया समायोजित कर लेने में समर्थ हो जाता है। जहाँ तक व्यक्तिगत फर्म का सम्बन्ध है, स्थिर एवं परिवर्ती हो जाता है। उद्योग क सन्तुलन में दीर्घकाल में सभी फर्मे केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती है। इस सन्तुलन के लिए कीमत उद्योग की कुल पूर्ति और कुल माँग द्वारा निर्धारित होता है। जैसाकि रेखाचित्र (i) से स्पष्ट है कि उद्योग के माँग वक्र DD एवं पूर्ति वक्र एक दुसरे E को बिन्दु पर काट रहे है तथा बिन्दु पर कीमत OP तथा OQ उत्पादन मात्रा का निर्धारण होता है।

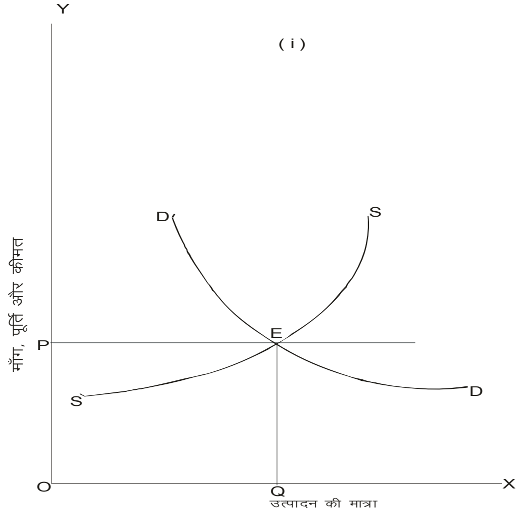

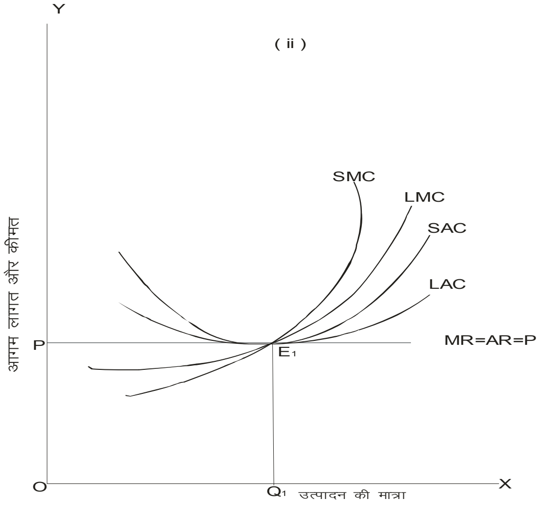

इस OP कीमत पर फर्म भी दीर्घकालीन सन्तुलन में है और सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है। रेखाचित्र के भाग (ii) में फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित OP कीमत पर OQ_1 मात्रा का उत्पादन कर रही है और सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है क्योकि सन्तुलन बिन्दु E_1 पर दीर्घकालीन औसत लागत LAC वक्र

बराबर है अल्पकालीन औसत लागत SAC वक्र के और दोनों ही कीमत ;च्त्रा्त्रडत्द्ध के बराबर है फर्म सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है और उद्योग में उपस्थित सभी फर्मे सन्तुलन में है एवं फर्मो के प्रवेश या निकासी की कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए उद्योग के दीर्घकालीन सन्तुलन को पूर्ण सन्तुलन कहते है।

संक्षिप्त रूप में पूर्ण प्रतियोगिता उद्योग के दीर्घकालीन सन्तुलन के लिए निम्न शर्त पूर्ण होना आवश्यक है

कीमत P= दीर्घकालीन सीमान्त लागत (LMC) = दीर्घकालीन औसत लागत (LAC)

जैसा कि रेखाचित्र से स्पष्ट है कि उद्योग का दीर्घकालीन सन्तुलन तभी होगा जब P=LMC=LAC है। रेखाचित्र के भाग (i) में उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु का माँग वक्र DD तथा वस्तु का अल्पकालीन पूर्ति वक्र S_1S_1 जो उद्योग में वर्तमान फर्मों के पूर्ति वक्रों को क्षैतिज रूप में जोड़कर प्राप्त किया जाता है। माँग वक्र DD तथा पूर्ति वक्र S_1S_1 एक दुसरे के E_1 बिन्दु पर काटते है और इस प्रकार OP_1 कीमत और OQ_1 उत्पादन मात्रा का निर्धारण होता है।

इस प्रकार एक पूर्ण प्रतियोगी फर्म इस OP_1 कीमत को स्थिर मानकर उत्पादन करती है, और उस बिन्दु पर सन्तुलन होगा जहाँ उसकी अल्पकालीन सीमान्त लागत (SMC) उसकी कीमत (P=MR) के होगा। जैसाकि रेखाचित्र से स्पष्ट है, और वह अल्पकाल में अधिकतम लाभ प्राप्त करती है, परन्तु दीर्घकाल में दो घटनाएं होगी प्रथम फर्म लाभ में वृद्धि के लिए प्लान्ट के आकार को समायोजित करेगीं। दुसरा असामान्य लाभों से आकृष्ट होकर अन्य फर्मे उस उद्योग में प्रवेश करेंगी।

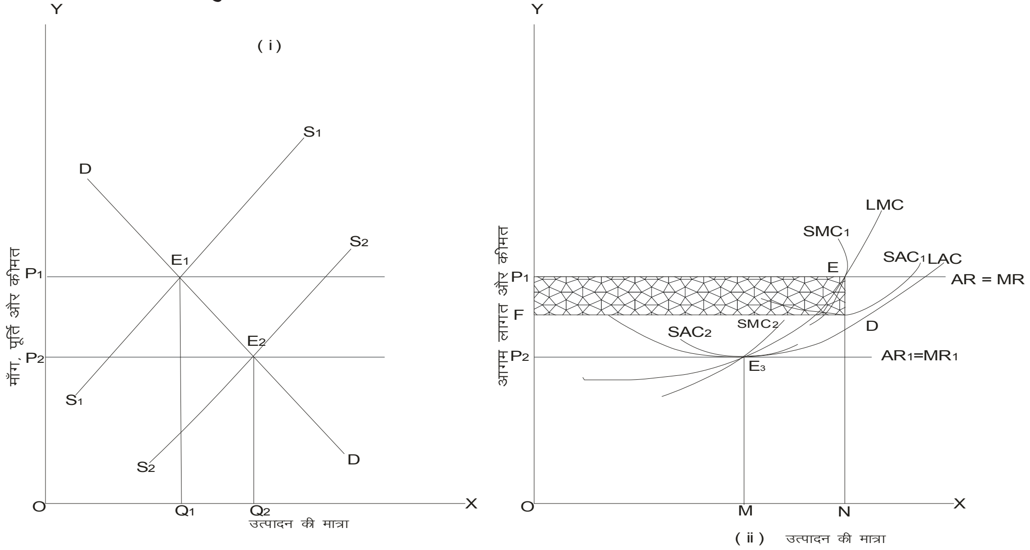

रेखाचित्र के भाग (ii) से स्पष्ट है कि दीर्घकाल में प्रारम्भ में फर्म $FDEP_1$ क्षेत्र के समान आर्थिक लाभ प्राप्त कर रही है। किन्तु दीर्घकाल में फर्म के सन्तुलन की यह अन्तिम अवस्था नहीं है। चूंकि सभी फर्मो के लागत वक्र समान है, इसलिए OP_1 कीमत पर सभी फर्मे असामान्य लाभ अर्जित कर

रही है। इस असामान्य लाभ से आकर्षित होकर नई फर्मे उद्योग में प्रवेश करती है फलस्वरूप उद्योग के उत्पादन में वृद्धि होगी और उसका पूर्ति वक्र दायें सरकता जाता है जबतक की कीमत गिर कर दीर्घकालीन औसत लागत ;स्।ब्द्ध के बराबर नहीं हो जाती है, और इस समय उद्योग E_2 बिन्दु पर सन्तुलन में होगा जहाँ उसकी माँग और पूर्ति बराबर है और OQ_2 उत्पादन हो रहा है। इस नई कीमत OQ_2 को स्थिर मान कर फर्म उत्पादन करती है, और उनका सन्तुलन E_3 बिन्दु पर होता है। इस बिन्दु पर कीमत OP_2 = LMC =निम्नतम LAC है, और केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है। इस अव्सथा में उद्योग में नई फर्मो के

प्रवेश की कोई प्रवृति नहीं है, नहीं कोई फर्म उद्योग छोड़कर जायेगीं क्योकि उसे सामान्य लाभ मिल रहा है। इस प्रकार समस्त उद्योग सन्तुलन में है।

18.6 पूर्ण प्रतियोगिता के लाभ

पूर्ण प्रतियोगिता के लाभ निम्नवत है:-इसके अर्न्तगत कीमत उसकी औसत उत्पादन लागत के बराबर होती है। जोकि उसके निम्नतम बिन्दु पर सन्तुलन द्वारा प्राप्त होती है।

इस प्रतियोगिता के अर्न्तगत विज्ञापन एवं बिक्री पर फर्म द्वारा कोई व्यय नहीं होता क्योकि बाजार में कार्यशील सभी फर्मे समरूप वस्तु का उत्पादन करती है, कोई भी फर्म कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती है, और इस दी हुई कीमत पर जितना उत्पादन वह चाहें बेच सकती है।

इस प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म अनुकूलतम संयन्त्र का प्रयोग करते हुए अनुकूलतम उत्पादन करती है।

इस प्रतियोगिता में कीमत सीमान्त लागत के बराबर होती है, जो आर्थिक साधनों आबंटन कुशलता को दर्शाती है।

अभ्यास प्रश्न

सत्य/असत्य बताइए

1. पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेता-विक्रेता में प्रतिस्पर्धात्मक सम्बन्ध होते हैं।
2. पूर्ण प्रतियोगिता में यातायात लागतें होती हैं।
3. पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्धकाY में अतिरेक लाभ होता है।
4. पूर्ण प्रतियोगिता में साम्य MC=MR,AR=AC होता है।

रिक्त स्थान भरिए

1. उत्पादन की माँग पूर्णतः लोचदार.........................में होती हैं।

2. पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु का मूल्य.......................के द्वारा निश्चित किया जाता हैं।

3. पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म......................प्राप्त करती है।

4. पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार में वस्तु की माँग की लोच.................... होती हैं।

18.7 सारांश

सामान्य रूप में प्रतियोगिता के आधार पर बाजार के चार स्वरूप हैः पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार,एकाधिकारिक और अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार एक आदर्श बाजार की स्थिति को बताता है।इस बाजार में अनेकों फर्म दी हुई कीमत पर उत्पादन करती हैं, इस बाजार में फर्मों के प्रवेश एवं निकासी पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। प्रतियोगी बाजार में फर्म का सन्तुलन कुल आगम एवं कुल लागत वक्र विधि एवं सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि के आधार पर किया जाता है। जिसमें सीमान्त विश्लेषण विधि अधिक यथार्थ एवं उपयोगी है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में दीर्धकाल में प्रत्येक फर्म सामान्य लाभ ही प्राप्त करती है। वास्तविक संसार में कही भी पूर्ण प्रतियोगिता बाजार नहीं पाया जाता हैं,पर इस आदर्श स्थिति में कीमत एवं उत्पादन मात्रा के निर्धारण के आधार पर हम अन्य प्रतियोगी बाजार में फर्म एवं उद्योग के सन्तुलन का विश्लेषण कर पायेंगे।

18.8 शब्दावली

कुल लागत:- किसी वस्तु के उत्पादन में सम्मिलित होने वाली सभी मदों पर फर्म द्वारा किए गए व्यय के सम्मिलित योग को कुल लागत कहते है।

कुल आगम:- किसी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल इकाईयों के बिक्री से होने वाली कुल प्राप्ति को कुल आगम कहते है।

कुल लाभ:- कुल लागत से कुल आगम के अन्तर को कुल लाभ कहते है।

सीमान्त लागत:- वस्तु की अन्तिम अथवा सीमान्त इकाई का उत्पादन करने की लागत को सीमान्त लागत कहते है। जैसे सीमान्त लागत ृ = उत्पादन की n इकाईयों की कुल लागत - उत्पादन की n+1 इकाइयों की कुल लागत।

सीमान्त आगम:- फर्म के द्वारा उत्पादित अन्तिम या सीमान्त इकाई के बिक्री से प्राप्त आगम को सीमान्त आगम कहते है। दूसरे रूप में सीमान्त आगम कुल आगम में होने वाली वृद्धि है जो n इकाइयों के बजाय n+1 इकाइयों को बेचने से प्राप्त होती है।

18.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

सत्य/असत्य बताइए-1. सत्य, 2. असत्य, 3. असत्य, 4. सत्य।

रिक्त स्थान भरिए-1. पूर्ण प्रतियोगिता, 2.उद्योग , 3.सामान्य लाभ, 4.पूर्णतया लोचदार।

18.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सेठी, टी. टी. (मक 2008) व्यष्टि अर्थशास्त्र लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आग रा

झिंगन, एम.एल. (2007) 'उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त वृन्दा पब्लिकेशन, नई दिल्ली

आहूजा, एस.एल. (2006)उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त व्यष्टिपरक विश्लेषण'',चन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली

18.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- Koutsoyinuis.A. (1979) Modern Microeconomics, (2nd Edition),Macmillian Press, London.
- Ahuja,H.L. ((2010) Principles of Micro Economics , S&Chand Publishing House .
- Peterson, L. and Jain ((2006)) Managerial Economics, 4th edition, Pearson Education.
- Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
- Mishra, S. K. and Puri, V. K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.

18.12निबन्धात्मक प्रश्न

1. "एक फर्म उस समय सन्तुलनावस्था में होती है जबकि वह अधिकतम मौद्रिक लाभ कमा रही हो। परन्तु किसी भी फर्म का मौद्रिक लाभ उसी समय होता है जब उसका सीमान्त आगम उसकी सीमान्त लागत के बराबर हो"। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में व्याख्या कीजिए ?
2. उद्योग में सन्तुलन से क्या अभिप्राय है?पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उद्योग के अल्पकालीन एवं दीर्धकालीन सन्तुलनों की व्याख्या कीजिए।

इकाई-19 एकाधिकार

इकाई की रूपरेखा

19.1 प्रस्तावना

19.2 उद्देश्य

19.3 एकाधिकारी का अर्थ एवं विशेषताएं

16.3.1 एकाधिकारी के अन्तर्गत माँग व पूर्ति वक्र

19.4 एकाधिकारी के अन्तर्गत संस्थिति व मूल्य निर्धारण

19.4.1 कुल आगम व कुल लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन

19.4.2 सीमान्त आगम व सीमान्त लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन

19.4.3 अल्पकाल में एकाधिकारी का सन्तुलन विश्लेषण

19.4.4 दीर्घकाल में एकाधिकारी का सन्तुलन निर्धारण

19.4.5 क्या एकाधिकारी कीमत, प्रतियोगी कीमत से अधिक होती है?

19.5 मूल्य विभेदीकरण या विभेदात्मक एकाधिकार

19.5.1 मूल्य विभेदीकरण की कोटियाँ

19.5.2 मूल्य विभेदीकरण की अनिवार्य दशायें

19.5.3 मूल्य विभेदीकरण के अन्तर्गत एकाधिकारी का संतुलन

19.5.4 मूल्य विभेदीकरण का औचित्य

19.6 सारांश

19.7 शब्दावली

19.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

19.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

19.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

19.11 निबन्धात्मक प्रश्न

19.1-प्रस्तावना

पिछली इकाई के अन्तर्गत 'पूर्ण प्रतियोगता' के बारे में विशद चर्चा की गयी। इसके द्वारा आपने यह जाना कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार के क्या लक्षण होते है, इसकी मान्यतायें क्या है? साथ ही इसमें पूर्ण प्रतियोगी फर्म के अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन की भी चर्चा की गयी हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता के ठीक विपरीत स्थिति एकाधिकारी बाजार की होती है, जिसमें प्रतियोगिता का पूर्णतः अभाव होता है। यह बाजार का वह प्रकार है जिसमें बाजार की पूर्ति का नियंत्रण एक ही व्यक्ति के हाथ में होता है। अर्थात् इस बाजार में एक ही फर्म होती है जो उत्पादन करती है तथा उद्योग भी वह फर्म ही होती है, जबकि पूर्ण प्रतियोगी बाजार में उद्योग व अपरिमित फर्मो का अलग -अलग अस्तित्व होता है।

इस इकाई के अन्तर्गत बाजार की दूसरी चरम स्थिति 'एकाधिकारी' के अर्थ, उसकी विशेषताओं के साथ-साथ उसके अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन की चर्चा की गयी है। इस इकाई में एकाधिकारी के मूल्य विभेदीकरण का भी उल्लेख किया गया है।

19.2- उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- बाजार के एकाधिकारी स्वरूप से भली-भॉति परिचित हो सकेंगे।
- एकाधिकारी की विशेषताओं को ज्ञात कर सकेंगे।
- एकाधिकारी के अन्तर्गत सन्तुलन निर्धारण को समझ सकेंगे।
- एकाधिकारी के अन्तर्गत मूल्य विभेदीकरण से अवXत हो सकेंगे।
- एकाधिकारी एवं पूर्ण प्रतियोगी बाजार के मध्य विभेद कर सकने में समर्थ होंगें।

19.3- एकाधिकारी का अर्थ एवं विशेषतायें

एकाधिकारी का अंग्रेजी शब्द 'Monopoly' दो शब्दों 'Mono' और Poly से मिल कर बना है। Mono का अर्थ है - अकेला, तथा Poly का अर्थ है - विक्रेता। अतः Monopoly का शाब्दिक अर्थ है- अकेला विक्रेता अथवा एकाधिकार। जब किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन तथा विक्रय पर किसी एक व्यक्ति अथवा फर्म का पूर्ण अधिकार रहता है तो इसे एकाधिकारी की स्थिाति कहते हैं। अर्थात् एकाधिकारी वह है जिसका वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण हो। स्पष्ट है कि एकाधिकारी पूर्ण

प्रतियोगिता के ठीक विपरीत स्थिति है। एकाधिकारी के अस्तित्व के लिए निम्न तीन दशाओं का पूरा होना आवश्यक हैः-

1. वस्तु का एक विक्रेता हो या उसका उत्पादन केवल एक फर्म द्वारा हो। अर्थात् फर्म तथा उद्योग एक ही होते हैं।

2. वस्तु के कोई निकट स्थानापत्र वस्तु न हो, क्योंकि यदि कोई नजदीकी स्थानापन्न हुआ तो प्रतियोगिता की स्थिति आ जाएगी और वस्तु की पूर्ति पर उत्पादक का पूर्ण नियंत्रण नहीं होगा।

3. उद्योग में नए उत्पादकों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रूकावटे हों। अर्थात् एकाधिकारी के क्षेत्र में फर्में स्वतंत्र रूप से आ जा नहीं सकती।

एकाधिकारी की परिभाषा विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्न प्रकार दी गयी हैः

प्रो0 बेन्हम के अनुसार- एकाधिकारी वस्तुतः एकमात्र विक्रेता होता है और एकाधिकारी शक्ति पूर्ति के पूर्णतः नियंत्रण पर आधारित होती है। "A monopolist is Literately a seller........and monopoly power is based entirely on central over supply." - Benham.

प्रो0 बोल्डिंग एकाधिकारी को अत्यन्त ही स्पष्ट शब्दों में पारिभाषित करने का प्रयास करते हुए कहते हैं कि- शुद्ध एकाधिकारी फर्म वह फर्म है जो कि कोई ऐसी वस्तु उत्पादित कर रही है जिसका किसी अन्य फर्म की उत्पादित वस्तुओं में कोई प्रभावपूर्ण स्थानापत्र नहीं हो। 'प्रभावपूर्ण' से यहाँ आशय यह है कि यद्यपि एकाधिकारी असाधारण लाभ कमा रहा है, तथापि अन्य फर्में ऐसी स्थानापत्र वस्तुएं उत्पन करके जो कि खरीददारों को एकाधिकारी की वस्तु से दूर कर सके, उक्त लाभों पर अतिक्रमण करने की स्थिति में नही है।''

प्रो0-चैम्बरलिन के अनुसार-''एकाधिकारी उसे समझना चाहिए जों किसी वस्तु की पूर्ति पर नियंत्रण रखता हो।''

इसी प्रकार प्रो0 लर्नर के अनुसार-'' एकाधिकारी से आशय उस विक्रेता से है जिसकी वस्तु का माँग वक्र गिरता हुआ होता है।''

"A Monopolist is any seller who is confronted with a falling demand curve for his product."- Lerner

विभिन्न अर्थशास्त्रीयों की उपर्युक्त व्याख्या से एकाधिकारी की निम्नांकित महत्वपूर्ण विशेषताए ज्ञात होती है-

एकाधिकारी की स्थिति में केवल एक ही उत्पादक या विक्रेता होता है।

एक विक्रेता होने के फलस्वरूप पूर्ति के ऊपर विक्रेता का पूर्ण नियंत्रण होता है। वह पूर्ति को घटा-बढ़ाकर वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है। अर्थात एकाधिकारी की अपनी मूल्य नीति होती है।

एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु की कोई दूसरी वस्तु नजदीक स्थानापन्न नहीं होती है। दूसरो शब्दों में एकाधिकारी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु एवं बाजार में बेंची जाने वाली अन्य वस्तुओं के बीच माँग की तिर्यक लोच शून्य होती है।

एकाधिकार में एक ही फर्म होती है जो उत्पादन करती है। अर्थात फर्म ही उद्योग है। स्पष्ट है कि एकाधिकार में फर्म तथा उद्योग में अन्तर नही रहता।

एकाधिकारी उद्योग में अन्य फर्मों की प्रविष्टि नहीं हो सकती है।

एकाधिकारी की स्थिति में मूल्य विभेद सम्भव हो सकता है। अर्थात एकाधिकारी ऐसी स्थिति में होता है जो कि अपनी उत्पादित वस्तु की विभिन्न इकाईयों को अलग -अलग उपभोक्ताओं को अलग -अलग मूल्यों पर बेच सकता है।

19.3.1 एकाधिकार के अन्तर्गत माँग व पूर्ति वक्रः-

जैसा कि आपने पिछली इकाई में यह जाना कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्मो की संख्या अपरिमित होती है, और फर्म मूल्य निर्धारक नहीं होती बल्कि उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य ही फर्मे स्वीकार करती है। कहने का अभिप्राय यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य पर फर्मे चाहे जितनी मात्रा में वस्तुओं को बेच सकती है, यही कारण है कि पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की माँग रेखा (AR) वक्र एक निश्चित मूल्य स्तर पर आधार के समानान्तर होती है। परन्तु एकाधिकारी के अन्तर्गत उद्योग में एक ही फर्म होती है अर्थात एकाधिकार में फर्म ही उद्योग होती है। एकाधिकारी फर्म की माँग वक्र की साधारण माँग वक्र तरह ही ऋणात्मक ढाल की होगी अर्थात ऊपर से नीचे दाहिने ओर गिरती हुई होगी क्योंकि कोई भी एकाधिकारी फर्म बिना मूल्य में कमी किये अपने उत्पाद की अधिक इकाईयॅा नहीं बेच सकता। आप इस तथ्य से भी अवXत हो चुके है कि उपभोक्ता का माँग वक्र ही उत्पादक ही दृष्टि से औसत आय (AR) वक्र होता है क्योंकि उपभोक्ता द्वारा दिया जाने वाला मूल्य ही विक्रेता की आय होती है। एकाधिकारी के माँग वक्र (AR) के अनुरूप ही सीमान्त आय वक्र भी नीचे गिरती हुई होती है। एकाधिकारी के अन्तर्गत नीचे गिरती

हुई MR वक्र AR से मूल्य अक्ष पर खींचे गये लम्ब को दो बराबर भागो में विभाजित करती है। एकाधिकार के अन्तर्गत AR व MR वक्रों का स्वरूप निम्नवत होता है।

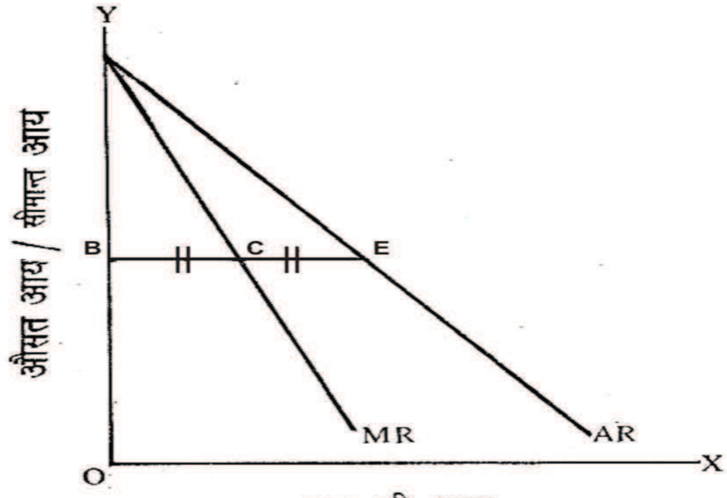

चित्र : 16.1

अतः स्पष्ट है कि जब औसत आय एक क्षैतिज वक्र हो (X अक्ष के समान्तर रेखा) जैसा कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में होता हैं तो उस स्थिति में AR=MR होगा। इसके विपरीत जब AR वक्र दाहिनी ओर गिरती हुई एक सीधी रेखा हो तो (एकाधिकार की स्थिति) उससे लम्ब-अक्ष पर खींचे गये लम्ब को MR वक्र दो बराबर भागों में विभाजित करता है। चित्र 19.1 से स्पष्ट है कि BC = CE होगी। एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण में AR, MR व माँग की लोच के मध्य गणितीय सम्बन्ध का विशेष महत्व है। इन तीनों के मध्य निम्न गणितीय सम्बन्ध होता हैः

$$MR = AR\left(1-\frac{1}{e}\right),$$ जहाँ $e =$ माँग की लोच है।

अतः $$AR = P = MR\left(\frac{e}{e-1}\right),$$

चूँकि $\left(\frac{e}{e-1}\right)$ का मान निश्चित रूप से 1 से अधिक होगा इसीलिए MR का मान AR या मूल्य (P) से कम होगा।

लागत वक्र के सन्दर्भ में प्रतियोगी फर्म और एकाधिकारी फर्म के मध्य कोई विभेद नहीं होता है। पूर्ण प्रतियोगी फर्म की तरह ही एकाधिकारी की ।टब्ूए MC तथा AC अंग्रेजी के U आकार की तथा औसत स्थिर लागत (AFC) समकोणीय अतिपरवलय होगी। बाजार के इन दोनों स्वरूपों में सबसे

ज्यादा स्मरणीय तथ्य पूर्ति वक्र के सन्दर्भ में होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में चूँकि सीमान्त लागत, मूल्य के बराबर होता हैं। अतः MC वक्र के प्रत्येक बिन्दु विभिन्न बिन्दुओं पर फर्म द्वारा पूर्ति की जाने वाली वस्तु की मात्रा को प्रदर्शित करते हैं, इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में MC वक्र ही फर्म की पूर्ति वक्र होती है। इसके विपरीत एकाधिकार MR वक्र AR वक्र से नीचे होता है अतः MR ृ= MC का समता बिन्दु निश्चित रूप से AR वक्र के नीचे होगा। ऐसी स्थिति में MC वक्र के बिन्दु न तो मूल्य को प्रदर्शित करेंगे और न ही एकाधिकारी द्वारा विभिन्न मूल्यों पर बेंची जाने वाली मात्राओं को ही प्रदर्शित करेंगे। अतः स्पष्ट है कि एकाधिकार में पूर्ति वक्र का कोई निश्चित स्वरूप नहीं निर्धारित किया जा सकता।

19.4 एकाधिकार के अन्तर्गत संस्थिति व मूल्य निर्धारण-

पिछली इकाई में आपने पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत संस्थिति व मूल्य निर्धारण के सन्दर्भ में दो रीतयों - TR.TC विधि एवं MR.MC विधि को विस्तर से जाना। पूर्ण प्रतियोगी फर्म की ही तरह एकाधिकारी फर्म की संस्थिति को ज्ञात करने के दो तरीके होतें हैं-

1.कुल आगम- कुल लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन (TR.TC विधि)

2.सीमान्त आय व सीमान्त लागत वक्रो द्वारा सन्तुलन (MR.MC विधि)

इसी प्रकार पूर्ण प्रतियोगी फर्म की ही तरह एकाधिकारी फर्म भी अल्पकाल तथा दीर्घकाल, दोनों में क्रियाशील हो सकती है। अतः अब हम एकाधिकार के अन्तर्गत उत्पादन तथा मूल्य निर्धारण का विश्लेषण अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों के अन्तर्गत करेंगे।

19.4.3 अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म का सन्तुलन विश्लेषण-

अल्पकाल की प्रमुख विशेषता यह है कि एकाधिकारी फर्म एक दिये हुए प्लान्ट पर ही कार्य करेगी क्योकि वह इस अवधि में प्लांट के आकार में परिवर्तन नहीं ला सकती है। माँग में वृद्धि या कमी के अनुसार पूर्ति में समायोजन वह परिवर्तनीय साधनों मे परिवर्तन के द्वारा ही कर सकती है। वस्तुतः एकाधिकारी के विषय में एक सामान्य धारणा यह होती है कि उसे हानि नहीं हो सकती है क्योंकि वह एकाधिकारी है परन्तु सच्चाई यह है कि एकाधिकारी लाभ की मात्रा उसकी माँग तथा लागत की दशाओं पर निर्भर करती है। अतः अल्पकाल में एकाधिकारी को असामान्य लाभ (AR > AC) सामान्य लाभ (AR = AC) तथा हानि (AR < AC)तीनों ही स्थितियों का सामना करना पड़ सकता है। इन तीनों स्थितियों को हम चित्रों की सहायता से स्पष्ट कर रहे है।

(i) असामान्य लाभ **(AR > AC):-.**

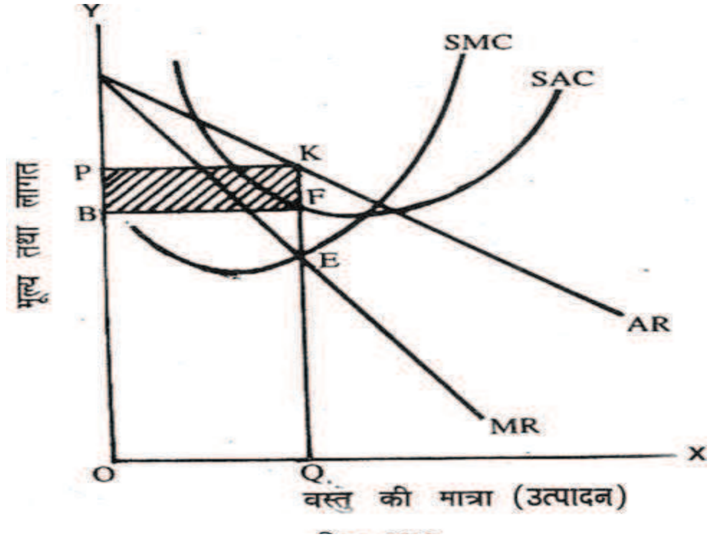

चित्रानुसार SAC अल्पकालीन औसत लागत वक्र है जो एकधिकारी फर्म के उस प्लाण्ट से सम्बन्धित है जिस पर वह उत्पादन कर रही है। AR तथा MR वक्र क्रमशः औसत आय व सीमान्त आय वक्र है। जबकि SAC तथा SMC अल्पकालीन औसत लागत वक्र एवं अल्पकालीन सीमान्त लागत को प्रदर्शित करते है। एकाधिकारी मूल्य तथा उत्पादन वहाँ निर्धारित करेगा जहॉ MR=MC है। चित्र में SMC वक्र MR को E बिन्दु पर काटता है। E से उत्पादन अक्ष पर खीचा गया लम्ब, अधिकतम लाभ के उत्पाद मात्रा OQ का निर्धारण करता है। OQ से सम्बन्धित AR का बिन्दु (K) मूल्य को बताएगा क्योंकि मूल्य (P) = औसत आय (AR) इस प्रकार चित्र से स्पष्ट है-

संस्थिति उत्पाद=OQ

मूल्य(Price)=OP(या KQ)

औसत लागत (AC)=QF

अतः प्रति इकाई लाभ =QK-KF=FK

अतः कुल लाभ=FK×OQ=क्षे0PKFB

(ii) सामान्य लाभ–(AR = AC):-

एकाधिकारी फर्म अल्पकाल में सामान्य लाभ भी प्राप्त कर सकती है। इसे चित्र 19.2 में स्पष्ट किया गया है।

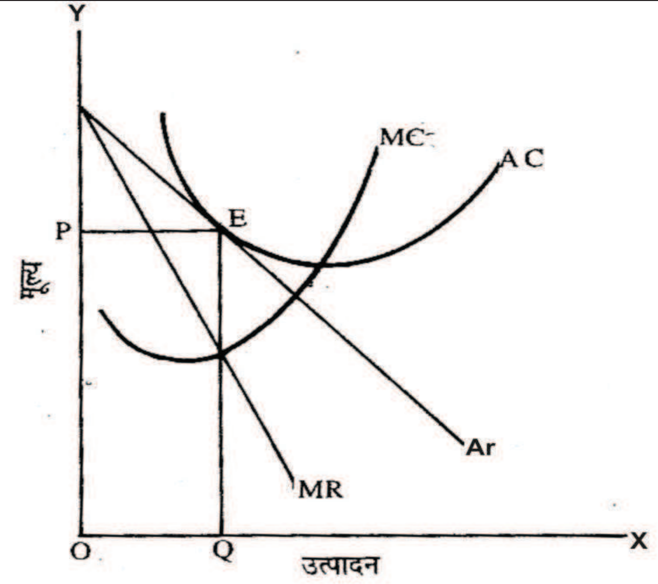

चित्र से स्पष्ट है कि -

संस्थिति उत्पादन = OQ

संस्थिति मूल्य (AR)=OP=QE

औसत लागत (AC) = QE

स्पष्ट है कि AR=AC

चूँकि P=AC अतः फर्म केवल सामान्य लाभ ही अर्जित कर रही है।

(iii) हानि की स्थिति–(AR < AC):-.

अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म हानि भी प्राप्त कर सकती है। अल्पकाल में हानि सहने वाले एकाधिकारी फर्म को रेखांचित्र 19.3 मे स्पष्ट किया गया है।

स्पष्ट है कि अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र (SMC)सीमान्त आय (MR)वक्र को E बिन्दु पर काटती है। अतः चित्रानुसार -

संस्थिति उत्पादन = OQ

प्रति इकाई मूल्य (P)=OP=QE

औसत लागत (AC)=OA=QC

अतः प्रति इकाई हानि = AC - P=OA-OP=AP=CE

अतः कुल हानि =AP×PE=CE×OQ =क्षे0 ACEP (रेखांकित भाग का क्षेत्रफल)

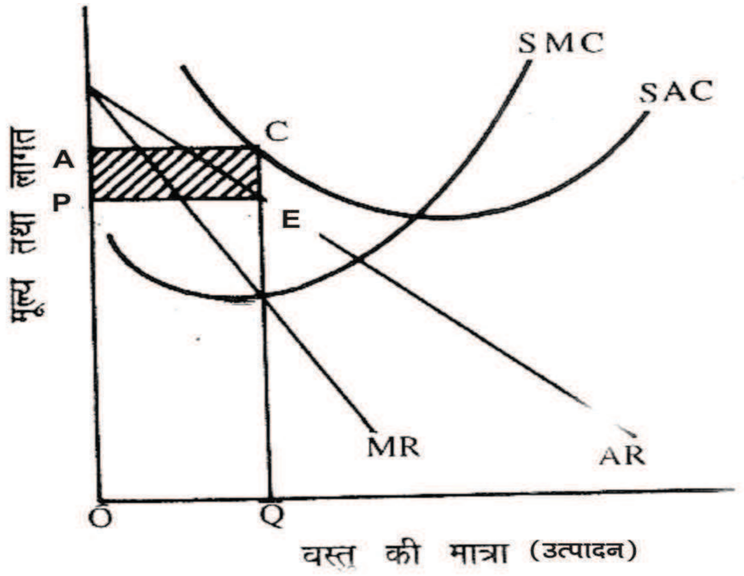

चित्र : 16.5

सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कोई भी एकाधिकारी फर्म अल्पकाल में हानि की स्थिति में कब तक कार्य करती रहेगी। जैसा कि आपने पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत जाना होगा कि जब तक फर्म के उत्पाद का मूल्य (P),उसके औसत परिवर्तनशील लागत(AVC) से ऊपर रहेगा, फर्म हानि पर उत्पादन करती रहेगी और जब मूल्य इससे कम हो जाता है, (अर्थात P<AVC) तो फर्म अपने प्लान्ट को बन्द कर देती है। यही स्थिति एकाधिकारी फर्म के सन्दर्भ में भी लागू होती है।

19.4.4 दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म का सन्तुलन विश्लेषण

एकाधिकारी फर्म को अल्पकाल में चाहे सामान्य लाभ हो या हानि किन्तु दीर्घकाल में उसे सदैव लाभ होता है। क्योंकि यह अकेला उत्पादक होता है और दीर्घकाल में इतना पर्याप्त समय मिल जाता है कि फर्म उत्पादन के आवश्यकतानुसार अपने प्लाण्ट के आकार में वृद्धि ला सकती है या दिये हुये प्लाण्ट को ही किसी स्तर तक प्रयोग में ला सकती है जिससे उसका लाभ अधिकतम् हो सके। वस्तुतः एकाधिकारी फर्म दीर्घकाल में सामान्यतया असामान्य लाभ अर्जित करती रहेगी जबकि पूर्ण प्रतियोगी फर्म दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त करती है। दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म प्लाण्ट के आकार तथा वर्तमान प्लाण्ट को किस स्तर तक प्रयुक्त करेगी, यह बाजार माँग के ऊपर निर्भर करेगा। एकाधिकारी फर्म दीर्घकाल में बाजार माँगके अनुरूप दीर्घकालीन

औसत लागत (LAC) के न्यूनतम बिन्दु, LAC के गिरते हुए भाग या LACके ऊपर उठते हुए भाग किसी भी बिन्दु पर उत्पादन कर सकती है। दीर्घकाल में असामान्य लाभ को प्रदर्शित करने वाले फर्म की संस्थिति को निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट किया गया है।

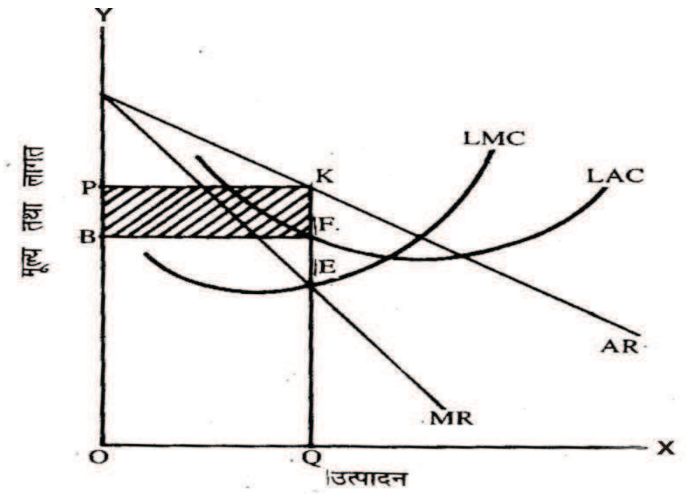

चित्र : 16.6

चित्र में LACदीर्घकालीन औसत लागत वक्र है तथा LMC दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र है।

LMC, MR को E बिन्दु पर काटता है, जिससे सन्तुलन कीमत OP तथा सन्तुलन उत्पाद OQ का निर्धारण होता है। चूंकि प्रति इकाई औसत लागत QF या OB है। अतः प्रति इकाई लाभ = OP - OB = PB

अतः कुल असामान्य लाभ = OQ×PB=PBKF

रेखाचित्र 19.4 से यह भी स्पष्ट है कि एकाधिकारी फर्म की सन्तुलन स्थिति LAC के न्यूनतम बिन्दु पर नहीं है। F बिन्दु LAC के गिरते हुए भाग में स्थित है। वस्तुतः LAC के किस भाग में एकाधिकारी उत्पादन करेगा, यह AR तथा MR के आकार पर निर्भर करेगा।

दीर्घकालीन एकाधिकारी फर्म के सम्बन्ध में एक तथ्य और भी महत्वपूर्ण है कि वह दीर्घकाल में अपनी स्थित प्लान्टों में से कुछ को बेचकर उत्पादन क्षमता कम कर सकता है या नये प्लान्टों को लगाकर उत्पादन क्षमता बढ़ा सकता है। अतः दीर्घकाल में एकाधिकारी उद्योग के विस्तार या संकुचन के कारण एकाधिकारी के लिए कुछ उत्पत्ति के साधनो की लागत में वृद्धि या कमी हो सकती है, फलस्वरूप एकाधिकारी उद्योग , दीर्घकाल में बढ़ती हुई, घटती हुई या स्थिर लागत के अन्तर्गत उत्पादन करेगा। अतः दीर्घकाल में मूल्य निर्धारण के क्रिया के ऊपर उत्पादन के तीनों नियमों के प्रभावों को हम निम्नलिखित रेखाचित्रों 19.7, 19.8 तथा 19.9 के अन्तर्गत स्पष्ट कर रहे है।

1. **लागत वृद्धि नियम लागू होने पर-** लागत वृद्धि नियम के अन्तर्गत एकाधिकारी की स्थिति को चित्र 19.7 में प्रदर्शित किया गया है।

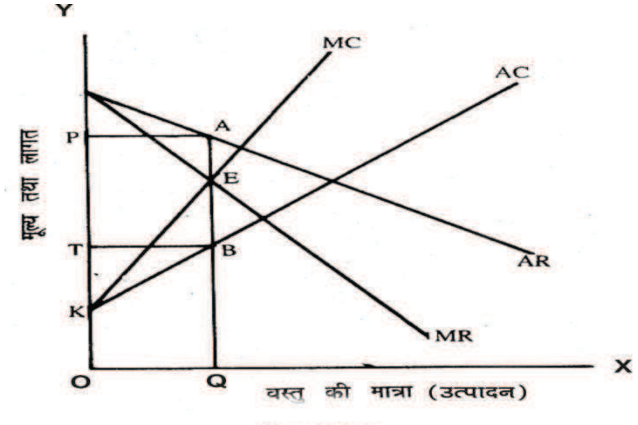

चित्र :16.7

चित्रानुसार लागत रेखाएँ ACऔर MC ऊपर की ओर बढ़ती हुई है, MCए MR को E बिन्दु पर काटती है। अतः एकाधिकारी OQ वस्तु का उत्पादन करेगा। इस OQ उत्पादन पर औसत आय OP है। इसी OP मूल्य पर फर्म का लाभ अधिकतम होगा और फर्म को कुल PABT के क्षेत्रफल के बराबर लाभ प्राप्त होगा।

2. **लागत ह्रास नियम लागू होने पर**:- एकाधिकारी को लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत कार्य करने की स्थिति को चित्र 19.8 में प्रदर्शित किया गया है।

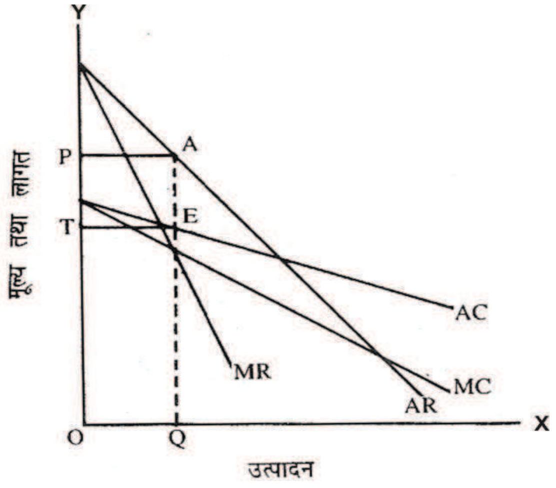

चित्र :16.8

स्पष्ट है कि इस स्थिति में उत्पादन के साथ-साथ लागत घटती जाती है। ऐसी स्थिति में एकाधिकारी कम से कम मूल्य रखकर अधिक से अधिक उत्पादन करना चाहेगा। चित्रानुसार MR तथा MC की समानता के आधार पर सन्तुलन उत्पाद OQ का निर्धारण होता है।

संस्थिति मूल्य = OP

औसत लागत (AC)=OT

चूकि प्रति इकाई लाभ =OP-OT=PT

अतः कुल लाभ- PT×OQ=क्षे0 PTEA

3. **स्थिर - लागत नियम लागू होने पर**- एकाधिकारी की लागत स्थिरता नियम या स्थिर - लागत नियम के अन्तर्गत कार्य करने की स्थिति को रेखाचित्र 19.9 में प्रदर्शित किया गया है।

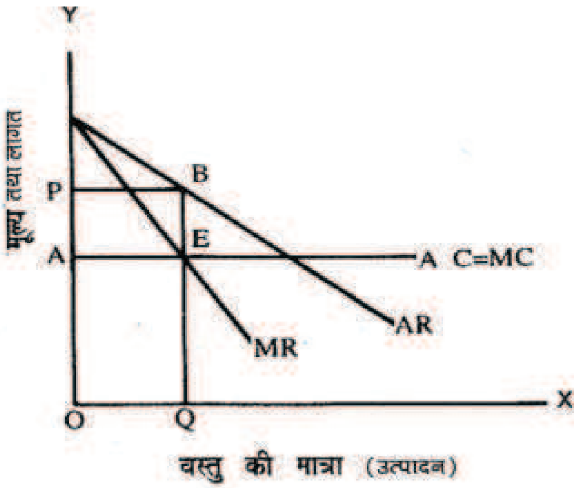

चित्र :16.9

चित्रानुसार MR तथा MC के द्वारा सन्तुलन उत्पाद OQ का निर्धारण होता है।
सन्तुलन मूल्य प्रति इकाई =OP है।
औसत लागत (AC) प्रति इकाई = OA है।
लाभ प्रति इकाई = OP-OA=PA
अतः कुल लाभ = OQ×PA= क्षे0 PAEB

19.4.5 क्या एकाधिकारी कीमत सदैव प्रतियोगी कीमत से ऊँची होती है ?

चूंकि एकाधिकारी अपने क्षेत्र में अकेला होता है, उसका पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है तथा वह अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है। एक सामान्य धारणा यह पनपती है कि एकाधिकारी कीमत प्रतियोगी कीमत से बहुत अधिक ऊँची होती है। वास्तविकता यह है कि यद्यपि कुछ स्थितियों में यथा अल्पकाल में एकाधिकारी कीमत नीची हो सकती है, और उसे केवल

सामान्य लाभ प्राप्त हो या हानि भी हो सकती है परन्तु प्रायः एकाधिकारी कीमत निःसंदेह प्रतियोगी कीमत से अधिक होती है और एकाधिकारी अतिरिक्त लाभ अर्जित करता है।

एकाधिकारी वस्तु की कीमत कितनी ऊँची होगी यह माँग की लोच तथा लागत के व्यवहार पर निर्भर करेगी। एक एकाधिकारी मूल्य तथा उत्पादन निर्धारित करते समय सदैव अपनी मूल्य लोच को ध्यान में रखता है। वस्तुतः एकाधिकारी मूल्य वहाँ निर्धारित करता है जहाँ वस्तु की मूल्य लोच इकाई से अधिक ($e>1$)हो। यदि एकाधिकारी वस्तु की माँग बेलोचदार है तो एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत ऊँची रख सकेगा और ऐसा करने से उसकी बिक्री की मात्रा में कोई विशेष कमी नही होगी। इसके विपरीत यदि माँग अत्यधिक लोचदार है तो एकाधिकारी को वस्तु की कीमत नीची रखनी पड़ेगी जिससे वस्तु की अधिक मात्रा में बेंचकर वह अपने लाभ कों अधिकतम् कर सके।

यद्यपि कुछ दशाओं में एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत को प्रतियोगी कीमत से नीची रख सकता है-

यदि एकाधिकारी 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत उत्पादन कर रहा है, तो वह अपनी वस्तु को अपेक्षाकृत नीची कीमत रखकर अपने लाभ को अधिकतम करेगा।

यदि किसी क्षेत्र में उत्पत्ति के बड़े पैमाने की बचतों के परिणामस्वरूप एकाधिकारी स्थिति प्राप्त की जा सकती है, तो इस स्थिति में एकाधिकारी वस्तु का बड़े पैमाने पर उत्पादन करके वस्तु की प्रति इकाई लागत को कम करेगा। फलतः वह अपने वस्तु की कीमत को प्रतियोगी कीमत से कम रखेगा।

उपर्युक्त परिस्थितियों के अतिरिक्त एकाधिकारी वस्तु की कीमत सदैव प्रतियोगी कीमत से ऊँची रहती है।पिछली इकाई के अन्तर्गत पूर्ण प्रतियोगिता तथा इस इकाई में एकाधिकार के बारे में विशद जानकारी प्राप्त करने के पश्चात अब पूर्ण प्रतियोगी बाजार तथा एकाधिकारी बाजार के मध्य महत्वपूर्ण अन्तरों को हम सारांश रूप में निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं -

क्र0 सं0	**तुलना का आधार**	**पूर्ण प्रतियोगिता**	**एकाधिकारी**
1.	फर्मो की संख्या	अपरिमित या अत्यधिक	एक
2.	फर्मों का प्रवेश	स्वतंत्र प्रवेश	प्रवेश पूर्णतया वर्जित
3.	वस्तु का स्वभाव	पूर्णतः सहजातीय	पूर्ण सहजातीय, नजदीकी स्थानापन्न नहीं।
4.	उत्पादन व मूल्य निर्धारण	केवल उत्पादन समायोजन, मूल्य निर्धारण नहीं (फर्मे केवल मूल्य स्वीकारक होती है)	उत्पादन तथा मूल्य दोनों का निर्धारण

5.	आय वक्र का स्वरूप, AR व MR के मध्य सम्बन्ध	AR तथा MR आधार अक्ष के समान्तर होते हैं तथा ARए MR तथा लोच (e) के मध्य कोई संबंध नहीं	AR तथा MR नीचे गिरते हुए होते हैं। AR,MR तथा e के मध्य सम्बन्ध- $MR = AR\left(1-\frac{1}{e}\right)$
6.	पूर्ति वक्र व लागत वक्र का स्वरूप	पूर्ति वक्र निर्धार्य तथा अल्पकाल में MC से सम्बन्धित होती है। जबकि लागत वक्र U आकार का होता है।	पूर्ति वक्र MC से सम्बन्धित नहीं तथा अनिर्धाय, लागत वक्र U आकार में है।
7.	संस्थिति की स्थिति	दीर्घकालीन संस्थिति में AR = MR = AC= MC	दीर्घकालीन संस्थिति में MR त्र MC तथा AR इससे अधिक होता है। अर्थात् (MR= MC < AR)
8.	लाभ की स्थिति (i) अल्पकाल में (ii) दीर्घकाल में	सामान्य लाभ, असामान्य लाभ तथा हानि तीनों स्थितियां संभव है। केवल सामान्य लाभ	सामान्य लाभ, असामान्य लाभ एवं हानि तीनों स्थितियां संभव है। केवल असामान्य लाभ
9.	मूल्य तथा उत्पादन क्षमता	दीर्घकाल मे ACके न्यूनतम बिन्दु पर, निष्क्रिय उत्पादन क्षमता का अभाव साधनों का अनुकूलतम व पूर्ण शोषण	दीर्घकाल में उत्पादन ACके न्यूनतम बिन्दु से बायी ओर निष्क्रिय उत्पादन क्षमता। मूल्य अपेक्षाकृत ऊँचा तथा उत्पादन कम
1(	उपभोक्ता का शोषण	उपभोक्ता की दृष्टि से उत्तम	उपभोक्ता का शोषण

अभ्याय प्रश्न-1

1. लघु उत्तरीय प्रश्नः-

क. एकाधिकारी का अर्थ बताइए? इसकी प्रमुख विशेषतायें क्या हैं?

ख. एकाधिकार के अन्तर्गत अल्पकाल में फर्म के लाभ को रेखाचित्र से प्रदर्शित कीजिए।

ग. एकाधिकारी व पूर्ण प्रतियोगी फर्म में पॉच प्रमुख अन्तर बताइए।

घ. एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण की शर्त क्या है?

2. **निम्न कथनो में सत्य/असत्य कथन बताइए-**

(क) एकाधिकार के अन्तर्गत फर्मों की अपरिमित संख्या होती है।

(ख) एकाधिकारी मूल्य, प्रतियोगी मूल्य से सदैव अधिक होती है।

(ग) एकाधिकार को अल्पकाल में केवल लाभ ही होता है, हानि नहीं।

(घ) मूल्य विभेदीकरण पूर्ण प्रतियोगिता में भी संभव हो सकता है।

(ड.) एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य या मात्रा दोनों में से कोई भी निर्धारित कर सकता है।

(च) दीर्घकाल में एकाधिकारी सदैव असामान्य लाभ ही प्राप्त करता है।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) एकाधिकारी फर्म होती है-

(A)केवल कीमत नियोजक है (B) केवल मात्रा नियोजक

(C) कीमत नियोजक व मात्रा नियोजक दोनो (D) उपर्युक्त सभी असत्य

(ख) एकाधिकारी सन्तुलन के लिए सत्य होगा-

(A) $AR < MR$ (B) $TR = TC$

(C) $AR > MR$ (D) $AR = MR$

(ग) एकाधिकारी के लिए निम्नांकित में से कौन सा सत्य है?

(A) $MR = AR\left(1-\frac{1}{e}\right)$ (B) $MR = AR\left(1+\frac{1}{e}\right)$

(C) $MR = AR\left(\frac{1-e}{e}\right)$ (D) $MR = AR\left(\frac{e}{1-1}\right)$

(घ) एक एकाधिकारी अपनी वस्तु का उत्पादन वहाँ हमेशा करेगा जहाँ उसकी औसत आय की लोच -

(A) इकाई से अधिक हो (B) इकाई से कम हो

(C) शून्य हो (D)तीनों में से कोई भी

(ड.)अल्पकाल में एकाधिकारी का तालाबन्दी बिन्दु वहॉ होगा, जहॉ-

(A) AVC (B) $TR = TVC$

(C) $P = AFC$ (D) इनमें से कोई नहीं

(च) एकाधिकार के अन्तर्गत सत्य है-

(A) फर्म व उद्योग एक ही होते हैं (B) फर्म स्वयं कीमत निर्धारक होती है।

(C) नयी फर्मों के प्रवेश में प्रभावपूर्ण रूकावटें (D) उपर्युक्त सभी

19.5 मूल्य - विभेदीकरण अथवा विभेदात्मक एकाधिकार

वस्तुओं की समान ईकाइयों के लिए भिन्न-भिन्न क्रेताओं से अलग -अलग मूल्य प्राप्त करने की क्रिया को 'मूल्य विभेदीकरण' कहते हैं। जब एकाधिकारी अपनी वस्तु को विभिन्न बाजारों में या विभिन्न ग्राहकों को भिन्न-भिन्न मूल्य पर बेंचता है तो उसे विभेदात्मक एकाधिकार कहा जाता है।

श्रीमती जॉन राबिन्सन के अनुसार - ''एक ही वस्तु को जिसका उत्पादन एक ही उत्पादक द्वारा किया जाता है, भिन्न-भिन्न क्रेताओं को भिन्न-भिन्न मूल्यों पर बेचने की क्रिया को मूल्य विभेद कहते हैं।''

स्टिगलर इसे अत्यन्त संक्षेप में परिभाषित करते हुए कहते हैं कि- ''समान वस्तु के लिए दो या दो से अधिक मूल्य प्राप्त करने को मूल्य-विभेद कहते हैं।''

आप इस तथ्य से अवगत हो रहे होंग कि मूल्य विभेद या कीमत विभेदीकरण क्रिया के अन्तर्गत एक विक्रेता विभिन्न उपभोक्ताओं को कोई पदार्थ भिन्न-भिन्न कीमतों पर बेंचता है। आइए एक उदाहरण से समझते हैं- यदि किसी मशीन (जैसे रेफ्रीजरेटर) का निर्माता एक क्रेता से 5 हजार रूपये प्राप्त करता है और उसी ब्राण्ड या किस्म के रेफ्रीजरेटर को दूसरे ग्राहक या क्रेता को 5,500 रू0 में बेंचता है तो यह कहा जायेगा कि वह कीमत विभेदीकरण या मूल्य विभेद कर रहा है। एक समान पदार्थ की विभिन्न क्रेताओं से भिन्न-भिन्न कीमतें प्रायः तीन आधारों पर वसूल की जाती है-

(i) **व्यक्तिगत मूल्य विभेदीकरण**- यह विभेदीकरण तब होता है जब एक विक्रेता विभिन्न व्यतिओं से वस्तु की भिन्न-2 कीमतें वसूल करता है।

(ii) **स्थानीय मूल्य विभेदीकरण**- मूल्य विभेदीकरण स्थानीय तब होता है जब विक्रेता विभिन्न स्थानों, नगरों अथवा क्षेत्रों के लोगों से भिन्न-भिन्न कीमतें वसूल करता है। जैसे- यदि कोई उत्पादक किसी वस्तु को अपने देश में किसी कीमत पर बेंचे और विदेश में भिन्न कीमत पर बेचें।

(iii) **उपयोग या व्यवसाय के अनुसार**- मूल्य विभेदीकरण उपयोग या व्यवसाय के अनुसार तब होता है जब वस्तु की भिन्न-भिन्न कीमतें वस्तु के विभिन्न प्रयोगों के अनुसार वसूल की जाती है। उदाहरणार्थ - बिजली घरेलू प्रयोजनों के लिए कम दर पर वसूली जाती है जबकि औद्योगिक उपयोग के लिए ऊँची दर वसूली जाती है।

मूल्य विभेदीकरण के सम्बन्ध में यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत यह विभेद संभव नहीं है क्योंकि इसमें वस्तु की एकसमान (सहजातीय) इकाईयाँ होती हैं तथा क्रेता को बाजार का पूर्ण ज्ञान रहता है। यदि कोई विक्रेता किसी वस्तु के लिए अधिक मूल्य वसूल करेगा तो उसके सभी ग्राहक उस विक्रेता को छोड़कर दूसरे विक्रेता के पास चले जायेंगे। अतः स्पष्ट है कि मूल्य विभेदीकरण केवल एकाधिकार में ही संभव है। एकाधिकारी मूल्य विभेदीकरण क्रिया अपने लाभ को अधिकतम करने हेतु अपनाता है।

19.5.1 मूल्य विभेदीकरण की कोटियाँ-

प्रख्यात अर्थशास्त्री प्रो0 ए0सी0 पीगू मात्रा- के आधार पर विभेदीकरण को तीन कोटियो में वर्गीकृत करते हैं-

(i) प्रथम कोटि का मूल्य विभेदीकरण
(ii) द्वितीय कोटि का मूल्य विभेदीकरण
(iii) तृतीय कोटि का मूल्य विभेदीकरण

आइये हम इन तीनों कोटियों के मूल्य विभेदीकरण के संक्षेप में जानने का प्रयास करते हैं

(1) प्रथम कोटि का मूल्य विभेदीकरण- प्रथम कोटि का मूल्य विभेदीकरण तब होगा जबकि एकाधिकारी प्रत्येक क्रेता को उतने मूल्य पर अपनी वस्तु की प्रत्येक इकाई बेचने में सफल हो जाय जितना अधिक से अधिक वह देने के लिए तैयार होता है। अर्थात् इस स्थिति में उपभोक्ता के पास कुछ भी उपभोक्ता की बचत शेष नहीं रह पाती। श्रीमती जॉन राक्सिन इसे ''पूर्ण मूल्य विभेदीकरण'' की संज्ञा देती है।

प्रथम कोटि के मूल्य विभेदीकरण को रेखाचित्र 19.8 (1) में प्रदर्शित किया गया है। चित्रानुसार वस्तु की पहली इकाई के लिए उपभोक्ता OD मूल्य देने के लिए तत्पर है और विक्रेता इस इकाई को उसी OD मूल्य पर बेंच भी देता है। इसी प्रकार वह वस्तु की प्रत्येक इकाई को मांग वक्र के प्रत्येक बिन्दु से व्यक्त होने वाले मूल्यों पर बेच देता है।

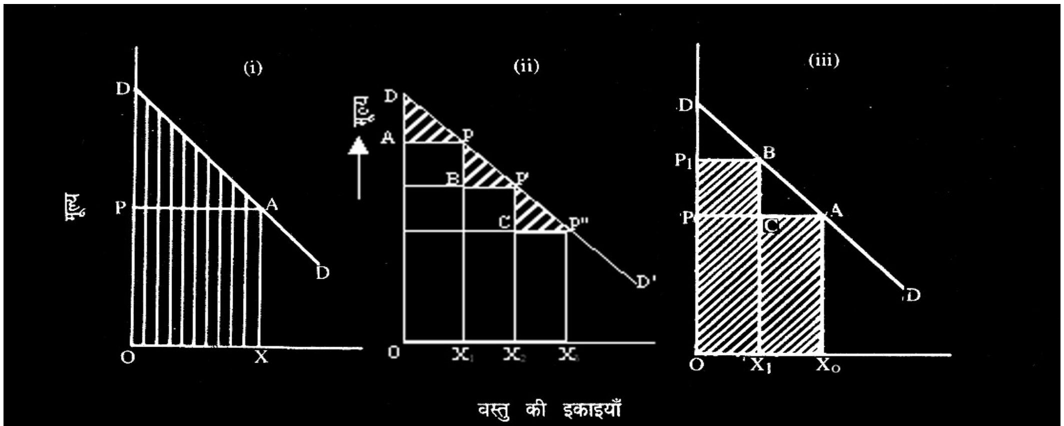

(2) द्वितीय कोटि का मूल्य विभेदीकरण - द्वितीय कोटि का मूल्य विभेदीकरण तब होगा जब एकाधिकारी दो से अधिक मूल्य लेने की स्थिति में हों। अर्थात् इसके अन्तर्गत एकाधिकारी उपभोक्ताओं को उनके द्वारा वस्तु के लिए कीमत देने के आधार पर विभिन्न वर्गों में बाँटा जाता है और प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों से उतनी कीमत प्राप्त की जाती है जितनी उस वर्ग में से कम से कम कीमत चुकाने को कोई तैयार होता है। इसे चित्र 19.8 (ii) में प्रदर्शित किया गया है। चित्रानुसार DD

वस्तु का मांग वक्र है तथा वस्तु की मांग को तीन वर्गों .OX_1, OX_2 तथा OX_3 में बाँटा गया है। वस्तु की X_1 इकाई के लिए कोई उपभोक्ता X_1P कीमत देने को तैयार है। अतः इस वर्ग के सभी उपभोक्ताओं से जो इससे अधिक कीमत देने को तैयार होते हैं, से भी X_1P कीमत ही वसूली जायेगी। परिणामस्वरूप X_1P से ऊँची कीमतें देने को तैयार उपभोक्ताओं को कुछ उपभोक्ता अतिरेक प्राप्त होगा जिसे चित्र में छायांकित किया गया है। इसी प्रकार दूसरे व तीसरे वर्गों के लिए भी उपभोक्ता बचतों को रेखांकित किया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि द्वितीय कोटि के मूल्य विभेदीकरण में एकाधिकारी अपने क्रेताओं या उपभोक्ताओं को विभिन्न वर्गों में इस प्रकार बांटता है कि वह प्रत्येक वर्ग से भिन्न-2 कीमतें वसूल करता है। प्रत्येक वर्ग से उतनी कीमत प्राप्त करता है जितनी उसका सीमान्त क्रेता देने को तैयार रहता है।

(3) तृतीय कोटि का मूल्य विभेदीकरण- तृतीय कोटि का विभेदीकरण ही प्रायः पाया जाता है। तृतीय कोटि के मूल्य विभेदीकरण की स्थिति तब होती है जब एकाधिकारी अपनी वस्तु के उपभोक्ताओं को दो या दो से अधिक मार्केटों अथवा वर्गों में विभक्त कर देता है और इन विभिन्न मार्केटों के उपभोक्ताओं से भिन्न-भिन्न कीमतें प्राप्त करता है। प्रत्येक, मार्केटों अथवा वर्ग से वसूल की गयी कीमत उसमें पदार्थ के लिए मांग तथा उसमें विक्रय की जाने वाली उत्पादन मात्रा पर निर्भर करती है। वस्तुतः तृतीय कोटि के मूल्य विभेदीकरण में प्रत्येक मार्केट अथवा वर्ग से उसके सीमान्त क्रेता द्वारा दी जाने वाली न्यूनतम कीमत नहीं प्राप्त की जाती बल्कि उसमें निश्चित कीमत उसमें मांग की मूल्य लोच तथा उसमें की जाने वाली वस्तु की आपूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

तृतीय कोटि के विभेदीकरण को चित्र 19.8 (iii) में प्रदर्शित किया गया है। इसमें DD मांग रेखा है जो वास्तव में किसी वस्तु के उपभोग से वंचित रहने की स्थिति में मूल्य देने की तत्परता व्यक्त करती है। इस प्रकार यदि एकाधिकारी एक ही मूल्य OP रखता तो उपभोक्ता की बचत PDA होती और एकाधिकारी की आय $OPAX_O$ होती। अब यदि एकाधिकारी OX_1 वस्तु को OP_1 मूल्य पर बेचता तथा शेष X_1Xo मात्रा OP मूल्य पर बेचता तो उसकी आय में PP_1BC के बराबर वृद्धि हो जाएगी जो वास्तव में उपभोक्ता की बचत थी।

वास्तविक आर्थिक जगत में प्रायः तृतीय प्रकार का ही मूल्य विभेदीकरण पाया जाता है। जैसे- एक बिजली आपूर्ति कम्पनी द्वारा घरों में प्रकाश के लिए तथा उत्पादकों से औद्योगिक उत्पादन हेतु बिजली का भिन्न-भिन्न शुल्क प्राप्त करना आदि।

19.5.2 मूल्य विभेदीकरण की अनिवार्य दशाएँ-

मूल्य विभेदकरण सम्भव होने के लिए दो आधारभूत शर्तों का होना आवश्यक है:-

(1) मूल्य विभेदीकरण तब हो सकता है जबकि वस्तु की इकाई एक बाजार से दूसरे बाजार में हस्तान्तरित न हो सकती हो। अर्थात् कोई एकाधिकारी मूल्य विभेदीकरण तभी कर सकता है जबकि वह ऐसे विभिन्न बाजारों में वस्तु को बेच रहा होता है जो इस प्रकार पृथक होती है कि एक बाजार में बेची गयी वस्तु को दूसरे बाजार में नहीं ले जाया या बेचा जा सकता है।

(2) मूल्य विभेदीकरण की दूसरी आधारभूत शर्त यह है कि स्वयं क्रेताओं के लिए भी सम्भव न हों कि वे अपने को महंगे बाजार से सस्ते बाजार में हस्तांतरित कर सके। अर्थात् कीमत विभेदीकरण होने के लिए न तो वस्तु की कोई इकाई और न ही मांग की कोई इकाई (अर्थात् उपभोक्ता) एक बाजार से दूसरे बाजार तक जा सके।

उदाहरणार्थ- यदि एक डाक्टर निर्धन व्यक्ति से धनी व्यक्ति की तुलना में कम फीस वसूल करता है तो उसके द्वारा किया जा रहा मूल्य विभेदीकरण उस स्थिति में टूट जायेगा जबकि एक धनी व्यक्ति अपने को निर्धन दिखाकर निर्धन वाली फीस डाक्टर को देता है।

अतः मूल्य विभेदीकरण हेतु एकाधिकारी की शक्ति बाजारों को पृथक-पृथक रखने की शक्ति पर निर्भर करता है। मूल्य विभेदीकरण के लिए यह भी आवश्यक है कि एक उपभोक्ता द्वारा दूसरे उपभोक्ता को पुनः बिक्री की कोई सम्भावना न रहे।

कई परिस्थितियों के कारण भी एकाधिकारी विभिन्न बाजारों को पृथक पृथक रख सकता है। ये निम्नांकित हैः-

(क) उपभोक्ता का स्वभावः-

(i) उपभोक्ता को यह ज्ञात न हो कि दूसरा व्यक्ति उसी वस्तु के लिए कम मूल्य दे रहा है।

(ii) मूल्य विभेदीकरण तब संभव होगा जब उपभोक्ता यह समझे कि वह किसी वस्तु के लिए अधिक मूल्य इसलिए दे रहा है कि क्योंकि जो वस्तु वह खरीद रहा है, वह अन्य वस्तुओं से उत्तम है।

(iii) मूल्य विभेद उस समय भी संभव होता है जब मूल्य का अन्तर इतना कम हो कि उपभोक्ता उसका ध्यान ही न दे।

(ख) वस्तु की प्रकृतिः-

(i) जब वस्तु अथवा सेवा को पुनः हस्तान्तरित नहीं किया जा सके। जैसे डाक्टर एवं वकीY की सेवाओं में मूल्य-विभेदीकरण अधिक संभव होता है। डाक्टर अपनी सेवाओं के लिए धनी व्यक्ति से अधिक तथा गरीब व्यक्ति से कम मूल्य लेता है।

(ii) वस्तु ऐसी हो जिसकी पूर्ति आर्डर प्राप्त होने पर ही हो, ऐसी दशा में बहुत ही आसानी से मूल्य विभेदीकरण सम्भव है।

(ग) दो बाजारों के बीच की दूरी तथा भौगोलिक सीमाः-

(i) यदि दो बाजार एक दूसरे से इतने दूर हों कि एक बाजार से दूसरे बाजार तक पहुंँचने में यातायात-व्यय, दोनों बाजारों में वस्तुओं के मूल्य के अन्तर से अधिक हो तो कोई भी उपभोक्ता मूल्य के अन्तर को जानने के पश्चात् भी एक बाजार से दूसरे बाजार तक जाना उचित नहीं समझेगा।

(ii) सीमाओं की बाधाओं के कारण भी मूल्य विभेदीकरण संभव हो जाता है। सीमावर्ती प्रदेशों में जहाँ दो देशों की सीमाएँ मिल ती हैं तथा जहाँ वस्तुओं के आयात-निर्यात पर प्रतिबन्ध हो, वहाँ समीप होने के बावजूद भी दो बाजारों में मूल्य विभेदीकरण हो सकता है।

(घ) कानूनी स्वीकृति के कारणः-

कुछ दशाओं में सरकार एकाधिकारी को वस्तु या सेवा की विभिन्न कीमतों के लेने की कानूनी स्वीकृति दे देती है; जैसे- एक बिजली कम्पनी रोशनी तथा पंखों के लिए ऊँची दर तथा औद्योगिक प्रयोजनों के लिए नीची दर लेती है, क्योंकि उसे कानूनी स्वीकृति मिली होती है।

19.5.3 मूल्य विभेदीकरण के अन्तर्गत एकाधिकारी का सन्तुलन -

साधारणतः एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु के समस्त उत्पादन की केवल एक ही कीमत वसूल की जाती है परन्तु मूल्य विभेदीकरण के अन्तर्गत एकाधिकारी अपनी मार्केट के विभिन्न भागों से वस्तु की भिन्न-भिन्न कीमतें वसूल करता है। अतः एकाधिकारी का सबसे पहला कार्य अपनी वस्तु की समस्त मार्केट को विभिन्न भागों में मांग की मूल्य लोचों में अन्तरों के आधार पर बाँटना होता है। एकाधिकारी अपने सम्पूर्ण मार्केट को उतने विभिन्न भागों में बाँट सकता है जितने भागों में माँग की मूल्य-लोचों में अन्तर है। हम विश्लेषण की सरलता के लिए यह मान लेते हैं कि एकाधिकारी अपने मार्केट को दो भागों में बाँटता है। सन्तुलन की स्थिति के लिए एकाधिकारी को तीन निर्णय लेने होते हैं-

(i) वह वस्तु की कितनी मात्रा को उत्पादित करे?
(ii) वस्तु के कुल उत्पादन को मार्केट के दोनों भागों में किस प्रकार बाँटें और
(iii) उन दो भागों में कितनी-कितनी कीमतें प्राप्त करें।

कुल उत्पादन मात्रा का निर्णय करने के लिए विभेदीकरण करने वाला एकाधिकारी अपने उत्पादन की सीमान्त आय (MR)और सीमान्त लागत (MC)में तुलना करेगा। इस हेतु उसे सर्वप्रथम दोनों बाजारों को मिलाकर कुल सीमान्त आय (Aggregate Marginal Revenue = AMR)को ज्ञात करना

होता है तभी वह उसकी तुलना MC से कर सकता है। कुल सीमान्त आय (AMR) दोनों बाजारों में सीमान्त आय (MR) वक्रों के साथ-साथ रखकर जोड़ने से प्राप्त होती है।

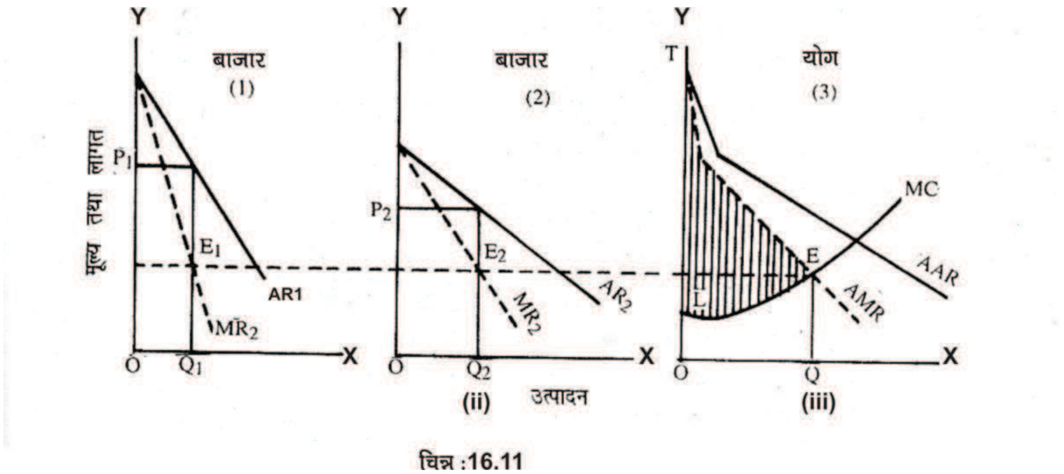

चित्र :16.11

चित्र 19.9 में प्रदर्शित बाजार के दो उपक्षेत्र 1 और 2 है जिनकी सीमान्त आय वक्र क्रमशः MR1 एवं MR2 है। इन दोनों क्षेत्रों के माँग का औसत आय वक्र क्रमशः AR_1 और AR_2 है। चित्रानुसार बाजार-1 की AR_1 , बाजार- 2 की AR_2 से कम लोचदार है। कुल सीमान्त आय वक्र ;।डत्द्ध जिसे इसी रेखाचित्र के भाग (iii) में दिखाया गया है, को MR_1 और MR_2 वक्रों को एक साथ जोड़ने से प्राप्त किया गया है। एकाधिकारी के कुल उत्पादन का सीमान्त लागत वक्र MC है। एकाधिकारी की समग्र मांग दोनों बाजारों की मांगों AR_1 तथा AR_2 को जोड़कर समग्र औसत आय AAR से प्रदर्शित है।

चूँकि यह मान लिया गया है कि दोनों बाजारों में एक ही उत्पादन लागत की वस्तु बेची जा रही है। अतः एकाधिकारी फर्म के लिए एक ही MC वक्र रेखाचित्र (iii) में खींची गयी है, अलग -अलग बाजारों में विभेदात्मक एकाधिकारी का लाभ अधिकतम तब होगा जब वह उस बिन्दु पर उत्पादन करेगा जिस पर AMR तथा MC एक दूसरे को काटते हो। चित्र (iii) से स्पष्ट है कि एकाधिकारी के सन्तुलन उत्पाद की मात्रा OQ है। इस प्रकार एकाधिकारी का पहला निर्णय पूर्ण हो जाता है जो सन्तुलन उत्पाद के निर्धारण से सम्बन्धित होता है।

अब एकाधिकारी के समक्ष सबसे प्रमुख समस्या यह होती है कि वह इस उत्पाद को दोनों बाजारों में कितनी मात्रा में और किस मूल्य पर बेचे जिससे उसका लाभ अधिकतम हो सके। स्पष्ट है कि एकाधिकारी के सम्पूर्ण उत्पादन की लागत तो एक ही होगी। अतः दोनों बाजारों के लिए MC एक ही होगी। परन्तु दोनों बाजारों में MR अलग -अलग होगी क्योंकि माँग की लोच की भिन्नता के कारण दोनों बाजारों में AR अलग -अलग होगी। जैसा कि आप जानते है कि एकाधिकारी का

लाभ अधिकतम् तब होगा जबकि प्रत्येक बाजारो में उसका लाभ अधिकतम् हो, और प्रत्येक बाजार में अधिकतम लाभ हेतु आवश्यक है कि उस बाजार की MR=MC हो।

अतः बाजार -1 में अधिकतम लाभ हेतु MR_1= MC होगा।

बाजार -2 में अधिकतम लाभ तब होगा जबकि MR_2 =MC हो स्पष्ट है कि एकाधिकारी का कुल उत्पादन का निर्धारण MC=AMR द्वारा होगा। अतः कुल लाभ अधिकतमीकरण हेतु-

$MC=AMR=MR_1=MR_2$

यदि $MR_1>MR_2$ हो तो एकाधिकारी बाजार नं0 (1) में अधिक वस्तुयें तथा बाजार नं0 (2) में कम वस्तुयें बेचेगा जिससे उसका लाभ अधिकतम हो सके और यह क्रिया तब तक चल ती रहेकगी जब तक कि $MR_1=MR_2$ नही हो जाता। संतुलन उत्पाद OQ को एकाधिकारी किस प्रकार दोनो बाजारो में बॉटता है। आइये इसे समझते है। बिन्दु E से मूल्य अक्ष पर लम्ब खीचा गया है जो MR_2 को E_2 बिन्दु तथा MR_1 को E_1 बिन्दु पर काटता है। E_1तथा E_2 दोनों बिन्दुओं पर $MR_1=MR_2=MC$ है। E_2 से उत्पादन अक्ष पर खींचा गया लम्ब बाजार नं0 2 में OQ_2 मात्रा का निर्धारण करता है जिसे एकाधिकारी बाजार नं02 में बेचेंगा। इसी प्रकार बाजार नं0 (1) में OQ_1 उत्पाद मात्रा का निर्धारण होता है जिसे एकाधिकारी बाजार नं0-1 में बेचता है। इस प्रकार एकाधिकारी कुल उत्पादन OQ में से OQ_1 मात्रा बाजार-1 और OQ_2 मात्रा बाजार नं02 में बेंचेगा। इस स्थिति में $OQ=OQ_1+OQ_2$ । OQ से सम्बन्धित मूल्य OP, तथा OQ_2 से सम्बन्धित मूल्य OP_2 होगा। अतः स्पष्ट है कि एकाधिकारी बाजार नं0 1 मे OQ_1उत्पादन OP मूल्य पर बेंचेगा तथा बाजार में नं0 2 में OP_2 उत्पादन OP_2 मूल्य पर बेचेगा। इस स्थिति में एकाधिकारी को होने वाला कुल लाभ TEL होगा जो MR तथा MC के बीच का क्षेत्र है।

19.5.4 मूल्य विभेदीकरण का औचित्य-

मूल्य विभेदीकरण के सम्बन्ध में प्रायः एक प्रश्न उठाया जाता है कि यह सामाजिक दृष्टि से उचित है अथवा नहीं। यदि सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से देखा जाय तों मूल्य विभेदीकरण को कतई उचित नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि इसके द्वारा दो उपभोक्ताओं के मध्य अन्तर रखा जाता है, एक ही वस्तु के लिए एक उपभोक्ता से कम मूल्य तथा दूसरे उपभोक्ता से अधिक मूल्य वसूल किया जाता है। यही नहीं मूल्य विभेदीकरण के परिणामस्वरूप एकाधिकारी का लाभ बढ़ता है जिसके फलस्वरूप पूँजी के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पनपती हैं। मूल्य विभेदीकरण का ही एक प्रकार राशिपातन है जिसके अन्तर्गत लाभ की दृष्टि के लिए एकाधिकारी अपने देश में वस्तुओं की कम मात्रा को अधिक मूल्य पर तथा विदेशी बाजार या विदेशो में अधिक वस्तुए कम मूल्य पर बेचता हैं। इस तरह वह विदेशी बाजार की हानि को सुरक्षित देशी बाजार में बहुत ऊँची कीमत लेकर पूरा कर लेता है। उपर्युक्त तर्कों के सन्दर्भ में मूल्य विभेदीकरण सामाजिक न्याय की दृष्टि से अच्छा नही है, परन्तु यह

निष्कर्ष पूर्णतः सही नही हो सकता क्योंकि कुछ परिस्थितियों में उपभोक्ताओ के बीच भेदभाव करके ही बेहतर सामाजिक न्याय प्राप्त किया जा सकता है। निम्नांकित दशाओं में मूल्य विभेदीकरण को न्यायोचित ठहराया जा सकता है।

(i) उन वस्तुओं तथा सेवाओं के सम्बन्ध में जो समाज की दृष्टि से आवश्यक है। जैसे बिजली आपूर्ति हेतु घरेलू और औद्योगिक क्षेत्रों से अलग -अलग दर वसूली जाती है। इसी प्रकार पोस्ट आफिस, पोस्टकार्ड को सस्ते मूल्य पर बेंचता है क्योंकि इसका सर्वाधिक उपयोग निर्धन वर्ग करता है परन्तु मूल्य विभेदीकरण करने के कारण ही वह अन्य वस्तुओं पर ऊँची कीमत लेता है जिससे पोस्टकार्ड की कीमत कम रख सके। एक अन्य उदाहरण रेलवे का है जिससे प्रथम श्रेणी यात्रियों से अधिक किराया वसूल कर द्वितीय श्रेणी किराये को नीचा रखता है।

(ii)उस स्थिति में भी मूल्य विभेद न्यायोचित ठहराया जा सकता है जबकि एक लाभप्रद मूल्य की स्थिति में उत्पादन संकुचित हो जाय और इसके परिणामस्वरूप बहुत अधिक उपभोक्ता उस वस्तु या सेवा के उपयोग से वंचित हो जाय। जैसे-यदि कोई डाक्टर अपनी सेवा का एक मूल्य रख ले तो हो सकता है कि अल्प आय वर्ग के लोग उसकी सेवा से वंचित हो जाये, परन्तु यदि वह मूल्य विभेदीकरण की नीति अपनाये अर्थात धनी से अधिक फीस तथा गरीब से कम ले तो उसकी सेवा बढ़ जायेगी।

(iii) मूल्य विभेदीकरण को तब उचित कहा जा सकता है जबकि देश के अतिरिक्त उत्पादन को विदेशों में वस्तु की कीमतों को घरेलू कीमतों से कम मूल्य पर बेंचा जाता हैं अतः विभेदीकरण से जहॉ विदेशी विनियम को बढ़ाया जा सकता है वहीं दूसरी ओर इस नीति से देश के उत्पादन तथा उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न-2

1.लघु उत्तरीय प्रश्न-

(क) मूल्य विभेदीकरण का क्या अभिप्राय है?

(ख) मूल्य विभेदीकरण के लिए आवश्यक परिस्थितियॉ कौन-कौन सी है?

(ग) मूल्य विभेदीकरण का औचित्य क्या है?

2. बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) कीमत विभेदीकरण सम्भव होता है-

(A) केवल एकाधिकार में (B) प्रत्येक बाजार परिस्थिति में

(C) पूर्ण प्रतियोगिता में (D) उपर्युक्त सभी में

(ख) एकाधिकारी के लिए उसके उत्पाद की तिर्यक लोच

(A) शून्य होती है (B) इकाई से कम होती है

(C) इकाई के समान होती है (D) इकाई से अधिक होती है।

(ग) राशिपालन का क्या उद्देश्य होता है?

(A) विदेशी विनियम अर्जित करना (B) अति उत्पादन से छुटकारा पाना

(C) विदेशी प्रतिद्वन्दियों को बाजार से बाहर करना (D) उपर्युक्त सभी

(घ) जब एकाधिकारी के अन्तर्गत एकाधिकारी एक ही वस्तु के लिए विभिन्न उपभोक्ताओं से भिन्न-भिन्न मूल्य वसूल करता है तो उसे कहते हैं-

(A) पूर्ण एकाधिकारी (B) विभेदात्मक एकाधिकार

(C) सार्वजनिक एकाधिकारी (D) व्यक्तिगत एकाधिकार

(ङ) यदि दो बाजारो में माँग की लोच समान हो, सीमान्त आय समान तथा मूल्य भी समान हो, तो

(A) मूल्य विभेदीकरण सम्भव है (B) मूल्य विभेदीकरण सम्भव नही होगा

(C) उपर्युक्त में से कोई भी (D) उपर्युक्त में से कोई नही

(च) कीमत विभेदीकरण में एकाधिकारी सन्तुलन की शर्त है-

(A) $MR_1=MR_2=MC$ (B) $MR_1=MR_2=>MC$

(C) $MR_1=MR_2<MC$ (D) $MR_1>MR_2>MC$

19.6 सारांश

बाजार के वर्गीकरण का सबसे प्रमुख आधार प्रतियोगिता को माना गया है। बाजार की दो ऐसी चरम स्थितियॉ है जो परस्पर एक दूसरे के विपरीत गुण वाली है। एक तरफ पूर्ण प्रतियोगिता है, जिसमें फर्मो की संख्या इतनी अधिक होती है कि कोई भी फर्म बाजार में प्रचलित मूल्य को प्रभावित नही कर सकती। वहीं दूसरी ओर बाजार की एक स्थिति वह है कि जिसमें प्रतियोगिता का पूर्ण अभाव रहता है और बाजार में अकेला विक्रेता होता है। इसे एकाधिकारी बाजार कहा जाता है। इस प्रकार एकाधिकारी बाजार शुद्ध प्रतियोगिता की ठीक विरोधी स्थिति है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वस्तुयें एक समांग होती है अतः उनके मध्य भेद करना सम्भव नही होता है, जबकि एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तुओ का कोई निकट स्थानापन्न नहीं होता। एकाधिकारी बाजार में नई फर्मो का प्रवेश भी सम्भव नही हो पाता है। पूर्ण प्रतियोगिता की भॉति एकाधिकारी के अन्तर्गत संतुलन हेतु

आवश्यक है कि डत्त्रMC हो। एकाधिकार में वस्तु की कीमत, पूर्ण प्रतियोगी बाजार की कीमत से अधिक होती है। एकाधिकारी फर्म अल्पकाल में हानि सहन कर सकता है परन्तु दीर्घकाल में वह असामान्य लाभ प्राप्त करता रहता है। एकाधिकारी फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से मूल्य विभेदीकरण की नीति को भी अपनाता हैं इसके अन्तर्गत वह एक ही वस्तु की विभिन्न बाजारों या उपभोक्ताओं में अलग -अलग मूल्यों पर बेचता है। यद्यपि मूल्य विभेदीकरण की कुछ शर्ते है जिनके पूर्ण होने पर ही एकाधिकारी अपने उद्देश्य में सफल हो सकता है। मूल्य विभेदीकरण किसी स्तर तक समाज के लिए वांछनीय भी है और किसी स्तर पर अवांछनीय भी। यदि किसी बाजार में एक विक्रेता के साथ-साथ एक ही क्रेता भी हो तो 'इसे द्विपक्षीय एकाधिकार' कहा जाता है। विश्लेषण से स्पष्ट है कि एकाधिकार के अन्तर्गत उपभोक्ता का शोषण अधिक होता है क्योंकि इसमें मूल्य अपेक्षाकृत ऊँचा एवं उत्पादन कम होता है। वस्तुतः व्यवहार में विशुद्ध एकाधिकारी नहीं पाया जाता क्योंकि किसी वस्तु का एक उत्पादक हो सकता है, परन्तु प्रत्येक वस्तु का कोई-न- कोई स्थानापन्न अवश्य होता है और उस उत्पादक को भी किसी न किसी रूप में अप्रत्यक्ष प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है।

19.7 शब्दावली

तिर्यक लोच:- एक वस्तु की माँग में जो परिवर्तन दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के प्रतिक्रिया में होता है, उसे माँग की आड़ी लोच या तिर्यक लोच कहते है। उदाहरणार्थ इसके अन्तर्गत हम Y वस्तु की कीमत में परिवर्तन करते है और फिर देखते है कि X की माँग में कितना परिवर्तन होता है।

माँग की मूल्य लोचः- किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन का उस वस्तु की माँग में कितने प्रतिशत परिवर्तन होगा, यह विभिन्न मूल्यो पर माँग के बदल ने की क्षमता पर निर्भर करती है, यह क्षमता की माँग की मूल्य लोच कहलाती है।

बचतः- कोई उपभोक्ता किसी वस्तु के उपभोग से वंचित न रह पाने हेतु जितना अधिकतम मूल्य देने को तैयार होता है और वास्तव में वह जितना मूल्य अदा करता है, उन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता बचत या उपभोक्ता अतिरेक कहलाता है।

कीमत विभेदः- लगभग एक समांग वस्तु को विभिन्न बाजारों या उपभोक्ताओं के मध्य अलग - अलग मूल्यों पर विक्रय करना ही ''कीमत विभेद' कहलाता है।

राशिपातनः- यह कीमत विभेदीकरण का ही एक रूप है। इसमें एकाधिकारी फर्म घरेलू क्षेत्र में अपनी वस्तुओं की कम मात्रा को ऊँचे मूल्य पर तथा विदेशो में वस्तुओं की अधिक मात्रा को नीचे मूल्य पर बेचता है। इसे 'डम्पिंग' भी कहते है।

19.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

अभ्यास प्रश्न-1

1. सत्य/असत्य कथन-

(क) असत्य (ख) सत्य (ग) असत्य(घ) असत्य(ङ) सत्य (च) सत्य

बहुविकल्पी प्रश्न-

(क) C (ख) C, (ग) A, (घ) A, (ङ) A (च) D

अभ्यास प्रश्न-2

(क) A (ख) A (ग) D, (घ) B (ड़) A (च)A

19.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आहूजा, एच0 एल0 (2003)- 'उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त' (व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण), एस0चन्द्र पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. लाल, एस0एन0 (1999)-''व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण; शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद (उ0प्र0)
3. जैन, के0पी0 (1997) - 'व्यष्टि अर्थशास्त्र', साहित्य भवन, आग रा।
4. सिन्हा, वी0सी0 (1999) -''व्यक्ति अर्थशास्त्र'', प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
5. झिंगन, एम0एल0 (2005) -''व्यष्टि अर्थशास्त्र'', चन्द्रा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

19.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- Koutsoyinies, A (1979) - Modern Micro-economics; 2nd Edition, Macmillon Press, London.
- Mishra S.K. and Puri V.K. (2003)- " Modern Micro-Economics Theory" Himalaya Publishing House. New Delhi.
- Ahuza H.L. (2010)-"Principles of Microeconomics." S. Chand Publishing House. New Delhi.
- Dwivedi, D.N. (2008) -"Micro Economics; 7th Edition, Vikas Publishing House, New Delhi.

- Sethi, T.T. (2006) -"Principles of Economics, "Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.

19.11 निबन्धात्मक प्रश्न-

प्रश्न-1एकाधिकारी का अर्थ बताइये? अल्पकाल में एकाधिकारी मूल्य निर्धारण को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-2एकाधिकारी के अन्तर्गत अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सन्तुलन को विस्तार से समझाइये।

प्रश्न-3 लागत की दशाओं का एकाधिकार मूल्य पर प्रभाव स्पष्ट कीजिए। क्या एकाधिकार मूल्य अनिवार्यतः एक ऊँचा मूल्य होता है?

प्रश्न-4 एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण के अन्तर को पूर्णतयास्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-5 विभेदात्मक एकाधिकार किसे कहते है? इसे कौन से तत्व सम्भव बनाते हैं? इसके अन्तर्गत कीमत-निर्धारण का रेखाचित्र खीचिए।

प्रश्न-6 एकाधिकारी किन परिस्थितियों में मूल्य विभेदीकरण कर सकता है? विभेदात्मक एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है?

इकाई-20 एकाधिकारिक प्रतियोगिता अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण

20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्देश्य
20.3 एकाधिकारिक प्रतियोगिता-अर्थ एवं विशेषताएं
20.3.1 एकाधिकारिक प्रतियोगिता का अर्थ
20.3.2 एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताएं
20.4 एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का संतुतन
20.4.1 अल्पकाल में फर्म का संतुलन
20.4.2 दीर्घकाल में फर्म का संतुलन तथा समूह संतुलन
20.5 चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त की आलोचना
20.6 एकाधिकारिक प्रतियोगिता तथा पूर्ण प्रतियोगिता में तुलना
20.7 सारांश
20.8 शब्दावली
20.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
20.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
20.11 उपयोगी/सहायक ग्रंथ
20.12 निबन्धात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

व्यष्टि-अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के 'फर्म का सिद्धान्त': कीमत और उत्पादन निर्धारण' से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इस खण्ड की पहली तीन इकाईयों के अध्ययन के बाद आप बाजार संरचना, फर्म के संतुलन की शर्तें तथा पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में बता सकते हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार, बाजार की दो चरम बाजार स्थितियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, और वास्तविक जगत में बाजार की स्थितियों से मेY नहीं खाती हैं। प्रस्तुत इकाई में इन दो चरम स्थितियों के बीच की बाजार स्थिति एकाधिकारिक प्रतियोगिता या अपूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताओं तथा इसके अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन के निर्धारण का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताओं तथा उसके अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

20.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- एकाधिकारिक प्रतियोगिता का अर्थ तथा उसकी विशेषताओं को जान सकेंगे।
- एकाधिकारिक प्रतियोगिता में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण को समझ सकेंगे।
- एकाधिकारिक प्रतियोगिता तथा पूर्ण प्रतियोगिता प्रतियोगिता के अन्तर को स्पष्ट कर सकेंगे।

20.3 एकाधिकारिक प्रतियोगिता-अर्थ एवं विशेषताएं

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की स्थितियां वास्तविक बाजार की दशाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। इन दो चरम स्थितियों के बीच की बाजार स्थितियां वास्तविक जगत के अधिक निकट हैं। 1933 में प्रोफेसर एडवर्ड एच0 चैम्बरलिन ने अपनी पुस्तक ''एकाधिकारिक प्रतियोगिता का सिद्धान्त'' और श्रीमती जोन राबिन्सन ने ''अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थशास्त्र'' में क्रमशः एकाधिकारिक प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता का सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

प्रो0 चैम्बरलिन की एकाधिकारिक प्रतियोगिता और श्रीमती राबिन्सन की अपूर्ण प्रतियोगिता में कुछ अन्तर होते हुए भी दोनों में आवश्यक तत्व तथा सार समान हैं। इस इकाई में हम चैम्बरलिन द्वारा प्रस्तुत एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताओं तथा इस बाजार स्थिति में कीमत तथा उत्पादन के निर्धारण के सम्बन्ध में जान सकेंगे।

20.3.1 एकाधिकारिक प्रतियोगिता का अर्थ

एकाधिकारिक प्रतियोगिता से तात्पर्य उस बाजार स्थिति से है, जिसमें बड़ी संख्या में विक्रेता या फर्में एक दूसरे की निकट स्थानापन्न, विभेदीकृत वस्तुओं का विक्रय या उत्पादन करती हैं।

प्रत्येक फर्म इस अर्थ में एकाधिकारी होती है कि वह ब्रान्डेड तथा पेटेन्टयुक्त वस्तु उत्पादित करने था बेचने के लिए अधिकृत है। परन्तु प्रत्येक फर्म को दूसरी फर्मों के निकट स्थानापन्न वस्तुओं से प्रतियोगिता करनी होती है। जैसे-शैम्पू, साबुन या टूथपेस्ट बनाने वाली प्रत्येक फर्म का अपने उत्पाद के ब्रान्ड तथा पेटेन्ट पर एकाधिकार है परन्तु उत्पाद बनाने वाली अन्य फर्मों से उन्हें कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। चूंकि हर एक फर्म या विक्रेता विभेदीकृत वस्तु का उत्पादन तथा विक्रय करने के कारण एकाधिकारी होता है परन्तु बाजार में उनके निकट स्थानापन्न वस्तुएं होने के कारण उन्हें प्रतियोगिता करनी होती है, अतः एकाधिकारिक प्रतियोगिता की इस बाजार स्थति में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनों कें मूल्भूत तत्व समाहित होते हैं।

20.3.2 एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताएं

20.3.2.1 वस्तु विभेदीकरण

एकाधिकारिक प्रतियोगिता की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता वस्तु विभेदीकरण के कारण ही इसमें एकाधिकार तथा प्रतियोगिता का मिश्रण पाया जाता है। वस्तु विभेदीकरण का तात्पर्य है विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं में कुछ भिन्नता पायी जाती है। यह भिन्नता उनके आकार, आकृति, रंग, ब्रान्ड, डिजाइन, सूक्ष्म गुणात्मक अन्तर, डिब्बे की सुन्दरता, पैकेजिंग, विक्रय के बाद सेवा, गारन्टी तथा वारण्टी, दुकान की स्थिति इत्यादि के आधार पर हो सकती है। विभेदीकरण का आधार वास्तविक या काल्पनिक हो सकता है। वस्तु विभेदीकरण जितना ही अधिक होगा, एकाधिकार का अंश उतना ही अधिक होगा। परन्तु दूसरी फर्मों के निकट स्थानापन्न वस्तु से प्रतियोगिता करनी होती है। वस्तु विभेदीकरण गैर कीमत प्रतियोगिता का एक अंग है।

20.3.2.2विक्रेताओं की अधिक संख्या

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में विक्रेताओं या फर्मों की संख्या अधिक होती है। अर्थात बाजार में उस वस्तु की कुल आपूर्ति का थोड़ा ही भाग एक फर्म या विक्रेता के पास होता है। इसलिए प्रत्येक फर्म के लिए अपनी वस्तु की कीमत स्वयं निर्धारित कर पाना सम्भव होता है।

20.3.2.3 नीचे की ओर गिरता हुआ मांग वक्र

विभेदीकृत वस्तु के कारण चूंकि फर्म की अपनी वस्तु की कीमत निर्धारित करने की शक्ति होती है, अतः वह कीमत कम करके अपने उत्पाद की बिक्री बढ़ा सकती है या फिर उसके कीमत बढ़ाने के बावजूद उसकी कुछ मांग बाजार में बनी रहेगी। चूंकि विभिन्न ब्रान्ड आपस में निकट स्थानापन्न होते हैं, इसलिए उनमें प्रति लोच अधिक होती है परन्तु अनन्त नहीं। इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता में एक फर्म का मांग वक्र वस्तु विभेदीकरण के कारण नीचे की ओर गिरता हुआ होगा।

चैम्बरलिन के अनुसार मांग सिर्फ फर्म की कीमत नीति से ही निर्धारित नहीं होती है बल्कि वस्तु की स्टाइY, इसमें जुड़ी सेवाओं तथा फर्म की विक्रय गति विधियों पर भी निर्भर करती है।

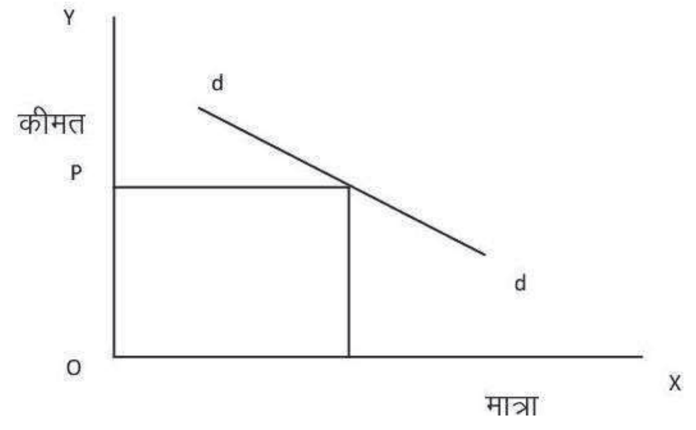

चित्र 20.1

यहां यह महत्वपूर्ण है कि वस्तु विभेद की स्थिति में जब फर्में एक दूसरे से प्रतियोगिता करती हैं तो प्रत्येक फर्म यह महसूस करती है कि उसका मांग वक्र उसकी प्रतिद्वंदी फर्म के मांग वक्र की अपेक्षा अधिक लोचदार है। अर्थात जब वह अपने उत्पाद की कीमत कम करेगी तो अन्य प्रतिद्वंदी फर्में ऐसा नहीं करेंगी और वह अन्य फर्मों के कुछ ग्राहक आकर्षित कर लेगी। कीमत बढ़ाने की स्थिति में फर्म अपने कुछ ग्राहक खोएगी। चैम्बरलिन इसे फर्म का आत्मगत या अनुभूत मांग वक्र (dpdp) कहते हैं। यह व्यक्तिगत फर्म के आत्मगत निर्णय पर आधारित है, जिसमें वह यह कल्पना कर लेती है कि उसका मांग वक्र किस प्रकार का होगा।

परन्तु जब समूह की सभी फर्मों द्वारा कीमत परिवर्तन एक ही मात्रा में तथा एक ही दिशा में होता है तो व्यक्तिगत फर्म का मांग वक्र कम लोचदार होगा। यह अनुपातिक मांग वक्र (dd) है, जो कि dpdp से कम लोचदार है। यह प्रत्येक कीमत पर फर्म की वास्तविक बिक्री को दर्शाता है। इसमें एक फर्म द्वारा कीमत में परिवर्तन करने पर अन्य प्रतिद्वंदी फर्मों की प्रतिक्रियाओं को भी सम्मिलित किया गया है। फर्म द्वारा कीमत परिवर्तन करने पर, अन्य प्रतिद्वंदी फर्मों द्वारा भी उसी समय कीमत परिवर्तन

करने की स्थिति में dpdp वक्र में लगातार विवर्तन होगा। वस्तुतः dd वक्र, विवर्तित dpdp वक्रों का बिन्दुपथ है। जैसा कि चित्र 20.2 में C, C_1 तथा C_2 बिन्दुओं से स्पष्ट है।

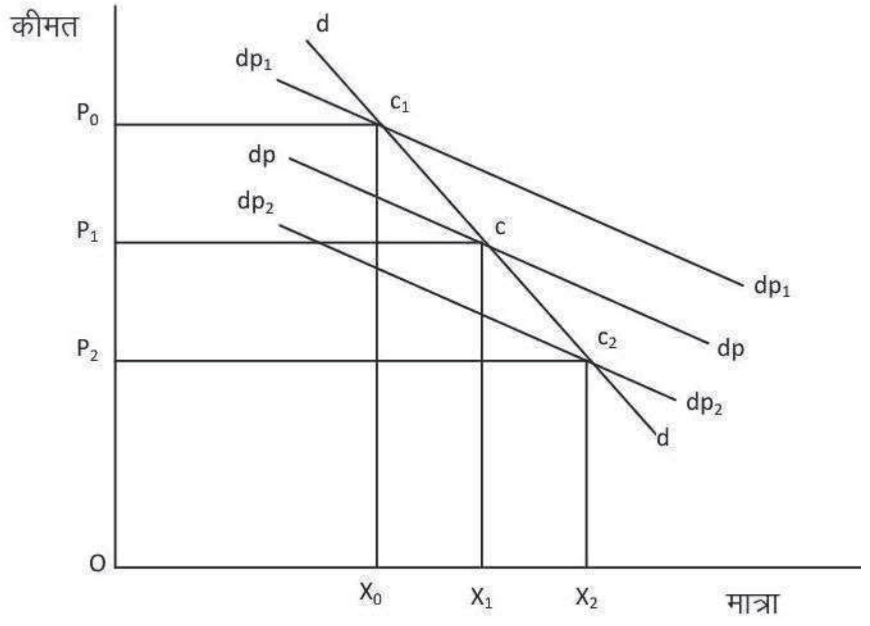

चित्र 20.2

एक फर्म जिस अनुपातिक मांग वक्र का सामना करती है वह समूह की समान्य वस्तुओं की कुल बाजार मांग का एक अंश है। अधिक फर्मों के उत्पादन समूह में प्रवेश करने पर dd वक्र बायीं ओर विवर्तित हो जाएगा।

20.3.2.4 फर्मों के प्रवेश तथा निकास की स्वतंत्रता

पूर्ण प्रतियोगिता की तरह यहां भी उद्योग में नयी फर्म के प्रवेश तथा पुरानी फर्म के निकासी पर कोई रोक नहीं होती है। एकाधिकारक प्रतियोगिता में प्रवेश की स्वतंत्रता केवल निकट स्थानापन्न पदार्थ उत्पादित करने के भाव में होती है।

20.3.2.5 विक्रय लागतें

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के विपरीत एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्में अपने उत्पाद के विज्ञापन तथा अन्य बिक्री प्रोत्साहन योजनाओं पर भारी व्यय करती है। चैम्बरलिन ने पहली बार फर्म के सिद्धान्त में विक्रय लागतों की संकल्पना प्रस्तुत की। विक्रय लागतों का अर्थ है विज्ञापनों तथा अन्य विक्रय गति विधियों में हुआ व्यय। इसके द्वारा ही फर्म अपनी उत्पादित वस्तु को अन्य फर्मों को उत्पादित वस्तुओं से अलग दिखाने का प्रयास करती है। इससे फर्म का मांग वक्र

ऊपर की ओर विवर्तित हो जाएगा और इसकी लोच में भी कमी आएगी-क्योंकि विज्ञापन तथा अन्य बिक्री प्रोत्साहन गति विधियों से उस वस्तु के प्रति उपभोक्ताओं के अधिमान में मजबूती आएगी।

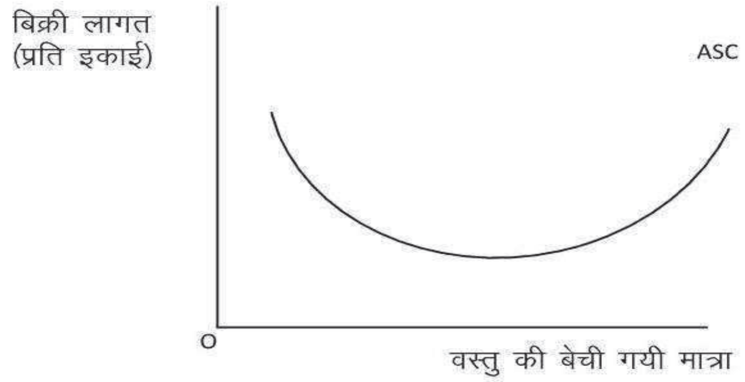

औसत बिक्री लागत वक्र

चित्र 20.3

चैम्बरलिन अपने मॉडल में परम्परागत U—आकार के लागत वक्रों – AC, AVC और MC की तरह औसत बिक्री लागत वक्र (ASC) को भी U—आकार का मान लेते हैं। उत्पादन तथा कीमत के अधिकतम लाभ के स्तर को निर्धारित करने में ASC वक्र को AC वक्र में जोड़ दिया जाता है।

20.3.2.6 उद्योगतथा 'उत्पाद समूह' की संकल्पना

पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत उद्योग का अर्थ है समांग वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्मों का समूह। यहां प्रत्येक फर्म के मांग वक्र को जोड़कर उद्योग की बाजार मांग को ज्ञात किया जा सकता है। परन्तु एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्में असमांग वस्तुओं का उत्पादन करती हैं, इसलिए यहां उद्योग की संकल्पना प्रयोग में नहीं लायी जा सकती। चूॅकि प्रत्येक फर्म विभेदीकृत वस्तु का उत्पादन करती है इसलिए बाजार मांग एवं आपूर्ति वक्र प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत वस्तुओं की मांग को नहीं जोड़ा जा सकता।

प्रो0 चैम्बरलिन 'वस्तु समूह' की संकल्पना का प्रयोग करते हैं, जो ऐसी फर्मो का समूह है जो कि निकट स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन करती हैं। समूह द्वारा उत्पादित वस्तुएं परस्पर निकट की तकनीकी तथा आर्थिक स्थानापन्न होनी चाहिए। यदि दो वस्तुएं तकनीकी रूप से एक ही आवश्यकता की संतुष्टि करती हैं तो वे तकनीकी रूप से एक दूसरे की स्थानापन्न होंगी। जैसे सभी कारे तकनीकी रूप से स्थानापन्न हैं। यदि दो वस्तुएं एक ही आवश्यकता की संतुष्टि कर रही हों और दोनों की कीमतें भी लगभग समान हों तो वे आर्थिक स्थानापन्न होंगी। उदाहरण के तौर पर, आल्टो,

स्पार्क तथा सैन्ट्रो को एक दूसरे की आर्थिक स्थानापन्न कहा जा सकता है परन्तु टाटा नैनो और फोर्ड फिएस्टा को नहीं।

अभ्यास प्रश्न-1

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

(i) एकाधिकारिक प्रतियोगिता से क्या अभिप्राय है?

(ii) वस्तु विभेदीकरण क्या होता है?

2. बहुविकल्पीय प्रश्न

(i) विक्रय लागतों की धारणा का विकास किसने किया?

(क) मार्शल (ख) चैम्बरलिन

(ग) जोन राबिन्सन (घ) केन्स

(ii) निम्न में से विक्रय लागत क्या है?

(क) पैकिंग (ख) परिवहन व्यय

(ग) विज्ञापन पर व्यय (घ) मजदूरी पर व्यय

(iii) एकाधिकारिक प्रतियोगिता में

(क) विभेदीकृत वस्तुएं बेचने वाली कुछ फर्में होती हैं।

(ख) समांग वस्तुएं बेचने वाली अनेक फर्में होती हैं।

(ग) समांग वस्तुएं बेचने वाली कुछ फर्में होती हैं।

(घ) विभेदीकृत उत्पाद बेचने वाली अनेक फर्में होती हैं।

20.4 एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का संतुलन

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में व्यक्तिगत फर्म का बाजार समूह की अन्य फर्मों से कुछ सीमा तक पृथक होता है। इसलिए उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग उसके द्वारा निश्चित कीमत, वस्तु की किस्म तथा उसके द्वारा किए गए विज्ञापन व्यय पर निर्भर करती है।

परन्तु हम एक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की एक विशेष किस्म को मानकर और विज्ञापन पर फर्म द्वारा किए गए व्यय को स्थिर मानकर केवल कीमत तथा उत्पादन मात्रा के विषय में ही फर्म के संतुलन की व्याख्या अल्पकाल तथा दीर्घकाल में करेंगे।

20.4.1 अल्पकाल में फर्म का संतुलन

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में एक व्यक्तिगत फर्म का मांग वक्र, बाजार में उसके द्वारा उत्पादित वस्तु के कई निकट में स्थानापन्न होने के कारण अधिक मूल्य सापेक्ष या लोचदार होता है। इस प्रकार फर्म का अपने वस्तु की किस्म पर एकाधिकारिक नियंत्रण बाजार में उपलब्ध स्थानापन्न वस्तुओं की मात्रा द्वारा सीमित होता है। यदि स्थानापन्न वस्तुओं की किस्म और उसकी कीमतों को स्थिर मान लिया जाए तो एक फर्म के वस्तु का एक निश्चित मांग वक्र होगा।

एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत उपरोक्त विशेषताओं तथा मान्यताओं के दिए होने पर, प्रत्येक फर्म ऐसी कीमत तथा उत्पादन निश्चित करती है, अर्थात् वहां संतुलन में होती है, जहां उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। फर्म का लाभ वहां अधिकतम होगा जहां उसकी सीमांत लागत (MC) सीमान्त आय (MR) के बराबर होती है।

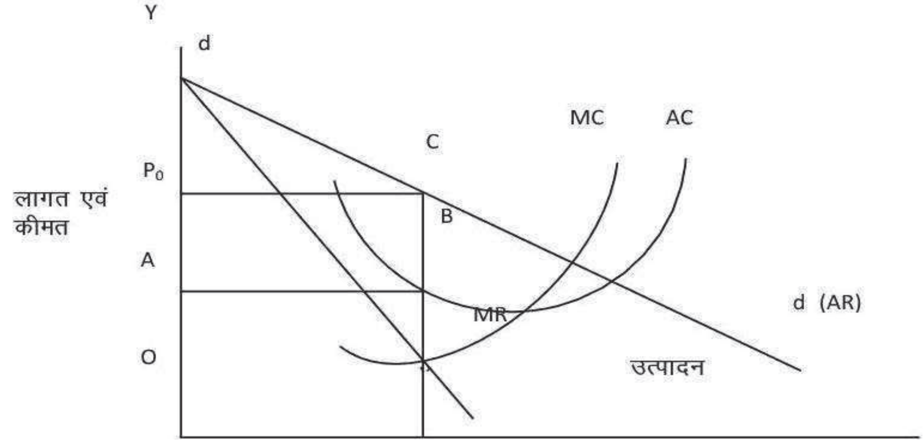

चित्र 20.4

चित्र 20.4, 20.5 तथा 20.6 में एक व्यक्तिगत फर्म का अल्पकालीन संतुलन दर्शाया गया है। फर्म का व्यक्तिगत मांग वक्र dd है जो कि उसका औसत आय वक्र भी है। MR तथा MC के संतुलन के अनुरूप फर्म P_0 कीमत तथा X_0 उत्पादन निर्धारित करती है। चित्र 20.4 में संतुलन की स्थिति में फर्म P_0ABC क्षेत्रफल के बराबर असामान्य लाभ अर्जित कर रही है।

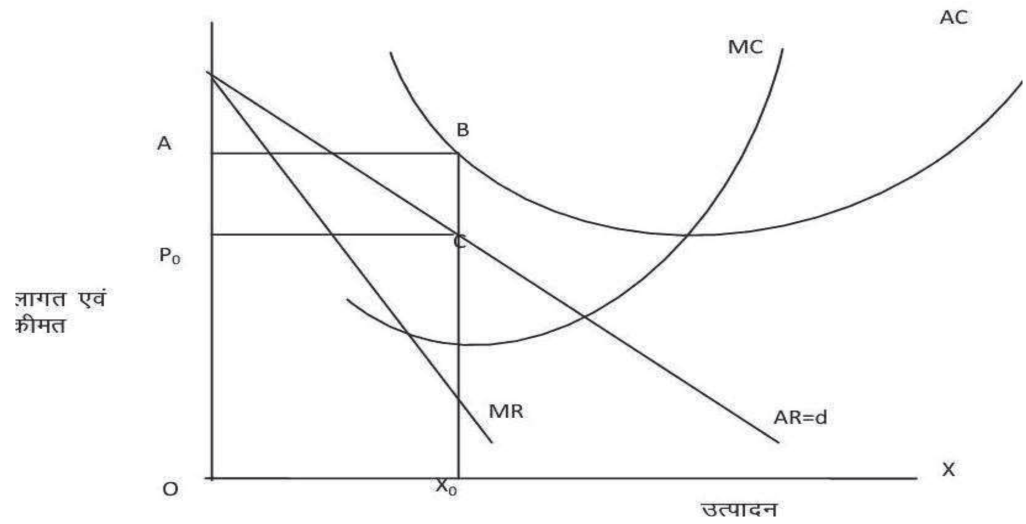

चित्र-20.5

अल्पकाल में फर्म हानि भी उठा सकती है, यदि औसत लागत वक्र (AC) वक्र मांग वक्र से ऊपर हो। चित्र 20.5 में फर्म की कुल हानि P_0ABC के बराबर है। अल्पकाल में फर्म केवल सामान्य लाभ भी प्राप्त कर सकती है यदि मांग वक्र औसत लागत वक्र (AC) को स्पर्श करता हो। चित्र 20.5 में dd वक्र B बिन्दु पर AC वक्र को स्पर्श कर रहा है तथा फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है। इस प्रकार फर्म के लाभ या हानि की स्थिति वस्तु के मांग वक्र तथा लागत वक्र की स्थिति पर निर्भर करती है।

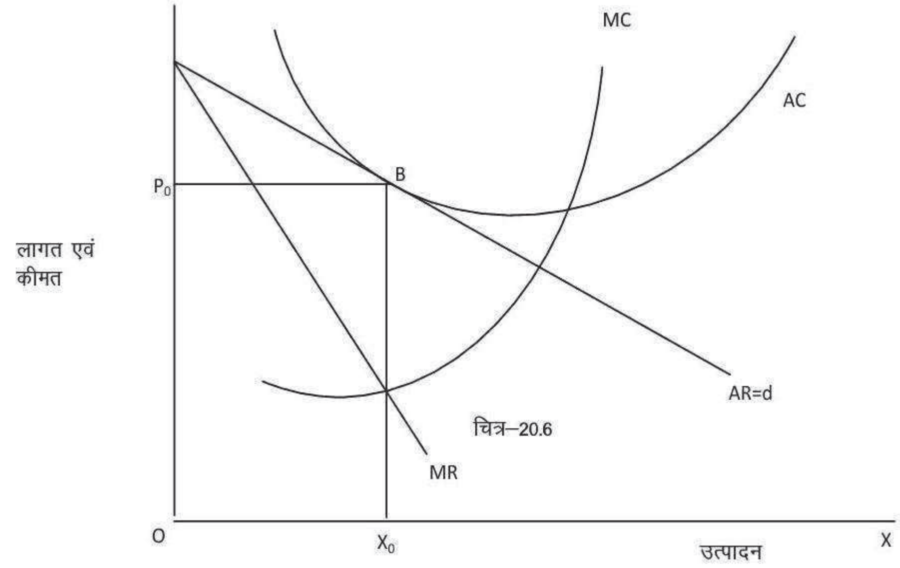

चित्र-20.6

20.4.2 दीर्घकाल में फर्म का संतुलन तथा समूह संतुलन

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म तथा उद्योग के संतुलन की व्याख्या के लिए चेम्बरलिन यह 'साहसपूर्ण मान्यता' मानकर चलते हैं कि समूह की सभी फर्मों तथा सभी वस्तुओं में लागत तथा मांग वक्र समान हैं। इसे 'समता की मान्यता' कहा जाता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण मान्यता 'समरूपता की मान्यता' है, जिसके अनुसार फर्मों की संख्या अधिक होने के कारण किसी एक फर्म द्वारा कीमत तथा उत्पादन में परिवर्तन का प्रभाव समूह की अन्य प्रतियोगी फर्मों पर नगण्य होगा।

उपरोक्त मान्यताओं के दिए हुए होने पर चैम्बरलिन तीन भिन्न स्थितियों में समूह संतुलन ;जब उद्योग में फर्मों की संख्या अधिक होद्ध की व्याख्या करते हैं -

(i) जब उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश की अनुमति हो।

(ii) जब उद्योग में फर्मों का प्रवेश तथा निकासी वर्जित हो और कीमत प्रतियोगिता द्वारा दीर्घकालीन संतुलन प्राप्त हो।

(iii) जब उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश तथा कीमत प्रतियोगिता दोनों हों।

i. जब उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश की अनुमति हो-इस मॉडल में यह मान लिया गया है कि अल्पकाल में समूह की फर्में असामान्य लाभ अर्जित कर रही हैं। समूह की वर्तमान फर्मों द्वारा असामान्य लाभों से आकर्षित होकर अन्य फर्में समूह में प्रवेश करना चाहेंगी। नयी फर्मों के प्रवेश से मांग वक्र बायीं ओर विवर्तित हो जाएगा, क्योंकि बाजार मांग अधिक फर्मों में विभाजित होगी। चित्र 20.7 में LACतथा LMC फर्म के औसत लागत वक्र तथा सीमान्त लागत वक्र हैं जबकि मांग वक्र dd है MR और MC के कटान बिन्दु के अनुसार संतुलित कीमत OP0 निर्धारित होती है।

चित्र 20.7 में बिन्दु C पर फर्में, संतुलन में हैं और असामान्य लाभ अर्जित कर रही हैं परन्तु कीमत में परिवर्तन करने का कोई लाभ उन्हें नहीं है। असामान्य लाभों के कारण उस समूह में नयी फर्में आकृष्ट होंगी। फलस्वरूप मांग वक्र नीचे की ओर विवर्तित हो जाएगा क्योंकि वस्तु की मांग पहले से अधिक फर्मों में विभाजित हो जाएगी। यह मानते हुए कि औसत लागत वक्र में परिवर्तन नहीं होगा, मांग वक्र (dd) में बायीं ओर प्रत्येक विवर्तन से कीमत में समायोजन होता है और फर्म नयी संतुलन स्थिति में पहुँच जाती है, जहां कि नयी सीमान्त आय (विवर्तित MR वक्र पर) सीमान्त लागत के बराबर है। नयी फर्मों के प्रवेश की प्रक्रिया तथा फलस्वरूप मांग वक्र का बायीं ओर विवर्तन तब तक जारी रहता है जब तक वह औसत लागत वक्र को स्पर्श नहीं करने लगता है और असामान्य लाभ पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाता है। अंतिम रूप में फर्म मांग वक्र D_0D_0 के बिन्दु E पर संतुलन में होगी जबकि संतुलित कीमत P_1 होगी, तथा उत्पादन X_1।

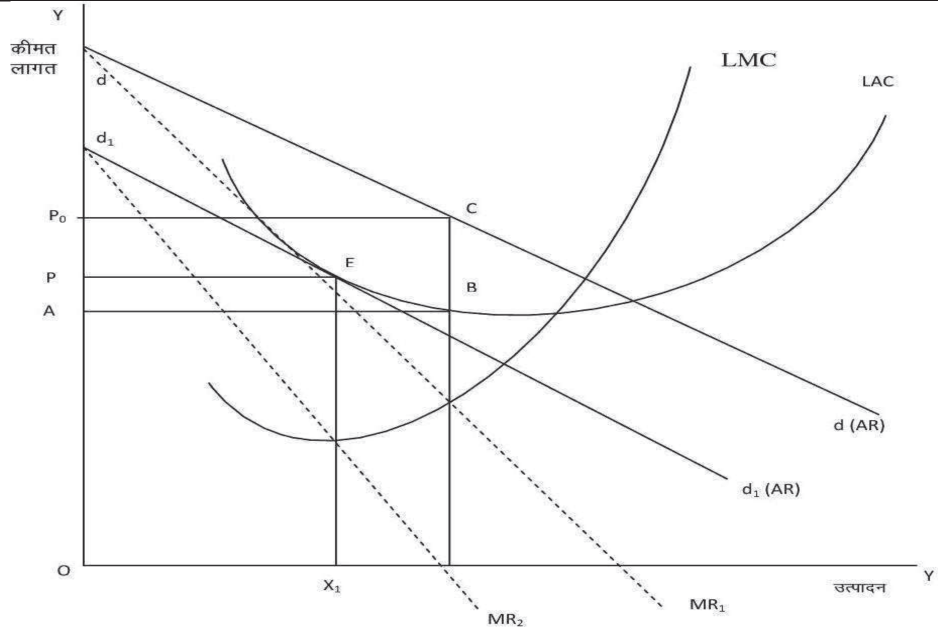

चित्र 20.7

इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का दीर्घकालीन संतुलन अथवा समूह संतुलन वहां होता हैं, जहां:-

MR = MC तथा

AR = LAC

स्पष्ट है कि संतुलन की स्थिति में सभी फर्में सामान्य लाभ ही प्राप्त करेंगी। इसलिए उद्योगया समूह में नयी फर्मों का प्रवेश नहीं होगा। यह स्थिर संतुलन है क्योंकि कोई भी फर्म कीमत घटाने या बढ़ाने की दशा में हानि की स्थिति में होगी।दीर्घकाल में फर्मों की संख्या में वृद्धि होने से फर्मों के दीर्घकालीन मांग वक्र अधिक लोचदार होंगे।

यहां यह उल्लेखनीय है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में अप्रयुक्त उत्पादन क्षमता बनी रहेगी क्योंकि संतुलन की स्थिति में दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) के न्यूनतम बिन्दु पर नहीं होती है।

चित्र 20.7 में फर्म दीर्घकालीन औसत लागत वक्र ;स्।ब्द्ध के गिरते हुए भाग पर कार्य कर रही है, अर्थात उस अनुकूलतम मात्रा का उत्पादन नहीं करती है जिस पर LAC न्यूनतम हो। फर्म का वास्तविक दीर्घकालीन उत्पादन (OX_1) तथा सामाजिक दृष्टि से अनुमूल्तम उत्पादन (OX_0) का अन्तर उसकी 'आधिक्य क्षमता' की माप (X_1X_0) है।

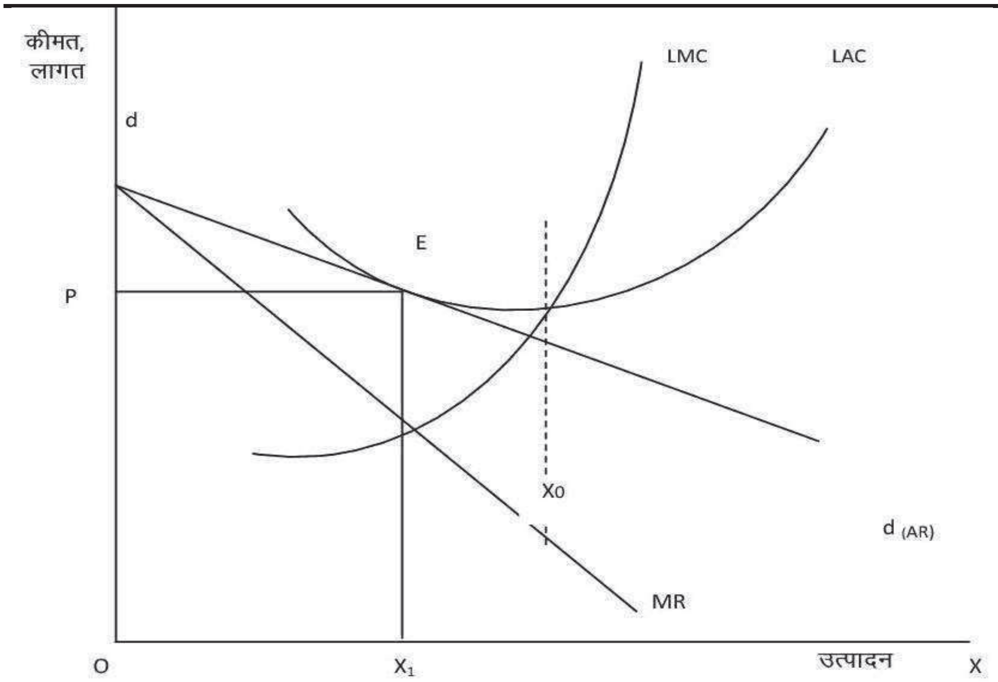

चित्र-20.8

ii. कीमत प्रतियोगिता के साथ संतुलन

यह मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि -

1-समूह में फर्मों की संख्या अनुकूलतम है इसलिए नयी फर्मों का प्रवेश तथा निकासी बंद है तथा

2-अल्पकाल में उद्योग में कीमत संतुलन कीमत की अपेक्षा ऊँची है जिससे फर्में असामान्य लाभ प्राप्त कर रही है।

प्रत्येक फर्म यह सोचती है कि वह कीमत में कमी करके अपने बाजार हिस्से में वृद्धि कर सकती है और समूह की अन्य फर्में ऐसा नहीं करेंगी।

इस मॉडल में व्यक्तिगत फर्म की आत्मगत या अनुभूत मांग वक्र (dpdp) तथा आनुपातिक मांग वक्र (dd) दोनों का प्रयोग किया गया है। dd वक्र एक तरह से वास्तविक बिक्री वक्र है जो कि प्रत्येक फर्म के बाजार हिस्से को बताता है। फर्म द्वारा कीमत में किसी भी प्रकार के परिवर्तन का फर्म के बिक्री पर कितना प्रभाव पड़ेगा यह dd वक्र से जाना जा सकता है। अल्पकाल में असामान्य लाभ के कारण, प्रत्येक फर्म अपनी आत्मगत मांग वक्र (dpdp) के अनुरूप अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए अपनी कीमत में कमी करेगी, यह मानकर कि अन्य फर्में अपनी कीमत स्थिर रखेंगी। उद्योग समूह की सभी फर्में अपने लाभ को बढ़ाने के लिए स्वतंत्र रूप से dpdp के अनुरूप उतनी ही समान

मात्रा में कीमत में कमी करती हैं। चूंकि सभी फर्में एक साथ समान रूप से कीमत कम करने को प्रवृत्त होती हैं इसीलिए वस्तुतः dd वक्र के अनुसार उनके बाजार हिस्से का निर्धारण होता है और प्रत्येक फर्म का बाजार हिस्सा स्थिर बना रहता है।

चित्र 20.9 में प्रारम्भ में फर्म असंतुलन की स्थिति में है, जबकि कीमत Po तथा मात्रा Xo है। अपने लाभ को अधिकतम करने के प्रयास में फर्म कीमत को कम करके P_1 कर देती हैं, इस आशा में कि आत्मगत मांग वक्र dpdp के अनुरूप बिक्री बढ़कर Xo हो जाएगी। चूंकि उद्योग की सभी फर्में

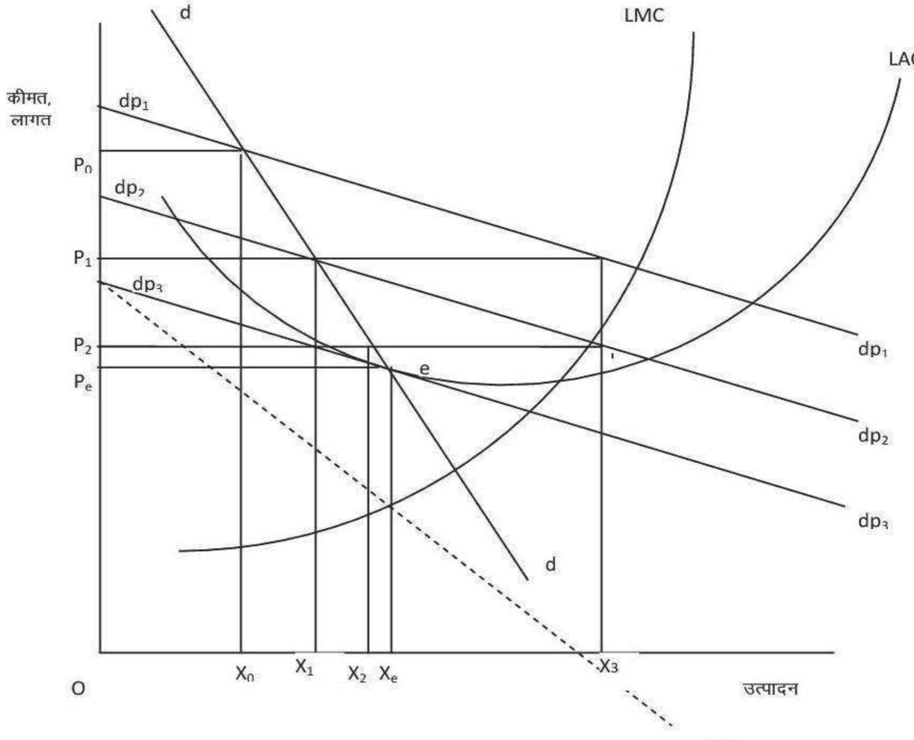

चित्र–20.9

समान मांग व लागत वक्रका सामना करती हैं। इसलिए सभी फर्में एक साथ, अपने लाभ को बढ़ाने के लिए कीमत में कमी करेंगी, यह मानते हुए कि समूह की अन्य सभी फर्मो की मांग पर इसका असर नगण्य होगा और वे कीमत परिवर्तन नहीं करेंगी। इस प्रकार, सभी फर्में, अपनी कीमत को कम करके P_1 कर देंगी। परिणामस्वरूप dp , dp वक्र नीचे की ओर विवर्तित हो जाएगा (dp_2dp_2) और फर्म X_3 की जगह X_1 मात्रा dd के अनुरूप ही बेच पाएगी। यह मानते हुए फर्में अपने पिछले अनुभव से कुछ भी सबक नहीं लेती हैं, फिर से स्वतंत्र रूप से, कीमत में कमी करेंगी, जिससे उनका लाभ बढ़ सके। लेकिन चूंकि सभी फर्में ऐसा ही एक साथ करती हैं इसलिए बिक्री में वृद्धि dp_2 dp_2 वक्र के अनुरूप (X3) न होकर dd वक्र के अनुरूप X_2 होती है।

फर्मों द्वारा कीमत कम करने की प्रक्रिया तब रुकेगी जब dpdp वक्र नीचे की ओर विवर्तित होते हुए LAC वक्र को स्पर्श करने लगे। इस प्रकार संतुलन ब बिन्दु पर होगा जहां dp_3dp_3 वक्र, LAC वक्र को स्पर्श करता है तथा dd वक्र को काटता है। संतुलन कीमत pe तथा मात्रा Xe है। समूह की फर्मों द्वारा Pe से नीचे कीमत कम करने के लिए कोई प्रयास नहीं होगा क्योंकि तब फर्मों की औसत लागत कीमत से अधिक हो जाएगी।

इस प्रकार, जब उद्योग समूह में फर्मों की आवाजाही न हो और दीर्घकाल में संतुलन कीमत समायोजन के द्वारा होता है, तो स्थायी संतुलन की दशाएं निम्नलिखित होंगी -

i. फर्म का व्यक्तिगत मांग वक्र (dpdp) दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) को स्पर्श करता हो,
ii. स्पर्श बिन्दु पर dd वक्र dpdp तथा LAC को काटती हो।

3-फर्मों के स्वतंत्र प्रवेश तथा कीमत प्रतियोगिता के साथ संतुलन-

चैम्बरलिन के अनुसार ''वास्तविक जगत में समूह में विद्यमान फर्मों द्वारा आपस में कीमत प्रतियोगिता तथा नयी फर्मों के प्रवेश, दोनों के द्वारा संतुलन होता है। कीमत समायोजन dpdp वक्र के साथ होगा जबकि फर्मों के प्रवेश या निकास से dd वक्र विवर्तित हो जाएगा।

चित्र 20.7 में, मान लिया अल्पमात्रा में फर्में e_1 बिन्दु पर संतुलन में हैं, जहां वे असामान्य लाभ अर्जित कर रही हैं। इसलिए उद्योग में नयी फर्में आने को आकर्षित होंगी, जब तक सभी फर्में सामान्य लाभ अर्जित न करने लगें। नयी फर्मों के आने से मांग वक्र dd तब तक विवर्तित होगा जब तक कि दीर्घकालिक औसत लागत वक्र LACको स्पर्श न करने लगे। इस प्रकार संतुलन e_2 बिन्दु पर होगा जहां विवर्तित अनुपातिक मांग वक्र d_3d_3, LACको स्पर्श कर रहा है। संतुलन कीमत P_1 तथा उत्पादन X_1 है।

यद्यपि सभी फर्में e_2 बिन्दु पर सामान्य लाभ अर्जित कर रही हैं परन्तु यह दीर्घकालिक संतुलन बिन्दु नहीं है। क्योंकि सभी फर्में अपने व्यक्तिगत या अनुभूत मांग वक्र (dpdp)के अनुसार व्यवहार करेंगी और प्रत्येक फर्म dpdp वक्र के अनुरूप कीमत में कमी करके उत्पादन या बिक्री बढ़ाकर अपने लाभ को बढ़ाने की कोशिश करेंगी, यह मानते हुए कि समूह की अन्य फर्में ऐसा नहीं करेंगी। चूंकि सभी फर्में स्वतंत्र रूप से एक साथ, एक ही मात्रा में कीमत में कमी करती हैं इसलिए उत्पादन में वास्तविक वृद्धि dd वक्र के अनुरूप होती है। चित्र 20.10 में फर्म कीमत P_1 से कम करके P_2 कर देती हैं तो वास्तविक उत्पादन, d_3d_3 वक्र के अनुरूप X_2 है, क्योंकि सभी फर्में एक ही प्रेरणा से संचालित होते हुए, कीमत कम देती हैं। फलस्वरूप P_2 कीमत पर उद्योग की सभी फर्मों को हानि P_2RAB के बराबर हानि होने लगती है।

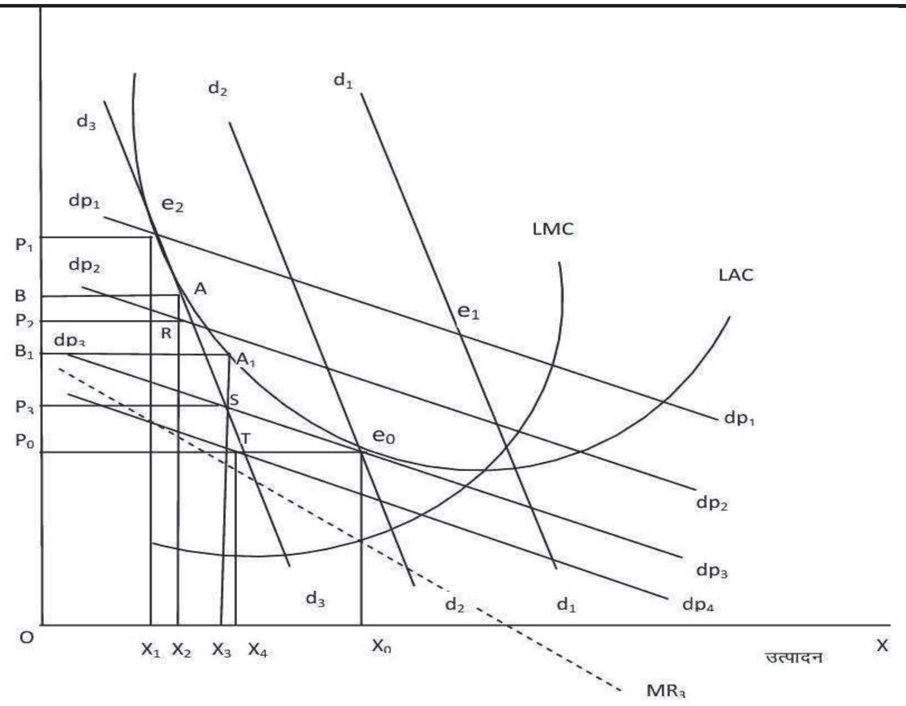

चित्र–20.10

फर्में अपने पिछले अनुभवों से सबक न लेते हुए पुनः व्यक्तिगत मांग वक्र dpdp के अनुरूप व्यवहार करेंगी, और कीमत में कमी करके अपनी उत्पादन तथा लाभ बढ़ाने का प्रयास करेंगी, जब तक dpdp वक्र, LAC वक्र से ऊपर है। चूंकि सभी फर्में एक तरह से सोचती तथा व्यवहार करती हैं इसलिए dpdp वक्र नीचे की ओर dd वक्र के अनुरूप विवर्तित हो जाएगा और उत्पादन में वास्तविक वृद्धि d_3d_3 मांग वक्र के अनुरूप होगी। जब सभी फर्में कीमत कम करके P_3 कर देती हैं तो व्यक्तिगत मांग वक्र विवर्तित होकर dp_3dp_3हो जाता है और उत्पादन X3 हो जाता है। P_3कीमत पर प्रत्येक फर्म की हानि बढ़कर $P_3SA_1B_1$के बराबर हो जाती है। यद्यपि dp_3dp_3 वक्र LACवक्र को स्पर्श कर रहा है परन्तु प्रत्येक फर्म का वास्तविक उत्पदन d_3d_3 मांग वक्र के अनुरूप X_2 ही है।

फर्म पुनः कीमत को Po कम करके, अपने उत्पदन को X_0 करना चाहेगी, जिससे उसकी हानि समाप्त हो सके। परन्तु चॅूकि प्रत्येक फर्म कीमत कम करेगी इसलिए प्रत्येक फर्म का वास्तविक उत्पदन d_3d_3 के अनुरूप X_4 होगा, और व्यक्तिगत मांग वक्र विवर्तित होकर dp_4dp_4 हो जाएगा, जोकि LACसे नीचे स्थित है। फलस्वरूप सभी फर्मों की हानि में और वृद्धि हो जाएगी, साथ ही कीमत कम करके लाभ बढ़ा सकने की सम्भावना भी समाप्त हो जाएगी।

अत्यधिक हानि के कारण पहले वित्तीय रूप से कमजोर फर्में उद्योग को छोड़कर जाना शुरु कर देंगी जिससे dd मांग वक्र dpdp वक्र के साथ ऊपर की ओर विवर्तित होगा। हानि के कारण कमजोर फर्में तब तक उद्योग को छोड़ती रहेंगी तब तक कि dpdp मांग वक्र LACवक्र को स्पर्श न करने

Yगे, तथा आनुपातिक मांग वक्र dd, स्पर्श बिन्दु पर dpdp वक्र को काटे। इस प्रकार संतुलन बिन्दु मव पर होगा जहां dp_3dp_3 वक्र LACको स्पर्श करता है तथा d_2d_2 वक्र स्पर्श बिन्दु पर काटता है। यह स्थायी संतुलन होगा। संतुलन कीमत च्व तथा प्रत्येक फर्म का बाजार में हिस्सा ग्व के बराबर होगा।

20.5 चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त की आलोचना

कीमत सिद्धान्त में चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धान्त का योग दान महत्वपूर्ण होते हुए भी इस सिद्धान्त की अनेक अर्थशास्त्रियों ने काफी आलोचना की।

1. प्रो0 स्टिगलर तथा राबर्ट ट्रिफिन ने ‘समूह’ की धारणा की आलोचना की तथा इसे एक भ्रामक धारणा बताया। जब वस्तु विभेदीकरण होता है तो प्रत्येक फर्म स्वयं एक उद्योग   होती है। असमांग वस्तुओं की मांग व आपूर्ति के आधार पर उद्योग   का मांग व पूर्ति वक्र प्राप्त करना संभव नहीं है।

2. एक वस्तु के सभी उत्पादकों द्वारा उत्पादित किस्मों के सम्बन्ध में लागत तथा मांग वक्रों को समान मान लेना उचित नहीं है। विभेदीकृत वस्तुओं की स्थिति में प्रत्येक वस्तु के लिए मांग वक्र तथा उत्पादन लागत भिन्न-भिन्न होती है। इस प्रकार एकरूपता की मान्यता अवास्तविक है।

3. स्टिगलर और कैल्डर ने समता की मान्यता की भी आलोचना की। विभेदीकृत वस्तुओं, जो कि एक दूसरे की निकट स्थानापन्न है, की स्थिति में फर्में अपनी प्रतियोगी फर्मों के निर्णयों को लेकर अत्यधिक सतर्क रहती हैं। यह मानना गलत है कि किसी एक फर्म द्वारा उत्पादन तथा मूल्य में परिवर्तन का प्रभाव समान रूप से सभी फर्मों के ऊपर पड़ जायेगा।

4. चैम्बरलिन के अनुसार असामान्य लाभ से आकृष्ट होकर जब नयी फर्में समूह में प्रवेश करेंगी और फलस्वरूप समूह में फर्मों की संख्या बढ़ेगी तो फर्मों के मांग वक्र की लोच नहीं बढ़ेगी। परन्तु राबिन्सन तथा काल्डर का मत है कि चैम्बरलिन की यह धारणा गलत है, क्योंकि समूह में नयी फर्मों के प्रवेश करने तथा उनकी संख्या बढ़ने पर बाजार की अपूर्णता का अंश कम होता जायेगा और उनका मांग वक्र अधिक लोचदार होता जायेगा।

5. अनेक विद्वानों का यह मत है कि पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की तरह एकाधिकारिक प्रतियोगिता के मॉडल के आधार पर भी उपयोगी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। इस सम्बन्ध में अल्पाधिकार के मॉडल कहीं अधिक उपयोगी हैं और फिर वास्तविक जगत में ऐसा उदाहरण पाना कठिन है जहां चैम्बरलिन की एकाधिकारिक प्रतियोगिता का मॉडल प्रासंगिक हो।

इन आलोचनाओं के बावजूद चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त का कीमत सिद्धान्त में योग दान काफी महत्वपूर्ण है। वस्तु विभेद, विक्रय कीमतें इत्यादि संकल्पनाओं को अपने सिद्धान्त में सम्मिलित कर चैम्बरलिन कीमत सिद्धान्त को वास्तविकता के अधिक निकट ले आए।

अभ्यास प्रश्न-2

लघु उत्तरीय प्रश्न

i. चैम्बरलिन की 'साहसिक मान्यताएं क्या हैं?
ii. एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म में दीर्घकालीन संतुलन की शर्तें क्या हैं?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. प्रो0 चैम्बरलिन के 'वस्तु समूह' की संकल्पना सत्य होगी:-

   (क) नहाने के साबुन की अनेक किस्मों में।

   (ख) नहाने तथा कपड़ा धोने के साबुन में।

   (ग) साबुन तथा टूथपेस्ट में।

   (घ) इनमें से कोई नहीं।

2. एकाधिकारिक प्रतियोगिता में 'अतिरिक्त क्षमता' का कारण है:-

   (क) फर्मों द्वारा न्यूनतम औसत लागत से ऊँचे स्तर पर उत्पादन करना।

   (ख) फर्मों द्वारा न्यूनतम औसत लागत में से नीचे के स्तर पर उत्पादन करना।

   (ग) फर्मों द्वारा न्यूनतम औसत लागत के बराबर स्तर पर उत्पादन करना।

   (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं।

20.6 एकाधिकारिक प्रतियोगिता तथा पूर्ण प्रतियोगिता में तुलना

चैम्बरलिन द्वारा दिया गया एकाधिकारिक प्रतियोगिता का सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता के अधिक निकट है। दोनों ही बाजार स्थितियों में,

(क) फर्मों की संख्या अधिक होती है,

(ख) फर्में एक दूसरे से प्रतियोगिता करती हैं,

(ग) सीमान्त लागत (MC) तथा सीमान्त आय (MR) की समानता के बिन्दु पर संतुलन स्थापित होता है,

(घ) फर्मों के प्रवेश तथा निकासी की स्वतंत्रता होती है,

(च) अल्पकाल में फर्में असामान्य लाभ या हानि उठा सकती हैं,

(छ) फर्में दीर्घकाल में सामान्य लाभ अर्जित करती हैं।

परन्तु इन दोनों प्रकार के बाजारों के बीच महत्वपूर्ण अन्तर है: -

1-पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों की संख्या इतनी अधिक होती है कि एक व्यक्तिगत फर्म का उसके उत्पाद की कीमत पर कोई नियंत्रण नहीं होता है। कीमत बाजार द्वारा निर्धारित की जाती है और फर्म के लिए वह दी हुई होती है, फर्म कीमत में परिवर्तन नहीं कर सकती। एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्मों की संख्या केवल इतनी अधिक होती है कि एक व्यक्तिगत फर्म अपने वस्तु की कीमत परिवर्तन की क्षमता रखती है। फर्म अपनी उत्पादित वस्तु की कीमत बढ़ा सकती है और फिर भी उसके कुछ क्रेता बचे रह सकते हैं और यदि फर्म कीमत में कमी लाती है तो अपने प्रतिद्वंदी फर्मों के बाजार के कुछ हिस्से पर कब्जा कर सकती है।

2-पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादित वस्तुएं समांग और एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न होती हैं। जबकि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्में विभेदीकृत वस्तुओं का उत्पादन करती हैं जो कि एक दूसरे के निकट का स्थानापन्न होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक फर्म का अपने वस्तु पर एकाधिकार होता है परन्तु उसे दूसरी फर्मों के निकट स्थानापन्न वस्तुओं से प्रतियोगिता करनी होती है।

3-पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत समांग वस्तु के कारण, वस्तुतः फर्मों में कोई प्रतियोगिता नहीं होती। प्रत्येक फर्म क्षैतिज मांग वक्र का सामना करती है और दी हुई कीमत पर बिना किसी दूसरी फर्म के बाजार हिस्से को प्रभावित किए, कोई भी मात्रा बेच सकती है।

इसके विपरीत एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्में नीचे की ओर गिरते हुए मांग वक्र का सामना करती हैं और फर्मों में प्रतियोगिता होती है। यह प्रतियोगिता कीमत या फिर गैर कीमत भी हो सकती है। यहां गैर कीमत प्रतियोगिता अधिक महत्वपूर्ण है, जिसमें फर्में विज्ञापन तथा अन्य विक्रय बढ़ाने वाली गति विधियों का सहारा लेती हैं।

4-यद्यपि दोनों बाजार स्थितियों की संतुलन स्थितियां एक जैसी हैं तथा दीर्घकाल में सामान्य लाभ ही प्राप्त करती हैं, परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में संतुलन की स्थिति में सीमान्त लागत MC = सीमान्त आय MR त्र औसत लागत AC = कीमत P होगी। एकाधिकारिक प्रतियोगिता में दीर्घकालीन संतुलन की स्थिति में MC = MR तथा P = AC होगी। परन्तु कीमत, औसत लागत से अधिक होगी, क्योंकि फर्में गिरते हुए मांग वक्र का सामना करती हैं। इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता में कीमत पूर्ण प्रतियोगिता से अधिक तथा उत्पादन पूर्ण प्रतियोगिता से कम होगा।

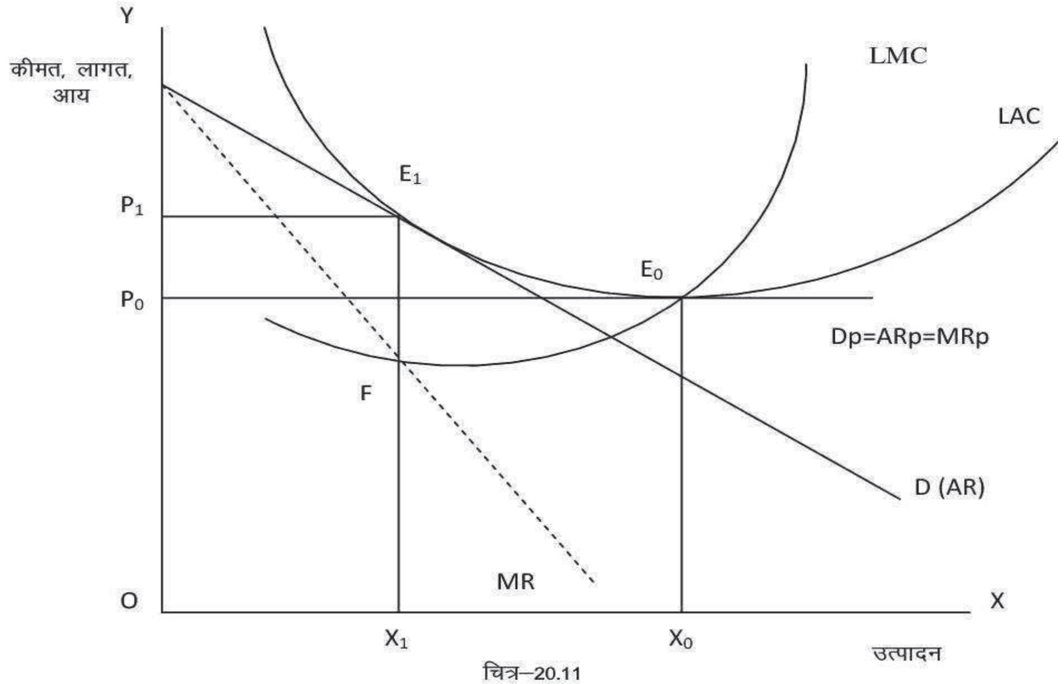

चित्र–20.11

चित्र 20.6 में पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत मांग वक्र को Dp से दिखाया गया है, जिसके E_0 बिन्दु पर संतुलन है जहां MR=MC=LAC

एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत मांग वक्र DD है जो कि दीर्घकालिक औसत लागत वक्र से E_1 पर स्पर्श करता है। संतुलन की स्थिति में कीमत P_1 जो पूर्ण प्रतियोगी कीमत P_0 से अधिक है, जबकि उत्पादन X_1 है जो कि पूर्ण प्रतियोगी उत्पादन X_0 से कम है।

5-पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादन प्लांट के अनुकूलतम स्तर या न्यूनतम लागत पर हो रहा है। चित्र में E_0 बिन्दु औसत लागत के न्यूनतम स्तर को बताता है जबकि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में उत्पादन अनुकूलतम बिन्दु E_0 से बायीं ओर E_1 पर हो रहा है। उत्पादन लागत पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा अधिक है और संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग नहीं हो रहा है। इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता में 'अधिक्य क्षमता' पायी जाती है। चित्र में X_0 X_1 'अधिक्य क्षमता' को दर्शाता है जो कि पूर्ण प्रतियोगी उत्पादन तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता के उत्पादन का अन्तर है।

20.7 सारांश

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में एकाधिकार तथा प्रतियोगिता दोनों का समिश्रण होता है जिसमें बड़ी संख्या में फर्में या विक्रेता विभेदीकृत वस्तुओं, जो कि एक दूसरे की निकट स्थानापन्न होती हैं, का उत्पादन या विक्रय करते हैं। इस बाजार स्थिति में फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु का मांग वक्र की ढाल बाये से दायें ओर नीचे की ओर होती है। वस्तु विभेद के कारण फर्में विज्ञापन तथा अन्य विक्री प्रोत्साहन उपायों के माध्यम से अपनी बिक्री बढ़ाने का प्रयास करती है।

अल्पकाल में एकाधिकारिक प्रतियोगी बाजार में, फर्में सामान्य लाभ, असामान्य लाभ या हानि की स्थिति में हो सकती हैं, जो कि फर्म के वस्तु की मांग वक्र तथा औसत लागत वक्र की स्थिति पर निर्भर करता है। फर्म का दीर्घकालीन संतुलन तथा समूह संतुलन वहां होता है जहां सीमान्त आय (MR)सीमान्त लागत (MC)के तथा औसत आय (AR) दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) के बराबर हो।

दीर्घकाल में एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्में पूर्ण प्रतियोगिता की तरह अनुकूलतम आकार की नहीं होती हैं तथा फर्म की उत्पादन क्षमता अप्रयुक्त रहती है अर्थात् अधिक्य क्षमता पायी जाती है।

20.8 शब्दावली

वस्तु विभेद -वस्तु विभेद का अर्थ है, एक उद्योग या वस्तु समूह की विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं में अन्तर। यह अन्तर उनके आकार, पैकेजिंX, विक्रय के बाद सेवा, डिजाइन, विक्रय-कला इत्यादि के आधार पर हो सकता है। वस्तु विभेद का मुख्य उद्देश्य एक फर्म का समूह की अन्य फर्मों के उत्पादों से अपने उत्पाद को भिन्न दिखाकर अपने उत्पाद के प्रति ग्राहक की प्राथमिकता को मजबूत करना है।

विक्रय लागतें - वे लागतें जो कि फर्म अपने उत्पाद के मांग रेखा की ढाल में या स्थिति में परिवर्तन करने के लिए करती है। विक्रय लागतों में विज्ञापन की लागत, बिक्री संवर्द्धन योजनाओं पर व्यय, बिक्री में लगे कर्मचारियों के वेतन तथा कमीशन, बिक्री के बाद की सेवा की लागत और प्रदर्शन के लिए फुटकर विक्रेताओं को दिये गये भत्ते शामिल है।

उद्योग - समांग वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्मों के समूह को ‘उद्योग ’ कहा जाता है।

वस्तु समूह - ऐसी फर्मों का समूह जो निकट स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन करती हैं।

गैर-कीमत प्रतियोगिता - एक एकाधिकारी प्रतियोगिता की फर्म के वे प्रयास जैसे-वस्तु विभेद तथा विक्रय व्यय, जिनमें वह अपनी वस्तु की बिक्री और लाभों की कीमत में कटौती किए बिना बढ़ाती है।

आधिक्य क्षमता - एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म दीर्घकालीन औसत लागत वक्र ;स्।ब्द्ध के गिरते हुए भाग पर कार्य करती है, अर्थात उस अनुकूलतम मात्रा का उत्पादन नहीं करती है जिस पर LACन्यूनतम हो। इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म का वास्तविक दीर्घकालीन उत्पादन तथा सामाजिक दृष्टि से अनुमूल्तम उत्पादन का अन्तर उसकी ‘आधिक्य क्षमता’ की माप है।

20.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

बहुविकल्पीय प्रश्न

(i) ख (ii) X (iii) घ

अभ्यास प्रश्न-2

बहुविकल्पीय प्रश्न

(i) क (ii) क

20.10संदर्भ ग्रंथ सूची

- Ferguson C.E., (1972), Micro Economic Theory, 3rd Edition, Homewood, III: R. D. Irwin.
- Chamberlin E.H., (1956), The Theory of Mouopolistic Competetion, 7th Edition Harvard University Press.
- Koutsoyiannis, A., (1979), Modern Microecomomics, 2nd Edition, Macmillan, London.
- Ahuja H.L. (2006), Advanced Economic Theory: Microeconomic Analysis, S.Chand & Company Ltd.
- E.U. Browing & J.M. Prowing, (1994), Microeconomic Theory & Applications, Kalyani Pub. New Delhi.

20.11उपयोगी/सहायक ग्रंथ

- Dwivedi D.N., (2006) Micro Economics: Theory & Applications, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd (Pearson).
- Peterson, L. and Jain (2006), Managerial Economics, 4th edition Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd (Pearson).
- Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill.
- Mishra, S. K. and Puri, V. K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.
- Panhaj Ghai & Anuj Gupta(2002), Microeconomic Theory & Applications II, Ist Edition, Sonp & Sons, New Delhi.

- S.P.S. Chauhan (2009), Microeconomic Theory & Applications, Part-II, PHI Learning Private Ltd, New Delhi.
- M. George Mankiw (1998), Principals of Microeconomics, Ist Edition, Elesevier.
- Paul Krugman & Robin Wells (2010), Microecomics, 2nd edition, WH Freman & Co.
- D.S. Watson & M. Getz, Price Theory and its Uses. 5th Revised Edition.
- J.P. Gould and E.P. Lazer (1989), Microeconomic Theory, 6th Edition. Homewood, III: R. D. Irwin

20.12 निबंधात्मक प्रश्न

1- एकाधिकारी प्रतियोगिता की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए। इसके अंतर्गत एक फर्म के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन संतुलन की व्याख्या कीजिए।

2- एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत समूह संतुलन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

3- पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारी प्रतियोगिता में विस्तार से तुलना कीजिए।

इकाई-21 अल्पाधिकार में कीमत निर्धारण का सिद्धान्त

21.1 प्रस्तावना
21.2 उद्देश्य
21.3 अल्पाधिकार: अर्थ एवं विशेषताएँ
21.3.1 अल्पाधिकार का अर्थ
21.3.2 अल्पाधिकार की विशेषताएँ
21.3.3 अल्पाधिकार के मॉडल
21.4 क्रूर्नों का दूयाधिकार मॉडल
21.5 चैम्बरलिन का मॉडल
21.6 विकुंचित मांग वक्र मॉडल
21.7 कार्टेल
21.7.1 संयुक्त लाभ अधिकतमीकरण मॉडल
21.7.2 कार्टेल तथा बाजार का बंटवारा मॉडल
21.7.2.1 गैर कीमत प्रतियोगिता समझौता
21.7.2.2 कोटा सिस्टम
21.8 कीमत नेतृत्व मॉडल
21.8.1 निम्न लागत कीमत नेतृत्व मॉडल
21.8.2 प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व मॉडल
21.8.3 बैरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व मॉडल
21.9 अल्पाधिकार का बिक्री अधिकतम मॉडल
21.10 सारांश
21.11 शब्दावली
21.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
21.13 संदर्भ ग्रंथ सूची
21.14 उपयोगी/सहायक ग्रंथ
21.15 निबन्धात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

फर्म के सिद्धान्त से सम्बन्धित यह पांचवी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद अब आप यह बता सकते हैं कि तीन बाजार स्थितियों, पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता में क्या अन्तर है तथा इनमें कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण कैसे होता है?

वास्तविक जगत में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के साथ-साथ एकाधिकारिक प्रतियोगिता की स्थिति भी कम ही होती है। वास्तविक जगत में अपूर्ण प्रतियोगिता का एक महत्वपूर्ण रूप अल्पाधिकार, जिसमें 'थोड़े से' उत्पादकों या विक्रेताओं में प्रतियोगिता होती है, की स्थिति पायी जाती है। प्रस्तुत इकाई में अल्पाधिकार की विशेषताओं तथा विभिन्न प्रकार के अल्पाधिकारी बाजारों में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप अल्पाधिकारी बाजार की विशेषताओं तथा अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के बारे में जान सकेंगे।

21.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- अल्पाधिकार तथा उसकी विशेषताओं को बता सकेंगे।
- अल्पाधिकार के विभिन्न मॉडलों के बारे में जान सकेंगे।
- वास्तविक जगत में फर्मों तथा उत्पादकों के व्यवहारों को समझ सकेंगे।

21.3 अल्पाधिकार का अर्थ एवं विशेषताएँ

अल्पाधिकार, औद्योगिक देशों में, विनिर्माण क्षेत्र में सबसे अधिक पायी जाने वाली बाजार स्थिति है।

अल्पाधिकार का अर्थ - अल्पाधिकार वह बाजार स्थिति होती है जिसमें एक वस्तु के थोड़े से उत्पादक या विक्रेता होते हैं। इसे कुछ के बीच प्रतियोगिता कहा जाता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि बाजार में थोड़ी सी फर्में या उत्पादक या विक्रेता होने पर एक की कार्यवाही दूसरे को प्रभावित कर सकती है। अल्पाधिकार का सरलतम रूप दूयाधिकार है जिसमें एक पदार्थ के केवल दो उत्पादक या विक्रेता होते हैं।

एक अल्पाधिकारी उद्योग समरूप या निकट स्थानापन्न विभेदीकृत वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है। यदि कुछ फर्मों या विक्रेताओं के पदार्थ समांग या पूर्ण स्थानापन्न हों तो उसे शुद्ध अल्पाधिकार तथा यदि वस्तुएं विभेदीकृत तथा निकट स्थानापन्न हों तो इसे अपूर्ण अल्पाधिकार या विभेदीकृत अल्पाधिकार कहते हैं। लोहा, पेट्रोY, रसोई गैस, सीमेंट, ताँबा, जस्ता आदि उद्योगों में शुद्ध अल्पाधिकार तथा साबुन, शैम्पू, कार, टी0वी0 इत्यादि उद्योगों में अपूर्ण अल्पाधिकार बाजार की स्थितियाँ पायी जाती हैं।

अल्पाधिकार की विशेषताएँ - फर्मों या विक्रेताओं की कम संख्या होने के अलावा अल्पाधिकारी बाजार की कुछ विशिष्ट विशेषताएँ है जो कि अन्य बाजार स्थितियों में नहीं पायी जाती हैं।

1-परस्पर निभरता - अल्पाधिकारी बाजार की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता फर्मों या विक्रेताओं की पारस्परिक निर्भरता है। जब फर्मों या विक्रेताओं की संख्या होती है तो कीमत, उत्पादन व्यवसाय रणनीति, वस्तु आदि संबंधी परिवर्तनों का सीधा प्रभाव प्रतिद्वंदियों के लाभों पर पड़ता है, जो प्रतिक्रियास्वरूप अपनी कीमतों, उत्पादन, व्यवसाय-रणनीति आदि में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करते हैं। इस प्रकार एक अल्पाधिकारी फर्म या विक्रेता द्वारा निर्णय लेते समय यह ध्यान रखना होता है कि उसके निर्णयों के प्रतिक्रियास्वरूप उसकी प्रतिद्वंदी फर्मों या विक्रेताओं की प्रतिक्रियाएं किस प्रकार की होंगी।

स्पष्ट है कि दो या दो से अधिक फर्मों या विक्रेताओं (परन्तु बहुत अधिक नहीं) की स्थिति, जो कि निर्णय लेने में परस्पर निर्भर हैं, अल्पाधिकारी बाजार स्थिति को बताती है।

उदाहरण के तौर पर पेप्सी कोला द्वारा कीमत, उत्पादन तथा विज्ञापन आदि के सम्बन्ध में लिया गया निर्णय कोका-कोला को भी तुरंत ही अपनी कीमत, उत्पादन तथा विज्ञापन संबंधी निर्णयों में परिवर्तन के लिए बाध्य कर देता है। इसी प्रकार विभिन्न दूरसंचार कम्पनियां एक-दूसरे के निर्णयों से प्रभावित होती हैं।

2-विज्ञापन तथा विक्रय लागतें - परस्पर निर्भरता के कारण अल्पाधिकारी बाजार में विक्रेता या फर्में बाजार में अपने हिस्से को बनाए रखने या बढ़ाने के लिए विज्ञापन तथा अन्य बिक्री प्रोत्साहन तरीकों का सहारा लेती हैं, जिससे उनकी विक्रय लागतों में वृद्धि होती है। अल्पाधिकार में फर्मों के बीच वास्तविक प्रतियोगिता होती है और विज्ञापन उनके लिए जीवन-मृत्यु का विषय बन जाता है।

3-मांग -वक्र की अनिश्चितता -फर्मों की परस्पर निर्भरता के कारण अल्पाधिकार के अंतर्गत कोई भी फर्म अपनी कीमत-उत्पादन नीति के सम्भावित परिणामों का निश्चितता से पूर्वावलोकन नहीं कर सकती। अर्थात् जब एक अल्पाधिकारी फर्म अपने कीमत में कमी करती हैं तो प्रतिद्वंदी फर्में भी

कीमत में कमी करेंगी या कीमत अपरिवर्तित रहने देंगी, इसके बारे में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। इसलिए अल्पाधिकारी जिस मांग वक्र का सामना करता है, वह अनिश्चित होता है।

4-कीमत तथा उत्पादन की अनिर्धार्यता - फर्मों की परस्पर निर्भरता तथा प्रतिद्वदियों के अनिश्चित व्यवहार ढांचे के कारण अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण में अनिश्चितता होती है। अल्पाधिकार का सिद्धान्त 'समूह व्यवहार' का सिद्धान्त है और इसके सम्बन्ध में लाभ अधिकतम करने की मान्यता बहुत उचित नहीं है। अल्पाधिकार के वास्तविक उद्देश्य के सम्बन्ध में निश्चितता न होने के कारण भी कीमत और उत्पादन निर्धारण में और भी अधिक अनिश्चितता आ जाती है।

अतः अल्पाधिकारी समस्या का कोई एक निश्चित समाधान नहीं है, बल्कि बहुत से सम्भावित समाधान हैं और प्रत्येक समाधान भिन्न मान्यताओं पर आधारित है।

अल्पाधिकार के मॉडल - अल्पाधिकारी बाजारों में स्वतंत्र रूप में कीमत निर्धारण करना काफी कठित है। अर्थशास्त्रियों ने निम्नलिखित आधारों पर अनेक मॉडलों का विकास किया है

1-अल्पाधिकारी समूह के व्यवहार अर्थात् थोड़ी सी परस्पर निर्भर फर्में आपस में सहयोग करेंगी या एक-दूसरे से प्रतियोगिता करेंगीय

2-अल्पाधिकारी फर्मों के वास्तविक उद्देश्य अर्थात् वे व्यक्तिगत अथवा संयुक्त लाभों को अधिकतम करना चाहती हैं या सुरक्षा या बिक्री को अधिकतम करना चाहती हैंय

3-एक फर्म द्वारा कीमत व उत्पादन में परिवर्तन से प्रतिद्वंदियों की प्रतिक्रिया के संबंध में मान्यता।

अर्थशास्त्रियों द्वारा विकसित कुछ प्रमुख मॉडलों को फर्मों के बीच समझौते या गठबन्धन के आधार पर, दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः

(क) गैर-कपट संधि अल्पाधिकार मॉडल

(ख) कपट संधि अल्पाधिकार मॉडल

गैर कपट संधि अल्पाधिकार मॉडल के अंतर्गत निम्नलिखित मॉडलों के बारे में आप जान सकेंगे:

i. क्रूनों का दूयाधिकार मॉडल
ii. चैम्बरलिन का मॉडल
iii. पॉल स्वीजी का विकुंचित मांग वक्र मॉडल

गैर कपट संधि के अंतर्गत फर्मों या विक्रेताओं के बीच किसी प्रकार का समझौता या गठबन्धन नहीं होता है और वे आपस में परस्पर प्रतियोगिता करती हैं। परन्तु प्रायः अल्पाधिकारी फर्मों या विक्रेताओं के बीच किसी न किसी प्रकार का पारस्परिक समझौता होता है। यह समझौता अनौपचारिक या औपचारिक हो सकता है।

कपट संधि अल्पाधिकार मॉडल के अंतर्गत अल्पाधिकारी फर्में परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता को दूर करने के लिए आपस में कपट संधि करती हैं। जब एक उद्योग की फर्मों के बीच औपचारिक समझौता होता है, जिसमें वे आपसी विचार-विमर्श से कीमत या उत्पादन के सम्बन्ध में कुछ सामान्य नियम निर्धारित कर लेते हैं, तो इसे 'कार्टेल' कहा जाता है। आप दो प्रकार के कार्टेल के अंतर्गत अल्पाधिकार फर्मों के कीमत तथा उत्पादन व्यवहार को जान सकेंगेः

i. संयुक्त लाभ और पूरे उद्योग के लाभ में अधिकतम करने वाला कार्टेल, तथा
ii. बाजार का बंटवारा करने वाला कार्टेल।

अनौपचारिक समझौते के अंतर्गत बिना आमने-सामने विचार-विमर्श किए फर्में आपस में एक समझौता कर लेती हैं तथा कीमत, उत्पादन आदि के संबंध में एक समान नीति का पालन करती हैं। इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है 'कीमत नेतृत्व'। कीमत नेतृत्व के तीन प्रमुख प्रकार हैं:

i. निम्न लागत कीमत नेतृत्व
ii. प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व
iii. बैरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व

अभ्यास प्रश्न-1

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अल्पाधिकार से आप क्या समझते हैं?
2. अल्पाधिकार की मुख्य विशेषताएं बताइए।
3. अल्पाधिकारी मांग वक्र में अनिश्चितता क्यों पायी जाती है?
4. अल्पाधिकार के विभिन्न प्रकार क्या हैं?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1 . अल्पाधिकार के सम्बन्ध में निम्नलिखित में से क्या सही नहीं है?

(क) मांग वक्र की अनिश्चितता

(ख) कीमत प्रतियोगिता

(ग) कीमत दृढ़ता

(घ) परस्पर निर्भरता

2. अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत में -

(क) स्थिर रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

(ख) अस्थिर रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

(ग) निम्न स्तर पर रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

(घ) इनमें से कोई नहीं।

सत्य व असत्य बताइए

1. अल्पाधिकार में फर्मों की संख्या बहुत अधिक होती है।
2. अल्पाधिकारी का मांग वक्र अनिश्चित होता है।
3. विकुंचित मांग वक्र मॉडल, कपट संधि समझौता के अंतर्गत आएगा।
4. कीमत नेतृत्व फर्मों के बीच अनौपचारिक समझौते का एक रूप है।
5. फर्मों के बीच परस्पर निर्भरता अल्पाधिकार की एक प्रमुख विशेषता है।

21.4 कूर्नों का द्वयाधिकार मॉडल

द्वयाधिकारी सिद्धान्त अल्पाधिकारी सिद्धान्त का सरलतम एवं सीमित पक्ष है जिसमें सिर्फ दो विक्रेता या फर्में होती हैं, जो कि पूर्ण रूप से स्वतंत्र होती है और उनमें किसी प्रकार का कोई समझौता नहीं होता। अल्पाधिकार के प्रतिष्ठित माडलों में यह मान लिया गया है कि अल्पाधिकारी फर्में अपनी उत्पादन तथा कीमत नीति निर्धारित करते समय अपने प्रतिद्वंदी की प्रतिक्रियाओं की पूर्ण रूप से उपेक्षा कर देती हैं।

अल्पाधिकार का प्रथम मॉडल फ्रेंच अर्थशास्त्री कूर्नों ने 1838 में दिया था। उनका मॉडल समान पदार्थों वाले दूयाधिकारी की व्याख्या करता है। कूर्नों का मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित थाः

1-दो स्वतंत्र फर्में या विक्रेता हैं जो एक समांग वस्तु, खनिज जल, का उत्पादन तथा एक ही बाजार में विक्रय करते हैं।

2-उत्पादन की लागत शून्य है अर्थात सीमान्त लागत (MC) भी शून्य है।

3-दोनों फर्में या विक्रेता एक सरल रेखा प्रकार के मांग वक्र का सामना करते हैं, जिसका ढाल ऋणात्मक है।

4-प्रत्येक फर्म यह मानते हुए कि उसकी प्रतिद्वंदी अपना उत्पादन परिवर्तन नहीं करेगा, अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए अपने उत्पादन स्तर का निर्धारण करती हैं। दूसरे शब्दों में उत्पादक अपनी उत्पादन मात्रा का निर्धारण करने में, अपने क्रियाओं या परिवर्तनों के प्रति अपने प्रतिद्वंदी की प्रतिक्रियाओं पर कोई ध्यान नहीं देता है।

माना दो फर्में A और B हैं जो मांग वक्र DD_1 का सामना कर रही हैं। माना पहले फर्म A ने उत्पादन प्रारम्भ किया वह OA मात्रा का उत्पादन करेगी, OP कीमत पर, जहां उसका लाभ अधिकतम हो, क्योंकि इस बिन्दु पर, सीमान्त लागत (MC) = सीमान्त आय (MR) = 0 है। उसका लाभ OAMP है। उत्पादन कीमत में इस स्तर पर मांग की लोच (e) इकाई के बराबर है और कुल आय (TR) अधिकतम है। चूंकि लागत शून्य है इसलिए अधिकतम आय का तात्पर्य है अधिकतम लाभ।

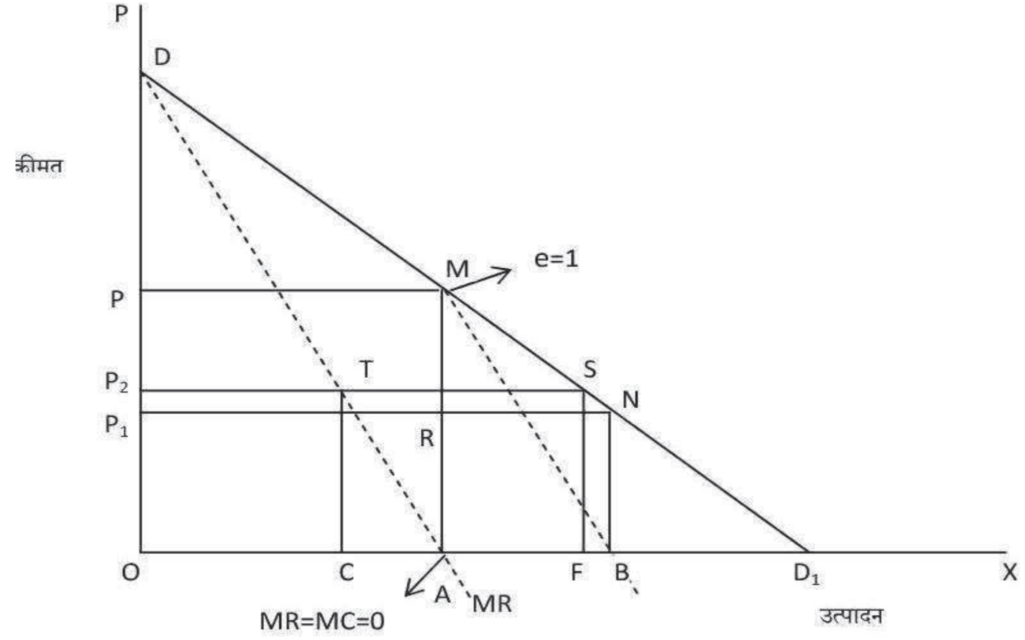

चित्र 21.1

अब फर्म Bयह मानकर कि फर्म A, OA मात्रा ($1/2OD_1$) का उत्पादन करती रहेगी, अपने उत्पादन का निर्धारण करेगी। फर्म B के लिए उपलब्ध बाजार AD_1 है, अतः वह MD_1 को अपना मांग वक्र मानकर अपने लाभ को अधिकतम करने वाले उत्पादन स्तर AB का उत्पादन करेगी, जबकि

कीमत P_1है। फर्म B का MD_1 मांग वक्र होने पर MB उसका MR वक्र होगा जिसके Bबिन्दु पर वह सीमान्त लागत के बराबर है। संतुलन में वह वस्तु की AB मात्रा P_1 कीमत पर बेचकर RABN आय प्राप्त करेगा, जो कि उसके अधिकतम लाभ को प्रदर्शित करता है। फर्म B फर्म A द्वारा छूटे हुए बाजार के हिस्से (AD_1) का आधा ($AB=1/2AD_1$)अर्थात कुल बाजार का एक चौथाई (1/4=1/2*1/2) का उत्पादन करेगी।

फर्म B, के प्रवेश से कीमत गिरकर P_1 होने से फर्म A के लाभ में कमी आ जाती है जो कि गिरकर मात्र $OARP_1$रह जाता है। फर्म A यह मानते हुए कि फर्म B अब अपने उत्पादन स्तर में परिवर्तन नहीं करेगी क्योंकि वह अधिकतम लाभ अर्जित कर रही है, अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए उपलब्ध बाजार, $\left(1-\frac{1}{4}=\frac{3}{4}\right)$ का आधा$\left(\frac{3}{4}.\frac{1}{2}=\frac{3}{8}\right)$ उत्पादन करेगी जो कि पहले से कम है$\left(\frac{3}{8}=\frac{1}{2}-\frac{1}{8}\right)$ । पुनः फर्म B यह मानकर कि फर्म A अपने उत्पादन स्तर में परिवर्तन नहीं करेगी, वह अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए उपलब्ध बाजार$\left(1-\frac{3}{8}=\frac{5}{8}\right)$का आधा $\left(\frac{5}{8}.\frac{1}{2}=\frac{5}{16}\right)$ उत्पादन करेगी। जो कि पहले की अपेक्षा अधिक है$\left(\frac{5}{16}=\frac{1}{4}+\frac{1}{16}\right)$ ।

क्रिया और प्रतिक्रिया की यह प्रक्रिया चल ती रहेगी तथा फर्म A उत्पादन में कमी तथा फर्म B के उत्पादन या बाजार हिस्से में वृद्धि होती रहेगी। यह प्रक्रिया तब रुकेगी जबकि दोनों ही फर्मों का उत्पादन तथा बाजार हिस्सा बराबर हो जाएगा, जो कि कुल उत्पादन का एक तिहाई ($1/3OD_1$) होगा। इस प्रकार दोनों फर्में मिल कर कुल बाजार का दो तिहाई (2/3) उत्पादन करेंगी। यह स्थायी संतुलन की स्थिति होगी।

यदि दोनों ही फर्में पारस्परिक निर्भरता को पहचान लें और मिल कर एक गुट की तरह कार्य करें तो दोनों का संयुक्त उत्पादन, एकाधिकारी उत्पादन OA के बराबर तथा कीमत OP के बराबर होगा। दोनों OA का आधा-आधा $\left(\frac{1}{2}OA\right)$ हिस्सा बांट लेंगे अर्थात प्रत्येक फर्म कुल बाजार का एक चौथाई $\left(\frac{1}{4}OD_1\right)$ उत्पादन करेगी और उसे लाभ अधिकतम करने वाली कीमत OP पर बेचेंगी। स्पष्ट है कि कूर्नो के द्वयाधिकारी समाधान में उत्पादन, अधिकतम सम्भव उत्पादन (अर्थात पूर्ण प्रतियोगी उत्पादन, OD_1) का दो तिहाई $\left(\frac{2}{3}OD_1\right)$और कीमत, अधिकतम लाभ कीमत (अर्थात एकाधिकारी कीमत, OP) की दो तिहाई $\left(OP_2=\frac{2}{3}OP\right)$ होगी।

यदि फर्मों या विक्रेताओं की संख्या दो से अधिक हो तो भी कूर्नो मॉडल को लागू किया जा सकता है। यदि उद्योग में फर्मों की संख्या द हो तो कूर्नो समाधान मे प्रत्येक फर्म 1 / (n+1) करेगी तथा उद्योग का कुल उत्पादन n / (n+1) होगा।

आलोचना

1-कूर्नो मॉडल की अधिकांश मान्यताएं अवास्तविक हैं। प्रत्येक विक्रेता या फर्म यह मान लेता है कि उसकी प्रतिद्वंदी अपनी उत्पादन मात्रा में परिवर्तन नहीं करेगी जबकि बार-बार वह प्रतिक्रिया स्वरूप उसे परिवर्तित होते देखती है। स्पष्ट है कि फर्में अपने पिछले गलत अनुमानों से कुछ नहीं सीखतीं। वास्तव में कूर्नो की यह मान्यता तर्कसंगत विवेकशील नहीं है। अल्पाधिकार के अंतर्गत फर्मों की परस्पर निर्भरता की उपेक्षा करना इस मॉडल का एक प्रमुख दोष है।
2-कूर्नो के उत्पादन लागत शून्य मान लेने की मान्यता भी अवास्तविक है। फिर भी यदि उत्पादन लागत को शून्य न माना जाए तो भी कूर्नो समाधान अप्रभावित रहेगा।
3-यह एक बंद मॉडल है जो कि फर्मों के प्रवेश की इजाजत नहीं देता।
4-अंतिम संतुलन की स्थिति आने में कितना समय लगेगा , इस बारे में भी मॉडल कुछ नहीं कहता।

21.5 चैम्बरलिन मॉडल

चैम्बरलिन ने अपने द्वयाधिकार मॉडल में दोनों विक्रेताओं की परस्पर निर्भरता को स्वीकार करते हुए स्थिर संतुलन हल् प्रस्तुत किया। चैम्बरलिन, कूर्नो तथा अन्य प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा दिए गए मॉडल में फर्मों की परस्पर निर्भरता का ध्यान न रखने की आलोचना करते हैं। क्योंकि यह फर्मों का विवेकशील व्यवहार नहीं होगा। वास्तव में फर्में पारस्परिक निर्भरता को पहचान कर अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती हैं और ऐसी स्थिति में प्रत्येक फर्म एकाधिकारी कीमत वसूल करती है तथा एकाधिकारी संतुलन उत्पादन को बराबर-बराबर बांट लेती है और जब सभी फर्में में संतुलन होंगी तो उद्योग का लाभ भी अधिकतम होगा और संतुलन स्थिर होगा।

चित्र 21.2 में कूर्नो मॉडल की तरह मांग वक्र DD एक सीधी रेखा है जिसका ढाल ऋणात्मक है। सैद्धान्तिक सरलता के लिए उत्पादन लागत शून्य मान ली गयी है। यदि फर्म A पहले उत्पादन शुरु करती है तो वह उत्पादन को वहां निश्चित करेगी जहां उसका लाभ अधिकतम होगा अर्थात वह OX_0 मात्रा में उत्पादन करेगी। (क्योंकि X_0 पर फर्म A का MR = MC) तथा उसे एकाधिकारी कीमत OP_0 पर बेचेगी। फर्म B यह मानकर कि फर्म अपनी उत्पादन मात्रा में परिवर्तन नहीं करेगी, CD को अपना मांग वक्र मानकर अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करेगी तथा X_0D का

आधा अर्थात X_0 X_2 मात्रा में उत्पादन करेगी (क्योंकि X_2 पर फर्म B का MR = MC)। परिणामस्वरूप उद्योग का कुल उत्पाद OX_2 हो जाएगा तथा कीमत गिरकर OP हो जाएगी।

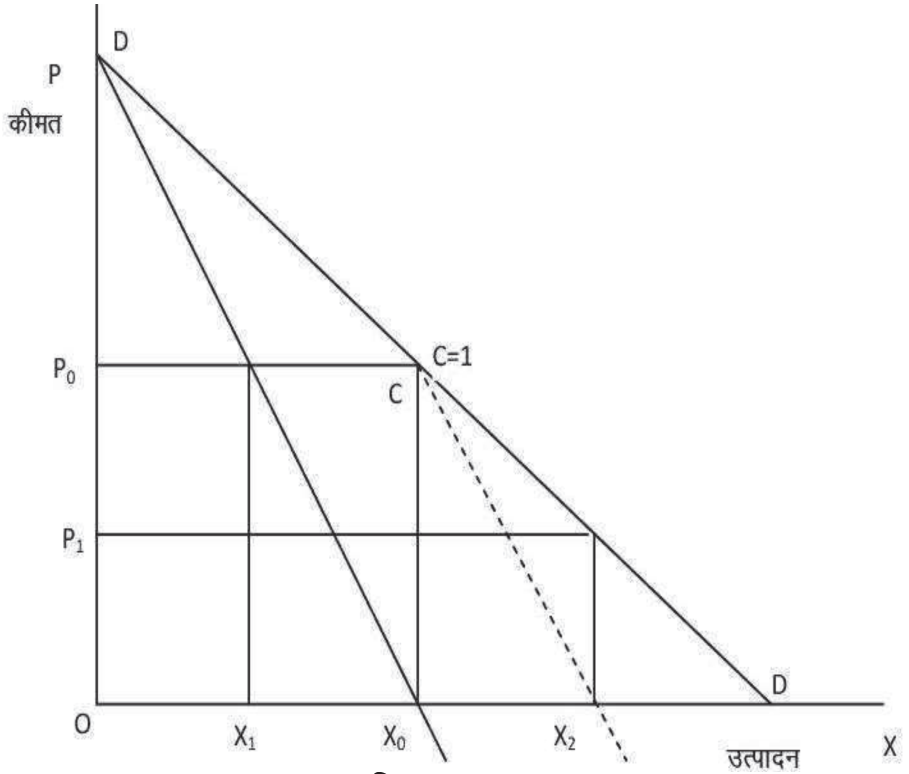

चित्र 21.2

यहां कूर्नो के विपरीत चैम्बरलिन यह मानते हैं कि फर्म । पारस्परिक निर्भरता को ध्यान में रखते हुए प्रतिक्रिया करती है फर्म A यह महसूस करती है कि वह जो भी निर्णय लेगी, फर्म B उस पर प्रतिक्रिया करेगी। इसलिए फर्म A अपने उत्पादन को कम करके OX_1 कर देती है। जो कि OX_0 का आधा है और B के उत्पादन X_0 X_2 के बराबर है। फर्म B भी परस्पर निर्भरता को स्वीकार करते हुए यह महसूस करती है कि दोनों ही फर्मों के लिए यह बेहतर होगा कि एकाधिकारी उत्पादन का आधा-आधा उत्पादन करें और उसे एकाधिकारी कीमत पर बेंचे। इस प्रकार वह X_0X_1 ($=X_0X_2$) उत्पादन करेगा। इस प्रकार परस्पर निर्भरता को पहचानते हुए दोनों फर्में एकाधिकारी हल् पर पहुंचती हैं जो कि स्थिर है और इसी कारण चैम्बरलिन मॉडल अन्य प्रतिष्ठित माडलों से बेहतर है।

चैम्बरलिन के अनुसार यदि फर्में अपने उत्पादन की अपेक्षा अपनी कीमतों का समायोजन करें तो भी यही परिणाम प्राप्त होगा।

चैम्बरलिन मॉडल की गैर कपट संधि के तहत फर्मों के संयुक्त लाभ अधिकतम करने की स्थिति तभी सम्भव है जब फर्मों को मांग तथा लागत वक्रों के बारे में पूरी जानकारी हो। परन्तु व्यवहार में यह पूरी तरह सम्भव नहीं है। यह मॉडल एक बंद मॉडल है जो कि फर्मों के प्रवेश की उपेक्षा करता है।

21.6 विकुंचित मांग वक्र का सिद्धान्त

सर्वप्रथम हॉल एवं हिच ने अल्पाधिकारी बाजार में कीमत दृढ़ता की व्याख्या के लिए विकुंचित मांग वक्र का प्रयोग किया। उसी वर्ष (1939) अमेरिकी अर्थशास्त्री पॉल स्वीजी ने विकुंचित वक्र का प्रयोग अल्पाधिकारी बाजार में संतुलन के निर्धारण के लिए एक औजार के रूप में किया।

स्वीजी द्वारा प्रस्तुत विकुंचित मांग वक्र सिद्धान्त अल्पाधिकार में कीमत तथा उत्पादन के निर्धारण की व्याख्या नहीं करता है बल्कि सिर्फ यह बताता है कि जब एक बार अल्पाधिकार में कीमत निर्धारित हो जाती है तो उसके स्थिर बने रहने की प्रवृत्त क्यों होती है। क्योंकि प्रत्येक अल्पाधिकारी फर्म यह सोचती है कि यदि वह वर्तमान कीमत स्तर को कम करेगी तो प्रतिद्वंदी फर्में भी कीमत को कम करेंगी और इस प्रकार बाजार मांग बढ़ने के बावजूद फर्मों का हिस्सा अपरिवर्तित रहेगा परन्तु यदि फर्म कीमत में वृद्धि करेगी तो प्रतिद्वंदी फर्में ऐसा नहीं करेंगी और फर्म के बाजार हिस्से में कमी आ जाएगी। प्रतियोगी फर्मों के इस प्रकार की प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति के कारण ही अल्पाधिकारी बाजार में मांग वक्र वर्तमान कीमत के स्तर पर विकुंचित होता है तथा विकुंचित बिन्दु अर्थात वर्तमान कीमत स्तर के ऊपर का भाग अपेक्षाकृत लोचदार तथा नीचे का भाग अपेक्षाकृत बेलोचदार होता है।

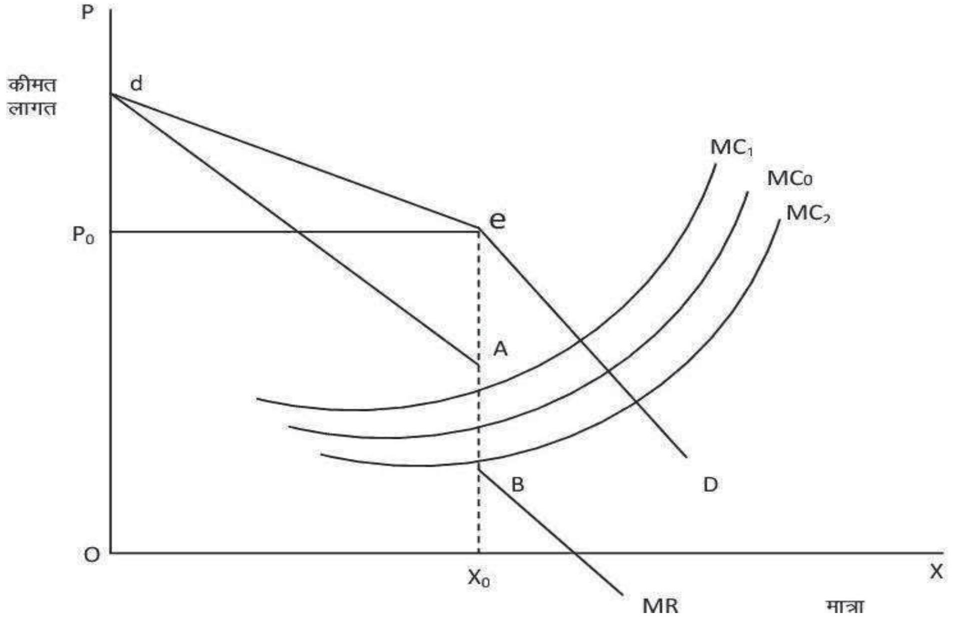

चित्र 21.3

चित्र 21.3 में अल्पाधिकारी का मांग वक्र dD बिन्दु e पर विकुंचित है, जहां वर्तमान कीमत P है जो कि स्थिर या दृढ़ रहेगी क्योंकि कीमत में ऊपर या नीचे की ओर परिवर्तन से कोई भी अल्पाधिकारी लाभान्वित नहीं होगा। विकुंचित मांग वक्र के अनुरूप सीमान्त आय वक्र (MR) असतत् होगा। चित्र में MR के दो भाग हैं, dA जो कि मांग वक्र के ऊपरी भाग से संबंधित है तथा

बिन्दु B से नीचे का भाग , जो कि मांग वक्र के नीचे के भाग से संबंधित है। MR की असतता या अन्तराल की लम्बाई मांग वक्र के दो भागों, de तथा eD,, की लोचों पर निर्भर करेगी। इन दोनों मांग वक्रों के लोचों का अन्तर जितना ही अधिक होगा, अन्तराल AB की लम्बाई उतनी ही अधिक होगी।

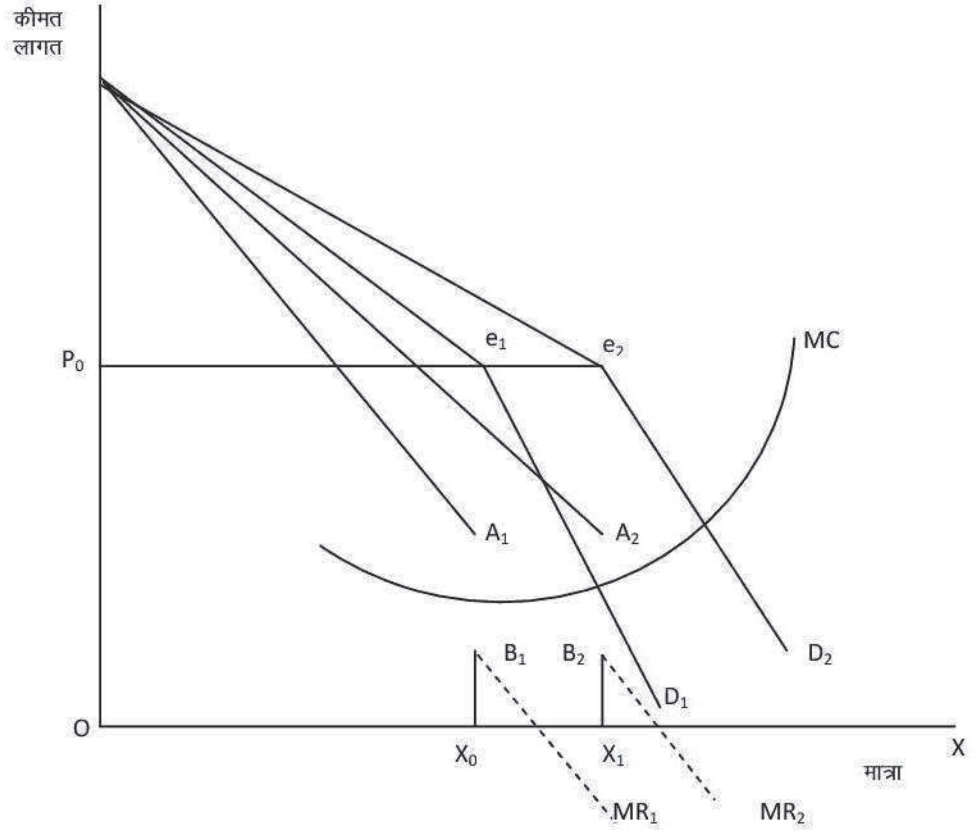

चित्र 21.4

अल्पाधिकारी का संतुलन विकुंचित बिन्दु e पर होगा जबकि कीमत P_0 तथा उत्पादन X_0 है, क्योंकि e बिन्दु के बायें किसी भी बिन्दु पर MC, MR से कम होगी, तथा विकुंचित बिन्दु e से दायें किसी भी बिन्दु पर MC, MR से अधिक होगी। इस प्रकार जब MC वक्र, MR के असतत् भाग AB से गुजरता है तो अल्पाधिकारी फर्म को वर्तमान कीमत, P पर अधिकतम लाभ होगा। AB भाग

के बीच जब तक MC वक्र रहेगा तब तक बिना कीमत P तथा उत्पादन X_0 को प्रभावित किए लागत परिवर्तित हो सकती है। इस प्रकार, एक सीमा तक (ABके बीच) लागत में परिवर्तन के बावजूद कीमत व उत्पादन में परिवर्तन नहीं होगा। चित्र में लागत में परिवर्तन से MC वक्र MC_1 या MC_2 हो जाता है परंतु P तथा X_0 स्थिर हैं।

इसी प्रकार एक सीमा के अन्दर मांग में परिवर्तन होने पर भी कीमत स्थिर रहती है। यद्यपि उत्पादन मात्रा परिवर्तित हो जाती है। चित्र 21.4 में जब अल्पाधिकारी की मांग बढ़ जाती है तो मांग वक्र D_1 ऊपर की ओर विवर्तित होकर D_2 हो जाता है तथा सीमान्त लागत (MC) वक्र नए MR_2 वक्र के अन्तराल से होकर गुजरता है। इस प्रकार कीमत P_0 पर स्थिर रहती है जबकि उत्पादन X_0 से बढ़कर X_1 हो जाता है।

जब अल्पाधिकारी उद्योग में लागत में वृद्धि हो जाती है तो कीमत स्थिर या दृढ़ नहीं रहेगी। जब लागत बढ़ने से सभी फर्में प्रभावित होती है तो फर्म यह सोचकर कीमत में वृद्धि करेगी कि अन्य फर्में भी उसका अनुसरण करेंगी। इस प्रकार विकुंचित बिन्दु ऊपर बायें की ओर विवर्तित हो जाएगा और नया संतुलन ऊँची कीमत P_1 तथा कम उत्पादन X_1 पर होगा (चित्र 21.5).

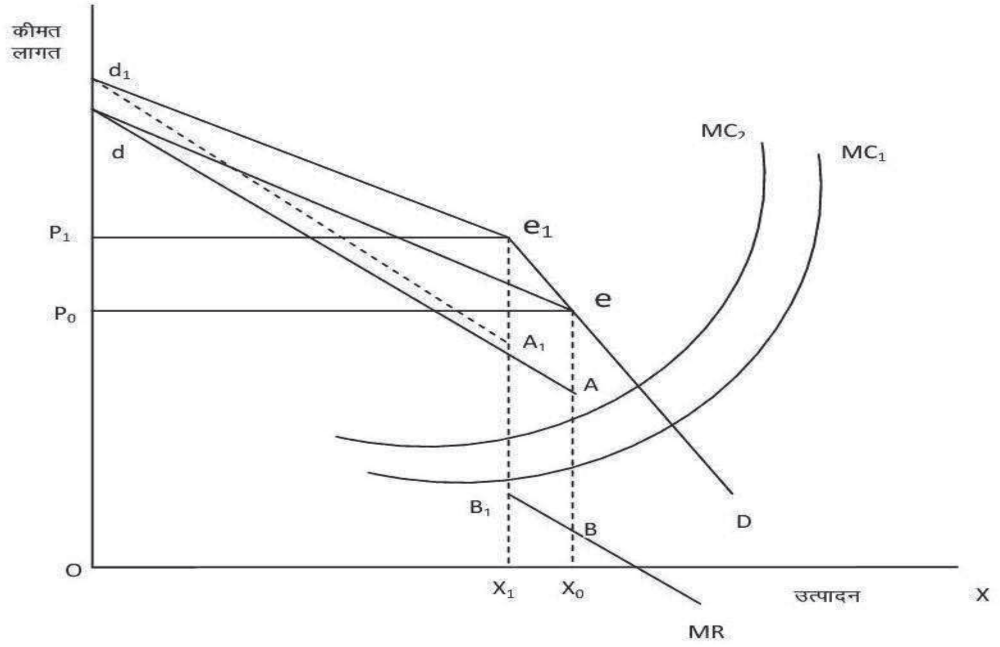

चित्र 21.5

सामान्यतः अल्पाधिकार का विकुंचित मांग वक्र सिद्धान्त कम होती मांग या गिरती लागतों की दशाओं में कीमत स्थिरता की व्याख्या करता है। जबकि लागतों के बढ़ने या मांग के बढ़ने पर कीमतों में वृद्धि की सम्भावना होती है।

आलोचना - एक अल्पाधिकारी बाजार में फर्मों के व्यवहार का एक संतोषजनक व्याख्या यह सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। परन्तु यह मॉडल कीमत या उत्पादन किस प्रकार निर्धारित होगा, इसके बारे में कुछ नहीं बताता। इस बात की व्याख्या नहीं करता कि कीमत के किस स्तर पर लाभ अधिकतम होगा। यह सिद्धान्त केवल यह बताता है कि कीमत एक बार निर्धारित हो जाने के बाद दृढ़ या स्थिर क्यों रहती है। यदि दो विकुंचित मांग वक्र हैं, जिसमें दो अलग-अलग कीमत स्तरों P_1 तथा P_2 पर विकुंचन है तो यह सिद्धान्त यह व्याख्या नहीं करता कि इसमें से कौन एक कीमत निर्धारित होगी, P_1 या P_2।

21.7 कार्टेल

अल्पाधिकारी बाजारों में स्वतंत्र रूप से कीमत निर्धारण काफी कठिन है। परस्पर निर्भरता के कारण उत्पन्न अनिश्चितता को दूर करने का एक तरीका फर्मों द्वारा आपस में किसी न किसी प्रकार का पारस्परिक समझौता होता है। अल्पाधिकारियों के मध्य आपसी समझौता या कपट संधि दो प्रकार की होती है-कार्टेल तथा कीमत नेतृत्व। दोनों ही स्थितियों में प्रायः फर्में आपस में गुप्त समझौते करती हैं क्योंकि अधिकांश देशों में खुले में फर्मों द्वारा समझौता करना या कीमत तथा उत्पाद संबंधी सामान्य नियम निर्धारित करना गैर कानूनी है।

एक उद्योग समूह में स्वतंत्र फर्मों के संगठन को कार्टेल कहते हैं।यहां हम दो प्रकार के कार्टेल की विवेचना करेंगे- संयुक्त लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य से बनाए गए कार्टेल तथा बाजार के बंटवारे के उद्देश्य से बनाए गए कार्टेल।

21.7.1 संयुक्त लाभ अधिकतमकरण कार्टेल

कपट संधि का चरम रूप है 'पूर्ण कार्टेल'। पूर्ण कार्टेल समांग वस्तुएं बनाने वाली फर्मों के बीच एक औपचारिक कपट संधि है जिसमें सदस्य फर्में अपने कीमत तथा उत्पादन निर्धारण संबंधी समस्त अधिकार एक ''केन्द्रीय प्रशासनिक एजेन्सी'' को सौंप देती हैं जो उनको संयुक्त अधिकतम लाभ प्रदान कर सके। एजेन्सी अपने सदस्यों के लिए उत्पादन, कोटा ली जाने वाली कीमत और उद्योग के लाभों का वितरण निर्धारित करती है और इस प्रकार यह एक एकाधिकारी की तरह कार्य करता है।

हम यह मान लेते हैं कि केन्द्रीय कार्टेल एजेन्सी का मुख्य उद्देश्य उद्योग के लाभ को अधिकतम करना होता है तथा उसको वस्तु के बाजार मांग वक्र और उसके अनुरूप सीमान्त आय (MR)वक्र की पूरी जानकारी रहती है। फर्मों के लागत वक्र भिन्न होते हैं, परन्तु केन्द्रीय एजेन्सी को प्रत्येक फर्म के लागत वक्र की जानकारी होती है। कार्टेल या उद्योग के सीमान्त लागत वक्र (MC) को सदस्य फर्मों के सीमांत लागत वक्रों के क्षैतिज योग से प्राप्त किया जाता है।

चूंकि केन्द्रीय एजेन्सी, अनेक प्लान्टों पर कार्य करने वाले एकाधिकारी की तरह कार्य करती है इसलिए उद्योग का संयुक्त लाभ वहां अधिकतम होगा जहां उद्योग के MR तथा MC वक्र एक दूसरे को काटते हैं।

विश्लेषण की सरलता के लिए, मान लिया दो फर्में A तथा B मिल कर कार्टेल बनाती हैं। दोनों फर्मों के लागत चित्र 21.6 में दिए हुए हैं। उद्योग का MC वक्र MC_1 तथा MC_2 वक्र के क्षैतिज योग से प्राप्त किया गया है। MC के अनुसार उत्पादन करने से प्रत्येक फर्म की उत्पादन मात्रा की कुल लागत न्यूनतम होगी। उद्योग की कुल उत्पादन मात्रा को फर्मों के बीच इस प्रकार विभाजित किया जाएगा कि सबकी MC समान हो जाए। बाजार मांग वक्र DD के दिए हुए होने पर उद्योग का संयुक्त लाभ बिन्दु e पर अधिकतम होगा जहां उद्योग का MC, MR के बराबर है। कुल उत्पादन X तथा कीमत P होगी। अब केन्द्रीय एजेंन्सी उत्पादन X को फर्म A तथा B में प्रत्येक फर्म के MC वक्र को उद्योग के MR वक्र से बराबर करके बांटती है। फर्मA का सीमान्त लागत वक्र MC_1, e_1 बिन्दु तथा फर्म B का MC_2, e_2 बिन्दु पर MR के बराबर है। इस प्रकार फर्म A, X_1 तथा फर्म B, X_2 मात्रा का उत्पादन करेगी।

फर्म-A फर्म-B उद्योग

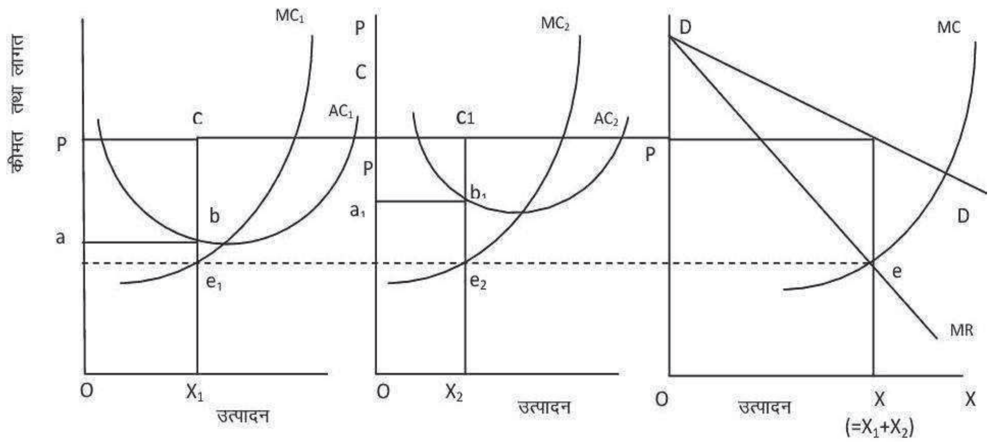

चित्र 21.6

यहां यह उल्लेखनीय है कि फर्म A कम लागत पर अधिक उत्पादन करती है। उद्योग का कुल लाभ दोनों फर्मों के लाभ का योग है ; ($abcP + a_1b_1c_1P$)। इस लाभ का बंटवारा केन्द्रीय कार्टेल एजेन्सी निर्धारित करेगी।

मूल्यांकन - सैद्धान्तिक रूप से पूर्ण कार्टेल के अंतर्गत एकाधिकारी समाधान प्राप्त करना आसान है परन्तु व्यवहार में इस प्रकार के कार्टेल का निर्माण तथा संयुक्त लाभ अधिकतम करना काफी कठिन

है। व्यवहार में प्रायः समझौता सिर्फ कीमत संबंधी होता है। दीर्घकाल में कार्टेल के निर्माण तथा उसके कार्यकरण में अनेक कठिनाइयां आती हैं।

1-संयुक्त लाभ अधिकतमीकरण द्वारा संतुलन सम्भव तभी है जब प्रत्येक फर्म समांग वस्तुओं का उत्पादन करें तथा उनके मांग व लागत वक्र समरूप हों, जबकि व्यवहार में यह कठिन है।

2-बाजार मांग वक्र का सही अनुमान काफी कठिन है क्योकि फर्म यह सोचती है कि उसके उत्पादन की मांग लोच अधिक है।

3-सदस्य फर्मों द्वारा अपनी लागत के बारे में कार्टेल को सही जानकारी न उपलब्ध कराने की स्थिति में MC वक्र का अनुमान भी गलत हो सकता है। उत्पादन व लाभ का अधिक भाग प्राप्त करने की चाह में फर्में अपने लागत को कम बता सकती हैं।

4-कार्टेल निर्माण की प्रक्रिया प्रायः धीमी होने से, हल् अवधि में फमों की लागत संरचना बदल सकती है। फर्मों की संख्या अधिक होने पर भी कार्टेल निर्माण में कठिनाई आती है या यह जल्दी टूट सकता है।

5-कार्टेल द्वारा निर्धारित कीमत में दृढ़ता होती है, लंबे समय तक इसके स्थिर बने रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है, भले ही बाजार दशाओं में परिवर्तन हो रहा हो। क्योंकि कार्टेल में कीमत पर सहमति बनने में लम्बा समय लगता है तथा अनेक कठिनाइयां आती हैं। ऐसे में कीमत स्थिरता कार्टेल को छोड़ने का कारण बन सकती है।

6-कुछ फर्में अपने ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए अतिरिक्त छूटों या कीमत में कमी का सहारा ले सकती हैं इससे समझौते की अंतिम स्थिति पर पहुंचने में कठिनाई होती है।

7-यदि कार्टेल में उच्च लागत वाली फर्म हो, जिसकी लागत उद्योग की MC से अधिक हो, तो संयुक्त लाभ के अधिकतम होने के लिए उसे बंद कर दिया जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में उच्च लागत वाली फर्में कार्टेल छोड़कर जा सकती हैं।

8-कार्टेल कीमत के अधिक होने पर सरकारी हस्तक्षेप का खतरा बढ़ जाता है। जिससे सदस्य उससे कम कीमत रख सकते हैं।

9-ऊँची कार्टेल कीमत, जो कि एकाधिकार लाभ उत्पन्न करती हैं, से उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश की सम्भावना बढ़ जाती है। नयी फर्मों के प्रवेश को रोकने के लिए फर्में कम कीमत रख सकती हैं।

10-कुछ फर्में सामान्य जन में अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के उद्देश्य से कार्टेल कीमत से कम कीमत वसूल सकती हैं।

21.7.2 बाजार बांट कार्टेल

बाजार के बंटवारे से सम्बन्धित कार्टेल अधिक व्यवहारिक है। इसके अंतर्गत फर्में बाजार के बंटवारे को सहमत हो जाती हैं, परन्तु अपने उत्पादन के तरीके, विक्रय गति विधियों तथा अन्य निर्णयों से संबंधित स्वतंत्रता काफी हद तक अपने पास ही रखती हैं। बाजार के बंटवारे की दो विधियां हैं - गैर कीमत प्रतियोगिता तथा कोटा प्रणाली।

21.7.2.1 गैर-कीमत प्रतियोगिता समझौता

यह एक ढीले प्रकार का कार्टेल है। इसके अंतर्गत अल्पाधिकारी फर्म एक सामान्य कीमत पर सहमत हो जाती है, जिस पर प्रत्येक फर्म कोई मात्रा बेच सकती है। एक समान कीमत का निर्धारण सौदेबाजी के द्वारा होता है। कम लागत फर्में, कम कीमत के लिए तथा अधिक लागत फर्में ऊँची कीमत के लिए जोर देती हैं। परन्तु अन्त में एक कीमत पर समझौता होता है जिस पर कि सभी सदस्य फर्मों को कुछ लाभ अवश्य प्राप्त हो रहा हो। फर्में कार्टेल कीमत से नीचे की कीमत पर वस्तु न बेचने के लिए सहमत होती है परन्तु गैर-कीमत प्रतियोगिता के द्वारा अपनी बिक्री बढ़ाने का प्रयास कर सकती हैं। फर्में अपने उत्पाद के रंग, आकार, डिजाइन, पैकिंग आदि को परिवर्तित कर सकती हैं तथा अपनी विज्ञापन तथा विक्रय गति विधियां बदल सकती हैं।

इस प्रकार कार्टेल सामान्यतया अस्थिर होता है। क्योंकि कम लागत फर्म द्वारा कार्टेल कीमत से कम कीमत पर वस्तु बेचने की सम्भावना प्रबल होती है। ऐसे कार्टेल टूटने तथा कीमत प्रतियोगिता शुरु होने का खतरा बना रहता है। यदि कार्टेल बनाने वाली फर्मों के लागत वक्रों में भिन्नता कम है तो कार्टेल की जीवन अवधि लम्बी हो सकती है।

21.7.2.2 कोटा समझौता द्वारा बाजार का बंटवारा

बाजार के बंटवारे का एक दूसरा तरीका है, प्रत्येक फर्म का बाजार में कोटा निर्धारित कर देना। यदि सभी फर्मों के लागत वक्र समान हो तो सभी फर्मों के बीच बाजार का बंटवारा बराबर-बराबर होगा और एकाधिकारी समाधान प्राप्त होगा। यदि समान लागत वाली सिर्फ दो ही फर्में हों तो प्रत्येक फर्म एकाधिकारी कीमत पर कुल बाजार मांग का आधा बेचेंगी। चित्र 21.7 में एकाधिकारी कीमत P_2 है। कुल उत्पादन X_0 है जिसमें कि प्रत्येक फर्म का कोटा बराबर है। ($X_1 = X_2$ तथा $X_1 + X_2 = X$) । यदि फर्मों की लागतों में अन्तर होगा तो कोटा तथा बाजार में हिस्सा भिन्न-भिन्न होगा। लागत के आधार पर कोटा हिस्से का बंटवारा कार्टेल को अस्थिर बनाएगा। लागतों से भिन्नता की स्थिति में बाजार हिस्से का बंटवारा अंततः फर्मों की समझौता शक्ति तथा उनकी लागतों के स्तर पर निर्भर करेगा। समझौता शक्ति में फर्म की बीते वर्षों में बिक्री का स्तर तथा उसकी उत्पादक क्षमता का विशेष महत्व होता है।

उल्लेखनीय है कि कार्टेल अल्पाधिकारी बाजार में कीमत दृढ़ता या स्थिरता लाएंगे, यह आवश्यक नहीं है। ज्यादातर कार्टेल ढीले होते हैं। कार्टेल समझौता सदस्यों के लिए बाध्यकारी नहीं होता। इसके टूटने का खतरा बराबर बना रहता है। यदि फर्मों के प्रवेश की स्वतंत्रता हो तो कार्टेल की अस्थिरता

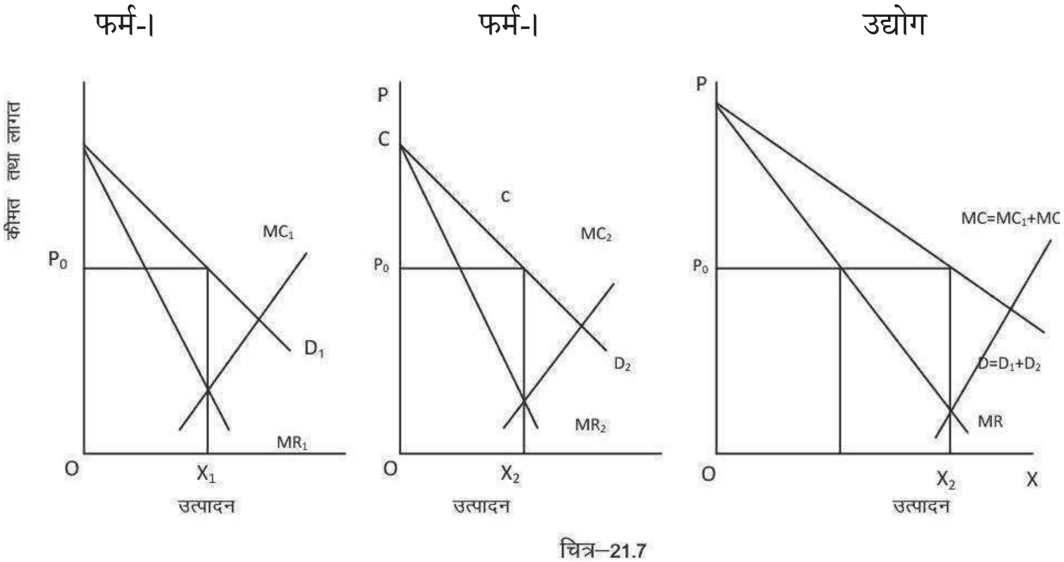

चित्र–21.7

और बढ़ जाती है। यदि कार्टेल कीमत ऊँची हो और लाभ अधिक हो तो नयी फर्मों के प्रवेश की संभावना बढ़ जाती है।

21.8 कीमत नेतृत्व

इसके अंतर्गत अल्पाधिकारी फर्मों के बीच एक प्रकार की अनौपचारिक समझौता या अपूर्ण कपट संधि होती है जिसमें एक फर्म द्वारा नियत कमी कीमत का उद्योग की सभी फर्में अनुसरण करती है क्योंकि ऐसा करना अन्य फर्मों के लिए लाभदायक होता है या फिर वे अल्पाधिकारी अनिश्चितता से बचना चाहती है। कीमत नेतृत्व, कार्टेल की अपेक्षा व्यवहार में अधिक दिखता है क्योंकि यह सदस्य फर्मों से उनके उत्पाद तथा विक्रय गति विधियों के सम्बन्ध में पूरी स्वतंत्रता देता है। यदि वस्तुएँ समान हो तो फर्मों की कीमत समान होगी। परन्तु वस्तुओं में भिन्नता होने पर कीमतें भिन्न हो सकती है, परन्तु उनके परिवर्तन की दिशा समान होगी।

कीमत नेतृत्व विभिन्न प्रकार का हो सकता है परन्तु सामान्यतया तीन प्रकार के कीमत नेतृत्व प्रचलित हैं:-

1) कम-लागत कीमत नेतृत्व

2) प्रधान फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व

3) स्थितिमान कीमत नेतृत्व

21.8.1 कम लागत कीमत नेतृत्व मॉडल

इस मॉडल के अन्तर्गत कम लागत होने के कारण एक अल्पाधिकारी फर्म कम कीमत निर्धारित करती है और वह उद्योग की अन्य फर्मों की नेता बन जाती है। अन्य फर्मों को कम लागत फर्म की कीमत का अनुसरण करना पड़ता है। निम्नलिखित मान्यताओं के आधार पर इस मॉडल में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण होता है

1-दो फर्में हैं, जो कि समान वस्तुओं का उत्पादन करती हैं।

2-दोनों फर्मों की लागतों में भिन्नता है।

3-दोनों फर्में एक समान मांग वक्र का सामना करती हैं अर्थात दोनों फर्मों का बाजार मांग में बराबर हिस्सा है।

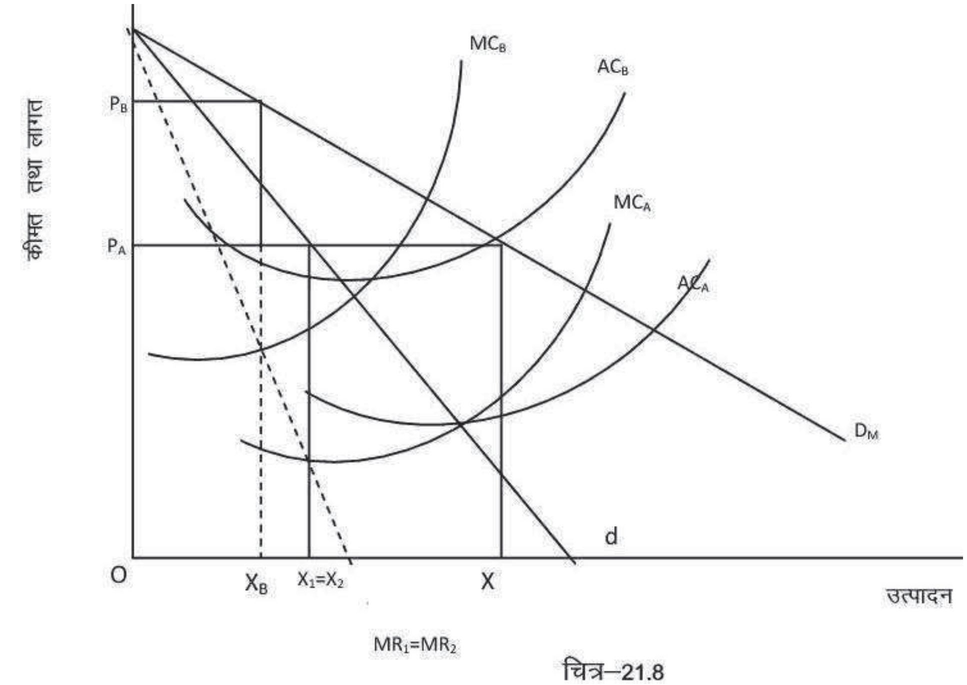

चित्र–21.8

चित्र 21.8 में दो फर्मों A तथा B के लागत तथा मांग वक्र दिए हुए हैं। प्रत्येक फर्म का मांग वक्र d है जो कि बाजार मांग वक्र D_m का आधा है। फर्म A की लागत फर्म B की अपेक्षा कम है क्योंकि MC_A, MC_B के नीचे है। संतुलन की स्थिति में फर्म A, X मात्रा का उत्पादन करेगी तथा PA कीमत निर्धारित करेगी क्योंकि इस स्थिति में $MC_A = MR_1$ और वह अधिकतम लाभ अर्जित कर रही है। इसी प्रकार फर्म B का लाभ X_B उत्पादन तथा P_B कीमत पर अधिकतम होगा। चूंकि P_B, P_A

से अधिक है अतः फर्म B अपने बाजार हिस्से या क्रेताओं को खो सकती है क्योंकि दोनों ही फर्में समान वस्तुओं का उत्पादन कर रही हैं। इसलिए अधिक लागत वाली फर्म ठए फर्म । की कीमत का अनुसरण करेगी और $X_2(=X_1)$ मात्रा का उत्पादन करेगी। हालांकि P_A कीमत पर फर्म B के लाभ अधिकतम नहीं होगा, परन्तु कीमत युद्ध से बचने के लिए वह कम लागत फर्म । को अपना नेता मान लेने में ही अपना हित देखेगी। यदि फर्म B की न्यूनतम लागत, फर्म A द्वारा निर्धारित कीमत से अधिक होगी तो वह उद्योग से बाहर चली जाएगी। ऐसी स्थिति में फर्म । एकाधिकारी फर्म बन जाएगी।

यदि लागतों के साथ-साथ, दोनों फर्मों के मांग वक्र भी भिन्न-भिन्न हों तो कम लागत फर्म का मांग वक्र (D_A), उच्च लागत फर्म के मांग वक्र (D_B) की अपेक्षा अधिक लोचदार होगा। फर्म A, $MR_A = MC_A$ के अनुरूप उत्पादन X_A तथा कीमत P_A पर अधिकतम लाभ अर्जित कर रही है। फर्म B का अधिकतम लाभ P_B कीमत तथा X_B उत्पादन की स्थिति में होगा। परन्तु वह कम लागत फर्म A का अनुसरण करेगी और P_A कीमत पर X_C मात्रा का उत्पादन करेगी।

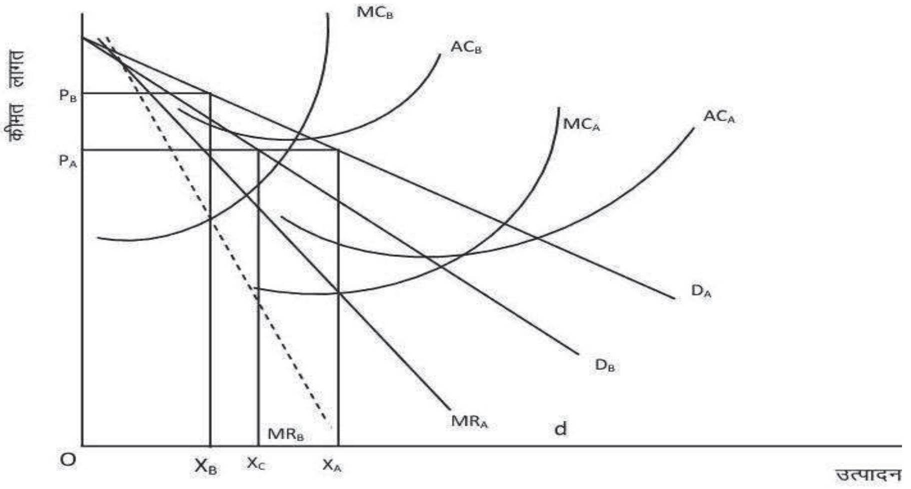

चित्र–21.9

यदि नेता फर्म तथा अनुयायी फर्म के बीच कोई समझौता नहीं है तो अनुयायी फर्म P_A कीमत पर X_C (या $X_2 = X_1$)से कम उत्पादन करके नेता फर्म । को गैर अधिकतमीकरण की स्थिति में धकेल सकती है।

प्रधान फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व

कीमत नेतृत्व की एक विशिष्ट स्थिति वह है जब एक उद्योग की कुछ फर्मों में से एक फर्म कुल उत्पादन के एक बहुत बड़े लाभ का उत्पादन करने के कारण बाजार पर अपना प्रभुत्व रखती है। यह प्रधान फर्म अपने मांग वक्र के अनुरूप वस्तु की कीमत का निर्धारण करती है, जिससे उसका लाभ

अधिकतम हो। अन्य फर्में छोटी होने के कारण बाजार पर प्रभाव डाल्ने की स्थिति में नहीं होती हैं तथा प्रधान फर्म द्वारा निर्धारित कीमत को स्वीकार करके उसके अनुसार अपने उत्पादन की मात्रा निश्चित करती है।

इस मॉडल में यह मान लिया जाता है कि प्रधान फर्म को वस्तु के बाजार मांग DD के संबंध में पूर्ण जानकारी है। साथ ही उसे अन्य छोटी फर्मों के MC वक्र की भी जानकारी है, जिसके क्षैतिज योग से, विभिन्न कीमतों पर छोटी फर्मों की वस्तु की आपूर्ति निर्धारित होती है। इस प्रकार प्रधान फर्म अपने अनुभव से विभिन्न कीमतों पर छोटी फर्मों द्वारा आपूर्ति का अनुमान लगा सकती है।

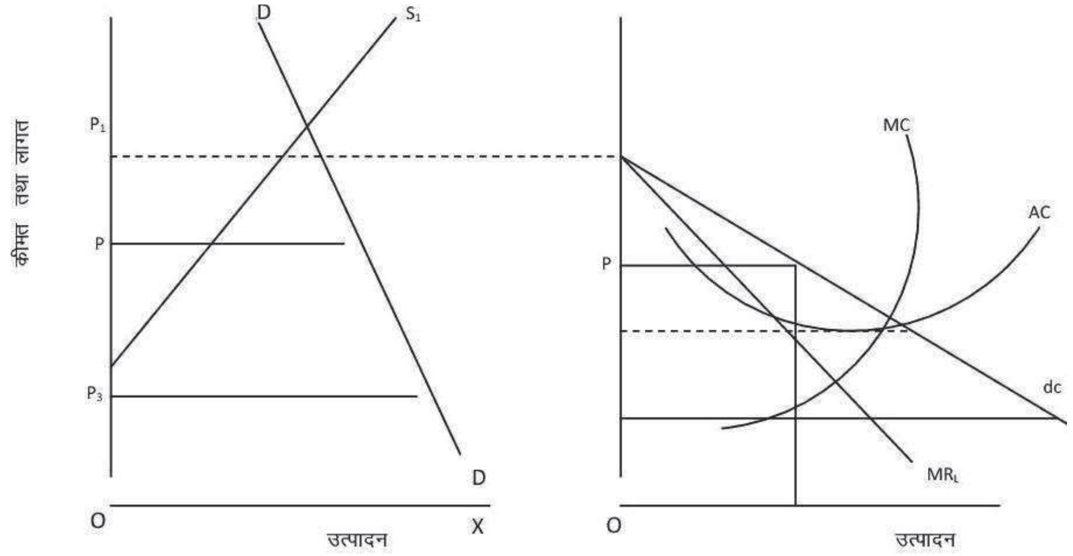

चित्र–21.9

चित्र 21.9 में DD बाजार मांग वक्र तथा Sm छोटी फर्मों द्वारा वस्तु की आपूर्ति को दर्शाता है। प्रत्येक कीमत पर प्रधान फर्म बाजार के उस हिस्से के बराबर उत्पादन करती है जिसकी आपूर्ति छोटी फर्मों द्वारा नहीं हो पाती है। उदाहरण के तौर पर P_1 कीमत पर प्रधान फर्म के उत्पाद की मांग शून्य होगी क्योंकि कुल बाजार मांग की आपूर्ति छोटी फर्मों द्वारा की जाती है। कीमत P_1 से नीचे गिरने पर प्रधान फर्म के उत्पाद की मांग बढ़ने लगती है। P_2 कीमत पर कुल बाजार मांग P_2B_1 है। इसका P_2A भाग के बराबर की आपूर्ति छोटी फर्मों द्वारा तथा बाकी AB भाग की आपूर्ति प्रधान फर्म द्वारा की जाएगी। P_3 कीमत पर कुल मांग P_3B_2 है, और इस कीमत पर छोटी फर्मों की आपूर्ति शून्य है। कुल बाजार मांग की आपूर्ति प्रधान फर्म द्वारा की जाती है। P_3 से कम कीमत पर प्रधान फर्म की मांग और बाजार मांग एक ही होगी।

चित्र 21.9 B में कस् प्रधान फर्म का मांग वक्र तथा MR उसके अनुरूप सीमान्त आय वक्र है। AC व MC औसत व सीमान्त लागत वक्र है। प्रधान फर्म P कीमत निर्धारित करेगी जहां उसका MR =

MC और उत्पादन OX_1 कीमत पर कुल बाजार मांग PB है, जिसका PA भाग छोटी फर्मों द्वारा तथा AB = OX_1 भाग प्रधान फर्म द्वारा आपूर्ति की जा रही है। छोटी फर्में प्रधान फर्म की कीमत का अनुसरण करेंगी इसलिए वे अपने लाभ को अधिकतम नहीं कर पाएंगी। उनका लाभ उनकी लागत संरचना पर निर्भर करेगा। प्रधान फर्म अपने लाभ को अधिकतम कर पाए इसके लिए यह आवश्यक है कि छोटी अनुयायी फर्में न सिर्फ प्रधान फर्म की कीमत स्वीकार करें बल्कि अपने बाजार हिस्से (A_1B_1) के बराबर उत्पादन भी करें; यदि छोटी फर्में A_1B_1 से ज्यादा या कम उत्पादन करती हैं तो बाजार मांग DD दी हुई होने पर वह अधिकतम लाभ की स्थिति में नहीं रहेगी। इस प्रकार कीमत नेतृत्व को सुरक्षित रखने तथा अपने लाभ को अधिकतम रखने के लिए प्रधान फर्म को छोटी अनुयायी फर्मों के साथ बाजार विभाजन विषयक समझौता करना आवश्यक हो जाता है।

आलोचना

कीमत नेतृत्व मॉडल के अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण की समस्या का एक स्थिर समाधान इस बात पर निर्भर करेगा कि अनुयायी फर्में कितनी निष्ठापूर्वक नेता फर्म का अनुसरण करती हैं। नेता फर्म का बड़ी होना तथा कम लागत वाली होना दोनों ही आवश्यक है।

किसी फर्म का कीमत नेतृत्व इस बात पर भी निर्भर करेगा कि वह अपने अनुयायी फर्मों की प्रतिक्रियाओं को कितना उचित ढंग से अनुमानित कर सकता है। दूसरे यदि नेता फर्म अपनी लागत कम होने के लाभ को बरकरार नहीं रख पाती है तो वह नेतृत्व करने की अपनी स्थिति खो देगी। वास्तविक उद्योग जगत में नये उत्पादों तथा तकनीकों के प्रवर्तन से अपेक्षाकृत छोटी फर्में उद्योग की नेता बन जाती है।

व्यवहार में, कीमत नेतृत्व के कई ऐसे उदाहरण मिल ते हैं जिसमें नेता फर्म न तो सबसे बड़ी होती है और न ही वह कम लागत वाली फर्म होती है। विशेषकर मंदी की स्थितियों में, बाजार में बने रहने के लिए अपेक्षाकृत छोटी फर्में अपनी कीमतें कम कर देती हैं। परन्तु वास्तव में नेतृत्व की क्षमता उस फर्म में होती है जो कि न सिर्फ कीमत में परिवर्तन करे बल्कि दीर्घकाल तक बनाए रखने में समर्थ हो।

नेता फर्म द्वारा कीमत ऊँची रखने पर प्रतिद्वंदी अन्य फर्में गुप्त कीमत कटौतियां कर सकती है तथा उद्योग में नयी फर्में आने को प्रेरित हो सकती हैं। यदि नयी फर्म को वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ की स्थिति हो तो वह धीरे-धीरे अपने बाजार हिस्से में विस्तार करते हुए, नेता फर्म बन सकती है।

21.8.3 बेरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व मॉडल

इस मॉडल में सभी फर्में औपचारिक या अनौपचारिक रूप से उस फर्म के कीमत परिवर्तन का अनुकरण करने को सहमत हो जाती हैं, जो कि बाजार की स्थितियों की बेहतर जानकारी रखती हो

तथा भविष्य में बाजार में होने वाले परिवर्तनों का बेहतर अनुमान लगा सकती हो। यह आवश्यक नहीं है कि ऐसी अनुभवी या पुरानी फर्म सबसे बड़ी हो या कम लागत वाली हो। यह वह फर्म होती है जो बाजार में वस्तु की मांग व लागत की स्थितियों और समस्त अर्थव्यवस्था की स्थितियों में परिवर्तन का पूर्वानुमान लगाने में एक बैरोमीटर की तरह कार्य करती है। बेरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व निम्नलिखित कारणों से विकसित होता है

1-अल्पाधिकारी उद्योग की बड़ी फर्मों के बीच प्रतिद्वंदिता से गला-काट प्रतियोगिता शुरु हो जाती है जिससे सभी फर्मों को हानि होती है। बड़ी फर्मों के बीच प्रतिद्वंदिता के कारण उनमें से किसी एक को उद्योग का नेता स्वीकार करना सम्भव नहीं होता है।

2-उद्योग की अधिकतर फर्मों को लागत, मांग तथा पूर्ति दशाओं की लाXतार गणना करते रहने की न तो क्षमता होती है और न ही इच्छा। इसलिए वे ऐसा करने वाली एक योग्य फर्म को अपना नेता मान लेती हैं।

3-सामान्यतया बेरोमेट्रिक फर्म उद्योग विशेष की लागतों तथा मांग दशाओं में परिवर्तनों तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों के संबंध में एक अच्छी भविष्यवक्ता होती हैं जिससे अन्य फर्मे उसे अपना नेता मानकर अपनी कीमत नीति तय करती हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कीमत दृढ़ता से क्या तात्पर्य है?
2. प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व तथा बैरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. कार्टेल से क्या तात्पर्य है?
4. बैरोमीटर कीमत नेतृत्व पर टिप्पणी लिखिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विकुंचित मांग वक्र का सिद्धान्त किस अर्थशास्त्री ने दिया?
2. क्रूनों मॉडल में उत्पादन लागत के सम्बन्ध में क्या मान्यता है?
3. यदि मांग वक्र में किसी बिन्दु पर $e = 1$हो तो उससे संबंधित सीमान्त आय (MR) कितनी होगी?
4. यदि छोटी अनुयायी फर्मे, प्रधान फर्म द्वारा निर्धारित कीमत को स्वीकार करती हैं परन्तु अपने बाजार हिस्से से कम उत्पादन करती हैं तो प्रधान फर्म का लाभ अधिकतम होगा या नहीं?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. क्रूनों मॉडल की मुख्य मान्यता है -

(क) प्रतिद्वंदी फर्मों के उत्पादन की स्थिरता

(ख) कीमत स्थिरता

(ग) परस्पर निर्भरता

(घ) बाजार नेतृत्व

2. अल्पाधिकार में विकुंचित मांग वक्र किस तथ्य की व्याख्या करता है?

(क) कीमत तथा उत्पादन निर्धारण

(ख) कीमत दृढ़ता

(ग) कीमत नेतृत्व

(घ) प्रतिद्वन्दियों के बीच कपट संधि

3.विकुंचित मांग वक्र में विकुंचन बिन्दु के ऊपर का भाग होता है-

(क) अधिक लोचदार

(ख) कम लोचदार

(X) शून्य लोचदार

(घ) अनन्त लोचदार

4. विकुंचित मांग वक्र में MR वक्र के अन्तराल की लम्बाई जितनी अधिक होगी -

(क) कीमत अपरिवर्तित रहने की सम्भावना उतनी ही कम होगी।

(ख) कीमत अपरिवर्तित रहने की सम्भावना अधिक होगी।

(ग) कीमत उतनी ही तेजी से बदलेगी।

(घ) उपर्युक्त तीनों असत्य हैं।

सत्य व असत्य बताइए

1. बैरोमीट्रिक फर्म वह होती है जिसका बाजार में हिस्सा सबसे अधिक होता है।
2. कार्टेल गैर-कपट संधि अल्पाधिकार के अंतर्गत आता है।
3. कार्टेल के अंतर्गत सदस्य फर्में एक केन्द्रीय कार्टेल एजेन्सी की स्थापना करते हैं जिसका मुख्य उद्देश्य उद्योग के लाभ को अधिकतम करना होता है।
4. क्रूनों मॉडल के दूयाधिकार मॉडल में तिहाई प्रत्येक फर्म मुख्य बजार मांग का एक तिहाई उत्पादन करती है।
5. चैम्बरलिन के अल्प समूह मॉडल में फर्में अपनी परस्पर निर्भरता को पहचान कर व्यवहार करती हैं।

21.9 बॉमल का अल्पाधिकार का बिक्री अधिकतम मॉडल

प्रो0 जे0एस0 बॉमल ने किसी फर्म द्वारा अपने लाभ को अधिकतम करने की मान्यता को चुनौती दी। विशेषकर एक अल्पाधिकारी का मुख्य उद्देश्य लाभ को नहीं बल्कि बिक्री को अधिकतम करना होता है। बिक्री अधिकतम से तात्पर्य बिक्री की भौतिक मात्रा को अधिकतम करने से नहीं है बल्कि बिक्री से प्राप्त कुल आय अर्थात् बिक्री के मौद्रिक मूल्य को अधिकतम करने से है। इसलिए बॉमल के इस सिद्धान्त को बिक्री अधिकतम मॉडल या 'आय अधिकतम मॉडल' कहा जाता है।

बॉमल के अनुसार आज के युग में फर्में उनके मालिक नहीं बल्कि प्रबन्धक चलाते हैं और व्यवसायिक प्रबन्धक के संबंध में यह मान्यता अधिक विवेकपूर्ण है कि वह न्यूनतम लाभ की शर्त के साथ फर्म की बिक्री को अधिकतम करने का प्रयास करता है। इस सिद्धान्त में प्रबन्धक की भूमिका को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। प्रबन्धक फर्म के उत्पाद के मूल्य, उत्पादन मात्रा एवं विज्ञापन नीति के निर्धारण में बिक्री अधिकतम करने को इसलिए अधिक महत्व देता है क्योंकि उसका निष्पादन तथा आत्महित इसी से जोड़कर देखा जाता है।

प्रो0 बॉमल लाभ के उद्देश्य की पूरी तरह उपेक्षा नहीं करते हैं। बिक्री बढ़ाने के साथ-साथ फर्म एक न्यूनतम लाभ अवश्य प्राप्त करना चाहती है जिससे कि फर्म के भावी विकास की वित्त व्यवस्था हो सके तथा अंशधारियों को उचित प्रतिफल मिल सके तथा शेयरधारकों की फर्म में रुचि बनी रहे। लाभ के इस न्यूनतम स्तर को प्राप्त करने के पश्चात फर्म का उद्देश्य लाभ के स्थान पर बिक्री बढ़ाना हो जाता है। प्रो0 बॉमल न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध की शर्त के साथ एक अल्पाधिकारी फर्म द्वारा, बिक्री अधिकतम के उद्देश्य को लेकर कीमत तथा उत्पादन मात्रा के निर्धारण की व्याख्या करते हैं।

मान्यताएँ

1. फर्म एक अवधि के दौरान अपनी कुल बिक्री आय को अधिकतम करने का प्रयास करती है।
2. न्यूनतम लाभ प्रतिबंध बर्हिजात रूप में मांग तथा अंशधारियों, बेंक व अन्य वित्तीय संस्थाओं के प्रत्याशाओं द्वारा निर्धारित होता है।
3. लागत वक्र, U - आकार के हैं तथा मांग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ ऋणात्मक ढाल का है।

बिना विज्ञापन के बॉमल का मॉडल

प्रो0 बॉमल के बिक्री आय को अधिकतम करने के मॉडल को चित्र 21.10 की सहायता से स्पष्ट कर सकते हैं। चित्र में TR कुल आय तथा TC कुल लागत वक्र है। TP कुल लाभ वक्र है जो कि विभिन्न उत्पादन स्तरों पर TR तथा TC का अन्तर है। जहां TC और TR बराबर हैं वहां कुल लाभ TP शून्य है।

यदि फर्म का उद्देश्य लाभ अधिकतम करना होगा तो वह OX_0 मात्रा का उत्पादन करेगी और उसका कुल लाभ EX_0(=BC)होगा जो कि अधिकतम है। TR वक्र के बिन्दु R_1 पर बिक्री अधिकतम है,

जहां सीमान्त आय शून्य तथा मांग की कीमत लोच (e) एक के बराबर है। जब फर्म की बिक्री अधिकतम है तो उत्पादन OX_1 है तथा लाभ X_1E_1 (= R_1C_1) है। जो कि अधिकतम लाभ (E_0X_0) से कम है। परन्तु यदि OX_1 उत्पादन पर प्राप्त लाभ E_1X_1 शेयरधारकों को संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं है तो फर्म अपने न्यूनतम लाभ के अनुसार अपने उत्पादन में समायोजन कर सकती है। यदि फर्म OP_2 (= X_2E_2) न्यूनतम लाभ अर्जित करना चाहती है तो वह OX_2 मात्रा का उत्पादन करेगी जो कि OX_1 से कम है। OX_2 उत्पादन पर फर्म की आय R_2X_2 है जो कि अधिकतम आय R_1X_1 की अपेक्षा कम है। स्पष्ट है कि फर्म न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध की शर्त के साथ अपनी बिक्री को अधिकतम करने का प्रयास करती है। न्यूनतम लाभ प्रतिबंध के साथ अधिकतम बिक्री आय का उद्देश्य अधिकतम लाभ वाले उत्पादन की तुलना में, अधिक उत्पादन तथा कम कीमत की ओर ले जाता है। क्योंकि कीमत = कुल आय/उत्पादन। OX_1 उत्पादन पर कीमत R_1X_1/OX के बराबर होगी।

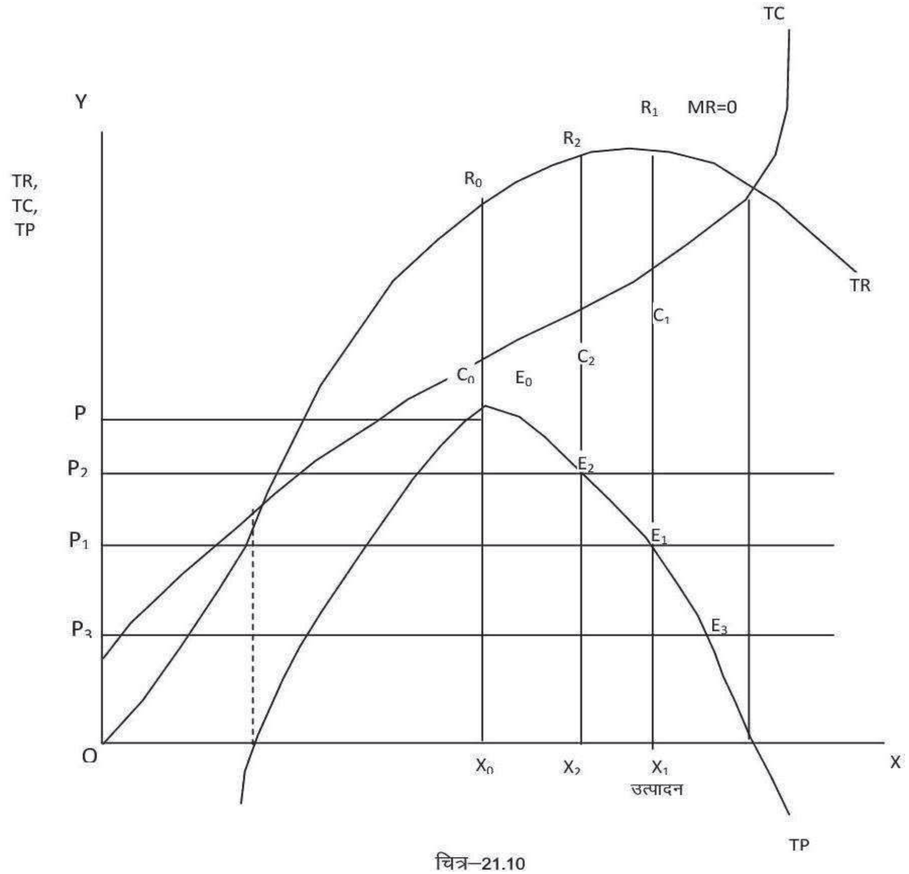

चित्र–21.10

यदि आवश्यक न्यूनतम लाभ OP_3 हो तो फर्म OX_1 मात्रा का उत्पादन करेगी, जो कि उसकी बिक्री को अधिकतम करता है। परंतु OX_1 उत्पादन स्तर पर फर्म का कुल लाभ OP_1 न्यूनतम आव9श्यक लाभ, OP_3 से अधिक है। स्पष्ट है कि यहां न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध कार्य नहीं कर रहा है। यदि न्यूनतम स्वीकार्य लाभ E_0X_0 (= OP) से अधिक है तो दी हुई लागत आय स्थितियों में वह उससे अधिक

लाभ प्राप्त नहीं कर सकती है। इसलिए फर्म को इस न्यूनतम स्वीकार्य लाभ स्तर से कम करना होगा या उद्योग छोड़ना होगा।

विज्ञापन सहित बॉमल का मॉडल

अल्पाधिकारी बाजार संरचना में एक फर्म के कीमत तथा उत्पादन निर्धारण में गैर कीमत प्रतियोगिता महत्वपूर्ण होती है। बॉमल अपने मॉडल में विज्ञापन व्यय से लेकर कीमत तथा उत्पादन निर्धारण की चर्चा करते हैं। यहां बॉमल यह मान लेते हैं कि किसी फर्म द्वारा विज्ञापन व्यय में वृद्धि सदैव बिक्री की भौतिक मात्रा में वृद्धि करेगी, परन्तु एक बिन्दु के बाद यह बिक्री घटती दर से बढ़ेगी। यदि वस्तु की कीमत दी हुई हो (स्थिर हो) तो बिक्री से कुल आय में हुई वृद्धि विज्ञापन व्यय में वृद्धि के परिणामस्वरूप बिक्री भौतिक मात्रा में वृद्धि के अनुपात में होगी।

चित्र 21.11 में OD विज्ञापन व्यय को बताता है जो कि मूल बिन्दु से 45^0 का कोण बनाता है। TC कुल लागत वक्र है जो कि विज्ञापन व्यय में अन्य लागतों की (स्थिर व परिवर्तनशील) निश्चित मात्रा का योग है। TR कुल आय वक्र है जो कि कीमत के स्थिर रहने पर विज्ञापन व्यय बढ़ने के साथ कुल आय में परिवर्तनों को बताता है। PP कुल लाभ वक्र है जो कि TR व TC का अन्तर है। यदि फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने की कोशिश करेगी तो उसका विज्ञापन व्यय OA_0होगा, जहां E_0X_0 कुल लाभ है जो कि अधिकतम है। यदि न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध OP ($=E_1A_1$) के

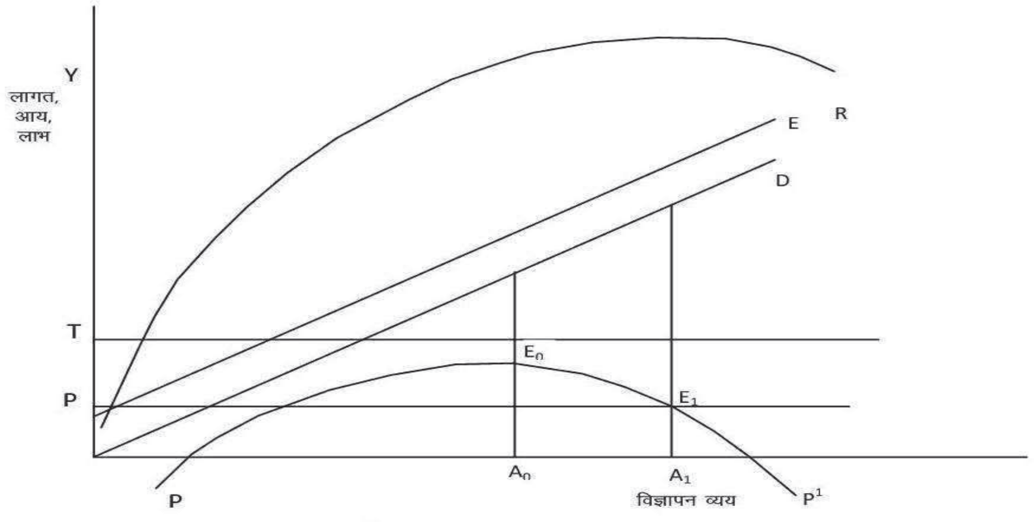

चित्र–21.11

बराबर हो तो फर्म का कुल विज्ञापन व्यय OA_1होगा। जो कि OX_0 से अधिक है। इस प्रकार फर्म अपने विज्ञापन व्यय को तब तक बढ़ाती है जब तक कि वह अपने न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध के स्तर तक न पहच जाए। उल्लेखनीय है कि यहां आय के अधिकतम होने की कोई सम्भावना नहीं होती है।

जैसा कि चित्र 21.11 में OX_1 उत्पादन मात्रा के अनुरूप X_1R_1 आय है, क्यांकि कीमत में कमी के विपरीत विज्ञापन व्यय में वृद्धि हमेशा कुल आय या बिक्री में वृद्धि करेगी।

आलोचना

1. दीर्घकाल में बॉमलके बिक्री अधिकतम तथा परम्पराXत लाभ अधिकतम मॉडल के परिणाम एक जैसे होंगे, क्योंकि न्यूनतम आवश्यक लाभ दीर्घकाल में लाभ के सामान्य स्तर के ही बराबर होगा।

2. बॉमल का सिद्धान्त फर्म के संतुलन तथा उद्योग के संतुलन में कोई अन्तर नहीं करता है। सभी फर्में अपने बिक्री क®अधिकतम करेंगी तो उद्योग का संतुलन कैसे होगा इसके बारे में यह सिद्धान्त कुछ नहीं कहता।

3. यह फर्मों के कीमत तथा उत्पादन संबंधी निर्णयों में परस्पर निर्भरता के तत्व की अवहेYना करता है। एक अल्पाधिकारी बाजार में प्रतिद्वन्दिता के वास्तविक तथा सम्भावित प्रतियोगिता की यह उपेक्षा करता है।

4. बिक्री अधिकतम करने वाली फर्म विस्थापन पर अपेक्षाकृत अधिक व्यय करती है। इसलिए यह सामाजिक रूप से अधिक स्वीकार्य हो यह आवश्यक नहीं है।

21.10सारांश

अल्पाधिकार वह बाजार स्थिति होती है जिसमें समरूप या विभेदीकृत वस्तुएं बेचने वाली थोड़ी सी फर्में होती हैं। इसकी मुख्य विशेषता परस्पर निर्भरता है, जिसके कारण अल्पाधिकारी मांग वक्र अनिश्चित होता है। अर्थशास्त्रियों ने अल्पाधिकारी समूह के व्यवहार, उनके उद्देश्यों तथा एक फर्म द्वारा कीमत व उत्पादन में परिवर्तन से उसकी प्रतिद्वंदी फर्मों के प्रतिक्रिया ढांचे के सम्बन्ध में मान्यताओं के आधार पर बहुत से माडलों का विकास किया है।

फर्मों की परस्पर निर्भरता के कारण अल्पाधिकारी बाजारों में स्वतंत्र रूप से कीमत निर्धारण करना काफी कठिन है। इसलिए प्रायः अल्पाधिकारी फर्मों के बीच किसी न किसी प्रकार का समझौता उद्योग विशेष में पाया जाता है। यह समझौता औपचारिक या अनौपचारिक हो सकता है परन्तु फर्मो के अनिश्चित व्यवहार के कारण अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत व उत्पादन का निर्धारण व एक स्थायी समाधान एक दुर्लभ कार्य है। अल्पाधिकार के अंतर्गत लाभ अधिकतम करने के मॉडल का एक विकल्प बिक्री अधिकतम मॉडल है।

21.11शब्दावली

द्वयाधिकार- द्वयाधिकार अल्पाधिकारी बाजार का एक विशेष सरलतम रूप है, जिसमें एक वस्तु के केवल दो उत्पादक या विक्रेता होते हैं।

विकुंचित मांग वक्र- अल्पाधिकार के अंतर्गत प्रायः मांग वक्र में विकुंचन होता है। यह विकुंचन वर्तमान कीमत पर होता है क्योंकि वर्तमान कीमत के ऊपर की आय अत्यधिक लोचदार तथा नीचे की आय बेलोचदार होता है।

कपट संधि- अल्पाधिकारी बाजारों में अनिश्चितता के कारण स्वतंत्र रूप से कीमत निर्धारण करना कठिन है। इसलिए अल्पाधिकारी फर्में प्रायः आपस में औपचारिक या अनौपचारिक समझौता कर लेती है, औपचारिक समझौते 'कपट संधि' कहे जाते हैं।

कार्टेल- एक उद्योग में स्वतंत्र फर्मों के संगठन को कार्टेल कहते हैं। कार्टेल कीमतों, उत्पादनों, बिक्रियों, वस्तु के वितरण और लाभ अधिकतमीकरण संबंधी समान नीतियों का अनुसरण करता है।

प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व- जब अल्पाधिकारी उद्योग की कुछ फर्मों में से एक फर्म का कुल उत्पादन के एक बहुत बड़े भाग पर नियंत्रण होता है तो इस बड़ी फर्म का बाजार पर अधिक प्रभाव होने के कारण वह वस्तु की कीमत निर्धारित करती है तथा अन्य छोटी फर्में उसका अनुसरण करती हैं। इसे प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व कहा जाता है।

बैरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व- जब एक फर्म जो कि बाजार में वस्तु की मांग , लागत तथा पूरी अर्थव्यवस्था के संदर्भ में बाजार स्थितियों में परिवर्तन का सही अनुमान Yगा पाती है तो उद्योग की अन्य फर्में वस्तु की कीमत परिवर्तन करने में इस फर्म का अनुसरण करती है। बैरोमीट्रिक कीमत नेता न्यूनतम लागत वाली प्रधान फर्म या सबसे बड़ी फर्म हो यह जरूरी नहीं है।

अभ्यास प्रश्न- 3

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. अल्पाधिकार का बिक्री अधिकतमीकरण मॉडल किसने प्रस्तुत किया?

(क) हॉल एवं हिच (ख) चैम्बरलिन

(ग) बॉमल (घ) स्वीजी

2. बिक्री अधिकतम मॉडल के लिए क्या सत्य है?

(क) उत्पादन स्तर बढ़ता है किन्तु कीमत स्तर गिर जाता है।

(ख) उत्पादन स्तर घटता है किन्तु कीमत स्तर बढ़ जाता है।

(ग) उत्पादन तथा कीमत स्तर दोनों बढ़ते हैं।

(घ) उत्पादन तथा कीमत स्तर दोनों गिर जाते हैं।

3. बॉमलके बिक्री अधिकतम मॉडल के लिए क्या असत्य है?

(क) बिक्री के मौद्रिक मूल्य को अधिकतम करना।

(ख) न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध की शर्त

(ग) बिक्री की भौतिक मात्रा को अधिकतम करना।

(घ) उपरोक्त सभी असत्य हैं।

20.12अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) ख (2) ग (3) घ

सत्य व असत्य बताइए

(1) असत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) सत्य (5) सत्य

अभ्यास प्रश्न-2

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) स्वीजी (2) लागत शून्य है (3) शून्य (4) नहीं

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) क (2) ख (3) ख (4) ख

सत्य व असत्य बताइए

(1) असत्य (2) असत्य (3) सत्य (4) सत्य (5) सत्य

अभ्यास प्रश्न-3

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) ग (2) क (3) ग

20.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Ferguson C.E., (1972), Micro Economic Theory, 3rd Edition, Homewood, III: R. D. Irwin.
2. Koutsoyiannis, A., (1979), Modern Microecomomics, 2nd Edition, Macmillan, London.
3. Ahuja H.L. (2006), Advanced Economic Theory: Microeconomic Analysis, S.Chand & Company Ltd.
4. E.U. Browing & J.M. Prowing, (1994), Microeconomic Theory & Applications, Kalyani Pub. New Delhi.

20.14 उपयोगी/सहायक ग्रंथ

1. Dwivedi D.N., (2006) Micro Economics: Theory & Applications, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd (Pearson).
2. Peterson, L. and Jain (2006), Managerial Economics, 4th edition Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd (Pearson).
3. Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill.
4. Mishra, S. K. and Puri, V. K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.
5. Panhaj Ghai & Anuj Gupta(2002), Microeconomic Theory & Applications II, Ist Edition, Sonp & Sons, New Delhi.
6. S.P.S. Chauhan (2009), Microeconomic Theory & Applications, Part-II, PHI Learning Private Ltd, New Delhi.
7. M. George Mankiw (1998), Principals of Microeconomics, Ist Edition, Elesevier.
8. Paul Krugman & Robin Wells (2010), Microecomics, 2nd Edition, WH Freman & Co.

9. D.S. Watson & M. Getz, Price Theory and its Uses. 5th Revised Edition.
10. J.P. Gould and E.P. Lazer (1989), Microeconomic Theory, 6th Edition. Homewood, III: R. D. Irwin .

21.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अल्पाधिकार की मुख्य विशेषताओं को बताइए। इसमें कीमत दृढ़ता क्यों पायी जाती है?
2. अल्पाधिकार में विकुंचित मांग वक्र सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
3. क्रूनों के दूयाधिकार मॉडल की सचित्र व्याख्या कीजिए। चैम्बरलिन का अल्प समूह मॉडल किस प्रकार क्रूनों मॉडल से भिन्न है?
4. कार्टेल के अंतर्गत संयुक्त लाभ अधिकतम कैसे होता है? उन कारणों को बताइए जिससे कार्टेल के टूटने की सम्भावना बनी रहती है।
5. एक प्रधान फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व के अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण की व्याख्या कीजिए।
6. बॉमल के बिक्री अधिकतम मॉडल की चित्र की सहायता से व्याख्या कीजिए- (A) जब फर्मों द्वारा विज्ञापन नहीं किया जा रहा हो, (B) जब फर्में अपने उत्पाद का विज्ञापन करती हों।

इकाई 22 साधनों का कीमत निर्धारण, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत

इकाई की रूपरेखा

22.0 प्रस्तावना

22.1 उद्देश्य

22.2 वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

22.2.1 सिद्धान्त का सामान्य कथन

22.2.2 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की मान्यताएँ

22.2.3 सीमान्त उत्पादकता का अर्थ

22.2.4 साधन बाजार में फर्म का सन्तुलन

22.2.5 पूर्ण प्रतियोगिता में साधन कीमत निर्धारण

22.3 सांराश

22.4 शब्दावली

22.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

22.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

22.7 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

22.8 निबन्धात्मक प्रश्न

22.0 प्रस्तावना

'वितरण' के अन्तर्गत उत्पदन के साधनों की कीमतों के निर्धारण का अध्ययन किया जाता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने 'साधनों की कीमत-निर्धारण' तथा 'वस्तुओं की कीमत-निर्धारण' में अन्तर किये थे। उन्होंने वस्तुओं के कीमत निर्धारण को 'कीमत-सिद्धान्त' का नाम दिया तथा 'साधनों की कीमत-निर्धारण' को 'वितरण के सिद्धान्त' का नाम दिया था। किन्तु आधुनिक 'अर्थशास्त्री' 'वस्तु की कीमत-निर्धारण' एवं 'साधन की कीमत-निर्धारण' के लिए अलग -अलग सिद्धान्तों को मान्यता नहीं देते हैं। इसका कारण यह है कि साधनों की कीमत का निर्धारण भी उसी 'माँग एवं पूर्ति' के सिद्धान्तों के द्वारा होता है। जिसके द्वारा वस्तु की कीमत का निर्धारण होता है। अतः आधुनिक अर्थशास्त्री साधनों की कीमत-निर्धारण को भी 'कीमत-सिद्धान्त' का एक भाग मानते है। इसीलिए साधनों की कीमतों के निर्धारण का अध्ययन व्यष्टि अर्थशास्त्र में किया जाता है।

22.1 उद्देश्य

इस सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्रीय आय में से भू-स्वामी को लगान का भुगतान किया जाता है। तत्पश्चात् श्रमिकों को मजदूरी दी जाती है और अन्त में जो राशि शेष बचते है वह साहसी को ब्याज, लाभ, लगान के रुप में कैसे प्राप्त होती है, का अध्ययन किया जायेगा। वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त जिसे साधन कीमत निर्धारण का सिद्धान्त भी कहा जाता है, कि किसी साधन का पुरस्कार उसके सीमान्त उत्पादन के समतुल्य होता है।

- उत्पादन साधनों - भूमि, श्रम, पूँजी तथा साहस का मूल्य निर्धारण करना।
- सभी साधनों का उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार मूल्य निर्धारण करना।
- भूमि की लगान , श्रम की मजदूरी, पूँजी का ब्याज तथा साहस का लाभ निर्धारण करना।
- उत्पादन साधनों की मांग एवं पूर्ति के अनुसार मूल्य निर्धारण करना।

22.2 वितरण का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त

वितरण का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त, उत्पादन के साधनों का पारिश्रमिक निर्धारित करने का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसे 'वितरण का केन्द्रीय सिद्धान्त' भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् 1894 में विक्सटीड वालरस जे0बी0 क्लार्क आदि अर्थशास्त्रियों ने किया था। बाद में श्रीमती जॉन रॉबिन्सन एवं प्रो0जे0आर0 हिक्स ने इसे आधुनिक रूप में विकसित किया।

22.2.1 सिद्धान्त का सामान्य कथन

‘‘सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त यह बतलाता है कि एक साधन की कीमत उसकी उत्पादकता पर निर्भर होती है और वह सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है।’’

साधनों की कीमत उनकी उत्पादकता पर निर्भर-साधन की माँग ‘व्युत्पन्न माँग’ होती है अतः साधनों की माँग उनके द्वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं की माँग पर निर्भर होती है। यदि वस्तु की माँग अधिक है तो साधन की माँग भी अधिक होगी क्योंकि अधिक मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए साधनों की माँग अधिक मात्रा में की जायेगी। इसके विपरीत, यदि उत्पादित वस्तु की माँग कम है तो वस्तु का कम मात्रा में उत्पादन करने के लिए साधन की माँगभी कम की जायेगी। साधनों की माँग उत्पादक के द्वारा इसलिए की जाती क्योंकि साधनों में वस्तुओं को उत्पादित करने की क्षमता होती है। दूसरे शब्दों में, साधनों की कीमत इसलिए दी जाती है क्योंकि उसमें उत्पादकता होती है।

साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर-किसी साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही क्यों दी जाती है, उसकी औसत उत्पादकता के बराबर क्यों नहीं? इसका उत्तर यह है कि साधनों के प्रयोग की दृष्टि से सीमान्त उत्पादकता एक फर्म के अधिकतम लाभ की स्थिति को बतलाती है। दूसरे शब्दों में, एक फर्म उत्पादन के साधन की विभिन्न इकाइयों का प्रयोग उस सीमा तक करता है जहाँ पर साधन की सीमान्त उत्पादकता और साधन के लिए दिये जाने वाला मूल्य दोनों एक दूसरे के बराबर हो जाते हैं। जिस प्रकार से एक फर्म को किसी वस्तु के उत्पादन में उस समय अधिकतम मौद्रिक लाभ प्राप्त होता है जिस उत्पादन पर फर्म की सीमान्त लागत और उसकी सीमान्त आय एक दूसरे के बराबर हो जाती है, ठीक उसी प्रकार, एक उत्पादक को अधिकतम लाभ तब प्राप्त होता है जबकि उसके साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उस साधन की सीमान्त लागत एक दूसरे के बराबर हो जाती है।चूँकि एक उत्पादक का भी उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है, अतः साधन की कीमत भी उसकी सीमान्त उत्पादकता के द्वारा निर्धारित होती है न कि औसत उत्पादकता के द्वारा। इसीलिए अर्थशास्त्रियों ने साधन के मूल्य निर्धारण करने के लिए सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

प्रायः यहाँ यह प्रश्न किया जाता है कि साधन की कीमत, साधन की उत्पादकता पर क्यों निर्भर करती है? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि वस्तु और साधन की माँग में अन्तर है। वस्तु की माँग प्रत्यक्ष रूप से, उस वस्तु से मिल ने वाली उपयोगिता के आधार पर की जाती है, जबकि साधन की माँग व्युत्पन्न माँग होती है। साधन की माँग इस बात पर निर्भर करती है कि ‘साधन में उत्पादन करने की क्षमता कितनी है’ अर्थात् साधन की माँग ‘साधन की उत्पादकता पर निर्भर करती है’, इसलिए यह कहा जाता है कि जिस साधन की उत्पादकता जितनी अधिक होगी, उसकी माँग

भी उतनी ही अधिक होगी और इसके विपरीत भी सही सिद्ध होगा। यही कारण है कि साधन की कीमत का निर्धारण साधन की सीमान्त उत्पादकता से तय होता है।

साधन की सीमान्त उत्पादकता के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है, उसे साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं।

22.2.2 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की मान्यताएँ

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित हैः-

1. पूर्ण प्रतियोगिता- यह मान लिया गया है कि बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की दशा पायी जाती है। क्रेता और विक्रेता आपस में प्रतियोगिता के आधार पर साधनों का क्रय-विक्रय करते तो हैं, परन्तु वे आपस में एक-दूसरे को प्रभावित नहीं कर सकते हैं।
2. साधनों का प्रतियोगी बाजार- उत्पत्ति के साधनों के द्वारा उत्पादित वस्तु का बाजार भी प्रतियोगी बाजार मान लिया जाता है।
3. उत्पत्ति के साधनों में समानता-उत्पत्ति के साधन की विभिन्न इकाइयाँ एक-दूसरे की पूर्ण स्थानापत्र भी होती है।
4. परिवर्तित साधन की कीमत की जानकारी-यह मान लिया गया है कि अन्य साधनों को स्थिर रखकर 'साधन विशेष' को परिवर्तित किया जाता है और परिवर्तित साधन की कीमत को ज्ञात कर लिया जाता है।
5. लाभ का अधिकतम करना-प्रत्येक उत्पादक तथा फर्म का अन्तिम उद्देश्य यह होता है कि वह अपने लाभ में अधिकमत वृद्धि कर लेता है।
6. उत्पत्ति ह्वास नियम की मान्यता-यह मान लिया गया है क उत्पादन में उत्पत्ति ह्वास नियम लागू होता है।
7. सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त-पूर्ण रोजगार की धारणा को मानकर कार्य करता है।

22.2.3 सीमान्त उत्पादकता का अर्थ

अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुछ उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं। दूसरे शब्दों में, साधन की एक अतिरिक्त इकाई से होने वाले उत्पदान को उस साधन की सीमान्त उत्पादकता कहा जाता है। प्रो0 हिक्स के अनुसार ''सीमान्त उत्पादकता जो किसी उपादान को सन्तुलन की दशा में मिल ने वाले वास्तविक पुरस्कार का माप है, वह वृद्धि है जो किसी फर्म की उत्पत्ति में किसी उपादान की पूर्ति की एक इकाई बढ़ाने से सम्भव होती है, जबकि फर्म का संगठन उत्पादन के नये स्त के साथ समायोजित हो गया हो, परन्तु फर्म के शेष संगठन में, जिसमें कीमतों की सामान्य प्रणाली भी

सम्मिलित है, कोई परिवर्तन न हुआ हो।'' सीमान्त उत्पादकता को तीन प्रकार से व्यक्त किया जा सकता हैः-

i. **सीमान्त भौतिक उत्पादकता** - जब कभी सीमान्त उत्पादकता को 'वस्तु की भौतिक मात्रा' में व्यक्त किया जाता है तब उसे 'सीमान्त-भौतिक उत्पादकता' कहा जाता है।

जब उत्पादन के क्षेत्र में अन्य साधनों को स्थिर रखकर किसी एक साधन की एक अतिरिक्त

काई को उत्तरोत्तर बढ़ाया जाता है, तब इस साधन के प्रयोग के परिणामस्वरूप कुल भौतिक उत्पादन में जो वृद्धि होती है उस अतिरिक्त वृद्धि को उस साधन की 'सीमान्त-भौतिक उत्पादकता' कहा जाता है।

उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थात् परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के क्रियाशील होने के कारण प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन की भौतिक उत्पादकता बढ़ती है। उत्पादकता बढ़ते-बढ़ते एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाती है, जो सबसे अधिक होती है और इस चरम बिन्दु के बाद साधन की भौतिक उत्पादकता घटनी प्रारम्भ हो जाती है।

ii. **सीमान्त आगम उत्पादकता**- फर्म या उत्पादक की नजर केवल इस पर ही नहीं कि उसे उसके साध के द्वारा कितनी मात्रा में भौतिक उत्पादन उपलब्ध कराया जा रहा है, बल्कि उसकी नजर इस बात पर भी रहती है कि वस्तु को बेचकर उसे कितन आय प्राप्त हो रही है, अर्थात् प्रत्येक फर्म या उत्पादक का हित सीमान्त-भौतिक उत्पादकता (MPP)की अपेक्षा सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) पर निर्भर है। अतः प्रत्येक फर्म या उत्पादक यह जानना चाहता है कि, किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई को लगाने से उसकी कुल आय में कितनी वृद्धि होती है। सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) को हम इस प्रकार से भी परिभाषित कर सकते हैं कि, अन्य साधनों को स्थिर रखने के बाद, परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल आय में जो वृद्धि होती है, उसे साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता कहते है। सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) को दूसरे शब्दों में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MRP) को सीमान्त आगम (MR)से गुणा कर दें, तो हमें सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) प्राप्त हो जायेगा। संक्षेप में,

$$MRP \times MR = MRP$$

iii. सीमान्त मूल्य उत्पादकता (Marginal Value Product or MVP) -'सीमान्त मूल्य उत्पाद' अथवा सीमान्त मूल्य उत्पादकता को तब प्राप्त किया जा सकता है, जबकि सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को उत्पाद ;च्तवकनबजद्ध की कीमत से गुणा कर दिया जाय।

दूसरे शब्दों में

$$MVP = MPP \times Price$$

चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य AR = MR

इसलिए MVP = MPP x MR = MRP

अतः यह कहा जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त उपज का मूल्य या सीमान्त मूल्य उत्पाद (MVP) और सीमान्त आगम उत्पादकता (M RP) एक ही होती है।

22.2.4 साधन बाजार में फर्म का सन्तुलन

जिस प्रकार वस्तु के बाजार में फर्म के सन्तुलन का अध्ययन किया जाता है उसी प्रकार साधन बाजार में फर्म के सन्तुलन का अध्ययन किया जा सकता है। उत्पादन बाजार फर्म के सन्तुलन का अभिप्राय यह है कि फर्म प्रत्येक साधन की कितनी मात्रा का प्रयोग करती है और उसके लिए कितना मूल्य देती है। हम उत्पादन बाजार में फर्म के सन्तुलन का अध्ययन पूर्ण तथा अपूर्ण दोनों ही प्रतियोगिताओं के अन्तर्गत कर सकते हैं।

22.2.5 **(I)** पूर्ण प्रतियोगिता में साधन कीमत का निर्धारण

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कोई भी फर्म साधन की कीमत पर प्रभाव नहीं डाल् सकती है। क्योंकि उद्योग द्वारा फर्म के लिए श्रम की मजदूरी दी हुई मान ली जाती है। संक्षेप में, फर्म को प्रचलित मजदूरी की दर पर श्रम की इकाई को क्रय करना होता है। इस दर पर वह श्रम की जितनी चाहे उतनी मात्रा क्रय कर सकती है, ऐसी दशा में सीमान्त मजदूरी और औसत मजदूरी एक-दूसरे के बराबर होती हैं, इसलिए उन्हें एक पड़ी हुई रेखा के द्वारा दिखाया जा सकता है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत:

प्रचलित मजदूरी = सीमान्त मजदूरी = औसत मजदूरी होती है।

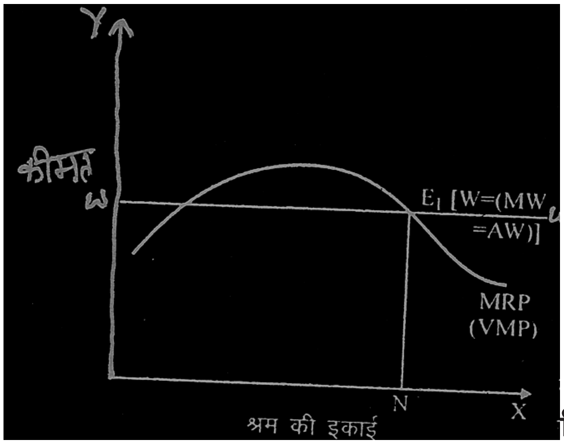

चित्र 22.1

फर्म के साम्य को निम्नांकित चित्र में स्पष्ट किया गया है। चित्र में MRP वक्र श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता है जो सीमान्त उपज के मूल्य (VMP) के बराबर, है, क्योंकि बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की शर्त मान ली गयी है। MW = AW एक सीधी पड़ी सरल रेखा है जो इस बात को बताती है कि

प्रचलित मजदूरी की दर पर फर्म जितनी मात्रा में चाहे श्रम को खरीद सकती है। फर्म का सन्तुलन वहाँ होगा जहाँ MRP वक्र MW = AW वक्र को ऊपर से नीचे को काटता है। चित्र 22.1 में यह स्थिति बिन्दु E_1से स्पष्ट की गयी है। इस बिन्दु पर फर्म सन्तुलन की स्थिति में होगी और उसका लाभ भी अधिकतम होगा। फर्म के सन्तुलन E_1 पर फर्म प्रचलित मजदूर की दर से ON मात्रा में श्रम को क्रय करेगी। E_1 बिन्दु के बाद MRP वक्र MW = AW के नीचे चला जाता है अर्थात् श्रम की सीमान्त उत्पादकता प्रचलित मजदूरी की दर से कम रह जाती है। अतः फर्म के द्वारा श्रम को ON मात्रा से अधिक मात्रा में नहीं लगाया जायेगा।

अल्पकाल में फर्म को साधन की इकाइयों के प्रयोग से लाभ या हानि हो सकती है।

(1) अल्पकाल में फर्म को लाभ. फर्म के लाभ को चित्र 22.2 में स्पष्ट किया गया है। किसी भी साधन की कीमत उस बिन्दु पर तय होगी जहाँ पर MRP = MFC के होगा अर्थात् सीमान्त आय उत्पादकता त्र सीमान्त साधन लागत के।

चित्र में E बिन्दु पर MEP = MFC के है। इस बिन्दु पर सीमान्त आय उत्पादकता और

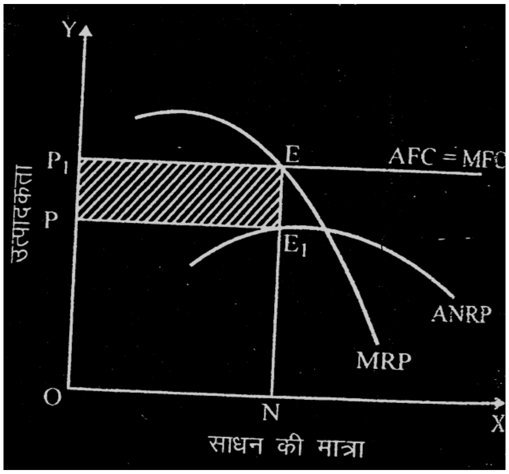

चित्र 22.2

सीमान्त साधन लागत एक-दूसरे के बराबर हैं, इसलिए साधन की कीमत NE या OP होगी। इस कीमत पर ON मात्रा में साधन की माँग की जायेगी।

फर्म को साधन की इकाइयों के लगाने से लाभ होगा अथवा हानि? इस बात का पता लगाने के लिए औसत शुद्ध आगम उत्पादकता (ANRP) और औसत साधन लागत (AFC) की तुलना करनी होगी। यदि ANRP, AFC से अधिक है, तो वह लाभ की स्थिति होगी औ र कम होने पर हानि होगी, चित्र 22.3 में लाभ PEE_1P_1 से दिखाया गया है।

(2) अल्पकाल में हानि-यदि अल्पकाल में शुद्ध आगम उत्पादकता (ANRP) से साधन की कीमत ऊँची है, तो फर्म की हानि होगी, जैसा कि चित्र 22.3 में स्पष्ट किया गया है। चित्र के अनुसार साधन की कीमत OP_1 है, जबकि

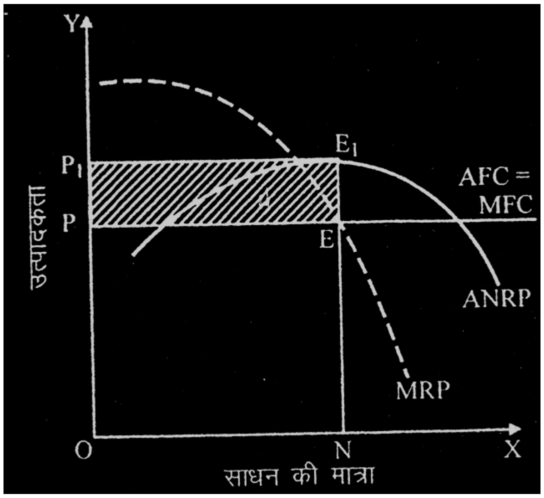

चित्र 22.3

साधन की उत्पादकता OP है। इस प्रकार फर्म की हानि PE_1EP_1 के बराबर है।

(3) दीर्घकाल में सामान्य लाभ -दीर्घकाल में फर्म को साधन की इकाइयां के प्रयोग से केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा। अर्थात् दीर्घकाल में एक फर्म का AFC ANRP के बराबर होगा। यदि AFC, ANRP से कम है तो फर्म को साधन की इकाइयों के प्रयोग से लाभ प्राप्त होगा। स्पष्ट है की अनेक फर्में इस लाभ से आकर्षित होकर उद्योग में प्रवेश करेंगी जिससे साधन की माँग उत्तरोत्तर

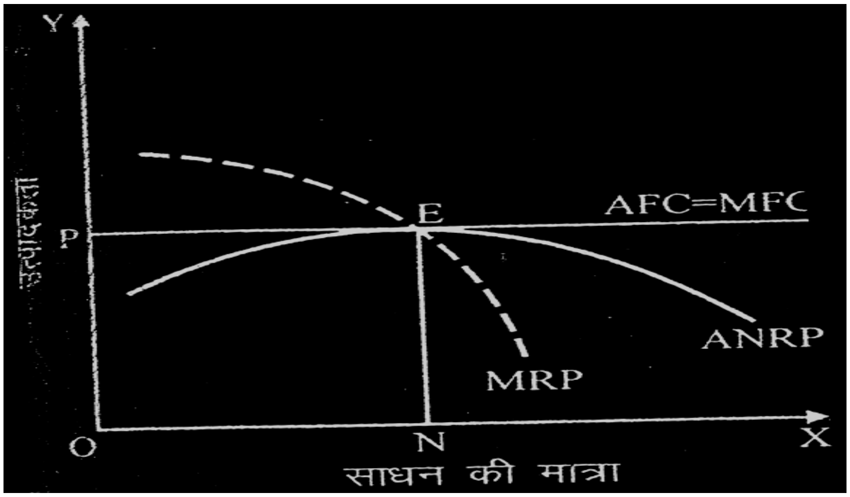

चित्र 22.4

बढ़ने लगेगी। माँग के बढ़ने के कारण साधन का AFC बढ़कर ANRP के बराबर हो जायेगा। यदि AFC, ANRP से बढ़ जाता है, तो फर्मों के द्वारा साधन की माँग नहीं की जायेगी, क्योंकि इस स्थिति में फर्म को हानि उठानी होती है। फर्मों द्वारा साधनों की माँग के कम कर देने से धीरे-धीरे AFCघटने लगेगी और अन्त में यह घटते-घटते ANRP के बराबर हो जाती है। इस प्रकार दीर्घकाल में फर्मों को सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा। दीर्घकाल में फर्म तथा उद्योग के साम्य के लिए निम्नलिखित दशाओं का पूरा होना आवश्यक है:-

(i) MRP = MFC (ii) ANRP = AFC

यहाँ MFC का तात्पर्य सीमान्त परिश्रमिक से है। चित्र 22.4 में इस स्थिति को स्पष्ट किया गया है। चित्र में E बिन्दु पर MRP = MFC = ANRP = AFC के है। अतः साधन की कीमत NE या OP निर्धारित होती है। इस साम्य पर फर्म के द्वारा साधन की ON मात्रा की माँग की जायेगी तथा फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा।

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचनाएँ

1. इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन-साधन की सभी इकाइयाँ सजातीय होती है जबकि वास्तविक व्यवहार में उत्पादन-साधन की इकाइयाँ विजातीय होती हैं।

2. इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न उपयोगों के बीच उत्पादन-साधनों की गति शील ता पूर्ण होती है। जबकि यह मान्यता सही नहीं है। भूमि में तो गति शील ता का पूर्ण अभाव होता ही है, पूँजी व श्रम भी पूर्णतः गति शील नहीं होते। जिससे उनकी सीमान्त उत्पादकता समान नहीं हो सकती।

3. इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन साधन पूर्णतया विभाज्य होते हैं। परिणामतः उनकी मात्राओं में अनन्त सूक्ष्म परिवर्तन किये जा सकते हैं। सत्य तो यह है कि एक निश्चित सीमा से आगे उत्पादन-साधन अविभाज्य हो जाते हैं।

4. इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन-प्रक्रिया में साधन के अनुपातों को बदला जा सकता है। जबकि प्रावैधिक अन्य कारणों से सामान्यतया ऐसा सम्भव नहीं होता।

5. आलोचकों के अनुसार बड़े उद्योगों तथा कुछ विशेष परिस्थितियों में किसी एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को मापना ही सम्भव नहीं होता।

6. कुछ आलोचक इसे वास्तविक नहीं मानते। क्योंकि सिद्धान्त सामान्यतः साधन के पारिश्रमिक को दिया हुआ तथा स्थिर मानता है।

7. इस सिद्धान्त के अनुसार किसी उत्पादन-साधन की सीमान्त उत्पादकता उसके पारिश्रमिक को प्रभावित करती है,

8. यह सिद्धान्त स्थिर अथवा आनुपातिक प्रतिफल नियम की मान्यता पर आधारित है। जबकि वास्तविक जीवन में वर्धमान अथवा ह्रासमान प्रतिफल नियम भी कार्यशील होता है।

9. यह सिद्धान्त साधन के कीमत-निर्धारण की केवल दीर्घकालीन व्याख्या ही हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

10. यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की गलत एवं अवास्तविक धारणा पर निर्मित किया गया है।

11. कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त को इस आधार पर स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है कि यह पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के वर्तमान आय-वितरण को उचित बताता है जबकि इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह वितरण अन्यायपूर्ण ही नहीं, बल्कि असमतायुक्त भी है।

12. कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त की इस आधार पर आलोचना की है कि सीमान्त उत्पादकता आय-वितरण के लिए कोई वास्तविक आधार प्रस्तुत नहीं करती और न ही किसी उत्पादन-साधन के पारिश्रमिक तथा उसकी सीमान्त उत्पादकता के बीच कोई घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

13. यह सिद्धान्त उत्पादन-साधन की पूर्ति को स्थिर मानकर चलता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि भूमि को छोड़कर किसी भी साधन की पूर्ति स्थिर नहीं है, विशेषकर दीर्घकाल में तो किसी भी साधन की पूर्ति स्थिर नहीं होती।

14. यह सिद्धान्त केवल मांग पक्ष पर बल देने के कारण एकपक्षीय है।

19.4 वितरण का आधुनिक सिद्धान्त अथवा मांग एवं पूर्ति सिद्धांत

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धांत एकपक्षीय है क्योंकि यह केवल मांग -पक्ष पर ही बल देता है। वितरण का सही सिद्धांत माँग एवं पूर्ति का सिद्धांत है जिसमें वस्तु के मूल्य-निर्धारण की ही तरह माँग एवं पूर्ति की शक्तियों के क्रियाशील न के कारण उत्पादन के साधन का मूल्य अथवा पारितोषिक निर्धारित होता है।

19.4.1 मांग -पक्ष: किसी वस्तु की मांग इसलिए होती है क्योंकि उससे उपभोक्ताओं के प्रत्यक्ष उपयोगिता मिल ती है। साधन की भी एक उपयोगिता होती है पर यह व्युत्पादित होती है। तात्पर्य यह है कि साधन की मांग उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। कोई भी उत्पादक इससे अधिक पारिश्रमिक के रूप में किसी भी साधन को नहीं देगा। जिसकी व्याख्या सीमान्त उत्पाकदता के सम्बन्ध में की जा चुकी है।

19.4.2 पूर्ति-पक्ष: पूर्ति-पक्ष अथवा लागत-पक्ष वह न्यूनतम सीमा है जिससे कम पर कोई उत्पादन का साधन कार्य करने के लिए तैयार नहीं होता है। वह न्यूनतम सीमा साधन के त्याग पर निर्भर करती है और जैसे-जैसे किसी साधन की मात्रा बढ़ती जाती है वैसे-वैसे अन्य परिस्थितियों के समान रहने पर, त्याग बढ़ता जाता है। सीमान्त त्याग की माप अवसर लागत के आधार पर करते है।

19.4.3 संतुलन: इस प्रकार किसी भी साधन का मूल्य या पारिश्रमिक सीमान्त उत्पादकता पर आधारित मांग तथा त्याग पर आधारित पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है तथा मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ साधन की सीमान्त उत्पादकता उसके सीमान्त त्याग के बराबर हो जाये। इस स्थिति का प्रदर्शन रेखाचित्र नं0 19.4 के माध्यम से किया जा सकता है।

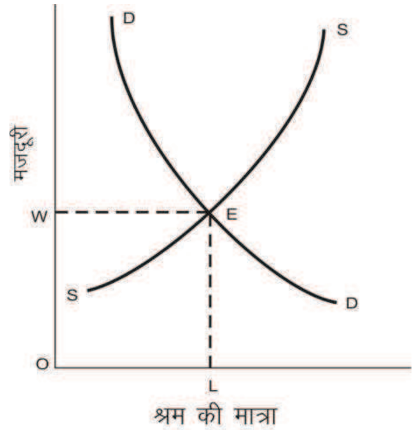

चित्र नं0 19:4

इस रेखाचित्र में सीमान्त उत्पादकता पर आधारित मांग वक्र (DD) तथा सीमान्त त्याग पर आधारित पूर्ति वक्र (SS) एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। उत्पादक OL साधनों को लगायेगा तथा OW पारिश्रमिक देगा।

वितरण के मांग एवं पूर्ति सिद्धांत की व्याख्या विशेषरूप से मजदूरी के सन्दर्भ में की गयी है, पर यहाँ इतना स्पष्ट कर देना उचित होगा कि किसी साधन के मांग एवं पूर्ति के ऊपर बाजार की दशाओं का भी प्रभाव पड़ेगा। क्योंकि किसी साधन की मांग उस साधन की सीमान्त उत्पादकता या सीमान्त आय उत्पादन के ऊपर निर्भर करता है और सीमान्त आय उत्पादन के ऊपर उस बाजार की दशाओं का प्रभाव पड़ेगा जिसमें साधन द्वारा उत्पादित वस्तुयें बेची जायेंगी। इस प्रकार किसी साधन के मूल्य-निर्धारण के सम्बन्ध में, माँग एवं पूर्ति की इन विभिन्न दशाओं के आधार पर, निम्नांकित प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती है -

1. जब वस्तु बाजार तथा साधन-बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता हो।

2. जब वस्तु बाजार तथा साधन-बाजार दोनों में अपूर्ण प्रतियोगिता हो।

3. जब वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता तथा साधन-बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता हो।

4. जब वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता तथा साधन-बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हो।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. किसी साधन की सीमान्त भौतिक उत्पदकता (MPP) होती हैः-

A. अन्य साधन स्थिर रहने पर, किसी साधन की मात्रा में परिवर्तन के परिणामस्वरूप कुल भौतिक उत्पादन में जो वृद्धि होती है।

B. अतिरिक्त प्राप्त होने वाला आगम।

C. एक साधन की परिवर्तनशील मात्रा से स्थिर साधनों को प्राप्त होने वाली आय।

D. उपर्युक्त में से कोई नहीं।

2. साधन की एक इकाई बढ़ने से कुल उत्पादन में जो मात्रा की वृद्धि होती है उसेः-

A. न्याय का सिद्धान्त भी कहा जाता है

B. सीमान्त आगम उत्पादकता कहते हैं

C. औसत आगम उत्पादकता कहते हैं

D. सीमान्त आगम कहते है

3. किसी साधन का MRP होता हैः-

A.MRP x MR B. MRP x साधन की कीमत

C. MRP x MR D.इनमें से कोई नहीं

4. निम्नलिखित कौन अर्थशास्त्री वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त से सम्बन्धित है:-

A. जे0 बी0 क्लार्क B. डाल्टन C. एजवर्थ D. पीगू

5. साधनों की कीमत निर्धारण के लिए वस्तु सिद्धान्त से अलग सिद्धान्त की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि:-

A. साधन की व्युत्पन्न माँग होती है B. साधन की साधारण माँग होती है

C. साधन की पूर्ति स्थिर रहती है D. इनमें से कोई नहीं

6. किसी एक साधन की सीमान्त एवं औसत आगम उत्पादकता वक्र ;डत्च् एवं ।त्च्द्धः-

A. X अक्ष के समानान्तर एक सीधी रेखा होती है

B. Y अक्ष के समानान्तर एक सीधी रेखा होती है

C. उल्टे की आकृति की एक रेखा होती है

D. उल्टे की भाँति दो रेखाएँ होती है

उत्तरः- 1- **1– (a), 2– (a), 3– (a), 4– (a), 5– (a), 6– (d)]**

लघु -उत्तरीय प्रश्न

1. व्युत्पन्न माँग किसे कहते हैं ?

2. उत्पत्ति के साधनों की माँग संयुक्त माँग होती है क्यों ?

3. वितरण की सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त क्या निष्कर्ष प्रस्तुत करता है ?

4. साधन कीमत निर्धारण एवं वस्तु निर्धारण में क्या अन्तर है ?

5. सीमान्त भौतिक उत्पादन तथा सीमान्त आगम उत्पादन में अन्तर बताइए ?

6. वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त में किन-किन अर्थशास्त्रियों का योग दान रहा है ?

22.3 सांराश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त यह बतलाता है कि एक साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है। उत्पादन के अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे ही उस साधन की 'सीमान्त उत्पादकता' कहते हैं। पूर्ण प्रतियोगिक के अन्तर्गत सीमान्त आगम उत्पादकता एवं औसत आगम उत्पादकता वक्र की प्रवृत्ति अंग्रेजी के U अक्षर के उल्टे आकार की होती है। सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र, औसत उत्पादकता वक्र एवं औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता वक्र को उनके उच्चतम बिन्दु पर काटते हुए नीचे तीव्र गति से गिरता है। सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र को साधन विशेष का माँग

वक्र भी कहा जाता है। एक फर्म साधन विशेष का प्रयोग उस सीमा तक करता है जहाँ साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता और साधन की सीमान्त लागत एक दूसरे के बराबर होती है। इस साम्य बिन्दु पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। इसी साम्य बिन्दु पर साधन को कीमत निर्धारित होती है।

वितरण का आधुनिक सिद्धान्त- माँग एवं पूर्ति का सिद्धान्त है।

साधन की माँग व्युत्पन्न माँग होती है। माँग पक्ष की ओर से साधन की सीमान्त आय उत्पादकता वक्र, साधन की माँग वक्र होता है। साधन की पूर्ति उसकी अवसर लागत होती है।

22.4 शब्दावली

सीमान्त भौतिक उत्पादकता- जब साधन की सीमान्त उत्पादकता को वस्तु की भौतिक मात्रा में व्यक्त किया जाता है तब उसे सीमान्त उत्पादकता कहते हैं।

सीमान्त आगम उत्पादकता- उत्पादन के अन्य साधनों को स्थिर साधनों जिनका प्रयोग परिवर्तनशील साधनों के साथ किया गया है, के योग दान को घटा दिया जाता है तो जो शेष बचता है उसे सीमान्त विशुद्ध आगम उत्पादकता कहते हैं।

औसत भौतिक उत्पादकता- जब कुल भौतिक उत्पादन को परिवर्तनशील साधन की इकाइयां से भाग दिया जाता है तो उस साधन की औसत भौतिक उत्पादकता प्राप्त हो जाती है।

औसत आगम उत्पादकता- कुल आय को परिवर्तनशील साधन की कुल इकाइयों से भाग देने से जो भजनफल प्राप्त होता है वह उस साधन की औसत आगम उत्पादकता कहलाती है।

औसत विशुद्ध उत्पादकता- औसत आगम उत्पादकता में से स्थिर साधनों के योग दान को घटा देने के बाद शेष बचता है उसे औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता कहते हैं।

22.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न

उत्तर:- 1- **1— (a), 2— (a), 3— (a), 4— (a), 5— (a), 6— (d)],**

22.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्रा, जे0पी0 (2009): उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त -मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन,वाराणसी।

2. सिन्हा, वी0सी0 (1990): उन्नत आर्थिक सिद्धान्त, स्टूडेन्ट फ्रेन्डस इलाहाबाद।

3. आहुजा, एम0एल0 (2006): उच्च आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक विश्लेषण, चन्द्र प्रकाशन, दिल्ली।

4. लाल, एस0 एन0 (2005): उच्च आर्थिक सिद्धान्त, शिवा पब्लिशिंग हाऊस -इलाहाबाद।

5. लाल, एस0 एन0 (2008): माइक्रों इकोनामिक्स:शिवा पब्लिशिंगहाऊस - इलाहाबाद।

6. जैन, पी0 सी0 (1995): उच्च आर्थिक विश्लेषण, चुग प्रकाशन, इलाहाबाद।

7. त्रिपाठी, बद्री विशाल (2000): एडवांस इकोनोमिक थ्योरी,किताब महल्, इलाहाबाद।

22.7सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

1. Mehta,J.K.(1980):EconomicTheory,ChughPublications,Allahabad.
2. Jhingan, M.L. (2007) : Advanced Economic Theory, Vrinda Prakashan, New Delhi.
3. Seth, M.L. (2007): Micro Economics, L.N. Agrwal Publications, Agra.
4. P. Samuelson (1967) : Micro Economic Theory & Policy, Oxford University Press, U.K.
5. Dhingra, I.S. (2005) : Advaned Economics Theory New Century Publication. Delhi
6. Tripathi, B.B. (2000) : Micro Economics, Kitab Mahal Allahabad.

22.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साधन कीमत का निर्धारण कैसे होता है। चित्र द्वारा व्याख्या कीजिए।
2. वितरण में सीमान्त उत्पादकों के सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए तथा इसकी तुलना वितरण के आधुनिक सिद्धान्त से कीजिए।
3. वितरण के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
4. वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए और इसकी सीमाएँ बताइए।

इकाई 23साधन कीमत निर्धारण-अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत

इकाई की रूपरेखा

23.0 प्रस्तावना
23.1 उद्देश्य
23.2 साधन बाजार में क्रय एकाधिकार तथा पदार्थ बाजार में एकाधिकार अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता
23.3 सांराश
23.4 शब्दावली
23.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
23.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
23.7 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
23.8 निबन्धात्मक प्रश्न

23.0 प्रस्तावना

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साधनों के कीमत निर्धारण की स्थिरता जब उत्पन्न होती है तो श्रम बाजार में कुछ उत्पादक, शेष उत्पादकों की तुलना में अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में सभी उत्पादक संगठित होकर अपना एक संघ बना लेते हैं जिसके माध्यम से बाजार में मजदूरी दर को नियंत्रित कर लेते हैं इसके प्रत्युक्तर में श्रमिकों के अंसठित होने से उन्हें जो पारिश्रामिक दी जाती है उसे वे स्वीकार करने को मजबूर हो जाते हैं। वास्तविकता यह होती है तब मजदूरी का निर्धारण उत्पादकों व श्रमिकों के संघों के बीच सौदा करने की शक्ति से निर्धारित होता है।

23.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- अपूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादन साधनों - भूमि, श्रम, पूँजी तथा साहस का मूल्य निर्धारण करना।
- अपूर्ण प्रतियोगिता में सभी साधनों का उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार मूल्य निर्धारण करना।

23.2 साधन बाजार में क्रय एकाधिकार तथा पदार्थ बाजार में एकाधिकार अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मतानुसार किसी भी वस्तु का उत्पादन, उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के अपने लाभ को अधिकतम करना होता है अतः साधन की कीमत भी उसकी सीमान्त उत्पादकता के द्वारा निर्धारित होता है। इसके अन्तर्गत हम श्रमिकों के शोषण का अध्ययन करते हैं। अर्थात् यदि श्रम बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो और वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो तो श्रमिक संघ श्रमिकों को शोषण कैसे करा पाता है इसका अध्ययन के रुप में लिया गया है।

अपूर्ण प्रतियोगिता वाले श्रम बाजार की कई दशाएँ हो सकती हैं, परन्तु हम यहाँ विशेषकर दो दशाओं पर विचार करेंगे:-

1. **क्रेता एकाधिकार की स्थिति**-क्रेताएकाधिकार की स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब श्रम बाजार में कुछ उत्पादक, शेष उत्पादकों की तुलना में अधिक प्रभावशाली होते हैं या सभी उत्पादक संगठित होकर अपना एक संघ बना लेते हैं। इस प्रकार का संगठन , मजदूरी की दर को नियन्त्रित करता है, अतः श्रमिकों के असंगठित होने के कारण उन्हें जो मजदूरी दी जाती है उसे वे स्वीकार कर लेते हैं।
2. **विक्रेता एकाधिकार की स्थिति**-दूसरी ओर, श्रमिक बाजार में, श्रमिक संगठित होकर अपना श्रम बेचते हैं। इस दशा में वे श्रम पूर्ति के एकाधिकारी हो जाते हैं। अतः वास्तविकता

यह है कि श्रम बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है और मजदूरी का निर्धारण उत्पादकों व श्रमिकों के संघों के बीच सौदा करने की शक्ति से निर्धारित होता है।

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण को रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट करने से पूर्व इस बात को भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत मजदूरी रेखा (AW) ऊपर बढ़ती हुई होती है। यही बात 'सीमान्त-मजदूरी रेखा' (MW) में भी लागू होती है, अर्थात् पूर्ण प्रतियोगिता की तरह से अपूर्ण प्रतियोगिता AW = MW में नहीं होता है। सीमान्त मजदूरी रेखा (MW) का ऊपर को उठता हुआ होना, इस बात को बताता है कि उद्योग पतियों को अतिरिक्त श्रमिकों के काम पर लगाने के लिए ऊँची मजदूरी देनी होगी। पूर्ण प्रतियोगिता की भँति फर्म का माँग वक्र उसका सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) वक्र होगा।

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की पूर्व धारणा पर आधारित है। जब साधन बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता होती है तो सन्तुलन में साधन की कीमतें उसकी सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) के समान नहीं होती है। अब हम यह स्पष्ट करेंगे कि जब साधन बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती हो, तो साधन की कीमत किस प्रकार निर्धारित होती है तथा उसकी सीमान्त आय उत्पादकता से क्या सम्बन्ध होता है। यहाँ पर अपूर्ण प्रतियोगिता की एक चरम सीमा वाली दशा क्रय-एकाधिकार का विवेचन करेंगे। साधन बाजार में क्रय-एकाधिकार उस अवस्था को कहते हैं, जब साधन खरीदने वाले का एकाधिकार हो या खरीदने वाला एक ही हो। अब कल्पना करो कि एक विशेष प्रकार का साधन खरीदने वाला एक ही नियोजक है। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता के विपरीत इस अवस्था में नियोजक मजदूरी की दर को प्रभावित कर सकता है, अर्थात् साधन की कीमत घटा-बढ़ा सकता है। यह बात भी समझनी आसान ही है कि यदि उसकी साधन की माँग अधिक हो जाय तो उसे अधिक मजदूरी देनी पड़ेगी।

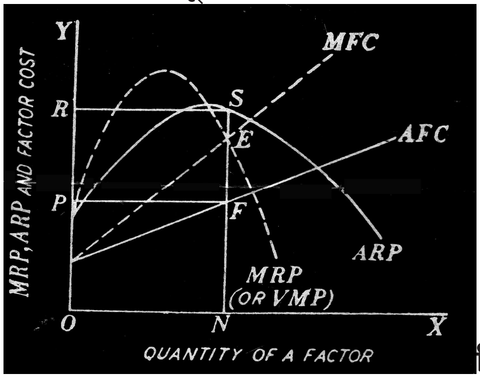

चित्र 23.1

इसलिए साधन की औसत लागत अथवा कीमत वक्र AFCबायें से दायें को ऊपर की ओर चढ़ता है और सीमान्त साधन लागत वक्र MFC इसके ऊपर होता है। रेखाकृति 23.1 में ARP औसत आय उत्पादकता का वक्र है और MRP सीमान्त आय उत्पादकता का वक्र है।

इस दशा में फर्म का सन्तुलन वहाँ होगा जहाँ सीमान्त साधन लागत MFC और सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) आपस में बराबर हों। ये E बिन्दु पर समान हैं, क्योंकि इस बिन्दु पर ये दोनों वक्र MFC और MRP परस्पर काटते हैं। अतः नियोजक का सन्तुलन बिन्दु E पर होगा और वह ON साधन की इकाइयाँ काम पर लगाएगा। इस सन्तुलन की दशा में आप देखेंगे कि साधन की औसत कीमत OP अथवा NF निर्धारित हुई है जो सीमान्त आय उत्पादकता (MRP)जो इस रेखाकृति में NE है, से कम है। इसका अर्थ यह है कि साधन नियोक्ता के लिए उत्पादन तो अधिक करते हैं, परन्तु नियोक्ता उन्हें कीमत कम देता है। इससे नियोक्ता को अनुचित लाभ प्राप्त होता है या वह उनका शोषण करता है। अर्थशास्त्री इसको क्रय एकाधिकारिक शोषण कहते हैं। यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि यदि पूर्ण प्रतियोगिता न हो और नियोक्ता का एकाधिकार हो, तो स्वभावतः वह श्रमिकों व अन्य साधनों का शोषण करेगा और मजदूर कम देगा। इसलिए क्रय-एकाधिकार या अपूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में श्रम का शोषण होगा।

ऊपर साधनों की कीमतों के निर्धारण की विवेचना, उस स्थिति में की जब कि साधन बाजार में क्रय एकाधिकार हो किन्तु पदार्थ बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती हो। अब प्रश्न है कि जब साधन बाजार में क्रय एकाधिकार के साथ पदार्थ मार्केट में भी एकाधिकार अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती हो, साधनों की कीमत किस प्रकार निश्चित होगी। इस स्थिति में भी फर्म सन्तुलन में तब होगा जब सीमान्त आय उत्पादकता तथा सीमान्त साधन लागत परस्पर समान होंगी (MRP = MFC)। किन्तु अब जबकि पदार्थ बाजार मं एकाधिकार (अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता) है, सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) सीमान्त उत्पादन के मूल्य के बराबर नहीं होगी। चूँकि इस स्थिति में भी, ऊपर की तरह साधन मार्केट में क्रय-एकाधिकार है, सीमान्त साधन लागत (MFC) वक्र, औसत साधन लागत (AFC) वक्र के ऊपर स्थित होगा।

ऐसी फर्म जिसको साधन बाजार में क्रय-एकाधिकार तथा पदार्थ बाजार में एकाधिकार प्राप्त हो की सन्तुलन स्थिति रेखाकृति 23.2 में प्रदर्शित की गयी है। इस रेखाकृति पर दृष्टि डालने से ज्ञात होगा कि फर्म बिन्दु E जहाँ पर कि सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) तथा सीमान्त साधन लागत परस्पर बराबर हैं सन्तुलन में है और इसके तदनुरूप साधन की ON इकाइयाँ नियोजित की जा रही हैं। सन्तुलन स्थिति में साधन की FN कीमत निर्धारित हुई हैं जो MRP तथा VMP दोनों से कम है। इस प्रकार नयी स्थिति में फर्म के सन्तुलन की शर्त को निम्न प्रकार लिख सकते है:-

$$\mathbf{VMP > MRP = <MFC > P_f}$$

जहाँ P_f साधन की कीमत का सूचक है।

स्पष्ट है कि साधन बाजार में क्रय-एकाधिकार तथा पदार्थ बाजार में एकाधिकार में किसी साधन का दोहरा शोषण होगा।

रेखाकृति 23.2 में MRP तथा AFC में अन्तर EE साधन बाजार में

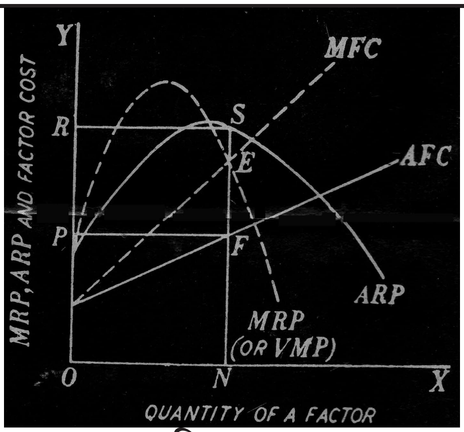

चित्र 23.2

क्रय-एकाधिकार के होने के कारण है और इसलिए यह साधन के क्रय एकाधिकारिक शोषण को मापता है। सन्तुलन स्थिति में VMP तथा MRP में अन्तर HE पदार्थ मार्किट में एकाधिकार के पाये जाने के कारण है इसलिए यह साधन के एकाधिकारिक शोषण को मापता है।

23.3 सांराश

साधन बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति तब पायी जाती है, जब श्रम बाजार में श्रम का एक क्रेता होता है यह स्थिति एक क्रेताधिकारी की होती है। इस प्रकार की स्थिति मे ं एकाधिकारी क्रेता मजदूरी दर को निश्चित ही प्रभावित कर सकता है। अतः यदि श्रम की माँग में वृद्धि हो जाती है तो उसे आर्थिक परिश्रमिक देनी पड़ सकती है परिणामतः औसत मजदूरी वक्र और सीमान्त मजदूरी वक्र बाएँ से दाएँ को ऊपर की ओर उठते हुए होगें। और सीमान्त आगम उत्पाद झुकता हुआ होता है। साम्य बिन्दु के बाद उत्पादकता की स्थिति की गणना की जाती है। निष्कर्षतः बाजार मेंं जब अपूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है तो सेवायोजक एकाधिकार का लाभ उठाते हुए श्रमिकों या साधनों को उनकी उत्पादकता से कम मजदूरी देकर उनके शोषण का भी भय रहता है।

23.4 शब्दावली

क्रय एकाधिकार शोषणः- मजदूर की सीमान्त उत्पादकता अधिक होने पर भी यदि मजदूर की औसत मजदूरी कम होती है तो कम मजदूर इस बात का प्रमाण है कि सेवायोजक एकाधिकार का लाभ उठाते हुऐ श्रमिकों का शोषण करते हैं।

साधन कीमत का अपूर्ण सिद्धान्तः- सीमान्त उत्पादकता विश्लेषण उत्पादन के साधनों की कीमत के निर्धारण का पूर्ण सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं करता बल्कि यह साधनों के माँग पक्ष पर निर्भर होता है।

23.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म को वस्तु की अतिरिक्त इकाईयाँ बेचने के लिए वस्तु की कीमत...

(a) घटानी पड़ती है (b) बढ़ानी पड़ती है

(c) पहले घटानी फिर बढ़नी पड़ती है (d) उपरोक्त कोई नहीं

2. अपूर्ण प्रतियोगिता में साधन कीमत निर्धारण की अवस्था में निम्न में कौन सी स्थिति रहती है।

(a) MR, AR से अधिक रहती है (b) MR, AR से कम रहती है

(c) न कम न अधिक (d) कोई नहीं

3. साधनों की कीमत निर्धारण में अपूर्ण प्रतियोगिता मं निम्न में कौन सी स्थिति होती है-

(a) VMP < MRP (b) VMP = MRP

(c) VMP > MRP (d) कोई नहीं

4. निम्नांकित में से कौन वितरण के सीमान्त उत्पादकत सिद्धान्त से सम्बन्धित हैं।

(a) पीगू (b) जे0 बी0 क्लार्क

(c) डाल्टन (d) एजवर्थ

5. साधन कीमत निर्धारण हेतु अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत MRP और ARP वक्र होते हैं-

(a) नीचे से ऊपर की ओर (b) ऊपर से नीचे की ओर

(c) न नीचे न ऊपर (d) कोई नहीं

उत्तर:- **1– (a), 2– (b), 3– (c), 4– (b), 5– (a)**

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. एक क्रेताधिकार किसे कहते हैं ?
2. व्युत्पादित माँग क्या है ?
3. साधन कीमत निर्धारण एवं वस्तु कीमत निर्धारण में क्या अन्तर है ?

23.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्रा, जे0पी0 (2009): उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त -मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन,वाराणसी।

2. सिन्हा, वी0सी0 (1990): उन्नत आर्थिक सिद्धान्त, स्टूडेन्ट फ्रेन्डस इलाहाबाद।

3. आहूजा, एम0एल0 (2006): उच्च आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक विश्लेषण, चन्द्र प्रकाशन, दिल्ली।

4. लाल, एस0 एन0 (2005): उच्च आर्थिक सिद्धान्त, शिवा पब्लिशिंग हाऊस -इलाहाबाद।

5. लाल, एस0 एन0 (2008): माइक्रों इकोनामिक्स:शिवा पब्लिशिंगहाऊस - इलाहाबाद।

8. जैन, पी0 सी0 (1995): उच्च आर्थिक विश्लेषण, चुग प्रकाशन, इलाहाबाद।

9. त्रिपाठी, बद्री विशाल (2000): एडवांस इकोनोमिक थ्योरी,किताब महल्, इलाहाबाद।

23.7 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Mehta,J.K.(1980):EconomicTheory,ChughPublications,Allahabad.
- Jhingan, M.L. (2007) : Advanced Economic Theory, Vrinda Prakashan, New Delhi.
- Seth, M.L. (2007): Micro Economics, L.N. Agrwal Publications, Agra.
- P. Samuelson (1967) : Micro Economic Theory & Policy, Oxford University Press, U.K.
- Dhingra, I.S. (2005) : Advaned Economics Theory New Century Publication. DelhiTripathi, B.B. (2000) : Micro Economics, Kitab Mahal Allahabad

23.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में साधनों के कीमत निर्धारण की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।

2. अपूर्ण प्रतियोगिता में साधन बाजार में फर्म का साम्य कैसे निर्धारित होता है।

3. अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में क्रय अधिकार द्वारा साधन कीमत का निर्धारण कैसे होता है। आलोचनात्मक व्याख्या दीजिए।

4. साधन की माँग से क्या समझते हैं ?

इकाई 24 मजदूरी निर्धारण सिद्धान्त

इकाई संरचना

24.1 प्रस्तावना
24.2 उद्देश्य
24.3 जीवन-निर्वाह मजदूरी सिद्धान्त
24.4 मजदूरी का जीवन-स्तर सिद्धान्त
24.5 मजदूरी का अवशेष-अधिकार सिद्धान्त
24.6 मजदूरी कोष सिद्धान्त
24.7 मजदूरी निर्धारण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
24.8 सारांश
24.9 शब्दावली
24.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
24.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
24.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
24.13 निबन्धात्मक प्रश्न

24.1 प्रस्तावना

सामान्यतया श्रम के प्रयोग के बदले प्राप्त होने वाला कैसा भी प्रतिफल अथवा मानवीय प्रयत्नों के प्रतिफल के रुप में हमें जो प्राप्त होता है उसे पारिश्रमिक या मजदूर कहा जाता है। मजदूरी के अन्तर्गत- कारखानों में काम करने वाले, विभिन्न तरह के श्रमिकों की मजदूरी, लिपिक, अधिकारी, प्रबन्धक आदि के श्रम के बदले, डाक्टर आदि की फीस, विभिन्न प्रकार के व्यावसायियों, के सेवाओं का पुरस्कार आदि मजदूरी के अन्तर्गत आता है।

मजदूरी के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि श्रम उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन है और मजदूरी वस्तुओं आदि सेवाओं के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले श्रम का पुरस्कार होता है।

24.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- मजदूरी पर प्रभाव डालने वाले तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना।
- मुद्रा की क्रय शक्ति तथा नकद मजदूरी दरों में सम्बन्ध स्थापित करना।
- नकद मजदूरी के अन्तर्गत अन्य लागतों का मूल्यांकन करना।
- कार्य के स्वभाव, भावी उन्नति की आशा, कार्यावधि, अन्य का मजदूरी दर के साथ समन्वय स्थापित करते हुए मजदूरी दर के सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त करना।

मजदूरी निर्धारण के सिद्धान्त के उद्देश्य के अन्तर्गत यह पता लगाना कि श्रम के प्रयोग के बदले दी गई कीमत मजदूरी किस प्रकार शोषण मुक्त हो सकती है। क्योंकि मजदूरी के द्वारा ही उत्पादक उनका शोषण करता है। मजदूरी जितना श्रम का त्याग करता है उसके बदले में उसे उतनी मजदूरी नहीं मिल पाती है जितना कि उसके अपने श्रम का परित्याग किया है। इस सिद्धान्त में यह मान लिया जाता है कि सभी श्रमिक एक जैसे कुशल हैं, श्रमिकों में पूर्ण गति शील ता होती है और उत्पादन में उत्पन्न ह्यस नियम लागू रहता है। समय-समय पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने राष्ट्रीय आय में से श्रमिक को मिल ने वाले अंश को निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। परिणामस्वरूप, अर्थशास्त्र में मजदूरी-निर्धारण के अनेक सिद्धान्त बनाये गये। मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त प्राचीन सिद्धान्तों से कुछ भिन्न अवश्य है, किन्तु प्राचीन सिद्धान्तों के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वास्तव में, मजदूरी के वर्तमान सिद्धान्त को समझने के लिए प्राचीन सिद्धान्तों की व्याख्या करनी आवश्यक है। अतः मजदूरी निर्धारण के कुछ प्रमुख सिद्धान्तों को नीचे दिया जा रहा है।

24.3 जीवन-निर्वाह मजदूरी सिद्धान्त

18वीं शताब्दी में फ्राँस के प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों विशेषकर **तरगों** ने मजदूरी के जीवन-निर्वाह सिद्धान्त की रचना की थी। बाद में रिकार्डो के द्वारा इस सिद्धान्त की पुष्टि की गयी। इसके अतिरिक्त, जर्मनी के अर्थशास्त्री **लैसली** ने भी इस सिद्धान्त को मान्यता दी। उन्होने इस सिद्धान्त को 'मजदूरी का लौह-नियम' या 'मजदूरी का ब्रजैन नियम' के नाम से पुकारा था। इस सिद्धान्त को 'मजदूरी का प्राकृतिक नियम' भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त का आधार 'माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त' है।

सिद्धान्त की मान्यताएँ

सिद्धान्त की व्याख्या करने से पूर्व इस सिद्धान्त की दो प्रमुख मान्यताओं को जानना आवश्यक है।

(ii) जनसंख्या का तेजी से बढ़ना, तथा
(iii) क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम का लागू होना।

सिद्धान्त की व्याख्या-उपर्युक्त दोनों मान्यताओं को जानना आवश्यक है। जनसंख्या बढ़ती है, वहीं मजदूरों की मजदूरी में भी कमी आ जाती है। दूसरी ओर, मूल्यों के बढ़ जाने से असल मजदूरी कम होती है। सारांश यह है कि ''एक हाथ पर कम मजदूरी तथा दूसरे हाथ पर ऊँचे मूल्यों के कारण मजदूर अपने आप को हथौड़ा तथा निहाई के बीच कुचलता हुआ अनुभव करता है।''

इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी जीवन-निर्वाह के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्तिं के बराबर होती है। तरगो ने अपने देश फ्राँस में मजदूरों को न्यूनतम आवश्यकताओं पर रहते हुए देखा और उनके दिमाग में यह धारणा बैठ गयी कि मजदूरी प्राकृतिक नियम द्वारा निर्धारित होती है। इस नियम के अनुसार, यदि मजदूरी जीवन-निर्वाह के न्यूनतम स्तर से अधिक होती है, तो मजदूर शादियाँ करेंगे, बच्चे बढ़ेंगे, जनसंख्या बढ़ेगी और श्रम की पूर्ति भी बढ़ जायेगी। काम के अवसरों मं वृद्धि न होने से काम चाहने वाले मजदूरों के बीच काम को पाने के लिए तीव्रतर प्रतियोगिता होगी, और प्रतियोगिता के कारण मजदूरी की दर घटती जायेगी जब तक कि वह जीवन-निर्वाह स्तर के बराबर न हो जाये। इसके विपरीत, यदि मजदूरी की दर जीवन-निर्वाह मजदूरी से नीची है, तो मजदूरों को अच्छा खाना और अच्छा मकान नहीं मिलेगा, उनकी आर्थिक दशा दयनीय होगी, वे अल्पायु में ही मरने लगेंगे। कुल मिलाकर श्रम की पूर्ति कम हो जायगी। ऐसी दशा में यदि श्रम की माँग पूर्ववत् बनी रहे, तो मजदूर की दर बढ़ेगी और अन्ततः जीवन-निर्वाह की दर के बराबर आ जायेगी।

इस व्याख्या को चित्र 24.1 से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में WW मजदूरी दर है जो जीवन-निर्वाह स्तर के बराबर है, यही श्रम का पूर्ति वक्र भी है तो पूर्णतया लोचदार है। मजदूरी वक्र के

अनुसार OW मजदूरी की दर पर चाहे जितने श्रमिकों को काम पर लगाया जा सकता है। श्रम का माँग वक्र DD है। श्रम की माँग चाहे DD हो अथवा D_1D_1 व D_2D_2 , श्रम की मजदूरी ही OW ही रहती है। यदि मजदूरी दर OW से कम है तो श्रमिकों की मृत्यु दर में वृद्धि होगी। यदि मजदूर की दर OW से अधिक होती है, तो जनसंख्या बढ़ती है। इस प्रकार प्राकृतिक नियम के आधार पर मजदूरी दर OW ही रहती है।

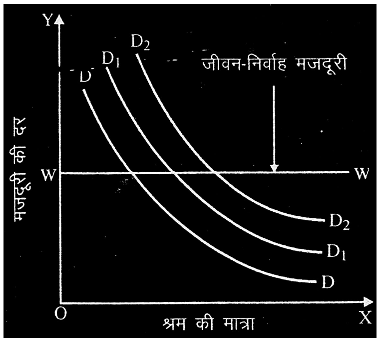

चित्र 24.1

रिकार्डो ने यह कहकर इस सिद्धान्त की पुष्टि की है कि **''श्रम की प्राकृतिक कीमत व कीमत है जो कि श्रमिकों को एक-दूसरे के साथ निर्वाह करने तथा अपनी जाति को, बिना वृद्धि अथवा किसी कमी के, स्थिर बनाये रखने के लिए आवश्यकता है।''**

आलोचना :- जीवन-निर्वाह सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाँए निम्नलिखित हैं

(1) जनसंख्या (श्रम की पूर्ति) बढ़ती नहीं वरन् घटती है-सिद्धान्त बताता है कि मजदूरों की आर्थिक स्थिति के अच्छा होने से जनसंख्या (श्रम की पूर्ति) बढ़ जाती है। यह कथन गलत है। आज दुनिया के विकसित औद्योगिक देशों में मजदूरों की मजदूरी की दर जीवन-निर्वाह मजदूरी की दर से कहीं अधिक है। इतने पर भी उनकी जनसंख्या में उतनी वृद्धि नहीं हुई जितनी कि कल्पना की गयी है। अतः सिद्धान्त का यह कथन गलत है कि मजदूरों की आर्थिक स्थिति के अच्छा होने से उनकी जनसंख्या बढ़ेगी और मजदूरी जीवन-निर्वाह स्तर के ही बराबर बनी रहेगी।

(2) विभिन्न देशों में ही नहीं वरन् उसी देश में मजदूरी की दरों का भिन्न होना- इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न देशों में तथा एक ही देश के विभिन्न भागों में मजदूरी की दर समान होनी चाहिए, क्योकि जीवन-निर्वाह का न्यनतम स्तर सभी स्थानों पर एक ही होता है। किन्तु हम देखते हैं, मजदूरी की दरें भिन्न होती हैं जो कि इस सिद्धान्त के विपरीत है। अतः व्यावहारिक रूप से यह सिद्धान्त सही नहीं है।

(3) सिद्धान्त एकपक्षीय होना-इस सिद्धान्त में केवल श्रम की पूर्ति पर ही ध्यान दिया गया है, जबकि मजदूरी के निर्धारण के लिए श्रम की पूर्ति के साथ श्रम की माँग को भी महत्व दिया जाना चाहिए था।

(4) पूँजीपतियों के साथ पक्षपात-सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा गया है कि यह सिद्धान्त श्रमिकों के साथ न्याय नहीं करता है। पूँजीपतियों के प्रभाव में आकर उनके लाभ को बढ़ाने के लिए श्रमिकों की मजदूरी जीवन-निर्वाह के ही बराबर देने की बात की जाती है, क्योंकि यह तो उनकी नियति है।

(5) श्रमिकों की उत्पादन क्षमता पर ध्यान नहीं-इस सिद्धान्त ने सभी मजदूरों को एक ही तराजू पर तोला है। चूँकि इस सिद्धान्त ने श्रमिकों की उत्पादकता पर विशेष ध्यान नहीं दिया है, इसलिए इस सिद्धान्त को अपूर्ण तथा एकपक्षीय माना जाता है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के कारण ही मजदूरी निर्धारण का जीवन-निर्वाह सिद्धान्त 19वीं शताब्दी के मध्य में त्याग दिया गया और आज इस सिद्धान्त का केवल ऐतिहासिक महत्व ही है।

24.4 मजदूरी का जीवन-स्तर सिद्धान्त

19वीं शताब्दी के मध्य में जीवन-निर्वाह सिद्धान्त को त्याग दिया गया और उसके स्थान पर मजदूरी के जीवन-स्तर सिद्धान्त को मान्यता दी गयी। यह सिद्धान्त जीवन-निर्वाह सिद्धान्त का ही संशोधित रूप है, क्योंकि इसमें अर्थशास्त्रियों ने **'जीवन-निर्वाह'** शब्द को

त्यागकर **'जीवन-स्तर'** शब्द का प्रयोग किया है।

'जीवन-स्तर मजदूरी' से न केवल अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता है, बल्कि वह उससे अधिक आराम व विलास की वस्तुओं को भी क्रय कर सकेगा। इससे मजदूरों की कार्यक्षमता बढ़ती है और उत्पादन भी बढ़ता है। इसमें श्रमिकों की मोYभाव करने की शक्ति सुदृढ़ हो जाती है, क्योंकि यह **'जीवन-निर्वाह मजदूरी'** से ऊँची मजदूरी होती है।

सिद्धान्त के गुण :-यह सिद्धान्त तार्किक दृष्टिकोण से उपयुक्त है, क्योंकि मजदूरी में बहुधा जीवन-स्तर के बराबर होने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

(1) जीवन-स्तर से तात्पर्य उन वस्तुओं तथा सेवाओं से है, जिनका उपभोग करने का एक वर्ग विशेष आदी हो गया है। इस स्तर को यथावत् बनाये रखने के लिए श्रमिक प्रयत्न करते हैं।

(2) जीवन-स्तर तथा कार्यक्षमता के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जीवन-स्तर जितना ही ऊँचा होगा कार्यक्षमता भी उतनी ही अधिक होगी इससे उत्पादन शक्ति भी बढ़ेगी।

(3) यदि कुछ समय तक मजदूरों को मजदूरी जीवन-स्तर के बराबर मिल ती रहे, तो श्रमिकों की मोलभाव करने की शक्ति बढ़ जायेगी। यही कारण है कि वे भविष्य में भी अपनी मजदूरी को इससे कम नहीं होने देंगे।

आलोचना:- जीवन-स्तर सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाँए निम्न हैं

(i) यह सिद्धान्त जीवन-निर्वाह की ही तरह एकपक्षीय है, अर्थात् यह श्रम के पूर्ति पक्ष को लेकर चलता है, जबकि मजदूरी के निर्धारण के लिए श्रम के माँग की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

(ii) मजदूरी केवल जीवन-स्तर से प्रभावित नहीं होती है, जैसा कि यह सिद्धान्त मानकर चलता है, वरन् वह जीवन-स्तर के अतिरिक्त अन्य बातों से भी प्रभावित होती है।

(iii) ऊँचे जीवन-स्तर के अतिरिक्त मजदूर की ऊँची मजदूरी होने के कई अन्य कारण भी हो सकते हैं, जैसे-शिल्पकला में उन्नति, विनियोग की दर, उत्पादन विधि इत्यादि।

24.5 मजदूरी का अवशेष अधिकार सिद्धान्त

सिद्धान्त की व्याख्या :-सर्वप्रथम इस सिद्धान्त को अमरीकी अर्थशास्त्री बॉकर ने बनाया। इस सिद्धान्त के अनुसार कुल उत्पादन में से लगान , ब्याज तथा लाभ को निकाल देने के बाद जो राशि शेष बचती है उसे मजदूरों में बाँट दिया जाता है। सिद्धान्त बताता है कि कुल उत्पादन में से लगान , ब्याज व लाभ को घटाने के बाद जो अवशेष बच जाता है वही मजदूरी होती है, अर्थात्

मजदूरी = (कुल उत्पादन) - (लगान + ब्याज + लाभ)

सिद्धान्त के अनुसार, यदि श्रमिकों की कार्यक्षमता या उत्पादन-शक्ति में वृद्धि हो जाये, तो कुल उत्पादन में वृद्धि होगी। फलतः मजदूरों को मिल ने वाले अवशेष भाग में भी वृद्धि हो जायेगी। अतः श्रमिक जितना अधिक उत्पादन बढ़ायेंगे, उन्हें उतनी ही अधिक मात्रा में मजदूरी मिलेगी।

सिद्धान्त के गुण:- इस सिद्धान्त की प्रमुख विशेषता यह है कि यह श्रमिकों की कार्यक्षमता पर विशेष ध्यान देता है। यह व्यावहारिक ही है कि कार्यक्षमता के बढ़ने से उत्पादन बढ़ता है और उत्पादन के बढ़ने से मजदूरों की मजदूरी भी बढ़ती है। इससे पूर्व के सिद्धान्त इस बात को स्पष्ट नहीं कर पाये हैं कि मजदूर पर कार्यक्षमता का क्या प्रभाव पड़ता है। अतः यह सिद्धान्त बताता है कि यदि मजदूर मेहनत करें तो उनकी मजदूरी बढ़ सकती है।

आलोचना:- मजदूरी का अवशेष अधिकारी सिद्धान्त भी दोषों से मुक्त नहीं है। इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं -

(1) पूर्ति पक्ष पर ध्यान न देना-यह सिद्धान्त अन्य सिद्धान्तों की तर से अपूर्ण है, क्योंकि इसमें श्रम की पूर्ति पर ध्यान नहीं दिया गया है।

(2) एक ही देश में मजदूरी की भिन्न दरों को स्पष्ट न करना-यह सिद्धान्त इस बात की तो व्याख्या करता है कि विभिन्न देशों में मजदूरी की दरों में अन्तर क्यों आता है, परन्तु इस बात की व्याख्या नहीं करता कि एक ही देश के विभिन्न भागों में मजदूरी की दर की भिन्नता का क्या कारण है।

(3) अवास्तविक होना-यह सिद्धान्त वास्तविकता से दूर है। सिद्धान्त इस बात को बताता है कि अवशेष श्रमिकों को मिल ता है। पर व्यवहार में अवशेष के अधिकारी तो साहसी होते हैं न कि श्रमिक।

(4) श्रमिक संघों को महत्व न देना-यह सिद्धान्त श्रमिक संगठन की ओर ध्यान नहीं देता है, जबकि मजदूरी को बढ़ाने में श्रम-संगठनों का महत्वपूर्ण हाथ है।

(5) स्वार्थपूर्ण सिद्धान्त-यह सिद्धान्त स्वार्थ से पूरित है। लगान , ब्याज तथा लाभ के सम्बन्ध में तो यह किसी एक सिद्धान्त को मानकर उनके हिस्सों का निर्धारण करता है, परन्तु उत्पत्ति के महत्वपूर्ण साधन श्रमिक को बचा-खुचा भाग देने की बात करता है जो तर्कहीन है।

24.6 मजदूरी-कोष सिद्धान्त

मजदूरी-कोष के सिद्धान्त के प्रतिपादक एडम स्मिथ थे। बाद में जे0एस0 मिल   ने इस सिद्धान्त को पूरा किया था। मिल   का कहना था कि मजदूरी, पूँजी और जनसंख्या के अनुपात पर निर्भर होती है। मजदूरी कोष में वृद्धि के बिना मजदूरी नहीं बढ़ सकती है। संक्षेप में, श्रम की मजदूरी दो बातों पर निर्भर करती है:-

(1) मजदूरी कोष -मजदूरी कोष वह कोष है जो पूर्व बचतों के फलस्वरूप तैयार किया जाता है। सेवायोजक इस कोष का उपयोग श्रम को क्रय करने की लिए करते हैं। कोष के अनुपात में श्रमिकों की माँग की जाती है। जिस अनुपात में कोष बढ़ता-घटता है, उसी अनुपात में श्रमिकों की माँग भी बढ़ती-घटती है। उल्लेखनीय है कि सेवायोजकों के द्वारा कोष की राशि को किसी बैंक आदि में नहीं रखा जाता है, बल्कि वे एक अनुमान के आधार पर इस कोष को, अपने दिमाX में, श्रम क्रय करने के लिए रख लेते हैं।

(2) श्रमिकों की पूर्ति -काम चाहने वाले मजदूरों के द्वारा श्रम की पूर्ति की जाती है। किसी समय विशेष में काम चाहने वाले श्रमिकों की संख्या का भाग मजदूरी कोष में दे देने पर जो राशि प्राप्त होती है वही औसत मजदूरी की दर है। मजदूरी की दर तभी बढ़ सकती है जब मजदूरों की संख्या में कमी हो अथवा मजदूरी कोष में वृद्धि का प्रश्न है, उसे एकाएक नहीं बढ़ाया जा सकता, क्योंकि कोष का निर्माण तो भूतकाY की बचतों से होता है। अतः यदि श्रमिकों को अपनी आर्थिक दशा में सुधार लाना है या अपनी मजदूरी की बढ़वाना है, तो उनको चाहिए कि वे अपने परिवार को न बढ़ायें अथवा जनसंख्या को नियन्त्रित करें।

आलोचना :-मजदूरी कोष-सिद्धान्त के प्रमुख आलोचक लाँग तथा थार्टन हैं। उनके द्वारा इस सिद्धान्त की निम्न आलोचनाएँ की गयी हैं:-

(1) मजदूरी कोष में परिवर्तन सम्भव है-सिद्धान्त में कहा गया है कि मजदूरों को मजदूरी देने के लिए एक कोष की स्थापना नहीं की जाती है। यदि हम यह मान भी लें कि मजदूरी कोष की कल्पना सेवायोजकों के मस्तिष्क में है, तो भी इसका कोई निश्चित परिणाम नहीं होता, क्योंकि यह कोष निश्चित घटनाओं के प्रभाव से घट व बढ़ सकता है। जब व्यापार में तेजी आती है, तब नये-नये उद्योग खोले जायेंगे, मजदूरों की माँग बढ़ायी जायेगा और मजदूरी-कोष में वृद्धि होगी। इसके विपरीत, मन्दी के समय बेरोजगारी बढ़ेगी और मजदूरों की माँग घटायी जायेगी। मुद्रा के चलन वेग का प्रभाव भी 'मजदूरी कोष' को बढ़ा और घटा सकता है। अतः मजदूरी कोष स्थिर नहीं है इसमें घट-बढ़ हो सकती है।

(2) श्रम उत्पादकता की अपेक्षा- इस सिद्धान्त के अनुसार सभी मजदूरों को समान रूप से मजदूरी दी जाती है, परन्तु व्यावहारिक जीवन में ऐसा नहीं होता है। मजदूरों की उत्पादकता में अन्तर आने के कारण ही मजदूरी की दरों में भिन्नता आती है और उन्हें भिन्न-भिन्न दरों से मजदूरी दी जाती है।

(3) एक व्यवसाय की मजदूरी का प्रभाव दूसरे व्यवसाय में-सिद्धान्त के अनुसार एक व्यवसाय की मजदूरी का प्रभाव दूसरे व्यवसाय में नहीं पड़ता है। आलोचकों का मत है कि एक व्यवसाय में मजदूरी की दर के बढ़ जाने से दूसरे व्यवसाय में भी मजदूरी की दर बढ़ती है। यदि दूसरे व्यवसाय में मजदूरी नहीं बढ़ती है, तो श्रमिक संघर्ष के बल बूते पर मजदूरी बढ़वा लेते हैं या वे दूसरे व्यवासय में चले जाते हैं।

(4) मजदूरी बढ़ने से लाभ में कमी नहीं होती है-सिद्धान्त से ज्ञात होता है कि मजदूरों व सेवायोजकों के बीच हमेशा संघर्ष रहता है, क्योकि मजदूरी बढ़ने से लाभ में कमी और मजदूरी कम होने पर लाभ में वृद्धि होती है। यही घटना संघर्ष को जन्म देती है। परन्तु अनुभव से पता चलता है कि ऐसा होता नहीं है। जब की कोई व्यवसाय प्रारम्भ किया जाता है या उसमें विस्तार किया जाता है, तब मजदूरी बढ़ने के साथ-साथ लाभ की दर भी बढ़ती है।

(5) विभिन्न व्यवसायों में मजदूरियाँ भिन्न होने की व्याख्या-आलोचकों का कहना है कि यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नहीं करता है कि विभिन्न व्यवसायों में मजदूरी की दर, भिन्न क्यों होती है।

(6) वस्तु की माँग घटने-बढ़ने के प्रभाव की उपेक्षा-सिद्धान्त का कथन है कि वस्तुओं की माँग से श्रम की माँग प्रभावित नहीं होती है। आलोचकों का मत है कि वस्तुओं की माँग के घट-बढ़ जाने से उत्पादन की मात्रा भी घट-बढ़ जाती है। फलतः श्रमिकों की माँग भी प्रभावित होती है। उपर्युक्त आलोचकों के कारण मिल ने अपने सिद्धान्त को वापस ले लिया था।

24.7 मजदूरी निर्धारण का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त

सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन जे0बी0 क्लार्क, प्रो0 वॉन थ्यूनन, जेवन्स, आदि ने किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादकों द्वारा मजदूरों की माँग उनकी सीमान्त उत्पत्ति पर निर्भर करती है। जिस प्रकार किसी एक उपभोक्ता के लिए किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता के आधार पर तय होता है, उसी प्रकार मजदूर की मजदूरी भी उसकी सीमान्त उत्पादकता के आधार पर तय होती है। श्रम की सीमान्त उत्पादकता से तात्पर्य उत्पादन की उस मात्रा से है, जोकि अन्य साधनों के पूर्ववत् रहने पर एक श्रमिक के बढ़ाने या घटाने से बढ़ती अथवा घटती है। उदाहरण के लिए, यदि 10 मजदूर, अन्य साधनों के साथ मिल कर 100 इकाइयों का उत्पादन करते हैं, और 11वाँ मजदूर साधनों की उसी मात्रा के साथ मिल कर 115 इकाइयों का उत्पादन करें तो श्रम की सीमान्त उत्पादकता इन दोनों के अन्तर (115 - 100 = 15) 15 इकाइयों के तुल्य होगी।

जब किसी कार्य में अन्य साधनों को स्थिर रखकर श्रम की इकाइयों को उत्तरोत्तर बढ़ाया जाता है, तब उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने से प्रति मजदूर उत्पादन करता घटता है। उत्पादक के द्वारा मजदूरों को उस सीमा तक बढ़ाया जाता है, जहाँ पर मजदूर को दी जाने वाली मजदूरी उसके द्वारा कुल उत्पत्ति में की जाने वाली वृद्धि के तुल्य हो जाय। इस बात को हम उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट कर चुके हैं। ग्यारहवाँ मजदूर सीमान्त-मजदूरी तथा दों द्वारा प्राप्त उत्पादन, सीमान्त-उत्पत्ति कहलाती है। इस दशा में एक उत्पादक सीमान्त मजदूर को काम देने में उदासीन रहता है, क्योंकि उत्पादक को श्रमिक के सीमान्त उत्पादन के बराबर मजदूरी देनी होती है और इसलिए उसे कोई लाभ नहीं होता। दीर्घकाल में मजदूरी की दर उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की होती है, चित्र 24.2 से इस बात को स्पष्ट किया गया है।

चित्र के पैनल A में उद्योग और पैनल B में फर्म के सन्तुलन को दिखाया गया है।

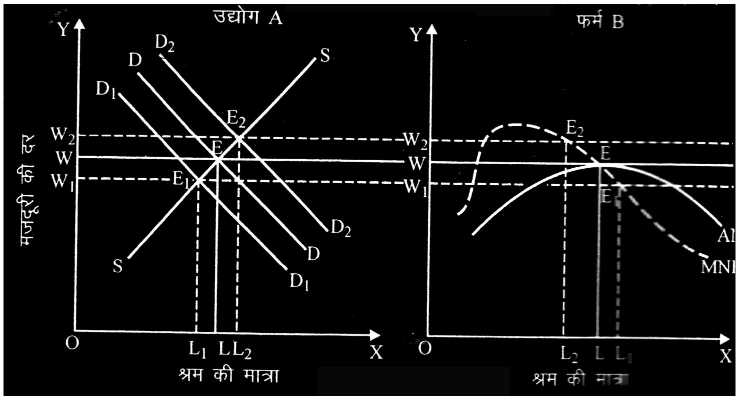

चित्र 24.2

पैनल A में SS श्रम का पूर्ति वक्र व DD माँग वक्र है। दोनों एक-दूसरे को E बिन्दु पर

काटते हैं, जहाँ मजदूरी की दर OW तय होती है। पैनल B में OW फर्म के लिए मजदूरी दर व MW श्रम का पूर्ति वक्र है जो पूर्णतया लोचदार है। इसका अर्थ यह हुआ कि OW मजदूरी की दर पर जितना चाहें उतने मजदूरों को काम पर Yगाया जा सकता है। एक फर्म श्रम को उस समय तक काम पर लगायेगी जहाँ OW मजदूरी की दर मजदूर की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है। चित्र के पैनल B में यह स्थिति E बिन्दु पर है जहाँ मजदूरी दर, औसत शुद्ध आगम उत्पादकता (ANRP) तथा शुद्ध सीमान्त आगम उत्पादकता (MNRP) तीनों बराबर हैं तथा इस साम्य बिन्दु पर फर्म श्रम की OL मात्रा का प्रयोग करती है।

माना श्रम की माँग D_1D_2 में वृद्धि होती है, फलतः मजदूरी की दर OW से बढ़कर OW2हो जाती है। मजदूरी में वृद्धि होने के कारण फर्म के द्वारा व्स्2मात्रा में श्रम की माँग की जाती है जो पहले से कम है। ऐसी दशा में फर्म को WW_2 के बराबर हानि होगी, क्योंकि श्रम की औसत शुद्ध आगम उत्पादकता (ANRP) OW_2 से WW_2 के बराबर कम है। फर्म को हानि होने से श्रम की माँग घटाकर D_1D_1 कर दी जाती है जिससे मजदूरी की दर भी कम होकर OW_1 रह जाती है। ऐसी स्थिति में फर्म को W_1W के बराबर लाभ होता है। लाभ की यह स्थिति केवल अल्पकाल में ही होती है। दीर्घकाल में श्रम की मजदूरी उसकी शुद्ध सीमान्त आगम उत्पादकता तथा औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता के बराबर होगी। संक्षेप में, WW = MNRP = ANRP की स्थिति साम्य की स्थिति होगी। यह स्थिति पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में पायी जाती है। अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति के अन्तर्गत मजदूरी की दर श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता के बराबर होगी।

सिद्धान्त की मान्यताएँ :-सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएँ निम्न हैं:-

(i) श्रम की सभी इकाइयाँ उत्पादकता की दृष्टि से समान होती हैं।

(ii) श्रमिकों व सेवायोजकों की सौदा करने की शक्ति बराबर होती है।

(iii) श्रम के अतिरिक्त अन्य सभी साधन स्थिर होते हैं।

(iv)सिद्धान्त उत्पत्ति ह्रास नियम पर आधारित है।

(v) दीर्घकाल में श्रम की मजदूर उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर निश्चित होती हैं, तथा

(vi)श्रम पूर्ण रूप से गति शील है।

आलोचना:-सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ अग्रलिखित हैं

(1) यह एकपक्षीय सिद्धान्त है-इस सिद्धान्त में केवल श्रम की माँग को ही महत्व दिया गया है। सच तो यह है कि श्रम की पूर्ति पक्ष का जब तक अध्ययन नहीं किया जाता है, तब तक सिद्धान्त का कथन सही नहीं हो सकता है।

(2) मजदूरी सदैव सीमान्त उत्पादकता के बराबर तय नहीं होती है-इस सिद्धान्त के अनुसार, मजदूर की मजदूरी उसकी सीमान्त उत्पादकता से न तो कम होगी न अधिक। सिद्धान्त का यह कथन त्रुटिपूर्ण है। व्यवहार में सेवायोजक मजदूरों की आर्थिक कमजोरी एवं संगठन के अभाव का फायदा उठाकर उनकी सीमान्त उत्पादकता से भी कम मजदूरी देते हैं।

(3) अवास्तविक मान्यताएँ-सिद्धान्त की मान्यता के अनुसार काम करने वाले मजदूर समान विशेषता वाले होंगे, श्रम पूर्ण गति शील होगा, प्रत्येक स्थान में उत्पादित वस्तु का मूल्य समान रहता है तथा ब्याज व किराये की दरें निश्चित व स्थिर रहती हैं। आलोचकों के अनुसार ये सब बातें समान नहीं रहती हैं, अतः इन सब परिवर्तनों के कारण सिद्धान्त की बातें सत्य नहीं हैं। स्था व व्यवसाय की भिन्नता के कारण मजदूरी की दरों में परिवर्तन आते रहते हैं।

(4) एक अतिरिक्त इकाई बढ़ाना सदैव सम्भव नहीं होता-सिद्धान्त की आलोचना यह कहकर भी की जाती है कि इसमें मान लिया गया है कि अन्य साधनों में परिवर्तन किये बिना ही श्रम की एक इकाई बढ़ायी जा सकती है। किन्तु, यदि उत्पादन का प्राविधिक-गुण स्थिर हो, तो इस प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं है।

(5) पूर्ण प्रतियोगिता की कल्पना अवास्तविक होना-यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। परन्तु व्यवहार में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पायी जाती है। हाँ, व्यवहार में अपूर्ण प्रतियोगिता होती है। श्रमिकों के बीच भी अपूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है, जिससे मजदूरी दर सीमान्त उत्पत्ति से भिन्न होती है।

24.8 सांराश

श्रमिकों की सेवाओं के लिए उन्हें जो पुरस्कार दिया जाता है उसे मजदूरी कहते हैं। मजदूरी दो प्रकार की होती है, अर्थात् - नकद मजदूरी - श्रमिकों को मुद्रा के रूप में जो मजदूरी प्राप्त होती है उसे नकद मजदूरी कहते हैं। वास्तविक मजदूरी - वास्तविक मजदूरी, नकदी मजदूरी की क्रय शाक्ति होती है, साथ ही इसमें अन्य सुविधाएँ प्राप्त होती हैं उन्हें भी जोड़ा जाता है। वास्तविक मजदूरी के तत्व - (1) मौद्रिक मजदूरी की मात्रा (2) मुद्रा की क्रय शक्ति (3) अतिरिक्त आय (4) अन्य सुविधाएँ (5) कार्य की प्रकृति (6) कार्य के घण्टे (7) भविष्य में उन्नति की आशा (8) सामाजिक प्रतिष्ठा (9) आराम एवं छुट्टीयाँ।

मजदूरी निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त - श्रमिक के माँग एवं पूर्तिं का सिद्धान्त श्रमिक की माँग व्युत्पन्न माँग होती है।

श्रमिक की माँग निम्न तत्वों पर निर्भर होती है - (1) श्रम की उत्पादकता (2) तकनीकी (3) श्रमिक द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग (4) पूँजी की कीमत श्रम की पूर्तिं - (1) एक फर्म के लिए श्रम की पूर्तिं पूर्णतया लोचदा होती है, ये उपयोग के लिए पूर्तिं रेखा पूर्णतया लोचदार नहीं होती है। एक उद्योग के लिए श्रम की पूर्तिं दो तत्वों से प्रभावित होती है- (अ) श्रम की व्यावसायिक गति शील ता और (ब) कार्य-आराम अनुपात मजदूरी दर का निर्धारण माँग एवं पूर्तिं की सापेक्षिक शाक्तियों के द्वारा होता है।

24.9 शब्दावली

सामूहिक सौदेबाजी- जब श्रमिक संघ, सेवायोजकों से मोल भाव करके मजदूरों की मजदूरी में वृद्धि का प्रयत्न करते हैं तो यह स्थिति सामूहिक सौदेबाजी की होती है।

मौद्रिक या नकद मजदूरी- मौद्रिक या नकद मजदूरी वह मजदूरी है जो श्रमिक को उसके श्रम के बदले एक निश्चित समय में मुद्रा के रुप में दी जाती है।

मजदूरी कोष - मजदूरी कोष वह कोष होता है जो पूर्व बचतों के फलस्वरूप् तैयार किया जाता है। सेवायोजक इस कोष का उपयोग श्रम को क्रय करने के लिए करते हैं।

असल या वास्तविक मजदूरी - वास्तविक मजदूरी वस्तुओं एवं सेवाओं की उस मात्रा को बताती है जिसे एक निश्चित समय में श्रमिक प्रचलित कीमतों पर क्रय कर सकता है।

24.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. यदि श्रम की उत्पादकता बढ़ती है, तो उसकी मजदूरी स्तर भी -

(a) बढ़ेगा (b) स्थिर होगा (c) कम होगा (d) कोई प्रभाव नहीं होगा

2. मजदूरी का अवशेष अधिकारी सिद्धान्त प्रतिपादित किया -

(a) पीगू ने (b) मार्शल ने (c) जे0बी0 से ने (d) वाकर ने

3. नाम-मात्र की मजदूरी से आश्य है -

(a) जो मजदूरी मुद्रा में मिल ती है (b) जो मुद्रा में नहीं मिल ती

(c) जो नगण्य हो (d) जो उचित समय पर न दी जाए

4. मजदूरी के लौह नियम का प्रतिपादन किस अर्थशास्त्री ने किया -

(a) रिकार्डो (b) एडम स्मिथ (c) जे0एस0 मिल (d) पीगू

5. 'मजदूरी कोष सिद्धान्तों' के प्रतिपादक हैं -

(a) जे0 एस0 मिल (b) फिशर (c) माल्थस (d) मार्शल

6. मजदूरी का जीवन-निर्वाह सिद्धान्त बताता है कि दीर्घकाल में श्रम का पूर्ति वक्र होता है-

(a) पूर्णतः लोचदार (b) पूर्णतः बेलोचदार (c) लोचदार (d) इनमें से कोई नहीं

उत्तर - **1. (a), 2. (d), 3. (a), 4. (b), 5. (a), 6. (a)**

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मौद्रिक व नकद मजदूरी में अन्तर।
2. मजदूरी की कोई दो परिभाषाएँ।
3. श्रम की माँग का अर्थ एवं उसे प्रभावित करने वाले तत्व।
4. श्रम की पूर्ति।
5. वास्तविक मजदूरी से क्या आशय है ?

24.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्रा, जे0पी0 (2009): उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त -मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन,वाराणसी।
2. सिन्हा, वी0सी0 (1990): उन्नत आर्थिक सिद्धान्त, स्टूडेन्ट फ्रेन्डस इलाहाबाद।

3. आहूजा, एम0एल0 (2006): उच्च आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक विश्लेषण, चन्द्र प्रकाशन, दिल्ली।

4. लाल, एस0 एन0 (2005): उच्च आर्थिक सिद्धान्त, शिवा पब्लिशिंग हाऊस -इलाहाबाद।

5. लाल, एस0 एन0 (2008): माइक्रों इकोनामिक्स:शिवा पब्लिशिंगहाऊस - इलाहाबाद।

8. जैन, पी0 सी0 (1995): उच्च आर्थिक विश्लेषण, चुग प्रकाशन, इलाहाबाद।

9. त्रिपाठी, बद्री विशाल (2000): एडवांस इकोनोमिक थ्योरी,किताब महल्, इलाहाबाद।

24.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Mehta,J.K.(1980):EconomicTheory,ChughPublications,Allahabad.
- Jhingan, M.L. (2007) : Advanced Economic Theory, Vrinda Prakashan, New Delhi.
- Seth, M.L. (2007): Micro Economics, L.N. Agrwal Publications, Agra.
- P. Samuelson (1967) : Micro Economic Theory & Policy, Oxford University Press, U.K.
- Dhingra, I.S. (2005) : Advaned Economics Theory New Century Publication. DelhiTripathi, B.B. (2000) : Micro Economics, Kitab Mahal Allahabad

24.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्रम की माँग एवं पूर्ति की व्याख्या कीजिए तथा मजदूरी निर्धारण पर इसके प्रभाव बताइए।
2. मजदूरी के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
3. मजदूरी किसे कहते हैं मौद्रिक एवं वास्तविक मजदूरी में अन्तर बताइए। वास्तविक मजदूरी के निर्धारक तत्व को समझाइए।
4. अपूर्ण प्रतियोगिता में किस प्रकार मजदूरी निर्धारण होता है ?
5. पूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी निर्धारण समझाइए।
6. श्रम का पूर्ति वक्र पीछे की ओर मुड़ा हुआ क्यों होता है ?
7. श्रम की माँग व्युत्पन्न माँग क्यों होती है ?
8. क्रेता एकाधिकार शोषण को समझाइए।

इकाई 25 रिकार्डो का लगान सिद्धान्त और आर्थिक लगान

इकाई की रूपरेखा

25.0 प्रस्तावना
25.1 उद्देश्य
25.2 रिकार्डो का लगान सिद्धान्त
25.3 विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान
25.4 गहन खेती के अन्तर्गत लगान
25.5 रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचनाएँ
25.6 आर्थिक लगान या आधुनिक लगान सिद्धान्त
25.7 लगान के आधुनिक सिद्धान्त की आलोचनाएँ
25.8 सांराश
25.9 शब्दावली
25.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
25.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
25.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
25.13 निबन्धात्मक प्रश्न

25.0 प्रस्तावना

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त को 'आर्थिक लगान का सिद्धान्त' भी कहा जाता है। रिकार्डो के पहले प्रकृतिवादियों का विचार था कि, ''लगान प्रकृति की उदारता का परिणाम होता है।'' उनका विचार था कि चूँकि प्रकृति बहुत दयालु है इसलिए किसान को उसकी लागत से अधिक मूल्य का अनाज प्राप्त होता है। यह आधिक्य ही लगान होता है। इसके विपरीत, डेविड रिकार्डो का विचार था कि 'लगान प्रकृति की कंजूसीपन एवं सीमितता के कारण प्राप्त होता है'। चूँकि अच्छी किस्म की उपजाऊ भूमि की कमी होती हैं, इसलिए किसान बाध्य होकर कम उपजाऊ या घटिया किस्म की भूमि पर खेती करता है। जैसे ही वह कम उपजाऊ भूमि पर खेती करता है वैसे ही उसे अधिक उपजाऊ भूमि से लगान मिल ना शुरू हो जाता हैं। अतः रिकार्डो के अनुसार, -''ऊँचा लगान प्रकृति की उदारता के कारण नहीं बल्कि उसकी कंजूसीपन के कारण उत्पन्न होता है।''

25.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- अल्पकालिक विशिष्टता प्राप्त उत्पादन के सभी साधनों के वास्तविक आय तथा हस्तान्तरण आय के अन्तर द्वारा लगान या अधिशेष की जानकारी प्राप्त करना।
- बदलते हस्तान्तरण आय के साथ-साथ परिवर्तित लगान को ज्ञात करना।

25.2 रिकार्डो के लगान सिद्धान्त

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि भूमि की मौलिक और अविनाशी शक्तियों द्वारा लगान किस भाँति व्युत्पन्न होता हैं। अर्थात् विभिन्न प्रकार के भूमि के टुकडे जिन पर कृषि का कार्य किया जा रहा है, उन सबका क्षेत्रफल समान होने से भूमियों से अतिरिक्त लगान प्राप्त होता है इसके अतिरिक्त यह पता लगाना कि विस्तृत खेती में किस प्रकार लगान उदय होता है। यह तो सभी जानते हैं कि उत्पादकता की माँग बढ़ने पर जैसे-जैसे उपजाऊ भूमि पर कृषि विस्तार होता है, तैसे-तैसे अच्छी भूमियों पर उत्पत्ति की बचत बढ़नें लगता है या जैसे-जैसे खेती की सीमा विस्तार होता है, वैसे-वैसे लगान में वृद्धि होती है।

रिकार्डो के अनुसार लगान की परिभाषा -''लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमि के मालिक को भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के उपयोग के लिए दिया जाता है।''

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त का स्पष्टीकरण-रिकार्डो का भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों से अभिप्राय भूमि की उपजाऊपन से था। भूमि का यह उपजाऊपन कुछ सीमा तक अर्जित और कुछ

सीमा तक प्राकृतिक होता है। व्यक्ति भूमि में सुधार करके एवं रासायनिक खाद एवं कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करके भूमि के उपजाऊपन को बढ़ा सकता है, किन्तु रिकार्डो के अनुसार अनाज के उत्पादन के उस भाग को लगान कहा जाएगा जो प्रकृति की ओर से प्राप्त उपजाऊपन के कारण प्राप्त होता है और जिसे किसान लगान के रूप में भूमिपति को देता है।

लगान एक भेदात्मक बचत है -रिकार्डो के अनुसार लगान एक भेदात्मक बचत है। भूमि के सभी टुकड़े उपजाऊपन की दृष्टि से एक समान नहीं होते हैं। रिकार्डो ने अधिक उपजाऊ भूमि को 'अधिसीमान्त भूमि' कहा है जबकि कम उपजाऊ भूमि को सीमान्त भूमि। रिकार्डो का विचार था कि यदि दोनों प्रकार की भूमि पर समान मात्रा में श्रम एवं पूँजी लगाई जाती है तो अधिसीमान्त भूमि में सीमान्त भूमि की तुलना में अधिक उत्पादन प्राप्त होगा। सीमान्त भूमि की उपज की तुलना में जो अधिक उत्पादन प्राप्त होगा वही उस अधिसीमान्त भूमि का लगान कहलाएगा। सीमान्त भूमि लगान -रहित भूमि होगी। इससे कोई बचत प्राप्त नहीं होगी। इससे तो केवल लागत की प्राप्ति ही हो सकेगी। इसलिए रिकार्डो ने लगान को ''भेदात्मक बचत'' कहा है।

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जाता है-

(1) विस्तृत खेती के अन्तर्गत रिकार्डो का लगान सिद्धान्त।

(2) गहन खेती के अन्तर्गत रिकार्डो का लगान सिद्धान्त।

25.3 (1) विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान -विस्तृत खेती का अर्थ होता हैं, उत्पादन की वह विधि जिसके अन्तर्गत अनाज के उत्पादन को बढ़ाने के लिए अधिक भूमि में खेती की जाती है। विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान के निर्धारण के लिए रिकार्डो ने एक ऐतिहासिक उदाहारण दिया है। उन्होंने एक ऐसे देश की कल्पना की है जहाँ कोई व्यक्ति निवास नहीं करता है। भूमि बेकार पड़ी है। इस निर्जन टापू में देश की भूमि को उसके उपजाऊपन के आधार पर उन्होंने चार वर्गों में विभाजित किया है- प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी, तृतीय श्रेणी और चतुर्थ श्रेणी। अब रिकार्डो यह कल्पना करता है कि इस देश में लोगों का पहला जत्था पहुँचता है। चूँकि उस स्थान में पर्याप्त भूमि है इसलिए लोग जीविका के लिए खेती करेंगे। मानव स्वभाव के कारण वे पहले वे सबसे अधिक

उपजाऊ भूमि, अर्थात् प्रथम श्रेणी की भूमि पर खेती करेंगे। जब तक वे प्रथम श्रेणी की

भूमि पर खेती करते रहेंगे, आर्थिक लगान उत्पन्न नहीं होगा। इसका कारण यह है कि अभी प्रथम श्रेणी की भूमि ही अधिसीमान्त एवं सीमान्त भूमि दोनों हैं। अतः इस भूमि से कोई बचत प्राप्त नहीं होगी।

मान लीजिए अब उस देश में लोगों का दूसरा जत्था (रहने) के लिए पहुँचता है अथवा उस देश की जनसंख्या बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में खाद्यान्न की माँग बढ़ जाएगी और अनाज का मूल्य बढ़ने लगेगा । अतः लोग अपनी खाद्यान्न की आवश्यकता को पूरा करने के लिए द्वितीय श्रेणी की भूमि

पर खेती करना शुरू कर देंगे। खाद्यान्न के मूल्य बढ़ जाने से अब द्वितीय श्रेणी की भूमि से उत्पादन लागत की वसूली हो जाएगी। यह द्वितीय श्रेणी की भूमि अब सीमान्त भूमि हो जाएगी और प्रथम श्रेणी की अधिसीमान्त भूमि से द्वितीय श्रेणी की सीमान्त भूमि की तुलना में जो अधिक उत्पादन प्राप्त होगा, वही प्रथम श्रेणी की भूमि का लगान होगा।

इसी प्रकार से जब देश में लोगों का तीसरा और चौथा जत्था आएगा तो जनसंख्या के बढ़ने के कारण खाद्यान्न की माँग बढ़ेगी। खाद्यान्न की माँग बढ़ने से अनाज का मूल्य बढ़ेगा। इसके परिणामस्वरूप लोग तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी की भूमि पर खेती करेंगे। चतुर्थ श्रेणी की भूमि सीमान्त भूमि हो जाएगी तथा प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी की भूमियाँ अधिसीमान्त भूमि। इन भूमियों से चतुर्थ श्रेणी की भूमि की तुलना में जो अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त होगा वही इन भूमियों का लगान कहलाएगा।

बाजार में अनाज का मूल्य सीमान्त भूमि की उत्पादन लागत के द्वारा निर्धारित होता है तथा बाजार में सभी भूमियों का अनाज एक ही कीमत पर बेचा जाता है। अतः अधिसीमान्त भूमियों के अनाज को बेचने से जो बचत प्राप्त होगी, इसी बचत को रिकार्डो ने लगान कहा है। फैलनर के शब्दों में, ''अधिसीमान्त भूमियों की उत्पादन लागत तथा अनाजों के बिक्री से प्राप्त कीमत का अन्तर ही रिकार्डो का लगान है।''

तालिका द्वारा स्पष्टीकरण-रिकार्डो के लगान सिद्धान्त को तालिका 25.1 में उत्पादन की

मात्रा, द्रव्य तथा दोनों रूपों में दिखाया गया है:-

तालिका 25.1

श्रम एवं पूँजी की इकाइयाँ	गेहूँ का उत्पादन (क्विंटलमें)	कुल लागत (रूपये में) (क्विंटल में)	बाजार मूल्य (प्रतिक्विंटल में)	लगान (क्विंटल में)	लगान (द्रव्य में)
प्रथम श्रेणी	20	2500	300 रू0	(20-5) = 15	15 x 300 = 450 रू0
द्वितीय श्रेणी	15	1500	300 रू0	(15-5) = 10	10 x 300 = 3000 रू
तृतीय श्रेणी	10	1500	300 रू0	(10-5) = 5	05x300=1500रू0
चतुर्थ श्रेणी (सीमान्त इकाई लगान रहित)	5	1500	300 रू0	(5-5) = 0	1500-1500=0रू0

(1) तालिका से स्पष्ट है कि समान मात्रा में श्रम एवं पूँजी का प्रयोग करने से प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी की भूमियों से क्रमशः 20, 15, 10 एवं 5 क्विंटल गेहूँ का उत्पादन प्राप्त हो रहा है।

(2) चतुर्थ श्रेणी की भूमि सीमान्त भूमि है। इससे कोई बचत प्राप्त नहीं होती है। इससे केवल उत्पादन लागत की प्राप्ति ही होती है। अतः यह लगान रहित भूमि है।

(3) प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी की भूमियाँ अधिसीमान्त भूमि हैं। इसे क्रमशः 15, 10, एवं 5 क्विंटल गेहूँ लगान के रूप में प्राप्त हो रहा है।

(4) चूँकि अनाज का मूल्य सीमान्त भूमि के उत्पादन लागत के द्वारा निर्धारित होता है। अतः बाजार में 5 क्विंटल गेहूँ की लागत 1,500 रु0 होने के कारण प्रति क्विंटल मूल्य 300 रु0 निर्धारित होगा।

(5) सभी श्रेणी की भूमियों का अनाज 300 रु0 प्रति क्विंटल मूल्य के हिसाब से बेचा जाएगा। अतः इन तीनों भूमियों का अनाज क्रमशः 6,000 रु0, 4,500 रु0, 3,000 रु0, एवं 1,500 रु0 मे बेचा जाएगा।

(6) प्रत्येक भूमि में गेहूँ की उत्पादन लागत 1,500 रु0 है। अतः प्रथम श्रेणी की भूमि की 4,500 रु0, द्वितीय श्रेणी की भूमि को 3,000 रु0 तथा तृतीय श्रेणी की भूमि को 1,500 रु0 के बराबर लगान प्राप्त होगा।

विस्तृत खेती के अन्तर्गत इस लागान सिद्धान्त को रेखाचित्र की सहायता से भी स्पष्ट किया जा सकता है-

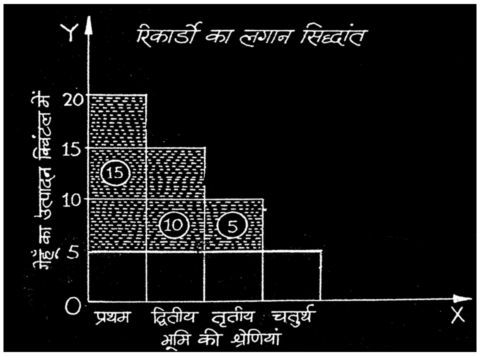

चित्र 25.1

रेखाचित्र में OX - अक्ष पर भूमि की किस्मों तथा OY- अक्ष पर उनसे प्राप्त उत्पादन को दिखाया गया है-

(i) चतुर्थ श्रेणी की भूमि सीमान्त भूमि है। अतः यह लागानरहित भूमि है।
(ii) चूँकि सभी भूमियों में उत्पादन लागत एक समान है, अतः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी से प्राप्त लगान को छायांकित क्षेत्र रूप में दिखाया गया है।
(iii) चित्र से स्पष्ट है कि प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी की भूमियों में लगान क्रमशः 15, 10 एवं 5 क्विंटल है।

25.4 (4) गहन खेती के अन्तर्गत लगान

खाद्यान्न की बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए जब खेती योग्य भूमि के क्षेत्रफल को बढ़ाना सम्भव नहीं होता है तब गहरी खेती का सहारा लिया जाता है। इसके अन्तर्गत जोती जाने वाली भूमि पर श्रम एवं पूँजी की अधिक इकाइयाँ लगाकर उपज को बढ़ाने का प्रयास किया जाता है।

रिकार्डो का लगान सिद्धान्त गहरी खेती के अन्तर्गत भी लगान होता है। उनके अनुसार जब किसान भूमि के एक ही टुकड़े पर श्रक एवं पूँजी की अनेक इकाइयों का प्रयोग करता है तो उत्पादन में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने के कारण उन श्रम एवं पूँजी की इकाइयों का सीमान्त उत्पादन क्रमशः घटने लगता है। इसके अन्तर्गत एक सीमा ऐसी आती है जहाँ श्रम एवं पूँजी की एक अतिरिक्त इकाई लगाने से जो सीमान्त उत्पादन प्राप्त होता है, उसका मूल्य इन साधनों की लागत के बराबर हो जाता है। श्रम एवं पूँजी की इकाइयों को ''सीमान्त मात्रा'' कहा जाता है। इससे पहले के श्रम एवं पूँजी की इकाइयों को ''अधिसीमान्त मात्राएँ'' कहा जाता है। चूँकि अधिसीमान्त मात्राओं की सीमान्त उत्पादकता सीमान्त मात्रा की सीमान्त उत्पादकता से अधिक होती है, अतः इन दोनों के उपज का अन्तर ही अधिसीमान्त मात्राओं का लगान कहलाता है।

तालिका द्वारा स्पष्टीकरण-रिकार्डो के लगान सिद्धान्त को तालिका 25.2 से स्पष्ट किया गया है-

(1) तालिका में श्रम एवं पूँजी की चौथी मात्रा सीमान्त मात्रा है। इससे प्राप्त उपज का मूल्य, उत्पादन लागत के बराबर है। अतः इससे कोई बचत प्राप्त नहीं होती है।

(2) श्रम एवं पूँजी की प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय इकाइयाँ अधिसीमान्त मात्राएँ हैं। इनके उपयोग से किसान को क्रमशः 15, 10 एवं 5 क्विंटल अनाज के रूप में प्राप्त हो रहा है।

तालिका 25.2 रिकार्डो के लगान सिद्धान्त का स्पष्टीकरण

श्रम एवं श्रेणियाँ	गेहूँ का उत्पादन (क्विंटलमें)	कुल लागत (रूपये में)	मूल्य (प्रतिक्विंटल)	लगान (क्विंटल में)	लगान (द्रव्य में)
प्रथम श्रेणी	20	1500	300 रू0	(20−5) = 15	6000 −1500 = 4500
द्वितीय श्रेणी	15	1500	300 रू0	(15−5) = 10	4500 −1500 = 3000
तृतीय श्रेणी	10	1500	300 रू0	(10−5) = 5	3500 −1500 = 1500
चतुर्थ श्रेणी (सीमान्तइकाई लगान रहित)	5	1500	300 रू0	(5−5) = 0	1500 −1500 = 00

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण-गहरी खेती के अन्तर्गत लगान को रेखाचित्र 25.2 से भी समझाया जा सकता है-

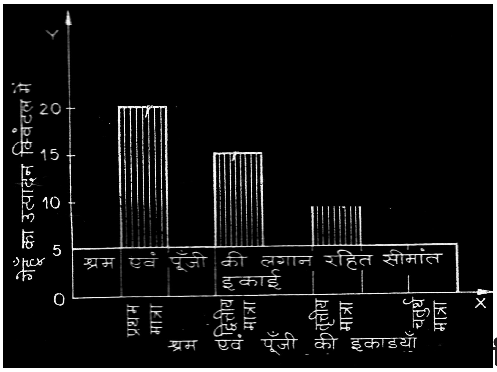

चित्र 25.2

(1) रेखा चित्र में OXअक्ष में श्रम एवं पूँजी की इकाइयों को दिखाया गया है।

(2) OY अक्ष पर उत्पादन को दिखाया गया है।

(3) श्रम एवं पूँजी की चौथी इकाई सीमान्त मात्रा है, जबकि प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय मात्राएँ अधिसीमान्त मात्राएँ हैं।

(4) प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय अधिसीमान्त मात्राओं से क्रमशः 15, 10 एवं 5 क्विंटल अनाज लगान के रूप में प्राप्त हो रहा है।

लगान एवं भूमि की स्थिति - रिकार्डो के लगान सिद्धान्त पर भूमि की स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। वह भूमि जो बाजार के निकट अथवा शहर के पास होती है, दूर स्थिति भूमि की तुलना में अधिक लगान प्रदान करती है। भूमि की उपजाऊपन में भिन्नता न होने पर भी अनाज की बिक्री के लिए मण्डी तक ले जाने का यातायात व्यय, लगान को प्रभावित करता है। भूमि का जो टुकड़ा मण्डी के पास होता है, वहाँ से मण्डी तक अनाज लाने का यातायात व्यय कम आता है। इसके विपरीत, दूर स्थित भूमि से अनाज को मण्डी तक लाने का यातायात व्यय अधिक आता है। चूँकि यातायात व्यय, उत्पादन लागत का एक भाग होता है, अतः दोनों भूमि के टुकड़ों के उपजाऊपन समान होने पर भी बाजार के निकट वाली भूमि को, दूर स्थित भूमि की तुलना में बचत प्राप्त होती है। रिकार्डो के अनुसार यह बचत ही मण्डी के निकट की भूमि का आर्थिक लगान होता है।

उदाहरण के लिए, मान लीजिए भूमि के दो टुकड़े ‘अ’ एवं ‘ब’ हैं। दोनों की उपजाऊपन एक समान है, किन्तु ‘अ’ भूमि बाजार या शहर के निकट स्थित है जबकि ‘ब’ भूमि बाजार से बहुत दूर स्थित है। ऐसी स्थिति में दोनों भूमियों से उत्पादित अनाज की बिक्री के लिए लाने में यातायात लागत भिन्न-भिन्न आएगी। मान लीजिए ‘अ’ भूमि से अनाज को मण्डी तक लाने की यातायात लागत 100 रुपये हे जबकि ‘ब’ भूमि से 200 रुपया। मान लीजिए कि दोनों भूमि के उत्पादन लागत को

निकाल ने के बाद 200-200 रु0 की बजत प्राप्त होती है। चूँकि यातायात व्यय, उत्पादन लागत का एक भाग होता है, अतः 'ब' भूमि से कोई बचत प्राप्त नहीं होगी, किन्तु 'अ' भूमि को (200-100) की बचत प्राप्त होगा। 'अ' भूमि को प्राप्त होने वाली यह बचत उसका आर्थिक लगान होगा।

लगान कीमत को नहीं प्रभावित करता है -रिकार्डो के अनुसार लगान अनाज के मूल्य को प्रभावित नहीं करता, बल्कि यह अनाज के मूल्य से प्रभावित होता है। इसका कारण यह है कि सीमान्त भूमि लगान रहित होती है। इस भूमि के उत्पादन के मूल्य से केवल उत्पादन लागत की प्राप्ति होती है। अतः अनाज का मूल्य सीमान्त भूमि के उत्पादन लागत के द्वारा निर्धारित होता है। चूँकि लगान , लागत के ऊ पर एक बचत, अतः यह मूल्य को प्रभावित नहीं करता, बल्कि मूल्य से प्रभावित होता है।

लगान एक अनुपार्जित आय है -रिकार्डो के अनुसार लगान के लिए भूमिपति को कोई कार्य नहीं करना पड़ता है। खेती तो किसान करता है जो अपना श्रम एवं पूँजी लगाता है। उसे केवल उत्पादन लागत ही प्राप्त होती है। खेती से जो बचत प्राप्त होती है वह भूमिपति को लगान के रूप में दे दिया जाता है। अतः रिकार्डो के अनुसार लगान एक अनुपार्जित आय है।

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की मान्यताएँ - रिकार्डो का लगान सिद्धान्त निम्नलिखित मानयताओं पर आधारित है-

(1) यह सिद्धान्त दीर्घकाल में लागू होता है।

(2) यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है।

(3) लगान केवल भूमि से ही प्राप्त होता है, क्योंकि इसकी पूर्तिं सीमित होती है।

(4) भूमि में मौलिक एवं अविनाशी शक्ति पाई जाती है। भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्ति से रिकार्डो का अर्थ भूमि के उपजाऊपन से था।

(5) भूमि के उपजाऊपन में भिन्नता होती है।

(6) प्रथम श्रेणी अर्थात् सबसे अधिक उपजाऊ भूमि पर पहले खेती की जाती है।

(7) सीमान्त भूमि लगान रहित होती है। इससे केवल उत्पादन लागत ही प्राप्त होती है।

(8) सीमान्त भूमि के उत्पादन लागत के द्वारा ही अनाज का मूल्य निर्धारित होता है।

(9) कृषि के क्षेत्र में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

(10) जनसंख्या तीव्रगति से बढ़ती है।

25.5 रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचनाएँ

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं-

(1) भूमि में कोई मौलिक एवं अविनाशी शक्तियाँ नहीं पाई जाती है -आलोचकों के अनुसार भूमि में कोई मौलिक एवं अविनाशी शक्तियाँ नहीं पाई जाती हैं। आज के अणु एवं हाइड्रोजन बम के युग में भूमि के उपजाऊपन को अविनाशी कहना गलत है। साथ ही भूमि का उपजाऊपन रासायनिक खादों एवं कम्पोस्ट खाद का उपयोग करके प्राप्त की जाती है एवं बढ़ाई जाती है। अतः भूमि का उपजाऊपन मौलिक एवं अविनाशी नहीं होता है।

(2) भूमि को जोतने का क्रम सही नहीं -रिकार्डो के अनुसार लोग सबसे अधिक उपजाऊ भूमि पर पहले खेती करते हैं, इसके बाद इससे कम उपजाऊ भूमि पर खेती की जाती है। किन्तु अमेरिका के अर्थशास्त्री हेनरी कैरे ने इसे ऐतिहासिक दृष्टि से गलत बताया है। वास्तव में लोग उस भूमि पर पहले खेती करते हैं जो सुविधाजनक स्थिति में तथा शहर अथवा मण्डी के निकट होती है।

(3) भूमि की उत्पादकता को अलग से ज्ञात नहीं किया जा सकता -आलोचकों का विचार है कि भूमि से प्राप्त उपज, भूमि की उपजाऊपन, खेती में लगाई गई पूँजी तथा श्रम, सभी का संयुक्त परिणाम होता है। ऐसी स्थिति में भूमि की उत्पादकता को अलग से प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

(4) अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित -रिकार्डो का लगान सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता एवं दीर्घकाल की अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। वास्तव में, भूमिपति एवं किसानों के बीच पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पाई जाती है। साथ ही दीर्घकाल में हमारी कोई समस्या नहीं होती है, क्योंकि दीर्घकाल में हम सभी मर जाते हैं। यह सिद्धान्त अल्पकाल की व्याख्या नहीं करता है।

(5) भूमि की सीमितता ही लगान उत्पन्न होने का मूल कारण है -रिकार्डो का विचार है कि लगान उत्पन्न होने का प्रमुख कारण भूमि के उपजाऊपन में भिन्नता होना है, किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों का विचार है कि लगान उत्पन्न होने का प्रमुख कारण भूमि की पूर्ति का इसकी माँग की तुलना में सीमित होना है। अतः अनाज के लिए भूमि की माँग बढ़ जाती है और भूमिपति को लगान प्राप्त होता है।

(6) कोई भूमि लगान रहित नहीं होती -रिकार्डो के सीमान्त भूमि को लगान रहित भूमि माना है, किन्तु आलोचकों का विचार है कि वास्तविक संसार में कोई भूमि लगान रहित नहीं होती है।

(7) उत्पत्ति ह्रास नियम को लागू होने से रोका जा सकता है -आलोचकों का विचार है कि लगान उत्पादन लागत का एक भाग है, अतः यह अनाज के मूल्य को प्रभावित करता है।

25.6 (2) आर्थिक लगान या आधुनिक लगान सिद्धान्त

लगान एक बचत के रूप में आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने लगान की व्याख्या रिकार्डो के समान एक बचत के रूप में की है। रिकार्डो ने अधिसीमान्त एवं सीमान्त भूमि के उपज के अन्त को लगान कहा है, किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री लगान को साधन के अवसर लागत के ऊपर एक बचत मानते हैं। अवसर लागत, उत्पादन के किसी साधन को उसके अपने वर्तमान प्रयोग में बनाए रखने के लिए न्यनतम पूर्ति मूल्य होता है। यदि किसी साधन को अपने वर्तमान प्रयोग में बनाए रखना है तो उसे न्यूनतम पूर्ति मूल्य देना होगा अन्यथा वह साधन किसी दूसरे लाभदायक प्रयोग में हस्तान्तरित हो जाएगा। चूँकि भूमि की पूर्ति सीमित होती है इसलिए भूमि को इसकी न्यनतम पूर्ति मूल्य अथवा अवसर लागत से अधिक मूल्य प्राप्त होता है। अवसर लागत अथवा हस्तान्तरण आय के ऊपर इसी बचत को आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने लगान कहा है।

इसे एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लिजिए भूमि के एक टुकड़े से गेहूँ की खेती करने पर 1,000 रु0 की आय होती है। यदि उसी भूमि के एक टुकड़े से गन्ने की खेती की जाय तो 800 रुपये की आय होगी। ऐसी स्थिति में उस भूमि के टुकड़े के लिए 800 रुपये अवसर लागत या न्यूनतम पूर्ति मूल्य है। उस भूमि के टुकड़े पर गेहूँ की खेती करने के लिए कम से कम 800 रुपये न्यूनतम पूर्ति मूल्य देना होगा, किन्तु उस भूमि के टुकड़े पर गेहूँ की खेती करने के लिए 1,000 रु0 का भुगतान किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में उस भूमि के टुकड़े का वर्तमान मूल्य-अवसर लागत (1,000-800) त्र 200 रुपये लगान होगा। इस प्रकार, आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान किसी साधन को उसके वर्तमान उपयोग में बनाए रखने के लिए अवसर लागत के ऊपर एक बचत है। **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** ने इसकी परिभाषा निम्न प्रकार से की है-

‘‘लगान के विचार का सार वह बचत है जो कि एक साध की एक इकाई उस न्यून्तम मूल्य के ऊपर प्राप्त करती है जो कि साधन को अपना कार्य करते रहने के लिए आवश्यक है।’’

आधुनिक लगान सिद्धान्त का आधार -लगान के आधुनिक सिद्धान्त का आधार, साधनों की विशिष्टता है। इस सम्बन्ध में **ऑस्ट्रियन अर्थशास्त्री वॉन वीजर** ने उत्पादन के साधनों को दो वर्गों में बाँटा है-

(1) पूर्णतया विशिष्ट साधन

(2) पूर्णतया अविशिष्ट साधन

पूर्णतया विशिष्ट साधन वे हैं जिनका केवल एक ही प्रयोग किया जा सकता है। इन साधनों का किसी दूसरे प्रयोग में उपयोग नहीं किया जा सकता। अतः विशिष्ट साधनों की अवसर लागत शून्य होती है। इसके परिणामस्वरूप विशिष्ट साधनों के लिए दिया जाने वाला सम्पूर्ण मूल्य इसका लगान होता है। इसके विपरीत, अविशिष्ट साधन वे होते हैं जिनका कई प्रकार से उपयोग किया जा सकता है। अतः ऐसे साधनों के लिए दिए जाने वाले मूल्य के बराबर अवसर लागत अन्य प्रयोगों में भी प्राप्त हो सकता है। चूँकि इन साधनों को अपने वर्तमान मूल्य के उसके अवसर लागत के ऊपर कोई बचत प्राप्त नहीं होती है, इसलिए अविशिष्ट साधनों को कोई लगान प्राप्त नहीं होता है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है।

उदाहरण-मान लीजिए, एक बूढ़े नौकर को उसका मालिक 200 रुपये प्रतिमाह वेतन देता है। यदि वह अपने नौकर को काम से अलग कर देता है तो उसे अन्य जगहों पर नौकरी नहीं मिल सकती, क्योंकि वह अत्यन्त बूढ़ा है। ऐसी स्थिति में वह बूढ़ा नौकर पूर्णतया विशिष्ट साधन कहलाएगा और उसको मिल ने वाला वेतन रुपये 200 उसका लगान कहलाएगा। इसके विपरीत, मान लीजिए, एक इंजीनियर भिलाई इस्पात उद्योग में कार्य करता है और उसे 10,000 रुपये मासिक वेतन मिल ता है। यदि उसे भिलाई इस्पात कारखाने की नौकरी से अलग कर दिया जाता है तो उसे एलाइड स्टील प्लान्ट में 10,000 रुपये मासिक वेतन पर ही नौकरी मिल सकती है। ऐसी स्थिति में वह इंजीनियर पूर्णतः अविशिष्ट साधन कहलाएगा। चूँकि उसे अवसर लागत के ऊपर कोई बचत प्राप्त नहीं हो पा रही है, अतः उसे कोई लगान प्राप्त नहीं होगा।

सामान्यतया उत्पादन का कोई भी साधन न तो पूर्णतः विशिष्ट होता है और न ही पूर्णतः अविशिष्ट। इसके विपरीत, वह आंशिक रूप से विशिष्ट एवं आंशिक रूप से अविशिष्ट होता है। साधन जिस अनुपात में विशिष्ट होगा, उसी अनुपात में उसे लगान भी प्राप्त होगा। उदाहरण के लिए मान लीजिए एक एकड़ भूमि पर यदि कपास की खेती की जाती है तो किसान को 1,000 रुपये की आय होती है। यदि उसी भूमि पर गेहूँ की खेती की जाती है तो किसान को 800 रु0 की आय प्राप्त होगी। अतः गेहूँ की खेती से प्राप्त होने वाली आय 800 रु0 उस भूमि के लिए अवसर लागत होगी, तथा उस भूमि पर कपास की ही खेती करने से अतिरिक्त आय 1000 - 800 त्र 200 रुपये होगी, वही उस भूमि का लगान कहलाएगा।

अतः आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान साधन के अवसर के ऊपर उसकी वर्तमान आय का आधिक्य या बचत है।

लगान = वास्तविक आय - अवसर लागत

इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य बात है कि विशिष्टता एक गुण है जिसे कोई भी साधन प्राप्त कर सकता है। सामान्यतया उत्पादन का प्रत्येक साधन अल्पकाल में विशिष्ट होता है, किन्तु दीर्घकाल में

उसमें अविशिष्टता का गुण आ जाता है। यही कारण है कि उत्पादन के किसी भी साधन को अल्पकाल में विशिष्टता के गुण होने के कारण लगान प्राप्त हो सकता है।

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण-लगान के आधुनिक सिद्धान्त को निम्न रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट किया सकता है-

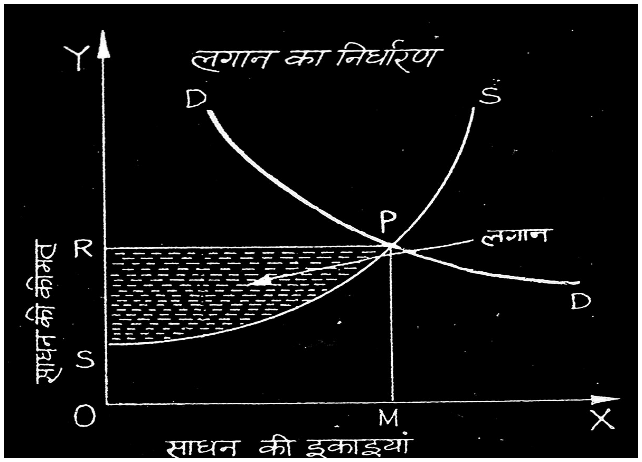

चित्र 25.3

(1) रेखाचित्र में SS साधन की पूर्ति रेखा है। साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार से कम होने के कारण यह रेखा SS के रूप में नीचे से ऊपर की ओर बढ़ती हुई रेखा है।

(2) सीमान्त उत्पादकता वक्र के अनुसार DD साधन की माँग वक्र है।

(3) यह माँग वक्र SS पूर्ति वक्र को P बिन्दु पर काट रहा है। अत P सन्तुलन बिन्दु है। इस साम्य बिन्दु पर साधन की कीमत PM अथवा OR के बराबर निर्धारित होगी।

(4) PM कीमत पर साधन की OM मात्रा प्रयोग में लाई जाएगी। अतः साधन की वर्तमान कीमत (PM)पर उसकी वास्तविक आय OM x PM = ORPM क्षेत्रफल के बराबर होगी।

(5) OS साधन की न्यूनतम पूर्ति कीमत है। इससे कम कीमत पर साधन की कोई भी इकाई कार्य नहीं करेगी। साधन की न्यनतम कीमत OS से बढ़ने पर इसकी पूर्तिं भी बढ़ती जाएगी। अतः SS पूर्ति वक्र साधन की अवसर लागत वक्र है।

(6) OM इकाइयों का उपयोग करने पर साधन की वर्तमान आय ORPM के बराबर है जबकि उसकी न्यनतम पूर्तिं कीमत OSPM है। अतः OM साधन की इकाइयों के प्रयोग करने से वर्तमान आय अवस लागत (ORPM – OSPM) = RSP के बराबर लगान प्राप्त होगा।

25.7 लगान के आधुनिक सिद्धान्त की आलोचनाएँ

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि लगान के आधुनिक सिद्धान्त में निम्न विशेषताएँ होती हैं-

(1) उत्पादन का प्रत्येक साधन लगान प्राप्त कर सकता है। यह केवल भूमि से ही सम्बन्धित नहीं होता है।

(2) लगान साधन की वर्तमान आय में उसकी अवसर लागत के ऊपर बचत है।

(3) लगान उत्पन्न होने का कारण साधन में विशिष्टता का गुण होना है। अतः लगान विशिष्टता का पुरस्कार है।

(4) साधन के अविशिष्ट होने अथवा साधन की पूर्तिं लोचदार होने पर लगान प्राप्त नहीं होता है।

(5) साधन के विशिष्ट होने अथवा पूर्तिं बेलोचदार होने पर साधन की सम्पूर्ण वर्तमान आय उसका एक भाग ही लगान होता है। साधन जिस अंश तक विशिष्ट होता है उसी अंश तक उसके वर्तमान आय से लगान प्राप्त होता है।

इस प्रकार लगान का आधुनिक सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त है जो उत्पादन के सभी साधनों पर लागू होता है।

25.8 सांराश

रिकार्डो के अनुसार ''लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमि के स्वामी को भूमि की मूल तथा अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिए दिया जाता है।''

लगान के सम्बन्ध में रिकार्डो की प्रमुख बातें निम्नवत् हैं-

रिकार्डो ने स्पष्ट किया है कि लगान प्रकृति की उदारता के कारण नहीं, बल्कि उसकी कृपणता या कंजूसी के कारण मिल ता है। भूमियाँ समान उपजाऊ नहीं होती है। उपजाऊ भूमि की मात्रा सीमित होती है। जब दोनों खेतों के समान लागत लगाई जाती है, तो उपजाऊ खेत से अधिक और कम उपजाऊ खेत से कम उपज प्राप्त होती है। इस प्रकार उपजाऊ खेत से एक प्रकार का आधिक्य प्राप्त होता है और उस आधिक्य को उस खेत का लगान कहा जाता है। अतः लगान प्रकृति की कृपणता तथा सीमितता के ही कारण उत्पन्न होता है, न कि उदारता के कारण।

रिकार्डो का कहना है कि ''लगान एक भेदात्मक बचत'' है ही इसके अतिरिक्त लगान पर भूमि की स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। बाजार के पास वाली कम उपजाऊ भूमि बाजार से दूर वाली अधिक उपजाऊ भूमि से, अधिक महत्व की होती है। रिकार्डो का लगान सिद्धान्त निम्नांकित दो सन्दर्भों में अध्ययन किया जाता है-

(1) विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान

(2) गहन खेती के अन्तर्गत लगान

25.9 शब्दावली

आर्थिक लगान - आर्थिक लगान को शुद्ध लगान भी कहा जाता है, क्योंकि यह केवल भूमि के प्रयोग के बदले में दिया जाता है। रिकार्डो के अनुसार, आर्थिक लगान श्रेष्ठ और सीमान्त भूमि की उपज के अन्तर के बराबर होता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, आर्थिक लगान एक साधन की अवसर लागत के ऊपर बचत है।

ठेके का लगान - ठेके के लगान को दूसरे शब्दों मं प्रसंविदा लगान भी कहते हैं। यह वह लगान है जो भू-पति और काश्तकार के बीच समझौते के द्वारा तय होता है। ठेके का लगान अनेक परिस्थितियों से प्रभावित होकर आर्थिक लगान से अधिक, कम तथा उसके बराबर हो सकता है। दूसरे शब्दों में, ठेके का लगान दोनों पक्षों की सौदा करने की शक्ति पर निर्भर करता है।

25.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लगान की सर्वप्रथम एक स्पष्ट व सन्तोषजनक व्याख्या किसने दी -

(a) एडम स्मिथ (b) मार्शल (c) रिकार्डो (d) जे0एस0 मिल

2. रिकार्डो के अनुसार कौन सा कथन उचित है -

(a) लगान कीमतों में शामिल नहीं होता (b) लगान एक अनार्जित आय है

(c) लगान एक आधिक्य है (d) इनमें से तीनों कथन उचित है

3. आधुनिक लगान सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं-

(a) जे0 एम0 कीन्स (b) रोबिन्सन (c) मार्शल (d) पूर्व सीमान्त भूमि

4. सबसे निकट कोटि की भूमि को क्या कहा जाता है-

(a) भूमि (b) सीमान्त भूमि (c) अधिसीमान्त भूमि (d) पूर्व सीमान्त भूमि

5. ''अनाज इसलिये महंगा नहीं है कि लगान दिया जाता है वरन् लगान इसलिए दिया जाता है कि क्योंकि अनाज महंगा है''। यह कथन दिया है-

(a) एडम स्मिथ ने (b) जे0 एस0 मिल ने (c) रिकार्डों ने (d) मार्शल ने

6. आभास लगान क्या है -

(a) मजदूर को मिल ने वाला अतिरेक (b) भूमि को मिल ने वाला अतिरेक

(c) पूजीपतियों को मिल ने वाला अतिरेक

(d) वह अतिरेक जो अल्पकाल में मिल ता है और दीर्घकाल में समाप्त हो जाता है।

7. पूर्ण विशिष्ट साधनों में क्या सत्य है-

(a) वास्तविक आय = 0 (a) वास्तविक आय > हस्तान्तरण आय

(a) वास्तविक आय < हस्तान्तरण आय (a) वास्तविक आय = हस्तान्तरण आय

उत्तर-1. (c), 2. (d), 3. (b), 4. (b), 5. (c), 6. (d), 7. (d)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लगान किसे कहते हैं ?

2. आर्थिक लगान की व्याख्या कीजिए।

3. रिकार्डों के लगान सिद्धान्त का कथन लिखिए।

4. भेदात्मक लगान किसे कहते हैं ?

5. पूर्णतया विशिष्ट साधन किसे कहा जाता है ?

6. स्थानान्तरण आय किसे कहते हैं ?

7. पूर्णतया लोचदार पूर्तिं की दशा में कोई लगान उत्पन्न क्यों नहीं होता ?

25.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्रा, जे0पी0 (2009): उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त -मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन,वाराणसी।
2. सिन्हा, वी0सी0 (1990): उन्नत आर्थिक सिद्धान्त, स्टूडेन्ट फ्रेन्डस इलाहाबाद।
3. आहूजा, एम0एल0 (2006): उच्च आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक विश्लेषण, चन्द्र प्रकाशन, दिल्ली।
4. लाल, एस0 एन0 (2005): उच्च आर्थिक सिद्धान्त, शिवा पब्लिशिंग हाऊस -इलाहाबाद।

5. लाल, एस0 एन0 (2008): माइक्रों इकोनामिक्स:शिवा पब्लिशिंगहाऊस - इलाहाबाद।
8. जैन, पी0 सी0 (1995): उच्च आर्थिक विश्लेषण, चुग प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. त्रिपाठी, बद्री विशाल (2000): एडवांस इकोनोमिक थ्योरी,किताब महल्, इलाहाबाद।

25.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Mehta,J.K.(1980):EconomicTheory,ChughPublications,Allahabad.
- Jhingan, M.L. (2007) : Advanced Economic Theory, Vrinda Prakashan, New Delhi.
- Seth, M.L. (2007): Micro Economics, L.N. Agrwal Publications, Agra.
- P. Samuelson (1967) : Micro Economic Theory & Policy, Oxford University Press, U.K.
- Dhingra, I.S. (2005) : Advaned Economics Theory New Century Publication. DelhiTripathi, B.B. (2000) : Micro Economics, Kitab Mahal Allahabad

25.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''अनाज का मूल्य इसलिए ऊँचा नहीं होता है कि लगान देना पड़ता है, वरन् लगान इसलिए दिया जाता है कि अनाज का मूल्य ऊँचा होता है।'' व्ख्याख्या कीजिए।

2. रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए।

3. लगान के आधुनिक सिद्धान्त अथवा आर्थिक लगान की पूर्ण रूप से विवेचना कीजिए। क्या यह सिद्धान्त रिकार्डो के लगान -सिद्धान्त के ऊपर सुधार है।

इकाई 26 ब्याज दर के निर्धारण का सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

26.0 प्रस्तावना
26.1 उद्देश्य
26.2 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त
26.3 बचत एवं विनियोग में समानता तथा ब्याज दर का निर्धारण
26.4 ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त
26.5 ब्याज दर की दर का निर्धारण
26.6 कीन्स के सिद्धान्त की प्रतिष्ठित सिद्धान्त से श्रेष्ठता
26.7 ब्याज का उधार देय कोष सिद्धान्त
26.8 सांराश
26.9 शब्दावली
26.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
26.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
26.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
26.13 निबन्धात्मक प्रश्न

26.0 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र में मौद्रिक पूँजी के उपयोग के लिए दिया जाने वाला भुगतान ही ब्याज होता है। ब्याज राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो पूँजी की सेवाओं के बदले पूँजीपति को दिया जाता है। कोई भी ऋणदाता जब मुद्रा उधार देता है तो वह जोखिम उठाने का पुरस्कार होता है। ब्याज के निर्धारण के सिद्धान्त के अन्तर्गत हम ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त, ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त, ब्याज का उधार देय कोष सिद्धान्त का अध्ययन करते हैं।

26.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- ब्याज का तात्पर्य एवं उपयोगिता समझना।
- ऋण योग्य कोष (पूँजी) का मूल्य निर्धारित करना।
- बचत की पूर्ति तथा ब्याज दर में सम्बन्धों की व्याख्या करना।
- बचत तथा निवेश के फलनात्मक सम्बन्धों को समझना।

ब्याज एक व्यापक शब्द है दूसरे अन्तर्गत पूँजी के उपयोग के लिए दिया जाने वाला भुगता, जोखिम का प्रतिफल, व्यवस्था का पुरस्कार एवं आसुविधाओं का पुरस्कार सभी शामिल होता है। चूँकि कोई भी ऋणदाता, ऋणी से उधार दी गई राशि के उद्देश्य हेतु जो कुल आय प्राप्त करता है वह शुद्ध ब्याज नहीं बल्कि कुल ब्याज होता है। लोग ब्याज कमाने हेतु नकदी मुद्रा को तीन उद्देश्यों की पूर्तिं के लिए करता है, लेन देन का उद्देश्य, आकस्मिक व्ययों के पूर्ति के उद्देश्य तथा सट्टा उद्देश्य हेतु मुद्रा अपने पास रखते हैं ताकि भविष्य में अतिरिक्त पूँज ब्याज के रुप में प्राप्त हो।

ब्याज की दर के निर्धारण के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों ने समय-समय पर अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, किन्तु अध्ययन की दृष्टि से निम्नलिखित चार सिद्धान्तों का विशेष महत्व है-

(1) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त
(2) ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त
(3) ब्याज का उधार देय कोष सिद्धान्त
(4) ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त

26.2 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त

यह ब्याज का सबसे पुराना सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन पुराने परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने किया था, इसलिए इसे ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त कहा जाता है। बाद में प्रो0 मार्शल , पीगू, कैसल, वालरस एवं नाइट जैसे अर्थशास्त्रियों ने इसमे सुधार किये।

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण पूँजी की माँग एवं पूँजी के द्वारा होता है। ब्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है, जिस पर पूँजी की माँग एवं पूँजी की पूर्ति एक-दूसरे के बराबर होती है। पूँजी की माँग विनियोजनकर्त्ता अथवा उत्पादकों के द्वारा की जाती है, जबकि पूँजी की पूर्ति बचतकर्त्ताओं के द्वार की जाती है। अतः ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है, जहाँ विनियोजकों की पूँजी की माँग तथा बचतकर्त्ताओं के द्वारा की गयी बचत की पूर्ति एक-दूसरे के बराबर सन्तुलन की स्थिति अथवा साम्य की स्थिति में होती है। इसलिए इसे ब्याज की दर का बचत एवं विनियोग सिद्धान्त भी कहते हैं। ब्याज की दर वह सन्तुलन स्थापित करने वाला घटक है, जो बचत एवं विनियोग की मात्रा को एक-दूसरे के बराबर करता है। इसलिए इसे 'ब्याज का वास्तविक' 'गैर-मौद्रिक सिद्धान्त' भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर के निर्धारण में 'मुद्रा' कोई प्रत्यक्ष भूमिक नहीं निभाती है वास्तव में, ब्याज की दर के निर्धारण में उत्पादकता एवं मितव्ययिता जैसे वास्तविक तत्वों को अत्यधिक महत्व होता है।

(1) पूँजी की माँग अथवा विनियोगअनुसूची-पूँजी की माँग विनियोग कर्त्ताओं अथवा उत्पादकों के द्वारा की जाती है। इन लोगों के द्वारा पूँजी की माँग इसलिए की जाती है, क्योंकि पूँजी में उत्पादकता होती है, किन्तु जैसे-जैसे पूँजी का अधिक मात्रा में उत्पादन में प्रयोग किया जाता है वैसे-वैसे इसकी सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है। इसलिए पूँजी की सीमान्त उत्पादकता वक्र क्रमागत उत्पत्ति ह्रासमान नियम के अनुसार बायें नीचे की ओर गिरता हुआ वक्र होता है। एक फर्म पूँजी की सीमान्त उत्पादकता की तुलना ब्याज की दर से करके यह निर्णय लेती है कि उसे व्यवसाय में कितनी पूँजी लगानी है। सामान्यतया पूँजी की सीमान्त उत्पादकता, ब्याज की दर से अधिक होने पर ही पूँजी का प्रयोग किया जाता है। फर्म व्यवसाय में उस सीमा तक ही पूँजी लगाती है, जहाँ पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं उसकी ब्याज की दर एक-दूसरे के बराबर होती है। सामान्यतया ब्याज की दर एवं पूँजी की माँग में उल्टा सम्बन्ध होता है, अर्थात् ब्याज की दर नीची होने पर पूँजी की माँग अधिक जाती है इसके विपरीत, ब्याज की दर, ऊँची होने पर पूँजी की माँग की जाती है। इस प्रकार फर्म की पूँजी का माँग वक्र दायीं ओर नीचे की ओर गिरता हुआ वक्र होता है।

(2) पूँजी की पूर्ति अथवा बचत अनुसूची-पूँजी की पूर्ति बचतकर्त्ताओ के द्वारा की जाती है। सामान्यतया पूँजी की पूर्ति अनेक तत्त्वों द्वारा निर्धारित होती है जैसे-आय का स्तर, रहन-सहन का स्तर, परिवार के प्रति प्रेम, दूरदर्शिता, राजनीतिक व्यवस्था आदि, किन्तु इन सभी तत्वों के अतिरिक्त

बचत को प्रभावित करने वाला सबसे प्रमुख तत्व ब्याज की दर है। ब्याज की दर जितन अधिक होती है, बचत भी उतनी ही अधिक होती है। इसके विपरीत, ब्याज की दर जितनी कम होती है, बचत भी कम होती है। इस प्रकार ब्याज की दर एवं बचत में सीधा धनात्मक सम्बन्ध होता है। अतः बचत वक्र नीचे से ऊपर की ओर दायें बढ़ता हुआ वक्र होता है।

सामान्यतया बचत करते समय लोग अपने वर्तमान की आवश्यकता की सन्तुष्टि को भविष्य के लिए स्थगित कर देते हैं। अतः बचतकर्त्ता त्याग करता है। बचतकर्त्ता को इस त्याग के लिए ब्याज के रूप में पुरस्कार प्राप्त होना चाहिए। इसलिए बचतकर्त्ता अपने उपभोग के त्याग और ब्याज के रूप में प्राप्त होने वाले पुरस्कार के बीच तुलना करता है। यदि ब्याज के रूप में प्राप्त होने वाला पुरस्कार, बचतकर्त्ता के त्याग से अधिक होता है तभी बचत की पूर्ति बढ़ती है। इसलिए ऊँची ब्याज दर पर बचत की पूर्ति भी अधिक होती है तथा कत ब्याज की दर पर बचत की पूर्ति भी कम होती है।

26.3 बचत एवं विनियोग में समानता तथा ब्याज की दर का निर्धारण

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज की दर बचत एवं विनियोग की समानता के आधार पर निर्धारित होती है। ब्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ पूँजी की कुल माँग एवं पूँजी की कुल पूर्ति दोनों एक-दूसरे के बराबर होती हैं। इस साम्य बिन्दु पर बचत एवं विनियोग एक-दूसरे के बराबर होते हैं।

रेखाचित्र 26.1 में प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अन्तर्गत ब्याज के निर्धारण को दिखाया गया है-

(1) इस रेखाचित्र में II विनियोग वक्र है, जो पूँजी की माँग को बतलाता है।

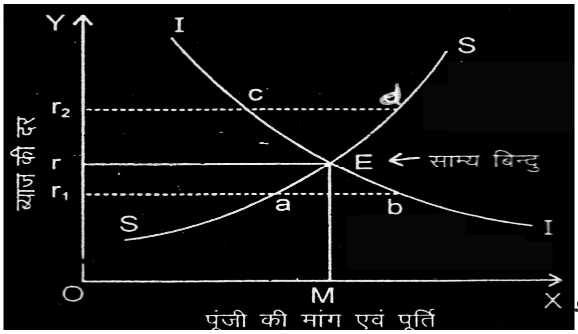

चित्र 26.1

विनियोग वक्र बायें से दायें नीचे की ओर गिरता हुआ चक्र है, जो यह बतलाता है कि ब्याज की दर कम होने पर पूँजी की माँग अधिक होती है तथा ब्याज की दर ऊँची होने पर पूँजी की माँग कम होती है। अतः यह ब्याज की दर एवं पूँजी की माँग में उल्टे सम्बन्ध को बतलाता है।

(2) SS बचत वक्र है, जो पूँजी की पूर्ति को बतलाता है। यह वक्र नीचे से ऊपर की ओर चढ़ता हुआ वक्र है जो यह बतलाता है कि ऊँची ब्याज की दर पर पूँजी की पूर्ति अर्थात् बचत अधिक है ताकि ब्याज की दर कम होने पर पूँजी की पूर्ति अर्थात् बचत भी कम है। इस प्रकार ब्याज की दर एवं बचत में सीधे सम्बन्ध को यह स्पष्ट करता है।

(3) बचत वक्र SS एवं विनियोग वक्र II एक-दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। अतः E साम्य बिन्दु है। इस बिन्दु पर बचत एवं विनियोग एक-दूसरे के बराबर हैं। दूसरे शब्दों में पूँजी की माँग एवं इसकी पूर्ति दानों एक-दूसरे के बराबर OM है। अतः साम्य बिन्दु पर ब्याज की दर Or निर्धारित हागी है।

यदि ब्याज की दर Or_1 कम हो जाती है जैसाकि रेखाचित्र से स्पष्ट है विनियोग के लिए पूँजी की माँग बढ़कर Or_1 हो जाती है, जबकि पूँजी की पूर्ति घटकर r_1a हो जाती है।

ऐसी स्थिति में ब्याज की दर बढ़कर Or हो जायेगी, जहाँ पर पूँजी की माँ एवं पूर्ति एक-दूसरे के बराबर हो जाती हैं। इसी प्रकार से जब ब्याज की दर बढ़कर Or_2 हो जाती है तो विनियोग के लिए पूँजी की माँग घटकर r_2c हो जाती, जबकि बचत के रूप में पूँजी की पूर्ति बढ़कर r_2d हो जाती है। इस प्रकार पूँजी की माँग एवं पूर्ति में असंतुलन हो जाता है। ऐसी स्थिति में ब्याज की दर घटेगी तथा Or ब्याज पर पूँजी की माँग एवं पूर्ति दोनों एक-दूसरे के बराबर हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि Or ब्याज की दर साम्य ब्याज की दर है, जिस पर पूँजी की माँग एवं इसकी पूर्ति बराबर हो जाती है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज की दर Or ही निर्धारित होगी।

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचनाएँ

प्रो0 कीन्स ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के ब्याज-सिद्धान्त की निम्न आधारों पर कटु आलोचना की है-

(1) बचत एवं विनियोग के बीच समानता आय-स्तर में परिवर्तन के आधार पर, न कि ब्याज की दर के कारण-कीन्स के अनुसार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की सबसे महत्वपूर्ण त्रुटि यह है कि इसमें आय के स्तर को दिया हुआ मान लिया गया है और ब्याज की दर को बचत एवं विनियोग के बीच समानता स्थापित करने वाला महत्वपूर्ण तत्व मान लिया है, जोकि उचित नहीं है। आय स्थिर न होकर परिवर्तनशील होता है। चूँकि बचत आय के ऊपर निर्भर होती है न ब्याज की दर पर अतः आय के स्तर में परिवर्तन के द्वारा ही बचत एवं विनियोग में समानता सम्भव है, न कि ब्याज दर में परिवर्तन के द्वारा।

(2) बचत एवं विनियोग सूची एक-दूसरे से स्वतन्त्र नहीं होते-प्रतिष्ठित सिद्धान्त के ब्याज में ब्याज के दर के निर्धारक बचत एवं विनियोग को एक-दूसरे से पूर्णतः स्वतन्त्र माना गया है, किन्तु कीन्स के अनुसार ये दोनों एक-दूसरे से स्वतन्त्र नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए यदि विनियोग में वृद्धि

की जाती है तो आय बढ़ जाती है और आय में वृद्धि होन से बचत भी बढ़ जाती है। इसी प्रकार से बचत की पूर्ति में वृद्धि होने से विनियोजन की माँग में परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार, बचत एवं विनियोग एक-दूसरे से स्वतन्त्र नहीं होते हैं।

(3) आय पर विनियोग के प्रभाव की उपेक्षा-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने आया पर विनियोग के पड़ने वाले प्रभाव की उपेक्षा की है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का मत था कि ब्याज की दर बढ़ा देने से विनियोग घट जायेगा, इससे आय एवं रोजगार दोनों में कमी आयेगी। आय में कमी आने से बचत भी घटेगी, जबकि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री मानते थे कि ऊँची ब्याज की दर पर बचत की मात्रा बढ़ जाती है। इसके विपरीत, उनका विचार था थ्क यदि ब्याज की दर घट जाती है तो विनियोग , उत्पादन एवं रोजगार सभी में वृद्धि होगी। उत्पादन एवं आय में वृद्धि से बचत भी बढ़ेगी जबकि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का विचार था कि ब्याज की दर घटने पर बचत भी घट जाती हैं। कीन्स प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचार से सहमत नहीं थे। उनका विचार था कि विनियोग ब्याज की दर से अधिक प्रभावित न होकर पूँजी की सीमान्त कुशलता (MEC) से प्रभावित होता है। यदि भविष्य में लाभ प्राप्त होने की प्रत्याशा अधिक है तो ऊँची ब्याज की दर पर भी विनियोजन अधिक होगा और अधिक विनियोजन किए जाने से आय कई गुणा अधिक बढ़ जायेगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने आय पर विनियोग के प्रभाव की उपेक्षा की है।

(4) बचत के अन्य स्रोतों की उपेक्षा-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने बचत के अन्य स्रोतों की उपेक्षा की है। उनके अनुसार बचत की प्राप्ति वर्तमान आय से ही होती है, किन्तु आलोचकों का विचार है कि ब्याज की दर ऊँची होने पर लोग अपने पहले से संचित धन का प्रयोग बचत की पूर्ति के रूप में कर सकते हैं। इससे अर्थव्यवस्था में ब्याज की दर ऊँची होने पर पूँची की पूर्ति भी बढ़ जाती है। इसी प्रकार से बैंकों की साख-पत्र, पूँजी की पूर्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। अतः प्रतिष्ठित सिद्धान्त अपूर्ण है, क्योंकि पूँजी की पूर्ति में पहले संचित धन के उपयोग तथा बैंकों के साख-पत्रों को इसमें शामिल नहीं किया जाता गया है।

(5) अनिर्धारणीय सिद्धान्त-बचत आय के स्तर पर निर्भर होती है। अतः ब्याज की दर को ज्ञात करना सम्भव नहीं है, जब तब आय के स्तर को ज्ञात करके बचत के स्तर को ज्ञात न कर लिया जाय। साथ ही आय स्तर को भी तब तक नहीं जाना जा सकता, जब तब ब्याज की दर को ज्ञान न किया क्योंकि ब्याज की दर कम होने पर अर्थव्यवस्था में विनियोजन अधिक होगा तथा विनियोजन अधिक होने पर ही आय के स्तर में कई गुणा वृद्धि होगी। साथ ही प्रत्येक आयस्तर पर अलग - अलग बचत स्तर होगा। यह क्रम अर्थव्यवस्था में चलता रहेगा, जिससे ब्याज की दर का निर्धारण नहीं हो सकेगा।

(6) पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है, जबकि पूर्ण रोजगार कहीं भी पाया नहीं जाता है। ऐसी स्थिति में ब्याज की दर बचत को प्रेरित करने वाला एक मात्र तत्व नहीं होता है।

(7) मौद्रिक तत्वों की उपेक्षा-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का ब्याज सिद्धान्त वास्तविक तत्वों को महत्त्व देता है जैसे पूँजी की उत्पादकता एवं बचत के लिए लोगों के द्वारा किया गया त्याग। इसमें मौद्रिक तत्वों की उपेक्षा की गयी है। मुद्रा की माँग क्यों की जाती है? मुद्रा की पूर्ति कैसे की जाती है? इन तत्वों की कोई चर्चा नहीं है। जबकि कीन्स ब्याज को एक विशुद्ध मौद्रिक घटना मानते हैं। अतः प्रतिष्ठित सिद्धान्त में मौद्रिक तत्वों की उपेक्षा हुई है।

(8) ब्याज की प्राकृतिक दर तथा बाजार दर में स्वतः समानता नहीं हो पाती-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का मत था कि ब्याज की प्राकृतिक दर एवं ब्याज की बाजार दर में स्वतः समानता होती है। यदि इसमें अन्तर आ जाता है तो यह अल्पकालीन घटना होती है, जोकि दीर्घकाल में स्वतः समाप्त हो जाती है। कीन्स इन दोनों के अन्तर को अस्थायी और आकस्मिक नहीं मानते हैं। उनके अनुसार वास्तव में बैंक की साख मुद्रा ही इन दोनों में समानता स्थापित करती है। बैंकों की साख में वृद्धि किए जाने से ऋण देने योग्य पूँजी की पूर्ति बढ़ जाती है, जो ब्याज की बाजार दर को घटाकर प्राकृतिक ब्याज के दर के बराबर ले आती है। इस प्रकार ब्याज की बाजार दर एवं प्राकृतिक दर में स्वतः समानता स्थापित नहीं हो पाती है।

(9) ब्याज की परिभाषा पर भिन्नता-कीन्स के अनुसार ब्याज तरलता पसन्दगी के परित्याग का पुरस्कार है। यह मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति के साम्य के द्वारा निर्धारित होती है। यह पूँजी की माँग एवं पूर्ति के द्वारा निर्धारित नहीं होती है।

इस प्रकार, कीन्स ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के ब्याज सिद्धान्त को अपूर्ण, अस्पष्ट एवं अनिर्धारणीय माना है।

26.4 ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त

ब्याज के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त का प्रतिपादन लॉर्ड जॉन कीन्स ने किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक **''रोजगार, ब्याज और द्रव्य का सामान्य सिद्धान्त''** में इस सिद्धान्त का उल्लेख किया है। लार्ड कीन्स के अनुसार, ब्याज एक विशुद्ध मौद्रिक घटना है। इसका कारण यह है कि प्रथम, ब्याज की दर की गणना मुद्रा के रूप में की जाती है और द्वितीय, ब्याज की दर का निर्धारण मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति के द्वारा होता है।

कीन्स के अनुसार, ब्याज बचत का पुरस्कार न होकर तरलता के परित्याग का पुरस्कार है। उन्हीं के शब्दों में, **''ब्याज एक निश्चित अवधि के लिए तरलता के परित्याग का पुरस्कार है।''** कीन्स का तरलता पसन्दगी से अभिप्राय मुद्रा की नगदी के रूप में रखने से है। लोग अपनी-अपनी आय को नकदी के रूप में इसलिए रखते हैं कि वे जब चाहे तब इससे अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को खरीद सकें। लोगों की इस नकदी के रूप में अपनी आय को रखने की प्रवृति को त्यागने के लिए उन्हें कुछ न कुछ पुरस्कार अवश्य ही देना होगा। इस तरलता पसन्दगी के परित्याग के लिए दिये जाने वाले पुरस्कार को ही कीन्स ने ब्याज कहा है। यदि लोगों में अपनी आय को नकदी के रूप में रखने की प्रवृत्ति अधिक है तो ब्याज की दर ऊँची होगी। जिससे लोग ऊँची ब्याज की लालच में अपनी नकदी का परित्याग करने के लिए तैयार हो जायेंगे। इसके विपरीत, यदि लागों में अपनी आय को तरल या नकदी के रूप में रखने की प्रवृत्ति कम है तो ब्याज की दर भी कम हो जायेगी।

कीन्स के अनुसार जिस प्रकार वस्तु का मूल्य उसकी माँग एवं पूर्ति की सापेक्षिक शाक्तियों के द्वारा निर्धारित होता है, ठीक उसी प्रकार ब्याज की दर का निर्धारण भी मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की सापेक्षिक शाक्तियों के द्वारा होता है। मुद्रा की माँग लोग अपनी आय के तरल (नकदी) के रूप में रखने के लिए करते हैं जबकि मुद्रा की पूर्ति का अर्थ एक समय विशेष में अर्थव्यवस्था में उपलब्ध मुद्रा की मात्रा से होता है। जहाँ पर मुद्रा की माँग एवं पूर्ति एक दूसरे के बराबर होती है, उसी साम्य पर ब्याज की दर का निर्धारण होता है।

मुद्रा की माँग

कीन्स के अनुसार, मुद्रा की माँग का अर्थ, लोगों द्वारा अपनी आय को तरल या नकदी के रूप में रखने से है। लोग मुद्रा की माँग सामान्यतया तीन उद्देश्यों के लिए करते हैं:-

(1) लेनदेन का उद्देश्य

(2) सावधानी उद्देश्य

(3) सट्टा उद्देश्य

(1) लेनदेन का उद्देश्य-लोग अपनी आय का एक भाग , दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदने के लिए, नकदी के रूप में रखना चाहते हैं। दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदने के लिए रखी जाने वाली नगदी की माँग को ही लेन-देन के उद्देश्य से की गयी मुद्रा की माँग कहा जाता है। व्यक्ति एवं व्यवसायी दोनों अपनी आय का एक भाग रोजमर्रा की आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदने के लिए नकदी के रूप में रखते हैं। लेन-देन के उद्देश्य से मुद्रा ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती है। यह आय पर निर्भर होती है।

(2) सावधानी उद्देश्य-लोग अपनी आय का एक भाग आकस्मिक रूप से आने वाले संकटों जैसे- बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी, मृत्यु, मुकदमा आदि से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए नगदी के रूप में रखते हैं। सर्तकता एवं दूरदर्शिता उद्देश्य के लिए भी नकदी की माँग मुख्यतया लोगों की आय पर निर्भर होती है। यह भी ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती है।

(3) सट्टा उद्देश्य-कीन्स के अनुसार लोग अपनी आय का एक भाग नगदी रूप में इसलिए भी रखते हैं कि पूँजी बाजार में बॉण्डों एवं प्रतिभूतियों के मूल्यों में जो उतार-चढ़ाव होता है, उससे लाभ कमा सकें। नXदी के रूप में मुद्रा की इस माँग को सट्टा उद्देश्य के लिए तरलता की माँग कहते हैं। बॉण्डों एवं प्रतिभूतियों के खरीदने से लोगों को ब्याज मिल ता है। लोग जब यह आशा करते हैं कि भविष्य में बॉण्ड एवं प्रतिभूतियों के खरीदने से लोगों को ब्याज मिल ता हैं। लोग जब यह आशा करते हैं कि भविष्य में बॉण्ड एवं प्रतिभूतियों के मूल्य बढ़ेगें तो वे बॉण्डों एवं प्रतिभूतियों को वर्तमान में ही अपनी नगद आय से खरीद लेते हैं। इसके विपरीत, जब वे अनुभव करते हैं कि भविष्य में बॉण्डों एवं प्रतिभूतियों की कीमतें गिर जायेंगी तो वे बॉण्डों एवं प्रतिभूतियों को वर्तमान में ही बेच देते हैं और अपनी आया को अधिक से अधिक नकदी के रूप में रखना चाहते हैं। अतः सट्टा उद्देश्य के लिए नकदी की माँग ब्याज की दरों में होने वाले परिवर्तनों पर निर्भर होती है।

कीन्स के उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि:-

(1) लेन-देन के उद्देश्य तथा सावधानी उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग, आय पर निर्भर होती है अर्थात्

$$L_1 = f(Y)$$

यहाँ, L_1 = लेन-देन सावधानी उद्देश्य के लिए तरलता पसन्दगी की माँग।

Y = आय

f = फलनात्मक सम्बन्ध।

(2) सट्टा उद्देश्य के लिए तरलता पसन्दगी की माँग ब्याज की दर पर निर्भर होती है। अर्थात्

$$L_2 = f(r)$$

यहाँ, L_2 = सट्टा उद्देश्य के लिए तरलता पसन्दगी की माँग ।

r = ब्याज की दर

f = फलनात्मक सम्बन्ध।

इस प्रकार, अर्थव्यवस्था में तरलता पसन्दगी की कुल माँग लोगो की आय के स्तर एवं ब्याज की दर पर निर्भर होती है। अर्थात्

(1) $L = L_1 + L_2$

(2) $L = L_1 = f(y) + L_2 = f(r)$

मुद्रा की कुल माँग $= M_{1+P} + M_2$

M_{1+P} लेनदेन एवं सावधानी उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग।

Ms = सट्टा के लिए मुद्रा की माँग।

कीन्स ने ब्याज की दर के निर्धारण में सट्टा उद्देश्य के लिए तरलता पसन्दगी की माँग को अत्यधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार, तरलता पसन्दगी एवं ब्याज की दर में दो प्रकार के सम्बन्ध होते हैं-

(1) समाज में लोगों की तरलता पसन्दगी ऊँची होने पर ब्याज की ऊँची दर चुकानी पड़ती है जिससे लोग अपनी तरलता का परित्याग कर सकें। इसके विपरीत, तरलता पसन्दगी कम होने पर ब्याज की दर कम होती है।

(2) ब्याज की दर ऊँची होने पर तरलता पसन्दगी के लिए मुद्रा की माँग कम होती है तथा ब्याज की दर कम होने पर तरलता पसन्दगी के लिए मुद्रा की माँग अधिक होती है। इस प्रकार, ब्याज की दर एवं तरलता पसन्दगी की माँग में विपरीत सम्बन्ध होता है।

यह तथ्य रेखाचित्र 26.2 से स्पष्ट है-

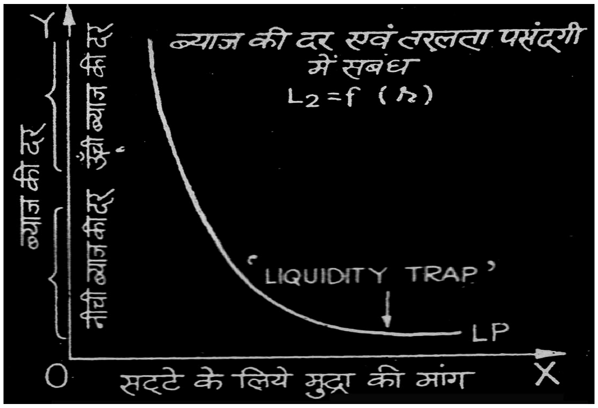

चित्र 26.2

(i) रेखाचित्र में OX अक्ष में सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग को एवं OY -अक्ष में ब्याज की दर को दिखाया गया है।

(ii) LF वक्र सट्टा उद्देश्य के लिए तरलता पसन्दगी की माँग वक्र है। वक्र का ढाल बायें से दायें नीचे की ओर है। यह वक्र बताता है कि ऊँची ब्याज की दर होने पर तरलता पसन्दगी अथवा नकदी की माँग कम है तथा कम ब्याज की दर होने पर नकदी की माँग अधिक है।

(iii) चित्र से स्पष्ट है कि जब ब्याज की दर अत्यन्त कम होती है तब तरलता पसन्दगी वक्र, आधार रेखा OX - अक्ष के समानान्तर हो जाता है। इसे **''तरलता पसन्दगी का जालसूत्र''** (Liquidity Trap) कहा जाता है। यह स्पष्ट करता है क जब ब्याज की दर

एक निश्चित दर से कम हो जाती है तो लोग अपनी आय को नकदी के रूप में रखना चाहते हैं। वे बॉण्डों एवं प्रतिभूतियों में अपनी नगदी को लगाना लाभदायक नहीं समझते हैं। अतः वे बॉण्डों एवं प्रतिभूतियों में इतनी कम ब्याज दर पर अपनी राशि को लगाने का जोखिम नहीं उठाना चाहते हैं।

मुद्रा की पूर्ति

मुद्रा की कुल पूर्ति के अन्तर्गत मुद्रा के सिक्के तथा साख मुद्रा सभी को सम्मिलित किया जाता है। मुद्रा की पूर्ति देश के मुद्रा अधिकारी अथवा देश के केन्द्रीय बैंक के द्वारा की जाती है।

कीन्स के अनुसार, एक निश्चित समय अवधि में मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है। अतः मुद्रा की पूर्ति रेखा एक खड़ी होती है। मुद्रा की पूर्ति एवं वस्तु की पूर्ति में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि जहाँ मुद्रा की पूर्ति एक स्टाक है, वहीं वस्तु की पूर्ति एक प्रवाह होती है। मुद्रा की पूर्ति, ब्याज की दर को प्रभावित करती है, किन्तु ब्याज की दर मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित नहीं करती है। इसका कारण यह है कि मुद्रा की पूर्ति सरकार के नियन्त्रण में होती है। यह एक निश्चित अवधि में स्थिर रहती है।

26.5 ब्याज दर की दर का निर्धारण

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति रेखाएँ एक-दूसरे को काटती हैं। रेखाचित्र 26.3 में ब्याज की दर के निर्धारण को दिखाया गया है।

(1) रेखाचित्र में LP_1 तरलता पसन्दगी वक्र है। यह वक्र मुद्रा की माँग को बताता है।

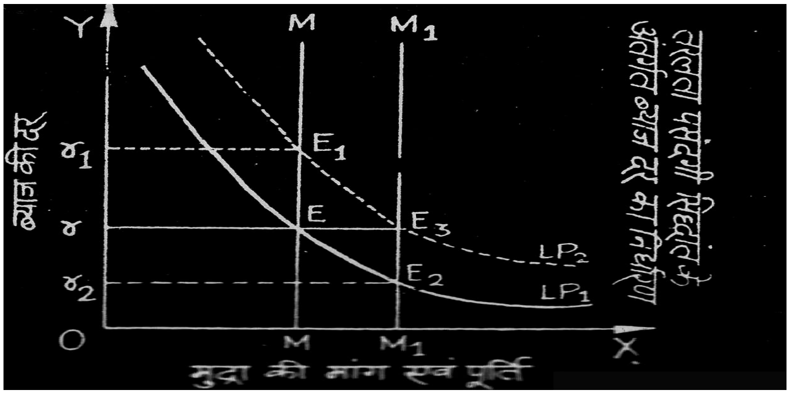

चित्र 26.3

चूँकि ब्याज की दर एवं तरलता पसन्दगी में विपरीत सम्बन्ध होता है, अतः LP_1 वक्र का ढाल ऊपर से नीचे की ओर है।

(2) MM मुद्रा की पर्ति रेखा है। चूँकि मुद्रा की पूर्ति एक निश्चित अवधि में स्थिर रहती है, अतः यह एक खड़ी रेखा है। ब्याज की दर में होने वाले परिवर्तनों का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(3) मुद्रा का माँग वक्र LP_1 एवं मुद्रा की पूर्ति रेखा MM एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। अतः E साम्य बिन्दु है। इस साम्य बिन्दु पर मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति दोनो OM के बराबर हैं। इस साम्य बिन्दु पर ब्याज की दर Or निर्धारित होगी।

(4) जब लोगों की तरलता पसन्दगी बढ़ जाती है, किन्तु मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है तो ब्याज की दर भी बढ़ जाती है। रेखाचित्र में LP_2 बढ़ी हुई तरलता पसन्दगी वक्र है। यह यह LP_2 वक्र, स्थिर मुद्रा की पूर्ति MM रेखा को E_1 बिन्दु पर काटता है। अतः E_1 नई साम्य बिन्दु पर ब्याज की दर Or_1 निर्धारित होगी। यह नई ब्याज की दर Or_1 प्रारम्भिक ब्याज की दर Or से अधिक है। इसका मुख्य कारण तरलता पसन्दगी में वृद्धि तथा मुद्रा की पूर्ति का स्थिर रहना है।

(5) इसके विपरीत, यदि मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होती है और तरलता पसन्दगी LP_1 स्थिर रहती है तो ब्याज की दर घट जायेगी। रेखाचित्र में LP_1 तरलता पसन्दगी वक्र को मुद्रा की नई पूर्ति M_1M_1 रेखा E_2 बिन्दु पर काटती है। अतः E_2 नया साम्य बिन्दु है और OR_2 नई ब्याज की दर है। मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाने के कारण ब्याज की दर घट गयी है।

(6) किन्तु तरलता पसन्दगी के साथ मुद्रा की पूर्ति में भी वृद्धि होती है तो यह सम्भव है कि ब्याज की दर में कोई परिवर्तन न हो। जैसा कि रेखाचित्र से स्पष्ट है कि बढ़ी हुई तरलता पसन्दगी वक्र LP_2 को बढ़ी हुई मुद्रा की पूर्ति रेखा MM_1 बिन्दु E_3 पर काट रही है। अतः E_3 साम्य बिन्दु है। इस साम्य बिन्दु पर ब्याज की दर Or ही है।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि ब्याज की दर के निर्धारण में मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति दोनों का प्रभाव पड़ता है। चूँकि अल्पकाल में मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है, अतः ब्याज की दर पर तरलता पसन्दगी का ही प्रभाव पड़ता है। तरलता पसन्दगी अधिक होने पर ब्याज की दर ऊँची तथा तरलता पसन्दगी कम कोने पर ब्याज की दर नीची रहती है।

कीन्स के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त की आलोचना कीन्स का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त उनके मुद्रा, ब्याज एवं रोजगार से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्त में एक क्रांन्तिकारी विचार है। फिर भी यह सिद्धान्त पूर्णतया दोषरहित नहीं है। प्रो0 हेन्सन ने कीन्स के सिद्धान्त की कटु आलोचना की है। प्रमुख आलोचनाएँ निम्नाकिंत हैं:-

(1) अनिर्धारित-कीन्स का विचार है कि ब्याज की दर तरलता पसन्दगी एवं मुद्रा की पूर्ति के साम्य के द्वारा निर्धारित होती है, किन्तु तरलता पसन्दगी के लिए मुद्रा की माँग स्वयं आय के स्तर पर निर्भर होती है तथा ब्याज की दर विनियोग को प्रभावित कर आय स्तर को निर्धारित करती है। अतः कीन्स का सिद्धान्त भी प्रतिष्ठित सिद्धान्त के समान अनिर्धारणीय है।

(2) वास्तविक तत्त्वों की उपेक्षा-कीन्स ने ब्याज को एक विशुद्ध मौद्रिक घटना कहा है और यह बताया है इसका निर्धारण मुद्रा की माँग एवं पूर्ति के द्वारा होता है। इस प्रकार, कीन्स ने ब्याज की दर के निर्धारण में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता, 'समय अधिमान' एवं बचत के लिए मित्व्ययता जैसे वास्तविक तत्व जिनका ब्याज की दर पर प्रभाव पड़ता है, की उपेक्षा की है।

(3) बचत तत्व की उपेक्षा-कीन्स ने ब्याज को एक निश्चित अवधि के लिए तरलता पसन्दगी के परित्याग का पुरस्कार कहा है, किन्तु प्रो0 जैकब वीनर लिखते हैं कि, ''बचत के बिना, त्याग के लिए तरलता प्राप्त नहीं हो सकती। ब्याज की दर तरलता के बिना बचत के लिए प्रतिफल होती है।''

(4) वास्तविक तथ्यों के विपरीत-कीन्स का विचार था कि तरलता पसन्दगी ऊँची होने पर ब्याज की दर ऊँची तथा तरलता पसन्दगी

कम होने पर ब्याज की दर नीची होती है, किन्तु मन्दीकाल में वस्तुओं की कीमतों में गिरावट होने के कारण लोगों की तरलता पसन्दगी की प्रवृत्ति तो ऊँची होती है, जबकि मन्दीकाल में ब्याज की दर नीची रहती है। इसके विपरीत, समृद्धि काल में कीमतों में वृद्धि होने के कारण तरलता पसन्दगी कम होती है, किन्तु तेजी काल में ब्याज की दर ऊँची रहती हैं। अतः कीन्स का सिद्धान्त वास्तविक घटनाओं के विश्लेषण करने में तर्कसंगत नहीं है।

(5) ब्याज, पूँजी की उत्पादकता का पुरस्कार-आलोचकों का विचार है कि ब्याज तरलता पसन्दगी के परित्याग का पुरस्कार न होकर पूँजी की उत्पादकता का पुरस्कार होता है।

26.6 कीन्स के सिद्धान्त की प्रतिष्ठित सिद्धान्त से श्रेष्ठता

कीन्स का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त निम्नलिखित कारणों से प्रतिष्ठित सिद्धान्त की तुलना में श्रेष्ठ है:-

(1) कीन्स का सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त है। यह न्यून रोजगार सन्तुलन की स्थिति में भी लागू होता है, जबकि प्रतिष्ठित सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।

(3) कीन्स का ''तरलता जालसूत्र'' मौद्रिक एवं बैकिंग नीतियों की सीमाओं को स्पष्ट करता है। मन्दीकाल में इसके प्रभावपूर्ण न होने के कारणों को स्पष्ट करता है।

(4) बचत एवं विनियोग में सन्तुलन ब्याज की दर के द्वारा नहीं बल्कि आय के द्वारा होता है।

26.7 ब्याज का उधार देय कोष सिद्धान्त

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की त्रुटियों को दूर करने के लिए **स्वीडन के अर्थशास्त्रियों नट विकसेल, बर्टिल ओहलिन, ऐरिक लिंडल एवं गुन्नार मिर्डल** ने उधार देय कोष सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। बाद में अंग्रेज अर्थशास्त्री **डी0 एच0 रॉबर्टसन एवं जेकब वीनर** ने इसका विकास किया। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, **ब्याज बचत करने का प्रतिफल नहीं है, बल्कि यह उधार देय कोष के उपयोग के लिए दिया जाने वाला पुरस्कार है।** इन अर्थशास्त्रियों का विचार था कि ब्याज की दर के निर्धारण मं मितत्वययिता, प्रतीक्षा, समय-पसन्दगी, पूँजी का उत्पादकता जैसे वास्तविक तत्वों के साथ मुद्रा के संचयन एवं विसंचयन साख-मुद्रा, उपभोग वस्तुओं के लिए लिये जाने वाले ऋण जैसे मौद्रिक तत्वों को भी पर्याप्त महत्व दिया जाना चाहिए। इस प्रकार, इन अर्थशास्त्रियों ने ब्याज की दर के निर्धारण में मौद्रिक एवं वास्तविक दोनों तत्वों को महत्व दिया है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ उधार देय कोष की माँग एवं उधार देय कोष की पूर्तिं एक दूसरे के बराबर हो जाती है। अतः उधार देया कोष की माँग एवं पूर्तिं का विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है।

उधार देय कोष की माँग

उधार देय कोष की माँग निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए की जाती है-

(1) विनियोजन के लिए माँग- उधार देय कोष की माँग उत्पादकों के द्वारा मशीन, संयन्त्र के लिए विनियोजन हेतु की जाती है। ब्याज की दर एवं विनियोजन के लिए उधार देय कोष की माँग में विपरीत सम्बन्ध होता है। ब्याज की दर कम होने पर उत्पादकगण विनियोजन के लिए अधिक ऋण की माँग करते हैं। इसके विपरीत, ब्याज की दर ऊँची होने पर वे विनियोजन के लिए कम ऋण की माँग हैं। अतः विनियोजन के लिए माँग रेखा का ढाल बायें से दायं नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। विनियोजकगण् ऋण की माँग उस सीमा तक करते हैं जहाँ पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं ब्याज की दर एक-दूसरे के बराबर हो जाती है।

(2) उपभोग वस्तुओं को खरीदने के लिए ऋण की माँग –उपभोक्तागण टेलीविजन, स्कूटर, रेफ्रीजरेटर, एयर कण्डीशनर जैसे टिकाऊ उपभोग वस्तुओं को खरीदने के लिए भी ऋण की माँग करते हैं। उपभोग वस्तुओं के लिए ऋण की माँग ब्याज की दर पर निर्भर होती है। ब्याज की दर ऊँची होने पर उपभोग वस्तुओं के लिए ऋण की माँग कम की जाती है। इसके विपरीत ब्याज की दर कम होने पर उपभोग वस्तुओं के लिए ऋण की माँग अधिक की जाती है। अतः ब्याज की दर एवं उपभोग वस्तुओं के लिए ऋण की माँग के बीच ऋणात्मक सम्बन्ध होता है।

(3) सरकार द्वारा ऋण की माँग -सरकार भी युद्ध, बाढ़, अकाल, सूखा-राहत, महामारी से सुरक्षा तथा जनकल्याणकारी कार्यो को पूरा करने के लिए ऋण की माँग करती है। ब्याज की दर एवं सरकार के द्वारा ऋण की माँग भी ऋणात्मक सम्बन्ध होता है अर्थात् ब्याज की दर ऊँची होने पर ऋण की माँग कम की जाती है।

(4) संग्रह के लिए माँग - कुछ लोग ऋण की माँग, मुद्रा को नकद के रूप में रखने के लिए भी करते हैं। ब्याज की दर एवं नकदी के लिए ऋण की माँग के बीच भी ऋणात्मक सम्बन्ध होता है।

इस प्रकार, विनियोजन के लिए ऋण की माँग , उपभोग वस्तुओं को खरीदने के लिए ऋण की माँग , सरकार के द्वारा ऋण की माँग तथा नकदी के लिए ऋण की माँग के योग को अर्थव्यवस्था में उधार देय कोष की कुल माँगकहा जाता है। ब्याज की दर एवं उधार देय कोष की माँग के बीच ऋणात्मक सम्बन्ध होता है।

उधार देय कोष की पूर्तिं

उधार देय कोष की पूर्तिं निम्नलिखित चार स्रोतों से की जाती है-

(1) बचतें, (2) बैंक साख, (3) अविनियोग , (4) विसंचयन ।

(1) बचतें-उधार देय कोष की पूर्तिं का प्रमुख स्रोत बचतें हैं। लोग अपनी आय का जो भाग बचत करते हैं, उसे ब्याज प्राप्त करने के लिए ऋण पर दे देते हैं। सामान्यतया ब्याज की दर ऊँची होने पर लोग अधिक बचत कर ऋण देते हैं तथा ब्याज की दर कम होने पर वे बचत कम करते हैं। अतः बचत रेखा नीचे से ऊपर की ओर चढ़ती हुई रेखा होती है।

(2) बैंक साख-वर्तमान समय में उधार देय कोष की पूर्तिं का एक प्रमुख साधन बैंक मुद्रा (साख) है। व्यापारिक बैंक लोगों से जमा स्वीकार करते हैं और जरूरतमन्द उद्योग पतियों, व्यापारियों को ऋण देते हैं। इस ऋण देने की प्रक्रिया में वे साख-पत्रों का निर्माण करते हैं। इस प्रकार, साख मुद्रा के द्वारा उधार देय कोष की पूर्तिं की जाती है। सामान्यतया बैंक ब्याज की दरें ऊँची होने पर अधिक साख सृजन करते हैं।

(3) अविनियोग -उत्पादकों के द्वारा मशीनों की घिसावट एवं टूट-फूट को दूर करने के लिए घिसावट व्यय कोष की स्थापना की जाती है। जब ब्याज की दर ऊँची होती है तो वे इस कोष का प्रयोग मशीनों के प्रतिस्थापन के लिए न करके ऋण देने के लिए करते हैं। इसे ही अविनियोग कहा जाता है। इससे भी उधार देय कोष की पूर्तिं बढ़ जाती हैं। ब्याज की दर एवं अविनियोग द्वारा उधार देय कोष की पूर्तिं में सीधा सम्बन्ध होता है।

(4) पिछली बचतों का विसंचयन-जब ब्याज की दर ऊँची होती है तो लोग अपनी पिछली बचतों से अधिक ऋण देते हैं। अतः ब्याज की दर एवं विसंचयन में भी सीधा सम्बन्ध होता है।

इस प्रकार, अर्थव्यवस्था में उधार देय कोष की कुल पूर्तिं बचतें, बैंक-साख अविनियोग एवं विसंचयन के जोड़ से प्राप्त होती है। ब्याज की दर एवं उधार देय की पूर्तिं के बीच सीधा सम्बन्ध होता है।

उधार देय कोष सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर विनियोग , बचत, बैक साख एवं तरलता पसन्दगी की इच्छा इन सभी पर निर्भर होती है।

सूत्र के रूप में $r = f(I,S,M,L)$

यहाँ r = ब्याज की दर
I = विनियोग
S = बचत
M = बैंक साख
L = तरलता पसन्दगी की इच्छा अथवा संचयन की इच्छा
F = फलनात्मक सम्बन्ध

ब्याज की दर का निर्धारण

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ उधार देय कोष की माँग एवं उधार देय कोष की पूर्तिं एक-दूसरे के बराबर हो जाती है।

रेखाचित्र 26.4 से यह स्पष्ट है-

(1) रेखाचित्र में I विनियोजन के लिए, DS उपभोग वस्तुओं को खरीदने के लिए तथा H नकदी के रूप में संग्रहण करने के लिए उधार देय कोष की माँग रेखाएँ हैं।

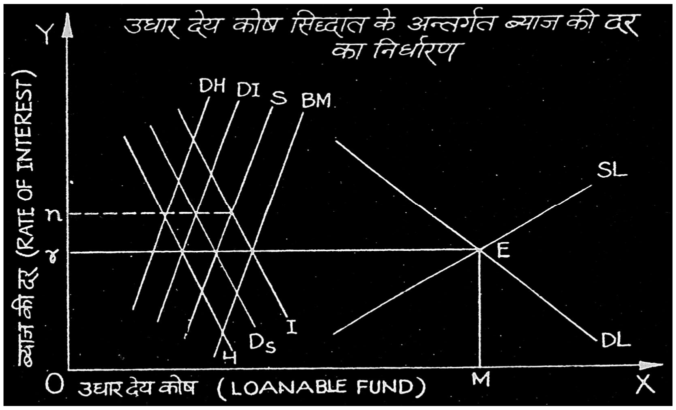

चित्र 26.4

(2) चित्र में S बचतें, BM बैंक मुद्रा, DI अविनियोग तथा DH विसंचयन के रूप में उधार देया कोष की पूर्तिं को बताते हैं।

(3) DL रेखा उधार देया कोष की कुल माँग रेखा है। इसका ढाल ऋणात्मक है। यह रेखा बताती है कि ऊँची ब्याज दर पर उधार देय कोष की माँग कम तथा कम ब्याज की दर पर उधार देय कोष की माँग अधिक होती है।

(4) SL रेखा उधार देय कोष की पूर्तिं रेखा है। इस रेखा की ढाल धनात्मक है जो यह बताती है कि ऊँची ब्याज की दर पर अधिक उधार देय कोष की पूर्तिं की जायेगी तथा कम ब्याज की दर होने पर कम उधार देय कोष की पूर्तिं की जायेगी।

(5) उधार देय कोष की कुल माँग रेखा DL एवं उधार देय कोष की कुल पूर्तिं रेखा SL एक-दूसरे को E बिन्दु पर काटती हैं। अतः E साम्य बिन्दु है। इस साम्य बिन्दु पर उधार देय कोष की माँग एवं इसकी पूर्तिं दोनों OM के बराबर हैं। अतः इस साम्य बिन्द्र पर ब्याज की दर निर्धारित होगी।

(6) चित्र में प्रतिष्ठित सिद्धान्त एवं उधार देय कोष सिद्धान्त के अर्न्तगत ब्याज की दर में अन्तर को भी दिखाया गया है। चित्र में On प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार साम्य ब्याज की दर है इस On ब्याज की दर पर बचत और विनियोग एक-दूसरे के बराबर हैं, किन्तु उधार देय कोष सिद्धान्त के अनुसार साम्य ब्याज की दर Or है।

चित्र से स्पष्ट है कि उधार देय कोष सिद्धान्त के अनुसार निर्धारित ब्याज की दर Or प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अन्तर्गत निर्धारित ब्याज की दर On से कम है।

उधार देय कोष सिद्धान्त की आलोचना

इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न हैं-

(1) इस सिद्धान्त में आय स्तर को स्थिर मान लिया गया है। वास्तव में ब्याज की दर में परिवर्तन होने से विनियोग में परिवर्तन का आय स्तर पर प्रभाव पड़ता है। अतः आय को स्थिर मान लेना उचित नहीं है।

(2) इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर अनिर्धारणीय है। इसका कारण यह है कि उधार देय कोष, लोगों की व्यय-योग्य आय पर निर्भर होता है, व्यय योग्य आय, विनियोग पर निर्भर होती है तथा विनियोग ब्याज की दर पर निर्भर होता है। इस वृत्ताकार चक्र में फँस जाने के कारण ब्याज की दर का निर्धारण नहीं हो पाता है।

(3) सिद्धान्त में वास्तविक तत्वों के साथ मौद्रिक तत्वों को जोड़ दिया गया है, किन्तु बचत एवं विनियोगजैसे वास्तविक तत्वों के साथ बैंक साख एवं तरलता पसन्दगी जैसे मौद्रिक तत्वों को किस प्रकार सम्बन्धित किया जा सकता है, स्पष्ट नहीं है।

अतः ब्याज की दर के निर्धारण में यह सिद्धान्त भी पूर्ण एवं व्यावहारिक नहीं हैं।

26.8 सांराश

ब्याज पूँजी के उपयोग के लिए किया जाने वाला भुगतान है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज पूँजी की उत्पादकता तथा बचतकर्त्ता के त्याग का परिणाम होता है। 'ब्याज के बचत एवं विनियोग सिद्धान्त' को वास्तविक सिद्धान्त भी का जाता है। कीन्स के अनुसार, ब्याज एक निश्चित अवधि के लिए तरलता से परित्याग का पुरस्कार है। ब्याज का निर्धारण मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है: कीन्स के सिद्धान्त को ब्याज का मौद्रिक सिद्धान्त कहा जाता है। स्वीडन के अर्थशास्त्रियों के अनुसार, ब्याज बचत करने का प्रतिफल नहीं है बल्कि यह उधार देय कोष के उपयोग के लिए दिया जाने वाला पुरस्कार है। ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त - प्रो0 हिक्स एवं हेन्सन ने प्रस्तुत किया है।

इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहाँ (स्डत्रस्ूS) हो। इसी बिन्दु पर कुल बचत और कुल विनियोग तथा तरलता पसन्दगी के लिए मुद्रा की माँग की पूर्ति एक निश्चित आय स्तर पर एक दूसरे के बराबर होती है।

26.9 शब्दावली

(IS) बचत विनियोग रेखा - विभिन्न आय स्तरों एवं विभिन्न ब्याज दरों पर बचत एवं विनियोग के साम्य को बतलाती है।

(IS) बचत विनियोग रेखा - का ढाल ऋणात्मक होता है। यह रेखा बतलाती है कि आय स्तर में वृद्धि होने से बचत की मात्रा में वृद्धि हो जाती है और बचत की मात्रा में वृद्धि होने से ब्याज की दर भी घट जाती है। इस प्रकार आय स्तर में वृद्धि से ब्याज की दर घट जाती है।

(LM) तरल पसन्दगी एवं मुद्रा की पूर्ति रेखा - आय के विभिन्न स्तरों एवं ब्याज की दर पर तरलता पसन्दगी के लिए मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति के बीच सन्तुलन को बतलाती है।

(LM) रेखा का ढाल धनात्मक होता है। यह रेखा बतलाती है कि तरलता पसन्दगी ऊँची होने पर ब्याज की दर भी ऊँची होती है।

एक निश्चित आय स्तर IS पर एवं **LM** रेखाएँ एक दूसरे को काटती हैं वही साम्य बिन्दु होता है और इसी साम्य बिन्दु पर ब्याज की दर का निर्धारण होता है।

26.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 'तरलता जाल' कहलाता है-

(a) तरलता अधिमान वक्र का वह भाग जो X-अक्ष के समानान्तर होता है

(b) तरलता अधिमान वक्र का वह भाग जो Y-अक्ष के समानान्तर होता है

(c) अनेक तरलता अधिमान वक्र

(d) उपर्युक्त में से कोई नहीं

2. ''ब्याज पूँजी के त्याग का प्रतिफल है''। यह कथन है-

(a) सीनियर का (b) मार्शल का (c) फिशर का (d) हिक्स का

3. ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त में पूS वक्र बताता है -

(a) आय एवं ब्याज दर के संयोग (b) आय एवं व्यय का संयोग

(c) आय एवं बचत का संयोग (d) इनमें से कोई नहीं

4. उधर देय कोषों का माँग वक्र होता है-

(a) ऋणात्मक ढाल (b) धनात्मक ढाल

(c) समानान्तर रेखा (d) लम्बवत रेखा

5. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित ब्याज का सिद्धान्त -

(a) बचत विनियोग सिद्धान्त है (b) सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त है

(c) IS एवं LM वक्र सिद्धान्त है। (d) तरलता पसन्दगी सिद्धान्त है

6. ऋणदेय कोष सिद्धान्त के सन्दर्भ में सार्थक कथन को अंकित कीजिए -

(a) DLF = DI + DH + DC (b) SLF = S + dl + BM

(c) सन्तुलन DLF = SLF (d) इनमें से सभी

7. कीन्स के अनुसार कौन-सा कथन उपयुक्त है -

(a) M = L1 (y) (b) M2 = L2(r)

(c) M = M1 + M1 = L1 (y) + L2 (r) (d) इनमें से तीनों उचित है

8. कीन्स के अनुसार ब्याज दर दो तत्वों पर निर्भर करती है जिनमें एक है तरलता पसन्दगी और दूसरा क्या है।

(a) मुद्रा की माँग (b) मुद्रा की पूर्तिं

(c) विनियोग की मात्रा (d) बचत की मात्रा

9. नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने प्रस्तुत किया-

(a) ब्याज का समय अधिमान सिद्धान्त (b) ब्याज का प्रतीक्षा सिद्धान्त

(c) ऋण योग्य कोष सिद्धान्त (d) तरलता पसन्दगी सिद्धान्त

उत्तर -**1. (a), 2. (b), 3. (a), 4. (a), 5. (a), 6. (d), 7. (d), 8. (d), 9. (c)**

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ब्याज का प्रतिष्ठित दृष्टिकोण क्या है।

2. नव प्रतिष्ठित दृष्टिकोण क्या है ?

3. तरलता पसन्दगी से क्या समझते हैं ?

4. कीन्स के विचार में मुद्रा की माँग क्यों की जाती है ?

5. तरलता जाल किसे कहते हैं ?

6. सट्टा उद्देश्य के लिए रखी जाने वाली मुद्रा की माँग ब्याज दर पर किस प्रकार निर्भर करती है ?

7. ऋण योग्य कोष सिद्धान्त के विकास में किन अर्थशास्त्रियों का योग दान है ?

26.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्रा, जे0पी0 (2009): उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त -मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन,वाराणसी।

2. सिन्हा, वी0सी0 (1990): उन्नत आर्थिक सिद्धान्त, स्टूडेन्ट फ्रेन्डस इलाहाबाद।

3. आहूजा, एम0एल0 (2006): उच्च आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक विश्लेषण, चन्द्र प्रकाशन, दिल्ली।

4. लाल, एस0 एन0 (2005): उच्च आर्थिक सिद्धान्त, शिवा पब्लिशिंग हाऊस -इलाहाबाद।

5. लाल, एस0 एन0 (2008): माइक्रों इकोनामिक्स:शिवा पब्लिशिंगहाऊस - इलाहाबाद।

8. जैन, पी0 सी0 (1995): उच्च आर्थिक विश्लेषण, चुग प्रकाशन, इलाहाबाद।

9. त्रिपाठी, बद्री विशाल (2000): एडवांस इकोनोमिक थ्योरी,किताब महल्, इलाहाबाद।

26.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Mehta,J.K.(1980):EconomicTheory,ChughPublications,Allahabad.
- Jhingan, M.L. (2007) : Advanced Economic Theory, Vrinda Prakashan, New Delhi.
- Seth, M.L. (2007): Micro Economics, L.N. Agrwal Publications, Agra.
- P. Samuelson (1967) : Micro Economic Theory & Policy, Oxford University Press, U.K.
- Dhingra, I.S. (2005) : Advaned Economics Theory New Century Publication. DelhiTripathi, B.B. (2000) : Micro Economics, Kitab Mahal Allahabad

26.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्याज के उधार देय कोष सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।

2. ब्याज क्यों दिया जाता है ? ब्याज दर में भिन्नता के क्या कारण हैं।

3. ब्याज की तरलता पसन्दगी को पूर्णतया समझाइए तथा इसके गुण-दोषों पर प्रकाश डालिए।

इकाई 27 लाभ के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

27.0 प्रस्तावना
27.1 उद्देश्य
27.2 सामान्य लाभ
27.3 असामान्य लाभ
27.4 लाभ के प्रमुख सिद्धान्त
    27.4.1 लाभ का मजदूरी सिद्धान्त
    27.4.2 लाभ का लगान सिद्धान्त
    27.4.3 लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
    27.4.4 क्लार्क का लाभ सम्बन्धी प्रावैगिक सिद्धान्त
    27. 4.5 शुम्पीटर का लाभ सम्बन्धी नव प्रवर्तन सिद्धान्त
    27. 4.6 जोखिम तथा अनिश्चितता वहन करने के सिद्धान्त
    27. 4.7 लाभ का आधुनिक सिद्धान्त
27.5 सांराश
27.6 शब्दावली
27.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
27.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
27.9 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
27.10 निबन्धात्मक प्रश्न

27.0 प्रस्तावना

उत्पादन कार्य में साहसी के योग दान के लिए जो पुरस्कार दिया जाता है उसे लाभ की संज्ञा दी जाती है। वर्तमान समय में उत्पादन कार्य अत्यन्त जटिल है उत्पादन कार्य हेतु साधनों की बड़ी मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। अतः उत्पादक या साहसी कच्चे, माल, श्रमिक, पूँजी, तकनीकी ज्ञान जैसे उत्पादन

साधनों को एकत्रित करता है तथ इनका उत्पादन के लिए प्रयोग करता है जो यह सभी कार्य करता है वह साहसी कहलाता है। साहसी को जो पुरस्कार प्राप्त होता है वही लाभ होता है। साधनों का पुरस्कार लगान पारिश्रमिक एवं ब्याज के रुप में चुकाना पड़ता है, इसमें से साहसी का पुरस्कार पहले से निश्चित नहीं होता हैं। चूँकि साहसी का लाभ हमेशा अनिश्चित रहता है अतः व्यवसाय में अनिश्चितता एवं जोखिम के भार को सहन करने के बदले में जो पुरस्कार साहसी को दिया जाता है, उसे ही लाभ कहा जाता है।

27.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- लाभ के प्रतिष्ठित सिद्धान्त से लेकर लाभ के वर्तमान सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त करना।
- लाभ के अन्तर्गत होने वाले अनिश्चितता की जानकारी प्राप्त करना।
- लाभ के समाजवादी सिद्धान्त की जानकारी प्राप्त करना।

27.2 सामान्य लाभ

प्रत्येक साहसी लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से जोखिम उठाता है। अतएव यह आवश्यक है कि उसे उत्पादन प्रक्रिया में कम से कम इतना लाभ मिलता रहे जिससे वह कार्य में लगा रहे। यही सामान्य लाभ है। लाभ की यह एक न्यूनतम सीमा है, जिससे कम मिलने पर साहसी जोखिक उठाना छोड़ देगा। किसी उद्योग में साहसी के सामान्य लाभ वे होते हैं जो उसे उद्योग में बनाये रखने के लिए आवश्यक होते हैं। इस प्रकार सामान्य लाभ साहसी की स्थानान्तरण आय है। इसका सम्बन्ध दीर्घकाल से होता है। सामान्य लाभ पर विचार करते हुए प्रो0 मार्शल ने कहा कि दीर्घकालीन मूल्य प्रतिनिधि फर्म की उत्पादन-लागत के बराबर होता है और सामान्य लाभ इस उत्पादन लागत का एक भाग होता। इसलिए सामान्य लाभ प्रतिनिधि फर्म को मिलने वाला लाभ है। सामान्य लाभ उत्पादन लागत में जुटा रहता है इस प्रकार सामान्य लाभ उत्पादन लागत में उसी प्रकार से जुटा रहता है, जैसे

मजदूरी, लगान तथा ब्याज सम्मिलित रहते हैं। शुद्ध लाभ लागत मे नहीं जुटा रहता है, यह तो वास्तव में उत्पादन लागत के ऊपर अधिक्य होता है।

27.3 असामान्य लाभ

- किसी भी साहसी को सामान्य लाभ के ऊपर जो लाभ प्राप्त होता है उसे असामान्य लाभ कहते हैं। हैन्सन के शब्दों में ''सामान्य लाभ के अतिरिक्त जो लाभ प्राप्त होता है उसे असामान्य लाभ कहते हैं। असामान्य लाभ लगान की तरह एक प्रकार का अतिरेक है, जो कुशल साहसियों को मिलता है सीमान्त साहसी असामान्य लाभ नहीं प्राप्त कर पाता है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में असामान्य लाभ बाहरी फर्मों के प्रवेश के लिए आकर्षण का कारण बनता है और दीर्घकाल में असामान्य लाभ विलुप्त हो जाता है।
- प्रो0 नाइट के सामान्य तथा असामान्य लाभ के बीच भेद जोखिम के विभिन्न प्रकारों के आधार पर किया है। नाइट के अनुसार '''ऐसी जोखिमों के लिए जो ज्ञात है तथा जिनका बीमा कराया जा सकता है, जो लाभ प्राप्त होते हैं उसे सामान्य लाभ कहते हैं, पर अज्ञात जोखिमों के लिये जो लाभ प्राप्त होता है उसे असामान्य लाभ कहते हैं।
- पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में असामान्य लाभ हो सकता है पर दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ होगा, जबकि एकाधिकार में असामान्य लाभ अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों अवस्थाओं में सम्भव है।
- यहाँ एक तथ्य का स्पष्टीकरण उचित प्रतीत होता है कि जो हम औसत-लागत वक्र (AC) खींचते हैं उसमें सामान्य लाभ भी सम्मिलित रहता है, इसलिए जब औसत-आय वक्र (AR) औसत-लागत वक्र (AC) का स्पर्श रेखा होता है तो फर्म को सामान्य लाभ होता है तथा जब यह औसत-आय वक्र से नीचे हो तो फर्म को असामान्य लाभ होगा।

27.4 लाभ के प्रमुख सिद्धान्त

सामान्यतया लाभ जोखिम उठाने का भुगतान होता है अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साहसी या उत्पादक जोखिम उठाता है। इस प्रकार जोखिम तथा अनिश्चितता के लिए दिए जाने वाले पुरस्कार को लाभ कहा जाता है और यह वस्तुओं की कुल बिक्री से प्राप्त होने वाली आय तथ उसकी उत्पादन लागत के अन्तर के बराबर होता है।

साहसी का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यवसाय मे होने वाली हानि का जोखिम उठाना भी होता है, वह अपने व्यवसाय को शुरू करने के पहले उत्पादन लागत एवं आय का अनुमान लगाता है यदि इससे उसे हानि का अन्देशा हो तो इस हानि के जोखिम उठाने के बदले में उसे पुरस्कार मिलता है। यह

पुरस्का साहसी को शुद्ध लाभ के रुप में प्राप्त होता है। अतएव साहसी के द्वारा उत्पादन में जोखिम उठाने, अनिश्चिताओं को सहन करने एवं नव प्रवर्तनों को लागू करने का उद्देश्य सभी से लाभ प्राप्त करना होता है।

लाभ के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैः-

1. लाभ का मजदूरी सिद्धान्त
2. लाभ का लगान सिद्धान्त
3. लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
4. क्लार्क का लाभ सम्बन्धी प्रावैगिक सिद्धान्त
5. शुम्पीटर का लाभ सम्बन्धी नव प्रवर्तन सिद्धान्त
6. जोखिम तथा अनिश्चितता वहन करने के सिद्धान्त
7. लाभ का आधुनिक सिद्धान्त

27.4.1 लाभ का मजदूरी सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो0 टॉजिंग द्वारा किया गया था। एक अन्य अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो0 डेवनपोर्ट ने इसका समर्थन किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ भी एक प्रकार की मजदूरी होता है, जिसे उद्यमकर्ता को उसकी सेवाओ के बदले चुकाया जाता है। प्रो0 टॉजिग के शब्दों में, ‘‘लाभ उद्यमकर्ता की वह मजदूरी है जो उसे उसकी विशेष योग्यता के कारण प्राप्त होती है।’’ इस सिद्धान्त के अनुसार श्रम एवं उद्यम में पूर्ण समानता है। जिस प्रकार श्रम अपनी सेवाओ के बदले मजदूरी प्राप्त करता है, ठीक उसी प्रकार उद्यमी अपनी उत्पादन सम्बन्धी भूमिका के एवज में लाभ प्राप्त करता है। अन्तर केवल इतना है कि श्रम की सेवाएँ शारीरिक होती हैं जबकि उद्यमकर्ता का कार्य मानसिक होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार उद्यमी, डॉक्टरों, वकीलों एवं अध्यापकों जैसे मानसिक कार्यकर्ताओं से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं होता है। इसी आधार पर प्रो0 टॉजिग ने लाभ को एक प्रकार की ऐसी मजदूरी कहा है जो उद्यमी को सेवाओं के बदले प्राप्त होती है।

निम्नलिखित आधारो पर इस सिद्धान्त को आलोचना की गयी है:

आलोचना :- आलोचकों ने इस सिद्धान्त के प्रमुख दोष निम्न बताये हैं -

i. लाभ एक अवशेष भुगतान है जबकि मजदूरी सदैव धनात्मक रहती है।

ii. उद्यमी को जोखिम व अनिश्चिताओं का सामना करना पड़ता है जबकि श्रमिक को ऐसी कोई समस्या नहीं होती।

iii. अपूर्ण प्रतियोगिता में लाभ बढ़ते हैं जबकि मजदूरी में कमी होने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

iv. संयुक्त पूँजी कम्पनी में अंशधारी लाभ प्राप्त करते हैं जबकि वे कोई भी मानसिक श्रम नहीं करते।

27.4.2 लाभ का लगान सिद्धान्त

इस सिद्धान्त की परिकल्पना का श्रेय ब्रिटिश अर्थशास्त्री सीनियर तथा मिल को जाती है परन्तु प्रस्तुत करने का श्रेय अमरीकन अर्थशास्त्री प्रो0 वॉकर को जाता है। यह सिद्धान्त वॉकर के नाम से ही जाना जाता है। इस सिद्धान्त का मूल मंत्र रिकार्डो का लगान सिद्धान्त है। रिकार्डो के अनुसार लगान एक भेदात्मक उपज है जो अधिक उर्वरता वाली भूमियों पर सीमान्त भूमि की अपेक्षा प्राप्त होती है। जिस प्रकार भूमि के भिन्न-भिन्न टुकड़ों की उपजाऊ शक्ति में अन्तर होता है उसी प्रकार उद्यमियों की योग्यता मे भी अन्तर पाया जाता है। सीमान्त भूमि की भाँति सीमान्त उद्यमी सामान्य योग्यता का व्यक्ति होता है और वह अपनी वस्तु को उत्पादन लागत पर ही बेच पा सकने के कारण कोई आधिक्य प्राप्त नहीं कर पाता। सीमान्त उद्यमी से अधिक योग्य व कार्यकुशल उद्यमी आधिक्य प्राप्त कर लेते हैं, वही लाभ है।

आलोचना :- इस सिद्धान्त के प्रमुख दोष निम्न पाये गये हैं -

i. यह सिद्धान्त एकाधिकारी लाभ व आकस्मिक लाभ के स्पष्ट नहीं करता।

ii. सीमान्त उद्यमी की परिकल्पना ही गलत है क्योंकि सामान्य लाभ न मिलने पर उद्यमी व्यवसाय छोड़ जाता है।

iii. संयुक्त पूँजी कम्पनी के हिस्सेदारों को जो लाभांश मिलता है उसमें योग्यता का प्रश्न ही नहीं आता।

iv. लाभ व लगान दोनों मे मौलिक अन्तर है क्योंकि लगान कभी भी ऋणात्मक नहीं हो सकता।

v. यह सिद्धान्त लाभों में पाये जाने वाले अन्तर को स्पष्ट करता है, उसकी प्रकृति को स्पष्ट नहीं करता।

27.4.3 लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त साधनों के पुरस्कार निर्धारण की दृष्टि से एक वैज्ञानिक सिद्धान्त माना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि अन्य बातों समान रहें तो दीर्घकाल में किसी

साधन का पुरस्कार उसकी सीमान्त उत्पादकता में समान होने की प्रवृत्ति पायी जाती हैं। उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता अधिक होने पर लाभ की मात्रा अधिक होगी और उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता कम होने पर लाभ की मात्रा कम होगी। यहाँ एक बात स्पष्ट रूप से कहना आवश्यक है कि भूमि, श्रम, पूँजी आदि साधन तो ऐसे हैं, जिनकी सामान्य उत्पादकता सरलता से ज्ञात की जा सकती है, क्योंकि अन्य साधनों की मात्रा स्थिर रखकर इनकी क्रमशः एक इकाई बढ़ाकर सीमान्त उत्पादकता निकाली जा सकती है और परिवर्तनशील अनुपातों के नियम लागू होने के कारण एक बिन्दु के बाद सीमान्त उत्पादकता क्रमशः गिरती जाती है। एक फर्म में उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात करना कठिन है, क्योंकि एक फर्म में एक ही उद्यमी होता है। हाँ, उद्योग में उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात की जा सकती है।

आलोचनायें :- इस सिद्धान्त की आलोचना निम्न बातों पर आधार की गयी है -

i. यह सिद्धान्त माँग पर ही विचार करता है और पूर्ति पक्ष की उपेक्षा करता है। इसे एकपक्षीय सिद्धान्त कहा जा सकता है।

ii. साहसी या उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता की गणना सरलता से नहीं की जा सकती क्योंकि एक फर्म की स्थिति में एक ही उद्यमी होता है।

iii. इस सिद्धान्त में भी लाभ के निर्धारक महत्वपूर्ण तत्वों को छोड़ दिया गया है।

27.4.4 क्लार्क का लाभ सम्बन्धी प्रावैगिक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन के अर्थशास्त्री प्रो0 जे0बी0 क्लार्क ने किया था। क्लार्क के अनुसार, लाभ उत्पन्न होने का आधारभूत कारण अर्थव्यवस्था में होने वाला प्रावैगिक परिवर्तन है। स्थैतिक अर्थव्यवस्थ में कोई लाभ प्राप्त नहीं होता है। इसका कारण यह है कि इसमें माँग एवं पूर्ति की दशाएँ भी स्थिर रहती हैं। स्थैतिक अर्थव्यवस्था में कोई जोखिम एवं अनिश्चिता नहीं होती है। **प्रो0 नाइट** ने लिखा है कि, **''स्थैतिक स्थिति में प्रत्येक साधन को वही मूल्य प्राप्त होता है तो कि वह वस्तुओं के उत्पादन में व्यय करता है। चूँकि लागत एवं बिक्री मूल्य हमेशा समान होते है, अतः साहसी को दैनिक कार्य निरीक्षण के लिए मजदूरों के अतिरिक्त कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सकता।''**

क्लार्क के अनुसार, लाभ अर्थव्यवस्था में प्रावैगिक परिवर्तनों के कारण प्राप्त होता हैं उनके अनुसार अर्थव्यवस्था में मुख्यतया 6 प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं -

(i) जनसंख्या में वृद्धि
(ii) उपभोक्ताओं की रुचि एवं पसंदगियों में परिवर्तन

(iii) लोगों की आवश्यकताओं में वृद्धि
(iv) पूँजी-निर्माण में वृद्धि
(v) तकनीकी सुधार में परिवर्तन
(vi) व्यावसायिक संगठन के स्वरूप में परिवर्तन

इन परिवर्तनों के कारण अर्थव्यवस्थ प्रावैगिक हो जाती है। अर्थव्यवस्थ में माँग एवं पूर्ति की दशाओं में परिवर्तन हो जाता है। इन्हीं परिवर्तनों के अन्तर्गत एक कुशल एवं योग्य साहसी नई तकनीक से कम लागत में श्रेष्ठ किस्म की वस्तु उत्पादित कर लाभ प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में उसी साहसी को लाभ प्राप्त होता है जो इन परिवर्तनों के कारण जोखिम उठाता है और अनिश्चितताओं को सहन करता है।

आलोचनाएँ

(i) प्रो0 नाइट के अनुसार, लाभ हर प्रकार के परिवर्तनों का परिणाम नहीं होता है। यह केवल अदृश्य एवं अनिश्चित परिवर्तन जिनके लिए एक साहसी बीमा नहीं करा पाता है, उन्हीं परिवर्तनों के भार को सहन करने का परिणाम होता है।

(ii) क्लार्क ने अपने सिद्धान्त में संघर्ष लाभ की चर्चा की है, न कि वास्तविक लाभ का। चूँकि आर्थिक प्रावैगिक का अर्थ निरन्तर परिवर्तन से होता है जबकि क्लार्क ने तुलनात्मक परिवर्तनों के कारण जो लाभ प्राप्त होता है उसकी चर्चा की है। अतः क्लार्क का लाभ-सिद्धान्त वास्तविक लाभ की व्याख्या न करके तुलनात्मक लाभ या संघर्ष लाभ की व्याख्या करता है-उपर्युक्त आलोचनाओं के कारण यह सिद्धान्त एक अपूर्ण सिद्धान्त है।

27.4.5 शुम्पीटर का लाभ सम्बन्धी नव प्रवर्तन सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो0 जोसेफ ए0 शुम्पीटर ने किया था। शुम्पीटर के अनुसार लाभ साहसी द्वारा उत्पादन के नव-प्रवर्तन को लागू करने का परिणाम होता है। साहसी का प्रमुख कार्य उत्पादन के क्षेत्र में नव-प्रवर्तन को लागू करने का है।

नव-प्रवर्तन का अर्थ-शुम्पीटर के अनुसार, नव-प्रर्वतन का अभिप्राय वस्तु के उत्पादन एवं इसकी बिक्री की दशाओं में किये जाने वाले उन सभी परिवर्तनों से है जिनका उद्देश्य वस्तु की उत्पादन लागत में कमी करना अथवा वस्तु की बिक्री में वृद्धि कर आय को बढ़ाना होता है। ये नव-प्रवर्तन अनेक प्रकार के हो सकते हैं, जैसे-(1) उत्पादन की नई विधि का प्रयोग करना, (2) नई मशीनों एवं यन्त्रों का प्रयोग करना, (3) फर्म के आन्तरिक संगठन में परिवर्तन करना, (4) कच्चे माल के स्रोतों को ढूँढना, (5) वस्तु की किस्म में सुधान करना एवं (6) वस्तु की बिक्री करने की विधियों में परिवर्तन करना आदि।

शुम्पीटर का विचार था कि साहसी को लाभ नव-प्रवर्तनों को उत्पादन के क्षेत्र में लागू करने के कारण प्राप्त होता है इन नव-प्रर्वतनों को लागू करके साहसी अपनी वस्तु को दूसरे उत्पादकों की तुलना में कम लागत में उत्पादित करता है तथ उसकी बिक्री अधिक मात्रा में करके लाभ प्राप्त करता है। शुम्पीटर ने वैज्ञानिक एवं नव-प्रवर्तक में अन्तर किया है। उनके अनुसार वैज्ञानिक वह व्यक्ति है जो नई विधि एवं नई तकनीक की खोज करता है, किन्तु नव-प्रवर्तक वह व्यक्ति होता है जो इन खोजों का प्रयोग लाभ कमाने के लिए अपने व्यवसाय में करता है। प्रो0 सेम्युलसन ने इसे एक सुन्दर उदाहरण से स्पष्ट किया है- मैक्सवेल ने रेडियो तरंग का आविष्कार किया था जबकि मारकोनी एवं सरनोफ ने इसका रेडियो के निर्माण में प्रयोग किया। अतः मैक्सवेल वैज्ञानिक था जबकि मारकोनी एवं सरनोफ नव-प्रवर्तक थे। तकनीकी विशेषज्ञ को एक निश्चित राशि रॉयल्टी के रूप में दे दी जाती है। चूँकि सहसों किसी नव-प्रर्वतन को लाभदायक समझकर वस्तु के उत्पादन में प्रयोग करता है और जोखिम उठाता है, अतः साहसी को ही लाभ प्राप्त होता है।

लाभ की प्रकृति अस्थायी होती है-शुम्पीटर के अनुसार, साहसी को नव-प्रवर्तन को उत्पादन में अपनाने के कारण होने वाला लाभ अस्थायी होता है। जब कोई साहसी किसी नव-प्रवर्तन का प्रयोग उत्पादन के क्षेत्र में सबसे पहले करता है, उसे लाभ प्राप्त होता है, किन्तु जैसे ही अन्य साहसियों के द्वारा उस नव-प्रर्वतन का प्रयोग

अपनी-अपनी वस्तुओं के उत्पादन में अपना लिया जाता है, वैसे ही प्रथम साहसी का लाभ समाप्त हो जाता है। जब कोई साहसी किसी नये नव-प्रर्वतन (तकनीकी) का प्रयोग उत्पादन के क्षेत्र में फिर से करेगा, उसे लाभ मिल ना शुरू हो जायेगा। अतः साहसी के लाभ की प्रकृति अस्थायी होती है।

लाभ एक प्रावैगिक आय- शुम्पीटर के अनुसार, ''लाभ एक प्रावैगिक आय है। यह स्थैतिक समाज में उत्पन्न नहीं होता है। प्रावैगिक समाज में साहसी उत्पादन के क्षेत्र में नई-नई उत्पादन की मशीनों एवं तकनीकी का प्रयोग करके लाभ प्राप्त करता है। इस दृष्टि से शुम्पीटर का विचार क्लार्क के विचार से मेY रखता है, किन्तु शुम्पीटर का विचार है कि लाभ प्रावैगिक समाज में केवल   एक ही प्रकार के नव-प्रवर्तन को लागू करने के कारण प्राप्त नहीं होता है बल्कि यह उत्पादन के क्षेत्र में निरन्तर नये-नये नव-प्रवर्तनों को अपनाने का परिणाम होता है।

लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार नहीं -शुम्पीटर के अनुसार, ''लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार नहीं होता है क्योंकि साहसी जोखिम नहीं उठाता है। उत्पादन कार्य में जोखिम पूँजीपति उठाता है जिन्होंने साहसी को ऋण दिया है। अतः शुम्पीटर के अनुसार जोखिम पूँजीपति उठाता है न कि साहसी। इस प्रकार शुम्पीटर एवं नाइट के विचारों में भिन्नता है''।

लाभ भिन्न प्रकार की आय-शुम्पीटर के अनुसार, लगान , मजदूरों एवं ब्याज की प्रकृति स्थायी होती है। ये नियमित रूप से प्राप्त होती है और सभी स्थितियों में उत्पन्न होती हैं, किन्तु लाभ एक

अस्थायी बचत है जो नव-प्रवर्तन को उत्पादन के क्षेत्र में लागू करने के कारण प्राप्त होता है। दीर्घकाल में यह साहसियों के द्वारा उसी नव-प्रवर्तन को अपना लिए जाने के कारण समाप्त हो जाता है।

आलोचनाएँ

आलोचकों के अनुसार इस सिद्धान्त में लाभ को प्रभावित करने वाले अन्य तत्वों को महत्व नहीं दिया गया है। अतः यह एक व्यापक सिद्धान्त नहीं है।

यह सिद्धान्त लाभ को जोखिम उठाने का पुरस्कार नहीं मानता है। आलोचकों का विचार है कि जोखिम उठाना पूँजीपति का नहीं बल्कि साहसी का मुख्य कार्य होता है।

शुम्पीटर ने साहसी के कार्य को सीमित कर दिया है। साहसी केवल नव-प्रवर्तनों को ही उत्पादन में लागू नहीं करता बल्कि वह उत्पादन के विभिन्न साधनों को संगठित करता है, उसका निर्देशन करता है। अतः लाभ साहसी के इन सभी कार्यों का पुरस्कार होता है।

27.4.6 जोखिम तथा अनिश्चितता वहन करने के सिद्धान्त

लाभ के विषय में एफ0बी0 हाले ने यह मत दिया था कि उद्यम में निहित जोखिम को वहन करने का पुरस्कार साहसी को लाभ के रूप में प्राप्त होता है। ए0सी0 पीगू ने भी इसी प्रकार का मत दिया था, यद्यपि जोखिम वहन सिद्धान्त करने का श्रेय हाले को ही जाता है।

जोखिम वहन सिद्धान्त के अनुसार वस्तु का उत्पादन करने में जोखिम निहित होता है एवं कोई भी उद्यम बगैर जोखिम के सम्भव नहीं है। इस जोखिम को उठाकर उत्पादन कार्य करने के पारितोषिक के रूप में समाज द्वारा साहसी को जो कीमत दी जाती है वही लाभ है।

लाभ का जोखिम सिद्धान्त अपने आप में पूर्ण नहीं माना गया एवं इसे और अधिक विकसित कर अनिशिचतता वहन सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत किया गया । अनिश्चितता वहन सिद्धान्त में जोखिम की स्पष्ट व्याख्या की गई है एवं पूर्वानुमान के योग्य अथवा अयोग्य जोखिम के अन्तर को स्पष्ट किया गया है।

अनिश्चितता वहन करने का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिका के अर्थशास्त्री प्रो0 नाइटद्ध ने किया था। इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में प्रो0 नाइट ने लिखा है कि जिस प्रकार पूँजीपति का कार्य प्रतीक्षा करना है, उसी प्रकार साहसी का मुख्य कार्य उत्पादन सम्बन्धी सभी अनिश्चितताओं को वहन करना होता है न कि जोखिम उठाना। अतः लाभ अनिश्चितताओं को वहन करने का साहसी को पुरस्कार होता है तथा उसकी लाभ की मात्रा अनिश्चितताओं की मात्रा पर निर्भर होती है।

प्रो0 नाइट ने जाखिमों को दो भागों में बाँटा है-

i. बीमा योग्य जोखिम
ii. गैर-बीमा योग्य जोखिम

(i) **बीमा योग्य जोखिम-**व्यवसाय में कुछ जोखिम ऐसे होते हैं जिनके विषय में साहसी पहले से अनुमान लगा लेता है। ऐसे जोखिमों को द्रष्टव्य जोखिम भी कहते हैं। इन जोखिमों के लिए साहसी बीमा करा लेता है। उदाहरण के लिए आग , चोरी दुर्घटना आदि। चूँकि साहसी इन जोखिमों के लिए बीमा करा लेता है, अतः वास्तव में कोई जोखिम नहीं उठाता है। वास्तव में जोखिम बीमा कम्पनी उठाती है। इसके लिए बीमा कम्पनी प्रीमियम की राशि निर्धारित कर देती है और साहसी को यह प्रीमियम की राशि बीमा कम्पनी के पास जमा करनी होती है। चूँकि प्रीमियम की यह राशि वस्तु के उत्पादन लागत में सम्मिलित रहती है अतः लाभ ऐसे बीमा कराये गये जोखिमों का पुरस्कार नहीं होता है।

(ii) **गैर-बीमा योग्य जोखिम-**गैर-बीमा योग्य जोखिम के विषय में साहसी पहले से अनुमान नहीं लगाता। अतः इनका वह बीमा नहीं कर पाता है। अतः ऐसे गैर-बीमा योग्य जोखिमों को सहन करने के लिए ही साहसी को लाभ प्राप्त होता है। चूँकि गैर-बीमा योग्य जोखिम अनिश्चित होते हैं, इसीलिए प्रो0 नाइट ने लाभ के अनिश्चितता वहन करने का पुरस्कार कहा है।

गैर-बीमा योग्य जोखिम निम्न प्रकार के हो सकते हैं:-

(1) माँग में परिवर्तन-उपभोक्ताओं की आय, रुचि, फैशन एवं जनसंख्या के आकार में परिवर्तन होने के कारण वस्तु की माँग में परिवर्तन हो जाता है। वस्तु की माँग में रहने वाले इन परिवर्तनों से यह सम्भव है कि साहसी को हानि हो जाय। इस प्रकार की हानि के लिए बीमा नहीं होता है।

(2) व्यापार चक्र-पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में तेजी एवं मन्दी की घटनाएँ आती रहती हैं। मन्दी के समय वस्तुओं की बिक्री न हो पाने के कारण साहसी को हानि हो जाती है। मन्दी के कारण साहसी को जो हानि होती है, इसका भी बीमा नहीं होता है।

(3) तकनीकी परिवर्तन-तकनीकी ज्ञान के क्षेत्र में निरन्तर सुधार हो रहा है। अतः साहसी को बाजार में अपनी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति को बनाए रखने के लिए नई तकनीकी एवं मशीनों का प्रयोग करना पड़ता है। यदि साहसी नई तकनीक एवं मशीनों का प्रयोग अपनी वस्तु के उत्पादन में नहीं कर पाता है तो उसे हानि होती है। इस हानि के लिए भी वह बीमा नहीं करा पाता है। इसी प्रकार से उपभोक्ताओं की रुचि, आय, स्थानापन्न वस्तुओं की कीमतों, जनसंख्या के आकार मं ढाँचागत परिवर्तन होते रहते हैं। इन सभी परिवर्तनों का व्यवसाय पर प्रभाव पड़ता है। इन परिवर्तनों के कारण

यह सम्भव है कि साहसी को वस्तु के उत्पादन में हानि हो जाय। इन अनिश्चितताओं के लिए बीमा नहीं हो पाता है।

प्रो0 नाइट का विचार है कि साहसी का मुख्य कार्य इन्हीं अनिश्चतताओं के कारण होने वाली हानि को सहन करना है। अतः साहसी का लाभ अनिश्चितता वहन करने का पुरस्कार है।

आलोचनाएँ - इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाँए निम्नलिखित हैं-

(i) लाभ केवल अनिश्चितता वहन करने का पुरस्कार ही नहीं होता है। इसका कारण यह है कि साहसी वस्तु के उत्पादन में अन्य महत्वपूर्ण कार्य जैसे-उत्पादन सम्बन्धी योजना बनाना, वस्तु की किस्म के सम्बन्ध में निर्णय लेना, उत्पादन के साधनों की व्यवस्था करना, नव-प्रर्वतनों को लागू करना आदि कार्यों को भी करता है। अतः लाभ केवल अनिश्चितता वहन करने का ही पुरस्कार नहीं बल्कि इन सभी कार्यों का पुरस्कार होता है।

(ii) अनिश्चितता वहन करना उत्पादन का अलग से साधन नहीं होता है।

(iii) यह सिद्धान्त साहसी के एकाधिकारी लाभ की व्याख्या नहीं करता है। एकाधिकारी लाभ प्राप्त होने पर साहसी कोई अनिश्चितता का भार वहन नहीं करता है।

(iv) अनिश्चितता सम्बन्धी तत्वों को मात्रा के रूप में ठीक-ठाक माप सकना भी कठिन है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के कारण यह सिद्धान्त भी मान्य एवं पूर्ण सिद्धान्त नहीं है।

27.4.7 लाभ का आधुनिक सिद्धान्त

साहसी का पुरस्कार भी माँग और पूर्ति की साम्य से निर्धारित होता है। साहसियों के लाभ को मालूम करने के लिये उन्हें दो भागों में विभाजित किया जाता है-

(1) साहसियों की माँग , (2) साहसियों की पूर्ति

(1) साहसियों की माँग - साहसियों की माँग को निम्न तत्व प्रभावित करते हैं -

(i)जनसंख्या की मात्रा, (ii)पूँजी की उपलब्धता, (iii)साहसियों की संख्या(iv) उद्योगो में अनिश्चितता का अंश (v) औद्योगिक अनुभव (vi) समाज की दशा (vii) प्रबन्ध तथा तकनीकी सेवी वर्ग की उपलब्ध ता।

साहसी की पूर्ति, पर्याप्त पूँजी, तकनीकी सेवी वर्ग, पर्याप्त जनसंख्या एवं अन्य उपरोक्त तत्वों से प्रभावित होती है। इसमें भी अनिश्चितता का अंश साहसियों को पूर्ति का महत्वपूर्ण भाग है। जितना अधिक अनिश्चिता का अंश होगा साहसी उस क्षेत्र में उतना ही अधिक प्रभावित होकर अपनी पूर्ति बढ़ायेगा। जैसा कि चित्र के SS वक्र से स्पष्ट है।

चित्र 27.7 से यह स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे लाभ में वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे साहसियों की संख्या में भी वृद्धि होती है।

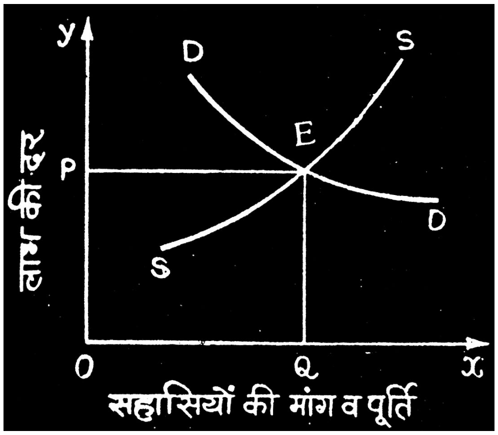

चित्र 27.7

लाभ का निर्धारण-पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से लाभ का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ उद्योग के लिये साहसियों की माँग रेखा उसकी पूर्ति रेखा को काटती है। यह उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है।

उपर्युक्त चित्र के अनुसार साहसियों की माँग रेखा DD एवं पूर्ति रेखा SS एक दूसरे को E बिन्दु पर काटती हैं। इस प्रकार OP लाभ दर पर साहसियों की कुल माँग एवं कुल पूर्ति OQ है।

27.5 सांराश

इस इकाई में लाभ के विभिन्न अर्थ व परिभाषायें दिये गये हैं। कुल लाभ तथा वास्तविक लाभ के अन्तर को बताते हुए सामान्य लाभ तथा असामान्य लाभ की चर्चा की गयी है। लाभ के प्रतिष्ठित से लेकर आधुनिक सिद्धान्तों की चर्चा है। जनसंख्या में वृद्धि, उत्पादन विधि में सुधार, तकनीकी विकास, पूँजी की पूर्ति में वृद्धि, उपभोक्ताओं की रूचि, इच्छा आदि में हुए परिवर्तन तथा औद्योगिक संगठनों में हुए परिवर्तनों तथा नव प्रवर्तन का लाभ के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है ? निश्चित तथा अज्ञात जोखिम का लाभ पर कैसे प्रभाव पड़ता है ? इसको समझाने का प्रयास किया गया है। अन्त में विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से लाभ की जानकारी करते हुए लाभ से सम्बन्धित विस्तृत विवेचना की गयी है।

लाभ जोखिम उठाने, नव-प्रवर्तन को लागू करने एवं अनिश्चिताओं को गहन करने का परिणाम होता है। लाभ एक अविशिष्ट बचत होती है। यह साहसी को अन्य साधनां के पुरस्कार चुकाने के बाद प्राप्त होता है। लाभ अनिश्चित होता है। लाभ ऋणात्मक भी हो सकता है।

जे0 बी0 क्लार्क के अनुसार लाभ प्रावैगिक परिवर्तनों के कारण प्राप्त होता है- (1) जनसंख्या में वृद्धि (2) उपभोक्ता की रुचि एवं पसन्दगी में परिवर्तन (3) लोगो की आवश्यकताओं में वृद्धि (4) पूँजी-

निर्माण में वृद्धि (5) तकनीकी सुधार में परिवर्तन (6) व्यावसायिक संगठन में परिवर्तन। शुम्पीटर के अनुसार लाभ नव-प्रवर्तन को लागू करने का परिवर्तन होता है। नव-प्रवर्तन भी 6 प्रकार के होते है-
(1) उत्पादन की नई विधि का प्रयोग (2) नयी मशीनों का प्रयोग (3) फर्म के आन्तरिक संगठन में परिवर्तन (4) कच्चे माल के स्रोत को ढूँढना (5) वस्तु के किस्म में सुधार (6) वस्तु की बिक्री करने की विधि में परिवर्तन।
प्रो0 हॉले के अनुसा लाभ जोखिम तथा अनिश्चितता गहन करने का परिणाम होता है।
प्रो0 नाइट के अनुसार लाभ अज्ञात अनिश्चितताओं को वहन करने का पुरस्कार होता है।
आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लाभ साहसियों की माँग एवं पूर्ति की साम्य से निर्धारित होता है।

27.6 शब्दावली

बीमा योग्य जोखिम- व्यवसाय में कुछ जोखिम ऐसे होते हैं जिनके विषय में साहसी पहले से अनुमान लगा लेता है। ऐसे जोखिमों को ‘‘द्रष्टव्य जोखिम’’ भी कहते हैं। इन जोखिमों के लिए साहसी बीमा करा लेता है। उदाहरण के लिए आग , चोरी, दुर्घटना आदि। चूँकि साहसी इन जोखिमों के लिए बीमा कम लेता है, अतः वास्तव में कोई जोखिम नहीं उठाता है। वास्तव मे जोखिम बीमा कम्पनी उठाती है। इसके लिए बीमा कम्पनी प्रीमियम की राशि निर्धारित कर देती है और साहसी को यह प्रीमियम की राशि बीमा कम्पनी के पास जमा करनी होती है। चूँकि प्रीमियम की यह राशि वस्तु के उत्पादन लागत में सम्मिलित रहती है अतः लाभ ऐसे बीमा कराये गये जोखिमों का पुरस्का नहीं होता है।
गैर-बीमा योग्य जोखिम- गैर-बीमा योग्य जोखिम के विषय में साहस पहले से अनुमान नहीं Yगा सकता। अतः इनका वह बीमा नहीं कर सकता है। अतः ऐसे गैर-बीमा योग्य जोखिमों को सहन करने के लिए ही साहसी को लाभ प्राप्त होता है। चूँकि गैर-बीमा योग्य जोखिम अनिश्चित होते हैं, इसीलिए प्रो0 नाइट ने लाभ के अनिश्चितता वहन करने का पुरस्कार कहा है।
व्यापार चक्र- पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में तेज एवं मन्दी की घटनाएँ आती रहती हैं। मन्दी के समय वस्तुओं की बिक्री न हो पाने के कारण साहसी को हानि हो जाती है। मन्दी के कारण साहसी को जो हानि होती है, इसका भी बीम नहीं होता है।
तकनीकी परिवर्तन- तकनीकी ज्ञान के क्षेत्र में निरन्तर सुधार होना ही तकनीकी परिवर्तन होता है अतः साहसी को बाजार में अपनी प्रतिस्पर्धात्मक शाक्ति को बनाए रखने के लिए नई नकनीकी एवं मशीनों का प्रयोग करना पड़ता है।

27.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लाभ का नव-प्रवर्तन सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाला अर्थशास्त्री था-
(a) शुम्पीटर (b) नाइट (c) क्लार्क (d) हॉले
2. प्रो0 शुम्पीटर के अनुसार लाभ नवीन आविष्कारों के कारण निम्न को प्राप्त होता है -
(a) प्रयोग कर्त्ता को (a) विचारकों को (a) वैज्ञानिकों को (a) इनमें से सभी को
3. लाभ दरों में असमानता का कारण है-

(a) जोखिम में अन्तर होना (b) योग्यता भिन्नता
(c) प्रावैगिक परिवर्तन (d) इनमें से सभी

4. सकल लाभ के अंग हैं-
(a) साहसी के स्व-साधनों का प्रतिफल (b) उद्यमी द्वारा प्रबन्ध के लिए किया व्यय
(c) उद्यमी को मिल ने वाले एकाधिकार लाभ (d) इनमें से सभी

5. निम्न कथनों में से कौन-सा कथन सबसे सही है-
(a) लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार है
(b) लाभ अनिश्चितता उठाने का पुरस्कार है
(c) लाभ मजदूरी का ही एक रूप है
(d) लाभ साहसी की सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करता है

6. विशुद्ध लाभ बराबर होना चाहिए-
(a) कुल लाभ - अस्पष्ट लागतें (b) कुल लाभ - स्पष्ट लागतें
(c) कुल लाभ - कुल लागतें (d) कुल आगम - (कुल स्पष्ट लागतें अस्पष्ट लागतें)

7. अनिश्चितता वहन करने का लाभ का सिद्धान्त के प्रतिपादक थे-
(a) प्रो0 नाइट (b) जे0 बी0 क्लार्क (c) शुम्पीटर (d) हॉले

उत्तर-1. (a), 2. (a), 3. (d), 4. (d), 5. (b), 6. (d), 7. (a),

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लाभ किसे कहते हैं।
2. लाभ की विशेषताएँ बताइए।
3. कुल लाभ एवं शुद्ध लाभ में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. लाभ के सन्दर्भ में शुम्पीटर का दृष्टिकोण बताइए।
5. नाइट का लाभ सम्बन्धी दृष्टिकोण स्पष्ट कीजिए।

27.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्रा, जे0पी0 (2009): उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त -मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन,वाराणसी।
2. सिन्हा, वी0सी0 (1990): उन्नत आर्थिक सिद्धान्त, स्टूडेन्ट फ्रेन्डस इलाहाबाद।
3. आहूजा, एम0एल0 (2006): उच्च आर्थिक सिद्धान्त - व्यष्टिपरक विश्लेषण, चन्द्र प्रकाशन, दिल्ली।
4. लाल, एस0 एन0 (2005): उच्च आर्थिक सिद्धान्त, शिवा पब्लिशिंग हाऊस -इलाहाबाद।
5. लाल, एस0 एन0 (2008): माइक्रों इकोनामिक्स:शिवा पब्लिशिंगहाऊस - इलाहाबाद।
8. जैन, पी0 सी0 (1995): उच्च आर्थिक विश्लेषण, चुग प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. त्रिपाठी, बद्री विशाल (2000): एडवांस इकोनोमिक थ्योरी,किताब महल्, इलाहाबाद।

27.9 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Mehta,J.K.(1980):EconomicTheory,ChughPublications,Allahabad.
- Jhingan, M.L. (2007) : Advanced Economic Theory, Vrinda Prakashan, New Delhi.
- Seth, M.L. (2007): Micro Economics, L.N. Agrwal Publications, Agra.
- P. Samuelson (1967) : Micro Economic Theory & Policy, Oxford University Press, U.K.
- Dhingra, I.S. (2005) : Advaned Economics Theory New Century Publication. DelhiTripathi, B.B. (2000) : Micro Economics, Kitab Mahal Allahabad

27.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''लाभ अनिश्चितता सहन करने का भुगतान है।'' विवेचना कीजिए।
2. लाभ का नव-प्रवर्तन सिद्धान्त को समझाइए।
3. ''लाभ जोखिम उठाने तथा अनिश्चितता सहन करने का पुरस्कार है।'' समीक्षा कीजिए।
4. हॉले, नाइट, शुम्पीटर में से किन्हीं दो के लाभ के सिद्धान्त को बतलाइए।

इकाई-28 कल्याणकारी अर्थशास्त्र और पीगू की अवधारणा

इकाई संरचना

28.1 प्रस्तावना

28.2 उद्देश्य

28.3 कल्याणकारी अर्थशास्त्र

28.3.1 कल्याणकारी अर्थशास्त्र की प्रकृति

28.3.2 वास्तविक अर्थशास्त्र एवं कल्याणकारी अर्थशास्त्र

28.3.4 सामान्य कल्याण एवं आर्थिक कल्याण

28.3.5 व्यक्ति कल्याण तथा समाज कल्याण

28.4 पीगू की अवधारणा

28.4.1 पीगू की कल्याण सम्बन्धी धारणा

28.4.2 कल्याणकारी अर्थशास्त्र की दशाएं

28.4.3 ''अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था'' की धारणा

28.4.4 सीमान्त निजी व सीमान्त सामाजिक लागतों एवं प्रतिफलों के विचलन का विश्लेषण

28.4.5 आदर्श उत्पाद धारणा

28.5 प्रो0 पीगू के कल्याणकारी अर्थशास्त्र की आलोचनाएं

28.6 सारांश

28.7 शब्दावली

28.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

28.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

28.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

28.11 निबन्धात्मक प्रश्न

28.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक पहलू से प्रमुख रूप से सम्बन्धित होंगे। पहले की इकाइयों के अध्ययन को अर्थशास्त्र की वास्तविक पहलू से जोड़ा गया था। अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्रियों ने बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इस विषय की चर्चा की है।

प्रस्तुत इकाई में कल्याणकारी अर्थशास्त्र की मूल अवधारणा को विस्तृत रूप से समझाया गया है। सामाजिक एवं 'आर्थिक कल्याण के मध्य अतंर के विश्लेषण को प्रस्तुत किया गया है।

इसके अतिरिक्त सामाजिक कल्याण सम्बन्धी मानदण्ड के सम्बन्ध में पीगू की व्याख्या का प्रस्तुतीकरण भी किया गया है। पीगू के कल्याणकारी अर्थशास्त्र के दष्टिकोण को विस्तार से समझा जा सकेगा जिसमें पीगू की आदर्श उत्पाद धारणा की व्याख्या भी की गयी हे।

28.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- वास्तविक तथा कल्याणकारी अर्थशास्त्र में अन्तर तथा सम्बन्ध का विश्लेषण कर सकेंगे।
- मूल्य निर्णय के अर्थ को समझा सकेंगे।
- सामाजिक एवं 'आर्थिक कल्याण के मध्य अतंर को सूचीबद्व कर सकेंगे।
- पीगू के कल्याण की दशाओं का विस्तृत रूप से विवरण करने में सक्षम हो सकेंगे।
- सीमान्त निजी एवं सीमान्त सामाजिक लागतों एवं प्रतिफलों में विचलन का विश्लेषण कर सकेंगे।
- वाह्य प्रभावों के अर्थ का मूल्याकंन कर सकेंगे।
- पीगू के आदर्श उत्पाद धारणा को संप्रषित कर सकेंगे।

28.3 कल्याणकारी अर्थशास्त्र

प्रो0 सिटोवस्की की परिभाषा के अनुसार, कल्याण अर्थशास्त्र ''आर्थिक सिद्धान्त के सामान्य शरीर का वह भाग है जो प्रमुख रूप से नीति से सम्बन्ध रखता है।'' इस दृष्टि से ''कल्याणकारी अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेष्ण की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध मुख्यतः ऐसी कसौटियों का प्रतिपादन करना है जिनके आधार पर नीतियों का विकास करके सामाजिक कल्याण को अधिकतम किया जा सकता है।''

28.3.1 कल्याणकारी अर्थशास्त्र की प्रकृति

कल्याणकारी अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र विज्ञान की वह शाखा है जिसके आधार पर समाज के अधिकतम कल्याण के लिये नीतियों को अपनाया जा सकता है। यह आर्थिक व्यवस्था की कुशलता का ही नहीं, वरन् सामाजिक कल्याण की दृष्टि से सरकारी नीतियों का मूल्यांकन करता है। अतः अर्थशास्त्र का आदर्शात्मक पहलू ही कल्याणकारी अर्थशास्त्र का आधार है।

कल्याणकारी अर्थशास्त्र का विचार जे0 बैन्थम ने उपयोगितावाद के नाम से बहुत पहले ही दिया था किन्तु इसे कल्याणकारी अर्थशास्त्र के रूप में नहीं जाना जाता था। इसके पश्चात मार्शल , पीगू, कैल्डोर, हिक्स, स्किटोवस्की, परेटो, सेमुएल्सन, बर्गसन, ग्राफ, लिटिल , ऐरो एवं रेडर आदि अर्थशास्त्रियों ने कल्याणकारी अर्थशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योग दान दिया।

28.3.2 वास्तविक अर्थशास्त्र एवं कल्याणकारी अर्थशास्त्र

वास्तविक अथवा विशुद्ध अर्थशास्त्र एवं कल्याणकारी अर्थशास्त्र के बीच सन् 1930 के बाद ही अन्तर किया जाने लगा था। उनके मध्य निम्न अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है:-

1. वास्तविक अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो एवं नियमों का विश्लेषण करता है जबकि कल्याणकारी अर्थशास्त्र आर्थिक नीतियों के परीक्षण तक ही सीमित रहता है।

2. वास्तविक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत हम कारण-परिणाम सम्बन्ध तक ही सीमित रहते हैं वरन् कल्याणकारी अर्थशास्त्र कारण-परिणाम सम्बन्धों की वांछनीयता अथवा अवांछनीयता से सम्बन्धित होते हैं।

3. वास्तविक अर्थशास्त्र आर्थिक घटक ''क्या है'' प्रश्न से सम्बन्धित होता है। उदाहरण के लिये ''पूर्ति स्थिर रहने पर मांग मे वृद्धि से मूल्यों में वृद्धि होती है'', ऐसा क्यों होता है, वास्तविक अर्थशास्त्र यहीं तक सीमित है जबकि कल्याणकारी अर्थशास्त्र ''क्या होना चाहिये'' प्रश्न से सम्बन्धित होता है। उपर्युक्त उदाहरण में मूल्य में वृद्धि वांछनीय है अथवा नहीं, यदि अवांछनीय है तो उसे कम करने के उपाय के विषय में कल्याणकारी अर्थशास्त्र सुझाव देता है।

4. वास्तविक अर्थशास्त्र विश्लेषिक उपकरणों का निर्माण करता है। कल्याणकारी अर्थशास्त्र आर्थिक कल्याण में अधिकतम वृद्धि करने हेतु इन्हीं उपकरणों को विशिष्ट आर्थिक परिस्थितियों पर लागू करता है।

5. वास्तविक अर्थशास्त्र केवल सैद्धान्तिक है जबकि कल्याणकारी अर्थशास्त्र निर्देशात्मक है।

6. वास्तविक अर्थशास्त्र के निष्कर्षो की यथार्थ संसार के पर्यवेक्षण द्वारा जांच की जा सकती है। उदाहरणार्थ मांग का नियम वास्तविक अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण नियम है और वस्तु बाजार का

अवलोकन करके इसकी परख की जा सकती है। इसके विपरीत कल्याणकारी अर्थशास्त्र के निष्कर्षों की प्रेक्षणों द्वारा परीक्षा नहीं की जा सकती है।

अतः वास्तविक अर्थशास्त्र का काम व्याख्या करना है और कल्याण अर्थशास्त्र का सुझाव अथवा उपचार करना है। वास्तविक अर्थशास्त्र की प्रस्थापनाओं की तरह कल्याण अर्थशास्त्र की प्रस्थापनाएं स्वयं सिद्ध कथनों तथा मान्यताओं के समूहों से व्युत्पन्न की जाती है। ग्राफ ने स्पष्ट किया है ''जहां यथार्थ अर्थशास्त्र में एक सिद्धान्त के परीक्षण का साधारण तरीका उसके निष्कर्षों का परीक्षण करना होता है, वहां एक कल्याण प्रस्थापना के परीक्षण का साधारण तरीका उसकी मान्यताओं का परीक्षण करना है।''

जिस प्रकार चिकित्सा-विज्ञान को चिकित्सा कार्य प्रणाली से अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार वास्तविक अर्थशास्त्र को कल्याणकारी अर्थशास्त्र से प्रथक करना सम्भव नहीं है। दोनो के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करने के पश्चात यह जान लेना अति आवश्यक है कि कल्याणकारी अर्थशास्त्र में मूल्य निर्णयों का क्या सिद्धान्त है?

28.3.3 मूल्य निर्णय

मूल्य निर्णय इस बात से अवगत कराता है कि आर्थिक समस्याओं का समाधान कैसे किया जाय। मूल्य-निर्णय का स्रोत नीतिशास्त्र है। डा0 ब्रैंड के अनुसार, एक निर्णय मूल्य निर्णय होता है यदि वह किसी निर्णय के लिये आवश्यक हो या उसका विरोध करे। ''इस परिवर्तन से आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी'', ''आर्थिक विकास तेजी से होना चाहिये'', ''आय विषमताओं को कम करने की जरूरत है'', इस प्रकार के सभी व्यक्तव्य मूल्य निर्णय होते है।

क्योंकि कल्याण अर्थशास्त्र नीति उपायों से सम्बन्ध रखता है, इसलिये इसमे ऐसी नैतिक शब्दावली रहती है जैसे कि ''समाज कल्याण'' या ''समाज लाभ'' या ''समाज हित''। इस प्रकार कल्याणकारी अर्थशास्त्र तथा नीति शास्त्र को अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि कल्याण प्रस्थापनाओं में मूल्य निर्णय पाये जाते हैं।

प्रो0 राबिन्स चाहते थे कि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में सभी नीतिशास्त्र विचारों अर्थात मूल्य निर्णयों का सफाया कर देना चाहिये। पेरेटो द्वारा प्रस्तुत आर्थिक कल्याण की धारणा में भी मूल्य निर्णयों के लिये कोई स्थान नहीं था। समाज में धन-सम्पत्ति के वितरण के विषय में पेरेटो ने चुप्पी साध रखी थी। इसी कारण से पेरेटो की कल्याण सम्बन्धी धारणा अत्यन्त प्रतिबन्धात्मक एवं अयथार्थ थी, यद्यपि पेरेटो का दावा था कि उनकी धारणा पूर्णतः वैज्ञानिक थी। इसका प्रतिरोध व्यक्त करने के लिये बर्गसन, सेम्युYसन और उनकी विचारों का समर्थन करने वाले अन्य अर्थशास्त्री ने कल्याण अर्थशास्त्र में

मूल्य निर्णयों का समावेश किया और घोषणा की कि ऐसा करने पर कल्याणकारी अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक स्वरूप पर कोई आंच नहीं आएगी।

28.3.4 सामान्य कल्याण एवं आर्थिक कल्याण

सामान्य कल्याण से अभिप्राय उन सभी आर्थिक तथा गैर-आर्थिक वस्तुओं तथा सेवाओं से है जो किसी समाज में रह रहे व्यक्तियों को उपयोगिताएं या संतुष्टियां प्रदान करती हैं। इस दृष्टिकोण से सामान्य कल्याण का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है। इसलिये पीगू अपने महान ग्रन्थ **"Economics of Welfare"**में केवल आर्थिक कल्याण की ही विवेचना करते हैं। पीगू के अनुसार, आर्थिक कल्याण सामान्य कल्याण का वह भाग है, ''जोकि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा के मापदण्ड से सम्बन्धित किया जा सकता है।''

पीगू के इस विचार की आलोचना करते हुये डा0 ग्राफ ने कहा कि मुद्रा आर्थिक कल्याण के माप के रूप में संतोषजनक मापन नहीं प्रस्तुत करता। इसके अतिरिक्त आर्थिक कल्याण विनिमय योग्य वस्तुओं एवं सेवाओं पर निर्भर नहीं करता क्योंकि एक मनःस्थिति को दूसरी मनःस्थिति से पृथक करके उसे आर्थिक कल्याण की संज्ञा नहीं दी जा सकती। उनके अनुसार किसी व्यक्ति का कल्याण आर्थिक तत्वों पर ही नहीं, बल्कि गैर आर्थिक तत्वों पर भी निर्भर करता है। क्योंकि गैर आर्थिक तत्वों की गणना सम्भव नहीं है इसलिये डा0 ग्राफ का मत है कि कल्याण सिद्वान्त में गैर आर्थिक तत्वों को स्थिर मानते हुये केवल आर्थिक तत्वों पर ही विचार करना चाहिये। पीगू के द्वारा किये गये भेद का समर्थन करते हुए रॉबर्ट्सन ने आर्थिक कल्याण शब्द के स्थान पर **"ecfare"**शब्द का प्रयोग किया। जबकि बोल्डिंग आर्थिक कल्याण को विनिमय योग्य वस्तुओं एवं सेवाओं की अवसर लागत के रूप में परिभाषित करता है। इन सभी विचारधाराओं से स्पष्ट होता है कि सभी अर्थशास्त्री पीगू के आर्थिक विचारों से किसी न किसी रूप में सहमत हैं।

28.3.5 व्यक्ति कल्याण तथा समाज कल्याण

पीगू के अनुसार एक व्यक्ति का कल्याण उसके मन की स्थिति या चेतना में रहता है और उसमें उसकी उपयोगिताएं एवं सन्तुष्टियां सम्मिलित रहती हैं। व्यक्ति का कल्याण विषयीXत है लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने व्यक्तिगत कल्याण को व्यक्तिगत चयन से जोड़कर उसे वस्तुनिष्ठ बना दिया है। जब एक व्यक्ति की स्थिति पहले से अच्छी हो जाये तब हम उपकल्पना के रूप में यह कह सकते हैं कि उसका कल्याण बढ़ गया है। परन्तु यह सम्भव नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति से यही पूछा जाय। व्यक्तिगत चयन के माध्यम से विभिन्न स्थितियों में किसी व्यक्ति के कल्याण की तुलना की जा सकती है। इस प्रकार डा0 मिशन चुनाव विस्तार सूचक का सुझाव देता है। इससे कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं होती है।

सामाजिक कल्याण से तात्पर्य एक ग्रुप या सोसायटी के कल्याण से है जिसमे सब व्यक्ति शामिल हैं। अतः वह व्यक्ति कल्याण का योग है। चूंकि समाज में प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से भिन्न सोचता है और काम करता है इसलिये समाज का कोई चुनाव विस्तार सूचक समाज कल्याण को प्रकट नहीं कर सकता। व्यक्तिगत चयन तो व्यक्तिगत कल्याण को प्रतिबिम्बित करता है परन्तु सामाजिक चयन समाज कल्याण का प्रतिनिधित्व नहीं करता। कारण यह कि सामाजिक चयन सर्वसम्मत नहीं होता। सामाजिक चयन का आधार व्यक्तिगत चयन है जिसमें स्वयं सर्वसम्मति बहुत कम पाई जाती है।
सामाजिक कल्याण की विभिन्न धारणाएं विद्यमान हैं।

1. पैतृक धारणा- इसके अनुसार समाज में रहने वाले व्यक्तियों के विचारों को कोई महत्व नहीं दिया जाता। महत्व दिया जाता है पैतृक अधिकरण अथवा किसी अधिनायक के विचारों को।

2. परेटो द्वारा प्रतिपादित धारणा- इस धारणा के अनुसार, सामाजिक कल्याण समाज में रहने वाले सभी व्यक्तियों के सामाजिक कल्याण पर निर्भर करता है। यदि समाज के किसी एक सदस्य के कल्याण में वृद्धि होती है, बशर्ते कि अन्य किसी सदस्य की आर्थिक स्थिति में ह्रास नहीं होता, तो हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक कल्याण में वृद्धि हुयी है।

3. अब्राहम बर्गसन की धारणा- उनके अनुसार आर्थिक संगठन में रहने वाले परिवर्तन समाज के कुछ सदस्यों की स्थिति को श्रेष्ठ और कुछ को निम्नतम बना देते है। इस धारणा के अन्तर्गत समाज के विभिन्न सदस्यों द्वारा प्राप्त उपयोगिताओं की अन्तः वैयक्तिक तुलना की जाती है जो कि स्पष्ट मूल्यगत निर्णयों द्वारा की जाती है।

प्रायः सामाजिक कल्याण की पैतृक अथवा अधिनायक धारणा को स्वीकार नहीं करते।

यद्यपि रॉबिन्स एवं उनके समर्थकों ने कल्याणकारी अर्थशास्त्र को नीतिशास्त्र से पृथक रखने का प्रयास किया किन्तु कल्याणकारी अर्थशास्त्रियों में यह सर्वमत पाया जाता है कि दोनो को अलग - अलग नहीं रखा जा सकता। क्योंकि कल्याणकारी अर्थशास्त्र में मूल्य सम्बन्धी नियमों से बचा नहीं जा सकता।

28.4 पीगू की अवधारणा

अर्थशास्त्रियों ने समय-समय पर सामाजिक कल्याण सम्बन्धी मानदण्ड की अलग -अलग प्रकारों से व्याख्या की। कल्याण अर्थशास्त्र पर प्रथम मानक ग्रन्थ प्रो0 ए0 सी0 पीगू का The Economics of Welfare (1932) है। प्राचीन व्याख्या की प्रस्तुति के कारण पीगू कल्याण अर्थशास्त्र के पिता माने जाते हैं। डा0 लिट्टY के शब्दों में, ''कल्याण अर्थशास्त्र पीगू से प्रारम्भ हुआ। इससे पहले हमारे पास आनन्द अर्थशास्त्र था और उससे पहले धन अर्थशास्त्र।''

पीगू के कल्याण अर्थशास्त्र का सरलता पूर्वक अध्ययन करने के लिये इसे पांच भागों में बांटा जा सकता हैः-

1. कल्याण सम्बन्धी धारणा
2. कल्याणकारी अर्थशास्त्र की दशाएं
3. अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था की धारणा
4. सीमान्त निजी एवं सीमान्त सामाजिक लागतों एवं प्रतिफलों में विचलन का विश्लेषण
5. आदर्श उत्पाद धारणा

प्रो0 पीगू से पूर्व आर्थिक साहित्य में कल्याणकारी अर्थशास्त्र से सम्बन्धित विचार विद्यमान थे किन्तु इनका कभी भी समन्वय नहीं किया गया । पीगू ने ही वर्तमान शताब्दी के प्रथम चतुर्यांश में कल्याणकारी अर्थशास्त्र का प्रथम क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित सिद्धान्त अत्यन्त सराहनीय ढंग से अपनी महान कृति The Economics of Welfare में पूर्ण किया। पूर्व में अर्थशास्त्री ''सन्तुष्टि'' शब्द का प्रयोग किया करते थे किन्तु पीगू ने ''कल्याण'' शब्द को लोकप्रिय बनाया। उनके अग्रगामी प्रयासों के प्रतिफल ने कल्याणकारी अर्थशास्त्र को इतनी लोकप्रियता प्रदान की। चूंकि यह अर्थशास्त्र डा0 मार्शल द्वारा प्रतिपादित मांग के गणन -संख्यात्मक उपयोगिता-विश्लेषण पर आधारित है अतः यदा-कदा इसे नव-क्लासिकल गणन संख्यात्मक उपयोगिता के रूप में संज्ञा दी जाती है।

28.4.1 पीगू की कल्याण सम्बन्धी धारणा

पीगू के अनुसार कल्याण व्यक्ति की मानसिक स्थिति या चेतनता में स्थित होता जो सन्तोष या उपयोगिता से निर्मित होता है। अतः कल्याण का आधार मनुष्य की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि है। पीगू ने सामान्य कल्याण तथा आर्थिक कल्याण में अन्तर बताते हुए यह स्पष्ट किया कि आर्थिक कल्याण सामान्य कल्याण का ही एक भाग है जिसे मुद्रा के मापदण्ड से प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः मापा जा सकता है। पीगू के अनुसार, गैर-आर्थिक कल्याण, कल्याणकारी अर्थशास्त्र की परिधि में नहीं आता है। प्रो0 पीगू सम्पूर्ण सामाजिक कल्याण का अध्ययन न करते हुए उसके एक अंग ''आर्थिक कल्याण'' का ही अध्ययन करते हैं।

28.4.2 कल्याणकारी अर्थशास्त्र की दशाएं

प्रो0 पीगू कल्याण को अधिकतम करने के लिये दो दशाएं निश्चित करता है।

1. जब राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो कल्याण बढ़ता है।

2. कल्याण को अधिकतम करने के लिये राष्ट्रीय आय का वितरण भी महत्वपूर्ण है।

रुचियों तथा आय के वितरण के अपरिवर्तित रहने पर यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी।

राष्ट्रीय आय के स्थिर रहने पर समाज के धनी वर्ग से निर्धन वर्ग की ओर आय का हस्तान्तरण होने से भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो जाती है। कल्याण की यह दशा पीगू की दोहरी धारणाओं ''संतुष्टि के लिये समान क्षमता'' तथा आय की ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता पर आधारित है। अतः आर्थिक समानता ही कल्याण को अधिकतम करती है।

पीगू की कल्याण सम्बन्धी दशाएं निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैं-

1. प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं पर किये गये अपने व्यय से अपनी संतुष्टि को अधिकतम करने का यत्न करता है।

2. इसके अतिरिक्त वैयक्तिक-अभ्यन्तर और अन्तःवैयक्तिक रूप से संतुष्टियां तुलना योग्य हैं।

3. आय पर ह्रासमान सीमान्त तुष्टिगुण ह्रास नियम लागू होता है।

4. विभिन्न व्यक्ति समान वास्तविक आय से समान संतुष्टि प्राप्त करते हैं।

28.4.3 ''अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था'' की धारणा

पीगू ने ''अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था'' की अपनी धारणा को समाज के अधिकतम आर्थिक कल्याण से जोड़ दिया था। उनके अनुसार उस आदर्श परिस्थिति से है जिसमें समाज का आर्थिक कल्याण अधिकतम होता है। राष्ट्रीय आय को आर्थिक कल्याण का मात्रात्मक सूचक मानते हुये पीगू के अनुसार, अन्य वस्तुएं समान रहते हुये, राष्ट्रीय आय में हुयी वृद्धि से आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है और विलोमशः।

प्रो0 पीगू ने मौद्रिक आय के समान वितरण का समर्थन किया है। जिसके फलस्वरूप मौद्रिक आय की सीमान्त उपयोगिता बराबर हो जायेगी और अन्ततः समाज का आर्थिक कल्याण अधिकतम हो जायेगा। आर्थिक कल्याण में वृद्धि करने के लिये दो शर्तों को पूरा किया जाना आवश्यक है।

1. देश के राष्ट्रीय लाभांश में अधिकतम वृद्धि की जाय

2. बढ़े हुये राष्ट्रीय लाभांश को समाज के धनी एवं निर्धन वर्गों में समता के आधार पर वितरित किया जाय।

वास्तव में, यही पीगू के कल्याणकारी अर्थशास्त्र का लाभांश है।

28.4.4 सीमान्त निजी व सीमान्त सामाजिक लागतों एवं प्रतिफलों के विचलन का विश्लेषण

उपर्युक्त विश्लेषण को बहिर्भावों या वाह्य प्रभावों का विश्लेषण भी कहा जाता है।

एक वाह्य प्रभाव तब होना माना जाता है, जब भी एक फर्म या उत्पादन या एक व्यक्ति की उपयोगिता किसी अन्य फर्म या व्यक्ति की क्रिया ऐसे साधन पर निर्भर करती है जिसे बेचा या खरीदा नहीं जाता है। वाह्य प्रभावों को अविनियमित परस्पर निर्भरताएं भी कहा जाता है।

बहिर्भाव धनात्मक और ऋणात्मक होते हैं। लाभदायक बहिर्भाव धनात्मक होते हैं और मंहगे बहिर्भाव ऋणात्मक कहलाते हैं। अर्थात यदि निजी लाभों से सामाजिक लाभ अधिक होते हैं तो यह धनात्मक बहिर्भाव या वाह्य मितव्ययिता की स्थिति है। और यदि निजी लागतों से सामाजिक लागतें कम होते हैं तो यह ऋणात्मक बहिर्भाव या वाह्य अमितव्ययिता होती है।

वास्तव में बहिर्भाव मार्किट अपूर्णताएं होती हैं। जिनसे साधनों का गलत वितरण होता है और उत्पादन अथवा उपभोग इष्टतम स्तर से कम रह जाता है। इस प्रकार वाह्य प्रभावों के कारण अधिकतम सामाजिक कल्याण नहीं हो पाता है। पीगू ने इन कारणों का विश्लेषण किया और इन्हे दूर करने का सुझाव भी दिया।

निजी शुद्ध उत्पाद, सामाजिक शुद्ध उत्पाद से किस प्रकार अधिक हो सकता है, इसका स्पष्टीकरण हम स्वयं प्रो0 पीगू द्वारा दिये गये ''धुंआ अनुत्रास'' के चिरप्रतिष्ठित उदाहरण से करेंगे। किसी विक्रय वस्तु का निर्माण करने वाला कारखाने प्रासंगिक गौण उत्पाद के रूप में धुएं का भी उत्पादन करता है जो उस क्षेत्र के निवासियों के न केवल कपड़ों को ही मैला करता है बल्कि उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को भी गम्भीर क्षति पहुंचाता है। लेकिन इन सबके लिये कारखानेदार से कोई क्षतिपूर्ति वसूल नहीं की जाती है। अतः यहां निजी शुद्ध उत्पाद, सामाजिक शुद्ध उत्पाद से अधिक बैठता है। दूसरी अवस्था का स्पष्टीकरण भी हम पीगू द्वारा किये गये वनारोपण सम्बन्धी उदाहरण से करेंगे। किसी विशेष प्रदेश में किये गये वनारोपण के परिणामस्वरूप न केवल हमें इमारती Yकड़ी ही प्राप्त होती है, बल्कि उस क्षेत्र की जलवायु में भी सुधार किया ता सकता है। उस क्षेत्र एवं उसके पडा़Sस में रहने वाले लोगों को लाभ पहुंचाता है, लेकिन वे इस लाभ के लिये कोई भुगतान नहीं करते। अतः वनारोपण का सामाजिक शुद्ध उत्पाद उनके निजी शुद्ध उत्पाद से अधिक होता है।

प्रो0 पीगू का सुनिश्चित मत था कि निजी शुद्ध उत्पाद एवं सामाजिक शुद्ध उत्पाद के बीच में पायी जाने वाली भिन्नता को सरकारी हस्तक्षेप द्वारा दूर किया जाना चाहिये। यदि निजी शुद्ध उत्पाद उसके सामाजिक शुद्ध उत्पाद से अधिक होता है तो दोनो प्रकार के उत्पादों में समानता स्थापित करने हेतु सरकार द्वारा करारोपण किया जाना चाहिये। इसके विपरीत, यदि किसी उद्योग का निजी शुद्ध उत्पाद, उनके सामाजिक शुद्ध उत्पाद से कम होता है तो समानता स्थापित करने हेतु सरकार द्वारा

उसे उपदान दिया जाना चाहिये। अतः यह स्पष्ट है कि सरकारी हस्तक्षेप सामाजिक कल्याण को बढ़ा देगा।

28.4.5 आदर्श उत्पाद धारणा

प्रो0 पीगू ने सामाजिक सीमान्त उत्पाद की धारणा को अपनी सामाजिक अनुकूलतम अवस्था का आधार बनाया था। इस अनुकूलतम सामाजिक अवस्था को वह ''आदर्श उत्पाद'' कहते हैं। जब सभी उद्यागों के सामाजिक सीमान्त उत्पाद एक दूसरे के बराबर होंगे, तब अर्थव्यवस्था में उत्पादन 'आदर्श' होगा। जहां पूर्ण प्रतियोगिता होती है, वहां इष्टतम या आदर्श उत्पाद की स्थिति अपने आप आ जाती है। परन्तु यदि अन्य प्रयोगों की अपेक्षा किसी भी एक प्रयोग में संसाधनों के सामाजिक सीमान्त उत्पाद का मूल्य कम हो तो सामाजिक नियंत्रण अथवा करों या सब्सिडी द्वारा संसाधनों को उत्पाद के अधिक लाभप्रद प्रकारों में स्थानान्तरित कर आदर्श उत्पाद की स्थिति प्राप्त की जा सकती है।

प्रो0 बोमोल ने "Welfare Economics and Theory of the State" (1965) में पीगू की इस धारणा की एक नयी व्याख्या प्रस्तुत की है। और उसे पेरेटो के समस्त संतुलन से उसका सम्बन्ध जोड़ा है। उसके अनुसार आदर्श उत्पाद वह उत्पादन है जिस पर कि अर्थव्यवस्था के संसाधनों का विविध प्रयोगों में ऐसा पुनर्विभाजन नहीं हो सकता जो समाज को पहले की अपेक्षा बेहतर स्थिति में पहुंचा दे।

बोमोल ने आदर्श उत्पाद की विवेचना निम्नलिखित मान्यताओं पर की हैः-

1. बाजार में वस्तुओं की मांग मे पूर्ण प्रतियोगिता है।
2. सभी वस्तुओं का समाज में अनुपम रूप से वितरण होता है।
3. समाज में रुचियां और प्रौद्योगिकी अपरिवर्तित रहती हैं।
4. समाज का प्रत्येक सदस्य हर वस्तु की अधिक मात्रा को प्राथमिकता देता है न कि कम को।
5. संसाधनों के नियोजन का स्तर दिया हुआ हो।
6. उपभोग एवं उत्पादन में कोई वाह्य प्रभाव नहीं होते।
7. समुदाय के उदासीनता वक्र एक दूसरे को नहीं काटते।
8. अर्थव्यवस्था में केवल दो वस्तुओं X और Y का ही उत्पादन होता है।

इन मान्यताओं के दिये हुये होने पर बोमोल ने एक रेखाचित्र के माध्यम से यह दर्शाया है कि आदर्श उत्पाद उस स्थान पर निर्धारित होता है जहां रूपान्तरण वक्र, उदासीनता वक्र का स्पर्श करता है। चित्र 28.1 में वस्तु का उत्पादन क्षैतिज अक्ष पर तथा वस्तु Y का उत्पादन अनुलम्ब अक्ष पर मापा

गया है। I_0, I_1 तथा I_2 समुदाय उदासीनता वक्र हैं जो इन वस्तुओं के समाज को उपलब्ध होने वाले विविध संयोगों को प्रदर्शित करते हैं। TC रूपान्तरण वक्र है जो दिये हुए संसाधनो तथा प्रौद्योगिकी से संभव विविध उत्पादन संयोगो का प्रकट करता है।

बिन्दु E पर समाज **आदर्श उत्पादन** की स्थिति उपलब्ध कर लेता है जहां पर कि रूपान्तरण वक्र TC उच्चतम संभव समुदाय उदासीनता वक्र I_1 को स्पर्श करता है।

इस इष्टतम स्तर पर समाज वस्तु X का OX_1 तथा वस्तु Y का OY_1 उत्पादन एवं उपभोग करता है। यह आदर्श उत्पाद वास्तव में प्रतियोगिता मूल्क उत्पादन है। क्योंकि वाह्य प्रभावों का अभाव है, इसलिये सारे बाजार में दोनो वस्तुओं की कीमतें एकसार रहती हैं। इस प्रकार, मांग पक्ष की ओर से बिन्दु E पर सन्तुलन स्थापित हो जाता है जहां कि कीमत रेखा PL तटस्थता वक्र I_1 को स्पर्श करती है।

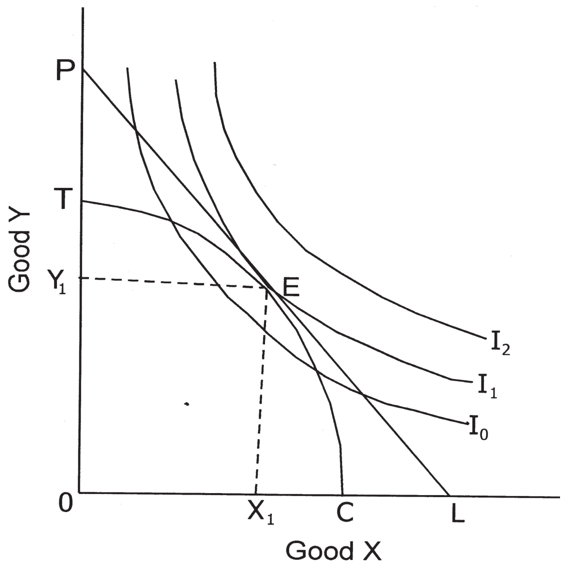

चित्र 28.1 आदर्श उत्पाद का निर्धारण

बिन्दु E पर $MRS_{XY} = P_X/P_Y$ ——————————— (1)

पूर्ति पक्ष की ओर से कीमत रेखा की ढलान रूपान्तरण वक्र की ढलान के बराबर हो।

$P_X/P_Y = MRT_{XY}$ ——————————— (2)

पूर्ण बाजार में MRT_{XY} सीमान्त निजी लागत Y की (MC_Y) से X की सीमान्त निजी लागत (MC_x) के अनुपात के बराबर है। अतः

$$MRT_{XY} = MC_X/MC_Y = MSC_X/MSC_Y$$

जहां MSC = सामाजिक सीमान्त लागत

(1) तथा (2) से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रतियोगितामूल्क उत्पादन उस स्थान पर निर्धारित होता है जहां कीमत रेखा तथा उदासीनता वक्र परस्पर स्पर्श करते हों। अर्थात

$$MRT_{XY} = P_X/P_Y = MRS_{XY}$$

वास्तव में यह संतुलन ही पेरेटियन संतुलन अथवा पेरेटियन इष्टक्षमता है। परन्तु आदर्श उत्पाद, उस स्थान पर निर्धारित होता है जहां रूपान्तरण वक्र उदासीनता वक्र का स्पर्श करता है।

28.5 प्रो0 पीगू के कल्याणकारी अर्थशास्त्र की आलोचनाएं

1. उपयोगिता की गणनावाचक मापनीयता तथा अन्तरवैयक्तिक तुलना की मान्यता अनुचित है।

2. राष्ट्रीय आय आर्थिक कल्याण का उचित मानदण्ड नहीं होता क्योंकि मूल्यों में परिवर्तन होने से राष्ट्रीय आय में परिवर्तन होता है, यद्यपि वास्तविक वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा में कोई परिवर्तन न हुआ हो।

3. पीगू ने मूल्यगत निर्णयों की स्पष्ट व्याख्या नहीं की जो कल्याणकारी अर्थशास्त्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।

4. पीगू की ‘‘विभिन्न व्यक्तियों की समान क्षमता’’ की मान्यता वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित न होकर नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित है।

5. डा0 ग्राफ का मत है कि मुद्रा आर्थिक कल्याण को मापने का एक उचित मानदण्ड प्रस्तुत नहीं करती।

उपर्युक्त आलोचनाओं के कारण आधुनिक युग में अधिकांश अर्थशास्त्री कल्याणकारी अर्थशास्त्र का विश्लेषण तुष्टिगुण उपयोगिता के क्रमवाचक विचार पर आधारित है।

28.6 सारांश

कल्याण अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त का वह भाग है जो प्रमुख रूप से नीति से सम्बन्ध रखता है। आधुनिक वर्षों में इसका साहित्य तेजी से बढ़ा है। प्रो0 रॉबिन्स के नैतिक तटस्थता के मत के परिणामस्वरूप ही कल्याण अर्थशास्त्र का विकास हुआ। नवक्लासिकी अर्थशास्त्री मार्शल और पीगू ने इसके सिद्धान्तों में अर्थव्यवस्था के विशेष क्षेत्रों पर ध्यान दिया। कल्याण अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र अलग नहीं हैं तथा अन्तःवैयक्तिक तुलनाऐं या मूल्य निर्णय भी अर्थशास्त्र से अलग नहीं किये जा सकते हैं। कल्याण अर्थशास्त्र पर प्रथम मानक ग्रन्थ प्रोफेसर पीगू की The Economics of Welfare ने उन्हे कल्याण अर्थशास्त्र का पिता बना दिया। वे आर्थिक कल्याण एवं राष्ट्रीय आय

को सवर्ग मानते हैं। उनके अनुसार आर्थिक कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे मुद्रा के मापदण्ड से प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः मापा जा सकता है।

अतः गैर आर्थिक कल्याण, कल्याणकारी अर्थशास्त्र की परिधि में नहीं आता है। उनके कथानुसार समान परिस्थितियों में स्थित व्यक्ति समान वास्तविक आय में से समान संतुष्टि प्रदान करते हैं। पीगू की कल्याणकारी अर्थशास्त्र का आधार मुद्रा की ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता है। अपने विश्लेषण में निजी शुद्ध उत्पाद एवं सामाजिक शुद्ध उत्पाद में मूल्भूत अन्तर किया है।

बहिर्भाव मार्केट की अपूर्णताएं हैं जिनसे साधनों का गलत वितरण होता है। सरकारी हस्तक्षेप द्वारा इस मूल्भूत अन्तर को दूर किया जा सकता है।

प्रो0 पीगू ने सामाजिक सीमान्त उत्पाद की धारणा को अपनी सामाजिक अनुकूलतम अवस्था का आधार बनाया था जिसको यह ‘‘आदर्श उत्पाद’’ की संज्ञा देते हैं जो पूर्ण प्रतियोगिता में पायी जाती है। बोमोल ने पीगू की आदर्श उत्पाद की धारणा की नयी व्याख्या प्रस्तुत करते हुये उसे पेरेटो के समस्त संतुलन से जोड़ते हैं। उन्होने दर्शाया कि आदर्श उत्पाद उस स्थान पर निर्धारित होता है जहां रूपान्तरण वक्र, उदासीनता वक्र को स्पर्श करता है।

28.7 शब्दावली

1. वास्तविक अर्थशास्त्र- इसे यथार्थ अर्थशास्त्र भी कहा जाता है। यह अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों एवं नियमों का विश्लेषण करता है ‘‘क्या है’’ सम्बन्धित प्रश्न वास्तविक अर्थशास्त्र की परिधि में आते हैं।

2. कल्याण अर्थशास्त्र- यह स्वयं को आर्थिक नीतियों के परीक्षण तक ही सीमित रखता है। ‘‘क्या होना चाहिये’’ सम्बन्धित प्रश्न कल्याण अर्थशास्त्र की परिधि में आते हैं।

3. मूल्य निर्णय- यह एक सुझावात्मक कथन है जिसका उद्देश्य सबको यह बताना है कि ‘‘वस्तुएं कैसी होनी चाहिये’’। अर्थात आर्थिक समस्याओं का समाधान कैसे किया जाये। मूल्य निर्णय का स्रोत नीतिशास्त्र है।

4. सामान्य कल्याण- इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है यह अनेक तत्वों पर निर्भर करता है जिनमें से कुछ आर्थिक एवं कुछ गैर-आर्थिक होते हैं।

5. आर्थिक कल्याण- यह सामाजिक कल्याण अथवा सामान्य कल्याण का वह भाग है जिसे मुद्रा के मापदण्ड से प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः मापा जा सकता है।

6. व्यक्तिगत कल्याण- व्यक्ति का कल्याण विषयीगत होता है। और उसमें उसकी उपयोगिताएं एवं सन्तुष्टियां सम्मिलित होती हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने व्यक्तिगत कल्याण को व्यक्तिगत चयन से जोड़कर इसे वस्तुनिष्ठ बना दिया है।

7. सामाजिक कल्याण- यह समाज में रहने वाले सभी व्यक्तियों की उपयोगिताओं एवं सन्तुष्टियों का पूर्ण योग्य होता है।

8. अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था- इससे अभिप्राय उस आदर्श परिस्थिति से है जिसमें समाज का आर्थिक कल्याण अधिकतम होता है।

9. निजी शुद्ध उत्पाद- इससे अभिप्राय उस आय से है जो निजी व्यवसायिक संगठन के स्वामी को प्राप्त होती है।

10. सामाजिक शुद्ध उत्पाद- इससे तात्पर्य उस निजी व्यवसायिक संगठन द्वारा राष्ट्रीय लाभांश में किये गये अंशदान से है।

11. बहिर्भाव अथवा वाह्य प्रभाव- निजी शुद्ध उत्पाद तथा सामाजिक शुद्ध उत्पाद में अन्तर सीमान्त निजी व सीमान्त सामाजिक लागतों एवं प्रतिफलों के बीच विचलन है जिसे बहिर्भाव या वाह्य प्रभाव या वाह्य मितव्ययिताऐं एवं अमितव्ययिताएं भी कहते हैं।

12. आदर्श उत्पाद धारणा- अर्थव्यवस्था में उत्पादन तब आदर्श होगा जब सभी उद्योगों के सामाजिक सीमान्त उत्पाद एक दूसरे के बराबर होंगे। बोमोल के अनुसार आदर्श उत्पाद उस स्थान पर निर्धारित होता है जहां रूपान्तरण वक्र, उदासीनता वक्र का स्पर्श करता है।

28.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्र0 1. निम्न में कौन सा कथन पीगू के कल्याणकारी अर्थशास्त्र की मान्यताओं के प्रतिकूल् है-

(अ.) उपभोक्ता का युक्तिक व्यवहार

(ब.) गुणन संख्यात्मक उपयोगिता

(स.) समान वास्तविक आय से समान सन्तुष्टि

(द.) मुद्रा की ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता

प्र0 2. ''आदर्श उत्पादन'' की धारणा को किसने आर्थिक कल्याण का सूचक माना है-

(अ.) पेरेटो (ब.) पीगू

(स.) काल्डोर (द.) हिक्स

प्र0 3. कल्याण अर्थशास्त्र का जनक किसे माना जाता है?

(अ.) पेरेटो (ब.) काल्डोर

(स.) रॉबिन्स (द.) पीगू

प्र0 4. पीगू की कल्याण अर्थशास्त्र पर आधारित पुस्तक का नाम क्या है ?

प्र0 5. पीगू की आदर्श उत्पाद की नयी व्याख्या किसने प्रस्तुत की ?

प्र0 6. पीगू के कल्याणकारी अर्थशास्त्र को और किस रूप में जानते हैं ?

उत्तर 1. (ब) 2. (ब) 3. (द) 4. The Economics of Welfare 5. प्रो0 बोमोल

6. नव क्लासिकल गणन संख्यात्मक उपयोगिता के रूप में

28.9. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सेठी, टी. टी. (मक 2008), ''व्यष्टि अर्थशास्त्र'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक,आगरा
2. झिंगन, एम.एल. (2007), ''उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त'', वृन्दा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
3. आहूजा, एस.एल. (2006), ''उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त: व्यष्टिपरक विश्लेषण'',चन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली

28.10. उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

1. Koutsoyinuis.A. (1979) Modern Microeconomics,(2nd Edition), Macmillian Press, London.
2. Ahuja,H.L. ((2010) Principles of Micro Economics , S&Chand Publishing House .
3. Peterson, L. and Jain ((2006)) Managerial Economics, 4th edition, Pearson Education.
4. Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill Education.

28.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कल्याणकारी अर्थशास्त्र क्या है ? वास्तविक अर्थशास्त्र से यह किस प्रकार भिन्न है और इसका आधार क्या है ?
2. पीगू के कल्याणकारी अर्थशास्त्र की मान्यताएं क्या हैं ?
3. प्रो0 पीगू द्वारा प्रतिपादित कल्याणकारी सिद्धान्त की व्याख्या एवं आलोचना कीजिये।

इकाई-29. पेरेटो का कल्याणकारी अर्थशास्त्र

29.1 प्रस्तावना
29.2 उद्देश्य
29.3 पीगू एवं पेरेटो के कल्याणकारी अर्थशास्त्र के मूल अन्तर
29.4 पेरेटो द्वारा प्रस्तुत अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था
    29.4.1 पीगू एवं पेरेटो की अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था की धारणा में समानता
    29.4.2 पेरेटो मानदण्ड
    29.4.3 परेटो अनुकूलतम की दशाएं
    29.4.4 परेटो अनुकूलतम की द्वितीय क्रम की समस्त शर्तें
29.5 परेटो के कल्याणकारी अर्थशास्त्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन
29.6 सारांश
29.7 शब्दावली
29.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
29.9 संदर्भ-ग्रन्थ सूची
29.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
29.11 निबन्धात्मक प्रश्न

29.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने कल्याणकारी अर्थशास्त्र के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन किया जिनके आधार पर नीतियों का विकास करके सामाजिक कल्याण को अधिकतम किया जा सकता हैं। आपने देखा कि पीगू की कल्याणकारी अर्थशास्त्र दो मूल्भूत मान्यताओं पर निर्मित है। प्रथम, कि वस्तु से प्राप्त उपयोगिता को गणन -संख्यात्मक रूप में मापा जा सकता है और द्वितीय यह कि उपयोगिता की अन्तःर्वेSयक्तिक तुलनाएं करना सम्भव है। इन मान्यताओं की कड़ी आलोचना करते हुए अर्थशास्त्रियों ने इसे अयथार्थ एवं संशयात्मक बताया। अतः यह वैज्ञानिक स्तर न प्राप्त कर सका। तब इटली के एक प्रख्यात अर्थशास्त्री विल्फ्रेड पेरेटो (1848-1923) ने कल्याणकारी अर्थशास्त्र का एक वैकल्पिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

इस इकाई में पेरेटो के द्वारा दिया गया कल्याणकारी अर्थशास्त्र का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। कल्याणकारी अर्थशास्त्र के इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण भूचिन्ह माना जाता है। पेरेटो के कल्याणकारी अर्थशास्त्र को कभी-कभी नव कल्याणकारी अर्थशास्त्र की संज्ञा भी दी जाती है।

पेरेटो के द्वारा दी गई सीमान्त दशाओं के अध्ययन से पेरेटो के अनुकूलमत सामाजिक व्यवस्था के विश्लेषण को गहनता से समझाने का प्रयत्न किया गया है।

29.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

- पीगू एवं पेरेटो के कल्याणकारी अर्थशास्त्र के अन्तर को स्पष्ट कर सकेंगे।
- पेरेटो द्वारा प्रस्तुत सामाजिक अनुकूलतम के विचार को समझने में सक्षम होंगे।
- पेरेटो द्वारा सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिये उपभोग , उत्पादन तथा विनिमय क्षेत्र की अनेक दशाओं की व्याख्या कर सकेंगे। इन शर्तो अथवा दशाओं के अध्ययन से यह ज्ञात हो जायेगा कि किन्ही दो वस्तुओं और साधनों के बीच स्थापन्नता की सीमान्त दरें उनके रूपान्तरण की सीमान्त दरों के बराबर और उनकी कीमतों के अनुपात एक दूसरे के बराबर होने चाहिये।
- पेरेटो द्वारा दी गई प्रथम एवं द्वितीय क्रम की दशाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

29.3 पीगू एवं पेरेटो के कल्याणकारी अर्थशास्त्र के मूल अन्तर

1. जहां पीगू ने गणन -संख्यात्मक उपयोगिता की क्रिया पर अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया था, पेरेटो ने इसकी कड़ी आलोचना करते हुये अपने कल्याणात्मक विश्लेषण को क्रम संख्यात्मक उपयोगिता की क्रिया पर निर्मित किया।

2. पीगू के विपरीत, पेरेटो ने अपने कल्याणात्मक विश्लेषण में मूल्य निर्णयों का कभी आश्रय नहीं लिया। उनके अनुसार उपयोगिता की अन्तःवैयक्तिक तुलनाएं नहीं की जा सकतीं।

3. पीगू का कल्याणकारी अर्थशास्त्र धन के उत्पादन, विनिमय के साथ-साथ समाज में आय वितरण के बारे में भी व्याख्या प्रस्तुत करता है जबकि पेरेटो के अनुसार कल्याणकारी अर्थशास्त्र केवल धन के उत्पादन एवं विनिमय से ही सम्बन्धित है। यह समाज में आय वितरण की समस्या के बारे में एक शब्द भी नहीं कहता है।

पेरेटो द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण हिक्स, काल्डोर एवं स्किटोवोस्की जैसे प्रख्यात अर्थशास्त्रियों द्वारा विस्तार, संशोधन एवं परिष्कार किया गया है।

29.4 पेरेटो द्वारा प्रस्तुत अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था

पेरेटो पहले अर्थशास्त्री थे जिसने समाज कल्याण अधिकतम के वस्तुगण परीक्षण का पता लगाया। पेरेटो की अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था से अभिप्राय उस स्थिति से है जिसके अन्तर्गत साधनों अथवा उत्पादनों के पुनरावंटन द्वारा बिना किसी व्यक्ति को हीनतर किये हुये किसी अन्य व्यक्ति को श्रेष्ठतर करना सम्भव नहीं होता है। पेरेटो के अपने शब्दों में ''अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था वह होती है जिसमें कोई भी इस प्रकार का परिवर्तन करना सम्भव नहीं है जिसके अन्तर्गत सभी व्यक्तियों की उपयोगिताएं बढ़ जाती हैं अथवा घट जाती हैं।''

29.4.1 पीगू एवं पेरेटो की अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था की धारणा में समानता

पेरेटो की अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था की धारणा, पीगू द्वारा प्रस्तुत आदर्श उत्पाद की धारणा का ही प्रतिरूप है। प्रो0 पीगू के अनुसार अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था उस परिस्थिति को व्यक्त करती है जिसके अन्तर्गत सभी उद्योगों के सामाजिक सीमान्त उत्पाद बराबर होते हैं। ऐसे में अर्थव्यवस्था का उत्पादन अधिकतम होगा जिसे आदर्श उत्पाद की संज्ञा दी गई है। पेरेटो के अनुसार यही आदर्श उत्पाद एक ऐसी स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें उत्पादन साधनों का किया गया कोई भी आबंटन समाज के कुल उत्पादन के सामाजिक मूल्य में वृद्धि नहीं कर सकता है। अतः दोनों ही धारणाएं ''शिखर स्थिति'' को व्यक्त करती हैं और दोनों के ही अन्तर्गत सामाजिक कल्याण में अधिकतम वृद्धि होती है।

29.4.2 पेरेटो मानदण्ड

पेरेटो मानदण्ड के अनुसार यदि कोई परिवर्तन किसी को हानि नहीं पहुंचाता तथा कुछ लोगों को श्रेष्ठतर बनाता है, तो वह सुधार है। बामोल के शब्दों में, ''कोई परिवर्तन जो किसी को हानि नहीं पहुंचाता तथा कुछ लोगों को श्रेष्ठतर बनाता है, आवश्यक रूप से सुधार समझा जाना चाहिये।''

पेरेटो के सामान्य अनुकूलतम को सैमुएल्सन द्वारा प्रस्तुत उपयोगिता सम्भावना वक्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

''उपयोगिता सम्भावना वक्र वस्तुओं के एक निश्चित समूह से दो व्यक्तियों द्वारा प्राप्त उपयोगिताओं के विभिन्न संयोगो का बिन्दुपथ है।'' रेखाकृति 29.1 में X अक्ष पर । तथा Y अक्ष पर व्यक्ति ठ की उपयोगिता प्रदर्शित किया गया है। CV वक्र दोनो व्यक्तियों द्वारा प्राप्त किये जाने वाले तुष्टिगुणों के विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है, इसे उपयोगिता सम्भावना वक्र भी कहते हैं।

पेरेटो के मानदण्ड के अनुसार Q बिन्दु से R, D तथा S बिन्दु की ओर कोई परिवर्तन सामाजिक कल्याण में वृद्धि को प्रकट करता है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप A अथवा B अथवा दोनो के तुष्टिगुणों में वृद्धि होती है। किन्तु बिन्दु Q से RS भाग के बाहर की ओर किसी परिवर्तन के कल्याण पर प्रभावों कों पेरेटो के मानदण्ड को ज्ञात नहीं किया जा सकता है। अतः E बिन्दु पेरेटो अनुकूलतम स्थिति को व्यक्त नहीं कर सकता है। जब CV वक्र के RS भाग पर स्थित सभी बिन्दु अनुकूलतम की स्थितियां हैं। किन्तु कौन सा बिन्दु श्रेष्ठतम है? यह उत्तर देने में पेरेटो मानदण्ड असमर्थ है क्योंकि इसके लिये कुछ मूल्यगत निर्णयों का आश्रय लेना आवश्यक है जिसे पेरेटो अपने विश्लेषण में समाविष्ट नहीं करते।

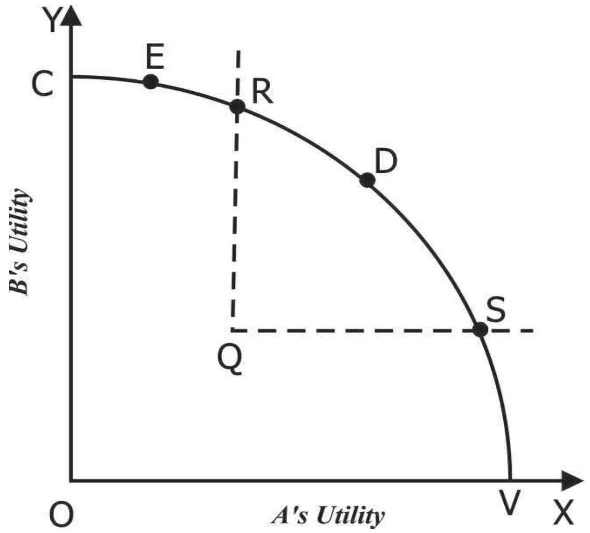

29.4.3 परेटो अनुकूलतम की दशाएं

परेटो अनुकूलतम की विभिन्न दशाओं की व्याख्या करने से पूर्व उनकी मान्यताओं के विषय में जान लेना आवश्यक है।

परेटो अनुकूलतम की मान्यताएं

1. उपयोगिता एक क्रमवाचक तत्व है तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिये क्रमवाचक उपयोगिता फलन दिया गया है।

2. उत्पादक या फर्म का उत्पादन फलन एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत दिया हुआ है।

3. प्रत्येक व्यक्ति अपने संतोष को अधिकतम करना चाहता है।

4. उत्पादक किसी दी हुयी लागत पर किसी वस्तु का अधिकतम उत्पादन करना चाहता है ताकि उसका लाभ अधिकतम हो सके।

5. सभी वस्तुएं पुर्णतया विभाज्य हैं तथा सभी व्यक्ति प्रत्येक वस्तु की एक निश्चित मात्रा का प्रयोग करते हैं।

6. पूर्ण प्रतिस्पर्धा के कारण सभी उत्पादन के साधन पूर्णतया गति शील हैं।

इन मान्यताओं के आधार पर परेटो ने अपनी **अनुकूलतम की दशाओं अथवा प्रथम क्रम की दशाओं अथवा सीमान्त दशाओं की व्याख्या प्रस्तुत की है।**

1. उपभोग में परेटो अनुकूलतम अथवा वस्तुओं का अनुकूलतम वितरण

इस दशा के अनुसार, ''समाज में प्रत्येक व्यक्ति के लिये किन्ही दो वस्तुओं के मध्य प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS) समान होनी चाहिये।'' यदि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान नहीं है तो दोनो व्यक्ति परस्पर विनिमय करेंगे जिससे कि किसी एक अथवा दोनो व्यक्तियों के सन्तुष्टि के स्तर में वृद्धि होगी। वस्तुओं के उपभोग अथवा वितरण के परेटो अनुकूलतम को विनिमय कुशलता भी कहते हैं।

$$MRS^{A}_{XY} = MRS^{B}_{XY}$$

परेटो ने एजवर्थ-बाउले बाक्स रेखाकृति के माध्यम से इसे स्पष्ट किया है। रेखाकृति 29.2 में X तथा Y अक्ष पर वस्तु X एवं Y की मात्राएं दर्शायी गयी हैं जो दो व्यक्ति A तथा B द्वारा उपभोग की जाती है।

Aव्यक्ति का मूल बिन्दु O_A तथा B व्यक्ति का O_B है। I_{a1}, I_{a2}, I_{a3} अनधिमान वक्रA व्यक्ति के बढ़ते हुये सन्तोष स्तर तथा I_{b1}, I_{b2}, I_{b3} अनधिमान वक्र B व्यक्ति के क्रमशः बढ़ते हुये संतोष स्तर को प्रदर्शित करते हैं।

CC^1 रेखा प्रसंविदा वक्र है जो विभिन्न अनधिमान वक्रों के स्पर्श बिन्दुओं से होकर जाती है। इन बिन्दुओं पर ही दोनों व्यक्तियों के लिये दोनों वस्तुओं के मध्य प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान होती है।

उदाहरण के लिये यदि दोनो व्यक्तियों द्वारा उपभोग की जाने वाली X तथा Y की मात्रा ज्ञ द्वारा प्रदर्शित है तो यह अनुकूलतम स्थिति नहीं होगी क्योंकि K से S अथवा K से Q वस्तु संयोग की ओर परिवर्तन होने से एक व्यक्ति का संतोष स्थिर रहते हुये दूसरे व्यक्ति के संतोष में वृद्धि होती है। इसी प्रकार K से R संयोग की ओर विवर्तन होने पर दोनो व्यक्तियों के कल्याण में वृद्धि होती है क्योंकि दोनो ही ऊंचे अनधिमान वक्र पर जाने में सफल हो जाते हैं।

विभिन्न स्पर्श बिन्दुओं में से कौन सा सर्वश्रेष्ठ है, यह परेटो के मानदण्ड के अनुसार अनिर्धारणीय है।

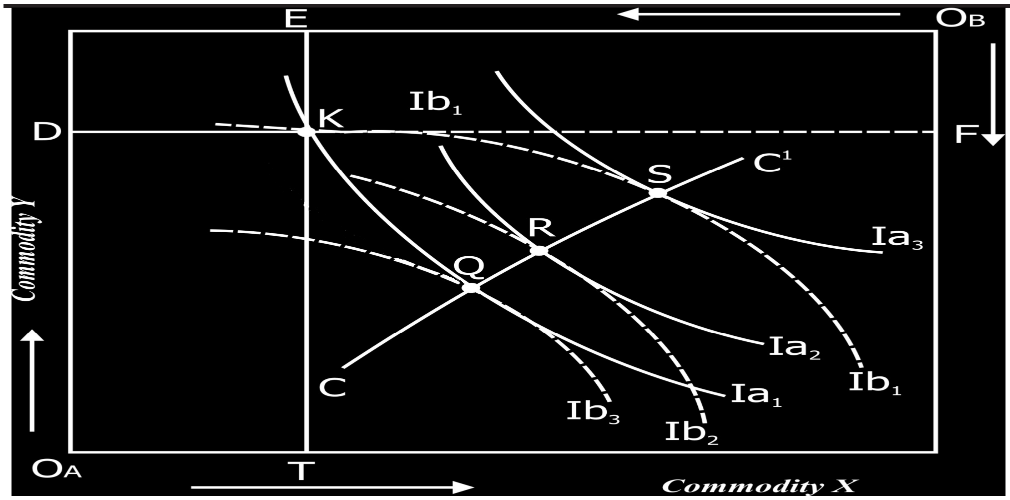

चित्र 29.2 वस्तुओं का परेटो अनुकूलतम वितरण

2. उत्पादन में परेटो अनुकूलतम अथवा साधनों का विभिन्न कार्यों में अनुकूलतम आवण्टन

किसी वस्तु विशेष के उत्पादन में दो साधनों का प्रयोग करने वाली किन्ही दो फर्मों के लिये दो साधनों के मध्य तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान होनी चाहिये। एजवर्थ बाउले बॉक्स रेखाकृति में समोत्पाद वक्रों के प्रयोग से इस दशा को सरलता पूर्वक ढंग से समझा जा सकता है। रेखाकृति 29.3 में X तथा Y अक्षों पर क्रमशः श्रम तथा पूंजी की कुल मात्रा प्रदर्शित है जिनका प्रयोग करके A तथा B फर्में किसी वस्तु की निश्चित मात्रा उत्पादन करती हैं। A फर्म का मूल बिन्दु OA तथा B फर्म का व्ठ है। Ia1, Ia2, Ia3 तथा Ib1, Ib2, Ib3 क्रमशःAतथा B फर्म के बढ़ते हुये उत्पादन के स्तर अर्थात समोत्पाद वक्र को प्रदर्शित करते हैं। जिस बिन्दु पर दोनो फर्मों के समोत्पाद वक्र स्पर्श करते हैं वहां दोनो के लिये साधनों के मध्य तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान है। रेखाकृति 29.3 में Q, R, S बिन्दु अनुकूलतम स्थिति को प्रदर्शित करते हैं।

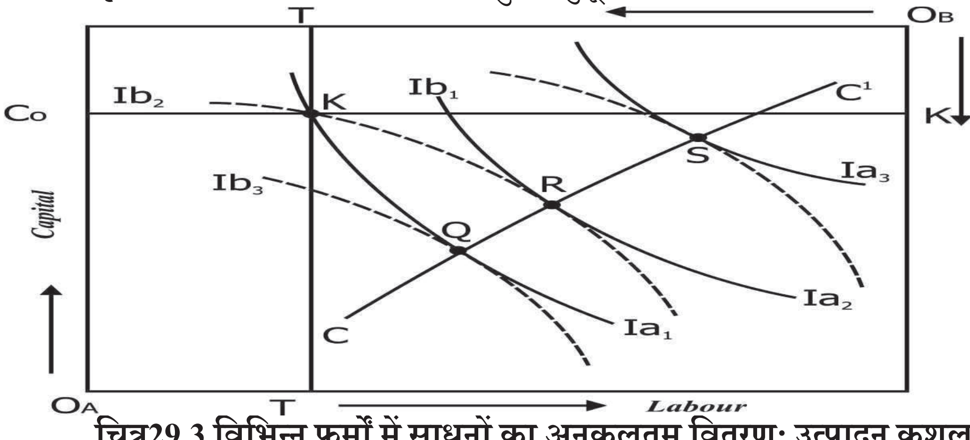

चित्र29.3 विभिन्न फर्मों में साधनों का अनुकूलतम वितरण: उत्पादन कुशलता

$$MRTS^{X}_{LK} = MRTS^{Y}_{LK}$$

उदाहरण के लिये K बिन्दु अनुकूलतम स्थिति नहीं होगी क्योंकि K से R की तथा K से Q की ओर साधन संयोग परिपर्तित करके दोनो फर्मों के कुल उत्पादन में वृद्धि हो सकती है। K से R की ओर परिवर्तन से A फर्म के उत्पादन में वृद्धि होती है तथा B फर्म का उत्पादन पूर्ववत् रहता है। इसी प्रकार K से Q की ओर परिवर्तन से B का उत्पादन बढ़ जाता है तथाA का पूर्ववत् रहता है। इस प्रकार Q तथा R दोनों संयोग कुल उत्पादन में वृद्धि करते हैं किन्तु इन दोनों में कौन अपेक्षाकृत अधिक कुल उत्पादन प्रदान करता है, यह अनिर्धारणीय है।

3. उत्पादन की अनुकूलतम दशा: आवण्टनात्मक कुशलता

यह शर्त उत्पादन की तकनीकी दशाओं तथा उपभोक्ता के अधिमानों पर आधारित है। परेटो अनुकूलतम की यह बहुत महत्वपूर्ण शर्त है। इसे अवण्टनात्मक कुशलता का वक्र भी कहा जाता है क्योंकि इसके अनुसार विभिन्न वस्तुओं में साधनों का आवण्टन ऐसा होना चाहिये कि उपभोक्ताओं की सन्तुष्टि अथवा कल्याण अधिकतम हो।

प्रो0 रेडर के शब्दों में, ''दो वस्तुओं का उपभोग करने वाले किसी एक व्यक्ति के लिये दोनों वस्तुओं के मध्य प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS), समुदाय के लिये उनके मध्य रूपान्तरण की सीमान्त दर समान होनी चाहिये।''

$$MRS_{XY} = MRT_{XY}$$

कल्याण अधिकतम किये जाने के लिये समाज मे विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन उतनी मात्रा में किया जाना चाहिये कि वह उपभोक्ताओं की पसन्द अथवा अधिमानों के अनुरूप हो। रेखाकृति 29.4 मे X अक्ष पर X वस्तु की मात्रायें तथा Y अक्ष पर Y वस्तु की मात्रायें दर्शायी गयी हैं। ABसमाज की दो वस्तुओं के मध्य रूपान्तरण वक्र है। IC_1, IC_2 तथा IC_3 समाज के अधिमान वक्र हैं। R बिन्दु पर समाज की दोनो वस्तुओं के मध्य रूपान्तरण की सीमान्त दर तथा प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS) समान है। यही अनुकूलतम स्थिति है जिसमें वस्तु X की OM मात्रा तथा वस्तु Y की ONमात्रा का उत्पादन समाज में किया जाता है।

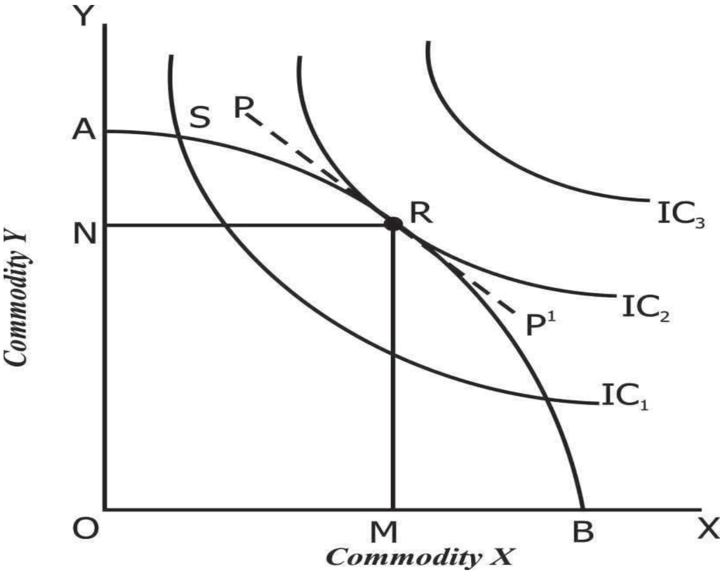

चित्र29.4 उत्पादन की अनुकूलतम दिशा अर्थात परेटो अनुकूलतम ढांचा

यदि S बिन्दु द्वारा व्यक्त वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है तो यह समाज के अधिमान के अनुरूप नहीं है क्योंकि वस्तु Y की कम मात्रा और X की अधिक मात्रा का उत्पादन करके समाज अपेक्षाकृत ऊंचे अनधिमान वक्र IC_2 पर बिन्दु R पर पहुंच सकता है। अतः बिन्दु S द्वारा व्यक्त उत्पादन ढांचा परेटो अनुकूलतम नहीं है। परन्तु बिन्दु R पर उत्पादन सम्भावना वक्र समाज के अनधिमान वक्र IC2 को स्पर्श कर रहा है जिससे बिन्दु R पर वस्तु X तथा Y में समाज के रूपान्तरण की सीमान्त दर (MRS_{XY}) उनमें उपभोक्ताओं के प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS_{XY}) के समान है। अतः बिन्दु R परेटो अनुकूलतम स्थिति व्यक्त करता है।

4. उत्पादन में विशिष्टता का अनुकूलतम अंश

इस दशा के अनुसार, ''किन्ही दो फर्मों के लिये किन्ही दो वस्तुओं के मध्य रूपान्तरण की सीमान्त दर समान होनी चाहिये जो दोनो वस्तुओं का उत्पादन करती हैं।''

$$(MRT^{A}_{XY}) = (MRT^{B}_{XY})$$

मान लीजिये कि फर्म A के दो वस्तुओं X तथा Y के मध्य रूपान्तरण की सीमान्त दर 3:1 है और फर्म B की 2:1 है।

फर्म Aका $MRT_{XY} = \Delta y/\Delta x = 3/1 = 3:1$

फर्म B का $MRT_{XY} = \Delta y/\Delta x = 2/1 = 2:1$

यदि फर्म A वस्तु X की एक इकाई कम उत्पादन करके, उससे मुक्त संसाधनों से वस्तु Y का उत्पादन करती है तो उसे वस्तु Y की 3 इकाइयां प्राप्त होंगी। दूसरी ओर यदि फर्म B वस्तु Y की दो इकाइयां कम उत्पादित करके उससे मुक्त संसाधनों से वस्तु X की एक इकाई प्राप्त होगी। इस प्रकार दो फर्मों में संसाधनों के पुनः आवण्टन से दो फर्मों का मिलाकर वस्तु Y के उत्पादन में एक इकाई की शुद्ध वृद्धि हुयी है जबकि वस्तु X का उत्पादन अपरिवर्तित रहा है। अतः जब दो फर्मों की वस्तुओं के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर समान हो जाती है तो उनमें संसाधनों के पुनरावण्टन से कुल उत्पादन में वृद्धि करना सम्भव नहीं होता। इससे विशिष्टीकरण की परेटो अनुकूलतम की शर्त सिद्ध होती है।

इस शर्त को रूपान्तरण वक्रों द्वारा रेखाकृति 29.5 में दर्शाया गया है।

उपर्युक्त अनुकूलतम दशा को दो फर्मों के रूपान्तरण वक्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। रेखाकृति 29.5(a) तथा 29.5(b) में क्रमशः A तथा B फर्म के रूपान्तरण वक्र प्रदर्शित हैं जो वर्द्धमान अवसर लागत पर आधारित हैं। अतः दोनो वक्र मूल बिन्दु की ओर नतोदर है।

रेखाचित्र में फर्म A वस्तु X की OL तथा Y की OQ मात्रा उत्पादित करती है। इसी प्रकार फर्म B वस्तु X तथा Y की क्रमशः OE तथा ON मात्रा उत्पादित कर रही है। इस प्रकार वस्तु X का दोनो फर्मों द्वारा कुल उत्पादित OL+OE तथा वस्तु Y का कुल उत्पादन OQ+ON मात्रा के बराबर है।

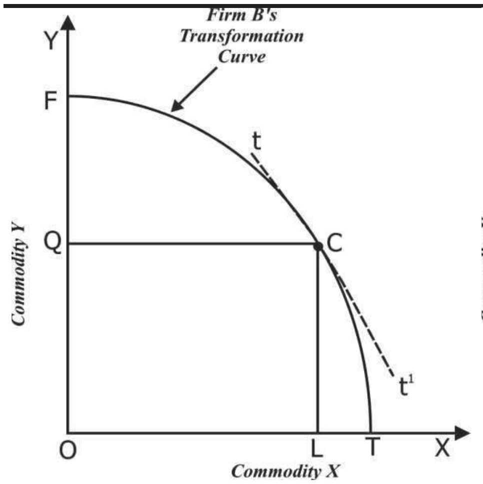

चित्र 29.5(a) फर्म A में रूपान्तरण की सीमान्त दर

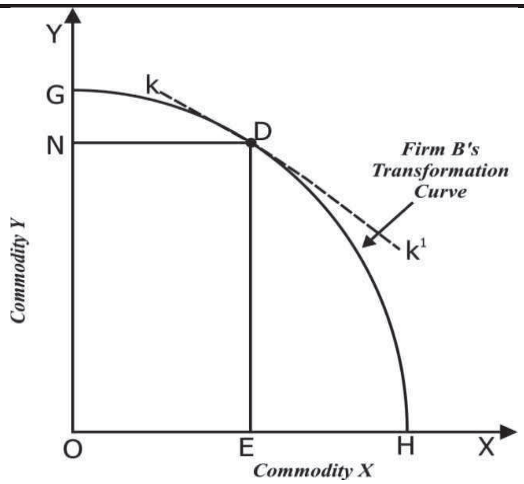

चित्र 29.5(b) फर्म B में रूपान्तरण की सीमान्त दर

रेखाकृति 29.5(a) तथा (b) में फर्म A तथा B के वर्तमान उत्पादन बिन्दुओं क्रमशः C और D पर स्पर्श रेखाएं खींची हैं। इन स्पर्श रेखाओं tt तथा kk की ढाल दो वस्तुओं के मध्य रूपान्तरण की सीमान्त दर (MRT_{XY}) को व्यक्त करती है। चित्र से स्पष्ट है कि फर्म A के रूपान्तरण वक्र tt के वर्तमान बिन्दु C पर खींची गयी स्पर्श रेखा tt की ढाल फर्म के रूपान्तरण वक्र GH के वर्तमान उत्पादन बिन्दु D पर खींची गयी स्पर्श रेखा kk की ढाल से अधिक है। जैसा कि गणितीय उदाहरण में स्पष्ट किया गया है कि दो वस्तुओं के कुल उत्पादन में वृद्धि होगी यदि फर्म A संसाधनों के पुनरावण्टन द्धारा वस्तु X का उत्पादन कुछ कम करके वस्तु Y का उत्पादन बढ़ाये तथा फर्म B वस्तु Y का उत्पादन कुछ कम करके वस्तु X का उत्पादन बढ़ाए तो कुल वस्तु उत्पादन में वृद्धि होगी। यह पुनरावण्टन तब तक करते रहना चाहिये जब तक कि दो फर्मो में वस्तु X तथा वस्तु Y में रूपान्तरण की सीमान्त दरें समान नहीं हो जातीं। ($MRT^{A}_{XY} = MRT^{B}_{XY}$)

5. विभिन्न उत्पादक फर्मों में किसी साधन के अनुकूलतम प्रयोग की शर्त

इस शर्त के अनुसार किसी साधन का प्रयोग प्रत्येक फर्म द्वारा इस सीमा तक किया जाना चाहिये कि दोनो फर्मों में उस साधन की सीमान्त उत्पादकता समान है। प्रो0 रेडर के अनुसार, ''किसी साधन तथा किसी पदार्थ के मध्य रूपान्तरण की सीमान्त दर किन्ही दो फर्मों के लिये समान होनी चाहिये जो उस साधन का प्रयोग तथा पदार्थ का उत्पादन करती हैं।'' यदि ऐसा नहीं है तो एक फर्म मे से दूसरी फर्म में साधन का स्थानान्तरण करके वस्तू विशेष के उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।

यह शर्त यह बतलाती है कि किसी साधन का सीमान्त उत्पादन उन सभी फर्मों में जो एक वस्तु विशेष को उत्पादित करती हैं, समान होनी चाहिये। इसको एक उदाहरण से समझा जा सकता है। यदि श्रम का सीमान्त उत्पादन फर्म A में किसी वस्तु की 25 इकाइयां है और फर्म B में 15 इकाइयां है तो वस्तु विशेष के कुल उत्पादन में वृद्धि होगी यदि श्रम को फर्म B से निकाल कर फर्म A में तब तक लगाया जाय जब तक कि उन दोनो फर्मों में श्रम का सीमान्त उत्पादन समान न हो जाय।
इस शर्त को नीचे दिये रेखाचित्र 29.6 से स्पष्ट किया गया है।

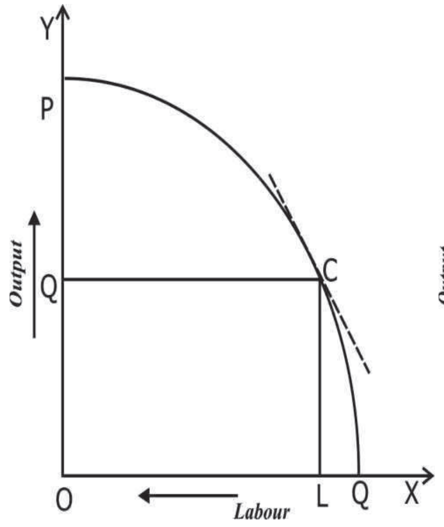

चित्र 29.6(a) फर्म A में रूपान्तरण की सीमान्त दर

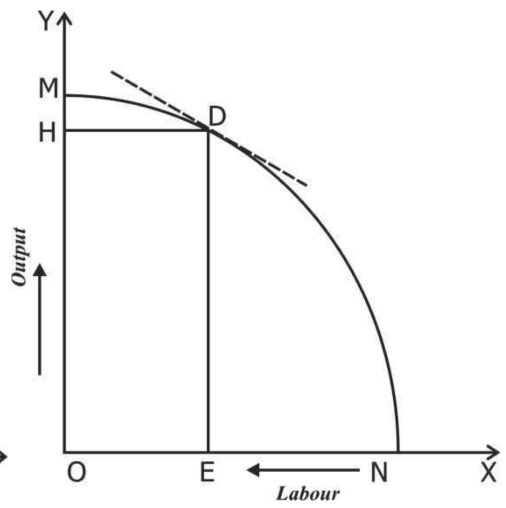

चित्र 29.6(b) फर्म B में रूपान्तरण की सीमान्त दर

X अक्ष पर श्रम की मात्रा दायें से बांये ओर बढ़ता हुआ दर्शाया गया है। Y अक्ष पर वस्तु के उत्पादन को नीचे से ऊपर बढ़ता हुआ दिखाया गया है। रेखाचित्र (a) में वक्र QP फर्म A में प्रयुक्त श्रम के कुल उत्पादन वक्र तथा रेखाचित्र (b) में वक्र NM फर्म B का कुल उत्पादन वक्र है। यह स्पष्ट हो रहा है कि प्रत्येक फर्म में जब श्रम का अधिक प्रयोग किया जाता है तो वस्तु का कुल उत्पादन में वृद्धि होती है किन्तु घटती दर से।

फर्म A में श्रम की फस् मात्रा का उपयोग करके OQ मात्रा की वस्तु का उत्पादन होता है जबकि फर्म B में NE श्रम की मात्रा प्रयुक्त करने से OH वस्तु की मात्रा का उत्पादन होता है। फर्म A के बिन्दु B (जो श्रम के QL प्रयोग के अनुरूप है) पर खींची गयी स्पर्श रेखा की ढाल $\Delta Q/\Delta L$ फर्म B के बिन्दु D पर (जो श्रम के NE मात्रा के प्रयोग के अनुरूप है) पर खींची गयी श्रम की ढाल $\Delta Q/\Delta L$ से अधिक है।

$$\Delta Q/\Delta L \text{ in A} > \Delta Q/\Delta L \text{ in B}$$

इससे यह स्पष्ट होता है कि यदि श्रम को फर्म B से निकाल कर फर्म A में लगाया जाय तो कुल वस्तु उत्पादन में वृद्धि होगी। यह प्रक्रिया तब तक होगा जब तक दोनो फर्मों में श्रम के उत्पादन में रूपान्तरण की सीमान्त दर (अर्थात श्रम का सीमान्त उत्पादन) समान नहीं हो जाता।

6. साधन के समय का अनुकूलतम वितरण

यह शर्त किसी उत्पादन के साधन का विशेषतया मानवीय साधनों के समय का कार्य तथा अवकाश के मध्य अनुकूलतम वितरण से सम्बन्धित है। इस शर्त के अनुसार, ''किसी वस्तु की उत्पादित मात्रा तथा उसमें व्यय समय के मध्य प्रतिस्थापन की सीमान्त दर, साधन द्वारा व्यय किये गये समय तथा वस्तु के उत्पादन में रूपान्तरण की सीमान्त दर के समान होनी चाहिये।''

यहां अनधिमान वक्र का प्रत्येक बिन्दु कार्य करने से प्राप्त आय अर्थात मजदूरी तथा अवकाश के मध्य प्रतिस्थापन की सीमान्त दर व्यक्त करता है। इसी प्रकार श्रमिक के निश्चित समय तक कार्य करने पर वस्तु का उत्पादन होता है। यहां रूपान्तरण वक्र का प्रत्येक बिन्दु कार्य के घण्टे तथा वस्तु के उत्पादन के मध्य रूपान्तरण की सीमान्त दर को प्रदर्शित करता है। जहां पर अनधिमान वक्र और रूपान्तरण वक्र एक दूसरे को स्पर्श करते हैं वह बिन्दु अवकाश तथा आय अर्जित करने के लिये कार्य की अनुकूलतम स्थिति को व्यक्त करता है।

अवकाश और कार्य (आय) में परेटो अनुकूलतम दशा को रेखाकृति 29.7 में दर्शाया गया है।

X अक्ष पर दायें से बांये कार्य तथा Y अक्ष पर नीचे से ऊपर मुद्रा आय को मापा गया है। वक्र AB कार्य तथा वस्तु उत्पादन के मध्य रूपान्तरण वक्र है जो कि मूल बिन्दु कर ओर अवतल हैं जो कार्य तथा वस्तु उत्पादन के बीच ह्रासमान सीमान्त प्रतिफल को प्रदर्शित करता है। IC_1, IC_2

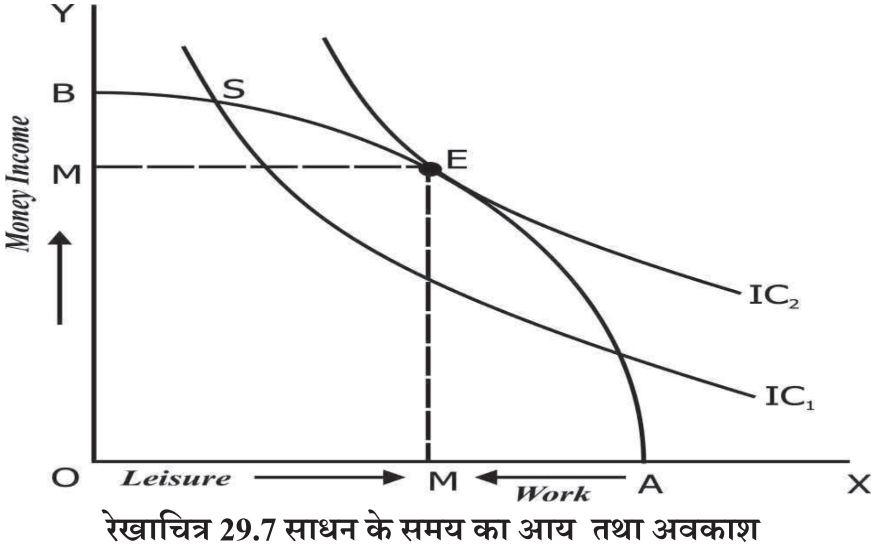

रेखाचित्र 29.7 साधन के समय का आय तथा अवकाश

साधन के स्वामियों अर्थात श्रमिक के अवकाश तथा आय में अनधिमान वक्र है। अनुकूलतम दशा बिन्दु E पर है जहां रूपान्तरण वक्र ABअनधिमान वक्र IC_2 को

स्पर्श कर रही है। अतः बिन्दु E पर कार्य तथा आय के मध्य रूपान्तरण की सीमान्त दर (MRT) उनके मध्य प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS) के समान है।

$$MRT_{XY} = MRS_{XY}$$

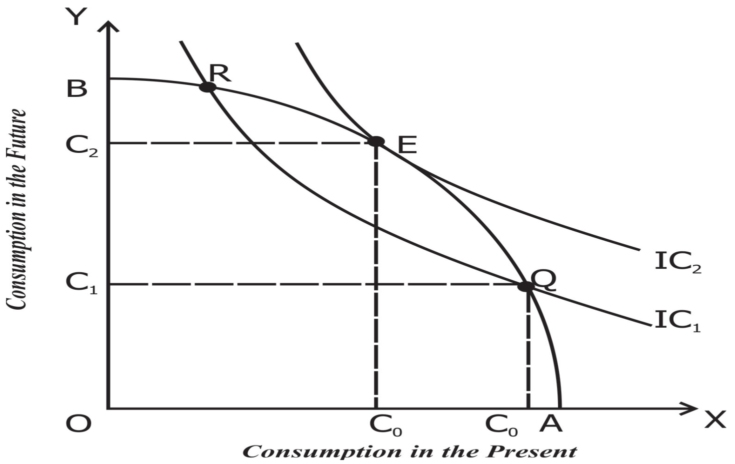

रेखाचित्र 29.8 ऋण प्रदान करने तथा ऋण लेने की अनुकूलतम दशा

रेखाचित्र से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति AL मात्रा का कार्य करके तथा OM आय अर्जित करके अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करता है और इस अनुकूलतम स्थिति में वह OL अवकाश की मात्रा का आनन्द ले रहा है।

7. पूंजी का अन्तःकालीन अनुकूलतम आवण्टन

इस दशा के अनुसार उधार लेने वाले व्यक्ति के लिये पूंजी पर ब्याज दर उधार लेने वाले व्यक्ति की पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होनी चाहिये। इस दशा को एक रेखाचित्र के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

अक्ष X तथा Y पर क्रमशः वर्तमान तथा भविष्य मे आय के रूप में मुद्रा की मात्रा प्रदर्शित की गयी है।

IC_1,IC_2 दो अनधिमान वक्र है जो वर्तमान तथा भविष्य की आय के उन विभिन्न संयोगो को प्रदर्शित करते हैं जिससे उधार देने वाले व्यक्ति को समान संतुष्टि प्राप्त होती है।

ABउधार देने वाले व्यक्ति का उत्पादन सम्भावना अथवा रूपान्तरण वक्र है जो मूल बिन्दु की ओर नतोदर है जिसका अभिप्राय यह है कि वर्तमान पूंजी की सीमान्त उत्पादकता घटती हुयी होने के

कारण उत्पादन की लागत बढ़ती हुयी है। रेखाचित्र 29.8 में IC2 वक्र तथा ABवक्र बिन्दु म् पर एक दूसरे को स्पर्श करते हैं जहां ऋणदाता का वर्तमान उपभोग व भविष्य उपभोग में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS) ऋणग्राही के रूपान्तरण की सीमान्त दर (MRT) के समान है।

बिन्दु Q प्रारम्भिक अवस्था है जिस पर ऋणदाता का अनधिमान वक्र IC_1 तथा ऋणग्राही का रूपान्तरण वक्र AB एक दूसरे को काट रहे हैं। अतः यह अनुकूलतम बिन्दु नहीं है। बिन्दु Q से E को जाने पर वह C_0C_0 के बराबर अपना वर्तमान उपभोग कम करता है और C_1C_1 के बराबर अपने भविष्य के उपभोग मे वृद्धि करता है। अतः वह C_0C_0 के बराबर ऋण देता है।

यदि बिन्दु त् आरम्भिक अवस्था है तो अनधिमान वक्र IC_1, IC_2 वाला व्यक्ति बिन्दु R से बिन्दु E पर जायेगा जिससे उसके भविष्य की तुलना में वर्तमान में उपभोग बढ़ जायेगा। ऐसी अवस्था में वह उधार लेने वाला होगा।

29.4.4 परेटो अनुकूलतम की द्वितीय क्रम की समस्त शर्तें

ऊपर दी गयी सीमान्त शर्तों को प्रथम क्रम की शर्तों की संज्ञा दी जाती है। वे अधिकतम सामाजिक कल्याण की प्राप्ति के लिये आवश्यक तो है किन्तु पर्याप्त नहीं। इन प्रथम क्रम शर्तों के अतिरिक्त द्वितीय क्रम की शर्तों की पूर्ति भी आवश्यक है।

इन द्वितीय क्रम की शर्तों के अनुसार जहां पर सीमान्त शर्तों की पूर्ति है वहां यदि अनधिमान वक्र मूल बिन्दु की ओर उत्तल हों और रूपान्तरण वक्र मूल बिन्दु की ओर अवतल हों तो सामाजिक कल्याण अधिकतम होगा और परेटो-अनुकूलतम की स्थिति प्राप्त होगी।

समस्त दशाएं-

अधिकतम सामाजिक कल्याण की प्राप्ति के लिये एक अन्य प्रकार की दशाओं, जिनको जे0 आर0 हिक्स ने समस्त दशाओं की संज्ञा दी है, की पूर्ति होना भी आवश्यक है।

इन समस्त दशाओं के अनुसार अधिकतम कल्याण की प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है कि कोई ऐसी वस्तु उत्पादित करके जो पहले उत्पादित नहीं की जा रही है अथवा ऐसे साधन का प्रयोग करके जिसका प्रयोग नहीं हो रहा है, कल्याण में वृद्धि करना असम्भव हो।

उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि परेटो अनुकूलतम अर्थात अधिकतम सामाजिक कल्याण तभी प्राप्त होगा जबकि सीमान्त शर्तों (दोनों प्रथम एवं द्वितीय क्रम की) एवं समस्त शर्तों की पूर्ति होती है। परन्तु यह परेटो अनुकूलतम कोई विशेष स्थिति नहीं है।

29.5 परेटो के कल्याणकारी अर्थशास्त्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन

परेटो को मानदण्ड तथा परेटो अनुकूलतम तथा उस पर आधारित अधिकतम सामाजिक कल्याण की अवधारणा का कल्याणकारी अर्थशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न व्यक्तियों में वस्तुओं का विनिमय अथवा व्यापार करने के लाभों तथा उससे सामाजिक कल्याण में वृद्धि परेटो अनुकूलतम अवधारणा से स्पष्ट किया गया है। परेटो का सिद्धान्त जैसा कि डा0 ग्राफ ने बताया है, कोई अन्तः वैज्ञानिक तुलनाएं नहीं करता। वह एक बहुत विशाल नैतिक मत पर आधारित है कि, ''हमें सबके प्रति नेकी करनी चाहिये'', परन्तु इसकी भी अपनी कमियां हैं। परेटो के कल्याणकारी मानदण्ड तथा उस पर आधारित अनुकूलतम की अवधारणा की विभिन्न दृष्टिकोणों से आलोचनात्मक मूल्यांकन किया जा सकता है।

सर्वप्रथम हम परेटो के कल्याणकारी अर्थशास्त्र के गुणों की व्याख्या करेंगे।

29.5.1 गुण

1. कल्याण सम्बन्धी परिवर्तनों का मूल्यांकन करने हेतु परेटो द्वारा प्रस्तुत मापदण्ड अधिक श्रेष्ठ एवं अधिक वैज्ञानिक है क्योकि यह मापदण्ड उपयोगिता की अन्तः वैज्ञानिक तुलनाओं पर निर्भर नहीं करता है।

2. परेटो ने अपना दृष्टिकोण सम्पूर्णतः क्रम संख्यात्मक उपयोगिता क्रिया पर निर्मित किया है जो अधिक वैज्ञानिक है। जबकि नव क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के कल्याणकारी अर्थशास्त्र की मूल-मान्यता गणन -संख्यात्मक क्रिया थी।

3. परेटो द्वारा प्रतिपादित कल्याणात्मक विश्लेषण कल्याण के मूल्य रहित मापदण्ड को निर्मित करने का यह प्रथम प्रयास था। परेटो ने मूल्य निर्णयो अथवा नैतिक मापदण्ड को एकदम निकाल के अलग कर दिया। परेटो के द्वारा एक ही मूल्य निर्णय था जिसके अनुसार किसी अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह को हानि पहुंचाये बिना यदि किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के कल्याण में वृद्धि की जाती है तो यह वास्तव में समाज के लिये अच्छा होगा। अतः यह अधिक बेहतर वैज्ञानिक मापदण्ड है।

4. परेटो की अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था की धारणा एवं पीगू द्वारा प्रतिपादित आदर्श उत्पाद की धारणा में बहुत समानता पायी जाती है। दोनो ही धारणाएं अधिकतम कल्याण को व्यक्त करती है। लेकिन परेटो की धारणा पीगू की धारणा की तुलना में अधिक वैज्ञानिक है।

5. परेटो के कल्याणकारी अर्थशास्त्र का मुख्य गुण यह है कि इसने सामाजिक कल्याण के अस्पष्ट एव स्पष्ट परिवर्तनों के बीच सुनिश्चित अन्तर किया है। ''अस्पष्ट'' परिवर्तनों से अभिप्राय उन

परिवर्तनों से है जो कुछ व्यक्तियों के कल्याण में तो वृद्धि करते हैं जबकि अन्य व्यक्तियों के कल्याण में कमी कर देते हैं। ''स्पष्ट'' परिवर्तनों का तात्पर्य उन परिवर्तनों से है जो किन्ही व्यक्तियों को हानि पहुंचाये बिना कुछ अन्य व्यक्तियों के कल्याण में वृद्धि कर देते हैं। परेटो के विश्लेषण में स्पष्ट परिवर्तनों को ही स्थान दिया गया है।

29.5.2 दोष

1. परेटो के विश्लेषण की सबसे बड़े त्रुटि यह है कि यह समाज में आय-वितरण की समस्या का उल्लेख नहीं करता है। इनके विश्लेषण में आय वितरण का समर्थन किया गया है। प्रो0 बोमोल के अनुसार परेटो का दृष्टिकोण कल्याणवादी अर्थशास्त्रियों के पास आय वितरण के विषय पर ध्यान न देने के लिये एक बड़ा उपकरण है।''

2. परेटो का मानदण्ड मूल्य निर्णयों से मुक्त नहीं है- यह कहना मूल्य निर्णयों के अन्तर्गत ही है कि किसी अन्य व्यक्ति के पहले से बुरी स्थिति में ले जाये बिना हर व्यक्ति को पहले से अच्छी स्थिति में नहीं लाया जा सकता। अतः उनके अनुयायियों का यह दावा कि परेटो विश्लेषण अधिक श्रेष्ठ अधिक वैज्ञानिक है क्योंकि इसमें न तो उपयोगिता की अन्तः वैज्ञानिक तुलनाओं और न ही मानदण्डो की आवश्यकता पड़ती है आधार-रहित दावा है।

3. परेटो कल्याण स्पष्ट परिवर्तनों का ही मूल्यांकन करता है- अन्य शब्दों में यह मापदण्ड केवल उन्ही सरकारी नीतियों का मूल्यांकन करता है जो किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह को हानि पहुंचाये बिना कम से कम एक व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि कर देती है। इस प्रकार देखा जाये तो परेटो विश्लेषण ''अस्पष्ट'' कल्याणकारी परिवर्तनों का मूल्यांकन करने में असफल है क्योंकि इसके मूल्यांकन के लिये उपयोगिता की अन्तः वैयक्तिक तुलनाओं की आवश्यकता पड़ती है।

बोल्डिंग के अनुसार, ''समाज कल्याण में दो प्रकार से परिवर्तन होते हैं। (1) एक तो जिनके द्वारा व्यापार के माध्यम से सब या कम से कम एक व्यक्ति को लाभ होता है। तथा (2) दूसरे जिनके द्वारा स्पर्धा के माध्यम से सब या कम से कम एक व्यक्ति को लाभ होता है। परेटो के मापदण्ड में विश्वव्यापी सत्यता का अभाव है और कल्याणकारी अर्थशास्त्र को निर्जीव बना देता है। यह आर्थिक नीति निर्धारण में सीमित व्यवहारिक महत्व रखता है। प्रो0 पी0 के0 पटनायक के अनुसार, ''जब विकल्पों की तुलना करनी होती है तो परेटो अनुकूलतम बुरी तरह असफल रहता है।''

4. परेटो अनुकूलतम की अनिश्चितता- परेटो अनुकूलतम की प्रमुखतम त्रुटि यह है कि इसके अन्तर्गत कोई एक अनुकूलतम स्थिति नहीं होती। परेटो द्वारा प्रतिपादित अनुकूलतम स्थिति ''शिखर स्थिति'' अथवा अधिकतम सामाजिक कल्याण की स्थित होती है लेकिन परेटो विश्लेषण में कोई

एक शिखर-स्थिति नहीं है बल्कि ऐसी अनेक शिखर-स्थितियां होती हैं जो परेटो की दृष्टि से अनुकूल है।

यह अनिश्चितता इसलिये है कि परेटो के विश्लेषण में सामाजिक कल्याण में वृद्धि केवल तब ही होती है जब एक व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि से किसी दूसरे व्यक्ति के कल्याण में कमी न हो। यह अनिश्चितता तब ही दूर की जा सकती है यदि हम नैतिक निर्णय लेने को तैयार हों।

परन्तु इन आलोचनाओं के बावजूद यह सत्य है कि परेटो का मानदण्ड बिल्कुल निरर्थक नहीं है। बैरोन ने परेटो के मापदण्ड को वास्तविक बनाने के प्रयत्न में क्षतिपूरक के विचार का समावेश किया। परेटो का मानदण्ड इसलिये उपयोगी है कि यह ''परेटो दृष्टि से गैर-अनुकूल विकल्पों को अलग कर देने से उस क्षेत्र को घटा देता है जिसमे सर्वोत्तम विकल्पों की खोज हमें करनी है और इस प्रकार यह एक प्रथम कदम के रूप में उपयोगी है।''

इसके अतिरिक्त परेटो अनुकूलतम विश्लेषण का उपयोग यह भी है कि यह दो व्यक्तियों अथवा दो देशों में वस्तुओं के विनिमय अथवा व्यापार के लाभों को स्पष्ट करता है।

29.6 सारांश

परेटो प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होने आर्थिक कल्याण में होने वाली वृद्धि अथवा कमी को मापने हेतु एक निश्चित मापदण्ड प्रदान किया। इसे कल्याणकारी अर्थशास्त्र में एक अहम भूचिन्ह माना गया है। क्लासिकल कल्याणकारी अर्थशास्त्र पर एक निश्चित प्रहार करते हुये परेटो ने क्रम संख्यात्मक उपयोगिता की क्रिया को अपने विश्लेषण का आधार बनाया। परेटो के कल्याणकारी अर्थशास्त्र को ''नव-कल्याणकारी अर्थशास्त्र'' के रूप में भी स्वीकार किया गया है।

परेटो ने मूल्य निर्णय का आश्रय ही नहीं लिया वरन समाज में आय-वितरण की समस्या के बारे में भी एक शब्द नहीं कहता। इसका सम्बन्ध मात्र धन के उत्पादन एवं विनिमय से ही सम्बिन्धित है।

परेटो के मापदण्ड के अनुसार ऐसा परिवर्तन जिससे कम से कम एक व्यक्ति की स्थिति अच्छी होती है और किसी अन्य की खराब नहीं होती तो यह सामाजिक कल्याण में सुधार है।

सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिये परेटो ने उपभोग , उत्पादन तथा विनिमय क्षेत्र की अनेक दशाओं की विस्तृत रूप से व्याख्या की है। इन दशाओं की व्याख्या के लिये परेटो ने कुछ मान्यताओं का आधार भी लिया है।

परेटो ने अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था का वर्णन करते हुये स्पष्ट किया कि यह वह व्यवस्था होती है जिसमें कोई भी इस प्रकार का परिवर्तन करना सम्भव नहीं है जिसके अन्तर्गत सभी व्यक्तियों की उपयोगिताएं बढ़ जाती हैं अथवा घट जाती हैं। परेटो द्वारा प्रतिपादित विश्लेषण में अधिकतम

सामाजिक कल्याण शिखर स्थिति को व्यक्त करती है परन्तु कठिनाई यह है कि कोई एक शिखर बिन्दु नहीं होता है बल्कि इस विश्लेषण में तो अनेक शिखर बिन्दु होते हैं। और हर बिन्दु आर्थिक कल्याण की एक निश्चित मात्रा को व्यक्त करता है।

29.7 शब्दावली

1. उपयोगिता सम्भावना वक्र- यह वक्र वस्तुओं के एक निश्चित समूह से दो व्यक्तियों द्वारा प्राप्त उपयोगिताओं का विभिन्न संयोगो द्वारा बिन्दुपथ है।

2. प्रसंविदा वक्र- दो व्यक्तियों के विभिन्न अनधिमान वक्रों के स्पर्श बिन्दु सामाजिक अनुकूलतम के बिन्दु होते हैं, जिन्हे एक वक्र से जोड़ देने पर प्रसंविदा वक्र प्राप्त हो जाता है। इसे संघर्ष वक्र भी कहते हैं क्योंकि यह इस वक्र पर ऊपर अथवा नीचे की ओर चलते हैं तो एक व्यक्ति के संतोष में वृद्धि तो दूसरे के संतोष में कमी होती है।

3. तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर- समोत्पाद वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर ढाल तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को प्रदर्शित करती है।

4. आवण्टनात्मक कुशलता- इसके अनुसार विभिन्न वस्तुओं में साधनों का आवण्टन ऐसा होना चाहिये कि उपभोक्ताओं की सन्तुष्टि अथवा कल्याण अधिकतम हो।

5. रूपान्तरण सीमान्त दर- की किसी फर्म की दो वस्तुओं के मध्य रूपान्तरण की सीमान्त दर साधनों को स्थिर रहने पर एक वस्तु की वह मात्रा है जो दूसरे वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई उत्पादन करने के लिये त्याग करनी पड़ती है।

6. रूपान्तरण वक्र- रूपान्तरण वक्र या उत्पादन सम्भावना वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगो का बिन्दुपथ है जिनको एक उत्पादक अपने दिये हुये साधनों के प्रयोग से उत्पादित कर सकता है।

7. वर्द्धमान अवसर लागत- एक वस्तु की अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने के लिये दूसरी वस्तु के उत्पादन के अधिकाधिक मात्रा का त्याग करना पड़ता है। इससे प्राप्त वक्र मूल बिन्दु के नतोदर है।

8. सीमान्त भौतिक उत्पादन- साधन की एक इकाई से पदार्थ की कितनी इकाइयां उत्पादित की जा सकती हैं वह उस साधन का सीमान्त भौतिक उत्पादन है।

9. द्वितीय क्रम की शर्तें- इन शर्तों के अनुसार जहां पर प्रथम क्रम की शर्तें अर्थात सीमान्त शर्तों की पूर्ति होती है वहां यदि अनधिमान वक्र मूल बिन्दु की ओर उत्तल हों और रूपान्तरण वक्र मूल बिन्दु की ओर अवतल हों तो सामाजिक कल्याण अधिकतम होगा।

29.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. यह किसका विचार है कि समाज में किसी की स्थिति को बिगाड़े बिना किसी अन्य की परिस्थिति में सुधार सम्भव नहीं होता है-

a.) परेटो b.) पीगू c.) काल्डोर d.) हिक्स

2. परेटो का कल्याण विचार किस प्रकार का है-

a.) सम्भाव्य b.) सापेक्ष c.) वास्तविक d.) व्यक्तिगत

3. परेटो के कल्याणकारी अर्थशास्त्र को .... के नाम से भी जाना जाता है।

4. परेटो ने अपने कल्याणत्मक विश्लेषण को किस क्रिया पर आधारित किया ?

5. क्या परेटो ने अपने विश्लेषण में मूल्य-निर्णयों का आश्रय लिया ?

6. परेटो के कल्याणकारी अर्थशास्त्र में कोई एक अनुकूलतम स्थिति नहीं होती। यह कथन सत्य है अथवा नहीं ?

उत्तर 1- a. ,2- a. ,3. नव कल्याणकारी अर्थशास्त्र ,4. क्रम संख्यात्मक उपयोगिता की क्रिया पर

5. नहीं ,6. सत्य है

29.9 संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. सेठी, टी. टी. (मक 2008), ''व्यष्टि अर्थशास्त्र'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक,आगरा
2. झिंगन, एम.एल. (2007), ''उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त'', वृन्दा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
3. आहूजा, एस.एल. (2006), ''उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त: व्यष्टिपरक विश्लेषण'',चन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली

29.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

1. Baumol, W. J.: "Economic Theory and Operational Analysis, 4th edition, Prentice hall, 1977.
2. Robert Y. Awh: "Microeconomics: Theory and Policy, John Wiley, 1976.
3. Sen Amartya: "On Ethics and Economics, Oxford University Press, 1990.
4. Maurice Charles & Own R. Phillips: "Economic Analysis: Theory and Application, Irwin 1986.

5. Boulding, K.E.: “Welfare Economics”, in *A Survey of Contemporary Economics*, (VolII), (ed.) B.F.Haley
6. Nath S.K: “Are formal Welfare Criteria Required?”, E.J., 1964.
7. Blaug Mark (1983): “Economic Theoryin Retrospect”,3rd ed., Vikas Publication House Pvt. Ltd.
8. Gould P.John, Edward P. Lazear (1989): “Ferguson & Gould’s Economic Theory”, 6th ede., All Indian Travellor Bookseller, Delhi.

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. परेटियम इष्टतम क्या है ?

2. परेटो द्वारा प्रतिपादित ‘‘अनुकूलतम सामाजिक कल्याण’’ की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिये।

3. पीगू द्वारा प्रतिपादित कल्याणकारी अर्थशास्त्र तथा परेटो द्वारा प्रतिपादित कल्याणकारी अर्थशास्त्र में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

इकाई 30- नवीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र

30.1 प्रस्तावना
30.2 उद्देश्य
30.3 क्षतिपूरक सिद्धान्त
30.3.1 मान्यताएं
30.4 काल्डोर व हिक्स का कल्याण का मानदण्ड
30.5 हिक्स का मानदण्ड अथवा हिक्स द्वारा प्रस्तुत क्षतिपूरक परीक्षण
30.6 प्रो0 सिटोवस्की द्वारा प्रस्तुत क्षतिपूर्ति परीक्षण
30.6.1 सिटोवस्की का दोहरा मापदण्ड
30.6.2 सिटोवस्की विरोधाभास की व्याख्या
30.7 आलोचनाएं
30.8 सारांश
30.9 शब्दावली
30.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
30.11 संदर्भ-ग्रन्थ सूची
30.12 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
30.13 निबन्धात्मक प्रश्न

30.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने पेरेटो के सामाजिक अनुकूलतम के विचार का अध्ययन किया। पेरेटो के इन विचारो ने नवीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र की गहरी नींव डाल् दी थी। परेटो के समान नवीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र की धारणा भी उपयोगिता के क्रमवाचक विचार तथा अन्तःवैयक्तिक तुलना का असम्भावता पर आधारित है। परन्तु, परेटो इस अपने मानदण्ड में ऐसी परिस्थिति की माप करने में असमर्थ रहे जहां पर किसी नीति परिवर्तन के फलस्वरूप समाज के एक वर्ग को हानि तथा दूसरे वर्ग को लाभ होता है। ऐसी दशा में सामाजिक कल्याण में वृद्धि अथवा कमी को परेटो के मानदण्ड द्वारा ज्ञात नहीं किया जा सकता।

अतः काल्डोर, हिक्स तथा सिटोवस्की आदि ने क्षतिपूर्ति मानदण्डों की प्रस्थापना की है। इन मानदण्डों के द्वारा सामाजिक कल्याण में विशुद्ध वृद्धि अथवा कमी को ज्ञात किया जा सकता है। इन्हे नवीन कल्याण अर्थशास्त्र भी कहते हैं। इस अर्थशास्त्र ने भी यह दिखाने का प्रयत्न किया कि मूल्य निर्णय किये बिना भी कल्याण में वृद्धि की जा सकती है।

इस सिद्धान्त के अध्ययन से यह समझा जा सकेंगे कि जब किसी नीति परिवर्तन से कुछ को लाभ और कुछ को हानि होती है तो वह परिवर्तन किस प्रकार सामाजिक कल्याण को बढ़ाएगा।

इस इकाई के अध्ययन से क्षतिपूरक परीक्षण को समझने में सहायता मिलेगी और परेटो के विश्लेषण में होने वाली त्रुटियों को दूर करने के लिये किस प्रकार वैज्ञानिक आधार पर पुनर्निमाण किया गया , इसकी भी विस्तार से व्याख्या की गयी है।

30.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

1. यह जान सकेंगे कि नवीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र का आधार क्या है।
2. यह समझ सकेंगे कि क्षतिपूरक सिद्धान्त परेटो विश्लेषण से किस प्रकार भिन्न है।
3. यह अवलोकन कर सकेंगे कि सामाजिक कल्याण में हुयी वृद्धि का मूल्यांकन हेतु विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने कौन से परीक्षण दिये हैं।

30.3 क्षतिपूरक सिद्धान्त

परेटो के द्वारा मूल्य रहित ने एक ऐसी कसौटी प्रदान की थी जिसकी सहायता से जांच की जा सकती है कि किसी विशिष्ट आर्थिक नीति से सामाजिक कल्याण में वृद्धि हुई अथवा नहीं। परेटो के अनुसार यदि कोई आर्थिक परिवर्तन किसी को हानि पहुंचाये बिना कुछ लोगों की स्थिति को श्रेष्ठ बना देता है

तो ऐसे परिवर्तन को सुधार मान लेना चाहिये। पर यदि कुछ को लाभ और कुछ को हानि पहुंचती हो तो परेटो की कसौटी ऐसे नीति परिवर्तनों को समझने में विफल रही क्योंकि परेटो का मानदण्ड केवल स्पष्ट एवं निश्चित परिवर्तनो पर ही लागू होता है। इसका कारण यह है कि परेटो ने अन्तःवैज्ञानिक समस्याओं को अपने विश्लेषण में कोई स्थान नहीं दिया।

परेटो के इस कल्याणकारी विश्लेषण का वैज्ञानिक आधार पर पुनर्निमाण करने के लिये सर्वप्रथम प्रयास निकोलस काल्डोर, जे0 आर0 हिक्स तथा टाइबर्र सिटोवस्की ने किया। परेटो की नींव पर अपने क्षतिपूरक सिद्धान्त की एक नवीन मापदण्ड का निर्माण किया जो परेटो की ही भांति मूल्य निर्णयों अथवा अन्तःवैयक्तिक तुलनाओं से रहित था। परन्तु परेटो के विपरीत अपने क्षतिपूरक सिद्धान्त के माध्यम से इन अर्थशास्त्रियों ने अस्पष्ट नीति सम्बन्धी परिवर्तनों की वांक्षनीयता का परीक्षण किया था। संक्षेप में, कहा जाय तो नवीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र, परेटो के विश्लेषण का विस्तार है। इन अस्पष्ट नीति सम्बन्धी परिवर्तनों के परीक्षण के लिये ही काल्डोर, हिक्स तथा सिटोवस्की ने ''क्षतिपूरक सिद्धान्त'' प्रस्तुत किये। इन परीक्षणों के योग को कभी-कभी ''नव-कल्याणकारी अर्थशास्त्र'' के रूप में भी जाना जाता है।

30.3.1 मान्यताएं - क्षतिपूरक सिद्धान्त'' कुछ महत्वपूर्ण मान्यताओं पर आधारित है-

1. व्यक्तियों की रुचियां या आस्वाद स्थिर ही रहते हैं।

2. प्रत्येक व्यक्ति की सन्तुष्टि दूसरों से स्वतंत्र होती है। जिससे वह अपने कल्याण का सबसे अच्छा निर्णायक स्वयं है।

3. उत्पादन एवं उपभोग में कोई वाहय प्रभाव नहीं होते।

4. उपयोगिता की माप क्रम संख्यात्मक होती है न कि गणन संख्यात्मक और न ही आर्थिक कल्याण की कोई अन्तःवैयक्तिक तुलनायें ही सम्भव हो सकती हैं।

5. उत्पादन और विनिमय की समस्याओं का वितरण की समस्या से अलग किया जा सकता है।

6. परिणामतः यह विश्लेषण सामाजिक कल्याण पर केवल उत्पादन परिवर्तनों के पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या करता है।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर काल्डोर, हिक्स तथा सिटोवस्की ने ''क्षतिपूरक भुगतान'' का विचार देकर आर्थिक कल्याण या सामाजिक कल्याण का वस्तुपरक मानदण्ड प्रस्तुत किये हैं। उनका विचार है कि उनका मानदण्ड मूल्यगत निर्णयों से स्वतंत्र है। अतः वैज्ञानिक है।

30.4 काल्डोर व हिक्स का कल्याण का मानदण्ड

क्षतिपूर्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वप्रथम ब्रिटिश अर्थशास्त्री निकोलस काल्डोर द्वारा किया गया है। काल्डोर का मानदण्ड एजवर्थ बाउले बाक्स रेखाकृति के शब्दों में किसी प्रसंविदा वक्र पर ऊपर व नीचे चल ने पर सामाजिक कल्याण विशुद्ध वृद्धि अथवा कमी की व्याख्या करता है।

काल्डोर के ही शब्दों में, ''अर्थशास्त्री को यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है कि किसी नीति विशेष को क्रियान्वित करने से समाज के किसी भी व्यक्ति को हानि नहीं होती। अर्थशास्त्री को केवल यही सिद्ध कर देना पर्याप्त है कि हानि से पीड़ित यदि सभी लोगों की पूर्ण क्षतिपूर्ति कर दी जाती है तो सभी समाज पहले की अपेक्षा अनुकूल स्थिति में बना रहता है।''

प्रो0 काल्डोर द्वारा प्रस्तुत क्षतिपूरक भुगतान पर आधारित सामाजिक कल्याण के माप का मानदण्ड निम्न शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है- ''एक परिवर्तन सुधार होता है यदि वे, जो लाभान्वित होते हैं, क्षतिग्रस्त व्यक्तियों द्वारा उनकी हानियों के निर्धारित मूल्य की अपेक्षा अपने लाभों को अधिक ऊंची संख्या पर मूल्यांकन करते हैं।''

साधारण शब्दो में, किसी नीति परिवर्तन से यदि समाज के एक वर्ग को हानि तथा दूसरे वर्ग को लाभ होता है तो ऐसी दशा में यदि लाभ प्राप्त करने वाला वर्ग अपने लाभों का मूल्यांकन, हानि सहन करने वाले वर्ग की हानि की अपेक्षा अधिक करता है, तो यह सामाजिक कल्याण में वृद्धि को प्रदर्शित करता है। काल्डोर के इस मापदण्ड को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है-

मान लीजिये कि दो आर्थिक स्थितियां X तथा Y हमारे समक्ष हैं। यदि X स्थिति मे लाभ प्राप्तकर्ता हानि पीड़ितों की पूर्ण क्षतिपूर्ति कर देते हैं और फिर भी Y स्थिति की तुलना में अधिक अनुकूल दशा में बने रहते हैं, तो सामाजिक दृष्टिकोण से X स्थिति, Y स्थिति की तुलना में अधिक श्रेष्ठ होगी। ऐसी स्थिति में Y स्थिति से निकलकर X स्थिति में प्रविष्ट होने से समाज अपनी वास्तविक आय में वृद्धि कर सकता है। प्रो0 काल्डोर के अनुसार वास्तविक आय की वृद्धि एवं सामाजिक कल्याण की वृद्धि समानार्थक है।

काल्डोर के शब्दों में, **''सभी परिस्थितियों में .... जहां एक निश्चित नीति भौतिक उत्पादकता और इस प्रकार समग्र वास्तविक आय में वृद्धि करती है, सभी व्यक्तियों को पहले की अपेक्षा श्रेष्ठतर या किसी हद तक बिना किसी की दशा हीनतर किये कुछ लोगों को श्रेष्ठतर बनाना सम्भव होता है। यह प्रदर्शित करना पर्याप्त है कि यदि सभी व्यक्तियों को जो क्षतिग्रस्त होते हैं, उनकी क्षति की पूर्णतया पूर्ति कर दी जाये तो भी शेष समुदाय पहले की अपेक्षा श्रेष्ठतर रहेगा।''**

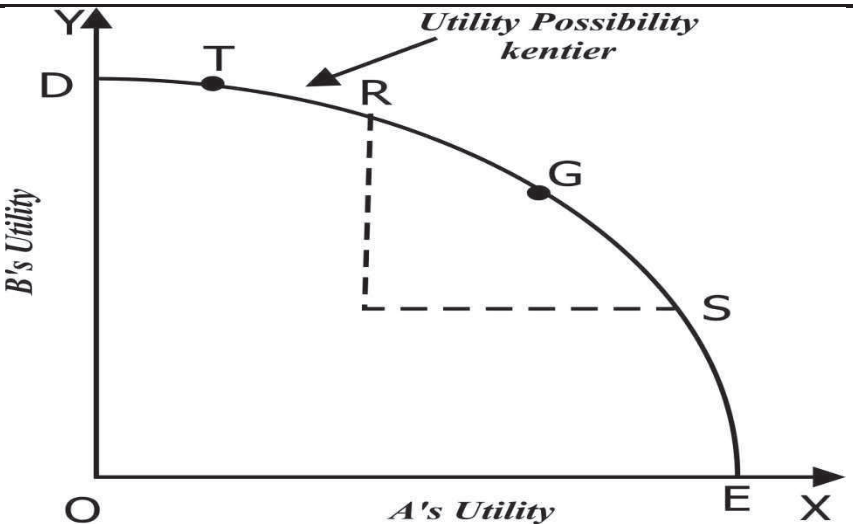

रेखाचित्र 30.1 काल्डोर व हिक्स का कल्याणकारी मानदण्ड

काल्डोर के इस मानदण्ड को उपयोगिता सम्भावना वक्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। रेखाकृति 30.1 में X तथा Y अक्षों पर क्रमशः A तथा B व्यक्ति की उपयोगिताओं को क्रमवाचक रूप में प्रस्तुत किया गया है। DE एक उपयोगिता सम्भावना वक्र है जो वस्तुओं तथा सेवाओं के एक निश्चित समूह के दो व्यक्तियों A तथा B के मध्य वितरण के परिणामस्वरूप उन्हे प्राप्त होने वाली व्यक्तिगत उपयोगिताओं के विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है। मान लीजिये कि वस्तु के एक निश्चित वितरण से प्राप्त होने वाली दोनो व्यक्तियों की उपयोगितायें G बिन्दु द्वारा व्यक्त है। यदि वस्तु तथा सेवा का पुनर्वितरण किया जाता है जिसके फलस्वरूप । व्यक्ति द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं की कुछ मात्रा को B व्यक्ति को हस्तान्तरित कर दिया जाता है जिससे कि B की उपयोगिता में वृद्धि तथा । व्यक्ति की उपयोगिता में कमी हो जाती है। रेखाकृति 30.1 में ळ बिन्दु से R बिन्दु की ओर चलन इसी स्थिति को प्रदर्शित करता है। किन्तु Q बिन्दु से R अथवा S अथवा G पर जाने पर बिना दूसरे की उपयोगिता में कमी हुए एक की उपयोगिता में वृद्धि होती है (बिन्दु R अथवा S) अथवा दोनो की उपयोगिता में वृद्धि होती है (बिन्दु G) यह चलन परेटो के मानदण्ड के अनुसार मूल्यांकित किया जा सकता है।

किन्तु Q बिन्दु से T बिन्दु पर चलन को परेटो के मानदण्ड द्वारा समझाया नहीं जा सकता क्योंकि इस स्थिति में B की उपयोगिता में वृद्धि औरA की उपयोगिता में कमीं हो जाती है। चूंकि यह T बिन्दु DE उपयोगिता सम्भावना वक्र पर स्थित है अतः दोनो व्यक्तियों की उपयोगिताओं को पुनर्वितरित करके (अर्थात क्षतिपूरक करके) R, G, S उपयोगिताओं का प्राप्त किया जा सकता है जो Q बिन्दु की अपेक्षा निश्चित रूप से परेटो मानदण्ड के अनुसार सामाजिक कल्याण में वृद्धि को प्रदर्शित करते हैं। किन्तु Q बिन्दु से T बिन्दु की ओर चलन कल्याण में वृद्धि को ही प्रदर्शित करता

है जिससे कि किसी व्यक्ति की उपयोगिता Q बिन्दु द्वारा प्रदर्शित उपयोगिता स्तर से कम नहीं होती है।

T बिन्दु से R बिन्दु पर तथा निश्चित रूप से G बिन्दु पर गति से A व्यक्ति की उपयोगिता की हानि की क्षतिपूर्ति कर दी गयी है अर्थात B व्यक्ति अपनी उपयोगिता में लाभ को A व्यक्ति की उपयोगिता में हानि की अपेक्षा अधिक मूल्यांकित करता है जो काल्डोर के मानदण्ड के अनुसार सामाजिक कल्याण में वृद्धि है इस प्रकार काल्डोर के अनुसार फ बिन्दु से ज् बिन्दु की ओर चलन केवल तभी सुधार होता है यदि फ बिन्दु, T बिन्दु से होकर गुजरने वाले उपयोगिता सम्भावना वक्र के नीचे होता है।

आगे, काल्डोर के कल्याणकारी मानदण्ड के अनुसार, जब किसी नीति परिवर्तन के फलस्वरूप उपयोगिता सम्भावना वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाता है तो यह भी एक सुधार होगा अर्थात सामाजिक कल्याण में वृद्धि होगी।

प्रस्तुत रेखाचित्र 30.2 में उपयोगिता सम्भावना वक्र UV में बिन्दु Q पर व्यवस्था सन्तुलन में है। अब यदि यह कल्पना करें कि किसी नीति परिवर्तन के फलस्वरूप उपयोगिता सम्भावना वक्र UV से U'V' से हो जाता है जिसकी सन्तुलन अवस्था अब बिन्दु R पर है।

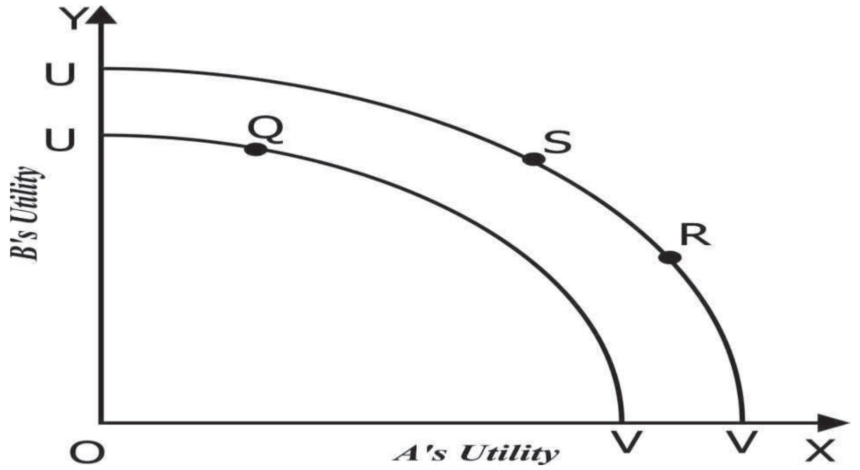

रेखाचित्र 30.2 काल्डोर व हिक्स का कल्याणकारी मानदण्ड

यह प्रत्यक्ष विदित हो रहा है कि बिन्दु R पर बिन्दु Q की अपेक्षा A का तुष्टिगुण अधिक एवं B का तुष्टिगुण कम हो रहा है। किन्तु काल्डोर ने अपने मानदण्ड के आधार पर इस परिवर्तन को सामाजिक कल्याण में वृद्धि के रूप में दर्शाया है। काल्डोर के अनुसार बिन्दु R से केवल पुनर्वितरण द्वारा ऐसे बिन्दु जैसे कि S तक पहुंचा जा सकता है। जो निश्चित रूप से बिन्दु फ की तुलना में श्रेष्ठतर है क्योकि

दोनो व्यक्ति A तथा B के तुष्टिगुण में वृद्धि हो रही है। ऐसा भी हो सकता है कि एक व्यक्ति का तुष्टिगुण अधिक हो जबकि दूसरे व्यक्ति का पूर्ववत रहे।

अतः अर्थव्यवस्था का बिन्दु Q से बिन्दु R तक चलन काल्डोर-हिक्स मानदण्ड के अनुसार सामाजिक कल्याण की दृष्टि में सुधार है।

30.5 हिक्स का मानदण्ड अथवा हिक्स द्वारा प्रस्तुत क्षतिपूरक परीक्षण

काल्डोर के समान हिक्स ने भी अपना मानदण्ड प्रस्तुत करते हुये यह व्याख्या की कि किस प्रकार प्रसंविदा वक्र पर चलन के फलस्वरूप सामाजिक कल्याण में परिवर्तन का मापा जा सकता है। प्रो0 हिक्स के परीक्षण को उन्ही के शब्दों मे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है, ''अनुज्ञात पुनर्संगठन से अभिप्राय उस पुनर्संगठन से है जिसके अन्तर्गत क्षतिपूर्ति करने के उपरान्त भी समाज को कुछ शुद्ध लाभ होता है।'' आगे उदाहरण देते हुये वे लिखते हैं, ''यदि किसी परिवर्तन द्वारा A को इतना श्रेष्ठतर बना दिया गया है कि वह B की क्षति की पूर्ति कर सके तथा फिर भी उसके पास कुछ अतिरेक शेष रह जाता है तो पुर्नव्यवस्था सुस्पष्ट रूप से सुधार है।''

साधारण शब्दों में, **''कोई परिवर्तन तब सुधार अर्थात कल्याण में वृद्धि करता है जबकि परिवर्तन स्थिति में क्षतिग्रस्त व्यक्ति, लाभान्वित व्यक्तियों को मौलिक स्थिति से परिवर्तित रोकने के लिये घूस देकर भी प्रेरित करने में समर्थ नहीं होते हैं।''**

यह तब सम्भव होगा जब किसी नीति परिवर्तन से लाभान्वित व्यक्तियों द्वारा प्राप्त किया जाने वाला लाभ, हानि-ग्रस्त व्यक्तियों की हानि की अपेक्षा अधिक है। ऐसी दशा में ही लाभान्वित व्यक्ति लाभप्रद रूप से क्षतिग्रस्त व्यक्तियों की क्षतिपूर्ति कर सकते हैं। स्पष्ट हो कि काल्डोर तथा हिक्स के मानदण्ड में मात्र शब्दावली का ही अन्तर है।

हिक्स के मानदण्ड को एक रेखाचित्र के द्वारा समझाया जा सकता है। रेखाचित्र 30.3 में B_1A_1तथा B_2A_2उपयोगिता सम्भावना वक्र, वस्तुओं X तथा Y को दर्शा रहा है। यदि प्रारम्भिक सन्तुलन अवस्था Q_2 बिन्दु से कोई ऐसा परिवर्तन C, D अथवा E बिन्दु पर गति हो, तो यह परेटो मानदण्ड के आधार पर परेटो उन्नति को प्रदर्शित करता है।

परन्तु Q_2 से Q_1 पर गति परेटो मानदण्ड से नहीं आंकी जा सकती क्योंकि B की लागत पर A की उन्नति हुयी है। परन्तु यह गति काल्डोर हिक्स मापदण्ड के अनुसार समझायी जा सकती है। यदि (i) B को पूछा जाय कि वह इस गति को रोकने के लिये कितना भुगतान करने को तैयार होगा और (ii) A से पूछा जाय कि वह उसको छोड़ने के लिये कितना भुगतान करने को तैयार होगा यदि (ii) > (i) तो यह परिवर्तन कल्याण वृद्धि होगा क्योंकि ऐसी स्थिति में A सम्भवतः B की क्षतिपूर्ति कर देगा और Q_2 की अपेक्षा Q_1 पर अच्छी स्थिति में होगा।

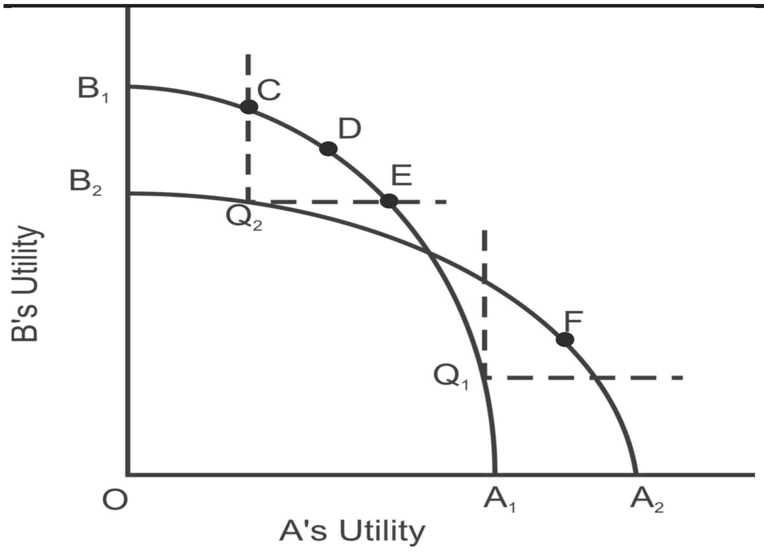

रेखाचित्र 30.3 काल्डोर हिक्स मापदण्ड

काल्डोर हिक्स मापदण्ड को मापने का सफल तरीका यही है कि प्रारम्भिक वस्तुओं का बंडल , नये बंडल को प्रकट करने वाली उपयोगिता सम्भावना वक्र से नीचे स्थित होना चाहिये (Q_2 उपयोगिता सम्भावना वक्र B_1A_1के बिन्दु Q1 से नीचे स्थित है)। यह अनुमान किया जा सकता है कि Q_1 पर गति करने से उसी उपयोगिता सम्भावना वक्र B_1A_1पर D बिन्दु बनता है जो कि स्पष्ट रूप से Q_2 से श्रेष्ठ है।

इस प्रकार काल्डोर हिक्स ने एजवर्थ बाउले बाक्स रेखाकृति के रूप में प्रसंविदा वक्र पर चल ने के परिणामस्वरूप सभावित सामाजिक कल्याण में परिवर्तन की व्याख्या की है। काल्डोर ने मुख्यतया लाभान्वित व्यक्तियों के दृष्टिकोण से तथा हिक्स ने हानिग्रस्त व्यक्तियों के दृष्टिकोण से सम्भावित कल्याण में परिवर्तन की व्याख्या की है। यही कारण है कि सामान्यतया उपर्यक्त दोनो मानदण्डो को सम्मिलित रूप में काल्डोर हिक्स मानदण्ड के नाम से जाना जाता है।

30.6 प्रो0 सिटोवस्की द्वारा प्रस्तुत क्षतिपूर्ति परीक्षण

हाइबर सिटोवस्की ने काल्डोर-हिक्स मापदण्ड में निहित अर्न्तविरोध की ओर संकेत करते हुये उसकी आलोचना की है। अपने लेख, ''A Note on Welfare Proportions in Economics'', (1941) में उन्होने इस अर्न्तविरोध को समझाते हुये बताया कि काल्डोर-हिक्स के दृष्टिकोण के अनुसार यह सम्भव है कि Y स्थिति X स्थिति की अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठ है। और इसी तथ्य को दृष्टिXत रखते हुये समाज X स्थिति से निकलकर Y स्थिति में प्रविष्ट हो जाय। यही मानदण्ड यह भी स्पष्ट कर सकता है कि Y स्थिति से पुनः X स्थिति को परिवर्तन भी अधिक सामाजिक कल्याण प्रदर्शित करता है। इस तरह देखा जाय तो एक समय Y स्थिति X स्थिति की अपेक्षा श्रेष्ठ है तथा

किसी अन्य समय में X स्थिति Y स्थिति की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होती है जिसे वास्तव में अपेक्षाकृत हीन होना चाहिये। अतः काल्डोर-हिक्स मानदण्ड में अर्न्तविरोध है।

चूंकि इसका स्पष्टीकरण सिटोवस्की ने किया अतः इसे सिटोवस्की विरोधाभास कहा जाता है। इसी प्रकार चूंकि एक स्थिति को उल्टा करके भी सामाजिक कल्याण में परिवर्तन को ज्ञात किया जाता है। अतः इसे ''विपरीत परीक्षण'' कहा जाता है।

सामाजिक कल्याण की एक सही एवं उचित धारणा का विकास करने हेतु सिटोवस्की ने इस बात पर जोर दिया है कि काल्डोर-हिक्स मापदण्ड में निहित अर्न्तविरोध को समाप्त किया जाय। अतः उन्होने अपना मापदण्ड प्रस्तुत किया जिसे ''सिटोवस्की का दोहरा मापदण्ड'' भी कहा जाता है।

30.6.1 सिटोवस्की का दोहरा मापदण्ड

सिटोवस्की के अनुसार, **''कोई परिवर्तन सुधार होता है यदि परिवर्तित स्थिति से लाभान्वित व्यक्ति परिवर्तित स्थिति को स्वीकार करने के लिये क्षतिग्रस्त व्यक्तियों को प्रेरित करने में समर्थ है तथा साथ ही क्षतिग्रस्त व्यक्ति लाभान्वित व्यक्तियों को व्यक्तियों को मौलिक स्थिति में बने रहने करने के लिये प्ररित करने में असमर्थ है।''**

कोई विशिष्ट नीति परिवर्तन सामाजिक कल्याण में तभी वृद्धि कर सकता है जब दो शर्तें पूरी की जाय-

1. काल्डोर-हिक्स परीक्षण की सन्तुष्टि का होना
2. सिटोवस्की का विपरीत परीक्षण पूरा न होना

उपर्युक्त शर्तों के दो अर्थ हैं-

1. काल्डोर-हिक्स मापदण्ड के दृष्टिकोण से समाज का X स्थिति से निकलकर Y स्थिति में प्रवेश करना वांक्षनीय होना चाहिये।
2. समाज का Y स्थिति से X स्थिति में पुनः लौटना कल्याणात्मक आधार पर वांक्षनीय नहीं होना चाहिये।

दूसरे शब्दों में, लाभ-प्राप्तकर्ता हानि-पीड़ितों को नया परिवर्तन स्वीकार कराने में समर्थ हो और हानि-पीड़ित, लाभ-प्राप्तकर्ताओं को पूर्व की पुरानी स्थिति में लौटने से रोकने में सक्षम हों।

30.6.2 सिटोवस्की विरोधाभास की व्याख्या

सिटोवस्की विरोधाभास की उपयोगिता सम्भावना वक्र द्वारा सरलता पूर्वक व्याख्या की गयी है। रेखाचित्र 30.4 में GH तथा JK दो उपयोगिता सम्भावना वक्र हैं। काल्डोर-हिक्स मानदण्ड के आधार पर स्थिति C स्थिति D की अपेक्षा अधिक सामाजिक कल्याण को व्यक्त करती है क्योंकि D स्थिति C बिन्दु से होकर जाने वाले उपयोगिता सम्भावना रेखा JK के नीचे स्थित है।

किन्तु काल्डोर-हिक्स मानदण्ड से ही यह सिद्ध किया जा सकता है कि स्थिति D, स्थिति C की अपेक्षा श्रेष्ठ है क्योंकि D बिन्दु से होकर जाने वाली उपयोगिता सम्भावना रेखा GH पर ही एक बिन्दु F स्थित है जो निश्चित रूप से C स्थिति की अपेक्षा एक व्यक्ति A की उपयोगिता में वृद्धि को प्रदर्शित करता है जबकि Bकी उपयोगिता समान रहे। अतः स्थिति D भी, स्थिति C की अपेक्षा अधिक सामाजिक कल्याण को व्यक्त करती है क्योंकि C बिन्दु D, F से होकर जाने वाले उपयोगिता सम्भावना वक्र GH के नीचे स्थित है।

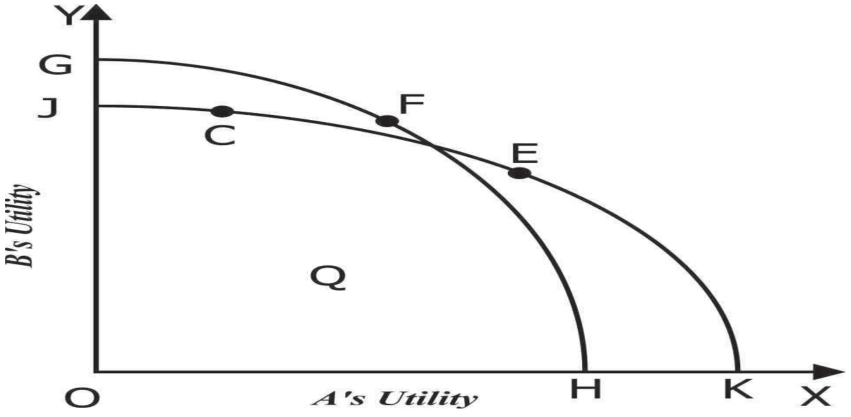

रेखाचित्र 30.4 सिटोवस्की विरोधाभास

अतः स्पष्ट है कि काल्डोर-हिक्स मानदण्ड से एक बार D की अपेक्षा C स्थित श्रेष्ठ है तथा दूसरी बार C की अपेक्षा D स्थिति श्रेष्ठ है जो असंगत है। इसे ही **''सिटोवस्की विरोधाभास''** कहा जाता है। इसी विरोधाभास को दूर करने के लिये सिटोवस्की ने अपनो दोहरा मानदण्ड प्रस्तुत किया। साधारण शब्दों में इसका अभिप्राय यह है कि यदि B स्थिति A की अपेक्षा श्रेष्ठ है तो उसी मानदण्ड के द्वारा B स्थित से A स्थित को पुनः परिवर्तन श्रेष्ठ नहीं होना चाहिये।

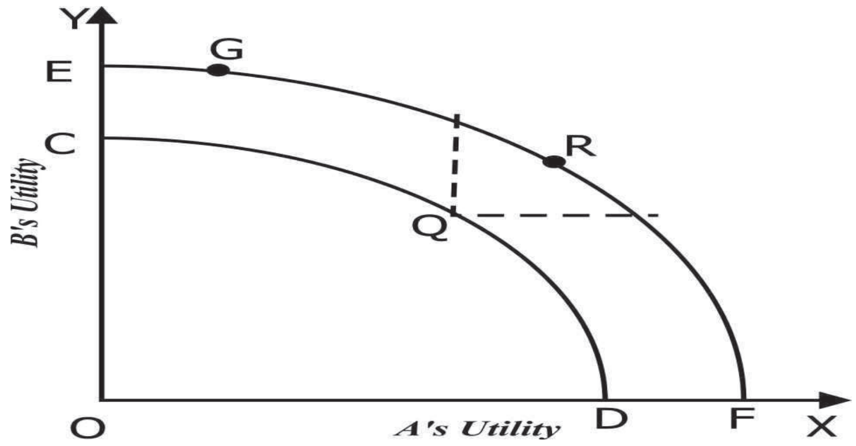

रेखाकृति 30.5 सिटोवस्की का दोहरा मानदण्ड

सिटोवस्की के दोहरे मानदण्ड की व्याख्या एक रेखाचित्र से की जा सकती है। रेखाचित्र 30.5 में CD तथा EF दो उपयोगिता सम्भावना वक्र हैं जो एक दूसरे को कहीं भी प्रतिच्छेद नहीं करते हैं। ऐसी दशा में Q से G बिन्दु काल्डोर-हिक्स मानदण्ड के अनुसार सामाजिक कल्याण में एक सुधार है क्योंकि G बिन्दु ऐसी उपयोगिता सम्भावना वक्र से होकर गुजरता है जहां पर R स्थित है जो ऐसे संयोग को व्यक्त करता है जहां पर Q की अपेक्षा दोनो व्यक्तियों को अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है। इसके विपरीत G बिन्दु Q बिन्दु में परिवर्तन पर सुधार नहीं है क्योंकि वह R बिन्दु की अपेक्षा दोनों व्यक्तियों की कम उपयोगिता का संयोग है। इस प्रकार काल्डोर-हिक्स मानदण्ड की पूर्ति हो जायेगी तथा विपरीत परीक्षण की पूर्ति नहीं होती है।

यद्यपि सिटोवस्की ने काल्डोर-हिक्स की अपेक्षा श्रेष्ठ मानदण्ड प्रस्तुत किया जो निश्चित रूप से काल्डोर-हिक्स द्वारा प्रस्तुत मानदण्डों पर ही आधारित है किन्तु यह क्षतिपूरक सिद्धान्त आलोचनाओं से मुक्त नहीं है।

30.7 आलोचनाएं

1. सामाजिक कल्याण के विवरणात्मक पक्ष की उपेक्षा- यह सिद्धान्त उत्पादन की समस्या को वितरण की समस्या से पृथक कर देता है जबकि ये दोनो एक दूसरे से जुड़ी समस्या है। वास्तविकता तो यह ही है कि सामाजिक कल्याण पर धन के वितरण का उतना ही प्रभाव पड़ता है, जितना धन के उत्पादन का।

2. नैतिक निर्णयों से मुक्त नहीं- प्रो0 लिटिल और बोमोल के विचार में यह कहना कि वे सभी परिवर्तन जिनके फलस्वरूप लाभ प्राप्त करने वाले व्यक्ति हानिग्रस्त व्यक्तियों की क्षतिपूर्ति करने के बाद भी पहले से श्रेष्ठतर रहते हैं, स्वयं नैतिक निर्णय है। परेटो की भांति काल्डोर एवं हिक्स दोनो ही सामाजिक कल्याण का विश्लेषण करते समय मूल्य निर्णयों से बचने का प्रयास तो करते रहे पर विफल रहे ।

3. दो से अधिक वस्तुओं पर लागू नहीं- प्रो0 बोमोल ने आलोचना करते हुये कहा कि जब दो से अधिक वस्तुओं का प्रश्न हो, तो इष्टतम उत्पादन सम्भव नहीं होता। भिन्न-भिन्न वस्तुओं की माप करने का ऐसा सामान्य पैमाना आय-वितरण पर निर्भर करता है जिसकी यह सिद्धान्त उपेक्षा करता है।

4. अन्तःवैयक्तिक तुलनाएं सम्मिलित- आलोचकों ने कहा है कि परेटो की भांति काल्डोर एवं हिक्स भी उपयोगिता की अन्तःवैयक्तिक तुलनाओं से बचना चाहते थे लेकिन यह तुलनाएं उनके अपने कल्याण सम्बन्धी विश्लेषण में निहित हैं। काल्डोर-हिक्स का सिद्धान्त इस धारणा पर आधारित है कि अमीर तथा गरीब दोनो के हाथ में ''मुद्रा का सामाजिक मूल्य'' समान होता है। यह मान्यता काल्डोर-हिक्स मानदण्ड में निहित है। इस मान्यता के बिना समाज में विभिन्न व्यक्तियों के प्रति लाभों एवं हानियों को मुद्रा के रूप में व्यक्त करना सम्भव ही नहीं है।

5. काल्डोर-हिक्स का मानदण्ड वास्तविक सामाजिक कल्याण पर विचार नहीं करता- लिटिल ऐरो तथा बॉमोल् का मत है कि केवल काल्पनिक क्षतिपूर्ति को विचार मे लाकर काल्डोर-हिक्स का कल्याकारी मानदण्ड वास्तविक सामाजिक कल्याण की उपेक्षा करता है। वे नीति परिवर्तन जो वास्तविक क्षतिपूर्ति के साथ सामाजिक कल्याण को बढ़ाते हैं, आवश्यक नहीं कि वे क्षतिपूर्ति के बिना भी सामाजिक कल्याण को बढ़ायें। काल्डोर-हिक्स का क्षतिपूर्ति सिद्धान्त वास्तविक कल्याण की बजाय सम्भाव्य कल्याण को दृष्टि में रखता है क्योकि इसमें क्षतिपूर्ति वास्तव में करने का प्रावधान नहीं। वास्तविक क्षतिपूर्ति के बिना कोई यह नहीं कह सकता कि क्या किसी परिवर्तन के फलस्वरूप सामाजिक कल्याण में वृद्धि हुयी है यदि वह विशेष नैतिक निर्णय लेने को तैयार नहीं है।

6. व्यावहारिक कठिनाइयां- काल्डोर-हिक्स मापदण्ड के अन्तर्गत हानि-पीड़ितों को दी जाने वाली क्षतिपूर्ति का मात्रा का अनुमान लगाते समय व्यावहारिक कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं। किसी आर्थिक नीति के परिवर्तन के फलस्वरूप किसी व्यक्ति की ''उपयोगिता-हानि'' तथा ''उपयोगिता-लाभ'' का अनुमान लगाने के लिये यह आवश्यक है कि उस व्यक्ति की उपयोगिता क्रम के बारे में पूर्ण जानकारी हो। परन्तु वास्तविकता यह है कि उपयोगिता क्रम की पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती। समस्या और भी जटिल हो जाती है जब हानि पीड़ित यह तर्क प्रस्तुत करें कि कोई भी मौद्रिक पारिश्रमिक चाहे जितना भी बड़ा क्यों न हो, उनकी हुयी हानि की क्षितपूर्ति नहीं कर सकता।

7. क्षतिपूर्ति सिद्धान्त द्वारा उपभोग तथा उत्पादन के बाहरी प्रभावों पर ध्यान न देना- इस सिद्धान्त की एक महत्वपूर्ण त्रुटि यह है कि यह इस मुद्दे पर कोई ध्यान नहीं देता कि एक व्यक्ति की सन्तुष्टि न केवल उसके अपने उपभोग अथवा उत्पादन पर निर्भर करती है बल्कि इस पर भी कि अन्य व्यक्तियों का वस्तओं तथा सेवाओं का उपभोग अथवा उत्पादन कितना और किस प्रकार का है। यदि समाज मे आर्थिक स्थिति में सापेक्षिक रूप से सुधार होता है तो एक व्यक्ति अधिक संतुष्ट होता है। यदि कोई ऐसा आर्थिक सुधार किसी एक व्यक्ति को पूर्ववत रखता है और एक अन्य व्यक्ति को श्रेष्ठतर बनाता है तो पहले व्यक्ति की संतुष्टि पूर्ववत् नहीं रहेगी वरन् उसकी संतुष्टि घट जायेगी।

डा0 लिटिल ने वास्तविक सामाजिक कल्याण में परिवर्तन की व्याख्या करते हुये अपना मानदण्ड प्रस्तुत किया जिसे उन्होने दो मूल्यगत धारणाओं पर आधारित रखा।

1. किसी व्यक्ति का कल्याण उसके द्वारा चुनी गयी स्थिति में अन्य सभी स्थितियों की अपेक्षा अधिक होती है।

2. कोई परिवर्तन, जो सभी व्यक्तियों को पहले की अपेक्षा श्रेष्ठ बनाता है, सामाजिक कल्याण में वृद्धि करता है।

डा0 लिटिल के अनुसार, ''एक परिवर्तन आर्थिक दृष्टिकोण में वांक्षनीय है यदि इसके परिणामस्वरूप कल्याण का वितरण अच्छा हो जाता है तथा यदि मुद्रा का एकमुश्त हस्तान्तरण द्वारा

पुनर्वितरण की नीति प्रत्येक व्यक्ति को उतना श्रेष्ठ नहीं बना सकेगी जितना कि वे परिवर्तित परिवर्तन कर देने के पश्चात होंगे।

इस प्रकार डा0 लिटिल के मानदण्ड के अनुसार परिवर्तित स्थिति में वितरण अधिक न्यायपूर्ण होना चाहिये तथा साथ ही समाज के एक वर्ग को होने वाला लाभ, दूसरे वर्ग की सम्भावित हानि से अधिक होना चाहिये।

30.8 सारांश

काल्डोर, हिक्स तथा सिटोवस्की द्वारा प्रतिपादित क्षतिपूर्ति सिद्धान्त कल्याणकारी अर्थशास्त्र की नींव परेटो के अनुकूलतम सामाजिक व्यवस्था के विचार पर आधारित थी। उपयोगिता के क्रमवाचक विचार तथा अन्तव्यैक्तिक तुलना की असम्भाव्यता की मान्यता पर क्षतिपूर्ति सिद्धान्त ने परेटो का अनुकरण किया। जहां परेटो मानदण्ड ऐसी परिस्थितियों में समाज के कल्याण में परिवर्तन की माप करने में असमर्थ है जिसके अन्तर्गत किसी नीति परिवर्तन से समाज के एक वर्ग को हानि तथा दूसरे वर्ग को लाभ होता है। ऐसी परिवर्तन की व्याख्या काल्डोर, हिक्स तथा सिटोवस्की ने अपने मानदण्ड द्वारा प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्त के अनुसार, जब किसी नीति परिवर्तन से कुछ को लाभ और कुछ को हानि होती है तो वह परिवर्तन सामाजिक कल्याण को बढ़ाएगा यदि लाभान्वित व्यक्ति हानि उठाने वाले व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति करने के पश्चात भी शुद्ध प्राप्त होता है।

काल्डोर, हिक्स तथा सिटोवस्की ने क्षतिपूरक भुगतान का विचार देकर आर्थिक कल्याण या सामाजिक कल्याण का वस्तुपरक मानदण्ड प्रस्तुत करने का दावा किया है तथा उनका विचार मूल्यगत निर्णयों से स्वतंत्र और इसलिये वैज्ञानिक है। इस प्रकार नये कल्याण अर्थशास्त्र को जन्म देने वाले विभिन्न क्षतिपूर्ति मापदण्ड कल्याण में वृद्धि के लिये एक व्यापक सत्य-मापदण्ड प्रस्तुत करने के प्रयत्न हैं।

हालांकि सन् 1939 से लेकर अबतक नवीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र बड़े वाद-विवाद का प्रश्न रहा। सर्वप्रथम काल्डोर ने अन्तवैयक्तिक तुष्टिगुण की तुलना के बिना क्षतिपूर्ति सिद्धान्त द्वारा उस दशा में सामाजिक कल्याण में वृद्धि अथवा कमी जांचने का मानदण्ड प्रस्तुत किया। सन् 1940 में हिक्स ने इसका समर्थन किया। सिटोवस्की ने क्षतिपूर्ति पर आधारित अपने दोहरे मानदण्ड पर सुधार किया। काल्डोर-हिक्स के कल्याणकारी मानदण्ड के प्रतिपादकों का दावा है कि वे क्रमवाचक तुष्टिगुण की अवधारणा पर आधारित तथा नैतिक मूल्यों से मुख्य कल्याणकारी मानदण्ड विकसित करने में सफल हुये हैं।

उनके द्वारा निहित नैतिक निर्णयों को अस्वीकार करने से उनकी आलोचना भी की गयी। ऐसी त्रुटियों के कारण कुछ अर्थशास्त्री जैसे कि बर्गसन, समल्सन तथा ऐरो ने सामाजिक कल्याणकारी फलन की अवधारणा विकसित की।

30.9 शब्दावली

सिटोवस्की विरोधाभास- काल्डोर-हिक्स मापदण्ड मे निहित अन्तर्विरोध को सिटोवस्की ने अपने मानदण्ड के द्वारा प्रस्तुत किया जिसे सिटोवस्की विरोधाभास की संज्ञा दी जाती है।

विपरीत परीक्षण- एक स्थिति को उल्टा करके भी सामाजिक कल्याण में परिवर्तन का ज्ञात किया जा सकता है। इसे ही विपरीत परीक्षण कहते हैं।

सिटोवस्की का दोहरा मापदण्ड- काल्डोर-हिक्स परीक्षण की पूर्ति तथा विपरीत परीक्षण का पूरा न होना ही सिटोवस्की का दोहरा मापदण्ड है।

30.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. कल्याणकारी अर्थशास्त्र में क्षतिपूर्ति सिद्धान्त की मान्यताओं के प्रतिकूल् क्या है ?
   a) उत्पादन एवं उपभोग मे वाहय प्रभाव न होना
   b) आर्थिक कल्याण का अन्तःवैयक्तिक तुलनायें सम्भव होना
   c) प्रत्येक व्यक्ति की संतुष्टियां दूसरे से स्वतन्त्र होना
   d) उत्पादन-परिवर्तनों के पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या
2. कल्याण के लिये क्षतिपूर्ति सिद्धान्त से कौन सा नाम नहीं जुड़ा है ?
   a) काल्डोर
   b) सेम्युएल्सन
   c) हिक्स
   d) सिटोवस्की
3. सिटोवस्की के दोहरे मापदण्ड के दो परीक्षण क्या है ?
4. परेटो के कल्याणात्मक विश्लेषण का पुनर्निमाण करने की दिशा में प्रथम प्रयास .... , ... ने किया।
5. परेटो विश्लेषण को जब .... परिवर्तनों पर लागू किया जाता है तो उसे क्षतिपूर्ति सिद्धान्त कहते हैं।

उत्तर 1- (b) 2- (c) 3. काल्डोर-हिक्स परीक्षण और विपरीत परीक्षण

4. काल्डोर, हिक्स एवं सिटोवस्की 5. अस्पष्ट

30.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सेठी, टी. टी. (मक 2008), ''व्यष्टि अर्थशास्त्र'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक,आगरा
2. झिंगन, एम.एल. (2007), ''उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त'', वृन्दा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
3. आहूजा, एस.एल. (2006), ''उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त: व्यष्टिपरक विश्लेषण'',चन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली

30.12 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

1. Baumol, W. J.: "Economic Theory and Operational Analysis, 4th edition, Prentice hall, 1977.
2. Robert Y. Awh: "Microeconomics: Theory and Policy, John Wiley, 1976.
3. Sen Amartya: "On Ethics and Economics, Oxford University Press, 1990.
4. Maurice Charles & Own R. Phillips: "Economic Analysis: Theory and Application, Irwin 1986.
5. Boulding, K.E.: "Welfare Economics", in *A Survey of Contemporary Economics*, (VolII), (ed.) B.F.Haley
6. Nath S.K: "Are formal Welfare Criteria Required?", E.J., 1964.

30.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कल्याणकारी अर्थशास्त्र से सम्बन्धित क्षतिपूर्ति सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये। काल्डोर-हिक्स क्षतिपूर्ति मानदण्ड की आलोचनात्मक विवेचना कीजिये।

2. सिटोवस्की का दोहरा मानदण्ड क्या है। उदाहरण सहित समझाइये।

इकाई 31- सामाजिक कल्याण फलन

31.1 प्रस्तावना
31.2 उद्देश्य
31.3 समाज कल्याण क्रिया
31.3.1 समाज कल्याण फलन क्या है
31.3.2 बर्गसन सेम्युएलसन के सामाजिक कल्याण क्रिया के प्रमुख लक्षण
31.3.3 सामाजिक कल्याण फलन का सामाजिक अनधिमान वक्रों द्वारा स्पष्टीकरण
31.3. 4 सामाजिक कल्याण फलन को अधिकतम करना
31.3. 5 सामाजिक कल्याण फलन की मान्यताएं
31.3. 6 आलोचनाएं
31.4 सामाजिक चयन का ऐरो का सिद्धान्त अथवा ऐरो का असंभवता प्रमेय
31.4.1 ऐरो की शर्ते
31.4.2 ऐरो का असंभवता प्रमेय
31.4.3 ऐरो के सामाजिक चयन के सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा
31.5 सारांश
31.6 शब्दावली
31.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
31.8 संदर्भ-ग्रन्थ सूची
31.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
31.10 निबन्धात्मक प्रश्न

31.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने काल्डोर, हिक्स तथा सिटोवस्की आदि के क्षतिपूर्ति मानदण्डों का विश्लेषण किया। उनके द्वारा निहित नैतिक निर्णयों को अस्वीकार करने से उनकी आलोचना भी की गयी। ऐसी त्रुटियों के कारण कुछ अर्थशास्त्री जैसे कि बर्गसन, समल्सन तथा ऐरो ने सामाजिक कल्याणकारी फलन   की अवधारणा विकसित की।

प्रस्तुत इकाई में कल्याणकारी अर्थशास्त्र की पुनः स्थापना करने के दूसरे प्रयास पर प्रकाश डाला गया है। बर्गसन, सेम्युएलसन तथा उनके अनुयायी द्वारा समाज कल्याण क्रिया की धारणा का प्रतिपादन किया गया है।

कल्याणकारी अर्थशास्त्री की व्यवहारिक उपयोगिता का महत्व रखते हुये मूल्य-निर्णयों अर्थात नैतिक मापदण्ड का समावेश इस सामाजिक कल्याण फलन   की मुख्य विशेषता है। ऐसा करने से ही, इन अर्थशास्त्रियों का मत है कि व्यवहारिक नीतियों के निर्माण में एक मार्गदर्शन मिल सकेगा।समाज कल्याण की धारणा कल्याण अर्थशास्त्र का वैज्ञानिक दृष्टि से आदर्शात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का एक प्रयत्न है।

31.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. यह जान सकेंगे कि समाज कल्याण क्रिया क्या है।
2. यह समझ सकेंगे कि मूल्य निर्णय किस प्रकार समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि करने के उद्देश्य से व्यवहारिक नीति सम्बन्धी सुझाव दे सकता है।
3. यह विश्लेषण करने में सक्षम होंगे कि मतदान व्यवहार सामाजिक कल्याण को कैसे प्रभावित करता है।
4. कल्याण अर्थशास्त्र के सामाजिक पहलू की विवेचना करने में सक्षम हो सकेंगे।

31.3 समाज कल्याण क्रिया

सर्वप्रथम प्रो0 बर्गसन ने समाज कल्याण फलन   का सिद्धान्त प्रस्तुत करके कल्याणकारी अर्थशास्त्र की पुर्नस्थापना करने का एक प्रयास किया है। इसके पश्चात, सेम्युएलसन, टिटेनर तथा ऐरो ने इस सिद्धान्त का एक सफल विकास किया। इन अर्थशास्त्रियों का यह मत है कि मूल्य निर्णयों के समावेश के बिना कल्याणकारी अर्थशास्त्र में कोई अर्थपूर्ण प्रस्थापनायें नहीं की जा सकतीं। कल्याणकारी अर्थशास्त्र की व्यवहारिक उपयोगिता मूल्य निर्णयों की अवहेYना करके नहीं आ सकती। नैतिक मानदण्डों के बिना कल्याणकारी अर्थशास्त्र अपने उद्देश्य की पूर्ति में विफल हो जायेगा। समाज कल्याण की धारणा कल्याण अर्थशास्त्र का वैज्ञानिक दृष्टि से आदर्शवादी अध्ययन प्रस्तुत करता है। मूल्य निर्णयों में निहित यह फलन   व्यवहारिक नीतियों के एक निर्माण में एक

मार्गदर्शन प्रदान करता है। अगर कल्याणकारी अर्थशास्त्र को मूल्य निर्णय विहीन कर दिया जाये तो इसका मूल उद्देश्य ही पराजित हो जायेगा। इन्ही मूल्य निर्णयों के कारण ही कल्याणकारी अर्थशास्त्री समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि कि उद्देश्य से व्यवहारिक नीति सम्बन्धी सुझाव दे सकता है। इन आदर्शात्मक स्वरूप के बावजूद यह अर्थशास्त्र एक वैज्ञानिक अध्ययन है अर्थात इसका वैज्ञानिक स्तर बना रहता है।

31.3.1 समाज कल्याण फलन क्या है-

समाज कल्याण की धारणा कल्याणकारी अर्थशास्त्र का वैज्ञानिक दृष्टि से आदर्शवादी अध्ययन है। कल्याणकारी अर्थशास्त्र के पुर्ननिर्माण करते समय इन अर्थशास्त्रियों ने अपने विश्लेषण में एक नये उपकरण का समावेश किया है जिसे समाज कल्याण क्रिया की संज्ञा दी जाती है।

समाज कल्याण फलन उन साधनों को प्रकट करता है जिन पर एक समाज का कल्याण निर्भर करता है। इससे अभिप्राय मूल्य निर्णयों अथवा नैतिक मापदण्डो के उस समूह से है जिसे कल्याणकारी अर्थशास्त्र ने विभिन्न स्त्रोतों से ग्रहण किया है।

प्रो0 बर्गसन के अनुसार यह या तो समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण का फलन होता है, या तो समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उपभोग की गयी वस्तुओं तथा प्रदान की गयी सेवाओं का फलन है। ‘‘यह वह फलन है जो समाज कल्याण तथा उन सब सम्भव चरों के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है जो कि प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण को प्रभावित करते हैं। मूल्य निर्णयों के द्वारा अर्थशास्त्री यह निष्कर्ष निकाल पाते है कि विभिन्न वैकल्पिक आर्थिक नीतियों से कौन सी नीति सामाजिक दृष्टिकोण से सर्वाधिक वांनीय है। दूसरे शब्दों में सामाजिक कल्याण क्रिया एक ऐसा साधन है जिसकी सहायता से सामाजिक अधिमान क्रम को व्यक्तिगत अधिमान क्रमों से व्युतपादित किया जाता है। इस प्रकार समाज कल्याण फलन समाज के कल्याण का क्रमसंख्यात्मक सूचक तथा व्यक्तिगत उपयोगिता का फलन होता है। इसे निम्न प्रकार से व्यक्त करते हैं-

$$W = F(U_1, U_2 \ldots\ldots\ldots U_n)$$

जहां W समाज का आर्थिक कल्याण, F फलन , $U_1 \ldots\ldots U_n$ तक व्यक्तियों की उपयोगिता के स्तर हैं। W इन उपयोगिता का बढ़ता फलन है।

31.3.2 बर्गसन सेम्युएलसन के सामाजिक कल्याण क्रिया के प्रमुख लक्षण-

प्रो0 बर्गसन ने अपने लेख, "A Reformulation OF Certain Aspects OF Welfare Economics" में सामाजिक कल्याण फलन का प्रतिपादन किया। इसी के आधार पर उत्पादन तथा विनिमय की ‘‘अनुकूलतम शर्तें’’ अधिकतम कल्याण के लिये आवश्यक है।

प्रो0 सेमुएल्सन ने इस फलन के नैतिक तत्व पर जोर देते हुये निम्न मत व्यक्त किया-

‘‘फलन हितैषी तानाशाह अथवा पूर्ण स्वार्थी अथवा समस्त हितैषी व्यक्तियों के कुछ नैतिक विश्वास की व्याख्या करता है।’

प्रश्न उठता है कि मूल्यगत निर्णय कौन ले ? वास्तव मे वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो सामाजिक कल्याण को सर्वोपरि रखे तथा निष्पक्ष रूप से कोई निर्णय दे। बर्गसन और सेमुएल्सन ने इस सन्दर्भ में एक महापुरुष की कल्पना करते हुये कहा है कि सामाजिक कल्याण में वृद्धि के लिये महापुरुष ही निर्णय लेता है- कितना उत्पादन किया जाय, वस्तु का गुण तथा प्रकार क्या होना चाहिये, किन आवश्यकताओं की पूर्ति हो तथा उनमें भी किस आवश्यकता को पहले तथा किस को बाद में संतुष्ट किया जाय तथा समाज में धन का वितरण किस प्रकार होना चाहिये।

एक सरकार का निर्माण बहुसंख्या के आधार पर होता है। इस प्रकार समाज की प्रतिनिधि सरकार, अनेक नीतियों का निर्माण कुछ मूल्यगत निर्णयों के आधार पर करती है। जिससे यह अपेंक्षा की जाती है कि वह सभी नीति-निर्णय सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के उद्देश्य से करेगी किसी व्यक्ति अथवा सामाजिक वर्ग-विशेष के कल्याण को अधिकतम करने के उद्देश्य से नहीं। यदि वह किसी दी हुयी परिस्थिति में X को Y की तुलना में अधिक अधिमान देता है तथा Y को Z की अपेक्षा अधिक अधिमान देता है तो उसे X को Z से भी अधिक अधिमान देना चाहिये।

बर्गसन सेमुएल्सन द्वारा प्रतिपादित सामाजिक कल्याण का विश्लेषण करने से निम्न प्रमुख लक्षण ज्ञात होते हैं-

1. बर्गसन-सेमुएल्सन का सामाजिक कल्याण फलन अन्तवैयक्तिक तुलना पर आधारित है। मूल्यगत निर्णय इसी का परिणाम हैं। यह अर्न्तवैयक्तिक तुलना उपयोगिता के गणनावाचक विचार पर आधारित न होकर क्रमवाचक विचार पर आधारित है।

2. यह फलन यह सामान्यीकृत सामाजिक कल्याण फलन है जिसके अन्तर्गत मार्शल -पीगू तथा काल्डोर-हिक्स सिटोवस्की के कल्याणकारी अर्थशास्त्र को सम्मिलित किया जा सकता है।

3. सामाजिक कल्याण फलन किसी एकमात्र मूल्यगत निर्णय का ही समावेश न करके किसी प्रकार के भी मूल्यगत निर्णय को समाविष्ट करता है।

4. इस कल्याण फलन में जो नैतिक विचार सम्मिलित हैं, वह पूर्णतया क्रमवाचक हैं, गणनावाचक नहीं।

5. मूल्यगत निर्णयों के आधार पर एक बार सामाजिक कल्याण फलन के निर्धारित हो जाने के पश्चात अनुकूलतम सामाजिक कल्याण के स्तर को प्राप्त करने के लिये कीमत सिद्धान्त द्वारा साधनों का आवंटन विभिन्न क्षेत्रों में किया जा सकता है तथा वस्तुओं के उत्पादन को उपभोक्ताओं मे न्यायपूर्ण ढंग से वितरित किया जा सकता है ताकि सामाजिक कल्याण अधिकतम हो सके।

31.3.3 सामाजिक कल्याण फलन का सामाजिक अनधिमान वक्रों द्वारा स्पष्टीकरण-

प्रस्तुत रेखाकृति 31.1 में दो व्यक्तियों A तथा B के तुष्टिगुणों को क्रमशः X तथा Y अक्षो पर लिया गया है। W_1, W_2 तथा W_3 आदि सामाजिक अनधिमान वक्र हैं। यह वक्र जितना ही अधिक होगा, सामाजिक कल्याण का स्तर उतना ही अधिक होगा।

यदि कोई नीति परिवर्तन जो अर्थव्यवस्था को Q से T को ले जाता है सामाजिक कल्याण में वृद्धि करेगा, यदि वह अर्थव्यवस्था को S से Q को लाता है तो सामाजिक कल्याण में कमी होगी और यदि कोई नीति परिवर्तन अर्थव्यवस्था को Q से R को पहुंचाता है तो सामाजिक कल्याण पूर्ववत रहेगा।

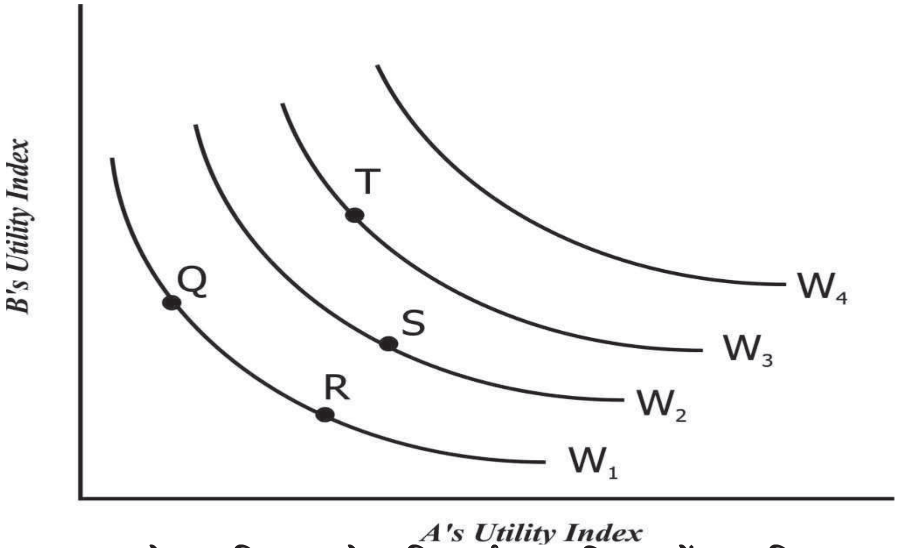

रेखाकृति 31.1 दो व्यक्ति अर्थशास्त्र की दशा में सामाजिक फलन

प्रो0 सेमुएल्सन और प्रो0 बर्गसन ने इस फलन को प्रस्तुत करके एक मान्य सामाजिक कल्याण फलन की खोज की समस्या का समाधान किया है। चूंकि सामाजिक कल्याण, व्यक्तिगत कल्याण पर निर्भर करता है अतः एक महापुरुष अथवा अधिकृत संस्था निर्णय लेती है। यही कारण है कि डा0 लिटिल ने इस फलन के महत्व को निम्न प्रकार बताया है-

''यह एक प्रतिभाशाली सैद्धान्तिक निर्माण की पूर्ति करता है।''

31..4 सामाजिक कल्याण फलन को अधिकतम करना-

सामाजिक कल्याण फलन की सहायता से अधिकतम सामाजिक कल्याण हल् को प्राप्त करने के लिये हमें परेटो के अनुकूलतम विश्लेषण से एक महत्वपूर्ण आधुनिक धारणा, ''उच्चतम तुष्टिगुण सम्भावना वक्र'' को निर्मित किया गया है।

परेटो के मानदण्ड से उनमें चयन करना सम्भव नहीं क्योंकि वे सभी परेटो अनुकूलतम हैं। अतः परेटो विश्लेषण हमें अधिकतम सामाजिक कल्याण के किसी एक विशेष बिन्दु पर नहीं पहुंच पाता है।

रेखाचित्र 31.2 में उच्चतम तुष्टिगुण सम्भावना वक्र थ्थ्श् के साथ सामाजिक कल्याण फलन को प्रदर्शित करते हुये सामाजिक अनधिमान वक्र W_1, W_2, W_3, W_4 दिखाये गयें हैं। प्रत्येक कल्याण वक्र सामाजिक कल्याण के स्तर को दर्शाता है। $W_4>W_3$, $W_3>W_2$ आदि।

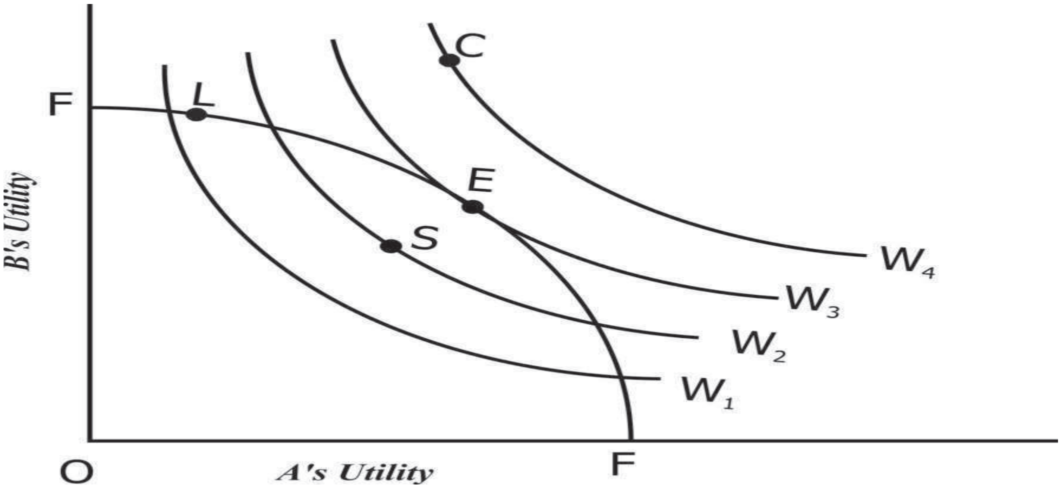

अधिकतम सामाजिक कल्याण या इष्टतम स्थिति वह है, जहां उपयोगिता सीमा FF_1 कल्याण वक्र W_3 को छूता है। चित्र में बिन्दु E स्पष्टतया अधिकतम सामाजिक कल्याण की स्थिति या परमानन्द बिन्दु को दर्शाता है। समस्त मान्यताओं को आधार मानते हुये जितने भी कल्याण बिन्दु हैं उसमें से E बिन्दु ही अधिकतम सामाजिक मूल्य है। बिन्दु L नीचे के वक्र W_1 पर स्थित है तथा सामाजिक कल्याण के निम्न स्तर को व्यक्त करता है। यही स्थिति बिन्दु के साथ है। जबकि बिन्दु C कल्याण वक्र W_4 पर होने के कारण समाज की उपयोगिता सीमा FF_1के बाहर स्थित है। अतः E बिन्दु ही अधिकतम सामाजिक कल्याण को व्यक्त करता है।

31.3.5 सामाजिक कल्याण फलन की मान्यताएं -

1. यह सिद्धान्त मान लेता है कि समाज कल्याण प्रत्येक व्यक्ति के धन तथा आय पर निर्भर करता है और प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण उसकी निजी सम्पत्ति और आय पर तथा समाज के सदस्यों में कल्याण के वितरण पर निर्भर करता है।

2. यह बाहरी मितव्ययितासओं और अमितव्ययिताओं तथा उनके परिणामी प्रभावों की उपस्थिति मानकर चलता है।

3. यह व्यक्तिगत कल्याण को प्रभावित करने वाले चरों के संयोग के क्रम-संख्यात्मक क्रमबद्धता पर आधारित है।

4. इस फलन में उपयोगिता की अन्तःवैयक्तिक तुलनाएं जिनमें मूल-निर्णय शामिल होते हैं पाई जाती हैं।

अन्त में यह उल्लेखनीय है कि सामाजिक कल्याण फलन को निर्धारित करना कोई सरल बात नहीं है। चूंकि अभी तक अर्थशास्त्रियों ने सामाजिक कल्याण फलन को निर्धारित करने की कोई विशेष विधि नहीं सुझाई है जो सर्वमान्य हो, इस सम्बन्ध में बहुत मतभेद पाया जाता है। अतः ‘‘सामाजिक

कल्याण फलन अभी तक एक आदर्शात्मक धारणा है जिसको वास्तविक नीतिनिर्माण के उपकरण के रूप में आसानी से परिणत नहीं किया जा सकता।''

31.3.6 आलोचनाएं-

प्रो0 सेमुएल्सन के अनुसार, समाज कल्याण फलन मान्यताओं के कारण, ''उतना ही व्यापक, रिक्त तथा आवश्यक बन गया है जितनी की स्वयं भाषा।'' डा0 लिटल की राय में यह, ''कल्याण अर्थशास्त्र की औपचारिक गडितीय व्यवस्था को पूर्ण बनाता है।'' सिटोवस्की इसे ''पूर्ण रूप से सामान्य'' मानता है। समाज कल्याण फलन का समावेश परेटो इष्टमता में पायी जाने वाली अनिश्चितता को दूर करता है। परन्तु इस फलन की कुछ अपनी सीमाएं भी हैं।

1. व्यावहारिक दृष्टि से सीमित महत्व- प्रो0 लिटिल, स्ट्रीटेन और बोमोल ने आलोचना करते हुये टिप्पणी की कि व्यावहारिक नीति से इस फलन का कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः पूर्णतया सामान्य फलन है। स्ट्रीटेन के अनुसार, यह फलन अत्यधिक औपचारिक है जिसका सामाजिक जीवन तथा चुनाव के महत्वपूर्ण तथ्यों से बहुत कम सम्बन्ध है। उन्हीं के शब्दों में, ''आवश्यक सामाजिक कल्याण फलन के मॉडल के साथ किसी राजनीतिक कार्यक्रम अथवा व्यक्तिगत मूल्य मानदण्ड का तालमेल नहीं होगा।''

2. आनुभाविक महत्व विहीन- डा0 लिटल के अनुसार अधिकतम सामाजिक कल्याण की धारणा बिना किसी संभावित आनुभाविक महत्व के है। अतः इसे प्रयोग करना श्रेयस्कर नहीं है।

3. **व्यक्तिगत अधिमानों द्वारा समाज कल्याण फलन निर्माण संभव नहीं-** प्रो0 ऐरो इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जब दो से अधिक विकल्पों में चयन करना हो तो व्यक्तिगत अधिमानों पर आधारित कोई भी सामाजिक कल्याण फलन निर्मित नहीं किया जा सकता है। समाज कल्याण फलन में परस्पर विरोधी परिणाम प्राप्त होते हैं।

4. समीकरण तथा वक्र काल्पनिक- समाज कल्याण को समीकरणों या समाज उदासीनती वक्रों के रूप में प्रकट करने की समस्या को हल् करने में सहायता नहीं मिल ती क्योंकि व्यक्तिगत कल्याण फलन ज्ञात नहीं हो सकते। अतः यह सब समीकरण काल्पनिक होते हैं।

5. कल्याण उपयोगिता से सम्बन्धित चरों के अतिरिक्त अन्य कई तत्वों पर निर्भर-आर्थिक चरों के अलावा व्यक्तियों का कल्याण राजनीतिक तथा वातावरण सम्बन्धी चरों पर भी निर्भर करते हैं। जैसे कि- मानवीय अधिकारों से होने से आनन्द प्राप्ति, राजनीतिक स्वतन्त्रता, प्रदूषण से मुक्त वातावरण आदि।

इस प्रकार यदि कोई पुर्नगठन जिससे सभी व्यक्तियों को अधिक आय तथा अवकाश प्राप्त होता हो, सम्भवतः समाज के कल्याण में वृद्धि न करे क्योंकि इससे व्यक्ति की स्वतन्त्रता अथवा महत्वपूर्ण सांस्कृतिक मूल्यों की हानि होती है।

6. समाज कल्याण फलन निर्माण कठिन- समस्या यह है कि व्यक्तिगत अधिमानो को समान महत्व दिया जाये या भिन्न-भिन्न। इससे समाज कल्याण फलन   एक कठिन कार्य बन जाता है।

31.4 सामाजिक चयन का ऐरो का सिद्धान्त अथवा ऐरो का असंभवता प्रमेय

बर्गसन तथा सेमुएल्सन ने सामाजिक कल्याण फलन   का प्रतिपादन करके कल्याणकारी अर्थशास्त्र में महत्वपूर्ण योग दान दिया जिसके अन्तर्गत किसी महापुरुष के मूल्यगत निर्णय, जो समाज के विभिन्न व्यक्तियों के क्रमवाचक उपयोगिता सूचकांको प्रतिबिम्ब होता है। प्रो0 के0 जे0 ऐरो ने अपनी पुस्तक "Social Choice and Indutrial Values" में स्पष्ट किया है। इस प्रकार का सामाजिक कल्याण फलन   का निर्माण करना असम्भव है, क्योंकि विभिन्न व्यक्तियों की इच्छाओं के सम्मिYन द्वारा सामाजिक निर्णय के लिये उचित विधि का निर्माण करना सरल कार्य नहीं है। ऐरो के अनुसार सामाजिक स्तर का व्यक्तिगत क्रम स्वयं के उपभोग पर ही नहीं वरन् अन्य व्यक्तियों के उपभोग पर भी निर्भर करता है। अन्य शब्दों में, एक व्यक्ति का कल्याण उपभोग की निरपेक्ष मात्रा पर ही नहीं वरन् सापेक्ष मात्राओं पर भी निर्भर करता है।

के0 जे0 ऐरो ने रुचि तथा मूल्य में अन्तर स्पष्ट किया है। ऐरो ने स्पष्ट किया कि बर्गसन ने अपने सामाजिक कल्याण फलन   में किसी व्यक्ति के तुष्टिगुण को उपभोग की गयी वस्तुओं की मात्रा पर निर्भर माना है। अतः एक व्यक्ति के वैकल्पिक ‘‘सामाजिक अवस्थाओं के क्रम उसकी रुचियों की व्याख्या करते हैं।

ऐरो के अनुसार व्यक्तिगत मूल्यों के अनुसार ‘‘सामाजिक स्तरों’’ को क्रमबद्ध करना सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिये अत्यधिक आवश्यक है।

31.4.1 ऐरो की शर्तें -

प्रो0 ऐरो ने व्यक्ति तथा समुदाय के निर्णय के मध्य सम्बन्ध के आधार पर सामाजिक कल्याण की व्याख्या की। ऐरो ने पांच शर्तें बतायी हैं जो कसौटियां हैं जिन्हे व्यक्तियों के अधिमानों को व्यक्त करने के लिये सामाजिक चुनावों द्वारा पूरा किया जाना चाहिये। ये शर्तें निम्नलिखित हैं-

1. सामूहिक विवेकशीलता- सामाजिक चुनाव से व्युत्पन्न होने वाले सभी विकल्प विवेकशील ता पर आधारित हैं। व्यक्तिगत अधिमानों की भांति सामाजिक अधिमान भी पूर्णतया क्रमबद्ध होने चाहिये। क्रमबद्धता को दो शर्तें पूरी करनी चाहिये (1) संगति (2) सकर्मकता। यदि A स्थिति का B स्थिति की अपेक्षा अधिक तथा B स्थिति C की अपेक्षा अधिक अधिमान दिया जाता है तो A स्थिति C स्थिति की अपेक्षा भी अधिक अधिमान्य होगी।

2. व्यक्तिगत अधिमानों की अनुक्रियाशीलता- सामाजिक चुनाव व्यक्तिगत अधिमानों से विपरीत दिशा में परिवर्तित नहीं होना चाहिये अर्थात सामाजिक चुनाव विभिन्न व्यक्तियों के चुनाव के अनुरूप हों।

3. ना आरोपण- सामाजिक चुनावों का आरोपण समाज के बाहर रहने वालों द्वारा न किया जाय। समुदाय के सभी सदस्यों की इच्छा के अनुरूप लिया गया निर्णय अर्थात विकल्पों में चयन परेटो मानइण्ड की पूर्ति करता हो।

4. गैर डिक्टटेराना - सामाजिक चुनाव किसी एक व्यक्ति द्वारा आरोपित न किया जाय।

5. असम्बन्ध विकल्पों से स्वतन्त्रता- सामाजिक चुनावों का असम्बन्ध विकल्पों से स्वतन्त्र होना जरूरी है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि यदि किसी एक विकल्प का बहिष्कार कर दिया जाय, तो उससे अन्य विकल्पों के श्रेणीकरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

ऐरो ने दर्शाया है कि यह पांच शर्तें ही मूल्यगत निर्णय हैं। इन शर्तों को पूरा करना और कम से कम एक शर्त का उल्लंघन किये बिना व्यक्तिगत अधिमानों के प्रत्येक सैट के लिये सकर्मक सामाजिक चुनाव प्राप्त कर सकना सम्भव नहीं है। दूसरे शब्दों मे कहा जा सकता है कि सामाजिक चुनाव असंगत अथवा अप्रजातान्त्रिक है क्योंकि कोई भी मतदान प्रणाली इन पांचो शर्तों को पूरा नहीं होने देती। इसे ऐरो असंभवता प्रमेय कहा जाने लगा है।

31.4.2 ऐरो का असंभवता प्रमेय-

ऐरो ने असंभवता प्रमेय की सहायता से व्यक्तिगत अधिमानों के आधार पर सामूहिक अधिमान का निर्माण करने को असम्भव सिद्ध किया है। समूह के विषय में निर्णय लेने की सर्वोपयुक्त विधि मतदान है। प्रत्येक मतदाता के अधिमान संगत होने पर भी बहुसंख्या नियम पर आधारित सामाजिक चुनाव असंगत हो सकते हैं। निम्न तालिका में A, B तथा C तीन व्यक्तियों को तीन विकल्प गए Y तथा Z में चुनाव करना है। मान लीजिये कि सर्वाधिक, मध्यम तथा न्यूनतम अधिमान को वे क्रमशः 3, 2 तथा 1 संख्या के रूप में व्यक्त करते हैं।

तालिका देखने से यह स्पष्ट होता है कि A व्यक्ति X को Y की अपेक्षा तथा Y को Z की अपेक्षा अधिक अधिमान प्रदान करता है।

व्यक्ति	वैकल्पिक स्थितियां		
	X	Y	Z
A	3	2	1
B	1	3	2
C	2	1	3

इसी प्रकार B व्यक्ति Y को Z तथा Z को X की अपेक्षा अधिक अधिमान प्रदान करता है। C व्यक्ति Z को X की अपेक्षा तथा X को Y की अपेक्षा अधिक अधिमान देता है।

इस प्रकार A और C दोनो व्यक्ति X को Y की अपेक्षा अधिक अधिमान प्रदान करते हैं तथा A और B, Y को Z की अपेक्षा अधिक अधिमान देते हैं।

इसी प्रकार B और C दोनो व्यक्ति Z को X की अपेक्षा अधिक अधिमान देते हैं।

स्पष्ट है कि तीन में से दो व्यक्ति अर्थात बहुसंख्यक X को Y की अपेक्षा तथा Y को की अपेक्षा अधिक अधिमान देते हैं किन्तु बहुसंख्यक हीं को X की अपेक्षा अधिक अधिमान देते हैं। संगति परीक्षण के अनुसार यदि X को Y की अपेक्षा तथा Y को Z की अपेक्षा अधिक अधिमान दिया जाय तो X को Z की अपेक्षा अधिक अधिमान दिया जाना चाहिये। किन्तु उपर्यक्त स्पष्टीकरण से हमें विरोधाभास परिणाम प्राप्त होते हैं।

रेखाकृति 31.3 में दर्शाया गया है कि बहु-नुकीला ढांचा बहुमत नियम विरोधाभास को स्पष्ट करता है जो बहुमत का निर्माण करने वाले व्यक्तियों के अधिमानो से असंगति रखता है। इस प्रकार, मतदान की प्रजातन्त्रीय प्रक्रिया के प्रयोग से परस्पर विरोधी कल्याण कसौटियां बनती हैं। ऐरो के अनुसार, एक भी शर्त का अभाव होने पर सामाजिक कल्याण का सूत्रबद्ध करना सम्भव नहीं है।

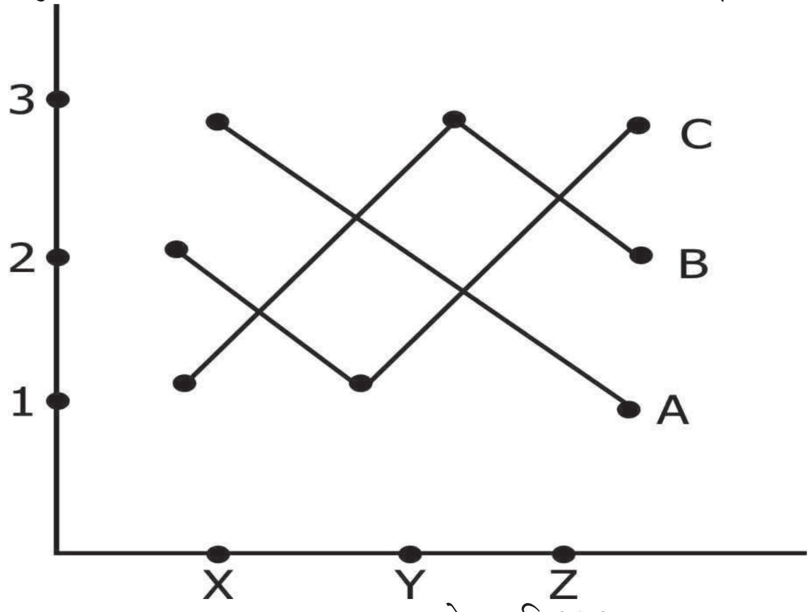

रेखाकृति 31.3

31.4.3 ऐरो के सामाजिक चयन के सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा-

सेमुएल्सन, लिटल तथा अन्य कल्याण अर्थशास्त्रियों ने ऐरो के सामान्य असंभवता प्रमेय की आलोचना की है-

1. सामाजिक कल्याण फलन से सम्बद्ध नहीं- लिटल के अनुसार, ऐरो के नकारात्मक निष्कर्षों की कल्याण अर्थशास्त्र में कोई संगति नहीं है। उसका असंभवता प्रमेय केवल निर्णय करने की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। उसका सामाजिक कल्याण फलन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

2. अन्तर्वैयक्तिक तुलनाओं का हल् नहीं- मिशन के अनुसार, एक संतोषजनक सामाजिक कल्याण फलन की खोज में ऐरो उपयोगिता की अन्तर्वैयक्तिक तुलना की समस्या को सुलझाने में असफल रहता है। बल्कि उसकी बहुमत नियम की विरोध में अन्तर्वैयक्तिक तुलनाएं पायी जाती हैं। यदि बहुमत व्यक्ति Y की अपेक्षा X को प्राथमिकता देते हैं, तब X के पक्ष में बहुमत निर्णय का

मतलब है कि Y की अपेक्षा X को प्राथमिकता केवल उपयोगिता को अधिकतम करने के उद्देश्य से दी जाती है। तथा एक व्यक्ति का चुनाव दूसरे व्यक्ति की तुलना में समान उपयोगिता का होता है।

3. गणितीय राजनीति- सैम्युल्सन का मत है कि ऐरो ने एक ऐसे ''राजनीतिक व्यवस्था फलन '' की असंभवता सिद्ध की है जो अपने निकट लाये जाने वाले किन्ही अन्तवैयक्तिक भेदों का समाधान कर सकेगा और साथ ही कुछ तर्कसंगत एवं वांक्षनीय स्वयं-सिद्ध सिद्धान्तों को भी संन्तुष्ट करेगा। इस प्रकार ऐरो का निष्कर्ष वह आधार प्रमेय है जिसे सेम्युलसन ने ''गणितीय राजनीति'' कहा है।

4. सामाजिक चुनाव एक मात्र विकल्प नहीं- बोमोल ने स्पष्ट किया है कि ऐरो की जरूरतें उसकी अपेक्षा अधिक कड़ी हैं जैसी वह पहले-पहल् देखने में प्रतीत होती हैं और कि असंगत अथवा ''अप्रजातन्त्रात्मक'' चुनाव करना ही एकमात्र विकल्प नहीं है।

5. बहुमत मतदान ढांचा अवास्तविक- ऐरो का प्रमेय बहुमत मतदान के ढांचा पर आधारित है जो कि मतदान प्रणाली की संभाव्यता पर ध्यान नही देता जिसमें सर्वसम्मति की जरूरत है और जो मतों के क्रय-विक्रय की अनुमति देता है।

इन आलोचनाओं के बावजूद ए0 के0 सेन का सुनिश्चित मत है कि ऐरो का निष्कर्ष न केवल व्यक्तिगत मूल्यों के संयोजन के ऐसे तरीकों पर जैसे कि बहुमत निर्णयों का तरीका लागू होता है। अपितु किसी भी ऐसे तरीके पर भी लागू होता है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। प्रमेय पूर्ण रूप से सामान्य है और इसी में इसकी सुन्दरता तथा महत्ता निहित है।

31.5 सारांश

क्षतिपूर्ति सिद्धान्त के उपरान्त समाज कल्याण फलन की धारणा के प्रतिपादन द्वारा कल्याणकारी अर्थशास्त्र की पुनः स्थापना करने का एक दूसरा प्रयास किया गया । बर्गसन तथा सेमयुडाल्सन ने मूल्य निर्णय के महत्व को ध्यान में रखते हुये इस बात की पुष्टि की कि नैतिक मापदण्डों के अभाव में कल्याणकारी अर्थशास्त्र व्यावहारिक नीतियों का निर्माण करने में असमर्थ होगा। इस प्रकार देखा जाये तो ये अर्थशास्त्री कल्याणकारी अर्थशास्त्र को एक आदर्शात्मक अध्ययन मानते है किन्तु इस आदर्शक स्वरूप के बावजूद अका यह दृढ़ विश्वास है कि अर्थशास्त्र एक वैज्ञानिक अध्ययन है।

समाज कल्याण क्रिया नामक उपकरण का समावेश करके इन अर्थशास्त्रियों में कल्याणकारी अर्थशास्त्र का पुनर्निर्माण किया। उनके अनुसार समाज-कल्यण फलन एक ऐसा साधन है जिसकी सहायता से सामाजिक अधिमान क्रय को व्यक्तिगत अधिमान क्रमों से व्युत्पादिक किया जाता है। अत्तर्वैयक्तिक तुलना पर आधारित यह एक सामान्यकृत सामाजिक कल्याण फलन है जो किसी भी प्रकार के मूल्यगत निर्णयों को समाविष्ट करता है।

सामाजिक कल्याण का अनुकूलतम स्तर प्राप्त करने के लिये कीमत सिद्धान्त द्वारा साधनों का आंबटन विभिन्न क्षेत्रों में किया जा सकता हैं तथा वस्तुओं के उत्पादन को उपभोक्ताओं में न्यायापूर्ण ढंग से वितरित किया जा सकता है।

आगे, ऐरो ने इस बात को स्पष्ट किया कि विभिन्न व्यक्तियों की इच्छाओं के सम्मिYन द्वारा सामाजिक निर्णय के लिये उचित विधि का निर्माण करना सरल कार्य नहीं है। उनके अनुसार एक व्यक्ति का कल्याण उपभोग का निरपेक्ष मात्रा पर ही नहीं वरन् सापेक्ष मात्रा पर भी निर्भर करता है। ऐरो ने पाँच शर्तें अथवा कसौटियों का विवरण किया जिन्हें व्यक्तियों के अधिमानों को व्यक्त करने के लिये सामाजिक चुनावों द्वारा पूरा किया जाना चाहिये।

सामाजिक कल्याण फलन को निर्धारित करना कोई सरल बात नहीं है। अर्थशास्त्रियों ने सामाजिक कल्याण फलन को निर्धारित करने की कोई विशेष सर्वमान्य विधि नहीं सुझाई है और इस सम्बन्ध में बहुत मतभेद पाया जाता है। अतः सामाजिक कल्याण फलन अभी तक एक आदर्शात्मक धारणा है जिसको वास्तविक नीति निर्माण के उपकरण के रूप में आसानी से परिणत नहीं किया जा सकता।

31.6 शब्दावली

1. सामाजिक अनधिमान वक्र- दो व्यक्तियों के विभिन्न तुष्टिगुणों के विभिन्न संयोगों को बताता है जो सामाजिक कल्याण के एक समान स्तर को उत्पन्न करते हैं।
2. उच्चतम तुष्टिगुण सम्भावना वक्र- दो व्यक्तियों के उन तुष्टिगुण- संयोगों को व्यक्त करता है जो कि साधनों की मात्रा, तकनोलॉजी का स्तर तथा व्यक्तियों के अधिमान क्रम दिये हुये होने पर परेटो के मानदण्ड की दृष्टि से कुशल है।
3. परमानन्द बिन्दु- अधिकतम- सामाजिक कल्याण की स्थिति।
4. संगति - प्रत्येक विकल्प दूसरे प्रत्येक के सम्बन्ध में श्रेणीबद्ध किया जाता है।

31.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6. सामाजिक कल्याण फलन के लक्षणों के विपरीत क्या है ?
   a) अन्तवैयक्तिक तुलनाएं
   b) न्यायपूर्ण सामाजिक कल्याण फलन
   c) सामान्यीकृत सामाजिक कल्याण फलन
   d) क्रमवाचक नैतिक विचार
7. सामाजिक चयन के सिद्धान्त में ऐरो द्वारा प्रस्तावित शर्तों के प्रतिकूल् क्या है ?
   a) सामूहिक विवेकशील ता
   b) व्यक्तिगत अधिमानों की अनुकयशीलता
   c) किसी एक व्यक्ति द्वारा सामाजिक चुनाव का आरोपण
   d) असम्बद्ध विकल्पों से स्वतन्त्रता
8. ऐरो की पुस्तक का नाम ?
9. ऐरो के सामाजिक कल्याण के सिद्धान्त का नाम

उत्तर 1. (b) 2. (c) 3. Social Choice And Individual Values 4. असम्भवता प्रमेय

31.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सेठी, टी. टी. (2008), ''व्यष्टि अर्थशास्त्र'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक,आगरा
2. झिंगन, एम.एल. (2007), ''उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त'', वृन्दा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
3. आहूजा, एस.एल. (2006), ''उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त: व्यष्टिपरक विश्लेषण'',चन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली

31.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

1. Sen Amartya: "On Ethics and Economics, Oxford University Press, 1990.
2. Maurice Charles & Own R. Phillips: "Economic Analysis: Theory and Application, Irwin 1986.
3. Boulding, K.E.: "Welfare Economics", in *A Survey of Contemporary Economics*, (VolII), (ed.) B.F.Haley
4. Nath S.K: "Are formal Welfare Criteria Required?", E.J., 1964.
5. Baumol, W. J.: "Economic Theory and Operational Analysis, 4th edition, Prentice hall, 1977.
6. Robert Y. Awh: "Microeconomics: Theory and Policy, John Wiley, 1976.

31.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.कल्याण अर्थशास्त्र के सामाजिक पहलुओं पर एक प्रस्ताव लिखिये।

2.मतदान व्यवहार सामाजिक कल्याण को कैसे प्रभावित करता है ?

3.ऐरो का असम्भवता प्रमेय क्या है ?